॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास कृत
श्रीरामचरित मानस

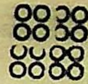
अर्थात्

रामायण

आठों काण्ड सचित्र

टीकाकार

पं० ज्वाला प्रशाद कलावारिधि



रामशलाका प्रश्न, श्रीमद्गोस्वामीजी का जीवनचरित, रामस्तुति, हनुमान-चालीसा, बजरंगबाण, रामायण-माहात्म्य, व श्रीरामायण तथा श्रीरामचन्द्रजी की आरती, क्षेपक-नारान्तक कथा, अहिरावण कथा, सुलोचना कथा संयुक्त विस्तृत भाषा टीका से विभूषित



प्रकाशक :

रतन एण्ड को० बुकसेलर्स

१६, दरियागंज, नई दिल्ली-२

मूल्य ५१ रुपये

❀ प्रकाशक :

रतन एण्ड को० बुकसेलर्स,

१६, दरियागंज, नई दिल्ली-२

❀ मूल्य : ५१ रुपये

❀ मुद्रक :

अशोक प्रिंटिंग प्रेस,

नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

❀ श्रीः ❀

विषयानुक्रमणिका

उत्तर काण्ड

लवकुश काण्ड

रामशलाका प्रश्न

चौपाई निकालने की रीति

दोहा—जबहीं पृच्छक अंक पर, अंगुलि को धरि देत। ताके अगिले अंक ते, नवमाक्षर गनि लेत॥
ऊपर को ऊपर लिखे, नीचे निम्न लिखेत। रामशलाका प्रश्न यह, यथा उचित फल देत॥

सु	प्र	उ	वि	हो	मु	ग	व	सु	नु	वि	घ	धि	ई	द
र	रु	फ	सि	सि	रें	वस	है	मं	ल	न	ल	य	न	अं
सुज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	नं	ई	ल	धा	वे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	स	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	इ	ग	ंम	सं	क	रे	हो	स	स	नि
त	र	त	र	स	इं	ह	व	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	ा	र	र	मा	मि	मी	म्हा	ा	जा	हूं	हीं	ा	जू
ता	रा	रे	री	ह्वँ	का	फ	खा	जि	ई	र	रा	पू	द	ल
नि	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मनि	क	ज	प	स	ल
हि	र	म	स	रि	ग	द	न	ष	म	खि	जि	मनि	त	ज
सिं	मु	न	न	कौ	मि	ज	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	नि	म	ल	ा	न	व	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढा	र	ल	का	ए	तु	र	न	नु	व	थ
सि	ह	सु	म्ह	रा	र	स	हिं	र	त	न	ष	ा	जा	ा
र	सा	ा	ला	धी	ा	री	ज	हू	हीं	षा	जू	ई	रा	रे

उदाहरण—मान लीजिए किसी ने पांचवी पंक्ति के आठवें अक्षर 'म' पर उंगली रखी। 'म' को लिख लेना चाहिए। आगे नवां अक्षर 'र' है। 'म' के आगे और पीछे लिखते जाने से निम्न चौपाई बन जायगी—

होई है सोइ जो राम रच राखा ❀ को करि तर्क बढ़ावै साखा

इसका फल यह है कि कार्य पूर्ण होने में सन्देह है,

इस चौपाई के अतिरिक्त श्रीरामशलाका-प्रश्नावली से जो अन्य चौपाइयां बनती हैं, वे फल सहित इस प्रकार हैं।

सुनु सिय सत्य असीस हमारी ❀ पूजिहि मन कामना तुम्हारी

फल—प्रश्न-कर्त्ता का प्रश्न उत्तम है, कार्य सिद्ध होगा।

प्रविसि नगर कीजै सब काजा ❀ हृदयं राखि कौशलपुर राजा

फल—ईश्वर का स्मरण करके कार्य करो, सफलता मिलेगी।

उघरें अन्त न होइ निबाहू ❀ कालनेमि जिमि रावन राहू

फल—इस कार्य में भलाई नहीं, सफलता में सन्देह है।

बिधिबस सुजन कुसङ्गति परहीं ❀ फनिमनिसम निज गुन अनुसरहीं

फल—दुष्टों का संग छोड़ दो, कार्य होने में सन्देह है।

मुद मङ्गलमय संत समाजू ❀ जिमि जग जङ्गम तीरथ राजू

फल—प्रश्न उत्तम है, कार्य सिद्ध होगा।

गरल सुधा रिपु करत मिताई ❀ गोपद सिंधु अनल सितलाई

फल—प्रश्न बहुत श्रेष्ठ है, कार्य सिद्ध होगा।

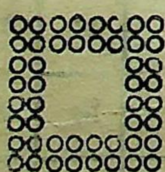
बरुन कुबेर सुरेस समीरा ❀ रन सन्मुख धरि काहु न धीरा

फल—कार्य पूर्ण होने में सन्देह है।

सुफल मनोरथ होहुं तुम्हारे ❀ राम लखनु सुनि भए सुखारे

फल—प्रश्न उत्तम है, कार्य सिद्ध होगा।

इस प्रकार रामशलाका प्रश्नावली से कुल नौ चौपाइयां बनती हैं, जिनमें सभी प्रकार के प्रश्नों के उत्तराशय सन्निहित हैं।



रामायण महात्म्य

दोहा—गुरुहरिहर गण ईश धो, सुमिरौं तुलसीदास। करत गोपाल माहात्म्य श्री, रामायण सुखरास॥

रामायण सुरतरु की छाया। दुख भय दूरि निकट जो आया॥
सप्तकाण्ड स्कन्ध सोहाई। दोहा लघु शाखा छविछाई॥
शुचि सोरठा सटीका कोई। पत्री बहु चौपाई जोई॥
छन्दन की शोभा अति रूरी। जनु नवीन अंकुर छवि पूरी॥
अक्षर सुमन रहे गहगाई। अति अद्भुत सुगन्ध कविताई॥
विविध प्रकार अर्थ सोई फल। श्रोता सुमति स्वाद जानै भल॥
भक्ति ज्ञान वैराग्य सरल रस। बीज दोय निर्गुण सगुण अस॥
मुनि भुशुण्डि शिव प्रथमहिं गाई। सोइ गाई जग हेतु गोसांई॥

दोहा—तुलसीदास रामायणहि, नहिं करते अनुसार। कलि के कुटिल जीव ये, का करितो निस्तार॥

रामायण सुरधेनु समाना। दायक अभिमत फल कल्याना॥
गुण समूह कवि सकै कौन गनि। जासु प्रभाव सरिस चिन्तामनि॥
राम अयन रामायण आही। बरणि पार पावै को ताही॥
रामायण अद्भुत फुलवारी। राम भ्रमर भूषित रुचि भारी॥
श्री रामायण जेहि घर माहीं। भूत प्रेत तहं भूलि न जाहीं॥
नहिं गति तहां दरिद्रहु केरी। तहं श्री महावीर की फेरी॥
यन्त्र मन्त्र सगुनौती जेती। रामायण महं जानिय तेती॥
प्रीति करै रामायण माहीं। तेहि सम भाग्यवन्त कोउ नाहीं॥

दोहा—रामायण सम नाहि कोउ, सब उपमा उपमेय। उपमा भाषा और की, कैसे कोऊ देय॥

त्रेतामहं भे बालमीकि मुनि। ते कलियुग भे तुलसिदास पुनि॥
शतकरोरि रामायण भाखी। इव मथि सार सुसूक्षम राखी॥
प्रथम काण्ड है बाल रसीला। जन्म विवाह राम की लीला॥
द्वितीय अयोध्या काण्ड प्रकाशा। पितु आज्ञा रघुबर बनवासा॥
पुनि अरण्यकिष्किन्धा भाख्यो। तहं सुग्रीव शरण महं राख्यो॥
सुन्दर सुन्दरकाण्ड सुहावन। युद्धकाण्ड महं मारेउ रावन॥
सप्तम उत्तव परम अनूपा। उत्सव प्रभु कोशलपुर भूपा॥
अष्टम लवकुश काण्ड बखाना। अश्वमेध कीन्हों भगवाना॥
तुलसीकृत रामायण येती। विविध प्रकार कथा है केती॥

दोहा—जग बारिधि को पार नहीं, ऐसो है फैलाव। तुलसीदास कृपाकरी, रचि रामायण नाव॥

श्री रामायण स्वर्ग निसेनी। भक्त जनन कहं आनन्द देनी॥
श्री रामायण सद्गुरु माता। अज्ञ जाहि पढि होहि सुज्ञाता॥
पाप समूह तूल की राशी। रामायण धनंज्यकन काशी॥
मोहपुञ्ज तम किरणि तमारी। काम अग्नि कहं शीतलवारी॥
रामायण शशि किरणि सुहाई। सन्त चकोरन कहं सुखदाई॥
धन्य धन्य श्री तुलसीदास धनि। जगहित रामायण राखि मनि॥
नीच ऊंच जेते नर नारी। श्रीरामायण सब कहं प्यारी॥
रामायण सों नेह लगावैं। अधन अपत्य सो वित सुत पावैं॥

दोहा—रामायण सों नेह किय, सिद्ध होत सब काम। है सबको कल्याणदा पढ़ सुन लहु विश्राम॥

निगमादिक तेह ब्रह्म कमण्डल। रामायण तहं थित गंगाजल॥
भागीरथ सम तुलसीदास पुनि। भाषा प्रचुर कीन्ह जनु सुरधुनि॥
होत रहै इक ठांव रामायण। तेहि मग आवत पाप परायण॥
कछुक कान महं परिगई बाता। चलत पन्थ कहु भया पपाता॥

गिरतहिं तुरत छूटि तनु गयऊ। तह अद्भुत इक अचरज भयऊ॥
ताहि लेन आये यमदूता। निज पाशन बांध्यो मजबूता॥
अति आतुर हरिजन तहं आये। छीन लीन्ह बहु त्रास दिखाये॥
रामायण पै सुनि यहि काना। लै जैहैं बैठारि विमाना॥

दोहा—रामायण परताप सों, गयो पार्षद न साथ। दूत चले यम के सदन, खीजत मींजत हाथ

निज दूतन देखेउ बिलखाता। पूछी भानुतनय कुशलाता॥
किन तुम कहं दीन्हीं दुख भाई। चार चतुर तुम देहु बताई॥
कहा कहैं तुमसों महाराजा। पूछत तुमहिं न आवत लाजा॥
कोइ इक मृत्युलोक बड़भागी। तुलसीदास भयो बैरागी॥
रामकथा रामायण भाखी। सो लोगन घर घर घर राखी॥
जे जे बिबिध भांति के पापी। मांसाहारी और सुरापी॥
ते सब मिलि रामायण सुनिहैं। कहिहैं लिखिहैं पढ़िहैं गुनिहैं॥
ते नहिं ऐहैं सदन तुम्हारे। सत्य सत्य नृप वचन हमारे॥

दोहा—लेहु पास ये आपने, राखहु अपने पास। अमल तुम्हारो उठो अब, सुनि यम भये उदास॥

अपनी व्यथा कहै नहिं पाये। तब लगि दूत और तहं आये॥
कहन लगे रविसुत सों रोई। तब चाकरी न हमसों होई॥
जग में कहूं न हुक्म तिहारो। यह सुनियमजकि रहेउ बिचारो॥
अहो दूत मोहि कहो बुझाई। केहि दीन्हों मम हुकुम उठाई॥
कहा कहै कछू कहो न जाई। तुलसीदास इक भयो गोसांई॥
तिनका रामायण जग व्यापी। तेइ कीन्हें पवित्र सब पापी॥
गये हम एक अधम गृह माहीं। अति दुख भयो जात कहि नाहीं॥
तहं देखेउं यक कपि बलवाना। उग्र रूप सदृश हनुमाना॥

दोहा—प्राणन को गहकीभयो तब हम भये अतिदीन। शरण शरण तब शरण है, अस्तुति बहु विधि कीन॥

तब तो ह्वै प्रसन्न कपिराई। हमसन पुनि परतीति कराई॥
धरा होइ रामायण जहंवां। कबहूं भूल न जायहु तहंवां॥
जे श्रोता वक्ता रामायण। कबहूं मति गायहु तेहि आयन॥
अस हमसों कपि शपथ कराई। तब छूटन पाया सुनु राई॥
सुनि यमराज बहुत घबराये। निकट बुलाई दूत समझाये॥
नाम रूप गुण कथा राम की। कियेउ न फेरी तीन धाम की॥
अजामिल की सुरति करोजू। और न कुछ चितमांहि धरोजू॥
थकि से रहे दूत सुनि बानी। धनि धनि रामायण महारानी॥

दोहा—रामायण, तेजेश्वरी, सत भाषा शिर मौर। यमपुर जाकी शोर है, समता का नहिं और॥

पातक महा लग्यो किन होई। रामायण सुनि रहै न कोई॥
चाहै चारो फल को साधन। करु रामायण को अवराधन॥
रामायण सुनि पाप पराने। जिमि हिम ऋतु महं मशकनशाने॥
कलियुग तरन उपाय न कोई। राम भजन रामायण दाई॥
कथा रामायण की जहं होई। सो गृह घर मति जानै कोई॥
सो घर तीर्थरूप सत भाशे। तहां गये पातक सब नाशै॥
पाप बास देही महं तब लग। श्रीरामायण सुने न जब लग॥
उदय पुरानी पुण्य होइ जब। रामायण महं मन लागै तब॥

दोहा—रामायण के सुनत ही, छूटि जात प्रेतत्व। जाके पढ़ते सुनत ते, सूझत है परतत्व॥

का जानै रामायण को रस। यह तो है सन्तन को सरबस॥
जलज सनेही अलिगण जैसे। भक्तन प्रिय रामायण ऐसे॥

त्यागि भक्तजन ग्रन्थ अनेकू। धारण किये रामायण एकू ॥
भक्तन कहं है भक्ति अनूपा। रसिक जनन कहं है रस रूपा ॥
ज्ञानमयी तिन कहं जे ज्ञानी। तुलसी तारण तरणि बखानी ॥
कामक्रोध रुज वश संसारा। औषध रामायण अनुसारा ॥
रामायण महं नेह न जाको। जीवत शव सम जानिये ताको ॥
रामायण जाकहं प्रिय नाहीं। वृथा जन्म ताको जग माहीं ॥

दोहा—रामायण अमृत कथा, लेत न ताको स्वाद। तिनको निश्चय जानिये, हैं पूरे मनुजाद।

रामायण विधि कहौं विशारद। सनत्कुमार सों भाषी नारद ॥
सहित विधान सुनै जो कोई। सहज मुक्ति पावै नर सोई ॥
कार्तिक माघ चैत्र चित लाई। नवदिन सुनै कथा सुखदाई ॥
ब्रह्ममुहुर्त्त समय हो जबहीं। कर्म करै शौचादिक तबहीं ॥
करै दन्तधावन लटजीरा। मज्जन करै धरै मन धीरा ॥
पुनि रामायण पुस्तक अरचै। प्रेम सहित गन्धादिक चरचै ॥
ओं नमो नारायण मन्त्र भनीजे। तीन आहुती होम करीजे ॥
मन बच कर्म पाप तन केरे। छूटि जाति नहिं आवत नेरे ॥

दोहा—या विधि रामायण विधिहिं, जे करिहहिं चितलाय। रामधामते जाइ हैं, संसृति दुखहिं मिटाय ॥

जो कछु कारज कहं कोउ जाई। सुमिरि चलैं सा यह चौपाई ॥
प्रविसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥
जो विदेश चाहे कुशलाई। तो यह सुमिरि चलै चौपाई ॥
रथ चढ़ि सिया सहित दोउ भाई। चले बनहिं अवधहिं शिरनाई ॥
भूत पिशाच जाहि जब लागे। यह सोरठा पढ़े सो भागे ॥

दोहा—बन्दौं पवनकुमार, खलबनपावक ज्ञानधन। जासु हृदय आगार, बसहिं राम शर चाप धर।

शत्रु निवारण चहौ जो भाई। भाव सहित जपु यह चौपाई ॥
जाके सुमिरण ते रिपु नाशा। नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा ॥
यह चौपाई जपै जो कोई। अन्न आदि दुख ताहि न होई ॥
विश्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई ॥
जो उत्सव चह विविध प्रकारा। करु यह चौपाई अनुसारा ॥
जबते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये ॥
जो चाहै जग कहुं जय पाई। स्थिर ह्वै जपु यह चौपाई ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहं न कतहुं रिपु ताके ॥
है बहु भांति कार्य जगमाहीं। रामायण सों सब ह्वै जाहीं ॥

दोहा—सकल भांति मनकामना, यह दोहा दातार। रामायण महं खोजकरि, करु याको अनुहार ॥
वह शोभा सुसमाज सुख, कहत न बनै खगेश। बरणौं शारद शेष श्रुति, सो रस जान महेश ॥

बरणौं एक रुचिर इतिहासा। तुलसीदास जो कीन्ह तमाशा ॥
द्राविड़ अरु काशी महिपाला। कतहुं एकत्र रहे कछु काला ॥
अतिशय प्रीति बढ़ी दुहु माहीं। मन में कपट लेश कछु नाहीं ॥
गर्भवती दोऊ नृप नारी। चली बात दोउन कहि डारी ॥
द्राविड़ कही बात सुखरासी। सुनहु नृपहिं काशी के बासी ॥
जन्मै तब सुत सुता हमारे। अथवा मम सुत सुता तिहारे ॥
अस संयोग होइ जो नाहू। हम तुम करहि विवाह उछाहू ॥
सुखद समय आयो जब सोऊ। निज निज भवन गये नृप दोऊ ॥

सोरठा—कन्या भई दुहुं ओर, जानी जात न देव गति। कहि पठये सुत मोर, द्राविड़ दूत काशी बनै।

यह छल होत भयो जिहि लाई। सा वह हेतु कहौं मैं गाई ॥
द्राविड़पति निज गृह आयो जब। राना सों अस कहत भयो तब ॥
जो होइ कन्या दुहुं ओरा। तो मैं प्राण तजब बरजोरा ॥

सुनि रानी राजा मुख बानी। मन महं बहुत भांति मैं मानी।।
उपरोहित कहं लिहिसि बुलाई। नृप दुराय यह बात बुझाई।।
मम अहिवात तुम्हारे हाथा। नहिं तो प्रभु मैं होव अनाथा।।
रानी द्रव्य दीन्ह नहिं थोरा। भइ माया वश द्विज मति भोरा।।
सेवक सेवकायनबश कीन्हेसि। आदर मान दान बहु दीन्हेसि।।

दोहा—सेवक एक दीन्ह तेहि, वाराणसी पठाय। तेहिते पाय खबरि सब तब यह किह्निसि उपाय।।

पुत्र नाम धरि गुप्त रखायो। द्वादश वर्ष न द्वार दिखायो।।
विदुषन कहेहु न कोऊ देखे। ब्याह समय सब कोऊ पेखे।।
मित्र मिलन हित चित अनुराग्यो। नेगी पठें ब्याह पुनि मांग्यो।।
अति आनन्द चल्यो मग बेगी। काशी नृप पहं आयो नेगी।।
नृप मन मुदित पत्रिका बांची। लै आवो बारात रंग रांची।।
आयो ब्याहन द्राविड़ राजा। खुली बात उपजी अति लाजा।।
क्रोधातुर काशी अवनीशा। कह कटिहौं द्राविड़ कर शीशा।।
यह सुनि द्राविड़ अधिक डेरानेउ। निज छल समुझि २ पछितानेउ।।

दोहा—अति सभीत अतिदीन ह्वै गो, जहं तुलसीदास। पाहि-पाहि कहि पांय परि, कहेउ करौ दुखनासा।।

तब काशी नृप कहं बुलवायो। तुलसिदास हित कर समुझायो।।
सुत कहि सुता जो ब्याहन आयो। होय पुत्र तो होय बधायो।।
जो यह पुत्र होय महाराजा। करिय विवाह साजि सब साजा।।
तुलसिदास वेदी बिरचाई। तहं गणेश गौरी पधराई।।
सिंहासन पै धरि रामायण। नव दिन भरि कीन्हीं पारायण।।
जो कन्या वरवेष बनाओ। ताही को सन्मुख बैठायो।।
वक्ता आप सो श्रोता भई। बुनियां तहं देखन सब गई।।
कथा सकल जब बांचि सुनाई। तासु शीश कर धरेउ गोसाईं।।

दोहा—अरु यह चौपाई पढ़ी, रामहिं सुमिरि प्रसन्य। तिहि अवसर वर ह्वै गयो, श्री रामायण धन्य।।

मन्त्र महामणि विषय ब्याल के। मेटन कठिन कुअंक भाल के।।
रामायण जब कहीं गोसाईं। प्रगटन हित काशी फिर आई।।
आदर कीन्ह न पण्डित काऊ। कहैं जो हम सों करौं उपाऊ।।
जहं स्थान कहै तहं जाहू। पोथी अब न देखावहु काहू।।
श्री आनन्द कानन ब्रह्मचारी। हम शिरमौर सुमहिमा भारी।।
जो याको वे आदर करिहैं। तौ हम सब लै शीशहिं धरिहैं।।
गए आनन्द कानन पह ततपर। करत प्रशंस प्रसन्न परस्पर।।
पोथी की चरचा पुनि कीन्हीं। देखन हेतु सो लै धरि दीन्हीं।।
कछु दिन पढ़ी सहित अनुरागन। गये गोसाईं पोथी मांगन।।

दोहा—पोथी दइअरु अस कहेउ, होई आदर लोक। निज प्रमाणकरि लिख दियो इक अद्भुत श्लोक।।

श्लोक—आनन्दकानने कश्चिज्जंगमस्तुलसीतरुः।
कविता मंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥

छंद—धनिधन्य तुलसीदास जिनजगहेतुरामायणभनी। महामात्म्यअमितनकहिसकौंरसविपयमहंमीमतिसनी।
निजबुद्धि के अनुसार कहिगोपालसुत गुरुकोदया। रघुवीर यश की अधिकता श्रीसन्तजन करि हैं मया।।

दोहा—श्रीमद् तुलसीदास जी, ह्वै प्रसन्न वर देहु। रामायण माहात्म्य सो हरिजन करहिं सनेहु।।
सम्वत् बसु नभ नन्द कूं, मार्गशुल्क गुरुवार। एकादशि कहं कीन्ह मैं, अपनी मति अनुसार।।
रामकोट श्री अवधपुर, स्वामी राम प्रसाद। तिनकी महिमा को कहै, विश्व विदित मर्याद।।
तिन ते गादी पांचई, सो स्वामी मैं दास। लषनपुरी मम जन्म क्षिति, रामनगर के पास।।
मोजमनगर प्रसिद्ध द्विज, उत्तम पूरनदास। तस्यात्मज गोपालकृत, यह माहात्म्य इतिहास।।

॥ श्री रामायण माहात्म्य सम्पूर्णम् ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी का

संक्षिप्त जीवन-चरित



'भक्तिविलास' में पण्डित महादेवजी त्रिपाठी ने लिखा है कि पाराशर गोत्र, सरयूपारी दूबे ब्राह्मण आत्मारामजी की स्त्री हुलसी देवी के गर्भ से तुलसीदास जी का जन्म विक्रमीय सम्वत् १५८१ में हुआ। इनका पहला नाम रामबोला था। पिता, माता का स्थान प्रत्यून्जा ग्राम था। गर्भस्थिति अन्तर्वेद तरीके से गांव में हुई, वहां से राजापुर में आकर इनका जन्म हुआ। तुलसीदास जी के बाल्यावस्था में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था। साधुओं के संग में ये बाल्यावस्था से ही रहने लगे थे। इनके गुरु का नाम नरहरिदास था, जो इस सोरठा से प्रगट होता है कि—

बन्दौ गुरु पदकञ्ज, कृपासिन्धु नररूप हरि। महा मोह तम पुञ्ज, जासु वचन रविकर निकर॥

तुलसीदासजी ने राम-कथा पहले अपने गुरुदेव के मुखारविंद से सौराजी में, जो गंगाजी के तट पर है, सुनी थी। इसके प्रमाण में यह दोहा है—

मैं पुनिनिजगुरुसनसुनी, कथा सो शूकरखेत। समुझी नहिं तसिबालपन तबअति रहेउं अचेत॥

पंडितजी कहते हैं कि तुलसीदासजी का विवाह नहीं हुआ था, परन्तु पूर्वोक्त दोहे में बालपन से मालूम होता है कि विवाह हुआ होगा। शिष्य जब एक शास्त्र पढ़कर दूसरे शास्त्र का समापन करता है तब कहता है कि मैं इस शास्त्र में बालक हूं। संस्कृत ग्रन्थों में प्रायः अनेक ऐसे प्रयोग मिलते हैं।

प्रसिद्ध है कि दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से इनका विवाह हुआ था जिससे तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था। स्त्री से इनका प्रेम अधिक था। एक दिन वह स्त्री, बिना कहे नैहर चली गई। इनसे स्त्री-वियोग न सहा गया, आकर स्त्री से मिले, उसने लजाकर कहा —

लाज न लागत आपको, दौरे आयउ साथ। धिक् धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहहुं मैं नाथ॥
अस्थिचर्ममय देह मम, तामें जैसी प्रीति। तैसी जो श्रीराममहं, होत न तौ भवभीति॥

ये बचन गोसाईं जी के हृदय में ऐसे लगे कि ये वहां से तुरन्त चलकर काशी में आकर विरक्त हो गये। अयोध्या और काशी में प्राय रहा करते थे, परन्तु चित्रकूट, प्रयाग, मथुरा, कुरुक्षेत्र, जगन्नाथ शूकर क्षेत्र (सौरों) आदि तीर्थों में भी भ्रमण किया करते थे।

हनुमानजी के द्वारा इनको श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन हुआ। कथा इस प्रकार है—गोसाईं जी शौच के लिए प्रतिदिन गंगाजी के पार जाया करते थे और लौटते समय लोटे में बचा हुआ जल एक आम के वृक्ष की जड़ में डाल दिया करते थे। उस आम पर एक प्रेत रहता था। एक दिन वह उस जल से तृप्त होकर गोसाईं जी के सामने आया और बोला कि कुछ मांगो। गोसाईं जी ने कहा कि हमको और कुछ नहीं चाहिए केवल रामजी का दर्शन चाहिए। यह सुन प्रेत ने कहा कि यह शक्ति मुझमें नहीं है। यदि इतनी शक्ति होती तो मैं प्रेत ही क्यों होता, परन्तु मैं तुमको उपाय बतलाये देता हूं कि अमुक मन्दिर में रामायण की कथा होती है वहां एक मनुष्य बहुत ही मैला, कोढ़ी कथा सुनने को सबसे पहले आता है और सबसे पीछे जाता है। वे ही साक्षात् हनुमानजी हैं, उन्हीं के चरण पकड़ना वे रामजी का दर्शन करा देंगे। गोसाईं जी ने ऐसा ही किया। हनुमानजी ने बहुत बचना चाहा परन्तु गोसाईं जी ने अपना हठ न छोड़ा तब हनुमानजी ने कहा कि अच्छा जाओ चित्रकूट में दर्शन होगा। इसके विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है कि –

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर। तुलसीदास चन्दन घिसत, तिलक देत रघुवीर॥

अथवा

रामघाट मन्दाकिनी, भइ विमानन भीर। तुलसीदास चन्दन घिसत, तिलक देत रघुवीर॥

गोसाईं जी एक दिन चित्रकूट के वन में घूम रहे थे कि हिरन के पीछे दो सुन्दर राजकुमार एक श्याम और दूसरे गोरे धनुष-बाण लिये दौड़ाये जाते हुए दिखाई दिये। गोसाईं जी ने उनके स्वरूप को देखा और मोहित हो गये परन्तु पहिचाना नहीं। उसी समय हनुमान जी ने आकर पूछा कि कुछ देखा? गोसाईं जी ने कहा कि हां दो राजकुमार घोड़े पर चढ़कर हिरण के पीछे गये हैं तब हनुमानजी ने कहा कि यही दोनों श्रीराम और लक्ष्मण थे। गोसाईं जी ने दोनों मूर्तियों को हृदय में धारण किया। इसी प्रकार एक दिन वन में विचरते हुए रामलीला देखी। उस समय श्रीराम लंका जीत विभीषण को राज्य दे सीता लक्ष्मण हनुमान् आदि सहित अयोध्याजी को लौट रहे हैं। लीला समाप्त होने पर तुलसीदासजी लौटे तब ब्राह्मण रूपधारी हनुमानजी के मिलने पर गोसाईं जी ने कहा कि यहां बहुत अच्छी रामलीला होती है। ब्राह्मण ने कहा आजकल रामलीला कैसी? गोसाईं जी ने कहा "चलो आपको भी दिखला दें।" वहां गये तो चिन्ह तक नहीं देख पड़े। तब गोसाईं जी को हनुमानजी की बात स्मरण आई। उन्होंने कहा हमको दर्शन तो हुआ, परन्तु हम भूले ही रहे यह समझ, बहुत उदास हुए और रोते-रोते सो गये। स्वप्न में हनुमानजी ने कहा कि कलियुग में किसी को प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, पछताओ मत उठो और भगवान की सेवा करो। तुम महाभाग्यशाली हो जो तुमको दर्शन हुआ, यह सुनकर गोसाईं जी का चित्त शान्त हुआ।

अयोध्याजी में गोसाईं जी रहने लगे। वहां इन्होंने सम्वत् १६३१ में रामचरित मानस (रामायण) बनाना आरम्भ किया। उसका प्रमाण यह है कि—

सम्वत् सोलह सो इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि शीशा॥
नवमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकाशा॥

पूरा आरण्य भी न बना चुके थे कि इसी बीच वैष्णवों से कलह हो जाने के कारण काशी में जाकर निवास किया। काशी में गोसाईं जी के चार मुख्य स्थान प्रसिद्ध हैं। १. अस्सी (तुलसीघाट आदि) २. गोपाल मन्दिर, ३. प्रल्हाद घाट, ४. संकट मोचन हनुमान। यहां काशी में हनुमानजी की ११ मूर्तियां गोसाईं जी ने स्थापित की थीं। गोसाईं जी का पहला निवास स्थान हनुमान फाटक है। यवनों के उपद्रव से वहां से उठकर गोपाल मन्दिर आये। वहां से भी बल्लभ कुल वाले गोसाइयों से विरोध हो जाने पर अस्सी पर आये और मरणपर्यन्त वहीं रहे। प्रल्हाद घाट पर जिस स्थान पर गोस्वामीजी रहते थे, वहां उनके स्मरणार्थ स्मारक दर्शन योग्य बना है।

रामचरितमानस बनाते समय अनेक स्थलों पर हनुमानजी इनके सहायक हुए। तुलसीदासजी की कविता से मालूम पड़ता है कि वे एक क्रोधहीन, सहनशील, सन्तोषी और शान्तिप्रिय ब्राह्मण थे। तुलसीदासजी के गुणों सहित जीवनी का वर्णन किया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ बन जायेगा। इस कारण हमने यहां अति संक्षेप में गोसाईं जी का जीवन चरित लिखना उचित समझा है। तुलसीदासजी संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त उस समय के हिन्दी साहित्य के भी विज्ञ थे। भाषा कवियों के बहुत से भाव ज्यों के त्यों लिखे गये हैं। जैसे—"गिरा अनयन नयन बिनु बानी।" नन्ददास जी के पञ्चाध्यायी में नैनन के नहिं बैन बैन के नैन नहीं"। इसी भाव को सूरदासजी ने कहा है कि जो "मेरी अंखियां रसना होतीं कहतीं रूप बनाई री"। तुलसीदासजी की कविता उनके मत को भलीभांति पुष्ट करती है। गोसाईं जी ने अपने निबन्ध को सारगर्भित करने के लिए रामचरितमानस में कहीं वेद और वेदान्त के शब्दों तक को उद्धृत कर यह दर्शा दिया है कि भाषा में भी सब प्रकार की कविता की जा सकती है। उत्तरकाण्ड में गोसाईं जी ने ईश्वर का रूप वर्णन किया है। यथा—"सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अजविज्ञान रूप बलधामा।"

जब गोसाईं जी की रामायण की चर्चा चारों ओर फैल गई तब काशीजी के पण्डितों ने शंकर मतानुयायी श्री मधुसूदन सरस्वतीजी से जाकर कहा कि तुलसीदासजी की रामायण की बड़ी प्रशंसा हो रही है। तब उक्त दण्डी स्वामी ने गोसाईं जी को अत्यन्त धन्यवाद दे यह श्लोक पढ़ा कि—

आनन्दकानने कश्चिज्जंगमस्तुलसीतरुः। कविता मञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता।

काशीराज महाराज ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है—

दोहा—तुलसी जंगम तरु लसे, आनंद कानन खेत। कविता जाकी मंजरी, राम भ्रमररस लेत॥

श्लोक का अर्थ यह है कि आनन्द कानने अर्थात् काशीजी में तुलसी एक चलायमान वृक्ष है, उसकी श्रेष्ठ कवितारूपी मञ्जरी, श्रीराम रूप भ्रमर से भूषित है।

तुलसीदासजी ने मनुष्यों का चरित न लिखने का प्रण किया था इसी कारण अपना कुछ भी परिचय उन्होंने नहीं दिया। कहीं कहीं जो अपने चरित का आभास मात्र दिया भी है तो अपनी दीनता और हीनता वर्णन में। पास का ग्राम निवासी वेणीमाधव दास कवि जो गोसाईं जी के संग रहते थे उन्होंने गोसाईं चरित लिखा था। नाभादासजी गोसाईं जी के समय में हुए हैं। उनकी भक्तमाल में एक छप्पय है कि—

त्रेता काव्य निबन्ध करी सतकोटि रमायन। इक अक्षर के उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन॥
अथ भक्तन सुखदेन बहुरि बपुधरि विस्तारी। रामचरण रसमत्त रहत अहनिशि व्रतधारी॥
संसार अपार केपार को, सुगमरूप नौका लयो। कलिकुटिलजीवनिस्तारहित, बालमीकतुलसीभयो॥

तुलसीदासजी के बनाये ६ बड़े और ६ छोटे सब १२ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। उनके नाम ये हैं—दोहावली, गीतावली, विनय पत्रिका, कवितावली, रामज्ञात, रामचरित-मानस, रामलला नहछू, बरवा रामायण, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, वैराग्य सन्दीपनी, कृष्णावली, इसके अतिरिक्त सतसई, रामसलाका, कुण्डलिया रामायण, छन्दावली, कड़खा रामायण, रोला रामायण, संकटमोचन, हनुमान बाहुक, छप्पय रामायण और झूलना रामायण ये १० ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

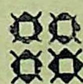
गोसाईं जी ने अपनी मृत्यु के समय यह दोहा कहा था—

रामनाम जस बरनिकै, भयउ चहत अब मौन। तुलसी के मुख दीजिये, अबही तुलसी सोन।

इनकी मृत्यु के समय का यह दोहा प्रसिद्ध है --

संवत् सोलहस असो, असी गंग के तीर। सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर।

इति श्रीमत्पण्डित नारायण प्रसाद मिश्र लिखित श्री तुलसीदासजी का संक्षिप्त जीवन चरित समाप्त।



अथ श्रीरामस्तुति प्रारम्भः

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजुमन हरण भव भय दारुणं।
नवकंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणं॥ १॥
कन्दर्प अगनित अमित छबि नवनील नीरद सुन्दरं।
पटपीत मानहुं तड़ित रुचिसुचि नौमि जनक सुतावरं॥ २॥
भजु दीनबन्धु दिनेश दानव दैत्य वंश निकन्दनं।
रघुनन्द आनंद कन्द कोशल चन्द दशरथ नन्दनं॥ ३॥
सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदारु अंग विभूषनं।
आजानु भुज सरचाप धर संग्राम जित खर दूषनं॥ ४॥
इति वदति तुलसीदास शंकर सेष मुनि मन रंजनं।
मम हृदय कंज निवास करु कामादि खल दल गंजनं॥ ५॥

श्री हनुमते नमः

अथ

श्रीहनुमान चालीसा

दोहा-श्रीगुरुचरणसरोजरज, निजमनमुकुरसुधार। बरणौं रघुबरविमलयश, जो दायक फलचार॥
बुद्धिहीन तनु जानिकै, सुमिरौं पवनकुमार। बल बुद्धि विद्या देहु मोहि, कलेश विकार॥

चौपाई

जय हनुमान ज्ञान गुणसागर। जै कपीश तिहुं लोक उजागर।
रामदूत अतुलित बलधामा। अंजनि पुत्र पवन सुत नामा॥
महावीर विक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी॥
कंचन वरण बिराज सुवेशा। कानन कुंडल कुंचित केशा॥
हाथ बज्र अरु ध्वजा विराजै। काँधे मूज जनेऊ छाजै॥
शंकर सुवन केशरी नन्दन। तेज प्रताप महा जगबन्दन॥
विद्यावान गुणी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर॥
प्रभु चरित्र सुनिवे को रसिया। राम लषण सीता मन बसिया॥
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। विकट रूप धरि लंक जरावा॥
भीम रूप धरि असुर संहारे। रामचन्द्र के काज संवारे॥
लाय संजीवन लषण जियाये। श्रीरघुवीर हरषि उर लाये॥
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। कहा भरतसम तुम प्रिय भाई॥

सहस बदन तुमरो यश गावैं। अस कहि श्रीपति कराठ लगावैं॥
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीशा। नारद शारद सहित अहीशा॥
यम कुबेर दिगपाल जहां ते। कवि कोविद कहि सकैं कहां ते॥
तुम उपकार सुग्रीवहि कीन्हा। राम मिलाय राजपद दीन्हा॥
तुमरो मन्त्र विभीषण माना। लंकेश्वर भये सब जग जाना॥
युगसहस्र योजन जो भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥
प्रभु मुद्रिका मेलि मुखमाहीं। जलधि लांघि गये अचरज नाहीं॥
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥
राम दुलारे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैठारे॥
सब सुख लहै तुम्हारे सरना। तुम रक्षक काहू को डर ना॥
आपन तेज सम्हारो आपै। तीनों लोक हांक ते कांपै॥
भूत पिशाच निकट नहिं आवैं। महावीर जब नाम सुनावैं॥
नाशै रोग हरै सब पीरा। जपत निरन्तर हनुमत बल बीरा॥
संकट से हनुमान छुड़ावैं। मन क्रम वचन ध्यान जो लावै॥
सब पर राम तपस्वी राजा। तिनके काज सकल तुम साजा॥
और मनोरथ जो कोई लावै। तासु अमित जीवन फल पावै॥
चारों युग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा॥
साधु सन्त के तुम रखवारे। असुर निकन्दन राम दुलारे॥
अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता। अस बर दीन्ह जानकी माता॥
राम रसायन तुम्हरे पासा। सादर तुम रघुपति के दासा॥
तुम्हरे भजन राम को भावैं। जन्म जन्म को दुख बिसरावैं॥
अन्तकाल रघुपति पुरजाई। जहां जन्मि हरिभक्त कहाई॥
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्व सुख करई॥
संकट हरै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बल बीरा॥
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करौ गुरुदेव की नाईं॥
यह शत बार पाठ कर जोई। छूटे बन्दि महा सुख होई॥
जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा। होइ सिद्धि साखी गौरीसा॥
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजे नाथ हृदय महं डेरा॥

दोहा—पवन तनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप। रामलषण सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप॥

॥ इति श्री हनुमान चालीसा सम्पूर्ण ॥

अथ बजरंग-बाण

दोहा—निश्चय प्रेम प्रतीत ते, विनय करैं सनमान।
तेहि के कारज सकल शुभ, सिद्धि करैं हनुमान॥

चौपाई—जय हनुमन्त सन्त हितकारी। सुनि लीजे प्रभु अरज हमारी॥
जन के काज विलम्ब न कीजै। आतुर दौर महा सुख दीजै॥
जैसे कूदि सिन्धु वहिपारा। सुरसा बदन बैठि विस्तारा॥
आगे जाइ लंकनी रोका। मारेहु लात गई सुरलोका॥
जाय विभीषण को सुख दीन्हा। सीता निरखि परम पद लीन्हा॥
बाग उजारि सिन्धु महं बोरा। आतुर अति जमकातर तोरा॥
अक्षय कुमार को मार सहारा। लूम लपेट लंक को जारा॥
लाह समान लंक जरि गई। जै जै ध्वनि सुरपुर में भई॥
अब विलंब केहि कारण स्वामी। कृपा करहु उर अन्तर्यामी॥
जै जै लक्ष्मण प्राण के दाता। आतुर होइ दुख करहु निपाता॥
ॐ हनु हनु हनु हनुमंत हठीले। बैरिहिं मारु बज्र की कीले॥
गदा बज्र ले बैरिहि मारो। महाराज प्रभु दास उबारो॥
ॐकार हुंकार महा प्रभु धावो। बज्रगदा हनु विलंब न लाओ॥
ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं हनुमत कपीशा। ॐ हु हु हु हनुअरि उरशीशा॥
सत्य होहु हरि सत्यपाय कै। राम दूत धरमारु धाय कै॥
जै जै जै हनुमान अगाधा। दुख पावत जन केहि अपराधा॥
पूजा जप तप नेम अचारा। नहिं जानत है दास तुम्हारा॥
बन उपवन मग गिरि गृह माहीं। तुमरे बल हम डरपत नाहीं॥
पांय परौं कर जोरि मनावौं। यहि अवसर अब केहि गोहरावौं॥
जै अंजनी कुमार बलवन्ता। शंकर सुवन वीर हनुमन्ता॥
बदन करालकाल कुलघालक। राम सहाय सदा प्रतिपालक॥
भूत प्रेत पिशाच निशाचर। अग्नि बैताल काल मारीचर॥
इन्हें मारु तोहि सपथ राम की। राखु नाथ मर्याद नाम की॥
जनकसुता हरिदास कहावो। ताकी शपथ विलम्ब न लावो॥
जै जै जै धुनि होत अकाशा। सुमिरत होत दुसह दुख नाशा॥
शरण शरण करजोरि मनावौं। यहि अवसर अब केहि गोहरावौं॥
उठु उठु चलु तोहि राम दोहाई। पाय परौं कर जोरि मनाई॥
ॐ चं चं चं चपल चलंता। ॐ हनु हनु हनु हनु हनुमन्ता॥
ॐ हं हांक देत कपि चंचल। ॐ सं सं सहमि पराने खलदल॥
अपने जन को तुरत उबारो। सुमिरत होत आनन्द हमारो॥
यह बजरंग बाण जेहि मारे। ताहि कहा फिरि कौन उबारो॥
पाठ करै बजरंग बाण की। हनुमत रक्षा करैं प्राण की॥
यह बजरंग बाण जो जापै। तातें भूत प्रेत सब कांपै॥
धूप देय अरु जपै हमेशा। ताके तन नहिं रहे कलेशा॥

दोहा—प्रेम प्रतीतिहिं कपि भजैं, सदा धरैं उर ध्यान।
तेहि के कारज सकल शुभ, सिद्धि करैं हनुमान॥

इति श्री बजरंगबाण सम्पूर्ण।

रामकलेवा

छन्द

भोर भये अपने कुमार को जनक वेगि बुलवाये।
सुनि पितु के संदेस लक्ष्मीनिधि सखन सहित तहं आये॥
सादर किये प्रणाम चरण छुइ लखि बोले मिथिलेसू।
गमनहु तात तुरत जनवासे जहं श्री अवध नरेसू॥
विनय सुनाई राय दशरथ सों पाय रजाय सचेतू।
आनहु चारिउ राजकुमारहिं करन कलेऊ हेतू॥
यह सुनि सीयनाथ लक्ष्मीनिधि धरि उर मोद उमंगा।
सखन समेत मंद हंसि गलन चढ़ि चढ़ि चपल तुरंगा॥
कलनि देखावत हय थिरकावत करत अनेक तमासे।
मृदु मुसुकात बतात परस्पर पहुंचि गये जनवासे॥
सखन सहित तहं उतरि तुरंगते मिथिलापति के वारे।
चारिहु सुतयुग अवध राज को सादर जाय जुहारे॥
अति सुखनिधि लक्ष्मीनिधि कोलखि सखन सहित सतकारे।
रघुकुल दीप महीप हाथ गहि निज समीप बैठारे॥
तेहि छन सानुज निरखि राम छबि, सखन सहित सुख माने।
लक्ष्मीनिधि मुख दरस पाइके रामहु नैन जुड़ाने॥
तब श्रीनिधि करजोरि भूप सों कोमल बचन उचारे।
करन कलेऊ हेतु पठावहु चारिउ राजदुलारे॥
सुनि मृदु बचन प्रेम रस साने दशरथ मृदु मुसुकाने।
चारिहुं कुंवर बुलाइ बेगही विदा किये सुखमाने॥
जनक नगर की जानि तयारी सेवक सब सुख पागे।
निज निज प्रभुहिं संवारन लागे लै भूषण बर बागे॥
रघुनन्दन सिर पाग जरकसी लसी त्रिभंगी बाँधी।
तिमि नौरंगी झुकी कलंगी रुचि रुचि पेचनी साधी॥
कनक कलित अति ललित मणिन की मंजुल सौर विराजी।
सिंधुर मणि के सजे सेहरा जाहि होत मन राजी॥
ताके कोर कोर चहुं ओरन लगी रहट की पाँती।
जगमग जोति होत चहुं दिसि ते लखि अँखियां न अघाती॥

कुण्डल लोलैं हलैं कपोलैं लगी अमोल मोती।
जेवदार जगमगहिं जराऊ युगल जंजीरन जोती॥
जालिम जोरि जुलफैं जहरी जुवतिन जोबनहारी।
छूटें अलकैं दुहुं दिसि झलकैं मनहुं मैनतरवारी॥
रतनारी कारी कजरारी अति अनियारी आंखैं।
रतनारी बरबस बसकारी प्यारी आन न राखैं॥
अति अवरंगी रतिरसरंगी चढ़ी त्रिभंगी भौ हैं।
मनहुं मदन के जुग धनु सो हैं जिहि जो है सोइ मो हैं॥
तिलक रसाल विसाल भाल पर किमि वरनौ छवि ताको।
जनु नवघन पर रीझ दामिनी नेक लियो थिर ताको॥
अरुन अधरबिच दामिनी द्युतिवर दमकैं दसनन पाती।
सन्मुख सुखकरि जेहि दिशि बोलैं अजब छटा लहराती॥
जगमगाति अति श्याम गात पर जरतारिन को जामा।
ताके कोर कोर चहुंओरन जड़े रतन मणि ग्रामा॥
पीत सुफेटा सुछवि समेटा कमर लपेटा राजें।
नवल पटूकौ करन लटूकौ कांधे पटका भाजे॥
मुनि मय कंकन सुखप्रद कन बंकन कर बिच बांधे।
जनु पुर जुवतिन मन जीतन कौ जन्त्र बसीकर सांधे॥
दोहा—बरनि सकैं को राम को, अनुपम दूलह भेष।
जेहि लखि सिव सनकादि को, रहत न तनहि सरेष॥
इमि सजि अनुज सहित रघुनन्दन चारौ राजदुलारे।
बड़े उमंगन चढ़े तुरंगन अंगन बसन संभारे॥
जे रघुवंशी कुंवर लाड़िले प्रभु कहं प्राण पियारे।
चढ़ि तुरंग संग तेउ गमने राम रंग मतवारे॥
बोले चोपदार लैं नामन बिरदावली अलापैं।
चञ्चल चमर चले दुहुं दिशि ते छत्र सखा सिर ढांपैं॥
रामवाम दिशि श्री लक्ष्मीनिधि सखन सहित तेउ सो हैं।
चञ्चल वागे किये तुरिन को बातैं करत हंसो हैं॥
जगबन्दन जेहि नाम जाहिरी रघुनन्दन को बाजी।
ताको गुन छवि कहं लगि बरनौं जाहि होत मन साजी॥

भूषित भूषण अग अदूषण हय लखि लाजैं।
चोटिन तनियां गुर्थी सुमनियां पगु पैजनियां बाजें॥
जड़ित जवाहिर जीन जड़ाका जरबोला अति सोहै।
पूजि जटाकी छटा कहै को कामलता मन मोहै॥
ललित लगाम दाम बहु केरी अंकित नाम बिराजें।
सुछबि उमंगि झुकी त्रिभंगी मणिन अलंगी छाजैं॥
जित रुख पावै तित पहुंचावें छन आवैं छन जावैं।
जिमि जिमि थमि थमि थिरकि भूमि पर गति पगतिन दरसावैं॥
खीनी खट पानी खुरथालैं बंधीं नवीनी नालैं।
लेत ऊतालें सिंह उछालें करें समुद्र इक फालैं॥
धावत पवन न पावत पीछू गरुड़हु गर्भ गंवावें।
रघुनन्दन को बाजि लाड़िला अनुपम कला दिखावैं॥
नाम समुद मद देत जनन को जापर भरत बिराजें।
रघुनन्दन के दहिने दिसि जो चलत चपल गति साजैं॥
रोकत बागे अति रिसि लागे गरवित फुरकन लागैं।
झमक झमाकी लैगति बांकी दै झांकी सुख पागैं॥
कहुं नभ जीवन सुरन झंझावै कहुं महि मोद मचावें।
अवनीतें अरु आसमान लौं जनु सोपान बनावै॥
फांदत चंचल चारु चौकड़ी चपलाहू चख झापै।
भरत कुंवर को तुरंग रंगीलो बरनि जात कहु कापै॥
चम्पा नाम चाल चटकीली जेहि पर रिपुहन भाये।
सब समाज के आगे निरतै मोर कुरंग लजाये॥
जो कहुं नेकहुं हाथ उठावत कई हाथ उठ जातो।
बार बार चुचुकार दुलारत ताहू पै न जुड़ातो॥
लक्खी घोड़ा लखन लाल को बांको निकट चलाको।
उड़ि उड़ि जाय वायुमंडल को परत न पग महि ताको॥
तरफराय उड़ि जाय परत है लक्ष्मी निधि हयपाहीं।
उचित बिचारि हंसे रघुबंशी रामहि मृदु मुसुकाहीं॥
तोप तुपक जूटे जहं छूटै तहां जाय सो टूटै।
रण रस घूटे गौरिनि कूटै बीरन में यश लूटै॥

फुलझरियासी झरत धरत डग करत अनेक तमासो ।
ढुरकन मुरकन थरकन थिरकन बरनि जाय कहु कासो ॥
तकि तुरंग को चंचलताई लषन कि देखि चढ़ाई ।
निमिबंसी रघुबंसी सिगरे ठगि से रहे बिकाई ॥
राम आदि जे कुंवर लाड़िले तेउ लखि भरे उछा हैं ।
रीझि रीझि तहं लषन लाल का बारहिं बार सरा हैं ॥
झग मग होत विलास बिबिध बिध बिपुल बाजने बाजे ।
सुनत नकीब पुकार नगर तिय कढ़ि बैठी दरवाजे ॥
कोउ तिय निरखि बदन की महिमा अति सुखमहं सो पागी ।
भरी सनेह देह सुधि भूली राम रूप अनुरागी ॥
कोउ घूंघट पट खोल सुन्दरी मणि मुंदरी लै पानी ।
देखत दूलह रूप राम को आनन्द सिन्धु समानी ॥

दोहा—कोउ सूरति लखि सांवरी, तोरति तृण सुखपाग ।
मधुरी मूरति में पगी, निज मूरति सुख त्याग ॥

कोउ रघुनन्दन छवि बिलोकि के बोली सुनु सखि बयना ।
राजकुंवर ये करन कलेउ जात जनक के अयना ॥
इनकौ श्रीनिधि गये लिवाई आये चारिहु बेटा ।
रंग भाने रघुबंशी छैला दशरथ राज दुल्हेटा ॥
धनि यह भाग्य हमारी प्यारी निज भरि नैन निहारे ।
नतु दरशन दुर्लभ दूलह के रविकुल प्राण पियारे ॥
भाग सोहाग लाज भल पायो श्री मिथिलेस की बेटी ।
सुन्दर श्याम माधुरी मूरति निज निज भुज भर भेटी ॥
बोली अपर सखी सुनु सजनी भली बात बनि आई ।
हमहुं चलैं अब जनक महल को हंसिये इन्हे हंसाई ॥
इमि मृदु बातें करत परस्पर भईं प्रेम बस बामा ।
सुनत जात मुसुकात अनुज युत कृपासिंधु श्रीरामा ॥
तुरंग नचावत मन छबि छावत बाजत बिपुल नगारे ।
चोपदार जागरे अलापत जनक नगर पगु धारे ॥
द्वार समीप देखि अति सुन्दर मनमय चौक संवारे ।
राजकुंवर रघुबंसिन के तहं ठाढ़ भये मतवारे ॥

उतर जाय लहि सिया मातुकी नगर सुहासिनि नारी।
कंचन कलस सजे सिर ऊपर पल्लव दीप संवारा॥
गावत मंगल गीत मनोहर कर ले कंचन थारी।
परछन हेत चला रघुवर को बहु आरती संवारी॥
जाय समीप निहारि राम छवि दृग आनन्द जल बाढ़ी।
छकित रहीं बर बदन बिलोकत चकित रहीं तहं ठाढ़ी॥
राम रूप रंग गईं रङ्गीली लखि दूलह सुख सारा।
तन मन रह्यो सरेख न काहू कर मंगलचारा॥
प्रेम पयोधि मगन सब प्यारो धरि पुनि धीरज भारी।
परछन अली भली विधि कीन्हीं रोकि बिलोचनबारी॥
लक्ष्मी निधि तब उतरि तुरंगते चारिउ कुंअर उतारे।
पानि पकरि रघुनन्दन जी को भीतर महल सिधारे॥
द्वीप द्वीप के जहं महीप सब जनक समीप बिराजे।
बैठे सभा सकल निमिवंशी सुत अंसी इव छाजे॥
रघुनन्दन तहं अनुज सखन जुत सादर जाय जुहारे।
देखत उठे सकल निमिबंसी जनक निकट बैठारे॥
कर गजरा कजरा दृग में सेहरा शुत मौर बिराजी।
दूलह बेष बिलोकि राम को भई सभा सब राजी॥
तहं कर कछु दरबार जनक ढिंग दशरथ राजदुलारे।
लैके राय रजाय नाय सिर सासु समीप सिधारे॥
जहं पिक बयनी सब सुख ऐनी बैठी सुनयना रानी।
इन्द्रानी को कौन चलावे लखि रति रूप लुभानी॥
चन्द्रमुखी चहुंओर बिराजे कोउ कर चमर चलावे।
कोउ सखि देखि राम की शोभा आरति मंगल गावे॥
तेहि छिन तहां गये रघुनन्दन मन फंदन वर वेषा।
देखत उठीं सकल रनवासें रह्यो न तनुहिं सरेखा॥
करि आरती वारि मणि भूषण सादर पांव पखारे।
चारि रंग के चारि सिंहासन चारहु बर बैठारे॥
लखि छवि ऐना सासु सुनैना नैना पलक तजैं ना।
भूलो चना बोलि सकै ना कहत बने ना बैना॥

राम रूप रंगी रही रङ्गीली आंसू बहि दृग जाहीं।
ताके जाके रही तनक नहिं डोलै मन मुद माहीं॥
इमि तहं दसा बिलोकि सासु की राम गुनत मन माहीं।
काह भयो यह आजु रानि को पूछत मैं सकुचाहीं॥
चतुर सखी चित चरित राम सों बोली मधुरी बानी।
यह तुम्हार गुन हैं सब लालन और न कछु उर आनी॥
सुनत बचन यह तुरत धीर धरि जगी सुनैना रानी।
बार बार बहु लीन बलैंया चूमि कपोलन पानी॥
माधुरि मूरति सांवलि सूरति तकि तृन तोरति रानी।
रीझि रीझि तहं राम रूप पे बिनहीं मोल बिकानी॥
पुनि करजोरि राम सों रानी बोली अति मृदुबानी।
उठहु लाल अब करहु कलेऊ जो जो रुचि हिय मानी॥
यह सुनि सखन समेत उठे तहं चारिहु राजदुलारे।
भूरि भाग्य अनुराग सुनैना निज कर पांय पखारे॥
रचना अधिक पदिक के पीढ़न बैठारे सब भाई।
कञ्चन थारी मृदुल सुहारी परसी विविध मिठाई॥
रुचि अनुरूप भूप सुत जेंवत पवन डुलावै सासू।
बूझि बूझि रुचि व्यंजन परसें बरनि न जाय हुलासू॥
स्वाद सराहि पाय पुनि अंचये सखियन पान खवाये।
बैठे पहिरि पोसाक सखन युत विविध सुगन्ध लगाये॥
दोहा—राज अयन सब चयन तस, राजत राजकुमार।
जिनको हास विलास लखि, लाजहिं लाखन मार॥
तेहि अवसर सुधि पाय सखी मुख लक्ष्मी निधि की नारी।
नाम सिद्धि पर सिद्धि जासु गुन रूप सील उजियारी॥
भाग सुहाग भरी सुठि सुन्दरि बन यौवन मतवारी।
रसिकन रीति प्रीति परबीनी रतिहिं लजावनहारी॥
अति गुनगान निधान रूप की सब विधि सुभगसयानी।
लक्ष्मीनिधि की प्रानपियारी निमि कुल की महारानी॥
अलबेली सरहज रघुबर की बड़ी सनेह सिंगारी।
प्रीतम प्रीति निबाहनहारी राम रूप रिझवारी॥

चञ्चल चपल चहुंदिशि चितवत देखन को अतुराई।
भरी उमंग संग सखियन ले तुरत राम ढिक आई॥
बदन चन्द अरविन्द लिये कर बिहंसत मंदर सो हैं।
रामकुंवर कर पकड़ि लाड़िली बोलीं तकि तिरछो हैं॥
चित के चोर किशोर भूप के बड़े चोर तुम प्यारे।
सुरति हमारि भुलाय सांवरे सासु समीप सिधारे॥
उलटी बात कहौ जानि प्यारी आपन दोष दुराई।
तुमहीं रहिउ छिपाय छबीली सुनत हमारि अवाई॥
हम आए तुम महलन भीतर तुमहिं न परयो जनाई।
भलो सदन तुमरी है प्यारी जहं सब जाइ समाई॥
सुनत राम के बचन लाड़ली बोली मृदु मुसुकाई।
तुमरे घर की रीति लालजी इत नहिं चलै चलाई॥
सासु सुनयना के समीप महं देत जवाब बनैना।
पानि पकरि रघुनन्दनजी को गइ लेवाय निज अयना॥
चारि सिंहासन दे तहं आसन भरी हुलासन प्यारी।
बारहिं बार निहारि बदन छबि बहु आरती उतारी॥
मेलि सुकराठ मालती माला बसननि अतर लगायो।
अञ्चल सों मुख पोछि राम को निजकर पान खवायो॥
जहं रति रम्भा सरिस सुन्दरी बैठी किये सिंगारैं।
कोउ कुसुमन की करनफूल रचि कोउ कलंगी कोउ हारैं॥
ललित लवंग कपूर संग धरि कोउ सखि पान लगावैं।
कोउ कर पोकदान लिये ठाढ़ीं कोउ सखी चमर ढुरावैं॥
कोउ जल शीतल भरे सुराही कोउ दर्शन दरसावैं।
निज निज साज सजे सब प्यारी रघुबर सन्मुख भावैं॥
कोउ जल तुरही ताल तमूरा कोउ करताल बजावैं।
कोउ सितार ले तार तार प्रति गूढ़ गतिन दरसावैं॥
कोउ उपंग मुरचंग मिलावैं दै मृदंग मुख थापैं।
कोउ लै बीन नवीन सुरन ते मनहुं बसीकर जापैं॥
कोउ मृगनैनी कोकिल बैनी पञ्चम राग अलापैं।
परत कान में मधुर तान निज बिरहिन के जिय कापैं॥
इमि अभिराम धाम शोभा लखि रामकुंवर अनुरागे।

बातै करत सिद्धि सरहज सों परम प्रेम रस पागे॥
जे निमिराज नेवत सुनि आई कोटिन राजकुमारी।
राम मिलन की बड़ी लालसा कहि न सकैं सुकुमारी॥
तिन यह सुन्यो कि सिद्धि सदन में आये चारिहु भाई।
तुरनहिं तहं पहुंचीं सब प्यारी जानि समय सुखदाई॥
देखन राजकुंवार सब आईं राम दरश की प्यासी।
अति सम्मान कियो सबही को सिद्धि सदन सुखरासी॥
राम सुछवि देखन तें लागीं दृग आनन्द जल बाढ़े।
चख झुकि परे रूप सागर में कढ़हिं नहीं अब काढ़े॥
मणिन मोर पर मोतिन कलंगी अलबेली अति सो हैं।
राजतियन को कौन चलै हैं मुनियन को मन मो हैं॥
चिक्कन चिलकदार चुनवारी अलकैं मुख पर छूटीं।
जोहत जहर चढ़त जुवतिन को जड़ी न लागत बूटी॥
लखि छबि बरको श्याम सुन्दर की भईं मीन सुखसर की।
तरकी तनी कचुकी करकी दरकी चूरी करकी॥
दोहा—मन लोभा शोभा निरखि, भईं बिबस सुकुरारि।
चकित छकित सब रह गईं, तनमन दसा बिसारि॥
जे तिय मान अनूपरूप निज रही स्वरूप गुमानी।
ते लखि राम बदन की सुखमा बिनहीं मोल बिकानी॥
अति सुकुमारी राजकुमारी सिद्धि सहित अनुरागीं।
तहं प्यारी गारी रघुबर को देन दिवावन लागीं॥
एक सखी कह सुनहु लालजी यह स्वरूप कहं पायो।
कान न सुन्यो काम अति सुन्दर की तुमको सोइ जायो॥
बोली सिद्धि सुनहु रघुनन्दन तुम हमार ननदोई।
एक बात तुमसों हम पूछैं लाल न राखहु गोई॥
होत ब्याह सम्बन्ध सबन को अपने जातिहि माहीं।
निज बाहनी सृङ्गी ऋषि को तुम कैसे दियो विवाहीं॥
की उनको मुनीस ले भाग्यो की बेई संग लागीं।
एती बात बतावहु लालन तुम रघुवंश अदागीं॥
लषन कह्यो यह सुनहु लाड़ली जेहि बिधि जहं लिखि दीना।
तहं संयोग होत हैं ताको ब्याह तो कर्म अधीना॥

कहं हम राजकुंवर रघुवंशी कहं विदेह बैरागी।
भयो हमार ब्याह तुम्हरे घर विधिगति गनै को भागी॥
आरो एक हाल उर आवै अचरज है सब काहू।
तुम तो हौ सिद्धि वे लक्ष्मीनिधि नारि नारि भो ब्याहू॥
एक सखी कह सुनहुं लालजी तुमहिं सकहि को जीती।
जाहिर अहै सकल जग माहीं तुम्हरे घर की रीती॥
अति उदार करतूतिदार सब अवधपुरी की बामा।
खीर खाय पैदा सुत करतीं पति कर कछु नहिं कामा॥
सखी बचन सुनि तब रघुनन्दन बोले मृदु मुसुकाते।
आपनि चाल छिपावहु प्यारी कहहुं आनकी बाते॥
कोउ नहिं जनमें मातु पिता बिन बंधो वेद की नीती।
तुम्हरे तौ महिते सब उपजैं अस हमरे नहिं रीती॥
बोली चन्द्रकला तेहि अवसर परम चतुर सुकुमारी।
सिद्धि कुंवरि की लहुरी भगिनी लक्ष्मीनिधि की सारी॥
लरिकाईं ते रह्यो लालजी तुम तपसिन संग माही।
ये छल छन्द फन्द कहं पाये सत्य कहो हम पाहीं॥
की मुनि नारिन के संग सीखे की निज भगिनी पासें।
खाटो मीठो स्वाद लालजी बिन चाखे नहिं भासें॥
बोले भरत भली कह सजनी तुमहुं तो अबै कुमारी।
बरनहुं पुरुष संग की बातें सो कहं सीखेहु प्यारी॥
रहे मुनिन संग ज्ञान सिखन को सो सब सुने सुनाये।
कामिनि काम कला अब सीखन हम तुम्हरे ढिग आये॥
सिद्धि कह्यो तब सुनह भरतजी ऐसी तुम न बखानौ।
तुमरी तौ गिनती साधुन में लोक बात का जानौ॥
भरत कह्यो तुम सांचि कहति हौ हम साधू परकाजी।
ऐसी सेवा करौं कामिनी जाते होय मन राजी॥
आये अयन अपूरब योगी अस निज मन गुनी लीजै।
अधर सुधारस को दे भोजन अतिथी पूजन कीजै॥
एक सखी कह सुनहुं सबै मिलि इनकी एक बड़ाई।
ऋषि मख राखन गये कुंवर ये तह अस सुधि पाई॥
इनको सुन्दर देखि काम बस त्रिया ताड़का धाई।
सो करतूति न भई लालसों मारेहु तेहि खिसिआई॥

बोले रिपुहन सुनहु भामिनी नाहक दोष न दीजै।
जो करतूति बनी नहिं उनते सो हमसे भरि लीजै॥
बिन जाने करतूति सबन को तुम्हरे घर भो ब्याहू।
सोउ पछितावन रहे पियारी अब करि लेहु समाहू॥
जाके हित तुम रोष बढ़ावहु सो मति करहु उपाई।
वैसिनी सेवा में तुम्हरे हम हाजिर चारिउ भाई॥
सुनि बानी रिपुदमन लाल की बोली कोउ सुकुमारी।
कहं पाई एतीं चतुराई कहिये लाल बिचारी॥
की कहुं मिली नारि गुनआगरि का गनिकन संग कीनो।
तीनों भाइन ते तुमरे महं लखियत चिन्ह नवीनो॥
रिपुहन कह भल कह्यो भामिनी भेदिहि भेदहिं जानैं।
गनिया नारिन हूं ते सौंगुन तुम्हैं अधिक हम मानैं॥
हमरो तुम्हरो चिन्ह लाड़िला एकै भांति लखाई।
ताते सखी हमारि तुम्हारी चाही अवसि सगाई॥
सुनि नव उचित युवित की बातें बोली सिधि सुकुमारी।
सुनिये रसिकराय रघुनन्दन आनंदकन्द बिहारी॥
अति अभिराम कामहू मोहत मूरति देखि तुम्हारी।
कैसे बची होयंगी तुमसे अवध पुरी की नारी॥
यों कहि रही चुपाय सुन्दरी सिद्धि कुंवरि सुख अयना।
ताको हाथ पकरि रघुनन्दन बोले अति मृदु बयना॥

दोहा—जस मर्यादा जगत की, बांधि दियो करतार।
राजा रंक यती सती, करत सोई व्यवहार॥

अनुचित उचित विचार लोग सब तहं तस राखत भाऊ।
तुम तो अपने अस जानति हो सबही केर सुभाऊ॥
यह सुनि भरत लषण रिपुसूदन हंसे सकल दें तारी।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी तेउ अति भईं सुखारी॥
यहि विधि हंसि हंसाय रघुबंसी दे दिवाय मृदुगारी।
नाना भांति मनोरथ मन के लगीं करन सब प्यारी॥
कोउ सखि राम समीप जायके कहत लगी कछु कानैं।
कमल कपोल परसकैं प्यारी जन्म सुफल करि मानैं॥
कोइ निज कोमल कमल करनते चरण कमल प्रभु चापैं।

बार बार हिय लाय लाड़िली दूर करैं तन तापैं ॥
रसिक सिरोमणि श्रीरघुनन्दन नवल नेह अभिलाखी।
जस जाके हिय रही लालसा तस तेहिकी रुचि राखी ॥
रघुनन्दन तब कह्यो सिद्धिसो जो तुम देहु निदेसू।
तौ अब हम गमनें जनवासे जहं श्री अवध नरेसू ॥
सुनि यह बानी राजकुंवर को कांपि उठी उर आली।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी बोलीं बिरह बिहाली ॥
नेह बढ़ाय छकाय रूपरस आपु अवध जब जै हैं।
हम विरहिन के प्राण लाड़िले कहौ कौन विधि रहि हैं ॥
सुनि इमि आरति बैन तियन के तब करुनारस साने।
कोमलचित कृपाल रघुनन्दन प्रीति रीति भलजाने ॥
बोले बचन भक्तभय भञ्जन सुनहु तियहु सब कोई।
अस मैं कहौं सुभाय आपना तुम्हैं न राखहुं गोई ॥
शिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक इतने और न भारी।
तिनहुं ते तुम अधिक पियारी सुनु सिधि राजकुमारी ॥
जो कोइ प्रीति करैं मोरे पर होय सुजान अजानौं।
प्राण समान सदा तेहि राखौं औगुन एक न मानौं ॥
जिन जिन प्रेमिन केरि जगत में सुनियतु बड़ी बड़ाई।
तिन तिन में विचारि जो देखो सब में एक खुटाई ॥
कर्म धर्म अरु धीर बीरता जोग सिद्धि चतुराई।
ज्ञान ध्यान विज्ञान सुजनता राजनीति निपुनाई ॥
इतने जीति सकै नहिं मोहीं कोटिन कर उपाई।
हारि जाहुं प्रेमी प्रानी ते तहां न मोर बसाई ॥
तुमतौ सब हौ प्रेम की मूरति सूरति की बलिहारी।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी मोहिं प्रानहुते प्यारी ॥
तुम्हारे हिय अभिलाष आजु जो सो सब भांति पुजैहौं।
लौकिकराज बचाय लाड़िली तुमसे बिलग न ह्वैहौं ॥
हम सब भांति तुम्हार सांवली तुम सब भांति हमारी।
सत्य सत्य ये सत्य वचन मम मानहु राजकुमारी ॥
दोहा—रघुनन्दन के वचन सुनि, खुलिगे कपट किवार।
बढ्यो प्रेम सब त्रियन के, तनक न तनहि संभार ॥

पुनि धरि धीरज अली भली विधि जोरि पंकरुह पानी।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी बोलीं अति मृदुबानी॥
धन्य भाग्य हमरो रघुनन्दन हमते कोउ बड़ नाहीं।
बूड़त रहौं जगत सागर में राखि लीन्ह गहि बाहीं॥
हम नारी सब भांति अनारी किये प्रीति मुदमोई।
राजकुमार रावरे के सम कीन्ह कृपा नहिं कोई॥
प्रति उपकार होत नहिं हमसे जस तुम कीन्हेउ प्यारे।
चन्द्र समान होहि नहिं कबहूं जुरहिं हजारन तारे॥
जहं जहं जान करम बस हमको जन्म विधाता देही।
तहं तहं रसिकराय रघुनन्दन तुमहीं मिलेहु सनेही॥
बहुविधि कोटिन करैं जातना या तन छिन छिन छूटै।
हमरी तुमरी लगन लाड़िले कौनहु जन्म न टूटै॥
सुनि बानी करुनारस सानी रघुबर अन्तरजामी।
सनमान्यौ सब राजकुमारिनी कहि कहि कोमल बानी॥
सबसों बिदा मांगि रघुनन्दन अनुज सहित पगुधारे।
निकसे मानहुं सिद्धि महलते चारुचन्द्र छबिवारे॥
राहिनि पान खवावत साथहिं चली सिद्धि सुख ऐना।
आये राजमहल महं सिगरे जहं श्रीमातु सुनैना॥
चरण प्रणाम कीन्ह रघुनन्दन जोरि सरोरुह पानी।
बिदाहेतु पुनि वचन सुनाये कहि अति कोमल बानी॥
सुनि ये बैना सासु सुनैना भरे प्रेम जल नैना।
रहौ कि जाहु न कछू कहि आवै भूलि गई सब चैना॥
पुनि धरि धीर अनेक अभूषण जे बड़ मोल के जानी।
अनुज सखनयुत राजकुंवर का दीन्ह सुनेना रानी॥
सबसन बिदा मांगि रघुनन्दन चले जनक ढिग आये।
जथा योग करि मान बड़ाई बहुविधि आनन्द छाये॥

दोहा—अस सब कहं आनन्द दै, गये अवध नृप पास।
कथा सुनाई नृपहिं सब, सुनि अति भयो हुलास॥

॥ इति श्री रामकलेवा समाप्त ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्री जानकी विल्लभो विजयते

श्रीरामचरित-मानस

रामायण

प्रथम सोपान

बालकाण्ड

मङ्गलाचरण

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १ ॥

अक्षरों के अर्थसमूहों के, रसों के, और छन्दों के और मङ्गलों के करने वाले दोनों सरस्वती और गणेशजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यांविनान पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥ २ ॥

पार्वती और महादेवजी को मैं प्रणाम करता हूं जिन दोनों के बिना सिद्ध लोग अपने अन्तःकरण में ईश्वर को नहीं देख पाते हैं ॥ २ ॥

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥

ज्ञानमय, सनातन, सदाशिवरूप गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूं, जिनके आश्रित टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दना किया जाता है ॥ ३ ॥

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥ ४ ॥

सीतारामजी के गुणसमूहरूप पवित्र वन में विहारकरने वाले परम पवित्र और बड़े ज्ञानी श्री वाल्मीकिजी और हनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४ ॥

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ ५ ॥

उत्पत्ति, पालन, प्रलय करने वाली, क्लेशों को हरने वाली, सम्पूर्ण कल्याणदायिनी श्री रामचन्द्रजी की प्यारी सीताजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हिः भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहंतमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥ ६॥

जिनकी माया के वश में सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मा आदि देवता और असुर हैं। जिनके सत्य से यह नाशवान् जगत् रस्सी में सर्प के भ्रम के समान सत्य सा प्रतीत होता है, जिनके केवल चरण ही संसार से पार होने की इच्छा वालों को नौका रूप हैं, जो सब कारणों से परे हैं, जिनका नाम राम है, जो ईश्वर हैं, विष्णुस्वरूप हैं, तिनको मैं प्रणाम करता हूं॥ ६॥

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥ ७॥

अनेक पुराण वेद और शास्त्रों की जो सम्मति रामायण में कही है, वही अन्य ग्रन्थों से भी सार लेकर अपने अन्तःकरण के सुख के अर्थ तुलसीदासजी श्रीरघुनाथजी की कथा को बहुत सुन्दर भाषा प्रबन्ध में विस्तार करते हैं॥ ७॥

सो०—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥ १॥

जिनके स्मरणमात्र से सिद्धि होती है, जिनका हाथी के समान सुन्दर मुख है, जो बुद्धि समूह और उत्तम गुणी स्थान हैं, सो श्रीगणेशजी हम पर कृपा करो॥ १॥

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपां सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥ २॥

जिसकी कृपा से गूंगा वक्ता हो जाता है और लंगड़ा अति दुर्गम पर्वत पर चढ़ जाता है, वह कलिकाल पापों का भस्म करने वाला परम दयालु ईश्वर हम पर दया करे॥ २॥

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन॥ ३॥

नीलकमल के समान जो श्यामवर्ण हैं, और नवीन लाल कमल के समान जिनके विशाल नेत्र हैं, जो सदैव क्षीर सागर में शयन करते हैं, वे विष्णु भगवान् नारायण हमारे हृदय में स्थान करो॥ ३॥

कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन॥ ४॥

कुंद फूल और चन्द्रमा के समान उज्जवल शरीर वाले, पार्वती के संग विहार करने वाले दया के स्थान, जिनका दीनों पर स्नेह है, सो कामदेव के नाश करने वाले शिवजी हम पर दया करो॥ ४॥

बंदउं गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ॥ ५ ॥

गुरुदेव के चरण कमलों को प्रणाम करता हूं जो दया के समुद्र हैं और मनुष्य रूप धारण किये साक्षात् हरि भगवान् हैं, जिन गुरुदेव जी का वचन अधिक अज्ञान के अंधकार के ढेर को दूर करने के निमित्त सूर्य की किरणों का समूह है ॥ ५ ॥

चौ०–बंदउं गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

मैं गुरुदेव के चरण कमलों की रज को प्रणाम करता हूं, जो सुन्दर रुचि है, सुगन्धि है, प्रीति है, सुन्दर रस है। गुरुदेव के चरण कमल की रज, जो संपूर्ण संसार रूप रोग के परिवार का नाश करने के निमित्त संजीवन जड़ी का सुन्दर चूर्ण है।

सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएं तिलक गुन गन बस करनी॥

वही गुरुचरणरज पुण्यरूप शिवजी के शरीर की निर्मल विभूति है और सुन्दर सुमङ्गल और आनन्द को उत्पन्न करने वाली है। भक्तजनों के मनरूप सुन्दर दर्पण के मैल को दूर करने वाली है, इसका तिलक लगावे तो यह रज सम्पूर्ण गुणों को वश में करती है।

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियं होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥

श्रीगुरुदेवजी के चरणों के नखों की मणियों के समूह के समान ज्योति का स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि हो जाती है, उसके बड़े भाग्य हैं जिसके हृदय में गुरुचरणरूप सूर्य का प्रकाश होता है। उस हृदय का अज्ञानरूपी अन्धकार तुरन्त नष्ट हो जाता है।

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहं जो जेहि खानिक॥

हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं, और दुःख दूर होते हैं। श्रीरामचन्द्रजी के चरित्ररूप मणि और माणिक जो जहां जिस खाने में गुप्त और प्रगट हैं वे सब दीखने लगते हैं।

दो०–जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥ १ ॥

जैसे सुअञ्जन अर्थात् मंत्रसिद्ध लोकांजन को नेत्रों में लगाकर सुजान साधक और सिद्धजन पर्वत, वन और पृथ्वी अनेक स्थानों में नाना प्रकार के कौतुक घर बैठे ही देखते हैं ॥ १ ॥

चौ०–गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउं राम चरित भव मोचन॥

श्रीगुरुचरणरज कोमल और सुन्दर नयनामृत अञ्जन के समान है क्योंकि उससे दृष्टि के सब दोष दूर हो जाते हैं। अतएव हम भी उससे अपने ज्ञानरूपी नेत्र को निर्मल करके छुड़ाने वाला रामचरित वर्णन करते हैं।

बंदउं प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥

पहले ब्राह्मणों के चरणों को प्रणाम करता हूं कि जो अज्ञान से उत्पन्न हुये सब संदेहों को हरते हैं, श्रेष्ठजन सन्तसमाज सब गुणों की खानि हैं, उनको प्रेम से सुन्दर वाणी करके स्तुति द्वारा प्रणाम करता हूं।

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥

साधुओं का चरित्र उत्तम कपास के सदृश है, जैसे कपास फल रसरहित उज्जवल और गुणमय है। जो दुःख सहकर पराये छिद्र को छिपाता है, जिन्होंने जगत् में यश पाया है उनको मैं प्रणाम करता हूं।

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥

सत्य पुरुषों का समाज आनन्द मङ्गलरूप है मानो जगत् में चलता फिरता योग है।

राम भक्ति जहं सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी।

श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति श्रीगङ्गाजी की धारा है और ब्रह्मविचार का प्रकार सरस्वतीजी का प्रवाह है। विधिनिषेधमय, कर्मकाण्ड की कथा कलिकाल के पापों को हरने वाली सोई यमुना जी हैं।

हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा।

हरि कथा अर्थात् विष्णु और शिव भगवान् की जो कथा है सोई मिलकर बनी विराजमान है, जो सुनते ही सम्पूर्ण आनन्दमङ्गल को देने वाली है। अपने धर्म में अचल विश्वास सोई अक्षयवट है, ऐसा यह सुन्दर कर्म करने वाला सतसमाजरूपी तीर्थराज है।

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

यह साधु-समाज रूप प्रयाग सबको सब दिन सब देशों में सुलभ है आदर पूर्वक सेवन करने से क्लेश दूर हो जाता है। यह साधु समाजरूपी तीर्थराज एक अकथनीय अलौकिक तीर्थ है और इसका प्रभाव प्रकट है जो इसके निकट जाता है उसीको यह तुरंत फल देता है।

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥ २॥

इस सन्त-समाजरूप प्रयाग में जाकर तीर्थराज के उपदेशों को सुनते हैं, प्रसन्न मन से स्नान कर अर्थात् निदिध्यासन करते हैं तथा अति अनुराग को प्राप्त होते हैं वे इसी शरीर के विद्यमान रहते ही शरीर से चारों फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं॥ २॥

चौ०—मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥

स्नान करने का फल तुरंत देख लीजिए कि कौवा कोकिल हो जाता है और बगुला हंस। संत समाजरूप तीर्थराज को सुनकर कोई आश्चर्य नहीं करे क्योंकि सत्संगति की महिमा छिपी नहीं है।

बालमीक नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥

बाल्मीकि, नारद और अगस्त्यजी ने अपने-अपने मुख से अपनी होनी कही है। जलचर, थलचर और आकाशगामी नाना प्रकार के जो जड़ चेतन जीव जगत् में हैं।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहां जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुं बेद न ग्रान उपाऊ॥

वे बुद्धि, कीर्ति, गति, सम्पदा और भलाई जब जिस उपाय से जहां जिसने पाई है। सत्संग का प्रताप जानो, लोक और वेद में इससे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं है।

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

बिना सत्संग के ज्ञान नहीं होता, राम की कृपा बिना वह सत्संग अनायास प्राप्त नहीं हो सकता। सत्पुरुषों की संगति आनन्द मंगल की मूल है सोई सब साधन आदि फूलों का सिद्ध फल है।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन ग्रनुसरहीं॥

मूर्खजन सत्-संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस को छू कर लोहा कञ्चन हो जाता है। कदाचित् दैवयोग से सत्पुरुष कुसंगति में पड़ जाते हैं तो सर्प के मणि के समान अपना ही गुण करते हैं।

बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कविजन, पंडितजन और बानी 'सरस्वती' साधुओं की महिमा वर्णन करते सकुचाती है। वह महिमा मुझसे उसी प्रकार नहीं कही जा सकती जिस प्रकार कोई शाक बेचने वाला मणियों के गुणों को नहीं कह सकता।

दो०—बंदउं संत समान चित हित ग्रनहित नहिं कोइ।
ग्रंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥ ३॥

संतजनों का चित्त समान है और हित-अनहित जिनके कोई नहीं ऐसे समदर्शी सत्पुरुषों की वंदना करताहूं जैसे अञ्जलि में लिए हुए सुगंधित फूल दोनों हाथों को एक समान सुगंधित करता है॥ ३॥

संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु। ४॥

संसार की भलाई करने में संतजनों का मन, सदैव स्वच्छ रहता है, उनका स्वभाव और स्नेह जानकर मैं प्रार्थना करता हूं कि हे सत्पुरुषों! मुझ बालक की विनती सुनके कृपा करके राम के चरणों में प्रीति होने का मुझको वरदान दीजिये॥४॥

चौ०—बहुरि बंदि खल गन सतिभाएं। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएं॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिसाद बसेरें॥

अब मैं शुद्ध भाव से दुष्टों के समूह को प्रणाम करता हूं जो बिना प्रयोजन ही दाहिने से

बायें हो जाते हैं। दूसरे हित की हानि होने से दुष्टजन अपना लाभ समझते हैं, दूसरों के उजड़ जाने से प्रसन्न और बस जाने से दुखी होते हैं।

हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से ॥

विष्णु और शिवजी के यज्ञ-रूपी चन्द्रमा के ग्रहण करने को दुष्टजन राहु के समान हैं और ऐसे ही लोग पराया काम बिगाड़ने को सहसबाहु के समान योद्धा हैं।

जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी ॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा ॥

ऐसे ही दुर्जन पराये दोष हजार नेत्रों से देखते हैं और पराये हित रूपी घृत बिगाड़ने को जिनका मन अति मक्खी के समान है। दुर्जनों का तेज अग्नि के समान अति प्रचण्ड और क्रोध यमराज के समान अति दारुण है, पाप और अवगुण रूप धन के तो धनी साक्षात् कुबेर ही हैं।

उदय केत सम हित सब ही के। कुम्भकरन सम सोवत नीके ॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं ॥

जैसे केतुका तारा उदय होने से सबका अनहित होता है, ऐसे ही दुष्टों के उदय से सबका अनहित होता है, उनको कुम्भकरण के समान सोते रहना ही भला है। दुष्टजन पराये अकाजज अर्थ अपना शरीर तक त्याग कर देते हैं, जैसे पाला और ओले, खेती को मिटा कर स्वयं भी गल जाते हैं।

बंदउं खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा ॥
पुनि प्रनवउं पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना ॥

जैसे उत्कट रोष वाले शेष हजार मुख से पराये दोषों को बखानते हैं, ऐसे खलों को मैं प्रणाम करता हूं। फिर खलों को मैं महाराज पृथु के समान प्रणाम करता हूं जो महाराज पृथु के समान पराये दोष को दस हजार कानों से सुनते हैं।

बहुरि सक्र सम बिनवउं तेही। संतत सुरानीक हित जेही ॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा ॥

फिर मैं इन्द्र के समान उनकी विनय करता हूं जिन दुष्ट-जनों को मदिरा सदा प्यारी लगती है। जैसे इन्द्र को वज्र सदा प्रिय है, ऐसे ही दुष्टों को वचन रूपी वज्र अथवा कठोर वचन सदा प्यारा लगता है, और जो हजार नेत्रों से पराये दोष को देखते हैं।

दो०—उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति ॥ ५ ॥

खलों की यह रीति है, कि शत्रु और मित्र का हित सुनते ही जल जाते हैं अथवा ऐसे लोग उदासीन रहते हैं इनको जानु और दोनों हाथ जोड़कर प्रेम सहित विनती करता हूं ॥ ५ ॥

चौ०—मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥
बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुं कि कागा ॥

मैंने अपनी ओर से विनती करली है परवे भूल से भी अपनी ओर नहीं लावेंगे, कौवा को बड़े प्रेम के साथ खीर खिलाकर पालन करिये तोभी कौवा क्या कभी मांस न खाने वाला हो सकता है।

बंदउं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥

संत और असंतजन दोनों के चरणों की वन्दना करता हूं। दोनों दुःख देने वाले हैं दोनों में थोड़ा-सा अन्तर कहा है। एक संतजन बिछड़ते समय प्राण हर लेते हैं, और दूसरे असंतजन मिलते ही दारुण दुःख देते हैं।

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥

संत और असंत एक ही साथ जगत् में उत्पन्न होते हैं, परंतु जैसे कमल और जोंक में पृथक् गुण होते हैं, इसी प्रकार संत और असंत में गुण पृथक् २ होते जाते हैं। साधु अमृत समान है और असाधु मदिरा के समान है, किन्तु अमृत और मदिरा का जन्मदाता एक अथाह समुद्र है।

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोकबिभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

भले और बुरे अपनी-अपनी करतूत से सुयश और अपयश रूपी विभूति को पाते हैं। साधुजन अमृत, चन्द्रमा और गंगाजी के समान हैं और असंतजन विष अग्नि और कर्मनाशा नदी के समान कष्ट देने वाले हैं गुण अवगुण सब कोई जानते हैं पर जो जिसको अच्छा लगे उसको वही अच्छा है।

दो०—भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरतां गरल सराहिअ मीचु॥ ६ ॥

भले पुरुष भलाई और नीचजन बुराई से ही शोभा पाते हैं, जैसे अमृत अमर करने से और विष तत्काल मार डालने के कारण सराहा जाता है॥ ६॥

चौ०—खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥

दुष्टजन अवगुण को और साधुजन गुणों को ग्रहण करने वाले हैं। दोनों अवगुण और गुण के अपार अथाह समुद्र हैं। इसी से मैंने कुछ गुण और दोष कहे हैं, क्योंकि बिना पहचाने गुणों का संग्रह और दोषों का त्याग नहीं हो सकता।

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहि बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥

अच्छे और बुरे सब विधाता ने उत्पन्न किये हैं और उनके गुण दोष का निश्चय करके वेद ने उनको पृथक्-पृथक् कर दिया है। यह बात वेद, इतिहास और पुराण सब कहते हैं कि विधाता का प्रपंच गुण-अवगुण से मिला हुआ है।

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊंच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू॥

दुःख और सुख, पाप और पुण्य, दिन और रात, साधु और असाधु, सुजाति और कुजाति, दानव और देव, ऊंच और नीच, अमृत और संजीवन, विष औरमृत्यु।

माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥

माया और ब्रह्म, जीव और ईश्वर, लक्ष और अलक्ष, दरिद्र और राजा।

कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा॥

काशी और मगधदेश, गंगा और कर्मनासा, मारवाड़ और मालवादेश, ब्राह्मण और गौहिंसक म्लेच्छ, स्वर्ग-नरक प्रेम और वैराग्य ये सब दूध और जल के समान मिले हुए हैं, वेद-शास्त्र ने गुण दोष का विभाग कर दिया है।

दो०—जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गुहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥ ७॥

जड़ चेतन तथा गुण दोष सहित यह जगत् विधाता ने रचा है। सन्त हंस के समान गुण रूप दूध को ग्रहण करते हैं और विकार रूप जल को छोड़ देते हैं॥ ७॥

चौ०—अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता॥
काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं॥

जब विधाता इस प्रकार का ज्ञान दे तब दोषों को छोड़ कर गुणों में मन प्रीतियुक्त होता है। समय, स्वभाव और कर्म के प्रबल होने से सज्जन पुरुष भी माया के अधीन होकर भलाई करने में चूक जाते हैं।

सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥

सो हरि भक्तजन भूल को सुधार लेते हैं और दुःख दोष को दूरकर निर्मल यश देते हैं।

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥

दुष्टजन भी अच्छा संग पाकर अच्छा कर्म भले ही करें पर उनका मैला स्वभाव नहीं मिटता। जगत् में अच्छा स्वभाव बनाये हुए ठग भी हो तो उसके अच्छे स्वरूप को देखकर लोग उसका सत्कार करते हैं, वेष के प्रताप से ठग भी पूजे जाते हैं।

उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
किएहुं कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥

अन्त में कपट रूप प्रकट हो जाता है और अन्त तक निर्वाह नहीं होता जैसे कालनेमी रावण और राहू का बनावटी वेष प्रगट हो गया था। साधु पुरुष चाहे बुरा वेष बनाये रहे तो भी उनका सम्मान होता है जैसे जगत् में जामवन्त और हनुमान जी का हो रहा है।

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुं बेद बिदित सब काहू॥
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥

कुसंग में हानि और सुसंग से लाभ का होना संसार और वेद में प्रसिद्ध है। देखो जब धूलि पवन का संग करती है तब आकाश को चढ़ जाती है और जब नीचे बहने वाले जल का संग करती है तब कीच में मिल जाती है।

साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं॥

तोता और मैना साधुओं के घर में राम का स्मरण करते हैं और असाधुजनों के घर में गिन-गिन कर गालियां देते हैं।

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥

धुआं कुसङ्ग से कालिख हो जाता है और वह सुन्दर स्याही के रूप में पुराण लिखने के काम में आता है। जल वही है परन्तु अग्नि और वायु के संग में संसार को जीवन देने वाला बादल बन जाता है।

दो०—ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥ ८॥

सूर्य आदि ग्रह और औषध, जल, वायु, वस्त्र ये कुयोग और सुयोग को पाकर जगत् में कुवस्तु और सुवस्तु हो जाते हैं, इसको चतुर लोग समझते हैं॥ ८॥

सम प्रकास तम पाख दुहुं नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥ ९॥

महीने के दोनों पक्ष में प्रकाश और अंधकार समान ही होता है, फिर भी विधाता ने नाम में भेद किया है। एक पक्ष चन्द्रमा को बढ़ाने वाला और दूसरे को घटाने वाला समझ कर संसार में भलाई और बुराई दी है॥ ९॥

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउं सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥ १०॥

संसार में जितने जड़ और चेतन जीव हैं उन सबको राममय जानकर मैं सर्वदा दोनों हाथ जोड़ कर सबके चरण कमलों की वन्दना करता हूं॥ १०॥

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्व।
बंदउं किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व॥ ११॥

देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, पक्षी, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और निशाचर सबको मैं प्रणाम करता हूं। अब सब मुझ पर कृपा करो॥ ११॥

चौ०—आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

जीवों की चार खान हैं उनके चौरासी लाख प्रकार हैं। जाति वाले जीव अपने-अपने कर्मानुसार उत्पन्न होकर आकाश में, जल में, और पृथ्वी पर निवास करते हैं। जगत् को सीताराममय जानकर, अर्थात् अनन्य भाव से दोनों हाथ जोड़कर मैं प्रणाम करता हूं।

जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू॥

कृपा करके मुझको अपना दास जानकर सब मिल करके निष्कपट मुझ पर दया करो।

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउं सब पाहीं॥
करन चहउं रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥

अपनी बुद्धि का भरोसा मुझको नहीं है इस कारण सबसे विनती करता हूं। श्रीरामचन्द्रजी के गुणों की कथा वर्णन करना चाहता हूं। मेरी बुद्धि छोटी है और रामचरित अथाह है।

सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ॥
मति अति नीच ऊंचि रुचि आछी। चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी॥

काव्य के अनेक अङ्ग हैं, मुझको एक अङ्ग भी नहीं सूझता, क्योंकि मन महादरिद्री है और मनोरथ राजा है। मेरी बुद्धि तो बहुत नीच है और इच्छा बहुत ऊंची है। जैसे जगत में छांछ तो मिले नहीं और मन अमृत चाहता है तो काम कैसे बन सकता है।

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥
जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥

मेरी ढिठाई को सज्जन क्षमा करेंगे और बाल बचन के समान जानकर मन लगाके मेरे बचन सुनेंगे। जिस प्रकार बालक तोतली बातें कहता है और माता-पिता प्रसन्न होकर सुनते हैं।

हंसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषन भूषनधारी॥

दुष्ट जन जो टेढ़े और खोटे विचार वाले हैं वे मेरी ढिठाई पर हंसेंगे, क्योंकि वे दूसरे के दोषरूपी भूषण को धारण करने वाले हैं।

निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहिं॥

अपना कवित्त किसको अच्छा नहीं लगता है रसीला हो अथवा फीका हो। जो दूसरे के कवित्त को सुनकर प्रसन्न होते हैं वे पुरुष श्रेष्ठ हैं, ऐसे पुरुष जगत् में बहुत नहीं हैं।

जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

जगत् में तड़ाग और नदी के समान पुरुष बहुत हैं जो जल पाकर अपनी बाढ़ से बढ़ते हैं। सज्जन पुण्यात्मा लोग जगत् में बिरले ही हैं जो पूरे चन्द्रमा को देखकर बढ़ते हैं।

दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़ करउं एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास॥

मेरा भाग्य तो बड़ा छोटा है परन्तु श्रीरामचरित वर्णन करने की अभिलाषा बड़ी है, यह जानकर एक बात पर मैं विश्वास करता हूं कि इस रामचरित्र को सुनकर साधु सुख पावेंगे और दुष्ट हंसी करेंगे।

चौ०—खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥
हंसहि बक दादुर चातकही। हंसहिं मलिन खल बिमल बतकही।

दुष्टों की हंसी से मेरा हित होगा, क्योंकि कौए कोकिल के कंठ को कठोर कहते हैं, हंस को बगुला और पपीहा को मेढक हंसता है वैसे ही मलिन मन वाले दुष्ट जन निर्मल बचन कहने वाले पर हंसते हैं।

कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहं सुखद हास रस एहू॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हंसिबे जोग हंसे नहिं खोरी॥

जो लोग कविताई का स्वाद नहीं जानते हैं और न रामचन्द्रजी के चरणाविन्द में प्रेम ही करते हैं उनको यह मेरा कथन हास्ययुक्त होकर सुख देने वाला होगा। एक तो भाषा में कहा हुआ रामचरित्र दूसरे मेरी भोली बुद्धि हँसने ही योग्य है। यदि कोई हँसे तो उसका कोई दोष भी नहीं है।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुं मधुर कथा रघुबर की॥

जिनकी प्रभु के चरणों में प्रीति नहीं और समझ भी अच्छी नहीं है, उनको तो यह कथा फीकी ही लगेगी। विष्णु और शिव भगवान् के चरणों में जिनकी प्रीति है और बुद्धि कुतर्क वाली नहीं है उनको श्रीरामचन्द्रजी की कथा अवश्य ही बहुत प्यारी लगेगी।

राम भगति भूषित जियं जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥
कबि न होउं नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥

श्री रामचन्द्रजी की भक्ति से अलंकृत मेरी रचना को अपने हृदय में जानकर संतजन सुन्दर वाणी से सराहना करते हुए सुनेंगे। मैं न कवि हूं और न बोलने में चतुर हूं, मैं तो सब कला और विद्या से रहित हूं।

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउं लिखि कागद कोरें॥

अक्षर अर्थ अनेक प्रकार के, काव्यालङ्कार अनेक प्रकार के छन्दों का प्रबन्ध। भाव भेद रसों के अपारभेद कविता में अनेक प्रकार के दोष, गुण, कविता में विवेक ये एक भी मुझमें नहीं हैं। अर्थात् एक बात का भी विचार मन में नहीं किया है, कोरे कागज पर लिखकर सत्य कहता हूं।

दो०—भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह कें बिमल बिबेक॥ १३॥

मेरी वाणी गुणों से रहित है केवल एक गुण है जो जगत् में विख्यात है सो विचार कर बुद्धिमान् जन जिनके निर्मल ज्ञान हैं मेरी वाणी को अवश्य सुनेंगे॥ १३॥

चौ०—एहि महं रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

इसमें श्री रामचन्द्र जी का नाम उदार है जो अत्यन्त पवित्र पुराण और वेदों का सार है। फिर कैसा है रामनाम कि मंगल का घर और अमंगल को हरने वाला, पार्वती सहित श्री शिवजी जिसको जपते हैं।

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भांति संवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥

जो कविता अनोखी हो और अच्छे कवि की बनाई हो, परन्तु जिसमें रामनाम न हो तो वह भी शोभा नहीं पाती। जैसे चन्द्रमा के समान मुख वाली सुन्दर स्त्री सब प्रकार के आभूषणों से भूषित की जाय परन्तु वस्त्रों के बिना शोभा नहीं पाती।

सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥

सब गुण रहित हो अर्थात् जिस वाणी में कविता का गुण भी न हो यदि उसमें राम का नाम और यश लिखा हुआ हो तो बुद्धिमान उसको आदर सहित कहते और सुनते हैं क्योंकि साधुजन भ्रमर के समान गुण ग्राही होते हैं।

जदपि कबित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥
सोइ भरोस मोरें मन आवा। केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा॥

यद्यपि कविताई का गुण भी नहीं है तथापि श्री रामचन्द्र जी का एक प्रताप इसमें प्रगट है। वही सहारा मेरे मन में आया है कि सत्सङ्ग से किसने बड़प्पन नहीं पाया।

धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जगमंगल करनी॥

धुआं भी अपना स्वभाविक कड़ुवापन छोड़कर अगर के सहवास से सुगन्धित हो जाता है। मेरी वर्णन की हुई वस्तु भद्दी है तो भी इसमें संसार का मंगल करने वाला राम कथा रूपी भली वस्तु का वर्णन किया गया है।

छंद–मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी॥
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री रघुनाथ जी की कथा मंगलकारिणी और कलि के पापों को हरने वाली है, और इस कविता रूपी नदी की गति श्री गंगाजी के मार्ग के समान टेढ़ी है। परन्तु श्री रामचन्द्रजी के सुन्दर यश के संग से यह कविता सुन्दर होकर अच्छे पुरुषों को मनभावनी होगी, जैसे मशान की भभूत शिवजी के अंग में लगकर स्मरण करने योग्य सुन्दर और पवित्र होती है।

दो०–प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग॥ १४॥

श्रीरामचन्द्र के यश के साथ मेरी वाणी सबको प्यारी लगेगी, यद्यपि चन्दन काठ है तथापि उसके काठ होने का विचार कौन करता है। चन्दन मानकर उसको अपने मस्तक पर धारण कर सब उसकी सराहना करते हैं॥ १४॥

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥ १५॥

काली गौ का भी दूध बहुत स्वच्छ अर्थात् श्वेतरंग वाला होता है। किन्तु गुणदायक जान कर लोग उसको पीते हैं। यद्यपि मेरी वाणी ग्रामवासियों की बोली अर्थात् गंवारू है तथापि सीता राम का यश वर्णन उसमें है ऐसा जानकर बुद्धिमान्-जन गावेंगे और सुनेंगे॥ १५॥

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥

मणि-मणिक-मुक्ता अर्थात् हाथी के मस्तक में उत्पन्न होने वाला मोती इनकी जैसी छवि है।

नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥

वैसी शोभा को ये अपने उत्पत्ति स्थान सर्प-पर्वत और हाथी के मस्तक में नहीं पाते हैं। राजा के मुकुट में और नये यौवन वाली स्त्री के शरीर पर वे ही बहुत शोभा पाते हैं। उसी प्रकार से सत्य कवियों के काव्य को विद्वान लोग कहते हैं कि वह उत्पन्न और स्थान में होते हैं और कीर्ति और स्थान में पाते हैं।

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाएं। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएं॥

भक्ति के कारण कवि के स्मरण करते ही ब्रह्मलोक को छोड़कर सरस्वती दौड़ी हुई चली आती हैं। रामचरित्र रूपी मानसरोवर में स्नान कराये बिना सरस्वती जी के आने का श्रम उपाय से भी नहीं जाता।

कबि कोबिद अस हृदयं बिचारी। गावहिं हरि जस कलि मल हारी॥
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥

विद्वान कवि लोग इस प्रकार हृदय में विचार कर कलिकाल के पापों को हरने वाले हरि के गुण को गाते हैं। हरि भक्ति रहित साधारण-जनों के गुणगान करने से सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती है।

हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥

बुद्धिमान जन कहते हैं कि कविजनों का हृदय समुद्र, बुद्धि, सीप और सरस्वती स्वाति नक्षत्र के तुल्य हैं। यदि सरस्वती रूपी स्वाती विचाररूपी सुन्दर जल की वर्षा करे तो कवित रूपी सुन्दर मुक्तामणि उत्पन्न होती है।

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं राम चरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥ १६॥

ऐसी दुर्लभ मुक्तामणि पाकर उचित है कि युक्ति से छेदकर फिर रामचरित्र रूपी सुन्दर धागे में पिरो कर माला बनावो, जिनको सज्जन पुरुष अपने निर्मल हृदय में धारण करें तो प्रेमरूपी उत्तम शोभा होती है॥ १६॥

चौ०—जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला॥
चलत कुपंथ बेद मग छांड़े। कपट कलेवर कलि मल भांड़े॥

जो इस कराल कलिकाल में जन्मे हैं उनका काम कौए का और भेष हंस के जैसा है जो वेदों के मार्ग को छोड़कर पाखण्ड मार्ग पर चलते हैं तथा जो कपट की ही मूर्ति और कलियुग के पापों के बर्तन हैं।

बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥
तिन्ह महं प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी॥

ठग राम के भक्त कहाते हैं जो कँचन, क्रोध और काम के दास हैं। उनमें भी जगत् में पहली रेखा मेरी है, धर्मध्वज बनकर पाखण्ड के धंधे का बोझ उठाने वालों को धिक्कार है।

जौं अपने अवगुन सब कहउं। बाढ़इ कथा पार नहिं लहउं॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुं जानिहहिं सयाने॥

जो मैं अपने सब अवगुण कहूं तो कथा बढ़ जाय और पार न पाऊं। इस कारण मैंने बहुत थोड़े में कहा है, चतुर लोग थोड़े में ही समझ जायें।

समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी।
एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि ते अधिक ते जड़ मति रंका॥

में जो अनेक प्रकार से विनती करता हूं इस मेरी विनती को समझकर और मेरी कथा सुनकर कोई मुझको दोष नहीं देगा। इतने पर भी संदेह करेंगे तो वे मुझसे भी अधिक मूर्ख और दरिद्री हैं।

कबि न होउं नहिं चतुर कहावउं। मति अनुरूप राम गुन गावउं॥
कहं रघुपति के चरित अपारा। कहं मति मोरि निरत संसारा॥

मैं कवि नहीं हूं न चतुर कहलाता हूं, अपनी बुद्धि के अनुसार रामगुण गान करता हूं। कहां तो श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र और कहां मेरी संसार में आसक्त मति।

जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथामन अति कदराई॥

जिस प्रचण्ड पवन के वेग में सुमेरु पर्वत उड़ जाते हैं उसके सामने रुई किस गिनती में है। श्रीरामचन्द्रजी की प्रभुता को अपार समझकर यह मेरा मन कथा करते बहुत डरता है।

दो०—सारद सेस महेस विधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥ १७॥

सरस्वती, शेष, महेश, ब्रह्म, वेद, शास्त्र और पुराण ये नेति नेति अर्थात् जिसका अन्त नहीं ऐसा कहकर जिसका गुण निरन्तर गान करते हैं॥ १७॥

चौ०—सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥
तहां बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भांति बहु भाषा॥

ऐसे प्रभु की प्रभुता सब कोई जानते हैं तो भी बिना कहे कोई नहीं रहा। तहां वेद ने ऐसा हेतु रक्खा है कि भजन का प्रभाव अनेक प्रकार से वर्णन किया है।

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिश्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

जो परमात्मा एक अद्वितीय, अनीह, अरूप और नाम रहित, अजन्मा अर्थात् माया रहित सतचित् आनन्दरूप है। जो सब में व्यापक विश्वरूप भगवान् है वही देह धारण कर अनेक चरित्र करता है।

सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू॥

वह परमात्मा परम दयालु केवल अपने भक्तों के हितार्थ अवतार धारण करता है जिस पर ममता और प्रीति है उस पर करुणा निधान ने क्रोध नहीं किया।

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥

गई वस्तु फेर लाने वाले गरीब निवाज हैं और सीधे स्वभाव बलवान् साहब रघुराज हैं। ऐसा बुधजन हरि भगवान् का यश इसी प्रकार समझकर वर्णन करते हैं और अपनी वाणी को पवित्र और सुफल करते हैं।

तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहऊं नाइ राम पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥

उसी बल पर मैं भी रघुनाथजी के गुणों को उनके चरणों में मस्तक नवाकर वर्णन करूंगा। हे भाईयों! बाल्मीकि आदि मुनियों ने पहले हरि की कीर्ति गाई है वही मार्ग मुझको भी सुगम होगा।

दो०—अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥ १८॥

जो बहुत बड़ी नदियां हैं उन पर जो राजा पुल बंधवा देते हैं तो उन पर चढ़कर बहुत छोटी चींटी भी बिना परिश्रम पार उतर जाती हैं॥ १८॥

चौ०—एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥

इसी प्रकार कहे हुए चरित के बल से मैं मन को दृढ़ करके रघुनाथजी की सुहावनी कथा वर्णन करूँगा व्यास आदि जो अनेक कवीश्वर हैं जिन्होंने आदर सहित हरि का चरित वर्णन किया है।

चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुं सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करहुं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥

उन सबके चरणारविंदों को नमस्कार करता हूं-सब मिलकर मेरे मनोरथ को पूरा करो। कलियुग के कवियों को प्रणाम करता हूं जिन्होंने रघुनाथजी के गुणों का वर्णन किया है।

जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें। प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें॥

और जो सामान्य कवि बड़े चतुर हैं जिन्होंने भाषा में हरि (भगवान्) का चरित्र वर्णन किया है ऐसे कवि जो हुए हैं तथा जो आगे होंगे उनको छल-कपट छोड़कर मैं प्रणाम करता हूं।

होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं॥

मुझ पर प्रसन्न होकर यह वरदान दो कि सत्पुरुषों के समाज में इस कविता का आदर हो। जिसके प्रबन्ध का आदर पंडितजन नहीं करते हैं उसकी रचना करने वाला कवि बालक के समान है।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अंदेसा॥

कीर्ति-कविताई और संपत्ति वही अच्छी होती है जिससे श्रीगंगाजी के समान सबका भला हो। श्री रामचन्द्रजी की कीर्ति बहुत उत्तम और मेरी कविता बहुत भद्दी है यह समझकर मुझको बड़ा असमंजस और अन्देशा है।

तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे॥
करहु अनुग्रह अस जियाजानी। विमलयशहिं अनुहरहि सुबानी॥

हे सत्पुरुषों! आप लोगों की कृपा से वह सब मुझको सुलभ होती है जैसे टाट यदि रेशम धागे से सीया जाय तो शोभायमान हो जाता है। ऐसा मेरा सङ्कल्प विकल्प अपने मन में जानकर कृपा करो कि जिससे मेरी वाणी निर्मल यश का वर्णन करने योग्य हो जाये।

दो०—सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥ १९॥

कविता सरल हो विमल कीर्ति वर्णन हो, तो विद्वान लोग उसका भी आदर करते हैं सुनकर शत्रु अपना स्वाभाविक बैर त्याग देते हैं और उसकी सराहना करते हैं ॥ १६ ॥

सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउं पुनि पुनि करउं निहोर ॥ २० ॥
कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल।
बालबिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु कृपाल ॥ २१ ॥

सो निर्मल मति के बिना यह बात नहीं होती मुझको बुद्धि का बल बहुत थोड़ा है इसी से मैं बारम्बार विनती करता हूं कि हे सत्पुरुषों ! मुझ पर कृपा करो ॥ २० ॥ श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र रूप मानसरोवर में शुद्ध स्वरूप हंसों की भांति जो विहार करते हैं वे कवि और पंडितजन मुझ बालक की विनती को सुनकर और मेरी सच्ची प्रीति को देखकर मेरे ऊपर दया करें ॥ २१ ॥

सो०—बंदउं मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित ॥ ६ ॥
बंदउ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुं खेद बरनत रघुबर बिसद जसु ॥ ७ ॥
बंदउं बिधि पद रेनु भव सागर जेहिं कीन्ह जहं।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी ॥ ८ ॥

श्री बाल्मीकि मुनि के चरणों को प्रणाम करता हूं जिन्होंने रामायण बनाई है। कोमलता सहित खरदूषण आदि राक्षस की कथा से युक्त है और सुन्दर व दोष रहित है ॥ ६ ॥

मैं चारों वेदों की वन्दना करता हूं जो संसार सागर से पार होने के लिए बड़ी नाव के समान हैं जिनको श्री रघुनाथजी के निर्मल यश का वर्णन करते स्वप्न में भी खेद नहीं होता ॥ ७ ॥

श्री ब्रह्माजी के चरणरज को प्रणाम करता हूं जिसने यह संसार सागर रचा है जिसमें संतजन तो अमृत चन्द्रमा और कामधेनु रूप दुष्टजन विष और बारुणीरूप प्रगट हुए हैं ॥ ८ ॥

दो०—बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहउं कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥ २० ॥

देवता-ब्राह्मण-पंडित और गुरु के चरणों को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं कि सब मिलकर प्रसन्न हो मेरा सुन्दर मनोरथ पूर्ण करो ॥ २२ ॥

चौ०—पुनि बंदउं सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका ॥

फिर मैं सरस्वती और गंगाजी को प्रणाम करता हूं दोनों पवित्र और मनोहर चरित्र वाली हैं दोनों में गंगाजी—स्नान और जलपान से पापों को हर लेती हैं और सरस्वती—पढ़ने और सुनने से अज्ञान को हर लेती हैं।

गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउं दीनबंधु दिन दानी ॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ॥

उपदेश निमित्त गुरुरूप और शिक्षा निमित्त पिता-माता रूप श्री पार्वती को प्रणाम करता हूं जो दीन बन्धु-अति उदार सुख देने वाले हैं। जो शिवजी श्रीरामचन्द्रजी के सब प्रकार से हित करने वाले हैं।

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥

कलियुग का आगमन देखकर जगत के हित के अर्थ शिव पार्वतीजी ने सावर मन्त्रों का समुदाय रचा, जिनके अक्षर बेमेल हैं, अर्थ भी ठीक नहीं जिनके जप से शिवजी का प्रताप प्रगट होता है।

सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउं राम चरित चित चाऊ॥

सो शिवजी मुझ पर अनुकूल हों कि जिनके प्रताप से मैं आनन्द मङ्गल की मूल राम कथा बनाऊँ। पार्वती और शिव जी स्मरण कर उनका प्रसाद पाय चित्त में उत्साह को प्राप्त होकर रामचरित्र वर्णन करूं।

भनिति मोरि सिव कृपां बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुं सुराती॥
जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥

मेरी वाणी शिवजी की कृपा से सुशोभित होगी जैसे तारागण समेत चन्द्रमा से रात्रि सुशोभित होती है। जो यह रामकथा प्रेमसहित ध्यान से पढ़ेंगे, सुनेंगे और समझेंगे।

होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥

वे श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम करने वाले होंगे और कलिकाल के मलों से रहित होकर सुन्दर मङ्गल के भागी होंगे।

दो०—सपनेहुं साचेहुं मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउं सब भाषा भनिति प्रभाउ॥ २३॥

स्वप्न में भी सचमुच मुझ पर शिव पार्वतीजी की प्रसन्नता हो तो मैं जो कुछ कहूं वह सब इस भाषा कविताई का प्रभाव सत्य हो अर्थात् मेरे मुखसे जो वाणी प्रकट होगी वह सत्य होगी।

चौ०—बंदउं अवध पुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि॥
प्रनवउं पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी॥

अति पवित्र अयोध्यापुरी को वन्दना करता हूं जहां कलयुग के पापों को नाश करने वाली सरयू नदी बहती है। फिर मैं अयोध्यावासी नर-नारियों को प्रणाम करता हूं, जिन पर श्रीरामचन्द्रजी की बड़ी ममता है।

सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए॥
बंदउं कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥

श्री सीताजी के निन्दक धोबी इत्यादि महा पापियों के पापसमूहों को दूर करके उनके निमित्त प्रभु ने शोकरहित 'साकेत' लोक बनाकर बसाया। अब मैं पूर्व दिशा रूपी कौशिल्याजी की वन्दना करता हूं कि जिस पूर्व दिशा की कीर्ति सब जगत में फैल रही है।

प्रगटेउ जहं रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥
दसरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी॥

जिस पूर्व दिशा में अथवा कौशल्या में निष्कलंक पूर्ण चन्द्रमा रूप श्रीरघुनाथ जी जगत् को सुख

देने वाले और खल के लिए तुषार के समान प्रकट हुए। महाराज दशरथ सहित सब रानियों को पुण्य और अच्छे मङ्गलों की मूर्ति जानकर।

करउं प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥

कर्म मन और वचन से प्रणाम करता हूं अपने पुत्र श्रीरामचन्द्रजी का सेवक जानकर मुझ पर कृपा करो। जिनको रचकर विधाता भी बड़ाई को प्राप्त हुआ रामचन्द्रजी के पिता माता महिमा के अवध हैं।

सो०—बंदउ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥ ९॥

अब फिर अवध भुआल श्री दशरथ जी की वन्दना करता हूं जिनका सच्चा प्रेम श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में था। दीनदयाल श्रीरामचन्द्रजी बिछुरते ही जिन्होंने अपना शरीर तृण के समान त्याग दिया॥९॥

चौ०—प्रनवउं परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महं राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

कुटुम्ब सहित जनकजी को प्रणाम करता हूं जिनका श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में गुप्त स्नेह था। जिस स्नेह को योग और भोग से संपुट में छिपा रखा था सो श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन होते ही प्रकट हो गया।

प्रनवउं प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

पहले भरतजी के चरणों को प्रणाम करता हूं कि जिनका नेम और व्रत वर्णन नहीं किया जा सकता। रघुनाथजी के चरण कमलों में जिनका मन लोभी भौंरे के समान उनकी निकटता नहीं छोड़ता।

बंदउं लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥

श्रीलक्ष्मणजी के चरणों को प्रणाम करता हूं जो शीतल और सुन्दर भक्तजनों को सुख देने वाले हैं जिन श्रीलक्ष्मणजी का यश श्रीरामचन्द्रजी की उज्जवल कीर्ति रूपी पताका के दंड के निमित्त समान हुआ।

सेष सहससीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर॥

जो संसार के कारण हजार सिर रखने वाले शेषनाग हैं जिन्होंने पृथ्वी का भार दूर करने के लिए अवतार लिया है सो लक्ष्मणजी मुझ पर सदा प्रसन्न रहें, दया के समुद्र, सुमित्राजी के पुत्र और गुणों की खानि हैं।

रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
महाबीर बिनवउं हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥

श्री शत्रुघ्नजी के चरणकमलों को प्रणाम करता हूं जो बड़े शूरवीर और श्री भरतजी के अनुगामी हैं। फिर मैं हनुमानजी की विनती करता हूं कि जिनका यश श्रीरामचन्द्रजी ने स्वयं वर्णन किया है।

सो०—प्रनवउं पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥ १०॥

अब पवन पुत्र श्रीहनुमान् जी को प्रणाम करता हूं जो दुष्टों के बन को भस्म करने के लिए अग्नि हैं और महा ज्ञानी हैं, जिनके हृदय मन्दिर में धनुष बाण धारण करने वाले श्रीरामचन्द्रजी वास करते हैं ॥ १० ॥

चौ०–कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा॥
बंदउं सब के चरन सुहाए। अधम सरीर राम जिन्ह पाए॥

कपिपति श्रीसुग्रीव ऋक्षराज श्री जामवंत तथा निशाचरों के राजा श्री विभीषण और अङ्गद आदि जो बानरों के समाज हैं, सबके सुहावने चरणों की वन्दना करता हूं जिन्होंने अधम शरीर ही में राम के दर्शन पाये।

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदउं पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥

अब जितने श्रीरघुनाथजी के चरण उपासक खग, मृग, सुर, नर और असुर जो हरि भक्त हुए हैं उन सबके चरण कमलों को मैं प्रणाम करता हूं जो बिना कामना के श्रीरामचन्द्रजी के दास हैं।

सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिबर बिग्यान बिसारद॥
प्रनवउं सबहि धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥

शुकदेव, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद मुनि और जो बड़े ज्ञानी मुनिश्वर हैं उन सबको पृथ्वी पर शिर नवाय प्रणाम करता हूं। हे मुनिश्वरों! अपना सेवक जानकर मुझ पर कृपा करो।

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउं। जासु कृपां निरमल मति पावउं॥

जनक की पुत्री जगत् को उत्पन्न करने वाली श्रीजानकी जी करुणा निधान श्रीरामचन्द्रजी को बहुत ही प्यारी हैं। उनके दोनों चरण कमलों को मनाता हूं कि जिनकी कृपा से मैं निर्मल बुद्धि पाऊँ।

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदउं सब लायक॥
राजिवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुख दायक॥

फिर मन वाणी और कर्म से श्री रघुनाथजी के चरण कमल को प्रणाम करता हूं जो सब लायक हैं। श्री रघुनाथजी कमल समान जिनके नेत्र हैं धनुष बाण धारण किये हैं, भक्तजनों के क्लेश को दूर करने वाले और सुख के देने वाले हैं।

दो०–गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउं सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥ २४॥

जैसे वाणी और उनका अर्थ, जल और जल की तरंग यह कहने में ही भिन्न हैं इसी प्रकार सीता और राम वास्तव में एक ही है उनके चरण कमलों की मैं वन्दना करता हूं जिनको दुःखी ज़ीव बहुत प्यारे हैं ॥ २४ ॥

चौ०–बंदउं नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

श्रेष्ठ रघुनाथजी के राम नाम की मैं वन्दना करता हूं जो रामनाम अग्नि, सूर्य चन्द्रमा इन तीनों के कारण हैं। नामनाम मन्त्र ब्रह्मा, विष्णु शिवमय भी है, और वेद का साक्षात् प्राण ही है अथवा वेद निर्गुन उपमा रहित गुणों का निधान है।

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥

जिस रामनाम महामंत्र को शिवजी जपते हैं और काशी में मुक्ति के निमित्त उपदेश करते हैं। जिन राम नाम की महिमा को श्रीगणेशजी जानते हैं और राम नाम के प्रताप से ही पहले जिनका पूजन होता है।

जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस्र नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥

आदि कवि (श्री बाल्मीकि जी) नाम के प्रताप को जानते हैं जो उलटा जप करके सिद्ध हो गये। श्री पार्वतीजी ने शिवजी के मुख सुना कि राम नाम का एक बार उच्चारण सहस्र नाम के तुल्य है तब उन्होंने रामनाम जपकर पति के साथ भोजन किया।

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

पार्वती के हृदय में रामनाम पर ऐसा स्नेह देखकर श्री शिवजी ऐसे प्रसन्न हुए कि पार्वतीजी को अपने अङ्ग का आभूषण कर लिया। रामनाम के प्रभाव को श्री शिवजी जानते हैं कि जिसके प्रभाव से उन्होंने कालकूट विष पान कर लिया।

दो०—बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥ २५॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी की भक्ति तो वर्षा ऋतु है और श्रेष्ठ दास धान हैं और रामनाम के जो दो अक्षर है वह श्रावण भादों के महीने हैं॥ २५॥

चौ०—आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥

रामनाम के रकार मकार दोनों अक्षर उच्चारण करने में मधुर देखने में मनोहर और सब अक्षरों में नेत्ररूप हैं। स्मरण करते ही सबको सुलभ और सुखदायक हैं और लोक में यश और परलोक में निर्वाह करने वाले हैं।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती॥

कहने, सुनने, स्मरण करने में बहुत अच्छे हैं तुलसीदास जी कहते हैं कि मुझे राम नाम के दोनों अक्षर राम लक्ष्मण के समान प्यारे हैं। इन दोनों अक्षरों का वर्णन भिन्न रीति से नहीं करते, क्योंकि दोनों ब्रह्म जीव के समान साथ रहने वाले हैं।

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥

दोनों अक्षर नर नारायण के समान सुन्दर भाई हैं; ईश्वरत्व गुण से जगपालक हैं, रामनाम के दोनों अक्षर भक्तिरूपी पतिव्रता स्त्री के सुन्दर कानों के भूषण हैं और जगत् के हित के हेतु पूर्ण चन्द्रमा और सूर्य हैं।

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥

यह मोक्षरूपी अमृत के स्वाद और संतोष के तुल्य हैं 'राम' ये दो अक्ष र कच्छप और शेष के समान पृथ्वी को धारण करने वाले हैं। भक्तजनों के मनरूपी सुन्दर कमल को भौंरा के समान है तथा जिह्वारूपी यशोदा जी को कृष्णबलराम के समान प्रिय हैं।

दो०—एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥ २६॥

तुलसीदास कहते हैं कि रामनाम के दोनों अक्षर सब अक्षरों के ऊपर एक क्षत्र है और एक मुकुट मणि है रकार (ˊ) मकार (˙) रेफ और अनुस्वार रूप से सब अक्षरों के ऊपर विराजते हैं इसी से ये दोनों अक्षर वर्णशिरोमणि हैं॥ २६॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥

साधारण रीति से समझने में नाम और नामी इनकी प्रीति परस्पर स्वामी, सेवक सी है। नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधि हैं। नाम अकथ है और रूप अनादि है इस बात को समझने वाले ब्रह्मज्ञानी ही हैं।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥

रूप और नाम से कौन बड़ा और छोटा है यह कहने में अपराध है, साधुजन इनके भेदों के गुण सुनकर बड़े छोटे का भेद समझ लेंगे। प्रत्यक्ष देखिये कि रूप नाम के अधीन हैं क्योंकि नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं होता।

रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयं सनेह बिसेषें॥

रूप विशेष होने पर भी बिना नाम जाने हथेली पर रखा हुआ पदार्थ पहिचान में नहीं आता। बिना रूप देखे नाम का स्मरण किया जाय तो विशेष स्नेह सहित उसका रूप भी हृदय में आ जाता है।

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

नाम और रूप की गति कहने में नहीं आती। इनकी कहानी समझने से सुख देने वाली है परन्तु बखानी नहीं जाती। नाम से अगुण सगुण दोनों जाने जाते हैं, जैसे चतुर पुरुष दोनों की भाषा बोलकर दोनों को समझा देते हैं।

दो०—राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुं जौं चाहसि उजियार॥ २७॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो तुम भीतर बाहर उजाला चाहते हो तो मुखरूपी द्वार में जिह्वा रूपी देहली पर रामनाम रूपी मणि दीपक को धरो॥ २७॥

नाम जीहं जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

रामनाम को जिह्वा से जपकर जोगीजन जागते हैं और ब्रह्मा के प्रपंच से संसार से उदासीनता और वैराग्य हो जाता है, अनुपम, अकथनीय तथा नामरूप से रहित ब्रह्मानन्द का साक्षात अनुभव करते हैं।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहं जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएं। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएं॥

जो ईश्वर की गूढ़गति को जानना चाहते हैं वे जिह्वा से नाम जप उस तत्व को जान लेते हैं। साधक जन मन लगाकर रामनाम जपते हैं वे सिद्ध हो मणिमादिक सिद्धियां प्राप्त करते हैं।

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥

जो महा दुखी जन रामनाम जपते हैं उनके दुख दूर हो जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं, आर्त, साधक, जिज्ञासु और ज्ञानी ये चार प्रकार के रामभक्त जगत में हैं चारों पुण्यात्मा, पाप रहित और उदार हैं।

चहू चतुर कहुं नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुं जुग चहुं श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

चारों चतुरों को रामनाम आधार है इसमें ज्ञानी भक्त प्रभु को विशेष करके प्यारा है। चारों युगों में और चारों वेदों में नाम का प्रभाव प्रकट है, कलियुग में विशेष करके दूसरा उपाय नहीं है।

दो०–सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृद तिन्हहुं किए मन मीन॥ २८॥

जो भक्तजन संपूर्ण कामनाओं से रहित हैं और राम-भक्त-रस में लवलीन हैं वे भी श्रीराम नाम प्रम रूप अमृतमय सरोवर में अपने मन को मीनरूप करके वास करते हैं॥ २८॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निजबस निज बूतें॥

निर्गुण सगुण ये दोनों ब्रह्म स्वरूप अकथनीय, अगाध आदि रहित और अनुपम हैं। मेरे मत में दोनों से बड़ा नाम है जिसने अपने बल से निर्गुण सगुण दोनों को अपने वश में किया है।

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउं प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥

जो जन प्रवीण हैं वे सज्जन जन की बात जान लेते हैं मैं अपनी प्रतीति और प्रीति से मन की रुचि के अनुसार कहता हूं एक अग्नि प्रकाश और दाहक आदि व्यापार से रहित काष्ठ में और एक सर्वगुण प्रवर्तक प्रत्यक्ष देखने में आती है इसी दो अग्नि के समान निर्गुण सगुण का ज्ञान है, एक गुप्त और एक प्रकट दिखलाई पड़ती है।

उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउं नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनंद रासी॥

दोनों स्वरूप अगम है तथापि नाम के अवलम्ब से सुगम हो जाते हैं अतएव मैं परब्रह्म स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी के नाम को बड़ा कहता हूं। वह सर्वव्यापक एक ब्रह्म अविनाशी सच्चिदानन्द परमात्मा आनन्द की राशि है।

अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

ऐसे प्रभु के हृदय में विराजमान होते हुए भी संपूर्ण जीव जगत् में दीन और दुखी रहते हैं। नामके द्वारा जब उसका निरूपण किया जाता है तब नाम प्रकट हो जाता है जैसे रत्न का नाम रत्न में ही गुप्त रहता है जौहरी के द्वारा उसका मोल प्रकट हो जाता है।

दो०—निरगुन तें एहि भांति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउं नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥ २१॥

इसी प्रकार नाम का प्रभाव प्रभु के निर्गुण स्वरूप से भी बड़ा है और उसकी महिमा अपार है श्रीरामचन्द्रजी से भी नाम बड़ा है यह मैं अपने विचार के अनुसार कहता हूं॥ २९॥

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल वासा॥

रामचन्द्रजी ने भक्तों के निमित्त मनुष्य देह धारण कर अनेक प्रकार के दुःख सह साधुजनों को सुखी किया। नाम को प्रेम सहित जपते ही बिना प्रयास भक्तजन आनन्द मङ्गल के निवासी हो जाते हैं।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हीं बिबाकी॥

राम ने तो एक अहिल्या का उद्धार किया, परन्तु नाम ने तो करोड़ों दुष्टों की कुमति को सुधारा है। राम ने विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा के निमित्त सुकेतु यज्ञ की सुता और पुत्र सुबाहु मारीच का फैसला कर दिया।

सहित दोष दुख दास दुरासा दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥

दोष दुःख सहित भक्तजनों की दुरासा का नाम इस प्रकार नाश करता है जैसे सूर्य रात्रि के अन्धकार को नाश कर देता है। श्रीरामचन्द्रजी ने धनुष को ही तोड़ा था और नाम का प्रताप संसार-भय और जन्म-मरण को तोड़ने वाला है।

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥

श्रीरामचन्द्रजी ने तो दंडक वन को ही शोभित किया और नाम ने तो असंख्य भक्तों के मन पवित्र किये। रामचन्द्र ने तो बहुत से राक्षसों को मारा परन्तु नाम कलियुग के पापों को नाश करने वाला है।

दो०—सबरी गीध सुसेबकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥ ३०॥

रघुनाथजी ने तो केवल शबरी भीलनी और गीध 'जटायु' ऐसे अपने परम भक्तों को उत्तम गति दी, और नाम ने तो असंख्य, पापीजनों का उद्धार किया नाम के गुण की बात वेद में भी प्रसिद्ध है॥ ३०॥

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥

रामचन्द्र जी ने सुग्रीव और विभीषण दोनों को अपनी शरण में रखा यह बात सब कोई जानते हैं। नाम ने अनेक गरीब भक्तों पर कृपा की है, यह नाम का सुयश लोक और वेद में विराजमान है।

राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥

रामचन्द्रजी ने ऋक्ष और वानरों का दल इकट्ठा कर समुद्र में पुल बांधने के निमित्त बहुत श्रम किया था। परन्तु राम का नाम लेते ही संसार सागर सूख जाते हैं, हे सुजनों ! अपने मन में इस बात का विचार करो।

राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥

रामचद्रजी ने रण में रावण को कुल समेत मारा और सीता सहित अपने नगर को आये, श्रीरामचन्द्रजी राजा और अवध राजधानी हुई देवता और मुनिजन श्रेष्ठ वाणी से जिनका गुणगान करते हैं।

सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेहं मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥

जो सेवक प्रीति से नाम का स्मरण करते हैं बिना परिश्रम प्रबल मोह दल को जीत लेते हैं। अपने सुख में सनेहपूर्वक मग्न हो विचरते हैं, नाम के प्रताप से उनके मन में स्वप्न में भी शोच नहीं होता।

दो०—ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महंलिय महेस जियं जानि॥ ३१॥

महादेवजी ने अपने हृदय में नाम को ब्रह्म और राम से बड़ा और वर देने वाले ब्रह्मादि कों को भी वर देने वाला जानकर शत कोटि रामचरित में से 'राम' इस दो अक्षरों को निकाल लिया है॥ ३१॥

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥

राम के प्रताप से शिवजी अविनाशी हैं और अमंगल को साज करने पर भी मङ्गल की राशि है शुकदेव, सनकादि सिद्ध, मुनि योगी नाम के प्रसाद से ब्रह्मसुख को भोगने वाले हैं।

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥

नारदजी ने नाम के प्रताप को जाना तो स्वयं नाम के प्रभाव से विष्णु और शिवजी के साथ जगत के प्रिय हुए हैं। नाम जपने से प्रभु ने दया की जिससे प्रह्लादजी भक्त शिरोमणि हुए।

ध्रुवं सगलानि जपेउ हरि नाऊं। पायउ अचल अनूपम ठाऊं॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

ध्रुवजी ने पिता के निरादर से ग्लानि मानकर नाम जपा तो भी अचल और अनुपम स्थान पाया। हनुमानजी ने पवित्र नाम का स्मरण कर राम को अपने वश में कर रखा है।

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहां लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

अजामिल, राजेन्द्र और गणिका 'पिंगला वेश्या' आदि हरि नाम के प्रभाव से मुक्त हुए। कहां तक नाम की बड़ाई करूँ। अनन्त गुणों के कारण राम भी नाम के गुण नहीं गा सकते।

दो०—नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भांग तें तुलसी तुलसीदासु॥ ३२॥

राम नाम का कल्पवृक्ष कलियुग में कल्याण का स्थान है, जिसके स्मरण करते ही भाग्य से तुलसी तुलसीदास भये ॥ ३२॥

चहुं जुग तीनि काल तिहुं लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका ॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥

चार युग तीन काल और तीन लोक में नाम जपकर अनेक जीव शोक रहित हुए हैं, वेद पुराण और संतजनों का मत यही है कि सम्पूर्ण सुकर्मों का फल राम में स्नेह होना है।

ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥

पहले युग में ध्यान और दूसरे युग यज्ञ तथा द्वापर में पूजन से प्रभु भगवान् प्रसन्न होते हैं। परन्तु यह कलिकाल तो केवल पापों का मूल और महामलीन है इस कलिकाल रूप पाप समुद्र में इस समय के लोगों के मन मीन रूप हो रहे हैं।

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ॥

इस कराल काल में रामनाम ही कल्पवृक्ष है जो स्मरण करते ही सब जगजाल को काट देता है। रामनाम ही कलियुग में मनवांछित फल देने वाला है, परलोक में और इस लोक में माता पिता के समान हित करने वाला है।

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥

कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है, और न ज्ञान है, केवल रामनाम ही एक आधार है। कालनेमि रूपी कपट की खान कलियुग है और नाम प्रवीण महाबली हनुमान रूप है।

दो०—राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ॥ ३३ ॥

राम नाम नृसिंह है और कलिकाल हिरण्यकशिपु दैत्य है, जापक अर्थात् नाम लेने वाले भक्त प्रह्लाद हैं। जैसे नृसिंह भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारकर प्रह्लाद की रक्षा की है ॥ ३३ ॥

भायं कुभायं अनख आलसहूं। नाम जपत मंगल दिसि दसहूं ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउं नाइ रघुनाथहि माथा ॥

भाव कुभाव अनख और आलस्य से भी राम नाम जपने से दशों दिशाओं में मङ्गल होता है। उसी नाम का स्मरण कर रामचन्द्रजी की कथा रघुनाथजी को मस्तक नवाकर वर्णन करता हूं।

मोरि सुधारिहि सो सब भांती। जासु कृपा नहिं कृपां अघाती ॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥

वह प्रभु मेरी राम कथा को सब प्रकार से सुधार लेंगे जिनकी कृपा दीनजनों पर कृपा करने से नहीं अघाती है। राम ऐसे अच्छे स्वामी और मुझ सा बुरा सेवक कैसे निर्वाह हो, परन्तु अपनी ओर देखकर मेरा पालन किया।

लोकहूं बेद सुसाहिब रीती। बिनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी गरीब ग्रामनर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर ॥

लोक में और वेद में भी अच्छे स्वामी की यही रीति देखी गई है कि वह अपने सेवक की विनती सुनते ही उसकी प्रीति को पहचान लेता है। धनवान, निर्धन, गँवार, चतुर, पण्डित, मूर्ख, मैले जो प्रसिद्ध है।

सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी॥
साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला॥

सुकवि और कुकवि सब नर-नारी अपनी बुद्धि के अनुसार राजा को सराहते हैं। राजा तो साधु, सुजान, सुशील, ईश्वर के अंश से उत्पन्न परम दयालु होते हैं, फिर हमारे राजा का तो कहना ही क्या है।

सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी। भनिति भगति नति गति पहिचानी॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसलराऊ॥

वे अपनी प्रशंसा सुनकर सबकी अच्छी वाणीका सन्मान करते हैं, उनकी वाणी भक्ति गति और बुद्धि को पहचानकर आदर करते हैं। राजाओं का यह स्वभाव होता है फिर श्रीरामचन्द्रजी तो राजाओं में शिरोमणि हैं।

रीझत राम सनेह निसोतें। को जग मंद मलिनमति मोतें॥

रामजी तो केवल प्रेम से रीझते हैं जगत् में मुझसे अधिक मन्द और मलिन बुद्धि वाला कौन है।

दो०—सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु॥ ३४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझे मूर्ख सेवक की प्रीति और रुचि को दयालु श्रीरामचन्द्रजी अवश्य रखेंगे। क्योंकि प्रभु ने पत्थर जल में तैराये और वानर ऋक्ष आदि को बुद्धिमान् मन्त्री बनाया॥ ३४॥

हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास॥ ३५॥

मुझसे जो कोई पूछता है कि तुम कौन हो तो मैं कहता हूं कि राम का दास हूं यह सुनकर मुझे लोग राम का दास कहते हैं इससे प्रभु की जो हंसी होती है, उसको प्रभु सहते है, कहां सीतापति राम और कहां सेवक तुलसीदास॥ ३५॥

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुं नाक सकोरी॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें॥

यह मेरी बहुत बड़ी ढिठाई और खोटाई है कि जो अपने को राम का दास कहता हूं जिस को सुन पाप और नरक भी नाक सिकोड़ते हैं। जिस ढिठाई और खोटाई को समझ डर लगता है, रामजी ने स्वप्न में भी उसकी सुधि नहीं की।

सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही॥
कहत नसाइ होइ हियं नीकी। रीझत राम जानि जन जी की॥

सुनकर और देख करके भी उदार दृष्टि प्रभु ने सुनी अनसुनी करके मेरी भक्ति और मति की सराहना की है। कहने में चाहे बुरा हो अथवा बहुत अच्छा पर रामजी तो अपने जन के हृदय की प्रीति को जानकर रीझते हैं।

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥

जो भक्तों से भूल हो जाती है वह भूल प्रभु के चित्त में नहीं रहती है किन्तु सौ बार उनके हृदय की प्रीति की याद करते हैं। जिस पाप से व्याध की नाईं बालि को मारा, सुग्रीव ने फिर वही कुचाल की।

सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुं सो न राम हियं हेरी॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राजसभां रघुबीर बखाने॥

वही करतूत विभीषण ने की (मन्दोदरी को ग्रहण किया) सो राम जी स्वप्न में भी हृदय में नहीं लाये। भरत से मिलने के समय उनका बहुत सत्कार किया और राजसभा में रघुनाथ जी ने उनकी बड़ाई की।

दो०—प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूं न राम से साहिब सीलनिधान॥ ३६ ॥

प्रभु तो वृक्ष के नीचे और सेवक वानर डाल पर अथात् सिर पर चढ़े ऐसे वानरों को भी प्रभु ने अपने समान बना लिया, तुलसीदास जी कहते हैं कि राम के समान शील निधान स्वामी कहीं भी नहीं है॥ ३६॥

राम निकाई रावरी है सबही को नीक।
जौं यह सांची है सदा तौ नीको तुलसीक॥ ३७॥

हे राम! आपकी निकाई सब ही को अच्छी है जो यह बात निरन्तर सच्ची है तो तुलसीदास जी का सब काम बन जायेगा॥ ३७॥

एहि बिधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ।
बरनउं रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ॥ ३८॥

इसी प्रकार अपने गुण दोष कहकर फिर सबको सिर नाय रघुनाथ जी का निर्मल यश वर्णन करता हूं जिनको सुनकर कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ३८॥

जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥
कहिहउं सोइ संबाद बखानी। सुनहुं सकल सज्जन सुखु मानी॥

याज्ञवल्क्यजी ने जो सुहावनी रामकथा भरद्वाज मुनिवर को सुनाई। वही सम्वाद मैं बखान कर कहता हूं सब सज्जन सुख मानकर सुनो।

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥

प्रथम यह सुहावना मानस-चरित शिवजी ने बनाया फिर कृपा करके पार्वती जी को सुनाया और यह रामचरित शिवजी ने कागभुशण्डि ऋषि को लोमश ऋषि द्वारा भक्ति का अधिकारी जानकर सुनाया।

तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता बकता समसीला। सवदरसी जानहिं हरिलीला॥

कागभुशुण्डि मुनि से याज्ञवल्क्य मुनि ने सुना याज्ञवल्क्य मुनि ने भारद्वाज मुनि के सामने वर्णन किया। सब श्रोता और वक्ता समान स्वभाव और समदर्शी हरि की लीला को जानने वालेहैं।

जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल गत आमलक समाना॥
औरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥

ये लोग अपने ज्ञान के प्रभाव से भूत भविष्य वर्तमान के चरित को हथेली पर धरे आंवले के समान जानते हैं। और भी जो ज्ञानी हरिभक्त हैं वे भी हरि की लीला को अनेक प्रकार से कहते सुनते और समझते हैं।

दो०—मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउं अचेत॥ ३१॥

अनन्तर मैंने उसी कथा को बाराह क्षेत्र में अपने गुरु से सुनी। उस समय बालापन के कारण यथार्थ समझ में नहीं आया, तब मैं बहुत अबोध था॥ ३९॥

श्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं में जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़॥ ४०॥

प्रथम तो इस राम कथा के श्रोता वक्ता ज्ञान के निधि हैं दूसरे यह राम की कथा कठिन है, यह जड़ जीव पापों में फँसा हुआ कैसे समझे॥ ४०॥

तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परि कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥

तो भी गुरुदेव ने बारम्बार समझा कर कथा कही तब जैसी कुछ मेरी बुद्धि है उसके अनुसार समझ में आई। वही अब मैं भाषा प्रबन्ध में वर्णन करता हूं कि जिससे मेरे मन को बोध हो जाय।

जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउं हियं हरि के प्रेरें॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउं कथा भव सरिता तरनी॥

जैसा कुछ मुझ में बुद्धि ज्ञान का बल है उसके अनुसार हृदय में हरि की प्रेरणा से मैं भी वर्णन करूंगा। अपने सन्देह और मोह व भ्रम को हरने वाली संसार रूपी नदी पार करने के लिए नौकारूपी रामकथा वर्णन करता हूं।

बुध बिश्राम सकल जन रंजनी। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥
रामरथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुं अरनी॥

रामकथा बुधजनों को विश्राम, सब मनुष्यों को आनन्द तथा कलियुग के पापों का नाश करने वाली है। श्री रामकथा कलियुग रूपी सर्प का भरणी नक्षत्र में वृष्टि होने से मारने वाली है फिर राम कथा ज्ञान रूपी अग्नि बढ़ाने के लिए अरणी।

रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि॥

रामकथा कलियुग में रामधेनु कही जाती है, सुजनों को सुन्दर सजीवन मूरि है। पृथ्वीतल में अमृत की नदी है और संसारिक दुःख को मिटाने वाली है तथा भ्रमरूपी मेढ़क के खाने को सर्पिणी है।

असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥

संत समाज पयोधि रमा सी। बिस्व भार भर अचल छमा सी ॥

असुरों की सेना के समान नरक को नाश करने वाली और साधु को पालन करने वाली पार्वती है। यह राम कथा सत्पुरुषों के समाज रूप समुद्र में लक्ष्मी है और जगत् का भार धारण करने के लिये अचल पृथ्वी है।

जम गन मुहं मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हियं हुलसी सी ॥

यमदूत के मुख में स्याही लगाने के लिये जगत् में यमुना के समान है, और जीवन मुक्ति के लिये मानो काशीपुरी है। राम को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है, तुलसीदास के हित के हृदय में हुलसी के समान है।

सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी ॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी ॥

शिवजी को यह रामकथा नर्मदा के समान प्रिय है और सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाली और सम्पदा की खानि है। और देवताओं के उत्तम गुणों की अदिति के समान है और रामभक्ति तथा प्रेम की मानो सीमा है।

दो०—रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ॥ ४१ ॥

रामकथा मन्दाकिनी अर्थात् स्वर्गगंगा है और भक्तों का चित्त सुन्दर चित्रकूट है तुलसीदासजी कहते हैं कि रामकथा जो है वही सुन्दरवन है वही सीताराम का विहार स्थान है ॥ ४१ ॥

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू ॥
जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥

श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र सुन्दर चिन्तामणी है सत्पुरुषों की उत्तम बुद्धि रूपी स्त्री के हृदय में धारण करने के लिये सुन्दर श्रृंगार है। राम का गुण समूह जगत का मंगल करने वाला और मोक्ष, धन, धर्म का धाम है।

सदगुर ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के ॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के ॥

ज्ञान वैराग्य और अष्टाङ्गयोग के लिये सद्गुरु और संसाररूपी भयंकर रोग का नाश करने के लिये अश्विनी कुमार है। सीताराम प्रेम सम्बन्धी माता-पिता हैं और सबव्रत-और नेम के बीजरूप हैं।

समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥

पाप, सन्ताप और शोक को नाश करने वाले हैं, परलोक और इस लोक के प्रिय पालक हैं। विचार रूपी राजा के बुद्धिमान मन्त्री हैं, लोभरूपी अपार समुद्र सोखने को अगस्त्य मुनि हैं।

काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के।

भक्तजनों के मनरूपी वन में रहने वाले काम, क्रोध और कलि के पापरूपी हाथियों को विध्वंस

करने के लिये सिंह के बच्चे के समान हैं। शिव जी को अतिथि के समान पूज्य और प्रिय हैं और दरिद्र रूपी दावानल को शान्त करने के लिये मेघ हैं।

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से॥

विषयरूपी सांप के लिये गरुड़ मन्त्र और महामणि है और कठिन मस्तक के जो कुअङ्क हैं उसको भी मेटते हैं। मोहरूप अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य किरण के समान हैं, और धानरूपी भक्तों के पालन के लिये मेघ समान हैं।

अभिमत दानि देवतरु बर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥
सुकबि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से॥

इच्छा के अनुसार देने को कल्पवृक्ष हैं, सेवा करने से विष्णु शिव की भांति सुलभ व सुखदायी हैं। रामजी के गुण सुकवियों के मनरूपी शरद् ऋतु सम्बन्धी निर्मल आकाश में तारागण और रामभक्तों को जगत में जीवन धन के समान है।

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से॥

सब सुकर्मों के जो बहुत फल हैं उनको भोग के समान हैं, जगत का हित करने के लिए मानों उपाधि रहित साधुजन हैं। भक्तजनों के मन जो मान सरोवर हैं उनमें हंस के समान और पवित्र करने को गङ्गाजी की लहरों की मालायें हैं।

दो०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥ ४२॥

वेद विरुद्ध मार्ग, वितण्डावाद, दुराचरण, कपट, दम्भ और पाखण्ड के दहन करने वाले राम के गुणग्राम हैं जैसे ईधन को प्रचंड अग्नि भस्म करती है इसी प्रकार श्रीरामचंद्र के गुण कुपंथ को भस्म करते हैं॥ ४२॥

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु॥ ४३॥

रामचरित्र चन्द्रमा की किरण के समान हैं जो सबको सुख देने वाला है। सज्जन रात्रि विकाशी कमल हैं उनके चित्त चकोर हैं, उनको यह रामचरित्र विशेष हित और बड़ा लाभकारी है॥ ४३॥

कीन्हि प्रस्न जेहि भांति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई॥

जिस प्रकार पार्वतीजी ने प्रश्न किया और शिवजी ने जिस रीति से बखान कर कहा। वह सब कारण मैं गाकर कहूंगा और कथा-प्रबन्ध विचित्र बनाकर वर्णन करूंगा।

जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी॥

जिन्होंने यह कथा सुनी न हो, वे इस रामकथा को सुनकर आश्चर्य न करें। जो ज्ञानी पुरुष हैं वे अलौकिक कथा सुनते हैं तो ऐसा जानकर आश्चर्य नहीं करते हैं कि।

रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥

नाना भांति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥

रामकथा की सीमा जगत में नहीं है ऐसी प्रतीति जिनके मन में है। अनेक प्रकार से राम के अवतार हुए हैं, रामायण सौ करोड़ है, अर्थात् जिसका अन्त नहीं है।

कलप भेद हरि चरित सुहाए। भांति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥

कल्पभेद से सुहावने हरि चरित्र अनेक प्रकार से मुनीश्वरों ने अपने २ ग्रन्थों में वर्णन किये हैं ऐसा अपने हृदय में विचारकर सन्देह न कीजिए, आदर सहित प्रेम से इसी रामकथा को सुनिये।

दो०—राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥ ४४॥

राम अनन्त हैं और उनके गुण भी अनन्त हैं इसी से रामकथा का बहुत विस्तार है। यह सुनकर वे लोग आश्चर्य नहीं मानेंगे, जिनके विचार निर्मल हैं॥ ४४॥

एहि बिधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर पद पंकज धूरी॥
पुनि सबही बिनवउं कर जोरी। करत कथा जेहिं लाग न खोरी॥

इस प्रकार सब सन्देह दूर कर गुरुदेवजी के चरण कमल की रज को सिर पर धारण करके फिर भी सबको हाथ जोड़कर विनती करता हूं जिससे कथा लिखते समय कोई दोष न लगावें।

सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनउं बिसद राम गुन गाथा॥
संबत सोरह सै एकतीसा। करउं कथा हरि पद धरि सीसा॥

आदर से शिवजी के चरणों में माथा नवाकर रामचन्द्र के गुणों की निर्मल कथा कहता हूं। महाराज विक्रमादित्यजी की सम्वत् सोरह सौ इकतीस (१६३१) में हरि के चरणों में सिर धर कर रामकथा प्रारम्भ करता हूं।

नौमी भौम बार मधु मासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहां चलि आवहिं॥

नवमी तिथि मंगलवार चैत्रमास 'शुक्लपक्ष' को श्री अयोध्यापुरी में यह रामचरित प्रकाशित किया। जिस दिन राम का जन्म वेद गाते हैं, उस दिन सब तीर्थ वहीं चले आते है।

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना॥

असुर, नाग, नर, पक्षी, मुनि, देवता आकर रघुनाथजी की सेवा करते हैं। सुजानजन जन्म महोत्सव की रचना करते हैं, और श्रीरामचन्द्रजी की सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

दो०—मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर॥ ४५॥

बहुत से सज्जन पवित्र सरयू में स्नान करते और हृदय में ध्यान धरकर रामनाम जपते हैं। सुन्दर श्याम शरीर वाले श्रीरामचन्द्रजी की मोहिनी मूर्ति का ध्यान करके राम का जप करते हैं॥ ४५॥

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा विमलमति॥

दर्शन स्पर्श स्नान व जलपान करने से सरयू पाप हर लेती हैं ऐसा वेद पुराण कहते हैं। सरयू नदी बहुत पवित्र और बड़ी महिमा वाली है जिसके माहात्म्य को निर्मल बुद्धि वाली शारदा भी नहीं कह सकती।

राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहिं संसारा॥

यह सुहावनी अयोध्यापुरी रामधाम की दाता है, यह जग पावनी पुरी सब लोकों में विख्यात है। चार खान के जीव जगत में अपार हैं अयोध्यापुरी में इनका शरीर छूटने से फिर आवागमन नहीं होता है।

सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

सब प्रकार से पुरी की मनोहर और सब सिद्धियों को देने वाली मंगल की खान जानकर निर्मल कथा को आरम्भ किया है, जिसके सुनने से काम, मद, आदि दोष नाश हो जाते हैं।

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई॥

इस कथा का नाम 'रामचरितमानस' है इसको कानों से सुनते ही मन विश्राम पाता है। मन के विषयरूपी दावानल से जलता हुआ मनुष्य जो सरोवर में आ पड़े वह उसी समय सुखी हो जाय।

रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥

यह रामचरितमानस भक्तों के मन को अच्छा लगने वाला है इसको श्री सदाशिवजी ने निर्माण किया है।

त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥

तीन प्रकार के दोष दुःख, दरिद्र को दूर करने वाला कलह कुचालि तथा कलियुग के पापों का नाशक है। महादेवजी ने रचना करके अपनेमन में रक्खा, अच्छा समय पाकर पार्वतीजी से कहा।

तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियं हेरि हरषि हर॥
कहउं कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥

इस कारण इस चरित्र को हृदय में विचारकर श्री महादेवजी ने प्रसन्न होकर 'राम-चरित्रमानस' ऐसा उत्तम नाम रक्खा। वही सुख देने वाली सुहावनी कथा कहता हूं, हे सुजनों! आदरपूर्वक मन लगा कर सुनो।

दो०—जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउं प्रसंग सब सुमिरि उमा बृषकेतु॥ ४६॥

जिस प्रकार रामयशरूपी मानस हुआ और जिस कारण इसका प्रचार संसार में हुआ, अब वह सब प्रसंग पार्वती और महादेवजी को स्मरण कर कहता हूं॥ ४६॥

संभु प्रसादसु मति हियं हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥

शिवजी की कृपा से हृदय में सुमति का प्रकाश हुआ, जिससे 'रामचरितमानस' के कवि तुलसीदास हुए। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार मनोहर रचना करता हूं हे सुजनों! सावधान मन से सुनकर भूल चूक सुधार लीजिये।

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥

कवि की सुन्दर बुद्धि तो इस सरोवर का पृथ्वीतल है और हृदय गहराई है। वेद पुराण समुद्र हैं और संतजन मेघ हैं। रामचन्द्र जी की सुयश रूपी उत्तम जल बरसता है, वही मधुर मनोहर और मंगलकारी है।

लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई॥

जो सगुण लीला बखानकर कहते हैं वही उस जल की स्वच्छता है जो मलको दूर करती है। प्रेम-भक्ति जो कहने में नहीं आती वही इस जल की मधुरता और शीतलता है। वह जल सुकृतरूप धान को बढ़ाने वाली है और राम भक्तजनों का जीवन है।

मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

जैसे पृथ्वी पर बरसने वाला जल सिमटकर नालों द्वारा सरोवर में जाता है वैसे ही राम यश रूपी जल सिमिटकर कानों द्वारा पवित्र मनरूपी सरोवर को चला जाता है। जिससे मानस स्थल अच्छे प्रकार से भर गया, जब थिराना और चिराना हुआ तब यह 'रामचरितमानस' सब सुखदाई शीतल, रोचक और सुन्दर हो गया।

दो०—सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥ ४७॥

बहुत सुन्दर चार संवाद उत्तम बुद्धि से विचार कर रचे हैं, वही इस पवित्र सरोवर में मनोहर चार घाट हैं॥ ४७॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥

इसमें सात काण्ड वही सुन्दर सात सीढ़ी हैं, जो ज्ञान नेत्रों द्वारा देखने से मन में आती हैं। रघुनाथ जी की तीनों गुणों से परे बाधा रहित जो महिमा है वही सुन्दर जल की गहराई है सोई वर्णन करता हूं।

राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥

और रामचन्द्र व सीता जी का यश रूपी जल अमृत के समान है और इस कथा में उपमा है वही सुन्दर तरंग का विलास है। जो सुन्दर चौपाइयां हैं वही सघन पुरइान कमलबेलि और युक्त सुन्दर मोतियों की सीपी है।

छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥

और जो छन्द, सोरठा, सुन्दर, दोहे हैं वही अनेक रंग के कमल शोभायमान हैं। अनूप अर्थ सुन्दर भाव, उत्तम भाषा वही पुष्प रज मकरंद पुष्प हैं, और सुगन्ध हैं।

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभांती॥

पुण्यात्माओं के समूह उन कमलों के मकरन्द रस के रसिक भ्रमरगण हैं और ज्ञान वैराग्य का विचार हंस रूप है। धुनि, अवरेव, गुण, जाति ये चार भेद कविता के हैं वही यहां अनेक प्रकार की मनोहर मछलियां हैं।

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार और ज्ञान, विज्ञान, विचार, शृंगार आदि नवरस, जप तप, योग वैराग्य ये सब इस सरोवर के सुन्दर जलचर जीव हैं।

सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जलबिहग समाना॥
संतसभा चहुं दिसि अवराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥

और जो सुकृति साधु हैं जो नाच और गुणगान करते हैं, वही अनेक रंग के जल पक्षी हैं। सन्तजनों की सभा रूपी इस सरोवर में चारों ओर अमराई अर्थात् आम का बगीचा है, उसमें श्रद्धा बसन्त ऋतु के समान है।

भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना॥

अनेक प्रकार से भक्ति का निरूपण और क्षमा, दया ये सब उन वृक्षों पर बेलें फैली हुई हैं।

सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना॥
औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा॥

संयम नियम फूल है और ज्ञान फल है और हरि चरण में प्रीति रस है, वेद कहते हैं। और भी कथाएं व अनेक प्रसंग हैं वे ही इसमें शुक कोकिल आदि अनेक रंग के पक्षी हैं।

दो०—पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु।
मालो सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु॥ ४८॥

इस सरोवर के चारों ओर फुलवारी, बाग और वन में सुख पूर्वक मोर आदि पक्षी कलोलें कर रहे हैं। उसमें सुन्दर मनरूपी माली नेत्र रूपी सुन्दर घड़े भरकर स्नेह रूपी जल सींचता है॥ ४८॥

जे गावहिं यह चरित संभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥

जो भक्तजन इस चरित को सावधानी से गाते हैं वे इस तालाब के चतुर रखवारे हैं। जो नरनारी आदर से इनको सुनते हैं वही देवताओं में श्रेष्ठ मान सरोवर के अधिकारी हैं। जो महादुष्ट और विषयी बगला और कौवा के समान हैं वे इस सरोवर के समीप नहीं जाते हैं, यह उनका अभाग्य है।

अति खल जे बिषई बग कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहां न बिषय कथा रस नाना॥

उमा महेस बिबाह बराती । ते [illegible] करउ मन लाइ ॥
रघुबर जनम अनंद बधाई । भवं[illegible] बिमल अवगाही ॥

[illegible] जो इस सरोवर मे[illegible] जी के जो देव, यक्ष, आदि सतसंग करे । ऐसे मान सरोवर मन [illegible] स्नान करने से कवि की बुद्धि निर्मल हुई ।

[illegible]हृदयं आनंद उछाहू । उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू ॥
[illegible]मग कबिता सरिता सो । राम बिमल जस जल भरिता सो ॥

[illegible] जो [illegible] आनन्द और प्रसन्नता का प्रकाश हुआ प्रेमानन्द का प्रवाह उमंगा, इसी प्रकार मेरे हृदय [illegible] हैं । [illegible] आनन्द भर रहा है उसमें से उमंग कर जो प्रवाह रूपी वाणी की धारा निकली है वही [illegible]रूपी नदी है ।

[illegible] नाम सुमंगल मूला । लोक बेद मत मंजुल कूला ॥
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि । कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि ॥

यह कविता रूपी नदी सरयू है जो मंगल की मूल है लोक और वेद के परम मान्यमत इसके दोनों [illegible]र तट हैं । मानस की कन्या कविता रूपी नदी परम पवित्र है, कलियुग के पाप जो इसके दोनों [illegible]ों के वृक्ष हैं उनको जड़ से उखाड़ने वाली है ।

दो०—श्रोता त्रिबिध समाज पुर ग्राम नगर दुहुं कूल ।
संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल ॥ ५० ॥

[illegible]ीन प्रकार के श्रोताओं का जो समाज है वही इस सरयू नदी के दोनों किनारों पर पुर, गांव और [illegible] और सम्पूर्ण मंगलों का मूल कारण जो सन्तों की सभा है वही इस सरयू के किनारे अनुपम [illegible]री है ॥ ५० ॥

राम भगति सुरसरितहि जाई । मिली सुकीरति सरजु सुहाई ॥
सानुज राम समर जसु पावन । मिलेउ महानदु सोन सुहावन ॥

श्रीरामचन्द्र जी के भक्ति रूपी गंगा की जो सुकृति रूपी सुहावनी सरयू है आकर मिल गई है । [illegible]मण सहित रामचन्द्र जी के संग्राम सम्बन्धी जो पवित्र यश हैं वह शोण महानद आकर इसमें [illegible]

[illegible]ग बिच भगति देवधुनि धारा । सोहति सहित सुबिरति बिचारा ॥
[illegible]बिध ताप त्रासक तिमुहानी । राम सरूप सिंधु समुहानी ॥

[illegible] पवं ये के बीच भक्ति रूपी श्री गङ्गाजी की धारा है जो सुन्दर विचार और वैराग्य सहित शोभा [illegible] वि इसी प्रकार यहां भक्ति, ज्ञान और वैराग्य रूपी त्रिमुहानी श्री रामचन्द्र स्वरूप समुद्र में जाकर

[illegible]नस मूल मिली सुरसरिही । सुनत सुजन मन पावन करिही ॥
[illegible] बिच कथा बिचित्र बिभागा । जनु सरि तीर तीर बन बागा ॥

के [illegible]स की [illegible] सरयू भक्ति रूपी गङ्गा से मिली है जो सुनते ही सज्जनों के मन पवित्र कर देती [illegible] करने [illegible] और कौए [illegible] जो कथा का विचित्र विभाग है वही मानों इस नदी के किनारे वन और बाग हैं ।

ताहि कारन आवत हि मानस-बालकाण्ड

घोंघा, मेढक और सियार के सम अनेक रंग के कमल शोभायमान हैं। अनूप अर्थ सुन्दर
कारण कामी पुरुष कौए और बगुले की और सुगन्ध हैं। श्री सरोव
आते।

आवत एहि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥
कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥

इस सरोवर में आते बहुत कठिनाई है, राम की कृपा बिना आया ही नहीं जाता। कठिन
कुसंग है वही महा भयानक मार्ग है। उन कुसंगियों के जो वचन हैं वही इसमें व्याघ्र सिंह और सर्प

गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

घर के काम जो अनेक जन्जाल हैं वे ही अति दुर्गम बड़े पर्वत है। मोह अर्थात् स्त्री पुत्रादि का
बन्धन मानो उनमें विषय वन है और अनेक प्रकार के कुतर्क मानो भयंकर नदी है।

दो०—जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुं मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥ ४१॥

जो श्रद्धा रूपी खर्च से रहित है अर्थात् जिनके पास श्रद्धा रूपी राह खर्च नहीं है और सन्तों का
साथ नहीं है और जिनको रघुनाथ जी की भक्ति प्रिय नहीं है उनको यह मानस बहुत अगम है॥ ४१

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई॥

जो कष्ट करके उस सर तक पहुंच भी जाये तो जाते ही नींद रूपी जूड़ी आ जाती है जिससे स्न
किये बिना ही घर को लौट आता है।

जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुं न मज्जन पाव अभागा॥
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥

मूर्खता का जाड़ा हृदय में ऐसा कठोर लगता है कि अभागा वहां जाने पर भी स्नान नहीं
पाता सरोवर में न वह स्नान करता है और न उसका जल पीता है, अभिमान सहित लौट आता है।

जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपां बिलोकहिं जेही॥

फिर जो कोई पूछने आया तो सर की निन्दा कर उसको सुनाया कि वहां क्या है। उसको
भी विघ्न नहीं व्यापते हैं जिस पर श्री रामचन्द्र जी कृपा करके देखते हैं।

सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥
ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के राम चरन भल भाऊ॥

और वही आदर पूर्वक इस सरोवर में स्नान करते हैं और महाघोर तीनों तापों से नहीं ज
मनुष्य इस सरोवर को कभी नहीं छोड़ेंगे जिनका राम के चरणों में भला भाव है।

अति ... ना॥
संबुक ...नक से ... बिषय कथा रस नाना॥

उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभांती॥
रघुबर जनम अनंद बधाई। भवंर तरंग मनोहरताई॥

पार्वती और महादेव जी के जो देव, यक्ष, आदि अनेक बराती हैं वे ही इसमें नाना प्रकार के असंख्य जलचर है। रघुनाथजी के जन्म की जो आनन्द बधाई है वही उस नदी की भँवर और मनोहर तरङ्ग है।

दो०—बालचरित चहु बंधु के बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग॥ ५१॥

और चारों भाईयों के जो बाल चरित्र हैं वही रंग-रंग के अनेक कमल हैं और राजा रानी व कुटुम्बी जनों के जो पुण्य हैं वही भ्रमर जलचर हैं॥ ५१॥

सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥

सीता स्वयंबर की जो सुन्दर कथा है वही इस नदी की सुहावनि छवि है। और इस नदी में चतुरतापूर्ण अनेक प्रश्न ही नौकाएं हैं जिनका विवेकपूर्ण उत्तर ही कुशल केवट है।

सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी॥

कथा सुनने के उपरान्त जो वार्ता होती है वही इस नदी तट के यात्रियों का सुन्दर समाज है। परशुराम जी का जो क्रोध है इस नदी की घोर धार है और रामचन्द्र जी की जो मधुर वाणी है वही क्रोधरूपी धारा को रोकने के लिए मनोहर घाट है।

सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥

भाइयों सहित श्रीरामचन्द्र जी के विवाह का उत्सव ही इस नदी की सबको सुख देने वाली उमङ्ग है। कहते और सुनते हुए जो लोग हर्षित और पुलकित होते हैं वही पुण्यात्मा और आनन्दित हो इसमें नहाते है।

राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

रामचन्द्र जी के राजतिलक के निमित्त जो मङ्गल साज है और सब लोग इकट्ठे हुए वही मानों पर्व योग जानकर समाज जुटा है। कैकेयी रानी की कुमति इस नदी की कोई है जिसके फल से बड़ी भारी विपत्ति पड़ी।

दो०—समन अमित उतपात सब भरतचरित जपजाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग॥ ५२॥

उत्पातों की शान्ति करने को जब यज्ञ किया जाता है सो यहां कैकेयी के किए उपद्रव शान्त करने के लिये भरतजी का चरित्र ही जप और यज्ञ है, और कलियुग के पापों का जो वर्णन है वही बगुले और कौए हैं॥५२॥

चौ०—कीरति सरित छहूं रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥

प्रभु की कीर्ति रूपी यह सरयू छह ऋतुओं में भरी रहती है और समय पर अधिक सुहावनी और पवित्र हो जाती है। हिमाचल की पुत्री पार्वती और शिव का ब्याह हिम ऋतु और प्रभु का सुखदायक जन्मोत्सव शिशिर-ऋतु है।

बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बनगवनू। पंथकथा खर आतप पवनू॥

तहां प्रथम मास मार्गशीर्ष में ही श्री रामचन्द्र जी का विवाह हुआ था और विवाह-समाज का जो वर्णन है वही आनन्द मङ्गलमय वसन्त ऋतु है। रामचन्द्रजी का वन-गमन असह्य ग्रीष्म ऋतु है मार्ग की कथा ही तीक्ष्ण धूप और पवन है।

बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥

राक्षसों का घोर युद्ध वर्षा ऋतु है जो देवतागण रूपी धान को मंगल करने वाली है। रामचन्द्र जी के राज का सुख और राजनीति की बड़ाई यही निर्मल और सुखदायक शरद ऋतु है।

सती सिरोमनि सिय गुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥

पतिव्रताओं में शिरोमणि जानकी जी के गुणों की जो कथा है वही गुण वाला निर्मल उपमा रहित जल है। भरतजी का स्वभाव उस जल की शीतलता है, जो सदा एक रस रहती हैं और वर्णन करने में नहीं आती।

दो०—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास॥ ५३॥

चारों भाइयों का देखना, बोलना, मिलना, प्रीति, परस्पर हंसना और अच्छे प्रकार का भाईपन वही इस जल की मधुरता और सुगन्ध है॥५३॥

आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी॥
अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी॥

और जो मेरी अति प्रीति, विनती और दीनता है वही निर्मल जल में ललित लघुता है यह अद्भुत जल जो सुनने से गुण करता है और दुराशारूपी प्यास और मन के विकार को हर लेता है।

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥

यह जल सुन्दर राम प्रेम को पुष्ट करता है और कलियुग के समस्त पापों की ग्लानि को हरता

है। यह जल संसार के परिश्रम को शोषित करने वाला और संतो को सन्तुष्ट करने वाला है।

काम क्रोध मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किए तें। मिटहि पाप परिताप हिए तें॥

काम, क्रोध, मद और मोह को नाश करने तथा निर्मल ज्ञान और वैराग्य को बढ़ाने वाला है। आदर सहित स्नान पान करने से हृदय के पाप और दुःख दूर हो जाते है।

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥

जिन्होंने इस जल से अपना मन नहीं धोया उन आलसी पुरुषों को कलि काल ने नाश कर दिया है। क्योंकि जो लोग इस रामायण रूपी नदी का अमृत जल छोड़ अनन्त आशा रूपी प्यास की शान्ति चाहते हैं वे ऐसे दुखी होते हैं, जैसे हिरण सूर्य की किरणों से चमकती रेत को जल समझ भटकते फिरते हैं।

दो०—मति अनुहारी सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ॥ ५४॥

अपनी बुद्धि के अनुसार इस रामचरितमानस रूपी नदी के परमोत्तम जल के गुणों में मन को स्नान कराकर और भवानी शङ्कर को स्मरण करके मैं (कवि तुलसी दास) अब सुन्दर कथा कहता हूं॥ ५४॥

अब रघुपति पद पंकरुह हियं धरि पाइ प्रसाद।
कहउं जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद॥ ५५॥

रघुनाथ जी चरण कमल को हृदय में धारण कर उनकी प्रसन्नता पाय दोनों मुनिवरों के मिलने का सुन्दर सम्वाद कहता हूं॥५५॥

भरद्धाज जिमि प्रश्न किय, याज्ञवल्क्य मुनिपाय॥
प्रथम मुख्य सम्वाद सोइ, कहिहौं हेतु बुझाय॥ ५६॥

याज्ञवल्क्य मुनि को पाय भरद्वाज मुनि ने जैसे प्रश्न किया पहिले वही मुख्य संवाद का कारण समझा कर कहता हूं॥५६॥

कथारम्भ

चौ०—भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना॥

भारद्वाज मुनि प्रयाग में वास करते हैं जिनकी राम के चरणों में बहुत प्रीति है। तपस्वी शांत स्वभाव, जितेन्द्रिय, दया निधान, मोक्ष के मार्ग बड़े चतुर, अर्थात् ब्रह्म ज्ञान को जानने में परम प्रवीण हैं।

माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं॥

माघ मास में जब मकर की संक्रान्ति होती है, तब सब कोई तीर्थराज प्रयाग में आते हैं। देवता, दानव, किन्नर और मनुष्यों के समूह आदरपूर्वक सबके सब त्रिवेणी में स्नान करते हैं।

पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन॥

बेनी माधव के चरण कमलों की पूजा करते हैं और अक्षयवट का स्पर्श कर प्रसन्न होते हैं। भारद्वाज मुनि का परम पवित्र आश्रम जो अति रमणीय है और मुनियों के मन को भी बहुत अच्छा लगता है।

तहां होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि गुन गाहा॥

वहां मुनि और ऋषियों का समाज होता है, जो तीरथराज प्रयाग में स्नान करने जाते हैं। प्रातःकाल प्रसन्नता से सब लोग स्नान करते हैं और फिर आपस में हरि भगवान् के गुणों की कथा कहते हैं।

दो०—ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग॥ ५७॥

वेदान्त, स्मृति, पुराण अथवा कर्मकाण्ड मीमांसा और तत्वों का विभाग अथवा सांख्य शास्त्र आदि वर्णन करते हैं तथा ज्ञान वैराग्य सहित भगवद् भक्ति कथन करते हैं॥ ५७॥

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं॥
प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा॥

इस प्रकार मकर संक्रान्ति पर्यन्त स्नान करते हैं फिर सब लोग अपने-अपने आश्रम को चले जाते हैं। प्रति वर्ष ऐसा आनन्द होता है, मकर स्नान कर मुनिगण चले जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥

एक बार मकर संक्रांति पर स्नान कर सब मुनीश्वर अपने २ आश्रम को चले गए। उनमें बड़े ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि को भारद्वाज जी ने चरणों पर सिर रख हठ करके ठहरा लिया।

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥

आदर से उनके चरणारविन्द धोकर परम पवित्र आसन पर बैठाया। पूजा कर मुनि का सुयश वर्णन किया। बड़ी प्रशंसा की, फिर बहुत पवित्र कोमल वाणी बोले।

नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्व सबु तोरें॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥

हे नाथ! मेरे मन में एक बड़ा सन्देह है और वेद का सब तत्व तुम्हारी मुट्ठी में है। कहते हुए मुझको भय और लाज लगती है और जो न कहूं तो बड़ा अकाज होता है।

दो०—संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएं दुराव॥ ५८॥

हे प्रभो! सन्त जन नीति कहते हैं और वेद पुराण में भी कहा है कि गुरु से छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता॥ ५८॥

अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥

इस प्रकार विचार कर मैं अपना अज्ञान प्रगट करता हूं, सो हे नाथ! दास पर कृपा कर प्रीति-पूर्वक सन्देह को दूर करो। राम नाम का बड़ा प्रभाव संत, पुराण और उपनिषदों ने वर्णन किया है।

संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं॥

अविनाशी शम्भु (शिव भगवान्) ज्ञान और गुणों के समूह जिस राम नाम को निरन्तर जपते हैं। जगत् में चार प्रकार के जीव हैं जो काशी जी में मरते ही मोक्ष को पाते हैं।

सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया॥
रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥

हे मुनिराज! क्या वह राम नाम की महिमा है जिसे शिवजी कृपा कर काशी जी में राम तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं। हे प्रभु! जिस नाम का यह प्रभाव है वह राम कौन हैं? यह तुमसे पूछता हूं, हे दया निधान! मुझसे कहो।

एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहं दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥

एक राम तो अवध नगर के स्वामी (राजा दशरथ जी के पुत्र हैं) जिनका चरित्र संसार में विख्यात है। स्त्री के विरह में अपार दुःख सहा और क्रोध आने पर रण क्षेत्र में रावण को मारा।

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥ ५९॥

हे प्रभु! राम वही हैं अथवा कोई दूसरे हैं कि जिनको श्री शिवजी जपते हैं। तुम सत्य के धाम और सर्वज्ञ हो, ज्ञान से विचार कर मुझसे कहो॥५९॥

जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥

हे नाथ! जिस उपाय से मेरा यह अज्ञान और भारी भ्रम मिट जाय, वह कथा विस्तारपूर्वक कहो। याज्ञवल्क्यजी हँसकर बोले, कि तुमको रघुनाथ जी की प्रभुताई मालूम है।

रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुं अति मूढ़ा॥

मन कर्म और वाणी से तुम राम के भक्त हो, तुम्हारी चतुरता मैंने जान ली। राम के गूढ़ गुण सुनना चाहते हो और प्रश्न ऐसा किया कि मानो महामूढ़ हो।

तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउं राम कै कथा सुहाई॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥

हे तात! आदर सहित मन लगाकर सुनो। राम की सुन्दर कथा कहता हूं। महा अज्ञान रूपी विशाल महिषासुर को मारने के लिए रामकथा कराल कालिका है।

रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥

रामकथा चन्द्रमा की किरणों के तुल्य है, सन्तरूपी चकोर इसका पान करते हैं। इसी प्रकार पार्वती जी ने शङ्का की थी कि तब महादेवजी ने जिस प्रकार वर्णन किया।

दो०—कहउं सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद॥ ६०॥

वही अपनी बुद्धि के अनुसार पार्वती और शिव का सम्वाद अब मैं कहता हूं यह सम्वाद जिस समय जिस कारण से हुआ उसे सुनकर हे मुनि! सब विषाद मिट जाते हैं॥६०॥

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषी पाहीं॥
संग सती जग जननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥

एक बार त्रेता युग में श्री शिव जी अगत्स्य मुनि के आश्रम को गए। साथ में सती जगत् माता भवानी भी थीं। ऋषि ने सब जगत् का ईश्वर जानकर भगवान् शिव की पूजा की।

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी ॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई ॥

मुनीश्वर श्री अगत्स्यजी ने रामकथा वर्णन किया और महादेवजी ने बहुत सुख मान कर सुना। तब ऋषि ने हरी की सुन्दर भक्ति पूछी तो शिवजी ने उनको हरि भक्ति का अधिकारी पाकर वर्णन किया।

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहां रहे गिरिनाथा ॥
मुनि सन बिदा मांगि त्रिपुरारी। चले भवन संग दच्छकुमारी ॥

रघुनाथ जी के गुणों की कथा कहते-सुनते शिवाजी कुछ दिन वहां रहे। अगस्त्य मुनि से विदा मांगकर दक्ष की पुत्री सती सहित शिवाजी अपने भवन अर्थात् कैलास को चले।

तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा ॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी ॥

उसी समय भूमि का भार उतारने के लिये हरि (भगवान्) ने रघुवंश में अवतार लिया था। पिता का वचन मान राज्य को त्याग करके उदासी हो अविनाशी रामचन्द्र जी दण्डक वन में विचरते थे।

दो०—हृदयं बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएं जान सबु कोइ ॥ ६१ ॥

महादेव जी अपने हृदय में विचार करते हुए जा रहे थे कि किस प्रकार दर्शन हों! प्रभु ने गुप्त रूप से अवतार लिया है। निकट जाने में सब कोई जान जाएंगे, इस कारण मेरा जाना ठीक नहीं है ॥ ६१ ॥

सो०—संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची ॥ ११ ॥

महादेव जी के मन में दर्शन के निमित्त बड़ा क्षोभ हो रहा था पर सतीजी इस भेद को नहीं जानती थीं। तुलसीदास जी कहते हैं कि दर्शन का लोभ था, परन्तु मन में डर था। नेत्र दर्शन के लिए लालची थे ॥ ११ ॥

चौ०—रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा ॥
जौं नहिं जाउं रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा ॥

रावण ने मनुष्य के हाथ से अपना मरना मांगा था। प्रभु ब्रह्मा का वचन सत्य करना चाहते हैं। जो न जाऊं तो पछतावा रहेगा, शिवजी यह विचार करते हैं पर कुछ बनाये नहीं बनता।

एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा ॥

इसी प्रकार महादेवजी शोचवश हुए अर्थात् विचार कर ही रहे थे कि उसी समय रावण मारीच के समीप गया। नीच मारीच को साथ लिया और वह तुरन्त कपट मृग बन गया।

करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥

छल करके मूढ़ रावण ने सीता का हरण किया, प्रभु रामचन्द्र जी का प्रताप उसको विदित नहीं था। हरिण को मार भाई सहित प्रभु लौट आये तो आश्रम को सीता रहित देख नेत्रों में जल भर आया।

बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूं जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥

सीताजी के वियोग में व्याकुल हो मनुष्यों की भांति राम लक्ष्मण दोनों वन में ढूंढते फिरते थे। स्वप्न में भी जिसका संयोग नहीं है उसको विरह का दुःख प्रगट देखा।

दो०—अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयं धरहिं कछु आन॥ ६२॥

रघुनाथ जी के चरित्र अति अद्भुत हैं जिनको बड़े बुद्धिमान लोग जानते हैं, जो मन्द बुद्धि हैं, वे अज्ञानवश अपने हृदय में कुछ और ही धरते हैं अर्थात् अज्ञानी लोग कुछ और ही समझते हैं।

संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियं अति हरषु बिसेषा॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥

शिवजी ने उस समय रामचन्द्र जी को देखा। देखते ही हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। महादेव जी ने नेत्र भर शोभा के सागर श्री रामचन्द्रजी को देखा, कुसमय जानकर पहिचाना नहीं।

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥

और जय सच्चिदानन्द! जय जगपावन! इस प्रकार कहकर काम को भस्म करने वाले श्री शिवजी चल दिए। श्री शिवजी सती सहित चले जाते थे और दर्शन के आनन्व से बारम्बार पुलकित हो रहे थे।

सतीं सो दसा संभु कैं देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥

यह दशा शिवजी की देखकर सतीजी के हृदय में बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हुआ। महादेव जी जगत के वन्दनीय और स्वामी हैं, देवता, मनुष्य, और मुनि सब इनको शिर नवाते हैं।

तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुं प्रीति उर रहति न रोकी॥

उन्होंने राजपुत्र को सच्चिदानन्द परम धाम कहकर प्रणाम किया और उस राजकुमार की छवि

को देखकर ऐसे मग्न हो रहे हैं कि अब भी हृदय में प्रीति रोकने से भी नहीं रुकती।

दो०—ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥ ६३॥

जो ब्रह्मा सर्व व्यापक, माया रहित-अजन्मा, कला रहित, इच्छा से हीन, अभेद अर्थात् जिसका भेद कोई नहीं जानता है क्या वह शरीर धारण कर मनुष्य होगा कि जिसको वेद भी नहीं जानते॥ ६३॥

चौ०—बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥

यदि विष्णु भगवान् ने देवताओं के निमित्त मनुष्य शरीर धारण किया है तो वे भी ऐसे ही सर्वज्ञ हैं जैसे शिवजी हैं। क्या वह अज्ञानियों के समान स्त्री को ढूंढते फिरते हैं। असुरों के शत्रु श्रीपति भगवान् ज्ञान के धाम हैं।

संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयं प्रबोध प्रचारा॥

फिर शम्भुजी की वाणी मिथ्या नहीं हो सकती, शिवजी सर्वज्ञ हैं सब कोई जानते हैं। इसी कारण सतीजी के मन में बड़ा भारी सन्देह हुआ, हृदय में ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ।

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ॥

यद्यपि सतीजी ने अपने मन की बात प्रगट नहीं की तथापि अन्तर्यामी शिवजी ने सब जान लिया। शिवजी बोले सुनो सती! तुम्हारा स्त्री का स्वभाव है। ऐसी शंका कभी अपने मन में मत करना।

जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई।
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

जिसकी कथा अगस्त्य ऋषि ने वर्णन की और जिसकी भक्ति मैंने मुनि को सुनायी। वही हमारे इष्टदेव रघुनाथ जी हैं, जिनकी सेवा सब देवता धीर मुनि लोग निरन्तर करते हैं।

॥ हरिगीत छन्द ॥

छं०—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

मुनि धीर, योगी, सिद्ध पुरुष जिस प्रभु का निर्मल मन से निरन्तर ध्यान करते हैं और वेद, अठारहों पुराण तथा छहों शास्त्र नेति-२ कहकर जिस प्रभु की कीर्ति गाते हैं। हे सती! वही यह राम

हैं। सबमें व्यापक ब्रह्म हैं और सम्पूर्ण भुवनों के पति, माया के धनी अपने भक्त-जनों के हितार्थ अपनी इच्छा के अनुसार सदा अखण्ड रूप से अवतार लेते हैं।

सो०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवं बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियं॥ १२॥

यद्यपि शिवजी ने बहुत बार सतीजी से कहा, तथापि हृदय में एक भी उपदेश नहीं लगा तब महादेव जी हरि (भगवान्) की माया का बल जान हंस कर बोले॥ १२॥

चौ०—जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउं बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥

हे सती! यदि तुम्हारे मन में अत्यन्त सन्देह है तो जाकर परीक्षा क्यों न ले लो। उस समय तक मैं बट की छाया में बैठा रहूंगा, जब तक तुम मेरे समीप न आओगी।

जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई॥

जिससे तुम्हारा अज्ञान और भारी भ्रम दूर हो जाये, वह उपाय अपने ज्ञान से विचारकर करो। शिवजी की आज्ञा पा सती चली और विचार करने लगी कि अब क्या उपाय करूं, कैसे परीक्षा ली जाय।

इहां संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुं नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥

इधर सतीजी यह विचार कर रही थी और उधर शिवजी ने मन में यह विचार किया कि सती का कल्याण नहीं है। क्योंकि मेरे कहने से भी संशय नहीं गया तो दैव ही विपरीत है। इसमें भलाई नहीं है।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गई सती जहं प्रभु सुखधामा॥

वही होगा जो राम ने रच रक्खा है, तर्क करके बात कौन बढ़ावे अर्थात् हमारा विचार करना वृथा है। ऐसे कह भगवान् का नाम जपने लगे, सतीजी वहां गई जहां सुख के धाम प्रभु थे।

दो०—पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप॥ ६४॥

बारम्बार हृदय में विचारकर सीताजी का रूप धारण करके जिस मार्ग से श्री रामचन्द्रजी आ रहे थे उसी मार्ग से चलीं॥ ६४॥

चौ०—लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयं बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा॥

लक्ष्मण जी सती को सीता का वेष बनाये देख चकित हृदय हो गये और मन में बड़ा सन्देह हुआ

परन्तु लक्ष्मणजी अति गम्भीर होने से कुछ कह नहीं सकते। प्रभु का स्वभाव जानते हैं और मति धीर है।

सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना॥

सतीजी का कपट वेष श्री रामचन्द्र जी ने जान लिया क्योंकि देवताओं के स्वामी रामचन्द्रजी समदर्शी हैं। जिस प्रभु के स्मरण से अज्ञान का नाश हो जाता है वही सर्वज्ञ रामचन्द्र जी थे।

सती कीन्ह चह तहंहुं दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
निज माया बलु हृदयं बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी॥

सती ने वहां भी अपने को छिपाना चाहा, देखो स्त्री के स्वभाव का प्रभाव है। अपनी माया का बल हृदय में बखानकर रामचन्द्रजी हंसकर अति कोमल वाणी से कहने लगे।

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहां बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

हाथ जोड़कर प्रभु ने सतीजी को प्रणाम किया और पिता सहित अपना नाम लिया। फिर कहने लगे शिवजी कहां हैं और तुम वन में अकेली किस कारण फिरती हो?

दो०—राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयं बड़ सोचु॥ ६५॥

राम के कोमल और गूढ़ वचन को सुनकर सतीजी के मन में बड़ा संकोच हुआ तब सतीजी डरकर शिवजी के निकट चलीं परन्तु हृदय में सोच था कि अपने स्वामी शंकर जी से क्या बात बताऊंगी॥ ६५॥

मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहउं काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥

मैंने शंकर भगवान् का कहना नहीं माना और अपने अज्ञान से राम के समीप परीक्षा लेने आई। अब जाकर क्या उत्तर दूंगी। हृदय में बड़ा दारुण दाह उत्पन्न हुआ।

जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता॥

जब रामचन्द्र जी ने जाना कि सती को दुःख हुआ, तब अपना कुछ प्रताप प्रत्यक्ष प्रगट किया। सतीजी ने मार्ग में जाते-जाते यह कौतुक देखा कि आगे रामचन्द्र जी सीता लक्ष्मण सहित जा रहे हैं।

फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा।
जहं चितवहिं तहं प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥

फिर पीछे देखा, तो रामचन्द्र भाई लक्ष्मण और जानकी सहित सुन्दर वेष में दिखाई दिये।

जहां देखती हैं, वहीं प्रभु रामचन्द्र जी विराजमान हैं और प्रवीण सिद्ध मुनीश्वर सेवा कर रहे हैं।

देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥

सती जी ने प्रभु के प्रत्येक रूप के पास एक एक शिव और ब्रह्मा, विष्णु को देखा जिनमें एक से एक का प्रभाव अधिक था। चरणों में प्रणाम करते और प्रभु की सेवा करते भांति भांति के वेष वाले सब देवता सतीजी ने देखे।

दो०—सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप॥ ५४॥

सती, सरस्वती, लक्ष्मी असंख्य और अनुपम रूप वाली देखी जिस जिस वेष में ब्रह्मा आदि देवता थे। उसी वेष के अनुसार स्वरूप धारण कर रही थी॥ ६६॥

देखे जहं तहं रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥

जहां जितने रामचन्द्र जी थे, वहां उतने ही सब देवता शक्तियों सहित देखे। जितने चराचर जीव संसार में थे, वे सब अनेक प्रकार के दिखलाई दिये।

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥

सब देवता अनेक प्रकार के वेष बनाये प्रभु का पूजन कर रहे थे परन्तु उनमें रामचन्द्र जी का रूप दूसरा नहीं देखा। सीता सहित बहुतेरे रामचन्द्र जी भी देख पड़े, पर वेष बहुत सा न देखा।

सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता। देखि सती अति भई सभीता॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूदि बैठीं मग माहीं॥

जहां देखा वहीं राम, वही लक्ष्मण वही सीता, यह कौतुक देखकर सतीजी बहुत भयभीत हुई। हृदय कांपने लगा, देह की कुछ सुधि नहीं रही, नेत्र मूंदकर राह में बैठ गईं।

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहं दच्छकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा। चलीं तहां जहं रहे गिरीसा।

फिर नेत्र खोलकर देखा तो वहां सतीजी को कुछ नहीं दिखाई दिया। तब बारम्बार रामचन्द्र जी के चरणों में सिर झुकाकर सतीजी वहां चलीं जहां शिवजी बैठे थे।

दो०—गईं समीप महेस तब हंसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात॥ ६७॥

जब शिवजी के निकट गई तब शिवजी ने हंसकर कुशल पूछा और कहा कि हे सती! तुमने किस प्रकार परीक्षा ली, वह सब बात कहो॥ ६७॥

सतीजी ने ... को समझकर डर के मारे शिव जी से छि
स्वामी ! मैंने कुछ परीक्षा नहीं लीं । तुम्हारे ही समान प्रणाम किया ।

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई । मोरें मन प्रतीति अ
तब संकर देखेउ धरि ध्याना । सतीं जो कीन्ह चरित सबु जा

जो तुमने कहा वह झूठ नहीं होगा, मेरे हृदय में ऐसा पूरा विश्वास है, तब शिवजी ने कुछ नहीं जान कर देखा तो सतीजी ने जो चरित्र किया था, वह सब जान लिया ।

बहुरि राममायहि सिरु नावा । प्रेरि सतिहि जेहिं झूठ कहा पारा ॥
हरि इच्छा भावी बलवाना । हृदयं बिचारत संभु ...जाना ॥

फिर रामचन्द्र जी की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा कर ... र जाऊंगी । मैंने पहले भगवान् की इच्छा होनहार बलवान है, शिवजी हृदय में यह विचार करने ।

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा । सिव उर भयउ ...हा सोइ कीन्हा ॥
जौं अब करउं सती सन प्रीती । मिटइ भगति पथु ...यावसि मोही ॥

सती ने सीता का वेष बनाया यह जानकर शिवजी के हृदय में बड़ा दुः... । हे विधाता अब तुमको करने लगे कि जो अब सती से प्रीति करूं तो भक्ति का मार्ग नष्ट हो ...

दो०—परम पुनीत न जाइ तजि किएं प्रेम बड़ पापु । ... सुमिर सयानी ॥
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयं अधिक संतापु ॥ ...द जसु गावा ॥

बहुत प्रीति होने के कारण त्यागी नहीं जाती और प्रेम करने से बड़ ... मन में रामचन्द्रजी को स्मरण जी ने प्रकट तो कुछ भी नहीं कहा, पर हृदय में बहुत दुखित हुए ॥ ६८ ॥

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा । सुमिरत रामु ...ह यह मोरी ।
एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं । सिव संकल्पु क... सत्य ब्रतु एहू ॥

उसी समय शिवजी ने प्रभु के चरणों में सिर नवाया, तो राम कहे ... नहीं है, ...री यह देह छट जावे । जो मेरा में उत्पन्न हुआ, कि इस शरीर ... कर लिया ...

अस बिचारि संकरु मति धीरा । चले भवन सुमिरत ... ७१ ॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई । ... शीघ्र मेरी मृत्यु हो और

धीर बुद्धि वाले शिवजी ऐसा विचार कर रघुनाथ जी ... भक्ति
चलते समय सुन्दर आकाश वाणी हुई कि हे शिव ! तुमने ...

... दारुन दुखु भारी ॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना । रघुगत ... सिव संभु अबिनासी ॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा । ... त थी, जिसका वर्णन नहीं किया जा ... न समाधि छोड़ी ।

राम नाम सिव सुमिरन लागे । जानेउ सतीं जगतपति जागे ।
जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा । सनमुख संकर आसनु दीन्हा ॥

शिवजी राम का नाम स्मरण करने लगे, तब सती ने जाना कि शिवजी समाधि से जागे हैं । निकट जाकर शिवजी के चरण को प्रणाम किया तब शिवजी ने अपने सम्मुख आसन दिया ।

...ना। सत्यधाम

...छा बहु भांती। तदपि न कहेउ ...पुर आराती॥

जहां देखती हैं, वहीं प्रभु रा...मौन प्रण किया है। हे प्रभु आप सत्य के धाम दीन दयालु हो यद्यपि सतीजी

देखे सि... ...फिर भी शिवजी ने कुछ नहीं कहा।

बंदत ...तीं हृदयं अनुमान किय सबु जानेउ सबंग्य।

...न्ह कपट मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य॥ ६९॥

सती जी ने...

एक का प्रभाव अ...जी ने अपने मन में अनुमान किया कि सर्वज्ञ प्रभु ने सब जान लिया। मैंने शिवजी से

सब देवता सतीजी...ी कारण स्त्रियां स्वाभाविक जड़ और अज्ञ कही गई हैं॥ ६६॥

दो०—सती ...िय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।

जेहिं जेहिं बेष अ... ...गाइ कपट खटाई परत पुनि॥ १२॥

सती, सरस्वती, लक्ष्मी अस... ...र जल बिकता है। प्रीति की रीति ऐसी अच्छी होती है परन्तु

थे। उसी वेष के अनुसार स्वरूप... ...जाता है और रस चला जाता है॥ १२॥

देखे जहं त... ...करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी॥

जीव चराचर ... ...गाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥

जहां जितने रामचन्द्र जी ...सती ...न में शोच और बड़ी चिन्ता हुई जो कही नहीं जा सकती।

जीव संसार में थे, वे सब अनेक प्र...र हैं। मेरे अपराध को उन्होंने प्रगट नहीं किया।

पूजहिं प्रभुहि देव ...के ...भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयं अकुलानी॥

अवलोके रघुपति ...छु कहि जाई। तपइ अवां इव उर अधिकाई॥

सब देवता अनेक प्रकार के वेष... ...े जान गई कि प्रभु ने मुझे त्याग दिया, इससे मन में बहुत घबड़ाहट

दूसरा नहीं देखा। सीता सहित बहुतेरे... ...छु कहा नहीं जाता। कुम्हार के आंवे की भांति भीतर ही भीतर

सोइ रघुबर सोइ लछिमन... ...कहीं कथा सु... ...॥

...जान ...केतु।

हृदय कंप तन सुधि... ...बिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुंचे कैलासा॥

जहां देखा वहीं राम, वही... ...कर कहने लगे। मार्ग में अनेक प्रकार का

हृदय कांपने लगा, देह की कुछ सुधि... ...जानकर सुख...

...जी कैला... ...। बैठे बट तर करि कमलासन॥

बहुरि बिलोकेउ नयन उ...सम्हा। लागि समाधि अखंड अपारा॥

पुनि पुनि नाइ राम पद सी...को स...कर बट के नीचे कमलासन में बैठ गये, शिवजी ने

फिर नेत्र खोलकर देखा तो वहां सती... ...कया, जिसे अखण्ड और अपार समाधि लग गई।

जी के चरणों में सिर झुकाकर सतीजी वहां च...

दो०—गईं समीप महेस तब हंसि पूछी कुसल...

लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात॥ ६७॥

जब शिवजी के निकट गई तब शिवजी ने हंसकर कुशल पूछा और कहा कि हे सती! तुमने किस प्रकार परीक्षा ली, वह सब बात कहो॥ ६७॥

दो०—सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं ॥ ७० ॥

तब सतीजी कैलास में रहने लगीं। मन में अधिक सोच होने लगा। यह मर्म कोई कुछ नहीं जान सका। युग के समान दिन बीतने लगे ॥ ७० ॥

नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउं दुख सागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना ॥

नित्य नया सोच सती के मन में बढ़ रहा था कि कब इस दुःख सागर से पार जाऊंगी। मैंने पहले तो रघुनाथजी का अपमान किया, और फिर पति के वचन को झूठ जाना।

सो फलु मोहि बिधातां दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही ॥

उसी का फल ब्रह्मा ने मुझको देकर जो कुछ उचित था, वही किया है। हे विधाता अब तुमको ऐसा उचित नहीं है कि शिवजी से विमुख करके मुझको जिलावो।

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुं रामहि सुमिर सयानी ॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा ॥

सती के मन की ग्लानि कुछ कही नहीं जाती। सयानी सती ने मन में रामचन्द्रजी को स्मरण किया। जो प्रभु दीनदयाल कहलाते हैं तथा वेद जिनका यश गाते हैं।

तौ मैं बिनय करउं कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी।
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू ॥

तो मैं हाथ जोड़कर प्रभु से विनती करती हूं कि शीघ्र ही मेरी यह देह छूट जावे। जो मेरा शिवजी के चरण में स्नेह है और मन कर्म वाणी से यह सच्ची प्रतिज्ञा है।

दो०—तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥ ७१ ॥

तो हे समदर्शी प्रभु ! सुनो, शीघ्र यह उपाय करो कि जिससे बिना श्रम शीघ्र मेरी मृत्यु हो और यह दुःसह विपत्ति नाश हो जाय ॥ ७१ ॥

एहि बिधि दुखित प्रजेस कुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी ॥
बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी ॥

इस प्रकार प्रजापति दक्ष की कन्या सतीजी ऐसी दुखित थी, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्तासी सम्बत बीतने पर अविनासी शिवजी ने समाधि छोड़ी।

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे।
जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा ॥

शिवजी राम का नाम स्मरण करने लगे, तब सती ने जाना कि शिवजी समाधि से जागे हैं। निकट जाकर शिवजी के चरण को प्रणाम किया तब शिवजी ने अपने सम्मुख आसन दिया।

लगे कहन हरिकथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥

और भगवान की सरस कथा कहने लगे। उसी समय दक्ष को प्रजापति की पदवी मिली। ब्रह्मा जी ने विचार कर सब लायक देखा तो दक्ष जी को प्रजापति (नायक) का पद दिया।

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदयं तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

दक्ष को जब बड़ा अधिकार मिला तब हृदय में बहुत अभिमान आ गया। जगत में कोई ऐसा नहीं जन्मा, जिसको प्रभुता पाकर घमण्ड नहीं होता है।

दो०—दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग॥ ७२॥

तब दक्ष प्रजापति ने मुनियों को बुलाया और हरद्वार कनखल क्षेत्र में गंगा जी के तट पर बहुत बड़ा यज्ञ करने लगे। आदर सहित सब देवताओं को न्यौता दिया जो यज्ञ में भाग पाते हैं॥ ७२॥

किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥

किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व आदि सब देवता अपनी २ स्त्रियों सहित दक्ष जी के यज्ञ को चले। विष्णु, ब्रह्मा और महादेव जी को छोड़कर सब देवता अपने २ विमानों में बैठकर चले।

सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥

सतीजी ने देखा कि आकाश में अनेक सुन्दर २ विमान चले जा रहे हैं। जिस पर बैठी देवांगनायें सुन्दर गान करती जाती हैं जिनका गान सुनते ही मुनियों के ध्यान छट जाते हैं।

पूछेउ तब सिवं कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥

पूछने पर शिवजी ने सब समाचार वर्णन किया, पिता का यज्ञ सुनकर सतीजी प्रसन्न हुई। सती जी सोचने लगीं कि यदि शिवजी आज्ञा दें तो कुछ दिन इसी बहाने पिता के घर जाकर रहूं।

पति परित्याग हृदयं दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी॥
बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी॥

पति के परित्याग का हृदय में बड़ा दुःख था परन्तु अपना अपराध समझकर कुछ नहीं कह सकी। फिर सतीजी भय, संकोच और प्रेम रस से युक्त मनोहर वाणी बोली।

दो०—पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउं कृपायतन सादर देखन सोइ॥ ७३॥

हे प्रभु ! पिता के घर भारी उत्सव है, यदि आज्ञा हो तो हे कृपानिधान ! मैं आदर सहित उसको देखने जाऊं ॥ ७३ ॥

कहेहु नीक मोरेहुं मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं। हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं ॥

सतोजी का वचन सुन शिवजी ने कहा कि तुमने अच्छी बात कही। मुझे भी अच्छी लगी पर यह अनुचित है कि तुमको न्यौता नहीं भेजा। दक्ष ने अपनी सब कन्याओं को बुलाया किन्तु हमारे बैर के कारण तुमको भुला दिया।

ब्रह्मसभां हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुं करहिं अपमाना ॥
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी ॥

ब्रह्मा की सभा में हमसे दुःखित हुए इसलिए अब भी हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी ! यदि बिना बुलाए जाओगी, तो शील-स्नेह जाता रहेगा और प्रतिष्ठा भी नहीं होगी।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुं न संदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहं कोई। तहां गएं कल्यानु न होई ॥

यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाये जाने में कुछ बुराई नहीं है, तो भी जहां विरोध माने, वहां जाने से कल्याण नहीं होता।

भांति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएं। नहिं भलि बात हमारे भाएं ॥

अनेक भांति शिवजी ने समझाया, पर भावी हृदय में कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। शिवजी ने कहा कि जो बिना बुलाए जाओगी, तो हमारी सम्मत्ति में यह बात अच्छी नहीं है।

दो०--कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥ ७४ ॥

शिवजी ने बहुत यत्न से कहकर देखा कि सती नहीं मानतीं, तब शिवजी ने अपने मुख्य गण साथ कर सती को विदा किया ॥ ७४ ॥

पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुं न सनमानी ॥
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता ॥

पिता के घर जब सती गईं, तब दक्ष के भय से किसी ने सम्मान नहीं किया। केवल माता भले ही आदर से मिलीं और बहिनें बहुत मुसकाती हुई मिलीं।

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहुं न दीख संभु कर भागा ॥

दक्ष ने कुछ कुशल तक नहीं पूछी, सती को देखकर सब अंग जलने लगा। सतीजी ने जाकर वहां यज्ञशाला को देखा तो उसमें शिवजी का भाग कहीं भी न दीख पड़ा।

तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ॥
पाछिल दुखु न हृदयं अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥

तब जो कुछ शिवजी ने कहा था, चित्त पर चढ़ा अपने स्वामी का अपमान समझ सती जी का हृदय जल गया। पिछला दुःख सती के हृदय में ऐसा नहीं हुआ था, जैसा कि इस समय दुःख हुआ।

जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति अवमाना॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा॥

यद्यपि संसार में अनेक प्रकार के दारुण दुःख हैं तथापि सब में कठिन जाति का अपमान है। यह समझकर सती को बड़ा क्रोध हुआ। उस समय माता ने बहुत प्रकार से समझाया।

दो०—सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयं न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध।॥ ७५ ॥

तो भी सती से शिव का अपमान नहीं सहा गया, जिससे हृदय में कुछ ज्ञान नहीं होता, तब सब सभा को हठपूर्वक यज्ञ कर्म से रोक कर क्रोध के साथ यह वचन बोली॥ ७५॥

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा॥
सो फलु तुरत लहब सब काहूं। भली भांति पछिताब पिताहूं॥

हे सभासदों! हे मुनीश्वरों! सुनो, जिन्होंने शिवजी की निन्दा की और उसे सुना है। उसका फल तुरन्त सबको मिलेगा और मेरा पिता भी भली भांति पछतावेंगे।

संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहां तहं असि मरजादा॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई॥

संत, शिव और विष्णु भगवान की निन्दा जहां सुने वहां ऐसी मर्यादा है कि जो अपना बस चले तो उसकी जीभ काट ले और न काट सके तो कान बन्द करके वहां से भाग जाय।

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥

जगत के आत्मा महेश त्रिपुरा सुर के मारने वाले जगत् के पिता सबके हितकारी महादेवजी हैं। ऐसे शिव की निन्दा हमारे मंदमति पिता करते हैं, जिस पिता के वीर्य से उत्पन्न यह शरीर है।

तजिहउं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

इस कारण इस शरीर का अभी त्याग करूंगी अपने स्वामी को हृदय में धारण कर जिनके मस्तक पर चन्द्रमा है। यह कहकर योग की अग्नि से शरीर को जला दिया तब यज्ञ में हा हाकार हो गया।

दो०—सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस ॥ ७६ ॥

सती जी का मरण सुनकर शिवजी के गण यज्ञ को विध्वंस करने लगे, यज्ञ का विध्वंस होना देख कर मुनीश्वर भृगुजी ने यज्ञ की रक्षा की ॥ ७६ ॥

समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोप पठाए ॥
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा ॥

जब शिवजी ने समाचार पाया तब क्रोधित होकर वीरभद्र को भेजा। वीरभद्र ने यज्ञ में जा यज्ञ को विध्वंस कर दिया और देवताओं को जिसने जैसा किया था, उसको वैसा फल दिया।

भै जगबिदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई ॥
यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संछेप बखानी ॥

जगत् में प्रसिद्ध है कि अभिमानी दक्ष की वही गति हुई, जैसी शिवजी से विरोध करने वाले की होती है। यह इतिहास जगत् में प्रसिद्ध है इसलिए मैंने संक्षेप में वर्णन किया है।

सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा ॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई ॥

सती जी ने मरते समय भगवान से यही वर मांगा कि जन्म-जन्म शिवजी के चरणों में स्नेह रहे। इस कारण हिमाचल के घर जाकर जन्म हुआ और पार्वती के नाम से शरीर धारण किया।

जब तें उमा सैल गृह जाईं। सकल सिद्धि संपति तहं छाईं ॥
जहं तहं मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हें। उचित बास हिम भूधर दीन्हें ॥

जब पार्वती हिमाचल के घर आईं तब से वहां सब सिद्धि और सम्पदा छा गई। जहां तहां मुनियों ने सुन्दर आश्रम बना लिया और हिमाचल ने भी उन लोगों को उचित स्थान दिया।

दो०—सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भांति ॥ ७७ ॥

सदा फूल फल सहित नाना प्रकार के नवीन वृक्ष हुए और बहुत प्रकार के मणियों की खानें सुन्दर पर्वत पर प्राप्त हुईं ॥ ७७ ॥

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥

सब नदियों में निर्मल जल बहने लगा, पशु, पक्षी और भ्रमरगण सुख से रहने लगे। स्वाभाविक बैर सब जीवों ने छोड़ दिया और उसी पर्वत पर सब प्रेमपूर्वक रहने लगे।

सोह सैल गिरिजा गृह आएं। जिमि जनु रामभगति के पाएं॥
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू॥

पार्वती जी का हिमाचल के यहां जन्म लेने से शोभा ऐसी हुई जैसे राम की भक्ति को पाकर मनुष्य शोभायमान होता है। नित नवीन मंगल उसके घर में है जिसका यश ब्रह्मा आदि गाते हैं।

नारद समाचार सब पाए। कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसनु दीन्हा॥

नारद जी ये सब समाचार पा कौतुक से हिमाचल के घर पधारे। राजा हिमाचल ने बड़ा आदर किया और चरण धोकर श्रेष्ठ आसन दिया।

नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥

स्त्री सहित नारद मुनि के चरणों में शिर नवाया और चरणोंदक लेकर सब घर को पवित्र किया। हिमाचल से अपना सौभाग्य बहुत वर्णन किया और कन्या बुलाकर मुनि के चरणों पर रख दी।

दो०—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदयं बिचारि॥ ७८॥

और पूछा कि हे नारद मुनि! आप भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञाता हैं, सर्वज्ञ हैं, आपको गति सर्वत्र है। हे मुनिराज! अपने हृदय में विचार कर इस कन्या के दोष और गुण कहिये॥ ७८॥

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी।
सुन्दर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी॥

नारद मुनि हंस कर गूढ़ और कोमल वाणी से बोले कि तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। यह कन्या सुन्दरी, सुशील तथा चतुर होगी, इसका उमा, अम्बिका और भवानी नाम होगा।

सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता॥

यह कन्या सब लक्षणों से संपन्न सदा अपने पति को प्यारी होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा और इससे इसके माता-पिता यश पावेंगे।

होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा॥

सब जगत में यह पूज्य होगी। इसकी सेवा में कुछ दुर्लभ नहीं रहेगा। इसका नाम स्मरण करके संसार में स्त्रियां पतिव्रत रूपी खंग की धार पर चढ़ेंगी।

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥

हे हिमाचल ! तुम्हारी कन्या सुलक्षण है, जो दो चार अवगुण हैं उन्हें अब सुनो। निर्गुण, मान-रहित, माता-पिता से हीन, उदासीन और सब सन्देह से क्षीण।

दो०–जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहं मिलिहि परी हस्त असि रेख॥ ७९॥

योगी, जटाधारी, कामना से रहित, मतवाला, नग्न, अमंगल वेष स्वामी इसको मिलेगा इसके हाथ में ऐसी रेखा पड़ी है॥ ७९॥

सुनि मुनि गिरा सत्य जियं जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी॥
नारदहूं यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥

नारद जी की वाणी सुन हृदय में सच्चा जानकर राजा रानी दोनों दुखित हुए और पार्वती जी प्रसन्न हुईं। यह भेद नारद जी ने भी नहीं जाना, दशा सबकी एक सी हुई, पर समझ में पृथक थी।

सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयं धरि राखा॥

सब सखी, पार्वती, राजा हिमाचल और रानी नयना इन सबका शरीर पुलकायमान हो गया। नेत्रों में जल भर आया। देव ऋषि की वाणी मिथ्या नहीं होगी। यह समझ कर पार्वती जी ने नारद का वचन अपने मन में रख लिया।

उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछंग बैठी पुनि जाई॥

शिवजी के चरण कमल में प्रेम उपजा, पर मिलना कठिन है मन में यह सन्देह हुआ। कुसमय जानकर प्रीति को छिपा लिया और फिर अपनी सखी की गोद में जाकर बैठ गई।

झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखीं सयानी॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ॥

देव ऋषि नारद जी की वाणी मिथ्या नहीं होगी, इस प्रकार राजा रानी और सखियां चिन्ता करने लगीं। हृदय में धैर्य धारण कर गिरिराज ने कहा कि हे नाथ! अब इसका क्या उपाय किया जाय, वह कहिये।

दो०–कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥ ८०॥

यह सुनकर नारद मुनि ने कहा कि हे हिमवन्त ! सुनो, ब्रह्मा ने जो भाग्य में लिखा है, उसको देव, दैत्य, मनुष्य, नाग, मुनि कोई मिटाने वाला नहीं है॥ ८०॥

तदपि एक मैं कहउं उपाई। होइ करै जौं दैउ सहाई॥
जस बरु मैं बरनेउं तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥

तो भी एक उपाय मैं कहता हूं यदि दैव सहाय करे तो सिद्ध हो जायेगा। जैसा वर मैंने तुमसे कहा है, वैसा वर पार्वती जी को मिलेगा इसमें कुछ संदेह नहीं है।

जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥

वर के जितने दोष वर्णन किए हैं वह सब मुझको शिवजी में मिलते हैं। जो शिवजी के साथ विवाह होगा तो सब दोषों को भी गुणों के समान सब लोग कहेंगे।

जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहं मंद कहत कोउ नाहीं॥

विष्णु भगवान यदि सर्प की शैय्या पर शयन करते हैं तो विद्वान जन उनको दोषी नहीं ठहराते। सूर्य और अग्नि सभी रसों को खाते हैं पर उनको कोई बुरा नहीं कहता।

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहुं नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं।

अच्छा और खराब पानी बहने पर भी गंगा जी को कोई अपवित्र नहीं कहता है। हे गिरीश! सूर्य, अग्नि और गंगा जी के समान सामर्थ्यवान को कुछ दोष नहीं है।

दो०—जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुं जीव कि ईस समान॥ ८१॥

ऐसी ही ईर्ष्या जो अभिमानी और अज्ञानी मनुष्य करते हैं तो एक कल्प नरक में पड़ते हैं क्योंकि जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है॥ ८१॥

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुं न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें। ईस अनीसहि अंतरु तैसें॥

मदिरा को गंगाजल से बना जानकर भी अच्छे मनुष्य उसको कभी नहीं पीते। पर गंगा जी में वह मिलकर पवित्र हो जाता है, उसी तरह ईश्वर और जीव में भेद है।

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहं सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएं कलेसू॥

शिव भगवान् स्वभाव ही से समर्थ हैं इस विवाह के करने से सब प्रकार से कल्याण होगा यद्यपि श्री शंकरजी का मिलना कठिन है परन्तु तप से वह बहुत जल्दी प्रसन्न होते हैं।

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहं सिव तजि दूसर नाहीं॥

यदि तुम्हारी कन्या तप करे तो शिवजी भावी को भी मिटा सकते हैं। यद्यपि संसार में अनेक वर हैं तथापि इसके लिये शिवजी के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।

बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥

वह वर देने वाले, भक्तों के कष्टनाशक सेवक के मन को आनन्द देने वाले हैं। बिना शिवजी की आराधना किए करोड़ों योग और जप के साधन से भी प्राणी इच्छित फल नहीं पा सकता।

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस॥ ८२॥

ऐसा कह नारद जी ने भगवान का स्मरण कर पार्वती जी को आशीर्वाद दिया और कहा कि अब इसका कल्याण होगा। हे गिरिराज! संदेह त्याग दो, अर्थात किसी बात की शँका मत करो॥ ८२॥

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना॥

इतना कहकर नारद मुनि ब्रह्म लोक को चले गये, आगे जैसा चरित्र हुआ उसे सुनो। अपने पति को एकान्त में पाकर रानी मैना ने कहा कि हे नाथ! नारद मुनि की बात को मैं नहीं समझ सकी।

जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी॥

यदि घर, वर, कुल अनुपम कन्या के योग्य हो तो विवाह कीजिये। नहीं तो कन्या भले ही कुमारी रहे, हे कन्त! मेरी पार्वती मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी है।

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू॥
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू॥

यदि पार्वती के योग्य वर नहीं मिलेगा तो सब लोग यही कहेंगे कि पर्वत तो स्वभाव से ही जड़ होते हैं। हे स्वामी! यह विचार कर विवाह करना, जिससे फिर मन में सोच विचार न हो।

अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं॥

इतना कहकर चरणों पर शिर रख दिया, तब स्नेह सहित गिरिराज बोले, कि चाहे चन्द्रमा में अग्नि प्रगट हो जाय परन्तु नारद जी का वचन असत्य नहीं हो सकता।

दो०—प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्रीभगवान।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान॥ ८३॥

हे प्यारी! सब सोच विचार दूर कर श्री भगवान् का स्मरण करो, जिसने पार्वती जी को बनाया है वही परमात्मा कल्याण करेगा॥ ८३॥

अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायं न मिटिहि कलेसू॥

अब जो तुम को कन्या पर स्नेह हो तो इस प्रकार शिक्षा दो कि वह तप करे जिससे महादेव जी मिलें, दूसरे किसी उपाय से कलेश दूर नहीं होगा।

नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सब गुन निधि बृषकेतू॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भांति संकरु अकलंका॥

नारद मुनि का उपदेश सारगर्भित और कारणयुक्त है, शिवजी सुन्दर और सब गुणों की खान हैं। यह विचार कर सब शंका त्याग दो, शिवजी सब प्रकार से कलंक रहित हैं।

सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥

पति का वचन सुन मन प्रसन्न होकर रानी मैना तुरन्त वहां से उठकर पार्वती के समीप गईं। पार्वतीजी को देख नेत्रों में जल भर कर, स्नेह सहित गोद में बिठा लिया।

बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई॥
जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी॥

बारम्बार हृदय में लगाती और कंठ गद्गद् हो जाने के कारण कुछ कहा नहीं जाता। जगत् माता अर्न्तयामी पार्वतीजी माता को सुख देने वाली बात कोमल वाणी से बोलीं।

दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउं तोहि।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि॥ ८४॥

सुनो, माता मैंने स्वप्न देखा है जो तुमको सुनाती हूं सुन्दर गौर वर्ण उत्तम ब्राह्मण ने मुझ को ऐसा उपदेश किया है॥ ८४॥

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा।

हे पार्वती! तुम जाकर तप करो जो नारदजी ने कहा है उसे सत्य मानो तुम्हारे माता पिता ने भी यह सम्मति मान ली है, क्योंकि तप सुख को देने वाला और दुख का नाश करने वाला है।

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संहारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा॥

ब्रह्माजी तप के बल से जगत की रचना करते हैं, और उसी के बल से विष्णु भगवान् सब संसार की रक्षा करते हैं। तप के बल से शिवजी संहार करते हैं, तप के बल से शेषजी पृथ्वी का भार धारण करते हैं।

तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियं जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हंकारी॥

हे भवानी! तप ही के आधार पर सब संसार है ऐसा अपने मन में निश्चय कर तप करो। पार्वतीजी का वचन सुन माता मैना ने आश्चर्य चकित हो राजा हिमाचल को बुला पार्वती के स्वप्न को सुनाया।

मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता॥

माता पिता को अनेक भांति से समझाकर, पार्वतीजी प्रसन्न होकर तप करने के निमित्त चलीं, प्यारा परिवार पिता और माता ये सब विकल हो गये, मुख से बात तक नहीं आई।

दो०—बेदसिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ॥ ८५॥

तब वेदशिरा मुनि ने आकर पार्वतीजी की महिमा सबको समझाकर कहा। पार्वतीजी की महिमा सुनकर लोगों ने धैर्य धारण किया॥ ८५॥

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥

पार्वतीजी अपने प्राणपति के चरण को हृदय में धारण कर वन में जाकर तपस्या करने लगीं। पार्वतीजी यद्यपि बहुत ही सुकुमारी थीं, शरीर तप के योग्य न था तो भी पति के चरणों को स्मरण कर के सब भोग दिया।

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सात बरष गवांए॥

शिवजी के चरण में नित्य नवीन स्नेह उत्पन्न होने लगा, देह की सुधि भूल गई और तप में मन लग गया। एक सहस्र वर्ष फल फूल भोजन किया। सौ वर्ष शाक का आहार कर समय बिताया।

कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥

कुछ दिन तक जलवायु का भोजन कर कुछ कठिन उपवास किया। तीन सहस्र वर्ष तक जो बेल-पत्र पृथ्वी पर गिरकर सूख जाय उसी को खाकर समय व्यतीत किया।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्म गिरा भै गगन गभीरा॥

फिर सूखे बेलपत्र को भी छोड़ दिया तभी से पार्वतीजी का नाम अर्पणा हुआ। पार्वतीजी का शरीर तप से क्षीण देखकर आकाश से गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई।

दो०—भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारी।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥ ८६॥

हे पार्वती! तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ, अब कठिन क्लेश को दूर करो अब तुम को शिवजी मिलेंगे॥ ८६॥

अस तपु काहुं न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी॥

हे भवानी ! ऐसा तप किसी ने नहीं किया, अनेक धीर पण्डित ज्ञानी मुनि हुए। इस सुन्दर ब्रह्म-वाणी को हृदय में धारण करो सदा सत्य और शुद्ध जानो।

आवै पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं।
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा॥

तुम्हारे पिता जब बुलाने आयें, तब हठ छोड़कर घर चली जाना और जब तुम को सातों ऋषीश्वर मिलें तब ब्रह्मवाणी का प्रमाण जानना।

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥

आकाश से ब्रह्मवाणी सुनकर पार्वतीजी का शरीर पुलकित हो गया और बहुत प्रसन्न हुईं पार्वती का सुन्दर चरित्र मैंने अब तक वर्णन किया, अब शिवजी का सुन्दर चरित्र सुनो।

जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भयउ बिरागा॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहं तहं सुनहिं राम गुन ग्रामा॥

जब से सतीजी ने यज्ञ में जाकर शरीर त्याग दिया, तब से शिवजी के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। सदैव राम नाम जपते और जहां तहां रामचन्द्रजी का गुणानुवाद सुनने लगे।

दो०—चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदयं हरि सकल लोक अभिराम॥ ८७॥

चैतन्य आनन्द रूप सुख के धाम और मोह, मद, काम से रहित श्री शिवजी सब लोगों को आनन्द देने वाले भगवान् को हृदय में धारणकर पृथ्वी पर विचरने लगे॥ ८७॥

कतहुं मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुं राम गुन करहिं बखाना।
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना॥

कहीं मुनियों को ज्ञान उपदेश करते, कहीं राम के गुणों का वर्णन करते। यद्यपि शिव भगवान् कामना रहित हैं तो भी भक्त के वियोग के दुःख से दुखी हैं।

एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती।

इस प्रकार बहुत दिवस व्यतीत हो गये और श्री रामचन्द्रजी के चरणों में नित्य नई प्रीति होने लगी।

नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयं भगति कै रेखा॥
प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला।

श्री रामचन्द्रजी ने जब सती के त्याग का नेम और उनमें प्रेम और अपनी भक्ति की अविचल रेखा हृदय में देखी, तब कृतज्ञ, दयालु, शील और रूप के निधि बड़े तेजस्वी रामचन्द्रजी प्रगट हुए।

बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा ॥
बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा ॥

उन्होंने बहुत प्रकार से शंकरजी की प्रशंसा की कि आप के बिना व्रत का निर्वाह कौन कर सकता है। बहुत प्रकार से रामचन्द्रजी ने शिवजी को समझाया और पार्वती का जन्म सुनाया।

अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी ॥

कृपानिधान श्री भगवान् रामचन्द्रजी ने गिरिजा की अत्यन्त पवित्र कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

दो०–अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु ॥ ८८ ॥

हे शंकरजी ! जो मुझ पर नेह है तो मेरी विनती सुनो, तुम जाकर हिमाचल की पुत्री के साथ विवाह करो और यही बात मुझे दो ॥ ८८ ॥

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं।
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा।

शिवजी ने कहा कि यद्यपि यह उचित नहीं है परन्तु स्वामी का वचन टाला नहीं जा सकता। आपकी आज्ञा शिर धरकर करूंगा, यह तो हे नाथ ! हमारा परम धर्म है।

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥
तुम्ह सब भांति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥

माता, पिता, गुरु और स्वामी के वचन को बिना विचारे शुभ जानकर करना चाहिये। आप सब प्रकार से परम हितकारी हैं। हे नाथ ! आज्ञा स्वीकार है।

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना ॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥

शिवजी का वचन सुनकर भगवान् प्रसन्न हुए, कारण कि जो भक्ति, ज्ञान और धर्म संयुक्त थी। प्रभु ने कहा, हे शिव ! तुम्हारा प्रण पूर्ण हुआ, अब जो हमने कहा उसको हृदय में रखना।

अंतरधान भए अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राखी ॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए ॥

इतना कहकर रामचन्द्रजी अन्तर्ध्यान हो गये और उस मूर्ति को शिवजी ने अपने हृदय में रख लिया। उसी समय सप्तऋषि शिवजी के समीप आये। उनसे प्रभु ऐसे सुहावने वचन बोले।

दो०–पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु ॥ ८९ ॥

तुम पार्वती के समीप जाकर उन के प्रेम की परीक्षा लो और गिरिराज को भेज पार्वती को घर पहुंचाकर सब सन्देह दूर करो ।। ८६ ।।

तब ऋषि तुरत गौरि पहं गयऊ। देखि दसा मुनि बिसमय भयऊ ॥

तब ऋषि तुरन्त उमा के पास गये और उमा की दशा को देखकर बिस्मित हुए।

रिषिन्ह गौरी देखी तहं कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी ॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी।

वहाँ ऋषियों ने पार्वती को ऐसा देखा मानों मूर्तिमान तपस्या विराजमान है मुनियों ने पूछा कि हे पार्वती! सुनो तुम किस कारण कठिन तपस्या कर रही हो?

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू ॥
सुनत ऋषिन के बचन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी ॥

किसकी आराधना करती हो! और तुम क्या चाहती हो? हम से वह सब भेद सत्य कहो। ऋषियों की बात सुनकर पार्वतीजी ने गूढ़ और मनोहर वाणी में उत्तर दिया कि।

कहत बचन मनु अति सकुचाई। हंसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥
मनु हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा ॥

अपना भेद कहते हुए हृदय में बहुत सकुच होती थी और बोली कि हमारी मूर्खता सुनकर हंसोगे। मेरे मन ने ऐसा हठ पकड़ लिया है कि सिखाने से भी नहीं सुनता है, और जल पर दीवार उठाना चाहता है।

नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना।
देखहु मुनि अबिबेकु हमारा। चाहिअ सदा सिवहि भरतारा ॥

नारदजी ने जो कहा सत्य जानकर बिना पंख ही उड़ना चाहती हूं। हे मुनियों मेरे अज्ञान को तो देखो कि मैं विकार रहित शिवजी को अपना पति बनाना चाहती हूं।

दो०—सुनत बचन बिहसे रिषय गिरिसंभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह ॥ ६० ॥

पार्वतीजी की बात सुनकर ऋषियों ने हंसकर कहा कि पर्वत से उत्पन्न तुम्हारी देह है। नारद का उपदेश सुनकर कहो कभी किसी का घर बसा है ।। ६० ।।

दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई।
चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला ॥

दक्ष के पुत्रों को जाकर उपदेश किया उन्होंने फिर आकर घर नहीं देखा। चित्रकेतु का घर उन्होंने नष्ट किया। फिर हिरण्यकशिपु के यहां पिता पुत्र में विरोध करवाकर उसका वध करा दिया।

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥

नारदजी की शिक्षा जो स्त्री पुरुष मानते हैं वे अवश्य घर छोड़कर भिखारी होते हैं। मन में कपट है और शरीर सज्जनों के सदृश बनाये रहते वह अपने ही समान सबको करना चाहते हैं।

तेहि कें बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।

उन्हीं नारदजी के वचन को विश्वास मानकर तुम स्वाभाविक, उदासीन को पति बनाना चाहती हो। गुण रहित, लाज हीन, खराब वेष वाले, कपाल धारण किये, कुलहीन, जिस के घर नहीं, नग्न, सर्प लपेटे हुए।

कहहु कवन सुखु अस बरु पाएं। भल भूलिहु ठग के बौराएं॥
पंच कहें सिवं सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही॥

भला ऐसा वर पाने से तुमको कौन सा सुख मिलेगा ठग के बहकाने से भले भूली हो पंचों के कहने से शिवजी ने सती के साथ विवाह किया फिर उसको त्याग कर मरवा डाला।

दो०—अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुं कि नारि खटाहिं॥ ९१॥

शिवजी अब सुख से सोते हैं, कुछ भी सोच विचार नहीं है और भीख मांगकर खाते हैं। ऐसे स्वाभाविक अकेले रहने वाले के घर में कभी स्त्रियों का निर्वाह हो सकता है॥ ९१॥

अजहूं मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहुं बरु नीक बिचारा॥
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं बेद जासु जस लीला॥

अब भी हमारा कहना मानो, हमने तुम्हारे लिए अच्छा वर बिचारा है जो बहुत सुन्दर, पवित्र, सुखदाता, सुशील और वेद जिसके यश की लीला गाते हैं।

दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी॥
अस बर तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत कह बिहसि बचन भवानी॥

दोष से रहित और सब गुणों के समूह श्रीपति भगवान जो वैकुण्ठ के निवासी हैं। ऐसा वर लाकर तुम्हें मिला देंगे, यह वचन सुनते ही पार्वती जी ने कहा।

सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा॥
कनकउ पुनि पषान तें होई। जारेहुं सहजु न परिहर सोई॥

सत्य कहते हो कि यह शरीर पर्वत से उत्पन्न है स्वर्ण भी पत्थर से उत्पन्न होता है तिस पर भी तपाने से अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। पर्वत से जो उत्पन्न होता है उसका स्वभाव ही ऐसा होता है।

नारद बचन न मैं परिहरऊं। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊं॥
गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुं सुगम न सुख सिधि तेही॥

नारदमुनि के वचनों को मैं नहीं छोड़ूंगी चाहे भवन, बसे या उजड़े इससे मैं नहीं डरती हूं। गुरु के वचन का जिसको विश्वास नहीं है, उसको स्वप्न में भी सुख की सिद्ध सुगम नहीं है।

दो०—महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥ ९२॥

महादेव जी अवगुणों के घर हैं और विष्णु भगवान् सब गुणों के धाम हैं। यही सही, परन्तु जिसका मन जिससे रम रहा है उसको उसी से काम है॥ ९२॥

जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनतिउं सिख तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा॥

हे मुनीश्वरों! यदि तुम पहले ही मिलते तो मैं तुम्हारी शिक्षा सुनती और मस्तक पर धारण करती। अब मैं अपना जन्म शिवजी के निमित्त हार चुकी हूं, गुण और दोष का विचार कौन करे।

जौं तुम्हरे हठ हृदयं बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किएं बरेषी॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं॥

यदि तुम्हारे हृदय में विशेष हठ है और सगाई किए बिना नहीं रहा जाता, ऐसे कौतुकी पुरुषों को आलस्य नहीं होता है, संसार में अनेक वर कन्या हैं, उनकी सगाई कराओ।

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउं संभु न त रहउं कुआरी॥
तजउं न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥

करोड़ जन्म पर्यन्त हमारा यह निश्चय है कि शिवजी के साथ विवाह करूंगी नहीं तो कुमारी ही रहूंगी। नारद मुनि का उपदेश नहीं छोडूंगी चाहे शिवजी भी आप ही आकर सौ बार मुझ से कहें।

मैं पा परउं कहइ जगदंबा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा॥
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी॥

पार्वतीजी ने कहा कि मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूं। अब तुम लोग घर जाओ। यहां आये बहुत विलंब हुआ। पार्वतीजी का प्रेम देख ज्ञानी मुनि बोले कि हे जगत की माता भवानी! तुम्हारी जय हो।

दो०—तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु॥ ९३॥

तुम शिव भगवान् की माया और संसार की माता पिता हो यह कहकर पार्वती जी के चरणों पर शिर नवा बारम्बार पुलकित होते हुए मुनि लोग हिमवान के समीप चले॥ ९३॥

जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए। करि बिनती गिरजहिं गृह ल्याए॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई॥

मुनियों ने जाकर हिमवन्त को भेजा, वह पार्वती जी के समीप आये और विनती कर उन्हें घर ले गये। फिर सातों ऋषि शिवजी के समीप गये और पार्वती का सब समाचार सुनाया।

भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा॥
मनु थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना॥

पार्वतीजी का स्नेह सुनकर शिवजी मग्न हुए, और सप्तऋषि प्रसन्न हो अपने आश्रम को गये। तब मन को स्थिर कर सुजान शिवजी रघुनाथ जी का ध्यान करने लगे।

तारकु असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
तेहिं सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख सम्पति रीते॥

उसी समय बड़ा विशाल, प्रतापी और तेजस्वी तारका नाम का असुर उत्पन्न हुआ। उसने सब लोकपालों को जीत लिया, सब देवता सुख संपति से हीन हो गये।

अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे॥

वह तारकासुर अमर था, किसी से जीता नहीं जाता था, सब देवता अनेक प्रकार युद्ध कर हार गये। तब ब्रह्माजी के समीप जाकर पुकारा और ब्रह्माजी ने सब देवताओं को दुखित देखा।

दो०—सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ॥ ९४॥

सबसे ब्रह्माजी ने समझाकर कहा कि दानव का मरण तब हो जब शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो। वही इस तारकासुर को रण में परास्त करेगा॥ ९४॥

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सतीं जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥

मेरा कहा सुनकर उपाय करो, ईश्वर सहाय करेगा तो कार्य सिद्ध हो जायेगा। सती ने अपने पिता दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर त्याग दिया था फिर हिमाचल के घर में जाकर उसने जन्म लिया है।

तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी॥
जदपि अहइ असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥

उसने शिवजी को पति बनाने के निमित्त तप किया है और शिवजी त्याग कर समाधि लगाये बैठे हैं। यद्यपि इसमें अत्यन्त कठिनता है। हमारी एक बात सुनो।

पठवहु कामु जाइ शिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिबाहु बरिआई॥

तुम लोग जाकर शिवजी के समीप कामदेव को भेजो वह शिवजी के मन में काम उत्पन्न करे। तब हम जाकर शिवजी को समझाकर जबरन विवाह करवायेंगे।

एहि बिधि भलेहिं देवहित होई। मत अति नीक कहइ सबु कोई॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू॥

इस विधि से भली प्रकार देवताओं का हित हो, इस मत को सब लोगों ने अच्छा कहा । फिर देवताओं ने इस काम के लिए बड़ी स्तुति की, तब विषम बाणधारी कामदेव प्रगट हुआ ।

दो०—सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार ।
संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥ ८५ ॥

कामदेव से देवताओं ने अपनी सब विपत्ति कही, सब सुन मन में विचार कर कामदेव ने हंसकर कहा कि शिवजी से विरोध करने में मेरा कुशल नहीं है ॥ ८५ ॥

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा । श्रुति कह परम धरम उपकारा ॥
पर हित लागि तजइ जो देही । संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥

तो भी मैं तुम्हारा काम करूंगा, वेद की आज्ञा है कि उपकार करना परम धर्म है । परोपकार निमित्त जो अपना शरीर त्याग करता है, संत लोग निरंतर उसकी प्रशंसा करते हैं ।

अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई । सुमन धनुष कर सहित सहाई ॥
चलत मार अस हृदयं बिचारा । सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा ॥

यह कह सबको शिर नवाकर कामदेव फूल का धनुष हाथ में ले वसन्त आदि सहायकों सहित कैलाश को चला । चलते चलते कामदेव ने मन में यह विचार किया कि शिवजी से विरोध करने में मेरा मरण निश्चय है ।

तब आपन प्रभाउ बिस्तारा । निज बस कीन्ह सकल संसारा ॥
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू । छन महुं मिटे सकल श्रुति सेतू ॥

तब अपना प्रताप फैलाया और संसार को अपने वश में कर लिया । जब कामदेव ने क्रोध किया तब क्षण भर में अर्थात् उसी समय वेद और पुराण आदि की मर्यादा टूट गई ।

ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना । धीरज धरम ग्यान बिग्याना ॥
सदाचार जप जोग बिरागा । सभय बिबेक कटकु सबु भागा ॥

ब्रह्मचर्य, ब्रत, संयम, धैर्य, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग वैराग्य सहित विवेक की सब सेना डरकर भाग गई ।

छं०—भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे ।
सदग्रंथ पर्बत कंदरन्हि महुं जाइ तेहि अवसर दुरे ॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा ।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुं कोपि कर धनु सरु धरा ॥

कामदेव की सेना के योद्धा जब संग्राम भूमि की ओर झुके तब ज्ञान अपने सहायकों सहित भाग चला । उस समय अच्छे ग्रंथ पर्वत की कंदराओं में जा छिपे । हे कर्तार क्या होनहार है ? कौन रक्षा करेगा ? संसार में यह आश्चर्य आया, एक मस्तक वाले तो सब ही इनके वश में हैं । अब दो मस्तक वाला कौन प्रगट हुआ जिस पर कामदेव ने क्रोध करे धनुष पर बाण चढ़ाया है ।

दो०—जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम॥ ८६ ॥

जगत् में स्त्री पुरुष संज्ञा वाले जितने चर-अचर जीवधारी हैं ये सब अपनी-अपनी मर्यादा को छोड़कर काम के वश में हो गये ।। ८६ ।।

सब के हृदयं मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुं धाईं। संगम करहिं तलाव तलाईं॥

सबके हृदय में काम की इच्छा प्रगट हो गई। लताओं को देखकर वृक्षों की शाखायें झुकने लगीं। नदियां उमड़कर समुद्र की ओर दौड़ीं और तालाब तलैया संगम करने लगीं।

जहं असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थलचारी। भए कामबस समय बिसारी॥

जहां जड़ पदार्थों की ऐसी दशा वर्णन किया, वहां चैतन्य जीवों की दशा कौन वर्णन कर सकता है। आकाश, जल और पृथ्वी पर रहने वाले पशु पक्षी भी समय भूल कर काम के वश में हो गये।

मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥

काम से अन्धे हो सब व्याकुल हो गये। चकवा चकई भी रात दिन को नहीं देखते थे। देवता, दानव, नर, किन्नर, नाग, प्रेत, पिशाच, भूत और वैताल भी।

इन्ह कै दसा न कहेउं बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए बियोगी॥

इनकी दशा मैंने कुछ नहीं कही है, इनको सदा काम का दास जानना चाहिये। सिद्ध विरक्त महामुनि और योगी, वे भी काम के वश हो गये।

छं०—भए कामबस जोगीस तापस पावंरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥ ४ ॥

जब योगिराज तपस्वी भी काम के वश में हो गये तब पामरों को कौन कहे। पहले जो सबको ब्रह्ममय देख रहे थे वे चर अचर सबको स्त्रीमय देखने लगे। स्त्रियां सब संसार को पुरुषमय देखने लगीं तथा पुरुष सब जगत को स्त्रीमय देखने लगे। दो घड़ी भर ब्रह्माण्ड के बीच कामदेव ने इतना खेल कर दिया ।। ४ ।।

सो०—धरी न काहूं धीर सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुं॥ ८४ ॥

किसी ने धैर्य धारण न किया। सब के मन को कामदेव ने अपने वश में कर लिया। जिसको रघुनाथजी ने बचा लिया वही उस समय में बच गये ॥ १४ ॥

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ ॥
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु संसारू ॥

दो घड़ी तक ऐसा कौतुक होता रहा, जब तक कामदेव शिवजी के समीप गया। शिवजी को देख कामदेव को भय उत्पन्न हो गया, तब संसार ज्यों का त्यों स्थिर हो गया।

भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गएं मतवारे ॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना ॥

जैसे मतवाले मद उतर जाने से सुखी हो जाते हैं, इसी प्रकार तुरन्त ही सब जीव सुखी हो गये। रुद्र भगवान को देखकर काम डर गया क्योंकि शिवजी को पार पाना कठिन है।

फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई ॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा ॥

श्री शिवजी के आगे से फिरते ऐसी लज्जा हुई कि कुछ कहा नहीं जाता, फिर मन में अपना मरना ठान कामदेव ने यह उपाय रचा कि तुरन्त सुन्दर वसन्त ऋतु को प्रगट कर वृक्षों को नवीन पुष्पों से सुशोभित कर दिया।

बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा ॥
जहं तहं जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुं मन मनसिज जागा ॥

बन, बगीचा, बावली, सरोवर सब दिशाएं सब बहुत शोभायमान होने लगीं। उस समय जहां तहां मानो प्रेम उमगने लगा, जिसको देखकर बूढ़ों के मन में भी काम का संचार हो गया।

छं०—जागइ मनोभव मुएहुं मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही ॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा ॥
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा ॥ ५ ॥

जिनका काम मर गया है उन वृद्धजनों के मन में भी काम जाग उठा और उनकी सुन्दरता कुछ कही नहीं जाती थी। शीतल सुगन्धयुक्त सुन्दर मन्द मन्द पवन बहने लगा जो कामाग्नि की मुख्य सहायक है। सरोवर में अनेक प्रकार के कमल खिल गये जिन पर सुन्दर भौंरों के झुण्ड गुञ्जने लगे और हंस, कोकिला, बक आदि पक्षी रसीली मनोहर बोली बोलने लगे और अप्सरायें गान करती हुई नृत्य करने लगीं ॥ ५ ॥

दो०—सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत ॥ ९७ ॥

कामदेव अपने करोड़ों उपाय से सब कुछ कर हार गया। शिवजी की अचल समाधि न छूटी तब कामदेव क्रोधित हुआ अर्थात् कामदेव को क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ९७ ॥

देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने॥

तब आम के वृक्ष की सुन्दर शाखा को देखकर उस पर कामदेव मन में क्रोधित होकर चढ़ गया। फलों के धनुष पर अपने बाण लगाये और अत्यन्त क्रोध से लक्ष्य देखकर उन्हें कानों तक ताना।

छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥

और विषम बाण को छोड़ दिया, जब हृदय में वह बाण लगा तब समाधि छट गई शिवजी के मन में अत्यन्त क्षोभ हुआ, नेत्र खोलकर सब ओर देखने लगे।

सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका॥
तब सिवं तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा॥

आम के पत्तों में कामदेव को छिपा देखकर शिवजी को क्रोध उत्पन्न हुआ जिससे तीनों लोक कांप उठे। तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला तो देखते ही काम जलकर भस्म हो गया।

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी॥
समुझि कामसुखु सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी॥

संसार में बड़ा हाहाकार हुआ। देवता डर गये। असुर सुखी हुए। काम का सुख समझ कर भोगियों को चिन्ता हुई और साधक जोगी बेखटके हो गये कि अब साधक सिद्ध हो जायेंगे।

छं०—जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई।
रोदति बदति बहु भांति करुना करति संकर पहिं गई॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥ ६॥

योगी बेखटके हुए और अपने पति की यह गति सुनते ही रति मूर्छित हो गई। फिर रोती चिल्लाती पति के प्रताप को कहती और बहुत प्रकार से करुणा करती हुई शिवजी के समीप गई और प्रेम से विविध भांति से विनती कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़ी हो गई। तब आशापूर्ण करने वाले कृपालु शिवजी ने स्त्री को देखकर कहा॥ ६॥

दो०—अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु॥ ८८॥

हे रति! अबसे तुम्हारे पति का नाम अनङ्ग होगा। बिना शरीर ही सबके अङ्ग में व्यापेगा। अब अपने पति से मिलने का प्रसंग सुनो॥ ८८॥

जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा॥

जब यदुवंस में पृथ्वी का भार उतारने के लिये कृष्णजी का अवतार होगा तब कृष्णचन्द्र जी का पुत्र 'प्रद्युम्न' तुम्हारा पति होगा, मेरी बात झूठी नहीं हो सकती।

रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहउं बखानी॥
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए॥

शिवजी की यह वाणी सुनकर रति चली गई, अब दूसरी कथा वर्णन करता हूं। जब देवताओं को यह समाचार मिला, तब ब्रह्मा आदि सब देवता सम्मिलित होकर बैकुण्ठ को चले।

सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता। गए जहां सिव कृपानिकेता॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा॥

सब देवता विष्णु और ब्रह्मा सहित जहां कृपा के धाम श्रीशिवजी विराजमान थे, वहां गये सब देवताओं ने अलग-अलग प्रशंसा (स्तुति) की तब चंद्रभाल (शिवजी) प्रसन्न हुए।

बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवउं स्वामी॥

कृपासिन्धु वृषभध्वज श्रीशिवजी बोले कि हे देवताओं! कहो किस निमित्त यहां आए हो? यह सुन ब्रह्माजी ने कहा कि हे प्रभु! तुम अन्तर्यामी हो, तो भी हे स्वामी! भक्ति के अधीन हो विनती करता हूं।

दो०—सकल सुरन्ह के हृदयं अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु॥ ८८॥

हे शंकरजी! सब देवताओं के हृदय में यह अभिलाषा है कि अपने नेत्रों से तुम्हारा विवाह देखें॥ ८८॥

यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन॥
कामु जारि रति कहुं बरु दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा॥

जिस प्रकार यह उत्सव नेत्र भर देखने में आवे वैसा कुछ उपाय कीजिए। हे कृपा सिन्धु! कामदेव को भस्म कर रति को वरदान दिया यह बहुत अच्छा किया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥
पारबतीं तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा॥

हे नाथ! बड़ों का यह प्राकृतिक स्वभाव है कि अपराध का दण्ड देकर फिर कृपा करते हैं। पार्वती ने बड़ा भारी तप किया है उसको अब आप अङ्गीकार कीजिए।

सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी॥
तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि सुमन जय जय सुर साईं॥

ब्रह्मा का वचन सुन और प्रभु की वाणी स्मरण कर शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि ऐसा ही हो। तब देवताओं ने दुन्दुभी बजाई और पुष्प-वृष्टि कर बोले कि हे देवताओं के स्वामी! आपकी जय हो! जय हो!!

अवसरु जानि सप्तरिषि आए। तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए॥
प्रथम गए जहं रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल सानी॥

समय जानकर सप्तऋषि आये, उसी समय ब्रह्माजी ने उन को हिमाचल के घर भेजा। पहले वहां गये जहां पार्वती थीं और छलयुक्त मीठे वचन बोले।

दो०—कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस॥ १०० ॥

तब हमारा कहना नहीं सुना और नारदजी का उपदेश मान लिया। अब तुम्हारा प्रण झूठा हुआ क्योंकि शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया॥ १०० ॥

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा॥

सप्तऋषियों की बात सुनकर पार्वतीजी ने मुस्कराकर कहा हे विज्ञानी मुनिवर! आपने ठीक कहा। तुम्हारे जान में अब शिवजी ने काम को भस्म किया। क्यों अब शिवजी विकार युक्त रहे।

हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी॥

हमारे जान में तो शिवजी सदैव से योगी अजन्मा तथा निन्दा, काम और भोग से रहित हैं। ऐसा जानकर यदि मैंने शिवजी की सेवा अत्यन्त प्रीति सहित कर्म, मन और वाणी से की है।

तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा॥

तो हे मुनिवरों! सुनो कृपासिन्धु शिवजी मेरे प्रण को सत्य करेंगे। तुम जो कहते हो कि शिवजी ने काम को भस्म कर दिया तो यह तुम्हारा बड़ा भारी अज्ञान है।

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥
गएं समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई॥

हे तात! अग्नि का यह साधारण स्वभाव है कि शीतलता उसके समीप कभी नहीं जाती है। समीप जाने से अवश्य नाश हो जाता है, इसी प्रकार कामदेव शिवजी के निकट जाकर भस्म हो गया।

दो०—हियं हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास॥ १०१ ॥

पार्वती की बात सुन और शिवजी में उनकी प्रीति और श्रद्धा देख मुनि लोग भवानी को शिर झुका कर चले और हिमाचल के समीप गये॥ १०१ ॥

सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुखु पावा॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना॥

सब प्रसंग हिमाचल को सुनाया, कामदेव का भस्म होना सुनकर हिमाचल को बहुत दुःख हुआ। फिर रति का वरदान वर्णन किया, उसको सुनकर हिचाचल बहुत सुखी हुए।

हृदयं बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिबर लिए बोलाई॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई॥

हृदय में शिवजी की प्रभुता को विचार कर आदर सहित मुनिवरों को अपने समीप बुलाया। अच्छे दिन अच्छे नक्षत्र उत्तम घड़ी दिखा तुरन्त वेद विधि से सुन्दर लगन धरी।

पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाचत प्रीति न हृदयं समाती॥

वह पत्री सप्तऋषियों को दे और चरण छूकर हिमाचल ने विनती की। सप्तऋषियों ने वह पत्री ले जाकर ब्रह्माजी को दिया। उसको पढ़कर ब्रह्मा के हृदय में ऐसी प्रीति उत्पन्न हुई कि उसे रोक नहीं सके।

लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुं दिसि साजे॥

लगन को पढ़ ब्रह्माजी ने सबको सुनाया। उसको सुनकर मुनि और सब देवगण प्रसन्न हुये। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। दशों दिशाओं में मंगल कलश सजाये गये।

दो०—लगे संवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान॥ १०२॥

सब देवता अनेक प्रकार के वाहन और विमान सजाने लगे सुन्दर मंगल सगुन होने लगा और अप्सरायें गान करने लगीं॥ १०२॥

सिवहिं संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु संवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला॥

शिव का शृंगार उनके गण करने लगे, जटा का मुकुट और सर्पों का मौर बनाया। कानों में कुण्डल और हाथ में कङ्कण के स्थान में सांपों को धारण किया, देह में भस्म रमा कटि में व्याघ्र चर्म धारण किया।

ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला॥

मस्तक पर तीन नेत्र, चन्द्रमा और सिर सुन्दर गंगाजी, गले में सर्पों का यज्ञोपवीत। कण्ठ में विष, हृदय में मनुष्य के मुण्ड की माला धारण किये अमंगल वेष कल्याण के धाम कृपालु शिवजी।

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहं चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥

दाहिने हाथ में त्रिशूल और बायें हाथ में डमरू ऐसा शृंगार कर नन्दी पर चढ़ जब शिवजी चले उस समय बाजे बजने लगे। शिवजी को देख देवताओं की स्त्रियां मुसुकाने लगीं कि वर के लायक संसार में दुलहिन नहीं है।

बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भांति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥

विष्णु भगवान् और ब्रह्मा आदिक सब देवता अपने अपने वाहनों पर चढ़ चढ़ कर बरात में चले। यद्यपि देवताओं का समाज सब प्रकार से अनुपम है तथापि उसके अनुरूप बरात नहीं सजी।

दो०—बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज ॥ १०३ ॥

तब विष्णु भगवान ने सब दिगपालों को बुलाया और हंसकर यह कहा कि तुम लोग अपने साथ अलग-अलग होकर चलो ॥ १०३ ॥

बर अनुहारि बरात न भाई। हंसी करैहहु पर पुर जाई ॥
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने ॥

हे भाइयों! वर के योग्य बरात नहीं बनी, पराये नगर में जाकर क्या ंसी कराओगे। विष्णु की बात को सुनकर देवता हंसे और अपनी-अपनी सेना सहित अलग हो गये।

मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं ॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे ॥

शिवजी मन ही मन हंसने लगे कि हरि के व्यंग्य वचन नहीं जाते। भगवान् का बहुत प्यारा वचन सुन शिवजी ने भृंगी को भेजकर अपने सब गणों को बुलाया।

सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए ॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा ॥

शिवजी की आज्ञा सुनकर सब चले आये और शिवजी के चरण कमलों पर शिर नवाया। अनेक प्रकार के वाहनों पर चढ़े, अनेक प्रकार के वेश वाले ऐसे समाज को देखकर शिवजी हंसे।

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना ॥

किसी को मुख नहीं, किसी को बहुत मुख, कोई बिना पांव और बिना हाथ का किसी को बहुत से पांव और भुजाएं थी। कोई नेत्र वाला कोई नेत्रों से हीन, कोई दृढ़ शरीर वाला कोई बहुत क्षीण देह वाला।

छं०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें।
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ॥

कोई दुर्बल शरीर, कोई बहुत मोटे शरीर वाला, कोई पवित्र, कोई अपवित्र भयङ्कर मुण्डों की माला कण्ठ में धारण किये हाथ में खप्पर लिए हुए, जिनके शरीर में तुरन्त का रुधिर लगा हुआ, गर्दभ, कुत्ता, सुअर और शृंगाल मुख वाले गण अगणत वेष बनाये जिनकी गिनती कौन करे और बहुत प्रकार के भूत, पिशाच, योगिनी, डाकिनी शाकिनी, जिनका वर्णन नहीं हो सकता है।

सो०—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि ॥ १५ ॥

बड़े तरङ्गी सब भूतगण नाचते और गीत गाते हैं जो देखने में तो अच्छे नहीं लगते परन्तु अद्भुत विधि से बचन बोलते हैं ॥ १५ ॥

जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥
इहां हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना॥

जैसा दुलहा वैसी ही बरात भी बन गई और मार्ग में जाते हुए अनेक प्रकार के कौतुक होने लगे। इधर राजा हिमाचल ने बहुत विचित्र मण्डप बनवाया जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सैल सकल जहं लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं॥
बन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहुं नेवत पठावा॥

संसार के सब छोटे बड़े पर्वत जिनका वर्णन नहीं हो सकता। वन, समुद्र, नद नदी, तालाब इन सबको राजा हिमाचल ने न्यौता भेजा।

कामरूप सुंदर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥

इच्छानुसार, सुन्दर देह धारण कर अपने अपने समाज और सुन्दर स्त्रियों सहित वे सब राजा हिमाचल के घर आये और प्रीति सहित मङ्गल गाने लगे।

प्रथमहिं गिरि बहु गृह संवराए। जथाजोगु तहं तहं सब छाए॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई॥

राजा हिमाचल ने पहले ही से घर सजा रक्खे थे उनमें यथायोग्य जहां तहां सब ठहरे। पुर की शोभा और सुन्दरता देखकर ब्रह्माजी की चतुरता भी छोटी लगने लगी।

छं०—लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं॥ ८॥

जब ब्रह्माजी की चतुरता भी पुर की शोभा देखकर छोटी लगने लगी, तब बन, बाग, कुवां, तालाब सरिता इत्यादि की सुन्दरता कौन कह सकता है। अनेक प्रकार के मंगल द्रव्य तोरण, पताका ध्वजा से घरों की शोभा हो रही थी। स्त्री पुरुषों की सुन्दर छवि और चतुरता को देखकर मुनियों के मन मोहित हो रहे थे॥ ८॥

दो०—जगदंबा जहं अवतरी सो पुरु बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ॥ १०८॥

जहां आप जगदम्बा ने अवतार लिया है उस पुर का वर्णन नहीं किया जाता, क्योंकि वहां ऋद्धि, सिद्ध और सम्पत्ति नित्य नवीन और बढ़ने लगी॥ १०४॥

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥

नगर के समीप बरात जब आई तब पुर में धूम मच गई कि बहुत अच्छी बरात आई है, जिससे नगर की शोभा बढ़ गई। बनावट बना के अपने वाहन सजाये आदर से बरात को आगे से लेने चले, अर्थात् बरात की अगवानी करने चले।

हियं हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले वाहन सब भागे॥

देवता लोगों की सेना देखकर सब लोग मन में प्रसन्न हुए और भगवान् को अत्यन्त सुखी हुए। जब शिव का समाज देखने लगे तब डर कर सब वाहन भाग चले और तितर-बितर हो गये।

धरि धीरजु तहं रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गएं भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता॥

चतुर लोग धैर्य धारण कर वहां खड़े रहे सब बालक जीव बचाकर भागे। घर गये तो पिता माता पूछने लगे तब डर से जिनका शरीर कम्पायमान हो रहा था वे बालक यह वचन बोले।

कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता॥
बरु बौराह बसहं असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥

क्या कहें कुछ बात कही नहीं जाती, यह यम सेना है या बरात है? दुल्हा बावला सा बैल पर सवार है, सांप अंग में लिपटे हैं, मुण्ड माला पहिने और शरीर पर भस्म लगाये हुए है।

छं०—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
संग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही॥ ९॥

शरीर पर भस्म रमाये, सांप और मुण्डमाला रूपी भूषण धारण किये, नंगे शरीर, जटाधारी, भयङ्कर रूप और भूत, पिचास, योगिनी भयानक मुख वाले राक्षस संग लिये हुए जो बरात देखते जीता रहेगा उसका बड़ा पुण्य उदय होगा और वही पार्वती का विवाह देखेगा यह बात घर-घर लड़कों ने कही॥ ९॥

दो०—समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं॥ १०५॥

शिवजी के समाज को समझ कर सब बालकों के माता पिता हंसने लगे और बालकों को विविध प्रकार से समझाया कि निडर हो आओ कुछ डर नहीं है॥ १०५॥

लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैनां सुभ आरती संवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥

अगवानी करके बरात ले आये और सबको सुन्दर जनवासा दिया। रानी मैना ने मनोहर सुन्दर आरती सजायी और साथ में स्त्रियों को ले सुन्दर मङ्गलाचार गाने लगीं।

कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥

सोने की सुन्दर थाल सजाये साथ में सुशोभित प्रसन्न मन से शिवजी का परछन करने चली। जब शिवजी का भयंकर वेश देखा तब स्त्रियों के हृदय में बड़ा भय उत्पन्न हुआ।

भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहां जनवासा॥
मैना हृदयं भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥

और अत्यन्त भयभीत हो भागकर घर में चली गयीं और महादेव जी जहां जनवासा था, वहां चले गये। रानी मैना के हृदय में बड़ा दुख हुआ और उन्होंने पारवती को अपने निकट बुला लिया।

अधिक सनेहं गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥

बड़े प्रेम से अपनी गोद में बिठाकर और कमल समान नेत्रों में आंसू भरकर कहा कि जिस विधाता ने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया उस जड़ ने वर को ऐसा बावला क्यों कर दिया?

छं०—कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुं परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥ १०

जिसने तुमको ऐसी सुन्दरता दी उसने वर को ऐसा क्यों कर दिया? जो फल कल्प वृक्ष में चाहिए उसे बबूल वृक्ष में लगा दिया अब मैं तुम समेत पहाड़ से गिरूंगी या अग्नि में जल जाऊंगी, अथवा समुद्र में कूद पड़ूंगी। घर चाहे उजड़ जाये और संसार में अपयश भले ही हो परन्तु मैं अपने जीते जी विवाह नहीं होने दूंगी॥ १०॥

दो०—भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु संभारि॥ १०६॥

रानी मैना को दुःखित देखकर सब स्त्रियां विकल हो गई और अपनी कन्या (पार्वती) के स्नेह को स्मरण कर विलाप करके रानी मैना रोने और कहने लगी॥ १०६॥

नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥

नारद का मैंने क्या बिगाड़ा है कि उन्होंने मेरा बसता हुआ घर उजाड़ दिया। जिसने पार्वती को ऐसा उपदेश देकर बावले पति के निमित्त तपस्या करवायी।

साचेहुं उन्ह कें मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बांझ कि जान प्रसव कै पीरा॥

सचमुच उनको मोह दया नहीं हैं, उदासीन है तथा न धन है न धाम और न स्त्री है। पराये घर को उजाड़ने वाले उनको न लाज है और न किसी का डर है, क्योंकि बांझ स्त्री बालक जन्मने का कष्ट क्या जाने।

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥

माता को विकल देखकर पार्वती जी विवेक सहित कोमल वाणी से बोलीं, हे माता! विधाता ने जो लिखा है वह नहीं टरेगा, ऐसा विचारकर सोच मत करो।

करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दासु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

जो हमारे कर्म में बावला पति लिखा है तो किसी को दोष क्यों लगाती हो! क्या तुमसे विधाता का अंक मिटाया जा सकेगा? इस कारण हे माता! अपने पर वृथा कलङ्क मत लो।

छं०—जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहं पाउब तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भांति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं॥ ११॥

हे माता! कलङ्क मत लो, करुणा छोड़ दो यह समय करुणा करने का नहीं है, दुःख सुख जो मेरे भाग्य में लिखा है, उसे जहां जाऊंगी वहां पाऊंगी। इस प्रकार पार्वती के विनीत और कोमल वचन सुनकर सब स्त्रियां सोचने लगीं और अनेक प्रकार से विधाता को दोष लगाकर नेत्रों से आंसुओं की धारा बहाने लगीं॥ ११॥

दो०—तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत॥ १०७॥

उसी समय समाचार सुनकर नारद मुनि राजा हिमाचल सहित सातों ऋषि को साथ ले तुरन्त रनिवास को गये॥१०७॥

तब नारद सबही समुझावा। पूरब कथाप्रसंगु सुनावा॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥

तब नारदजी ने सबको समझाकर पार्वतीजी के पूर्व जन्म की कथा का प्रसंग सुनाया। हे रानी मैना! हमारी सत्य वाणी सुनो तुम्हारी कन्या पार्वती भवानी साक्षात् जगदम्बा है।

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीलाबपु धारिनि॥

यह जन्म रहित अनादि शक्ति हैं और सदा शिवजी के आधे अङ्ग में वास करने वाली हैं। वही जगत की उत्पत्ति स्थिति व संहार करती हैं अपनी इच्छा से लीला करने के लिए शरीर धारण करती हैं।

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुन्दर तनु पाई॥
तहंहुं सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं॥

पहले दक्ष प्रजापति के घर जन्म लिया, वहां इसने सुन्दर शरीर धारण कर सती का नाम पाया। वहां भी सती का विवाह शिवजी से ही हुआ था, यह कथा तीनों लोक में प्रसिद्ध है।

एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा॥
भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा। भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा॥

एक बार शिवजी के साथ आती थी। सती जी को मार्ग में रघुकुल कमल भास्कर (श्री रामचन्द्रजी) को देखकर मोह उत्पन्न हुआ तब शिवजी ने बहुत समझाया परन्तु शिवजी का कहना नहीं माना और रामचन्द्रजी की परीक्षा लेने के लिए भ्रमवश सीताजी का वेष धारण कर उनकी परीक्षा ली।

छं०—सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।
हर बिरहं जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया॥ १२

सीताजी का रूप धारण करने के अपराध से शिवजी ने सती का परित्याग कर दिया था। तब शिवजी के वियोग से सती जी अपने पिता के यज्ञ में जाकर योग से भस्म हो गई। अब तुम्हारे घर जन्म लेकर पति के निमित्त कठिन तप किया है, ऐसा जानकर सन्देह छोड़ दो। पार्वती जी सदा शिवजी को प्यारी हैं॥ १२॥

दो०—सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद।
छन महुं ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संबाद॥ १०८॥

तब नारद जी का वचन सुनकर सबका दुःख दूर हो गया और क्षण भर में सब नगर में घर घर यह सम्वाद फैल गया॥ १०८॥

तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने॥

तब रानी मैना और राजा हिमाचल प्रसन्न हुए और बारम्बार पार्वती जी के चरणों को प्रणाम किया। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा अवस्था वाले और चतुर नगर निवासी बहुत प्रसन्न हुए।

लगे होन पुर मंगलगाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना॥
भांति अनेक भई जेवनारा। सूपशास्त्र जस कछु ब्यवहारा॥

नगर में मङ्गल गान होने लगा, सब लोगों ने अनेक प्रकार के सोने के कलश सजा दिये। पाक-शास्त्र की बहुत रीति से जैसा कुछ व्यवहार था उस प्रकार जेवनार हुई।

सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी॥
सादर बोले सकल बराती। बिष्नु बिरंचि देव सब जाती॥

जिस घर में जगत्माता भवानी वास करती है, उस जेवनार का क्या वर्णन करने में आ सकता है? विष्णु भगवान्, ब्रह्मा जी और इन्द्र आदि सब जाति के देवताओं और बरातियों को आदर सहित बुलाया गया।

बिबिधि पांति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा॥
नारिबृंद सुर जेवंत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी॥

अनेक पांति लगाकर बराती लोग जीमने बैठे, और चतुर रसोइये परोसने लगे। स्त्रियां देवतओं को भोजन करते जान कर कोमल वाणी से गारी देने लगीं।

छं०—गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं॥
जेवंत जो बढ़्यो अनंदु सो मुख कोटिहूं न परै कह्यौ।
अचवांइ दीन्हे पान गवने बास जहं जाको रह्यौ॥ १३॥

सुन्दर स्त्रियों को मीठे स्वर से गारी देना और हंसी के वचन सुनकर सब देवता बहुत विलम्ब लगाकर भोजन करने लगे और आनन्द वचन सुनकर सुख पाने लगे। भोजन करते समय जो आनन्द बढ़ा वह करोड़ मुख से भी नहीं कहा जा सकता। भोजनोपरान्त अंचवा कर पान दिया तब जहां जिसका वास था, वहां सब चले गये अर्थात् अपने-अपने वास स्थान को सब बराती लोग चले गये ॥ १३ ॥

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुं लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर पठए देव बोलाइ॥ १०१ ॥

फिर मुनियों ने राजा हिमाचल को जाकर लग्न सुनाया और विवाह का समय देखकर देवताओं को बुलावा भेजा॥ १०१ ॥

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे॥
बेदी बेद बिधान संवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥

राजा हिमाचल ने आदर सहित सब देवताओं को बुलाया और सबको यथा उचित आसन दिया, वेद की विधि से वेदी बनाई गई, स्त्रियां सुन्दर और समयोचित मङ्गल गीत गाने लगीं।

सिंघासनु अति दिव्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयं सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥

अत्यन्त दिव्य सुहावना सिंहासन श्री ब्रह्मा जी ने बनाया जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस सिंहासन पर श्री शिवजी ब्राह्मणों को सिर नवा और अपने प्रभु श्री रामचन्द्र जी को हृदय में स्मरण कर विराजमान हुए।

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखीं लै आईं॥
देखत रूपु सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है॥

फिर मुनीश्वरों ने पार्वती जी को बुलाया तब शृंगार करके सखी ले आईं। पार्वती जी का रूप देखकर सब देवता मोहित हो गए जगत् में ऐसा कौन कवि है जो उस छवि को वर्णन करे।

जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥
सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुं बदन बखानी॥

जगत् की माता शिवजी की स्त्री जानकर सब देवताओं ने मन ही मन प्रणाम किया पार्वती जी की सुन्दरता की मर्यादा का करोड़ों मुख से भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

छं०—कोटिहुं बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा॥
छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहां।
अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तहां॥ १४ ॥

ऐसी जगन्माता की महाशोभा जो करोड़ों मुख से भी कही नहीं जा सकती, उसको वर्णन करते वेद और शेष व शारदा को भी संकोच होता है, वहां मैं मन्दबुद्धि किस गिनती में हूं ? छबि खानि माता भवानी जहां मण्डप में शिवजी थे वहां गईं परन्तु संकोचवश देख नहीं सकीं पर पति के चरण-कमल में मन भ्रमर हो रहा था॥ १४ ॥

दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियं जानि॥ ११०॥

मुनियों की आज्ञा से शिव पार्वती जी ने गणपति का पूजन किया। यह सुन देवताओं को अनादि जान कर कोई अपने मन में सन्देह न करे॥ ११०॥

जसि बिबाह के बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी॥

जैसी विवाह की विधि वेद ने कही है महामुनियों ने वह सब कराया। राजा हिमाचल ने कुश और कन्या का हाथ, हाथ में लेकर पार्वती जी को सनातन शक्ति जानकर शिवजी को दान कर दिया।

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियं हरषे तब सकल सुरेसा॥
बेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥

जब शिवजी ने पाणिग्रहण किया अर्थात् पार्वती जी का हाथ पकड़ा तब इन्द्रादिक सब देवता मन में प्रसन्न हुए। श्रेष्ठ मुनि वेद मंत्र पढ़ने लगे और देवता लोग शंकर जी की जय बोलने लगे।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमनबृष्टि नभ भै बिधि नाना॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥

अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और आकाश से नाना प्रकार के फूलों की वर्षा होने लगी। शिव पार्वती का विवाह हुआ तब चौदहों भुवन में आनन्द छा गया।

दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा॥
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

दासी, दास, घोड़े, रथ, हाथी, गौ, वस्त्र, रत्न और अनेक प्रकार की वस्तु सोने के पात्रों में और अनेक छकड़े व बहंगियों में भर कर नाना प्रकार के पक्वान्न और मिष्ठान्न दिये जो बखाने नहीं जा सकते।

छं०—दाइज दियो बहु भांति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।
का देउं पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो॥
सिवं कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भांतिहिं कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मयनां प्रेम परिपूरन हियो॥ १५॥

बहुत भांति का दहेज दे और हाथ जोड़कर हिमाचल ने कहा कि हे शंकर! आप पूर्णकाम हो। आपको मैं क्या दूं! ऐसे कहकर चरण-कमल पकड़कर मौन हो रहे। तब कृपासिन्धु शिवजी ने श्वसुर को सब भांति से सन्तोष दिया। फिर मैना रानी ने शिवजी के चरण-कमल छुए और प्रेम से हृदय भर गया॥ १५॥

दो०—नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु॥ १११॥

रानी मैना ने कहा कि हे नाथ! पार्वती मुझको प्राणों के समान प्यारी है, इसको अपने घर की टहलनी करो और अब मेरा सब अपराध क्षमा करके प्रसन्न होकर मुझको यही वरदान दो॥ १११॥

बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई॥
जननी उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुन्दर सिख दीन्ही॥

शिवजी ने बहुत भांति से सास को समझाया, वे चरणों में सिर नवा कर घर गई और तब माता ने पार्वती को बुलाकर गोद में बिठा लिया और अच्छी शिक्षा देकर कहा कि।

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥

सदा शिवजी के चरण कमल की पूजा करना स्त्री का धर्म पति की सेवा है, उसका देवता पति है, दूसरा कोई नहीं है। यह वचन कहते हुए नेत्रों में आंसू भर गये और फिर पार्वती जी को लेकर छाती से लगा लिया।

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुं सुखु नाहीं॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी॥

विधाता ने संसार में स्त्री को क्यों रचा, जो पराधीन रहती है, पराधीन को स्वप्न में भी सुख नहीं है। अति प्रेम के कारण माता विकल हो गयीं, परन्तु कुसमय विचार कर धैर्य धारण किया।

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥

बारम्बार मिलती हैं और चरणों पर गिरती हैं। अत्यन्त प्रेम का वर्णन नहीं किया जा सकता। पार्वती ने सब स्त्रियों से मिलकर भेंट की और माता के हृदय में फिर जाकर लिपट गई।

छं०—जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूं दई।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गईं॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥ १६

फिर माता से मिलकर उमा चली तब सब किसी ने उचित आशीर्वाद दिया परन्तु बारम्बार माता की ओर फिर कर देखती रहीं तब सखी पार्वती को ले शिवजी के समीप गईं। फिर याचकों को सन्तुष्ट कर शिवजी पार्वती को लेकर घर चले। उस समय सब देवता प्रसन्न हुए और फूलों की वर्षा कर आकाश में दुन्दुभी बजाने लगे॥ १६॥

दो०—चले संग हिमवंतु तब पहुंचावन अति हेतु।
बिबिध भांति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु॥ ११२॥

तब राजा हिमाचल बड़े प्रेम से पहुंचाने चले, शिवजी ने विविध भांति से समझाकर उन्हें विदा किया॥ ११२॥

तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई॥
आदर दान बिनय बहुमाना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥

राजा हिमवन्त तुरन्त घर आये और सब पर्वत व सरोवरों के देवताओं को बुला लिया। आदर दान, विनय और बहुत बड़ाई करके हिमाचल ने सब लोगों को विदा किया।

जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउं बखानी॥

जब शिवजी कैलाश में आये तब सब देवता अपने अपने लोक गये। पार्वती और शिवजी जगत् के माता पिता हैं, इस कारण उनका शृङ्गार यहां पर वर्णन नहीं किया है।

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥

शिवजी अनेक प्रकार का भोग विलास करते हुए गणों के सहित कैलास में वास करने लगे। पार्वती को नित्य नवीन विहार करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया।

तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहिं मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुष जन्मु सकल जग जाना॥

तब छः मुख वाले पुत्र (स्वामि कार्तिक) का जन्म हुआ जिन्होंने युद्ध में तारका नाम असुर को मार डाला। शास्त्र, वेद और पुराणों में स्वामि कार्तिकजी का जन्म कर्म प्रसिद्ध है। उसे जगत् जानता है।

छं०—जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा॥
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं॥
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं॥ १७

स्वामि कार्तिकजी का जन्म, कर्म प्रताप और महान् पुरुषार्थ जगत् जानता है। इस कारण मैंने शिवजी के पुत्र का चरित्र संक्षेप में कहा है। यह शिव पार्वती का विवाह जो स्त्री पुरुष सुनते और गाते हैं वे कल्याणकार्य और विवाह मङ्गल में सदैव सुख पाते हैं॥ १७॥

दो०—चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवांरु॥ ११३॥

शिवजी का चरित्र समुद्र के समान अगाध है। वेद को भी जिसकी थाह नहीं मिलती उसको अति मन्द बुद्धि गंवार तुलसीदास कैसे वर्णन करें॥ ११३॥

संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी॥

शिवजी के स्वाभाविक सुहावने चरित्र को सुनकर भारद्वाज मुनि ने बहुत सुख पाया। कथा सुनने की इच्छा बढ़ी, नेत्रों में जल छा गया और सुन्दर कथा सुनकर रोम रोम खड़ा हो गया।

प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा॥

प्रेम के मारे मुख से बोला नहीं जाता, यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य जी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे मनिराज! तुम्हारा जन्म धन्य है, तुम्हें शिवजी प्राणों के समान प्रिय हैं।

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुं न सोहाहीं॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥

महादेवजी के चरण कमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे रामचन्द्रजी को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। बिना छल से महादेव जी के चरणों में स्नेह होना यही रामभक्त का लक्षण है।

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥

शिवजी के समान रामभक्त कौन है? जिन्होंने बिना अपराध सती ऐसी पतिव्रता स्त्री को त्याग दिया। शिवजी ने प्रतिज्ञा करके रामभक्ति को दृढ़ किया। हे भाई! शिवजी के समान रामचन्द्र जी को कौन प्यारा है?

दो०—प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार॥ ११४॥

पहले मैंने शिव चरित्र वर्णन कर तुम्हारा भेद लिया, अब जाना कि तुम राम के पवित्र सेवक हो और सब विकारों से रहित हो (राम और शिव में भेद नहीं मानते हो)॥ ११४॥

मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहउं सुनहु अब रघुपति लीला॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें॥

मैंने तुम्हारा गुण और शील जान लिया। अब रघुनाथ जी की लीला कहता हूं उसे सुनो। हे मुनि, सुनो, आज तुम्हारे समागम से मेरे हृदय में जैसा सुख हुआ है, वह कहा नहीं जाता।

राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥
तदपि जथाश्रुत कहउं बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥

हे मुनिराज! रामचन्द्र जी के चरित्र विस्तारयुक्त हैं, जिन अपार चरित्रों को सौ करोड़ शेष भी नहीं कह सकते। तो भी वेद के अनुसार धनुष धारण किये बाली के स्वामी श्री रामचन्द्र जी को स्मरण करके वर्णन करता हूं।

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहि जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥

सरस्वती कठपुतली के समान हैं और अन्तर्यामी श्री रामचन्द्रजी सूत्रधार हैं। श्री रामचन्द्र जी अपना भक्त जानकर जिस पर कृपा करते हैं उसी कवि के हृदय रूपी आंगन में सरस्वती को नचाते हैं।

प्रनवउं सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउं बिसद तासु गुन गाथा॥
परम रम्य गिरिबरु कैलासू। सदा जहां सिव उमा निवासू॥

उन्हीं दयालु रामचन्द्र जी को प्रणाम करता हूं, कि निर्मल गुणों की कथा वर्णन कर रहा हूं। पर्वतराज कैलास बहुत सुहावना है, जहां सदैव शिव पार्वती सहित निवास करते हैं।

दो०—सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद।
बसहिं तहां सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद॥ ११५॥

सिद्ध, तपस्वी, योगी, देवता, किन्नर और मुनि ये सब पुण्यात्मा लोग वहां वास करते और आनन्द-कन्द श्री शिव की सेवा करते हैं॥ ११५॥

हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहं सपनेहुं नहिं जाहीं॥
तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला॥

विष्णु और शिवजी से जो विमुख हैं, जिनकी धर्म में प्रीति नहीं है, वे मनुष्य उस पर्वत पर स्वप्न में भी नहीं जा सकते हैं। उस पर्वत पर बड़ा बट का वृक्ष है, नित्य नवीन और सब काल में सुन्दर रहता है।

त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया। सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया।
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ॥

तीन प्रकार की शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलती रहती है, जिसकी छाया शीतल है वह शिवजी के विश्राम का वृक्ष है, ऐसा वेद में कहा गया है। एक बार शिवजी उस वृक्ष के नीचे गये तो उस वृक्ष को देखकर हृदय में बड़ा आनन्द हुआ।

निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥
कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा॥

अपने हाथ से सिंह चर्मासन बिछाकर सरल स्वभाव से दयालु शिवजी उस पर बैठ गये। कुन्द पुष्प, चन्द्रमा और शङ्ख के समान जिनका गोरा शरीर है लम्बी भुजायें और मृगचर्म तथा बल्कल आदि जिनके पहनने के वस्त्र हैं।

तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना।
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबि हारी॥

नवीन लाल कमल के समान जिनके चरण हैं और नखों की कान्ति भक्तों के हृदय अन्धकार को दूर करती है। सांप और विभूति ही जिनके गहने हैं और त्रिपुरासुर के शत्रु श्री शिवजी का मुख शरदचन्द की छवि को हरने वाला है।

दो०—जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल॥ ११६॥

शिर पर जटाओं का मुकुट, उसमें श्री गङ्गाजी विराजमान हैं, कमल समान विशाल नेत्र हैं नीलकण्ठ शोभा के भण्डार मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है॥ ११६॥

बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें॥
पारबती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी॥

उस बट वृक्ष के नीचे बैठे हुए कामदेव के शत्रु शिवजी कैसे शोभायमान लगते हैं मानो शांतरस शरीर धारण किये बैठा हो। जगन्माता भवानी पार्वती जी अच्छा समय जानकर शिवजी के समीप गईं।

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा॥
बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई॥

पार्वती को शिवजी ने अपनी प्रिया जानकर बहुत आदर किया और बाईं ओर आसन दिया श्री पार्वतीजी शिवजी के पास प्रसन्न हो बैठ गईं, तब पूर्वजन्म की कथा का स्मरण हो गया।

पति हियं हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥

अपने में पति का अधिक प्रेम जान श्री पार्वती हंसकर कोमल वाणी से बोलीं। जो कथा सब लोकों को हितकारी है वही कथा पार्वतीजी पूछना चाहती हैं।

बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा॥

हे जगत् के नाथ, मेरे स्वामी शिवजी! तीनों लोक में आपकी महिमा प्रसिद्ध है जगत् के चराचर जीव, नाग, नर, देवता सब आपके चरण कमल की सेवा करते हैं।

दो०—प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम॥ ११७॥

हे प्रभो! आप समर्थ सर्वाज्ञ और कल्याण स्वरूप हैं, सब कलाओं और गुणों के धाम हैं, योग ज्ञान और वैराग्य के समद्र हैं और आपका नाम शरणागतों के लिए कल्प वृक्ष के समान सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है॥ ११७॥

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥

हे सुख के समूह! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों और मुझको अपनी सच्ची दासी जानते हो तो हे प्रभु! रामचन्द्रजी की अनेक प्रकार की कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिए।

जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई॥
ससिभूषन अस हृदयं बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥

जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे है क्या वह भी दरिद्र से उत्पन्न दुखों को सहन करे? हे चन्द्रभाल! ऐसा हृदय में विचार कर मेरी मति का भारी भ्रम दूर करो।

प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुं ब्रह्म अनादी॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥

हे प्रभु! जो परमार्थ वादी मुनि हैं वे राम को अनादि ब्रह्म कहते हैं। शेष, शारदा वेद, पुराण ये सब रघुनाथ जी का गुण गान करते हैं।

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग आराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥

हे कामरिपु! तुम भी राम नाम दिन रात आदर सहित जपते रहते हो। वह राम जो अयोध्या नरेश (दशरथ) के पुत्र हैं, वही हैं अथवा अजन्मा, निर्गुण और अलख गति राम कोई और ही हैं?

दो०—जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहं मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥ ११८॥

जो राजपुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे हो सकते हैं कि जिनकी बुद्धि स्त्री के वियोग से व्याकुल हो गई उनका चरित्र देखकर और महिमा सुनकर मेरी बुद्धि बहुत भ्रम रही है॥११८॥

जौं अनीह व्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥

हे नाथ! यदि चेष्टा रहित विश्वव्यापक समर्थ कोई और हो तो उसको भी मुझसे समझाकर कहिये। मुझको ज्ञानहीन जानकर मन में क्रोध न कीजिए, जिस प्रकार मेरा मोह दूर हो जाये वैसा उपाय कीजिये।

मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भांति हम पावा॥

मैंने वन में राम की प्रभुता देखी, परन्तु अति भय से व्याकुल होने के कारण तुमको नहीं सुनाया तो भी मेरे मलिन मन में बोध न हुआ, सो उनका फल मुझे भली भांति मिल गया।

अजहूं कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा बिनवउं कर जोरें।
प्रभु तब मोहि बहु भांति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥

अब भी मेरे मन में कुछ सन्देह है। मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूं कि मुझ पर कृपा कीजिये। हे नाथ! उस समय आपने मुझको बहुत प्रकार से समझाया था, हे स्वामी! यह समझकर क्रोध न करना।

तब कर अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा॥

उस समय का अज्ञान मुझको अब नहीं, अब मेरे मन में कथा पर प्रेम है। हे सांपों के राजा के भूषण धारण करने वाले! आप श्री रामचन्द्रजी के पवित्र गुणों की कथा कहिए।

दो०—बंदउं पद धरि धरनि सिरु बिनय करउं कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि॥ ११९॥

मैं आपके चरणों को पृथ्वी पर शिर रखकर प्रणाम करती हूं और हाथ जोड़कर विनती करती हूं कि आप वेद का सिद्धान्त निचोड़ रघुनाथ जी का निर्मल यश वर्णन कीजिये॥ ११९॥

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहं पावहिं॥

यद्यपि मैं स्त्री हूं। श्रुति सिद्धान्त में मेरा अधिकार नहीं है तथापि मन, कर्म और वाणी से आपकी दासी हूं। साधु लोग जहां औरत अधिकारी पाते हैं वहां गूढ़ तत्व को भी नहीं छिपाते हैं।

अति आरति पूछउं सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥

हे देवताओं के राजा! अत्यन्त प्रेम में पूछती हूं श्रीराम जी की कथा आप दया करके कहिए। पहिले वह कारण विचार कर बतलाइये जिससे ब्रह्म निर्गुण सगुण शरीर धारण किया करता है।

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं॥

पार्वती कहती हैं कि हे प्रभु ! श्रीरामजी के अवतार की कथा कहिए फिर उदार बाल-चरित्र को और जानकी के साथ जैसे विवाह किया, सो सब कहिए और उन्होंने जो राज्य छोड़ा, किस दोष से छोड़ा यह भी कहिए।

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला॥

हे नाथ ! वन में बसकर उन्होंने जो अपार चरित किया और जिस प्रकार रावण को मारा उसे कहिये और राजगद्दी पर बैठकर उन्होंने बहुत सी लीलाएं की थी हें सुख के धाम ! शङ्कर जी ! सो सब कहिये।

दो०—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम॥ १२० ॥

हे करुणानिधान ! फिर श्री रामचन्द्र जी ने आश्चर्य किया सो कहिये कि किस प्रकार अपनी प्रजा सहित रघुकुल में मणिस्वरूप श्री रामचन्द्रजी बैकुण्ठ को गये ।। १२० ।।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥

फिर हे प्रभो ! उस तत्व का वर्णन करिये, जिससे ज्ञानी मुनि जन मग्न रहते हैं और फिर अलग अलग भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य सबका वर्णन करिए।

औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥

और भी राम जी के अनेक गुप्त चरित्र हैं, हे नाथ ! उनको और अत्यन्त निर्मल ज्ञान की बात को कहो। हे प्रभो ! जिस बात को मैंने पूछा नहीं है उसको भी हे दयालु छिपा न रखिये।

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पांवर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥

आप तीनों भुवनों के गुरु हैं ऐसा वेदों ने कहा है दूसरे नीच जीव क्या जाने ? पार्वती जी का सहज सुन्दर छल रहित प्रश्न सुनकर शिवजी के मन को वे बहुत अच्छी लगी।

हर हियं रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥

शिवजी को श्री रामजी का सब चरित्र स्मरण हो आया। वे प्रेम से पुलकित हो गये और नेत्रों में जल छा गया। हृदय में श्री रामचन्द्र जी का स्वरूप आ गया और उन्हें अत्यन्त आनन्द और सुख हुआ।

दो०—मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥ १२१ ॥

शिवजी ध्यानावस्थित हो दो घड़ी तक मग्न रहे फिर उससे अपना मन बाहर किया और तब महादेवजी प्रसन्न होकर श्री राम-चरित वर्णन करने लगे ।। १२१ ।।

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥

जिन के बिना जाने झूठ भी सत्य-सा प्रतीत होने लगता है जैसे रस्सी पहचाने बिना सांप प्रतीत होती है, जिसके जानने से संसार छूट जाता है जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम चला जाता है।

बंदउं बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

उन्हीं राम जी के बाल स्वरूप की वन्दना करता हूं जिसका नाम जपने से सभी सिद्धियां सरल हो जाती हैं कल्याण के घर और अनिष्टों को हरण करने वाले रामजी दशरथ जी के आंगन में विहार करने वाले दया करें।

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥

त्रिपुरा सुर को मारने वाले शिवजी ने श्री रामचन्द्र जी को प्रणाम कर अमृत के समान वाणी से कहा कि हे पार्वती ! तुम धन्य हो, तुम्हारे समान उपकारी दूसरा कोई नहीं है।

पूंछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥

समस्त लोकों और संसार को पवित्र करने के लिए गंगा के समान तुमने श्री रामचन्द्र जी की कथा का प्रसंग पूछा है राम चरणों में तुम्हारा प्रेम है और जगत् कल्याण के लिए तुमने प्रश्न किया है।

दो०—राम कृपा तें पारबति सपनेहुं तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥ १२२॥

हे पार्वती ! मेरे विचार से यह रामजी की कृपा है जो तुम्हारे मन में स्वप्न में भी शोक, मोह, सन्देह और भ्रम कुछ भी नहीं है॥ १२२॥

तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥

तो भी तुमने वही शंका की है कि जिसके कहने से सबका कल्याण (हित) हो। जिन्होंने अपने कानों से भगवान् की कथा नहीं सुनी उनके कानों के छिद्र सर्प के बिल के समान हैं।

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥

जिन्होंने अपने नेत्रों से साधुओं के दर्शन नहीं किए उनके नेत्र मोर पंखों पर लिखित नेत्रों के समान है। जो श्री भगवान और गुरु के चरणों में नहीं झुक जाते वे कड़वी तुम्बी के समान हैं।

जिन्ह हरि भगति हृदयं नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥

जिन्होंने अपने हृदय में भगवान् की भक्ति को धारण नहीं किया, वह जीता प्राणी भी मुर्दे के समान है, जो श्री राम जी के गुणों का गान नहीं गाती, वह जीभ मेंढक की जीभ के समान है।

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला॥

वह छाती बड़ी निष्ठुर है जो भगवान् का चरित्र सुन प्रसन्न नहीं होती। हे पार्वती जी! देवताओं का कल्याण करने और राक्षसों को मोहित करने वाली श्री रामचन्द्रजी की लीला सुनो।

दो०—रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि॥ १२३॥

रामजी की कथा काम धेनु के समान है और सेवा करने से सब सुखों को देने वाली है। संतों की सभा स्वर्ग के समान है। यह जानकर उसे कौन नहीं सुनेगा॥ १२३॥

रामकथा सुन्दर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी॥

रामजी की कथा हाथ की सुन्दर ताली है, जो सन्देह रूपी पक्षियों को उड़ाने वाली है। श्री रामजी की कथा कलियुग रूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी है शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! इसे सुनो।

रामनाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥

रामजी का सुन्दर चरित्र,—जन्म तथा नाम व गुण और कर्म, सबको वेदों ने अनगिनत बतलाया है। जिस प्रकार से राम अनन्त हैं, वैसे ही उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनन्त हैं।

तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउं देखि प्रीति अति तोरी॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत मोहि भाई॥

तो भी मैंने जैसा वेद में सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार तुम्हारी अति प्रीति देखकर कहूंगा। उमा तुम्हारा प्रश्न सुन्दर, सुखदायक तथा सन्तजनों के मतानुकूल जो मुझे अच्छा लगा है।

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥

तुम्हारी एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी। हे भवानी यद्यपि तुमने ऐसा अज्ञान से कहा है। तुमने जो कहा कि वे राम कोई दूसरे हैं जिन्हें वेद गाते हैं और जिसको मुनि जन ध्यान करते हैं।

दो०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥ १२४॥

नीच मनुष्य जिन्हें मोह रूपी पिशाच ने घेर लिया है, जो पाखण्डी और भगवान् के चरणों से विमुख हैं, जो झूठ और सत्य नहीं जानते, वे ऐसा कहते और सुनते हैं ॥ १२४ ॥

अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुं संतसभा नहिं देखी॥

ऐसे जो अज्ञानी, मूर्ख, अन्धे और अभागे हैं जिनके मन रूपी दर्पण में विषय रूपी मैल लग रही है। जो लंपट, कपटी और बड़े दुष्ट हैं जिन्होंने स्वप्न में भी सन्तजनों की सभा को नहीं देखा है।

कहहिं ते बेद असंमत बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥

वे ही ऐसी वेद विरुद्ध बातें कहते हैं, जिन्हें न लाभ दिखाई पड़ता है और न हानि। जिनका मन रूपी दर्पण मैला हो और जो आंखों से हीन हों, उन बेचारों को श्री रामचन्द्रजी का स्वरूप कैसे दिखलाई पड़ सकता है।

जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहि कल्पित बचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं॥

जिनको निर्गुण और सगुण की जानकारी नहीं है, जो मिथ्या बातें बकते हैं और जो भगवान् की माया के वशीभूत होकर संसार में भ्रमते फिरते हैं उनको कुछ भी कहना असम्भव नहीं है।

बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥

जो बकवादी हो प्रेत के वश हो गया हो और जिन्होंने मोहरूपी मदिरा को पिया हो ऐसे लोग विचार नहीं बोलते हैं। ऐसे लोगों के कहने पर कान नहीं देना चाहिये।

सो०—अस निज हृदयं बिचारि तजु संसय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम॥ १६ ॥

हे पार्वती ! ऐसा अपने हृदय में विचार कर संशय को छोड़ो और रामजी के चरणों को भजो। भ्रमरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य की किरणों के समान मेरे वचन को सुनो। १६ ॥

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है वेद, पुराण, मुनि और पण्डित गाते हैं कि जो अगुन, अजन्मा और रूपहीन है, वही निर्गुण है, भक्तों के प्रेम के वश हो सगुण हो जाता है।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहि जैसें॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा॥

जो निर्गुण है, वह सगुण कैसे हो जाता है, जिस प्रकार जल, ओले भिन्न नहीं होते। वैसे ही जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार के लिये सूर्य है, उसे मोह से सम्पर्क हो, यह कैसे कहा जाय।

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहं मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहं पुनि बिग्यान बिहाना॥

सच्चिदानन्द रामजी सूर्य के समान हैं और जहां मोहरूपी रात्रि का लेश मात्र भी नहीं है। भगवान् का रूप स्वभाव से ही प्रकाशमान है, फिर वहां ज्ञानरूप प्रातःकाल नहीं होता।

हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, अहंकार और अभिमान, ये सब बातें जीव का धर्म हैं। संसार जानता है कि श्री रामचन्द्रजी परमानन्द ब्रह्म आदि के स्वामी पुराण पुरुष और व्यापक ब्रह्म हैं।

दो०—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवं नायउ माथ॥ १२५॥

और जो पुरुष प्रसिद्ध हैं, जो प्रकाश का प्रकट भंडार है और जो इस सृष्टि और परलोक के स्वामी हैं, वही रघुकुलमणि श्री रामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं। ऐसा कहकर शिवजी ने मस्तक नवाया॥ १२५॥

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झांपेउ भानु कहहिं कुबिचारी॥

अपने भ्रम के कारण अज्ञानी नहीं समझते और वे मूर्ख प्राणी प्रभु (ईश्वर) पर मोह धरते हैं। जैसे आकाश में बादलों को देखकर बुरे विचार वाले लोग कहते हैं कि सूर्य छिप गया है।

चितव जो लोचन अंगुलि लाएं। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएं॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥

जो आंख में अंगुली लगा देखता है, उसको दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं। हे उमा रामजी के विषय में मोह की बात ऐसी ही है, जैसे आकाश में धूल और धुयें का अंधकार दिखाई देता है।

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

विषय, इन्द्रियां, देवता और जीव, ये सब एक से एक सचेतन होते हैं। इन सबका जो परम प्रकाश है और सबमें चेतना लाने वाला जो है वही अयोध्या के राजा अनादि पुरुष रामजी हैं।

जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

संसार प्रकाश्य है और रामजी प्रकाशक हैं वे माया के स्वामी, ज्ञान और गुणों के घर हैं। जिसकी सच्चाई से जड़ माया मोह को सहायता पाकर सत्य जैसी प्रतीत होती है।

दो०—रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुं काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥ १२६॥

जिस प्रकार चांदी सीप में और पानी सूर्य की किरणों में प्रतीत होता है यद्यपि तीनों काल में यह सब मिथ्या होते हैं, तो भी भ्रम को कोई दूर नहीं कर सकता॥ १२६॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई॥

इस प्रकार भगवान् के अधीन संसार रहता है। यद्यपि यह सत्य है तो भी दुःख देता रहता है। जिस प्रकार कोई स्वप्न में सिर काट ले, तो जागे बिना उसका दुःख दूर नहीं होता।

जासु कृपां अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥

हे पार्वती! जिसकी कृपा से ऐसा भ्रम दूर होता है वही कृपालु श्री रामचन्द्रजी हैं। जिसका किसी ने आदि और अन्त नहीं पाया और वेदों ने अपनी बुद्धि के अनुसार ऐसा कहा है कि—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

जो बिना पैरों के चलता है, बिना कानों के सुनता है और हाथों के बिना अनेक प्रकार के कर्म करता है और मुख बिना सब रसों का भोग करता है, बिना वाणी बड़ा वक्ता और योगी है।

तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

शरीर बिना स्पर्श करता है, नेत्र बिना देखता है और नाक बिना समस्त प्रकार की गन्ध सूंघ लेता है। सब प्रकार से उसकी ऐसी करनी अलौकिक है और उसकी महिमा वर्णन नहीं की जा सकती है।

दो०—जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥ १२७॥

जिसको वेद और पण्डित इस प्रकार गाते हैं और मुनि जन जिसका ध्यान करते हैं वही भक्तों के हितकारी, कौशलपति, दशरथ जी के पुत्र भगवान् श्री रामचन्द्रजी हैं॥ १२७॥

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउं बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

और काशी में प्राणियों को मरता हुआ देखकर मैं जिसके नाम के बल से उनको शोक रहित कर देता हूं, वही प्रभु सबके हृदयों में व्यापक श्री रामचन्द्रजी मेरे और चराचर के स्वामी हैं।

बिबसहुं जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

जिसका नाम परबस होकर भी यदि मनुष्य कहते हैं तो अनेक जन्मों के पाप नाश हो जाते हैं। जो मनुष्य आदरपूर्वक स्मरण करते हैं, वे संसार रूपी समद्र को गाय के खुर के गढ़े के समान पाकर जाते हैं।

राम सो परमातमा भवानी। तहं भ्रम अति अबिहित तव बानी॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं॥

श्री रामचन्द्रजी वही परमात्मा हैं। हे भवानी! उनके विषय में भ्रम करना और तुम्हारा ऐसा कहना अत्यन्त अयोग्य है। मन में ऐसा संदेह लाने मात्र से, ज्ञान, वैराग्य और सब गुण चले जाते हैं।

सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥

अज्ञान को दूर कर देने वाले शिवजी के वचन सुन कर कुतर्क की सारी रचना अलग हो गई। श्री रामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति और विश्वास उत्पन्न हुआ और सब संशय मिट गया।

दो०—पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुं प्रेम रस सानि॥ १२८॥

तब पार्वती जी बारम्बार शिवजी के चरणों को पकड़कर अपने दोनों हाथों को जोड़कर प्रेम से भरे हुए सुन्दर वचनों को बोलीं॥ १२८॥

ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥

चन्द्रमा की किरणों के समान आपकी वाणी सुन शरद ऋतु की धूप के समान मेरा भ्रम दूर हो गया। हे कृपालु! आपने मेरा सब संशय दूर कर दिया। अब मुझे श्री रामचन्द्रजी का स्वरूप जान पड़ा है।

नाथ कृपां अब गयउ बिषादा। सुखी भयउं प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥

हे नाथ ! आपकी कृपा से सब दुःख दूर हो गया और प्रभु के चरणों के प्रसाद से मैं सुखी हो गई । यद्यपि मैं स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और अज्ञान हूं, तो भी अब मुझे अपनी दासी जानिए ।

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू । जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥
राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी । सर्ब रहित सब उर पुर बासी ॥

जो मैंने पहले पूछा उसे कहिये हे प्रभु ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो ! श्री रामचन्द्रजी ब्रह्म हैं, चैतन्य रूप हैं, अविनाशी हैं, सबसे अलग हैं और सबके हृदय रूपी नगर में बसते हैं ।

नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू । मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू ॥
उमा बचन सुनि परम बिनीता । रामकथा पर प्रीति पुनीता ॥

हे नाथ ! उन्होंने मनुष्य का शरीर क्यों धारण किया, हे महादेव जी ! सो मुझे समझाकर कहो । पार्वती के अत्यन्त नम्र वचन सुनकर और श्री राम कथा पर अटल प्रीति देखकर ।

दो०–हियं हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान ।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान ॥ १२९ ॥

तब कामदेव के शत्रु, सहज सुजान श्री शिवजी हृदय में प्रसन्न हुए और फिर अनेक प्रकार से उमा की प्रशंसा करके बोले ॥ १२९ ॥

सो०–सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल ।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़ ॥ १७ ॥

हे भवानी ! अब निर्मल रामचरितमानस की शुभ कथा को सुनो । जो कागभुशुण्डि ने वर्णन किया और पक्षियों के राजा गरुड़ जी ने सुना ॥ १७ ॥

सो संवाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब ।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ ॥ १८ ॥

यह अच्छा सम्वाद जिस प्रकार हुआ, वह फिर आगे कहूंगा । अभी श्री रामचन्द्रजी के अवतार का अत्यन्त सुन्दर और पाप रहित चरित सुनो ॥ १८ ॥

हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित ।
मैं निज मति अनुसार कहउं उमा सादर सुनहु ॥ १९ ॥

हरि भगवान् के नाम और गुण अपरम्पार है, उनकी कथा और रूप असंख्य और असीम हैं । सो मैं अपनी मति के अनुसार कहता हूं । हे उमा ! आदरपूर्वक सुनो ॥ १९ ॥

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए । बिपुल बिसद निगमागम गाए ॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई । इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥

हे पार्वती ! भगवान के सुन्दर विस्तार युक्त और निर्मल चरित्र सुनो, जिन्हें वेद शास्त्रों ने गाया है । भगवान् का अवतार किस कारण होता है, उसे नहीं कहा जा सकता कि यह ऐसा ही है ।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥

यद्यपि बुद्धि, मन और वचन से श्री रामचन्द्रजी तर्क से परे हैं। हे सयानी! सुनो, मेरा मत है तथापि सन्तजन, मुनि और वेद पुराण अपनी अपनी मति के अनुसार जैसा जो कुछ कहते हैं।

तस मैं सुमुखि सुनावउं तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥

हे सुमुखि! वैसा मैं सुनता हूं जैसा कारण मुझे समझ पड़ता है। जब जब धर्म की हानि होती है और नीच अभिमानी असुर बढ़ते हैं।

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

वह ऐसा अन्याय करते हैं जो वर्णन में नहीं आ सकता, गऊ, ब्राह्मण, देवता और पृथ्वी सब दुःख पाते हैं। तब कृपानिधान प्रभु अनेक प्रकार का शरीर धारण कर सबका दुःख दूर करते है।

दो०—असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥ १३०॥

और राक्षसों का नाश कर देवताओं को स्थापित करते हैं, अपनी मर्यादा की रक्षा करते हैं और संसार में अपना उज्जवल यश फैलाते हैं। श्री रामजी के जन्म का यही कारण है ॥१३०॥

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥

भक्तजन वही यश गाकर संसार से तर जाते हैं। कृपा सिन्धु भक्तों के हित के लिए शरीर धारण करते हैं। हे पार्वती! श्री रामजी के जन्म के अनेक कारण हैं और वे सब एक से एक अत्यन्त विचित्र हैं।

जनम एक दुइ कहउं बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥

हे सुन्दर बुद्धि वाली! एक दो जन्मों की कथा कहता हूं। हे भवानी! सावधान होकर सुनो। भगवान् विष्णु के प्यारे दो द्वारपाल जय और विजय हैं, उनको सब कोई जानता है।

बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनककसिपु अरु हाटक लोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥

उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों के श्राप से तामसी राक्षस शरीर पाया तो एक का नाम हिरण्यकश्यप और दूसरे का हिरण्याक्ष हुआ जो इन्द्र के गर्व को दूर करने वाले सारे संसार में प्रसिद्ध हुए।

बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥

ये युद्ध में विजय पाने वाले प्रसिद्ध वीर थे। इनमें से हिरण्याक्ष को प्रभु ने वराह शरीर धारण कर और दूसरे को नरसिंह रूप होकर मारा और भक्त प्रहलाद का सुन्दर यश फैलाया।

दो०—भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान॥ १३१॥

वही दोनों बाद में महावीर बलवान् योद्धा और देवताओं को विजय करने वाले राक्षस रावण और कुम्भकरण के नाम से जाने गये। जिन्हें संसार जानता है॥ १३१॥

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥

भगवान् द्वारा वध किए जाने पर भी उन दोनों की मुक्ति नहीं हुई। मुनि का श्राप तीन जन्म के लिए था। एक बार उनके हित के लिए भगवान ने शरीर धारण किया।

कस्यप अदिति तहां पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा॥

वहां उनके माता पिता कश्यप और अदिति थे, वही दशरथ और कौशिल्या के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार भगवान् ने कल्प में अवतार लिया और अपनी लीला से संसार को पवित्र किया।

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी॥

एक कल्प में सब देवताओं को जो जलन्धर नाम के दैत्य से पराजय हुए थे दुखी देखकर शिवजी ने उसके साथ अपार संग्राम किया परन्तु वह बलवान् राक्षस मारे न मरता था। उस राक्षस की पत्नी बड़ी पतिव्रता थी, जिसके कारण शिवजी उसको नहीं मार सकते थे।

दो०—छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥ १३२॥

भगवान् ने छल कर उसका व्रत भंग किया और देवताओं का कार्य पूरा किया जब उसने यह भेद जाना तब क्रोधित हो श्राप दे दिया ।। १३२ ।।

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना ॥
तहां जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ ॥

भगवान् ने उसके श्राप को अङ्गीकार किया। कौतुक करने वाले भगवान् बड़े ही कृपालु हैं। वहां जलंधर रावण हुआ, जिसको युद्ध में मार कर श्री रामचन्द्रजी ने परम पद दिया।

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा ॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी ॥

भगवान् के एक जन्म का यही कारण है जिसके लिए उन्होंने मनुष्य का शरीर धारण किया। प्रत्येक अवतार की कथा मुनियों से सुनकर बहुत से कवियों ने वर्णन की है।

नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा ॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी ॥

एक बार नारदजी ने श्राप दिया था जिस कारण एक कल्प में अवतार हुआ। यह बानी सुनकर पार्वतीजी को आश्चर्य हुआ क्योंकि नारदजी ज्ञानी मुनि और विष्णु भगवान् के परम भक्त हैं।

कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा ॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी ॥

किस कारण मुनि ने श्राप दिया? भगवान् लक्ष्मीपति ने क्या अपराध किया था? हे त्रिपुरासुर के शत्रु शिवजी, मुझसे यह सब वृतान्त कहिये। मुनि के मन को मोह होना भारी आश्चर्य है।

दो०—बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ ॥ १३३ ॥

तब महादेवजी हंस कर बोले कि न तो कोई ज्ञानी है और न तो कोई मूर्ख है। श्री रामचन्द्रजी जब जिसको जैसा करते हैं उस समय वह वैसा ही हो जाता है ।। १३३ ।।

सो०—कहउं राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद ॥ २० ॥

हे भारद्वाज? आदर पूर्वक सुनो, मैं अब श्री रामजी के गुणों की कथा कहता हूं। श्री रामजी संसार के दुःख को नाश करने वाले हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मान मद छोड़ उनका भजन करो ।। २० ।।

(नारद का मोहित होना)

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि ॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा ॥

हिमालय पर्वत के नीचे एक अच्छी गुफा थी, जिसके पास ही गङ्गा जी बहती हैं और जहां एक पवित्र आश्रम शोभायमान था, जिसको देख कर नारद के मन को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥

अनेक पर्वत, नदियां और वन देखकर श्री लक्ष्मीपति भगवान् के चरणों में नारदजी का प्रेम हुआ, जिसके स्मरण करते ही शाप मिट गया और निर्मल बुद्धि समाधि में लग गई।

मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हियं जलचरकेतू॥

मुनि की समाधि को देखकर इन्द्र को भय हुआ और कामदेव को बुलाकर आदर किया और कहा अपने सहायकों सहित नारदजी के पास जाओ, तब कामदेव हर्षित होकर चला।

सुनासीर मन महुं असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥

इन्द्र के मन में यह भारी भय था कि नारदजी मेरे लोक का राज्य लेना चाहते हैं। संसार में जो लोग कामी और लोभी होते हैं, वह दुष्ट कौवे की भांति सबसे डरते हैं।

दो०—सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज॥ १३४॥

जिस प्रकार कुत्ता सिंह को देख कर सूखा हाड़ लेकर भाग जावे और यह समझे कि सिंह उसे कहीं छीन न ले, ऐसे ही इन्द्र को वैसे सोचते लज्जा न आई॥१३४॥

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायां बसंत निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥

जब कामदेव उस आश्रम में गया, तब उसने अपनी माया से बसंत ऋतु को प्रगट किया। जिससे वृक्षों पर अनेक प्रकार के बहुत रंगों के फूल खिल गए, कोयल कूकने लगी, भौंरे गूंजने लगे।

चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी॥
रंभादिक सुरनारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना।

तीनों प्रकार की सुन्दर, शीतल, मन्द सुगन्धित पवन कामरूपी अग्नि को बढ़ाने वाली चलने लगी। रम्भा आदि देवताओं की नवीन स्त्रियां जो सब कलाओं में चतुर थीं –

करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥

वे सब तरह की तानों को भर कर गान करने और अपने हाथों से बहुत तरह की क्रीड़ाएं करने लगीं। ऐसी सहायता देखकर कामदेव प्रसन्न हुआ और फिर उसने अनेक प्रकार के प्रपञ्च किये।

काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयं डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चांपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

कामदेव की माया का मुनि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तब पापी कामदेव अपने डर से डरने लगा। भगवान् लक्ष्मीपति जिसके बड़े रक्षक हैं, उसकी मर्यादा को क्या कोई दबा सकता है?

दो०—सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन॥ १३५॥

कामदेव ने सेना सहित अधिक डरकर दीनता से भरे हुए सुन्दर मीठे वचन कहकर और मन में हार मान कर मुनि के चरणों को जा पकड़ा॥ १३५॥

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥

नारदजी के मन में कुछ भी रोष नहीं हुआ, उन्होंने मीठे वचन कह कामदेव को सन्तोष दिलाया। तब अपने सहायकों सहित चरणों में सिर नवा और आज्ञा पाकर कामदेव देव लोक को गया।

मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभां जाइ सब बरनी॥
सुनि सबकें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा॥

कामदेव ने मुनि की सुशीलता और अपनी करतूत, सब इन्द्र की सभा में जाकर वर्णन किया, जिसको सुन सबके मन में आश्चर्य हुआ और सबने मुनि की प्रशंसा करते हुये भगवान् को सिर नवाया।

तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरित संकरहि सुनाए। अति प्रिय जानि महेस सिखाए॥

तब शिवजी के पास नारदजी गए। उनके मन में ऐसा अभिमान था कि मैंने कामदेव को जीत लिया। उन्होंने कामदेव की लीलाएं सुनायीं। तब अत्यन्त प्यारा समझ उन्हें यह शिक्षा दी।

बार बार बिनवउं मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूं। चलेहुं प्रसंग दुराएहु तबहूं॥

श्री शिवजी ने कहा हे मुनि! मैं तुम्हारी विनती करता हूं। जैसे आपने यह कथा मुझे सुनाई है, वैसे कभी हरी को मत सुनाना। और यदि ऐसी चर्चा भी चले तो भी इसे छिपा रखना।

दो०—संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान॥ १३६॥

नारदजी को शिवजी ने कल्याण के लिए यह उपदेश दिया था वह उनको अच्छा नहीं लगा। हे भरद्वाज! प्रभु की इच्छा बड़ी बलवान है अब आगे का कौतुक सुनो॥ १३६॥

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥
संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए॥

वही होता है—श्रीरामजी जो करना चाहते हैं। ऐसा कोई नहीं है, जो उसे अन्यथा करे। जब शिवजी का कथन मुनि के मन को अच्छा नहीं लगा अब वह ब्रह्मलोक को चले गए।

एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना।
छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहं बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा॥

गान विद्या के ज्ञाता मुनियों के स्वामी नारदजी एक बार हाथ में सुन्दर वीणा लिए भगवान् के गुणों को गाते हुए क्षीर समुद्र में गए, जहां श्रीनिवास वेदों के स्वामी विष्णु वास करते थे।

हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥
बोले बिहसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया॥

रमा निवास भगवान् प्रसन्नता पूर्वक उठ कर मिले और ऋषि समेत फिर आसन पर बैठे। चराचर के स्वामी विष्णु ने हंसकर कहा हे मुनि! बहुत दिन के बाद दया की है।

काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवं राखे॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥

नारदजी ने कामदेव की सब लीलाएं कह सुनाई। यद्यपि शिवजी ने उन्हें पहले ही रोक दिया था। रामजी की माया अत्यन्त बलवान् है, संसार में ऐसा कौन उत्पन्न हुआ है जिसे मोह नहीं।

दो०—रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान॥ १३७॥

श्री भगवान् ने मुंह रूखाकर मीठे वचन बोले कि हे मुनि! तुमको स्मरण करने से मोह, काम, मद और अभिमान दूर हो जाते हैं॥ १३७॥

सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा॥

हे मुनि सुनो! मोह उसके मन में होता है जिसके हृदय में ज्ञान और वैराग्य नहीं होता। तुम धीर बुद्धि वाले और ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करने वाले हो, क्या तुम्हें कामदेव सता सकता है?

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥

नारद ने अभिमान के साथ कहा कि हे भगवन्! सब आपकी कृपा है। करुणानिधि भगवान ने मन में विचार कर देखा कि नारद के हृदय में अभिमान के भारी वृक्ष का अंकुर उत्पन्न हो गया है।

बेगि सो मैं डारिहउं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥

उसे मैं जल्दी ही उखाड़ दूंगा कारण कि भक्तों का हित करना मेरी प्रतिज्ञा है। अवश्य ही मैं ऐसा उपाय करूंगा जिसमें मेरा कौतुक और मुनि का कल्याण हो।

तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदयं अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥

नारायण यह विचार कर रहे थे, उसी समय नारदजी हरि के चरणों को सिर झुका हृदय में बड़े अभिमानित होकर चले। तब भगवान् ने अपनी माया को भेजा। उसकी कठिन करनी सुनो।

दो०—बिरचेउ मग महुं नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार॥ १३८॥

उसने मार्ग में एक नगर सौ यौजन के विस्तार वाला जो बैकुण्ठ से भी अधिक शोभायमान था अनेक प्रकार की रचना से बना दिया॥ १३८॥

बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥

उस नगर में सुन्दर स्त्री पुरुष ऐसे थे मानों बहुत से कामदेव अपनी स्त्री रति सहित शरीर धारण किये हुए वास कर रहे हों। उस नगर में असंख्य घोड़े, हाथी और सेना सहित शीलनिधि राजा वास करता था।

सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी॥

सौ इन्द्र के समान उसका ऐश्वर्य बिलास था, और रूप, तेज, बल और नीति का स्थान था। उस राजा के पास विश्व-मोहिनी नाम की कन्या थी, जिसके रूप को देख लक्ष्मी भी मोहित हो जाती थी।

सोइ हरि माया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयंबर सो नृप बाला। आए तहं अगनित महिपाला॥

यह भगवान् की माया सब गुणों की खानि थी, उसकी शोभा का क्या वर्णन किया जाये। वह राज-कन्या स्वयंबर किया चाहती थी। इस कारण वहां बहुत से राजा लोग आये थे।

मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूपगृहं आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए॥

कौतुकी मुनि नारदजी उस नगर में गये और नगर निवासियों से सब वृत्तान्त पूछ लिया। वहां का सब चरित्र सुनकर राज मन्दिर में आये, राजा ने मुनि का पूजन कर आसन पर बैठाया।

दो०—आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयं बिचारि॥ १३९॥

राजा ने नारदजी को राज-कन्या लाकर दिखाई और कहा कि हे स्वामिन्! इस कन्या का सब गुण दोष हृदय में विचार कर कहिये॥ १३९॥

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदयं हरष नहिं प्रगट बखाने॥

राजकन्या का रूप देखकर नारद मुनि वैराग्य भूल गये और देर तक उसकी तरफ देखते रहे। फिर उसका लक्षण देख सुधि भूल गए। हृदय में आनन्द छा गया परन्तु प्रगट रूप से कुछ नहीं कहा।

जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥

मन में विचार किया कि जो इस कन्या को वरे वह अमर हो जावे, समर भूमि में उसे कोई जीत न सके। सब चराचर उसकी सेवा करें जिसको शीलनिधि की कन्या वरे।

लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाषे॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥

सब लक्षण विचार कर अपने मन में रख लिए और राजा से कुछ बनाकर कह दिया। राजा से कन्या को सुलक्षणी कहकर नारदजी चले, परन्तु मन में यह सोच करने लगे कि—

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥

अब जाकर वह उपाय करूं, जिस प्रकार मझको यह राजकुमारी वरे, यही यत्न करना चाहिए। जप, तप तो इस समय हो नहीं सकता, हे विधाता! यह कन्या मुझे कैसे मिले?

दो०—एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअंरि तब मेलै जयमाल॥ १४०॥

इस समय तो परम शोभा और विशाल रूप चाहिये, जिसको देखकर राजकन्या रीझे और जयमाला डाल दे॥ १४०॥

हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई॥
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥

भगवान् से सुन्दरता मांगूं परन्तु जाने आने में बहुत विलम्ब होगा। मेरा हेतू नारायण के समान दूसरा कौन है, इस समय वही भगवान् मेरी सहायता करेंगे।

बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएं हरषाने॥

यह विचार कर नारदजी ने उस समय नारायण की बहुत प्रकार विनती की तब कौतुकी प्रभ प्रकट हुए। प्रभु को देख नेत्र शीतल हो गए। अब कार्य सिद्ध हो जायगा।

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भांति नहिं पावौं ओही॥

अति आतुर होकर सब कथा सुना दी, और कहा हे प्रभु! मुझ पर कृपा कर मेरी सहायता कीजिए। हे प्रभु! अपना रूप दीजिए, क्योंकि दूसरे प्रकार से मैं उसको नहीं पाऊंगा।

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥
निज माया बल देखि बिसाला। हियं हंसि बोले दीनदयाला॥

हे नाथ! जिस प्रकार मेरा भला हो, वह उपाय शीघ्र कीजिये। मैं आपका दास हूं। अपनी माया का प्रबल बल देख मन में हंस कर दीनदयालु भगवान् बोले।

दो०—जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥ १४१॥

हे नारद ? सुनो, जिस प्रकार तुम्हारा परम हित होगा, हम वही करेंगे और कुछ नहीं। हमारा वचन झूठा नहीं है॥ १४१॥

कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ॥

हे योगी मुनि ? रोग से व्याकुल रोगी जैसे कुपथ्य मांगता है, परन्तु वैद्य नहीं देता। इसी प्रकार मैंने तुम्हारा हित करना निश्चय किया है, इतना कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गए।

माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहां रिषिराई। जहां स्वयंबर भूमि बनाई॥

नारदजी माया के वश में ऐसे मूढ़ हो गए थे कि भगवान् की गूढ़ वाणी भी नहीं समझ सके। ऋषिराज नारद तुरन्त वहां गए, जहां स्वयंवर भूमि की रचना हुई थी।

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें॥

सब राजा अपने अपने आसन पर बहुत बनाव कर समाज सहित बैठे। नारद मुनि अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए कि मेरा रूप सबसे बढ़कर है मुझको छोड़ दूसरे को यह राजकुमारी भूलकर भी नहीं वरेगी।

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाई बखाना॥
सो चरित्र लखि काहु न पाया। नादर जानि सबहिं सिर नावा॥

मुनि के हितार्थ भगवान् ने उनको ऐसा कुरूप दिया जो कहा नहीं जाता। इस चरित्र का भेद किसी को न मिला। सब लोगों ने नारदजी जान कर प्रणाम किया।

दो०—रहे तहां दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेद।
बिप्र बेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ॥ १४२॥

वहां दो रुद्रगण बैठे थे, जो सब भेद जानते थे, और बड़े कौतुकी थे। ब्राह्मण वेश में सब देखते फिरते थे॥ १४२॥

जेहिं समाज बैठे मुनि जाई। हृदयं रूप अहमिति अधिकाई॥
तहं बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ॥

जिस समाज में नारद मुनि मन में रूप का अधिक अभिमान कर बैठे थे, वहां महादेवजी के दोनों गण ब्राह्मण के वेष में बैठे थे। उनको कोई पहचान नहीं सकता था।

करहि कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई॥
रीझिहि राजकुअंरि छबि देखी। इन्हहिं बरिहि हरि जानि बिसेषी॥

वे रुद्रगण नारदजी को सुना कर ठट्ठा करते थे कि भगवान् ने इनको अच्छी सुन्दरता दी है। राजकुमारी इनकी छवि को देखकर रीझेगी और इनको साक्षात् जानकर वरेगी।

मुनिहि मोह मन हाथ पराएं। हंसहि संभु गन अति सचु पाएं॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी॥

मुनि तो मोह में थे और मन पराये हाथ में था। इस कारण रुद्रगणों की हंसी पर कोई ध्यान नहीं दिया। यद्यपि नारद मुनि उल्टी सीधी बातें सुनते रहे तथापि समझ में नहीं आती थी, बुद्धि भ्रमित हो रही थी।

काहुं न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृपकन्या देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदयं क्रोध भा तेही॥

उस विशेष चरित्र का पता किसी को नहीं लगा, परन्तु यह स्वरूप राजकन्या को दिखाई दिया। वानर के समान मुख और भयंकर शरीर देखते ही राजकन्या को हृदय में बड़ा क्रोध हुआ।

दो०—सखीं संग लै कुअंरि तब चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल॥ १४३॥

तब राजकुमारी सखियों के साथ राजहंस के समान मन्द-मन्द गति से चली और कमल समान हाथों में जयमाला लिए सब राजाओं को देखती हुई विचरने लगी॥ १४३॥

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥

जिस दिशा में नारदजी फूले हुए बैठे थे, उस दिशा को राजकन्या ने भूल करके भी नहीं देखा, बारम्बार नारद मुनि ऊपर उचकते और व्याकुल होते थे, उनकी यह दशा देखकर शिवजी के गण आपस में हंस रहे थे।

धरि नृपतनु तहं गयउ कृपाला। कुअंरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥

वहां कृपालु (नारायण) राजा का शरीर धारण करके गये, उन्हें देखते ही राजकुमारी ने प्रसन्न होकर भगवान् के गले में जयमाला पहिना दी। लक्ष्मीनिवास (नारायण) दुलहिन ले गये, तब सब राजा समाज निराश हो गया।

मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। मनि गिरिं गई छूटि जनु गांठी॥
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥

उस समय नारद मुनि अत्यन्त व्याकुल हुए और मोह से बुद्धि नष्ट हो गई, मानो गांठ से खुलकर मणि गिर गई है। तब शिवजी के गण मुस्कराकर बोले कि दर्पण में अपना मुख तो जाकर देखो।

अस कहि दोउ भागे भयं भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥

यह कहकर दोनों रुद्रगण बहुत डरकर भागे, तब नारदजी ने जल में मुख देखा। वेष देखकर अत्यन्त क्रोध हुआ और उन दोनों रुद्रगणों को महाघोर श्राप दिया।

दो०—होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हंसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हंसेहु मुनि कोउ॥ १४४॥

अरे कपटी पापियों! तुम दोनों पृथ्वी पर जाकर राक्षस हो, हमको देखकर हंसे उसका फल लेते जाओ, फिर किसी मुनि को देखकर हंसना॥ १४४॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयं संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥

फिर जल में देखा, तो अपना रूप पाया तो भी हृदय में संतोष नहीं हुआ। होंठ कांपने लगे। मन में क्रोधित हो तुरन्त भगवान के पास चले।

देहउं श्राप कि मरिहउं जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंच मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥

मन में कहने लगे कि जाकर शाप दूंगा। वो मारूंगा जो जगत में मेरी हंसी कराई लक्ष्मी और उस राजकुमारी सहित बीच ही में राक्षसों के शत्रु नारायणजी मिल गए।

बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहं चले बिकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥

नारदजी को देखते ही भगवान् मधुर बचन बोले कि हे मुनि ! आप व्याकुल हुए कहां जा रहे हैं ? भगवान् का वचन सुन नारदजी को बड़ा क्रोध हुआ, माया के वश होने से मन में ज्ञान न रहा ।

पर संपदा सकहु नहिं देखी । तुम्हरें इरिषा कपट विसेषी ॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु । सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु ॥

नारदजी बोले कि हे नारायण ! तुम दूसरे की संपति नहीं देख सकते, तुमको ईर्ष्या और कपट बहुत है । समुद्र मथते समय शिवजी को पागल बना दिया और देवताओं द्वारा प्रेरणा कराकर उनको महा काल कूट विष पिला दिया ।

दो०—असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनि चारु ।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट व्यवहारु ॥ १४५ ॥

असुरों को मोहिनी बनाकर सुरा पान कराया और महादेवजी को विष दे दिया, आपने लक्ष्मी और कौस्तुभमणि इन दोनों सुन्दर वस्तुओं को ले लिया । तुम स्वार्थ साधक और कुटिल हो, सदा कपट का व्यवहार रखते हो ॥ १४५ ॥

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई । भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई ॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू । बिसमय हरष न हियं कछु धरहु ॥

तुम सबसे बढ़कर स्वेच्छाचारी हो, तुम्हारे सिर पर कोई नहीं, जो मन में अच्छा लगता है वही तुम करते हो । भले को मन्द और मन्द को भला कर देते हो, विषमय और हर्ष मन में कुछ नहीं रखते हो ।

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ॥
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा । अब लगि तुम्हहि न काहूं साधा ॥

सबको ठग-ठग कर तुम परचे हो, बड़े निडर हो, मन में सदा आनन्दित रहते हो, शुभ अशुभ काम तुम को नहीं बांधते और न अब तक किसी से तुमको काम पड़ा है ।

भले भवन अब बायन दीन्ह । पावहुगे भल आपन कीन्हा ॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा । सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा ॥

भले घर तुमने नेवता दिया है, अपने किये का फल पाओगे । जिस देह को धारण कर मुझको धोखा दिया है, वही शरीर धारण करो यही मेरा शाप है ।

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी । करिहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी । नारि विरहं तुम्ह होब दुखारी ॥

और तुमने वानर के ऐसा हमारा स्वरूप बना दिया, इसलिए बन्दर तुम्हारी सहायता करेंगे । तुमने हमारा बड़ा अपकार किया, इससे तुम भी स्त्री के वियोग से दुःखी होगे ।

दो०—श्राप सीस धरि हरषि हियं प्रभु बहु बिनती कीन्हि ।
निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि ॥ १४६ ॥

नारदजी का शाप सिर पर धारण कर हृदय में प्रसन्न हो प्रभु ने देवताओं का कार्य किया और फिर कृपासिन्धु भगवान् ने अपनी माया की प्रबलता को खींच लिया ।। १४६ ।।

जब हरि माया दूरि निवारी । नहिं तहं रमा न राजकुमारी ॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना । गहे पाहि प्रनतारति हरना ॥

जब हरि ने अपनी माया को दूर कर दिया, तब नारदजी ने देखा कि न तो वहां लक्ष्मी हैं न वह राजकुमारी । तब नारदजी ने बहुत डरकर भगवान् का चरण पकड़ लिया और कहने लगे कि हे भक्तों के दुःख हरने वाले ! मेरी रक्षा करो ।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला । मम इच्छा कह दीनदयाला ॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे । कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे ॥

हे कृपालु ! हमारा श्राप मिथ्या हो जाये, तब दीन दयालु प्रभु ने कहा वह हमारी इच्छा है, नारद मुनि कहने लगे कि हे भगवान् ! मैंने बहुत दुर्वचन कहा है यह मेरा पाप कैसे छूटेगा ?

जपहु जाइ संकर सत नामा । होइहि हृदयं तुरत विश्रामा ॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें । असि परतीति तजहु जनि भोरें ॥

यह सुन भगवान् बोले हे नारद ? शिवजी का सौ नाम जाकर जपो तो हृदय तुरन्त शान्त होगा । शिवजी के समान मुझे और कोई प्यारा नहीं है ऐसा विश्वास भूल कर भी मत छोड़ना ।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई । अब न तुम्हहि माया निअराई ॥

हे मुनि ? जिस पर महादेवजी कृपा नहीं करते वह हमारी भक्ति नहीं पाता । हृदय में ऐसा विश्वास रख पृथ्वी पर जाकर बिचारो, अब तुम्हारे निकट माया नहीं जायेगी ।

दो०—बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान ।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान ॥ १४६ ॥

बहुत प्रकार नारद मुनि को समझाने से जब उन्हें ज्ञान हुआ और अहंकार दूर हो गया । तब भगवान् अन्तर्ध्यान हो गए और नारदजी राम गुन गाते हुए सत्य लोक को चले ।। १४७ ।।

हर गन मुनिहि जात पथ देखी । बिगतमोह मन हरष बिसेषी ॥
अति सभीत नारद पहिं आए । गहि पद आरत बचन सुनाए ॥

शिवजी के गणों ने मुनि को मोह रहित और प्रसन्न मन से मार्ग में जाते हुए देखकर बहुत भयभीत हो नारदजी के समीप आये और चरण पकड़े और कहने लगे ।

हर गन हम न बिप्र मुनिराया । बड़ अपराध कीन्ह फल पाया ॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला । बोले नारद दीनदयाला ॥

हे मुनिराज ? हम शिवजी के गण हैं, ब्राह्मण नहीं हैं। हम लोगों ने आपका बड़ा अपराध किया था, उसका फल मिल गया। हे कृपालु मुनि ! शाप का अनुग्रह कीजिये, तब दीनदयालु नारदजी बोले कि—

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुजबल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥

तुम दोनों जाकर राक्षस होओगे और तेज, बल तथा ऐश्वर्य बहुत होगा, तुम दोनों जब अपनी भुजा के बल से संसार को जीतोगे, तब विष्णु भगवान मनुष्य का शरीर धारण करेंगे।

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई॥

संग्राम में भगवान् के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी, तब तुम मुक्त हो जाओगे फिर संसार में न आओगे। इस प्रकार शाप का अनुग्रह सुन दोनों रुद्रगण मुनि के चरणों पर सिर नवाकर चले और फिर समय पाकर दोनों ने राक्षस होकर पृथ्वी पर जन्म पाया।

दो०—एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुबि भार॥ १४७॥

एक कल्प में इस कारण प्रभु ने अवतार लिया, जो भगवान् नारायण देवताओं को प्रसन्न रखने वाले, सज्जनों को सुख देने वाले और पृथ्वी का भार उतारने वाले हैं॥ १४८॥

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥

इस प्रकार श्री विष्णु भगवान् के अनेक जन्म और सुन्दर सुख देने वाले अनोखे बहुत से कर्म हैं। हर कल्प में भगवान अवतार लेते हैं और अनेकों प्रकार के सुन्दर चरित्र किया करते हैं।

तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥

जब जब भगवान ने इस प्रकार के अनेकों चरित्र किये हैं, तब तब मुनियों ने उनकी कथा अत्यन्त पवित्र करके गाई हैं। अनेकों प्रकार के उपमारहित विषयों का वर्णन किया है, जिसको सुन बुद्धिमान मनुष्य आश्चर्य नहीं करते।

हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥

ईश्वर अनन्त है और उनकी कथा भी अनन्त हैं, जिसको सन्तजन भली भांति से कहते और सुनते हैं। रामजी के सुन्दर चरित्र करोड़ों जन्म पर्यन्त और कल्प तक भी वर्णन किये जायें तो भी समाप्त नहीं हो सकते।

यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमायां मोहहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुख हारी॥

हे पार्वती ! मैंने यह भगवान् की कथा तुमसे कह सुनाई कि जो ज्ञानी मनुष्य के मन को भी मोहित कर देती है। श्री रामचन्द्रजी बड़े कौतुकी और जनों के हितकारी हैं वे सेवा करने से सहज ही प्रसन्न होते हैं और सब प्रकार के दुःखों को दूर करने वाले हैं।

सोरठा—सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचार मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि॥ २१॥

श्री भगवान् की ऐसी प्रबल माया है जो सुर, नर और मुनि ऐसा कोई नहीं है कि जिसको न मोह लेती हो। ऐसा मन में विचार कर मायापति श्री भगवान् रामचन्द्रजी का भजन करना चाहिए॥ २१॥

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउं बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥

हे पार्वती ! इस कथा का दूसरा कारण सुनो, जो बड़ा विचित्र है, उसे विस्तारपूर्वक कहता हूं। जिस कारण अजन्मा, निर्गुण, रूप रहित ब्रह्म अयोध्या के राजा रामचन्द्रजी हुये।

जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बंधु समेत धरें मुनि वेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥

मुनि वेष धारण किये हुये जिस प्रभु को तुमने भाई सहित वन में फिरते देखा था। हे भवानी ! जिसके चरित्र को देखकर तुम सती के शरीर में बावली हो गई थी।

अजहुं न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउं मति अनुसारा॥

अब भी तुम्हारा भ्रम नहीं मिटता है —उसी भ्रम को दूर करने के लिये यह चरित्र तुमको सुनाता हूं। उस अवतार में श्री रामजी ने जो जो लीलाएं की हैं, वह सब अपनी मति के अनुसार कहता हूं।

भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥
लगे बहुरि बरनै बृषकेतु। सो अवतार भयउ जेहि हेतु॥

हे भरद्वाज मुनि ? शंकरजी का वचन सुन पार्वतीजी को बड़ा संकोच हुआ वह प्रेम से विह्वल हो गईं, फिर जिस कारण रामजी का अवतार हुआ, उसको महादेव जी वर्णन करने लगे।

दो०—सो मैं तुम्ह सन कहउं सबु सुनु मुनीस मन लाइ।
राम कथा कलिमल हरनि मंगल करनि सुहाइ॥ १४१॥

हे मुनिश्वर ? यह सब कथा मैं तुमसे कहता हूं मन लगाकर सुनो। रामजी की कथा कलिकाल के दोषों को दूर करने वाली सुन्दर और मङ्गल करने वाली है॥ १४६॥

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा॥
दंपति धरम आचरन नीका। अजहुं गाव श्रुति जिन्ह कै लीका॥

स्वयं भू मनु और सतरूपा वे दोनों दम्पति बड़े ही धर्माचरण सील थे, जिनसे यह अनुपम नर-सृष्टि हुई, जिनकी बड़ाई की श्रुति-स्मृति अब भी गाते हैं।

नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू॥
लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिं जाही॥

इनके पुत्र उत्तानपाद और उत्तानपाद का पुत्र महात्मा ध्रुवजी हरि भक्त हुए और महाराज मनु के छोटे पुत्र का नाम प्रियव्रत था, जिसकी प्रशंसा सब वेद पुराण करते हैं।

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला॥

और मनु की कन्या का नाम देवहुती था जो कर्दम मुनि की परम प्यारी स्त्री थी। आदि देव दीनदयाल भगवान् कपिलदेव को जिस देवहुती ने अपने उदर में धारण किया था।

सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्व बिचार निपुन भगवाना॥
तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥

जिस तत्ववेत्ता भगवान् ने सांख्य शास्त्र को प्रकट किया, उसे मनु ने भगवान् की आज्ञा पालन करते हुए बहुत काल तक राज्य किया।

सोरठा—होइ न विषय बिराग भवन बसत भा चौथापन।
हृदयं बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥ २२॥

विषयों से वैराग्य न हुआ और घर रहते चौथापन आ गया। यह विचार कर मनु महाराज के हृदय में बहुत दुःख हुआ कि हरिभक्त बिना जन्म बीत गया॥ २२॥

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥

तब जबरदस्ती पुत्र को राज दे और आप रानी सहित वन में चले गये। प्रसिद्ध नैमिषारण्य तीर्थ जो साधुओं को सिद्धि देने वाला और अत्यन्त पवित्र है।

बसहिं तहां मुनि सिद्ध समाजा। तहं हियं हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥

जहां नैमिषारण्य में मुनि और सिद्ध लोग वास करते थे, मनु महाराज प्रसन्नतापूर्वक उस स्थान को चले। मार्ग में जाते समय दोनों धीर बुद्धि राजा रानी ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो ज्ञान और भक्ति शरीर धारण किये हुए जा रहे हैं।

पहुंचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी।

गोमती के तट पर पहुंच प्रसन्न हो उसके निर्मल जल में स्नान किया। सिद्ध, मुनि ज्ञानी लोग धर्मधुरंधर स्वयंभु मनु से मिलने आये।

जहं तहं तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए॥
कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥

जहां जहां सुन्दर तीर्थ था, वह मुनिजनों ने आदर सहित करवा दिया। राजा और रानी का शरीर दुर्बल हो गया। मुनि-वस्त्र धारण कर साधुओं की सभा में नित्य पुराण सुनने लगे।

दो०—द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग॥ १५०॥

बारह अक्षर का श्रेष्ठ मन्त्र (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) स्नेह सहित जपने लगे। वासुदेव भगवान् के चरण कमलों में राजा रानी का मन लग गया॥ १५०॥

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥

शाक, फल और कन्द का भोजन कर सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्मरण करने लगे। फिर भगवान् के निमित्त मूल फल को त्याग, केवल जल पीकर तप करने लगे।

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥

हृदय में निरन्तर यही इच्छा होने लगी कि भगवान् को नेत्रों से देखें। जो निर्गुण, अखण्ड स्वरूप, अनंत और अनादि, परमार्थवादी अर्थात मोक्ष की इच्छा वाले जिनका चिन्तवन करते हैं।

नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभ बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥

जिसको वेद नेति नेति कहकर निरूपण करते है तथा जो सदा चैतन्य और आनन्द स्वरूप, उपाधि रहित अद्वितीय हैं, जिस ब्रह्म के अंश से अनेक शिव, ब्रह्मा व विष्णु भगवान् प्रकट होते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुत भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

ऐसे वह प्रभु सेवक के वश में हैं अपने भक्तों हेतु लीला करने के लिये शरीर धारण करते हैं। यदि भक्तों के लिये अवतार लेना यह वेदों का वचन सत्य है तो भगवान हमारी इच्छा पूर्ण करेंगे।

दो०—एहि विधि बीते बरष षट सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार॥ १५१॥

इस प्रकार कमल जल के आहार से तप करते हुए छः हजार वर्ष बीत गए। फिर सात हजार वर्ष तक पवन के आधार से रहे।

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ॥
विधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥

दस हजार वर्ष तक पवन का आहार भी छोड़कर केवल एक पांव से दोनों तपस्वी खड़े रहे। ब्रह्मा हरि और महेश ऐसा अपार तप देखकर मनु के निकट बहुत बार आये।

मागहु बर बहु भांति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥
अस्थिमात्र होई रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा॥

और वर मांगने के लिये अनेक प्रकार से भुलाना चाहा परन्तु धीर मनु जी विचलित नहीं हुए। दोनों के शरीर में केवल अस्थियां रह गई थीं तो भी उनके हृदय में कुछ पीड़ा न हुई।

प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥
मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी॥

सर्वव्यापी भगवान् ने तप करने वाले राजा रानी को अनन्यगति और अपना दास जाना, तब 'बर मांग' ऐसी गंभीर अमृत रूपी कृपा युक्त आकाश वाणी हुई।

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्टपुष्ट तन भग सुहाए। मानहुं अबहिं भवन ते आए॥

मृत को जिलाने वाली सुन्दर वाणी कानों में होकर जब हृदय में पहुंची तब दोनों का सुन्दर हृष्ट पुष्ट शरीर हो गया मानों अभी घर से चले आ रहे हैं।

दो०—श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयं समात॥ १५२॥

कानों से अमृत समान वचन सुनकर रोम खड़े होने से शरीर प्रफुल्लित हो गया और हृदय में प्रेम भर गया। तब मनु महाराज दण्डवत करके बोले॥ १५२॥

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनु। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपालस चराचर नायक॥

हे भक्तों के कल्प वृक्ष! हे कामधेनु स्वरूप! आपके चरणरज की वन्दना ब्रह्मा, हरि महेश सदा करते हैं। सेवा करने से सहज ही में सबको सुख देने वाले, दीन जन पालक और चराचर के स्वामी हो।

जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥

हे दीनबन्धु! यदि मुझ पर स्नेह है तो प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिये कि जो स्वरूप महादेव जी के हृदय में वास करता है और जिस स्वरूप के निमित्त मुनि लोग अनेक यत्न करते हैं।

सो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

जो काकभुशण्डि के मन रूपी मानसरोवर हंस हैं तथा वेद जिनकी सगुन और निर्गुण नाम से बड़ाई करते हैं वही रूप हम नेत्रों भर देखें, हे दीनों के दुःख दूर करने वाले कृपा कीजिये।

दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

तब राजा और रानी के मीठे, नम्र और प्रेम के रस से सने हुए वचन अत्यन्त प्यारे लगे भक्तवत्सल कृपानिधि विश्वव्यापी, भगवान् प्रगट हुए।

दो०—नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन शोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥ १५३॥

उनके शरीर की शोभा को देखकर नीलकमल, नीलमणि, नीलेश्याम, मेघ और सौ करोड़ कामदेव भी लज्जित होते थे॥ १५३॥

सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥

उनका मुख शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान छवि की सीमा था। गला और ठुढ्ढी सुन्दर और गर्दन शंख के समान थी। उनके होंठ लाल और दांत एवं नाक सुन्दर थी और हंसना चन्द्रमा की किरणों के समूह को भी नीचा दिखाने वाला था।

नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावंती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥

नये कमल जैसे नेत्रों की शोभा अत्यन्त सुन्दर थी और उनको सुन्दर चितवन जी को लुभाने वाली, भौंहें कामदेव के धनुष की शोभा को हरने वाली थीं और माथे में तिलक चमक रहा था।

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला॥

मकराकृत कुण्डल कानों में, मुकुट सिर पर विराज रहा था और घूंघर वाले बाल ऐसे थे मानो भौंरों का समूह हो। हृदय में सुन्दर बनमाला और श्रीवत्स का चिन्ह था और जड़ाऊ हार एवं मणियों के आभूषण पहने हुये थे।

केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥

सिंह जैसे कंधों पर सुन्दर यज्ञोपवीत और भुजाओं पर सुन्दर आभूषण थे। हाथी की सूंड़ के समान सुन्दर भुजायें और कमर में तरकस और धनुष बाण लिये शोभित थे।

दो०—तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भवंर छबि छीनि ॥ १५४ ॥

उनका पीताम्बर बिजली को भी लजाने वाला था, पैर में तीन सुन्दर रेखायें पड़ी हुई थीं और मनोहर नाभि मानो यमुनाजी के भंवर की शोभा को छीनती थी ॥ १५४ ॥

पद राजीव बरनि नहीं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं।
बाम भाग सोभित अनुकूला। आदि शक्ति छबिनिधि जगमूला ॥

उनका चरण कमलों का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिनमें मुनियों के मन रूपी भौंरे बसते हैं और बाईं ओर शोभा की राशि संसार की उत्पति का मूल कारण आदि शक्ति प्रसन्न मन से शोभायमान थी।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई ॥

जिनके अंश से अगणित गुणों की खान लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती उत्पन्न होती हैं और जिनके भौंह के विलास से संसार उत्पन्न होता है, वही सीता श्री रामजी की बाईं ओर विराजमान थीं।

छबि समुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी ॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा ॥

शोभा की खान भगवान का रूप देख राजा रानी दोनों आंखों की पलकों को रोक एक टक रह गये। महाराज मनु और शतरूपा दोनों उस अनुपम रूप को सादर देखते और सन्तुष्ट न होते थे।

हरष बिबस तन दशा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी ॥
सिर परसे प्रभु निज पर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा ॥

आनन्द के वश होकर उन्हें अपने शरीर की दशा भूल गई और वे हाथ पांव से पड़ कर दण्डायमान हो गये। प्रभु ने अपने कर-कमलों से उनके शिर को छुआ और उन्हें शीघ्र उठा लिया।

दो०—बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि ॥ १५५ ॥

कृपानिधि भगवान् ने कहा कि मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और महादानी समझ कर तुम्हारे जी में जो आवे सो वर मांगो ॥ १५५ ॥

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली मृदु बानी ॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे ॥

प्रभु के वचन सुनकर दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धर कर मीठी वाणी से बोले—हे नाथ! मेरी इच्छाएँ आपके चरण कमलों को देखकर पूर्ण हो गयीं।

एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं ॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाई ॥

हृदय में एक बड़ी अभिलाषा है। सुगम अगम दोनों हैं, सो कही जाती, हे स्वामी! आपको उसको देना अत्यन्त सुगम है लेकिन अपनी दीनता से वह मुझको बहुत कठिन प्रतीत होती है।

जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई ॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदयं मम संसय होई ॥

जैसे दरिद्र कल्पवृक्ष को पाकर बहुत सी सम्पति मांगते हुए सकुच करता है। कारण वह उसका प्रभाव नहीं जानता, उसी प्रकार मेरे हृदय में भी संदेह हो रहा है।

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ॥
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही।

हे अन्तर्यामी! इसे आप भी जानते हैं। हे स्वामी! मेरे मनोरथ को पूरा कीजिए। भगवान् ने कहा कि हे राजा! संकोच को छोड़ मुझसे वर मांगो, तुम्हें न देने योग्य मेरे लिये कुछ भी नहीं है।

दो०—दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउं सतिभाउ।
चाहउं तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ ॥ १५६ ॥

राजा ने कहा कि हे दानियों में शिरोमणि, कृपानिधि स्वामी? आपसे सच कहता हूं मैं आप ही के जैसा पुत्र चाहता हूं, प्रभु से क्या छिपाऊं ॥ १५६ ॥

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले ॥
आपु सरिस खोजौं कहं जाई। नृप तव तनय होब मैं आई ॥

उनकी प्रीति देखकर और अमूल्य वचनों को सुनकर करुणानिधि भगवान् ने कहा ऐसा ही होगा। हे राजा! मैं अपने जैसा कहां जाकर खोजूं? मैं ही आकर तुम्हारा पुत्र होऊंगा।

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें। देबि मागु बरु जो रुचि तोरें ॥
जो बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहिं अति प्रिय लागा ॥

सतरूपा को हाथ जोड़े देख भगवान् ने कहा कि, हे देवी? तुम्हारी जो इच्छा हो वर मांगो। सतरूपा ने कहा हे नाथ? चतुर राजा ने जो वर मांगा है, हे कृपालु? वही मुझको अत्यन्त प्यारा है।

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई ॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ॥

हे प्रभु? यह बड़ी ढिठाई होती है यद्यपि भक्त के लिए वह आपको अच्छी लगती है। आप ब्रह्मादि देवताओं के पिता, स्वामी और सबके हृदय में अन्तर्यामी ब्रह्म हैं।

अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ॥

ऐसा समझ कर मन में सन्देह होता है लेकिन हे प्रभु ? जो आपने कहा वही प्रमाण है। हे नाथ ? जो आपके भक्त हैं, वे जो सुख पाते हैं, और उन्हें जो गति मिलती है।

दो०—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु ॥
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ॥ १५७ ॥

वही सुख, वही गति, वही भक्ति, आपके चरणों में वही प्रेम, वही विवेक और वही रहनि, हे प्रभु कृपा करके हमें दीजिये ॥ १५७ ॥

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना।
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं ॥

ऐसी कोमल, गूढ़ और सुन्दर वाक्य रचना को सुनकर कृपा सागर भगवान् मीठे वचन बोले कि तुम्हारे मन में जो अभिलाषा है, वह सब मैंने दिया। इसमें सन्देह नहीं है।

मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुं न मिटिहि अनुग्रह मोरें।
बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी ॥

हे माता ? तुमको अलौकिक ज्ञान है, जो मेरे अनुग्रह से कभी न मिटेगा। मनु महाराज ने चरणों की वन्दना करके फिर कहा कि हे प्रभु ? मेरी एक विनती और है।

सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना ॥

मुझे कोई बड़ा मूर्ख ही क्यों न कहे, परन्तु आपके चरणों में मेरा प्रेम हो। जैसे मणि के बिना सर्प और जल बिना मछली नहीं रह सकती है, उसी भांति मेरा जीवन भी आप ही के अधीन हो।

अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ ॥
अस तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥

ऐसा वर मांग कर राजा चरण पकड़ कर रह गए, भगवान ने कहा कि अच्छा ऐसा ही होगा। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इन्द्र की राजधानी में जाकर वास करो।

सो०—तहं करि भोग बिसाल तात गएं कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत ॥ २३ ॥

हे तात ? फिर तुम वहां बड़े बड़े भोगों को भोगकर कुछ काल बीत जाने पर अयोध्या के राजा होवोगे और तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊंगा ॥ २३ ॥

इच्छामय नरबेष संवारें। होइहउं प्रगट निकेत तुम्हारें ॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउं चरित भगत सुखदाता ॥

अपनी इच्छा से मनुष्य का शरीर धारण करके तुम्हारे गृह में प्रकट होऊंगा। हे तात! अपने अंशों से देह धारण कर मैं भक्तों को सुख देने वाला चरित करूंगा।

जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं मरता मद त्यागी॥
आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

जिसको आदर पूर्वक सुनकर भाग्यशाली मनुष्य ममता और मद को छोड़ कर संसार से तर जायेंगे। मेरी यह माया, आदि शक्ति जिसनें यह संसार उत्पन्न किया है वह अवतार धारण करेगी।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि असि कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना॥

मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा। मेरा यह प्रण सत्य है, और सत्य है। ऐसा कह कृपानिधि भगवान् अन्तर्ध्यान हो गए।

दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥

पति और पत्नी, दोनों भगवान् की भक्ति हृदय में धारण कर कुछ समय तक उसी आश्रम में वास लिए और समय पा अनायास ही शरीर त्याग वे अमरावती में जाकर रहने लगे।

दो०—यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु॥ १५८॥

महादेव जी ने पार्वती से यह अत्यन्त पवित्र इतिहास कहा। हे भरद्वाज मुनि! श्री रामचन्द्रजी के जन्म का दूसरा कारण सुनो॥ १५८॥

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहं बसइ नरेसू॥

जिस पवित्र पुरानी कथाओं को शिवजी ने पार्वती से कहा सो हे मुनि! सुनो, कैकय नामक एक देश संसार में प्रसिद्ध है, वहां सत्यकेतु नामक राजा निवास करता था।

धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा॥

वह धर्मधुरन्धर, नीति कोष अर्थात् खजाना, तेजस्वी, प्रतापी, शीलवान् और बली था। उसके दो वीर पुत्र हुए जो सब गुणों के घर और महारणधीर थे।

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुज बल अतुल अचल संग्रामा॥

एक जेठा पुत्र राज का मालिक था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे पुत्र का नाम अरिमर्दन था जिसकी भुजाओं का बल अपार था और जो संग्राम में अटल था।

भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा॥

दोनों भाइयों में छल एवं दोषों से रहित बहुत ही प्रेम था। राजा ने बड़े पुत्र को राज्य दिया और भगवान् का भजन करने के लिए स्वयं वन को चले गए।

दो०—जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजापाल अति बेदबिधि कतहुं नहीं अघ लेस॥ १५६॥

जब प्रतापभानु राजा हुए तब देश में उनकी दुहाई फिर गई। वे प्रजा का पालन पूर्ण वेद रीति से करते थे और पाप का कहीं लेश भी नहीं था॥ १५६॥

नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बंधु बलवीरा। आप प्रताप पुंज रनधीरा॥

राजा के हितकारी चतुर मन्त्री का नाम धर्म रुचि, शुक्र के समान नीति का जानने वाला था मन्त्री बुद्धिमान, भाई महाबली और स्वयं वीर, महाप्रतापी और रण में रणधीर था।

सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥

राजा के साथ में चार प्रकार की चतुरंगिणी अनगिनित सेना थी, जिसमें अनेक योद्धा समर जूझने वाले थे। अपनी सेना देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ और आनन्द ध्वनि के नगाड़े बजने लगे।

बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥
जहं तहं परीं अनेक लराई। जीते सकल भूपि बरिआई॥

विजय के निमित्त अपनी सेना बना अच्छा दिन देख, राजा प्रतापभानु चला। उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। जहां तहां बहुत लड़ाई हुई, सब राजाओं को बल पूर्वक जीत लिया।

सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥

सातों द्वीप के राजाओं को अपनी भुजा के बल से बस में कर लिया और दण्ड ले लेकर सबको छोड़ दिया। सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर उस समय एक प्रतापभानु राजा था।

दो०—स्वबस बिस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रबेसु।
अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयं नरेसु॥ १६०॥

अपने बाहुबल से जगत् को बस में करके राजा प्रतापभानु ने अपने नगर में प्रवेश किया और धर्म, अर्थ, काम आदि का सुख राजा सेवन करने लगा॥ १६०॥

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी॥

राजा प्रतापभानु का बल पाकर पृथ्वी कामधेनु के समान हो गई। स्त्री पुरुष सब सुन्दर धर्मशील थे और प्रजा को किसी प्रकार का दुःख न था।

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीति। नृप हित हेतु सिखव नित नीती॥
गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा॥

धर्मरुचि मन्त्री भी ईश्वर का भक्त था और राजा को सदा हितोपदेश किया करता था। गुरु, देवता, सन्त, पितर और ब्राह्मणों की सेवा राजा सदैव किया करता था।

भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना॥

वेद के अनुसार राजाओं का जो धर्म है, वह सब प्रेम और आदर के सहित करता था। नित्य प्रति दिन अनेक प्रकार का दान देना और शतशास्त्र वेद व पुराण सुनता था।

नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा॥
बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥

अनेक प्रकार की बावड़ी, कुआं, तालाब, फुलवारी और सुन्दर बाग, तीर्थवासी ब्राह्मणों के घर, देवताओं के सुन्दर मन्दिर, सब तीर्थों में भांति-भांति के बने हुए थे।

दो०—जहं लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥ १६१॥

जहां पुराणों और वेदों में एक एक यज्ञ कहा है, वहां राजा ने प्रेम सहित हजार हजार बार यज्ञ किया॥ १६१॥

हृदयं न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥

राजा ऐसा ज्ञानी था कि यज्ञों के फल की कुछ भी इच्छा अपने हृदय में न करता। वह ज्ञानी राजा जो धर्म, मन, वाणी और कर्म से करे वह सब वासुदेव भगवान् को अर्पण कर दे।

चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
बिंध्याचल गभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥

एक बार राजा ने सुन्दर घोड़े पर चढ़ आखेट का सब सामान सजाकर-विन्ध्याचल के गंभीर बन में जाकर बहुत पवित्र मृगों का वध किया।

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुं क्रोध बस उगिलत नाहीं॥

वन में फिरते राजा ने एक वाराह देखा, मानो राहु चन्द्रमा को पकड़ वन में छिप गया है और चन्द्रमा बड़ा होने के कारण मुंह में नहीं ठहरता और वह क्रोध के वश उगलता भी नहीं है।

कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएं। चकित बिलोकत कान उठाएं॥

उस शूकर के कराल दांत अति शोभित थे। उसका शरीर बहुत बड़ा और अधिक मोटा था। घोड़े की आहट पाकर घुरघुराने और चौकन्ना होकर दोनों कान उठाकर देखने लगा।

दो०–नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हांकि न होइ निबाहु॥१६२॥

नील पर्वत के शिखर के समान बड़े शूकर को देख घोड़े को दबा कर और चाबुक मार राजा शीघ्र चला कि बोलने मात्र से घोड़ा हांकने से अब निबाह नहीं हो सकता॥ १६२॥

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥

बहुत शब्द करते हुए घोड़े को आता देखकर शूकर पवन के समान भाग चला। राजा ने तुरन्त धनुष पर बाण चढ़ाया। बाण को देखते ही शूकर पृथ्वी में मिल गया।

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ संग लागा॥

शूकर को लक्ष्य कर राजा बाण चलाने लगा। किन्तु उसने छल करके शरीर बचा लिया। कभी प्रगट होता, कभी छिपता, वह शूकर भागने लगा और क्रोध वश राजा भी उसके पीछे दौड़ने लगा।

गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहं नाहिन गज बाजि निबाहू॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू॥

वह शूकर भागता भागता बहुत दूर घने वन में चला गया। जहां हाथी, घोड़े नहीं जा सकते थे। सेना पीछे छूट गई, राजा को अकेले वन में बड़ा क्लेश हो रहा था, तो भी उसका पीछा नहीं छोड़ा।

कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहां गभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई॥

सूकर राजा को बड़ा धीर देख शीघ्र एक गम्भीर पर्वत की गुफा में घुस गया। उस गुफा में जाना कठिन देखकर राजा बहुत पछता कर लौटा और घने वन में रास्ता भूल गया।

दो०–खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत॥१६३॥

परिश्रम के दुख से उदास, भूखा और प्यासा राजा अपने घोड़े सहित व्याकुल नदी और तालाब को ढूंढ़ता हुआ, जल बिना मूर्च्छित हो गया॥ १६३॥

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहं बस नृपति कपट मुनिबेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥

वन में भटकते भटकते राजा ने एक आश्रम देखा, वहां एक राजा कपट से मुनि के भेष में था। जिसका देश राजा प्रतापभानु ने छीन लिया था और वह संग्राम से अपनी सेना छोड़ भाग गया था।

समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥

राजा प्रतापभानु का अच्छा समय और अपना कुसमय जानकर घर नहीं गया, मन में बहुत लज्जा हुई और न राजा प्रतापभानु को मिला, क्योंकि वह राजा बड़ा अभिमानी था।

रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस कें साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा॥

क्रोध को मन में रखकर कङ्गले के ऐसा वह राजा तपस्वी के साज से वन में वास करने लगा। उसके समीप जब राजा गया तब, उसने पहिचान लिया कि यह प्रतापभानु है।

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥

राजा प्रतापभानु प्यासा था, इस कारण उस कपटी को नहीं जाना और सुन्दर वेष देख महामुनि समझा। घोड़े से उतर प्रणाम किया, परन्तु राजा बड़ा चतुर था, इसलिए अपना नाम नहीं बतलाया।

दो०—भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरु दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ॥ १६४॥

राजा को प्यासा देख उसने सरोवर दिखा दिया। तब राजा ने प्रसन्न होकर घोड़े समेत स्नान कर जलपान किया॥ १६४॥

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥

जब थकावट जाती रही और राजा सुखी हुआ, तब वह तपस्वी अपने आश्रम में ले गया। सूर्य अस्त जान आसन देकर तपस्वी ने मधुर वाणी से पूछा।

को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुंदर जुबा जीव परहेलें॥
चक्रबर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें॥

तुम कौन हो! वन में अकेले क्यों फिरते हो? सुन्दर युवावस्था में क्यों प्राण देना चाहते हो? चक्रवर्ती राजा के समान तुम्हारे लक्षण देखकर मुझको बहुत दया लगती है।

नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरें परेउं भुलाई। बड़ें भाग देखेउं पद आई॥

राजा ने कहा हे मुनीश ! सुनो, प्रतापभानु नामक एक राजा है, मैं उसका मन्त्री हूं। आखेट के निमित्त विचरते हुए मार्ग भूलकर, बड़े भाग्य से चरणों का दर्शन किया।

हम कहं दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अंधियारा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा॥

मुझे आपका दर्शन दुर्लभ था, अब जानता हूं कि मेरा कुछ भला होने वाला है। यह सुनकर मुनि ने कहा हे तात ! अब अंधेरा हो गया। यहां से सत्तर योजन पर तुम्हारा नगर है।

दो०—निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान॥ १६५॥

रात भयावनी है, बन गम्भीर है, मार्ग नही सूझता, ऐसा जानकर हे राजन् ! आज तुम यहां वास करो, प्रातःकाल चले जाना॥१६५॥

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहां लै जाइ॥ १६६॥

श्री तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसी होनहार होती है, वैसी ही सहायता भी मिल जाती है। होनहार उसके पास नहीं आती परन्तु उसको वहीं ले जाती है॥ १६६॥

भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बांधि तुरग तरु बैठ महीसा॥
नृप बहु भांति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही॥

मुनि की आज्ञा सिर पर रख बहुत अच्छा कह, घोड़े को वृक्ष में बांध राजा आसन पर आकर बैठा। राजा ने बहुत भांति से मुनि के चरणों को प्रणाम कर फिर अपने भाग्य की प्रशंसा की।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउं ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥

फिर राजा कोमल वाणी से बोला कि पिता के समान जानकर ढिठाई करता हूं। हे मुनीश ! मुझको अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम वर्णन कीजिए।

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा॥

राजा प्रतापभानु तो उसको जानते नहीं थे, परन्तु वह राजा को जान गया, प्रतापभानु निष्कपट और वह महाकपटी था। वैरी होने पर भी क्षत्रिय, फिर छल के बल में कार्य किया चाहे।

समुझि राजसुख दुखित अराती। अवां अनल इव सुलगइ छाती॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर संभारि हृदयं हरषाना॥

अपने राज्य के सुख को समझ वह बैरी दुखी रहता था, कुम्हार के आंवे की अग्नि के समान उसकी छाती सुलगती थी। राजा प्रतापभानु के सरल वचन सुन बैर संभाल वह अपने हृदय में बहुत प्रसन्न हुआ।

दो०—कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत॥ १६७॥

और कपट से भरी कोमल वाणी युक्ति सहित बोला कि अब मेरा नाम भिखारी है, धनहीन और घर-बार से रहित हूं॥ १६७॥

कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना।
सदा रहहिं अपनपौ दुराएं। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएं॥

यह सुन राजा ने कहा, कि जो बहुत ज्ञानी होते हैं। वह आपही के ऐसे निर-भिमानी होते हैं और सदा अपने को छिपाये रहते हैं, सब प्रकार कुशल होने पर भी कुबेष बनाये रहते हैं।

तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि केरें॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥

इसी से संत और वेद पुकार-पुकार कर कहते हैं कि जो परम अकिञ्चन हैं वे ही भगवान् के प्यारे हैं। आप जैसे निर्धन भिखारी और बिना घर वालों पर ब्रह्मा और शिवजी को भी संदेह होता है।

जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु विषय बिस्वास बिसेषी॥

आप जो कुछ हो, सो हों, आपके चरणों को प्रणाम करता हूं। हे स्वामी! आप मुझ पर कृपा कीजिए। कपटी मुनि राजा की स्वाभाविक प्रीति और अपने में विशेष विश्वास देखकर।

सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सतिभाउ कहउं महिपाला। इहां बसत बीते बहु काला॥

और सब प्रकार से राजा को अपना कर अधिक स्नेह से कहने लगा। सुनो राजा, शुद्ध भाव से कहता हूं कि यहां वास करते हुए मुझको बहुत वर्ष व्यतीत हो गए हैं।

दो०—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउं काहु।
लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु॥ १६८॥

अब तक मुझको कोई नहीं मिला, न मैंने किसी से अपना प्रभाव ही जनाया, लोक मान्यता अर्थात लोक की बड़ाई अग्नि के समान है, जो तप रूपी वन को भस्म कर देती है॥ १६८॥

सो०–तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि ॥ २४ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, कि सुन्दर वेष देखकर मूर्ख ही नहीं किन्तु चतुर मनुष्य भी भूल जाते हैं। सुन्दर मोर को देखो कि उसका वचन अमृत के समान और भोजन सांप है ॥ २४ ॥

तातें गुपुत रहउं जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएं। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएं ॥

इस कारण संसार में गुप्त रहता हूं। भगवान् तो बिना जनाये सब जानते हैं। फिर लोक को रिझाने में कौन सिद्धि रक्खी है।

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें ॥
अब जौं तात दुरावउं तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही ॥

तुम शुद्ध और निर्मल बुद्धि वाले हो और मुझे बहुत प्यारे हो, तथा मुझ पर तुम्हारी प्रीति और विश्वास है। हे तात ! अब जो तुम से छिपाऊं तो मुझको बड़ा भारी दोष लगे।

जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा ॥
देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी ॥

ज्यों ज्यों तपस्वी उदासीनता कथन करने लगा, त्यों-त्यों राजा को विश्वास होने लगा। कर्म, मन और वाणी से राजा को अपने वश में जान कर तब बकध्यानी तपस्वी कहने लगा।

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई ॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी ॥

हे भाई ! हमारा नाम एकतनु है, यह सुन कर राजा ने चरणों पर सिर नवा कर कहा, कि मुझको अपना परम सेवक जान कर अपने नाम का अर्थ वर्णन कीजिये।

दो०–आदिसृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि ॥ १६१ ॥

राजा की यह बात सुनकर कपटी मुनि कहने लगा, कि जब आदि सृष्टि उत्पन्न हुई उस समय की मेरी उत्पत्ति है। इस प्रकार मेरा एकतनु नाम हुआ, क्योंकि तब से मैंने फिर दूसरा शरीर नहीं धारण किया ॥ १६६ ॥

जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तपबल तें जग सृजइ बिधाता। तपबल बिष्नु भए परित्राता ॥

इस बात पर आश्चर्य मत करो, हे पुत्र ! तपस्या से कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तपस्या के बल से ब्रह्माजी जगत् की रचना करते हैं। तपस्या के बल से विष्णु भगवान् जग का पालन करते हैं।

तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा॥

तपस्या के बल से शिवजी संहार करते हैं, तपस्या से संसार में कुछ भी अगम नहीं है। यह सुन कर राजा को उस पर बड़ा स्नेह हुआ, तब पुरानी कथा कहने लगा।

करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका॥
उदभव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥

कर्म, धर्म, अनेक प्रकार का इतिहास, वैराग्य और ज्ञान निरूपण करने लगा। पालन और प्रलय तक की अनेक आश्चर्यमयी घटना का वर्णन कर दिया।

सुनि महीप तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानउं तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥

यह सुन राजा ने उस तपस्वी के वश में हो अपना नाम कहना चाहा। इतने में वह तपस्वी बोल उठा कि हे राजा! मैं तुमको जानता हूं, तुमने मुझसे जो कपट किया है उससे मैं प्रसन्न हूं।

सो०—सुनु महीस असि नीति जहं तहं नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव॥ २५॥

हे राजन्! सुनो, राजनीति का यह सिद्धान्त है कि राजाओं को जहां तहां अपना नाम न बताना चाहिये। तुम्हारी इस चतुरता को देख तुम पर मुझे क्रोध की अपेक्षा प्रीति हो गई॥ २५॥

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिअ न आपन जानि अकाजा॥

तुम्हारा नाम प्रतापभानु है। राजा सत्यकेतु तुम्हारे पिता का नाम है। हे राजन् गुरु के प्रसाद से मैं सब जानता हूं परन्तु अपनी हानि जानकर नहीं कहता।

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई॥
उपजि परी ममता मन मोरें। कहउं कथा निज पूछे तोरें॥

हे तात! तुम्हारा स्वाभाविक सीधापन देख तुम्हारी प्रीति, प्रतीति तथा नीति-निपुणता समझ मेरे हृदय में मोह उत्पन्न हो गया इसलिए तुम्हारे पूछने से अपना वृत्तान्त मैंने कह दिया है।

अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। मागु जो भूप भाव मन माहीं॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना॥

निःसन्देह अब मैं प्रसन्न हूं, हे राजन्! मन में जो इच्छा हो वह मांग लो। ऐसी वाणी सुन हप्रसन्न। राजा चरण पकड़कर भांति-भांति की विनती करने लगा।

कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम बर होउं असोकी॥

हे कृपासिन्धु मुनि! आपके दर्शन से मेरे हाथ में चारों पदार्थ हैं। तो भी प्रभु को प्रसन्न देख अगम्य वर मांग कर शोकरहित हो जाऊंगा।

दो०—जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कमल सत होउ॥ १७०॥

मैं यह वर मांगता हूं कि मेरा शरीर बुढ़ापा और मरण के दुःख से रहित हो जाये और समर में मुझसे कोई न जीते। और एक क्षण, शत्रु रहित पृथ्वी भर में सौ कल्प पर्यन्त मेरा राज रहे॥ १७०॥

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा॥

यह सुन तपस्वी ने कहा, हे राजन! ऐसा ही होगा परन्तु एक कठिन कारण है वह भी सुनो। हे राजन्! केवल एक ब्राह्मण जाति को छोड़ काल भी तुम्हारे चरणों में सिर झुकावेगा।

तपबल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा॥

तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान हैं उनके कोप से कोई रक्षा करने वाला नहीं है। हे राजन्! यदि ब्राह्मणों को अपने वश में करो तो ब्रह्मा विष्णु महेश भी तुम्हारे वश में हो जायेंगे।

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउं दोउ भुजा उठाई॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहुं काला॥

ब्राह्मण कुल से जोरावरी नहीं चलती, यह बात दोनों भुजा उठा कर सत्य कहता हूं। सुनो राजा! ब्राह्मण के शाप बिना तुम्हारा नाश किसी समय नहीं होगा।

हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहुं सर्ब काल कल्याना॥

उसका यह वचन सुन राजा ने प्रसन्न होकर कहा, कि हे नाथ! अब मेरा नाश नहीं होगा। हे प्रभु! हें कृपा निधान! आपके प्रसाद से मुझको सब समय कल्याण है।

दो०—एवमस्तु कहि कपटमुनि बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमहि न खोरि॥ १७१॥

ऐसा ही हो—यह कहकर वह कपटी तपस्वी फिर बोला कि अपना वन में भूलना और मेरा मिलना किसी से कह देने से फिर मेरा दोष नहीं है।।१७१॥

तातें मैं तोहि बरजउं राजा। कहें कथा तव परम अकाजा॥
छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥

हे राजा! इसीसे मैं तुम्हें रोकता हूं। यह सब कथा कहने से तुम्हारी भारी हानि होगी। यह कहानी छठे कान में पड़ने से तुम्हारा नाश हो जायेगा। मेरी यह सत्य बात है।

यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपायं निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मन माही॥

हे प्रतापभानु! सुनो, इसके प्रकट होने या ब्राह्मण का श्राप लगने से तुम्हारा नाश होगा। और किसी उपाय से तुम्हारा नाश नहीं होगा। चाहे शिव और विष्णु भी क्रोधित हों।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥

राजा ने चरण पकड़ कर कहा कि हे नाथ! सत्य है, ब्राह्मण और गुरु के क्रोध से भला कौन बच सकता है। यदि ब्रह्मा क्रोध करें तो गुरु बचा सकते हैं परन्तु गुरु के विरोध से संसार में कोई नहीं बचा सकता।

जौं न चलब हम कहे तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारें॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥

यदि मैं आपके कहने पर न चलूंगा तो भले ही नाश हो जाय, मुझे उसका सोच नहीं है। परन्तु मेरा मन एक ही डर से डरता है। हे प्रभु! ब्राह्मणों का शाप अत्यन्त कठोर होता है।

दो०—होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखउं कोउ॥ १६६॥

ब्राह्मण किस उपाय से वश में होंगे वह भी कृपा करके कहिये, हे दीनदयालु! आपके बिना मैं अपना कोई हितू नहीं देखता हूं॥ १७२॥

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं। कष्ट साध्य पुनि होहिं कि नाहीं॥
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहां परंतु एक कठिनाई॥

यह सुन कर कपटी मुनि बोला, हे राजा! सुनो, जगत में अनेक उपाय हैं परन्तु वह सब कष्ट-साध्य हैं। एक बहुत सुगम उपाय है परन्तु उसमें एक कठिनता यह है।

मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई॥
आजु लगें अरु जब तें भयऊं। काहू के गृह ग्राम न गयऊं॥

यह युक्ति मेरे अधीन है, परन्तु हे राजन्! मेरा जाना तुम्हारे नगर में नहीं होगा। आज तक और जब से हुआ हूं, किसी के घर और गांव में नहीं गया हूं।

जौं न जाउं तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥

यदि न जाऊंगा तो अकाज होगा, आज यह बात बड़े असमञ्जस की आ पड़ी है। यह सुन राजा कोमल वाणी से बोला, हे नाथ! वेद में ऐसी नीति है कि।

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥

बड़े लोग छोटे पर स्नेह करते हैं, देखो पर्वत अपने मस्तक पर सदा तृण धारण करता है। अथाह समुद्र के मस्तक में फेन बहता है, और पृथ्वी सिर पर निरन्तर रेणु धारण करती है।

दो०—अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल॥ १७३॥

यह कह राजा ने चरण पकड़ लिए और कहा, हे स्वामिन्! मुझ पर दयालु हो जाओ, हे प्रभु। मेरे निमित्त दुःख सहो, क्योंकि आप सज्जन और दीनदयालु हैं॥ १७३॥

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना॥
सत्य कहउं भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही॥

राजा को अपने अधीन जानकर कपट करने में निपुण तपस्वी कहने लगा। हे राजन्! मैं तुमसे सत्य कहता हूं कि संसार में मुझको कुछ दुर्लभ नहीं।

अवसि काज मैं करिहउं तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोरा॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ॥

मैं तुम्हारा कार्य अवश्य करूंगा, क्योंकि मन, कर्म और वचन से तुम मेरे भक्त हो, योग, युक्ति' तप और मन्त्र का प्रभाव तभी फलता है, जब छिपाव किया जाये।

जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥

हे राजन्! यदि मैं रसोई बनाऊं और तुम परोसो पर मुझको कोई न जाने। उस अन्न का जो भोजन करेगा वह तुम्हारा हो जायेगा।

पुनि तिन्ह के गृह जेवंइ जोऊ। तब बस होइ भूप सुनु सोऊ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप करेहू॥

हे राजा! फिर उन ब्राह्मणों के घर में जो भोजन करेगा वह तुम्हारे वश में हो जायेगा। घर जाकर और एक वर्ष भर के लिए संकल्प करके यह उपाय करो।

दो०—नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार॥ १७४॥

नित्य नवीन एक लाख ब्राह्मणों को कुटुम्ब सहित न्योता देना, मैं तुम्हारे संकल्प तक प्रति दिन जेवनार किया करूंगा॥ १७४॥

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें॥
करिहहिं बिप्र होम मख सेवा। तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा॥

हे राजन्! इस प्रकार बहुत थोड़े कष्ट से सब ब्राह्मण तुम्हारे वश में हो जायेंगे। ब्राह्मण होम, यज्ञ और सेवा अर्थात् पूजा करेंगे इस प्रसंग से सहज ही सब देवता वश में हो जायेंगे।

और एक तोहि कहउं लखाऊ। मैं एहिं बेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुं राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥

और एक बात मैं तुमको बताये देता हूं कि इस भेष में भी मैं तुम्हारे यहां कभी नहीं आऊंगा। हे राजन्! तुम्हारे पुरोहित को मैं अपनी माया से हर लाऊंगा।

तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहउं इहां बरष परवाना॥
मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा। सब बिधि तोर संवारब काजा॥

तप के बल से उसको अपने समान बनाकर यहां एक वर्ष भर रक्खूंगा। सुनो राजा! मैं उसका भेष धारण कर सब प्रकार से तुम्हारा काम संभालूंगा।

गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुंचैहउं सोवतहि निकेता॥

बहुत रात बीत गई अब शयन करो, हे राजन्! हमारी तुम से भेंट तीसरे दिन होगी। मैं तुम को अपने बल से घोड़ा समेत सोते ही घर पर पहुंचा दूंगा।

दोहा—मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि॥ १७५॥

मैं वही भेष धर कर आऊंगा तब मुझको पहिचानना कि जब एकान्त में बुलाकर तुमको सब कथा सुनाऊं॥ १७५॥

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छलग्यानी॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥

आज्ञा पाकर राजा ने शयन किया, तब वह छली ज्ञानी अपने आसन पर जा बैठा। राजा थका हुआ था, नींद बहुत आ गई। परन्तु कपटी कैसे सोवे, उसको तो अधिक सोच था।

कालकेतु निसिचर तहं आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा॥

कालकेतु राक्षस वहां आया, जिसने शूकर बनकर राजा को भुलाया था। वह तपस्वी राजा का परम मित्र था, और बहुत प्रकार का छल कपट जानता था।

तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे॥

उसके सौ पुत्र और दस भाई थे। वे दुष्ट अत्यन्त अजय और देवताओं को दुख देने वाले थे, ब्राह्मण, साधु और देवताओं को दुखी देख राजा ने उन सबों को पहले ही युद्ध में मार डाला था।

तेहिं खल पाछिल बयरु संभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा॥
जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥

उस दुष्ट ने पिछला वैर सोच, और तपस्वी राजा से मिलकर विचार किया। जिस उपाय से वैर का नाश हो, वही उपाय रचा। होनहार के वश में होकर राजा ने कुछ नहीं जाना।

दो०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुं देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु॥ १७६॥

तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो उसको छोटा न जाने। देखो शिर मात्र शेष रह जाने पर भी राहु अब तक सूर्य चन्द्रमा को दुःख देता है॥ १७६॥

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥

तपस्वी राजा अपने सखा को देखकर प्रसन्न हो, उठकर मिला और सुखी हुआ। मित्र को सब कथा सुना दी। तब वह राक्षस सुखी होकर बोला।

अब साधेउं रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई॥

हे राजन्! सुनो अब मैं शत्रु नाश का साधन कर दूंगा जो तुमने मेरे उपदेश के अनुसार किया है, सोच त्याग कर अब तुम सो रहो बिना औषधि के ही विधाता ने रोग को खो दिया।

कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी॥

कुल सहित शत्रु को जड़ से नाश कर चौथे दिन आकर मिलंगा, तपस्वी राजा को बहुत प्रसन्न कर वह बड़ा कपटी और महाक्रोधी राक्षस चला।

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुंचाएसि छन माझ निकेता॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई। हयगृहं बांधेसि बाजि बनाई॥

राजा प्रतापभानु को घोड़ा समेत सोते ही घर पर पहुंचा दिया। राजा को रानी के समीप शयन करा दिया, और घोड़े को घुड़साल में आगा पीछा लगा कर बांध दिया।

दो०—राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुं मायां करि मति भोरि॥ १७७॥

फिर राजा के पुरोहित को हर ले गया और पर्वत की खोह में जाकर आसुरी माया से उसकी मति को भोरी करके रखा ॥ १७७ ॥

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा ॥
जागेउ नृप अनभएं बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना ॥

आप पुरोहित का रूप बना उसकी सुन्दर सेज पर जाकर सो रहा, राजा प्रातःकाल होने के पहले जाग पड़ा और अपनी सेज पर अपने को देख वह अपने मन में अत्यन्त आश्चर्यित हुआ।

मुनि महिमा मन महुं अनुमानी। उठेउ गवंहिं जेहिं जान न रानी ॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं ॥

मुनि की महिमा मन में समझ राजा चुपचाप उठा उसको रानी ने भी नहीं जाना। उसी घोड़े पर चढ़ कर वन को चला गया, नगर के नर नारी किसी ने नहीं जाना।

गएं जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा ॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा ॥

दोपहर बीते राजा नगर में आया, तब घर घर उत्सव हुआ और आनन्द की बधाई बजी। पुरोहित को जब राजा ने देखा तो उस काम का स्मरण कर चकित होकर देखने लगा।

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी ॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा ॥

राजा को युग के समान तीन दिन बीते, कपटी मुनि के चरणों में मति लीन रही। समय पाकर पुरोहित के रूप में कालकेतु आया और राजा को एकान्त में ले जाकर सब कथा समझा दी।

दो०—नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत ॥ १७८ ॥

राजा गुरु को पहचान कर प्रसन्न हुआ, भ्रम के वश कुछ ज्ञान न रहा तुरन्त एक लाख उत्तम ब्राह्मणों को कुटुम्ब सवेत न्यौता दिया ॥ १७८ ॥

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई ॥
मायामय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई ॥

पुरोहित ने जेवनार बनाया जिसमें छः रस संयुक्त चार प्रकार का भोजन तैयार हुआ जैसा कि वेद ने सूप शास्त्र में कहा है। उसने सब रसोई माया से बनाई और अनगिनती के व्यञ्जन बनाये।

बिबिध मृगन्ह कर आमिष रांधा। तेहि महुं बिप्र मांसु खल सांधा ॥
भोजन कहुं सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए ॥

अनेक प्रकार के हरिणों का मांस रांधा, उस दुष्ट ने उसमें ब्राह्मणों का मांस मिला दिया। भोजन के निमित्त सब ब्राह्मणों को बुलाया और चरण धोकर सबको आदर से बिठाया।

परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला।
बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥

जब राजा परोसने लगा उस समय आकाशवाणी हुई, कि हे ब्राह्मणों! सब लोग उठ उठ अपने घर चले जाओ बड़ी हानि है। यह अन्न मत भोजन करो।

भयउ रसोईं भूसुर मांसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोहं भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥

रसोई में ब्राह्मणों का मांस मिला है, यह सुन विश्वासमान ब्राह्मण उठ खड़े हुए। राजा विकल हो गया और भावीवश बुद्धि मोह से ऐसी भ्रमित हो गई कि मुख से बात भी न आई।

दो०—बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह विचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार॥ १७१॥

सब ब्राह्मणों ने कुछ विचार न किया और क्रोध करके बोले, हे मूढ़ राजा! तुम कुटुम्ब समेत जाकर राक्षस हो जाओ॥ १७६॥

छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥

हे राजा! तूने परिवार सहित सब ब्राह्मणों को भ्रष्ट करने के निमित्त बुलाया था। ईश्वर ने हमारा धर्म रक्खा तू ही परिवार सहित भ्रष्ट हो जायेगा।

संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि श्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥

संवत भर में तेरा नाश हो जाय, जल देने वाला भी तेरे कुल में कोई न रहे। राजा प्रतापभानु ब्राह्मणों का शाप सुन दुख से बहुत व्याकुल हुआ, तब फिर आकाशवाणी हुई।

बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा।
चकित बिप्र सब सुनि नभ बानी। भूप गयउ जहं भोजन खानी॥

हे ब्राह्मणों! तुमने विचार कर शाप नहीं दिया, राजा ने कुछ अपराध नहीं किया है। आकाशवाणी सुन सब ब्राह्मण चकित हो गए, और राजा जहां भोजन बना था वहां गया।

तहं न असन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलानी॥

वहां न भोजन था, न रसोइया ब्राह्मण था, तब राजा लौटा और मन में बड़ी चिन्ता करने लगा। और सब प्रसंग ब्राह्मणों को सुना बहुत व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दो०—भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर।
किएं अन्यथा होइ नहिं बिप्रश्राप अति घोर॥ १८०॥

तब ब्राह्मण बोले, हे राजा! होनहार नहीं मिटता, यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है। तथापि ब्राह्मणों का महाघोर शाप किसी के करने से, अन्यथा नहीं हो सकता है॥ १८०॥

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किय जेहीं॥

यह कह सब ब्राह्मण चले गए, और यह समाचार नगर के लोगों ने सुना। तब सब नगर निवासी सोच करने लगे, और देव को दोष देने लगे। जिसने हंस बनाते हुए कौवा बना दिया।

उपरोहितहि भवन पहुंचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई॥
तेहिं खल जहं तहं पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए॥

राजा के उस पुरोहित को घर पहुंचा, उस राक्षस ने अपने मित्र तपस्वी को खबर दी। उस दुष्ट ने जहां तहां पत्र भेजा, अपनी अपनी सेना, साज सब प्रतापभानु के नगर पर चढ़ आये।

घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भांति नित होइ लराई।
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी॥

बाजा बजाकर नगर को घेर लिया, और अनेक भांति से नित्य लड़ाई होने लगी। राजा के सब योद्धा वीरता से लड़कर रण में जूझ गए, और राजा भी बन्धुओं सहित पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बांचा। बिप्रश्राप किमि होइ असांचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई॥

सत्यकेतु के कुल में कोई नहीं बचा, ब्राह्मणों का श्राप कैसे असत्य होता। राजा लोग शत्रु को जीत फिर नगर बसा कर जय और यश पाय अपने अपने नगर को चले गये।

दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम॥ १८१॥

याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं, हे भरद्वाज! सुनो, जब जिसका विधाता उल्टा हो जाता है, उसको धूरि पर्वत के समान, पिता यम के समान, और रस्सी सांप के समान हो जाती है॥ १८१॥

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा।
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥

हे मुनि ! सुनो, समय पाय वही राजा अपने सम्पूर्ण समाज सहित राक्षस हुआ। उसको दस सिर और बीस भुजा थीं, और रावण नाम महाबली वीर हुआ।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥

राजा प्रतापभानु का छोटा भाई अरिमर्दन था। वह कुम्भकरण नाम से महाबली उत्पन्न हुआ। और राजा का मन्त्री धर्म रुचि था। वह रावण की सौतेली माता से उत्पन्न हुआ।

नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिग्यान निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥

जिसका विभीषण नाम जगत जानता है, जो विष्णु भगवान् का भक्त और विज्ञानी जाना जाता है। और जो राजा के पुत्र तथा सेवक थे वे सब भयंकर राक्षस हुए।

कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्व परितापी॥

वे सब राक्षस इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, दुष्ट स्वभाव, अनेक जाति के और भयंकर-ज्ञानशून्य हुए। सब दयाहीन, हत्या करने वाले, पापी, जगत में सबको दुःख देने वाले, जिनकी दुष्टता कहते नहीं बनती।

दो०—उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप॥ १७६॥

यद्यपि पुलस्त्य कुल में उत्पन्न हुए, जो कुल पवित्र, निर्मल और परमोत्तम है। तो भी ब्राह्मणों के शाप वश पाप रूप हुए। अर्थात् ब्राह्मण होने पर भी पापी हुए॥ १८२॥

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुं भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता॥

रावण, आदि तीनों भाइयों ने अनेक प्रकार से महाकठिन व अवर्णनीय तप किया। जिनकी तपस्या देख ब्रह्माजी उनके निकट गए, और बोले, हे तात ! वर मांगो मैं तुमसे प्रसन्न हूं।

करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥
हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें॥

तब बिनती कर चरण पकड़ रावण बोला कि, हे जगदीश ! मेरी बात सुनो। वानर और मनुष्य को छोड़ अन्य किसी के मारे मैं न मरूं।

एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मां मिलि तेहि बर दीन्हा॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ॥

तब ब्रह्मा जी बोले, ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया है। शिवजी ने पार्वती से कहा कि इस

प्रकार हम और ब्रह्मा ने उसको वरदान दिया। फिर ब्रह्माजी कुम्भकरण के समीप गए, उसको देख मन में बड़ा आश्चर्य हुआ।

जौं एहि खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नींद मास षट केरी॥

जो यह प्रति दिन आहार करेगा तो सब संसार उजाड़ हो जायेगा। तब सरस्वती को प्रेरकर उसकी मति को फेर दिया, तो उसने छः महीने की नींद मांगी।

दो०—गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु॥ १८३॥

तब विभीषण के पास जाकर कहा, हे पुत्र! वर मांग, तब उसने भगवान् के चरण कमल में निर्मल प्रीति मांगी॥१८३॥

तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥

उनको वर देकर ब्रह्माजी ब्रह्म लोक गए। और तीनों भाई प्रसन्न होकर अपने घर आये। मन्दोदरी नामक मयदानव की कन्या परमसुन्दरी और स्त्रियों में रत्न रूपा थी।

सोइ मयं दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई॥

उसे मयदानव ने ले आकर रावण को दिया, वह राक्षस राज रावण की पटरानी हुई। अच्छी स्त्री पाकर रावण प्रसन्न हुआ। फिर दोनों भाइयों का जाकर विवाह किया।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥
सोइ मय दानवं बहुरि संवारा। कनक रचित मनिभवन अपारा॥

समुद्र के बीच टापू में चित्रकूट नामक पर्वत है, जिसको बह्माजी ने बनाया और जो बड़ा भारी दुर्गम स्थल था। मयदानव ने फिर उसको संवारा और उसमें बहुत सुवर्ण के मणि जटित घर बनाये।

भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥

भोगावती पुरी जो सांपों के वास करने वाली है तथा जैसी अमरावती पुरी जहां इन्द्र का निवास है। उन दोनों से अधिक मनोहर, अति बांका गढ़ जगत् में प्रसिद्ध जिसका नाम लंका था।

दो०—खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुं दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव॥ १८४॥

उसकी चारों दिशाओं में समुद्र की खाई अत्यन्त गहरी थी। और मणियों से जड़ा हुआ, सोने का मजबूत कोट था। उसके बनावट का वर्णन नहीं किया जा सकता॥ १८४॥

हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ॥ १७१॥

भगवान् की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा हो और वह शूर, प्रतापी, महाबली हो वही अपने दल सहित इसमें वास करे। यह लङ्का के द्वार पर लिखा था॥ १८५॥

रहे तहां निसिचर भट मारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥
अब तहं रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥

पूर्व काल में वहां बड़े बड़े सुभट राक्षस रहते थे, जो रावण के मातामह आदि थे, उन सबों को देवताओं ने युद्ध में मार गिराया। अब यहां इन्द्र की प्रेरणा से कुबेर के करोड़ रक्षक रहते हैं।

दसमुख कतहुं खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥

रावण को जब कहीं यह खबर मिली तो अपनी सेना सजा वहां जाकर गढ़ को घेर लिया। तब महा बिकट योद्धाओं की बड़ी सेना देखकर यक्ष प्राण बचाकर भाग गये।

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा॥
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहां रावन रजधानी॥

फिरकर सब नगर रावण ने देखा, शोच जाता रहा, और बड़ा सुख हुआ। सुन्दर स्वाभाविक दुर्गम ऐसी लंकापुरी को समझ, वहां रावण ने अपनी राजधानी निरूपण की।

जेहि जस जोग बांटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥

जिसको जैसा उचित था वैसा ही घर दिया, इस प्रकार राक्षसों को सुखी किया। एक बार कुबेर पर चढ़ गया, और उनका पुष्पक विमान जीत लिया।

दो०—कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुं तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ॥ १८६॥

एक बार खेल करते हुए कैलाश को जाकर उठा लिया। मानो अपनी भुजा का बल तौलकर हर्षित होकर चला आया॥१८६॥

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥

सुख, सम्पदा, पुत्र, सेना, और सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई, ये सब नित्य नवीन बढ़ने लगे, जैसा प्रतिदिन लाभ होने से लोभ बढ़ता है।

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुं नहिं प्रतिभट जग जाता॥
करइ पान सोवइ षटमासा। जागत होइ तिहूं पुर त्रासा॥

महाबलवान् कुम्भकरण, ऐसा भाई, जिसके समान दूसरा योद्धा संसार में उत्पन्न नहीं हुआ।

मदिरा पान कर वह छः महीने सोता था, जिसके जागने पर तीनों लोक में डर उत्पन्न हो जाता था।

जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई।
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना॥

यदि वह प्रति दिन भोजन करता तो सब संसार शीघ्र ही चौपट हो जाता। समर में ऐसा धीर था कि वर्णन नहीं किया जा सकता, और उसके समान अधिक बलवान् कोई न था।

बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुं प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई॥

मेघनाथ रावण का बड़ा पुत्र था, संसार के वीर योद्धाओं में जिसकी पहली गणना है। युद्ध में जिसके सामने कोई नहीं होता था, इन्द्रलोक में नित्य ही देवताओं को भागना पड़ता था।

दो०—कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय॥ १८७॥

दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु, अतिकाय जो अकेले ही जगत् को जीत सकते थे ऐसे बहुत से महायोद्धा थे॥ १८७॥

कामरूप जानहिं सब माया; सपनेहुं जिन्ह कें धरम न दाया॥
दसमुख बैठ सभां एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥

इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, सब प्रकार की माया करने वाले, स्वप्न में भी जिनके हृदय में धर्म और दया नहीं होती थी। एक बार रावण ने सभा में बैठे अपने अपरिमित कुटुम्बियों को देखा।

सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥

पुत्रों का समूह, मित्र सेवक आदि राक्षस जाति को गिनकर कौन पार पा सकता है। और अपनी सेना देख स्वाभाविक अभिमानी रावण क्रोध और अभिमान से कहने लगा।

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥

हे राक्षसों! सुनो, हमारे बैरी सब देवता, वे सन्मुख होकर लड़ाई नहीं करते हैं और शत्रु को बलवान् देखकर भाग जाते हैं।

तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउं बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥

उनकी मृत्यु एक प्रकार से हो सकती है, वह समझा कर कहता है, उसे अब सुनो। ब्राह्मण के भोजन, यज्ञ, होम, श्राद्ध इन सब कामों में जाकर तुम लोग बाधा करो।

दो०—छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउं कि छाड़िहउं भली भांति अपनाइ॥ १८८॥

तो भूख से व्याकुल और बलहीन होकर सब देवता सहज ही आकर मिलेंगे तब मारूंगा व भली भांति अपना कर छोड़ दूंगा॥ १८८॥

मेघनाद कहुं पुनि हंकरावा। दीन्हीं सिख बलु बयरु बढ़ावा॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना॥

फिर मेघनाथ को बुलाया और शिक्षा दी कि जिससे बल और देवताओं के प्रति बैर बढ़ जाय। रावण ने कहा, कि जो देवता बलवान और युद्ध में धीर है और जिन्हें लड़ने का अभिमान है।

तिन्हहि जीति रन आनेसु बांधी। उठि सुत पितु अनुसासन कांधी॥
एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही॥

उन्हें युद्ध में जीतकर बांध लाओ। पुत्र मेघनाथ ने उठकर पिता की आज्ञा को स्वीकार किया। इस प्रकार सब राक्षसों को आज्ञा दे आप भी हाथ में गदा लेकर चला।

चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी।
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥

रावण के चलने से पृथ्वी हिलती थी, और उसके गर्जने से देवताओं की स्त्री के गर्भ गिर जाते थे। रावण को क्रोध सहित आया सुन, देवताओं ने सुमेरु पर्वत की कन्दरा ताकी।

दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥

फिर रावण दिक्पालों के सुन्दर लोक को गया, और वहां सब खाली पाया। बार-बार सिंह की भांति भयंकर गर्जना करके वह ललकार कर देवताओं को गालियां देने लगा।

रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुं न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥

रण के मद से मतवाला होकर जगत् में दौड़ने लगा और अपने समान योद्धा ढूंढ़ने पर भी कहीं नही पाया। सूर्य, चन्द्रमा, पवन, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल, यम और सब अधिकारी।

किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा॥
ब्रह्मसृष्टि जहं लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥

किन्नर, सिद्ध, मनुष्य देवता और नाग, सबके पीछे रावण बरजोरी से लग गया। ब्रह्मा की सृष्टि में जहां तक शरीरधारी स्त्री, पुरुष थे, डरते हुए रावण की आज्ञा में रहने लगे, नित्य आकर विनीत भाव से चरणों को प्रणाम करने लगे।

दो०—भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र॥ १८९॥

अपनी भुजा के बल से विश्व को अपने वश में कर लिया। किसी को स्वतन्त्र नहीं रक्खा। सब राजाओं के बीच रावण अपने ही मन्त्र (विचार) के अनुसार राज्य करने लगा॥ १८९॥

देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि॥ ११०॥

और देव, यक्ष गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर, नाग इनकी कन्याओं को जो बहुत सुन्दर और अच्छी थीं उन सबों को अपनी भुजा के बल से जीतकर जबरदस्ती उनसे ब्याह कर लिया॥ १९०॥

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुं आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा॥

मेघनाथ से जो कुछ रावण ने कहा, वह सब उसने मानों पहले ही कर रक्खा था और रावण ने पहले जिन राक्षसों को आज्ञा दी थी, उन्होंने जो किया उसका चरित्र सुनो।

देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी।
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥

देखने में सब भयंकर रूप बड़े पापी झुण्ड के झुण्ड निशाचर देवताओं को दुख देने वाले थे। असुर समूह उपद्रव करते और माया से नाना प्रकार का रूप धारण करते थे।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउं पुर आगि लगावहिं॥

जिस प्रकार धर्म निर्मूल हो वही सब देव विरुद्ध आचरण करते थे। जिस जिस देश में जहां गौ ब्राह्मण पाते उस नगर, गांव और पुर में आग लगा देते थे।

सुभ आचरन कतहुं नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ज्ञाना। सपनेहुं सुनिअ न बेद पुराना॥

अच्छे कर्म, देव पूजन, हवन, आदि कहीं नहीं होते और वेद, ब्राह्मण गुरु इनको कोई नहीं मानता। भगवान् की भक्ति, यज्ञ, जप, दान कोई न करने पाता, तथा वेद पुराण स्वप्न में भी सुनाई नहीं देता था।

छं०—जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥ १८॥

जप, जोग, वैराग्य और यज्ञ का भाग कान से रावण सुने तो सुनकर आपही उठ दौड़े और सब जप और यज्ञ आदि विध्वंस कर दे ऐसा भ्रष्टाचार संसार में हो गया, धर्म कहीं कानों से भी नहीं सुन पड़ता था जो कोई कहीं वेद पुराण कहता तो उसको अनेक प्रकार का भय दिखाकर दण्ड देता और देश से निकाल देता था ॥ १८ ॥

सो०—बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति ॥ २६ ॥

वह अनीति कहते ही नहीं बनती, जो घोर अनीति राक्षसों ने प्रारम्भ की थी, हिंसा करने में जिनकी बड़ी प्रीति थी, उनके पाप की कौन गिनती हो सकती है ॥ २६ ॥

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥

खल, चोर, जुआरी बहुत बढ़ गये, जो कुकर्मी, पराए धन और पराई स्त्री को देखने वाले थे। जो माता पिता और देवताओं को नहीं मानते और साधुओं से अपनी सेवा करवाते थे।

जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी ॥

शिवजी पार्वती से कहते हैं, हे भवानी ! जिनके यह आचरण हों उन प्राणियों को भी निशाचरों के समान जानो। धर्म की अत्यन्त हानि देखकर पृथ्वी बहुत डरी और घबड़ा गई।

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता ॥

कि पर्वत, वृक्ष और समुद्र का ऐसा बोझ मुझको नहीं है जैसा कि एक परद्रोही का है। पृथ्वी सब धर्म विपरीत देखती, पर रावण के भय से कुछ कह नहीं सकती थी।

धेनु रूप धरि हृदयं बिचारी। गई तहां जहं सुर मुनि झारी ॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई ॥

गौ का रूप धारण कर पृथ्वी विचारी वहां गई जहां देवता और मुनि थे। उन्हें अपना दुःख रोकर सुनाया, पर किसी से कुछ काम न हुआ।

छं०—सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
संग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ॥
ब्रह्मां सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई ॥ ११ ॥

देवता, मुनि, गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्माजी के समीप गए, साथ में गौ का शरीर धारण किए भूमि

भय और शोक से व्याकुल हो रही थी। ब्रह्माजी ने सब जानकर मन में अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ वश नहीं है। लेकिन जिसकी तू दासी है वही अविनाशी हमारा और तेरा सहायक है ॥ १९ ॥

सो०—धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति ॥ २७ ॥

भगवान् के चरण का स्मरण कर ब्रह्माजी ने कहा कि पृथ्वी ! मन में धीर धरो। भक्तों की पीड़ा को वह जानते हैं, वही दारुण विपत्ति का नाश करेंगे ॥२७ ॥

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहं पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥

सब देवता बैठ कर विचार करने लगे कि प्रभु को कहां पावें, जो पुकार करें, किसी ने कहा कि विष्णु भगवान् बैकुण्ठ में हैं, वहां चलो, कोई कहने लगे कि क्षीरसागर में प्रभु वास करते हैं।

जाके हृदयं भगति जसि प्रीती। प्रभु तहं प्रगट सदा तेहिं रीती ॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेउं। अवसर पाइ बचन एक कहेउं ॥

जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु उसको वैसे ही मिलते हैं, यह सनातनी रीति है। शिवजी बोले, हे पार्वती ! उस समाज में मैं भी था, समय पा मैंने यह वचन कहा।

हरि व्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहां जहां प्रभु नाहीं ॥

भगवान सर्वव्यापक और सर्वत्र समान हैं, प्रेम से प्रगट होते हैं, यह मैं जानता हूं। देश, काल, दिशा, विदिशा इन में कहो वह कौन सा स्थान है कि जहां प्रभु नहीं हैं ?

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥

स्थावर, जंगम सब में प्रभु व्यापक और सबसे रहित हैं परन्तु प्रेम से अग्नि के समान प्रगट होते हैं। शिवजी ने पार्वती से कहा कि मेरी बात सबको अच्छी लगी और ब्रह्माजी ने साधु साधु कह कर प्रशंसा करी।

दो०—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर ॥ १८१ ॥

भगवान् को सर्वव्यापक सुन कर ब्रह्मा जी के मन में बड़ा हर्ष हुआ और शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों से जल की वर्षा होने लगी फिर सावधान हो हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। ॥ १८१ ॥

छं०—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥ २० ॥

हे देवताओं के नायक, आपकी जय हो ! आप अपने भक्तों को सुखदायक हों, दीनों के पालन करने वाले भगवान् हो। गौ, ब्राह्मण के हितकारी हो और असुरों के शत्रु हो। आपकी जय हो ! लक्ष्मी के आप प्रिय स्वामी हो, देवताओं और पृथ्वी के पालन करने वाले हो, आपकी करणी अद्भुत है कि जिस करणी का मर्म कोई नहीं जानता, जो आप स्वभाव से ही दयालु हो दीनों पर दया करने वाले हो। वही दीन दयालु भगवान् हम पर कृपा करो ॥ २० ॥

जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा ।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबृंदा ।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥ २१ ॥

हे अविनाशी ! आपकी जय हो, आप सब घट वासी हो, आप व्यापक परम आनन्द स्वरूप हो, आपकी गति अद्वितीय है, आप माया रहित हो, आपकी भक्ति के निमित्त वैरागी और मुनि मोह रहित हो, प्रीतिपूर्वक रात दिन ध्यान और गुणानुवाद करते हैं। हे सच्चिदानन्द स्वरूप ! आपकी जय हो ॥ २१ ॥

जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा ॥
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा ॥
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी मरन सकल सुरजूथा ॥ २२ ॥

जिसने इस सृष्टि को तीन प्रकार की माया से बनाया है, बिना किसी सहायक के बनाया है, सो हे पाप नाशक ! हमारी चिन्ता करो, आपकी भक्ति पूजा हम नहीं जानते हैं, तथा जो प्रभु संसार के भय को दूर करने वाले, भक्तों के मन को प्रसन्न करने वाले, और विपत्ति के समूह को नाश करने वाले हैं। सो मन, वचन, कर्म और वाणी से सयानपन छोड़, हम सब देवता आपकी शरण आये हैं ॥ २२ ॥

सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुं कोउ नहिं जाना ।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥ २३ ॥

सरस्वती, वेद, शेष और सम्पूर्ण ऋषि भी जिसको नहीं जानते और जिसको दीन जन प्यारे हैं यह बात वेद पुकार कर कहते हैं, वह भगवान् हम लोगों पर दया करें, आप संसार रूपी समुद्र में मन्दराचल के समान हैं तथा आप सब प्रकार से सुन्दर गुणों के धाम सुख के निधान हैं, ये सब मुनि, सिद्ध और देवता बहुत भयातुर होकर आपके चरण कमल को प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥

दो०–जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥ १९२॥

देवता, भूमि और मुनियों को भयातुर जान और उनके स्नेह सहित वचन सुन कर शोक और सन्देह को नाश करने वाली गम्भीर आकाशवाणी हुई ॥ १९२ ॥

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउं नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउं दिनकर बंस उदारा॥

हे मुनियों, हे सिद्धेश्वरों और हे देवताओं ! मैं तुम्हारे लिए नर रूप धारण करूंगा। अपने अंशों सहित मनुष्य अवतार उदार सूर्यवंश में लूंगा।

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुं मैं पूरब बर दीन्हा।
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥

कश्यप अदिति ने महातप किया है, उनको मैं पहले ही वर दे चुका हूं। वही दशरथ और कौशल्या रूप अयोध्यापुरी में राजा रानी प्रगट हुए हैं।

तिन्ह कें गृह अवतरिहउं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउं। परम सक्ति समेत अवतरिहउं॥

उनके घर जाकर अवतार धारण करूंगा, रघुकुल में तिलक सुन्दर चार भाई होंगे। नारदजी का सब वचन सत्य करूंगा, इसलिए अपनी शक्ति सहित अवतार लूंगा।

हरिहउं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई।
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सर हृदय जुड़ाना॥
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियं आवा॥

मैं सब पृथ्वी का भार हरूंगा अर्थात भार रूपी असुरों का संहार कर भूमि का बोझ दूर कर दूंगा। हे देवताओं ! निर्भय हो जाओ, कानों से आकाश की ब्रह्मवाणी सुन कर देवता लौटे और हृदय में प्रसन्न हुए। फिर ब्रह्मा ने पृथ्वी को समझाया, जिससे वह निडर हुई और जी में भरोसा हुआ।

दो०–निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ॥ १९३॥

ब्रह्माजी देवताओं को यह सिखाकर अपने लोक को चले गए कि वानर का शरीर धारण कर पृथ्वी पर जाकर भगवान् का चरण सेवन करो ॥ १९३ ॥

गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुं बिश्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्मां दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा॥

ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर सब देवता भूमि सहित विश्राम पाय अपने अपने स्थान को गए। ब्रह्माजी ने जो कुछ आज्ञा दी, प्रसन्न होकर देवताओं ने उसी के अनुसार किया, विलम्ब नहीं किया।

बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥

पृथ्वी पर आकर वनचर देह धारण करी, उनमें अतुलित बल और प्रताप था। पर्वत वृक्ष, नख यही आयुध उन सब वीरों के थे, ऐसे रणधीर सब देवता भगवान् की बाट देखने लगे।

गिरि कानन जहं तहं भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा।

पर्वतों पर जहां तहां वनचर रूप देवता लोग भरपूर होकर अपनी-अपनी रुचि से सेना सजाकर रहने लगे। यह सब सुन्दर चरित्र मैंने वर्णन किया, अब वह सुनो जो बीच ही में रहने दिया था।

रामावतार की कथा।

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊं॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदयं भगति मति सारंगपानी॥

अयोध्यापुरी में रघुवंशमणि राजा दशरथ का नाम वेद में प्रसिद्ध है। जो परम धर्मात्मा सब गुण-निधान, ज्ञानी, हृदय में भगवान् की पूर्ण भक्ति वाले ऐसे महाराज दशरथजी हुए।

दो०—कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत॥ १६४॥

कौशल्या आदिक रानियां महाराज दशरथजी को बहुत प्यारी थीं, जिनका आचरण परम पवित्र था। पति की आज्ञा मानते हुए हरि भगवान् के चरण कमल में जिनका विनीत भाव से दृढ़ प्रेम रहता था॥ १६४॥

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला॥

एक समय महाराज दशरथ जी के हृदय में यह चिन्ता हुई कि मुझे पुत्र नहीं है। इस चिन्ता का दूर करने के लिए तुरन्त उठ अपने गुरु वशिष्ठजी के घर पर गये और उनके चरण पकड़ बड़ी स्तुति करके कहा।

निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥

गुरुजी को अपना दुःख सुना दिया, तब वशिष्ठजी ने राजा को बहुत प्रकार से समझा कर कहा कि, धैर्य्य धारण करो, तुम को चार पुत्र तीनों लोक में प्रसिद्ध और भक्तों का दुःख दूर करने वाले उत्पन्न होंगे।

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥

फिर वशिष्ठजी ने शृङ्गी ऋषि को बुलाकर पुत्र होने के लिए यज्ञ आरम्भ किया। ऋषि ने प्रेम पूर्वक यज्ञ में आहुति दी, तब हाथ में खीर लिए हुए अग्नि देव प्रगट हुए।

जो बसिष्ठ कछु हृदयं बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हबि बांटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥

अग्नि ने अत्यन्त प्रसन्न होकर ऐसे प्रेम सहित वचन बोले जिसका बखान नहीं हो सकता। और महाराज दशरथ जी से कहने लगे कि, वशिष्ठजी ने अपने हृदय में जो कुछ सोचा था वह तुम्हारा कार्य अब सिद्ध हो जायेगा। और इस खीर को यथा योग्य भाग बना कर रानियों को बांट दो।

दो०—तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयं समाइ॥ १९५॥

इस प्रकार सम्पूर्ण सभा को समझा कर तब अग्निदेव अन्तर्ध्यान हो गए और राजा इतने प्रसन्न हुए कि उग्र प्रेम को हृदय में रोक नहीं सके अर्थात् उस प्रेम का वर्णन नहीं हो सकता॥ १९५॥

तबहिं रायं प्रिय नारि बोलाई। कौसल्यादि तहां चलि आईं॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥

तब राजा ने अपनी प्यारी स्त्री को बुलाया और कौशल्या आदि वहां पर आ गईं। उस खीर में से आधी खीर कौशल्या को देकर बचे हुए आधे भाग में से दो भाग किए।

कैकेई कहं नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥

राजा ने पहले आधे के भागों में से एक भाग कैकेयी को दिया और एक भाग को दो भाग कर दिए। कैकेयी और कौशल्या के हाथ पर रख सुमित्रा को हर्षित होकर दिया।

एहि बिधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदयं हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥

इस प्रकार तीनों रानियां गर्भवती हुईं और हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। भगवान् ने जिस दिन से गर्भ में वास किया उसी दिन से सब लोक में सुख और सम्पत्ति छा गई।

मंदिर महं सब राजहिं रानीं। सोभा सील तेज की खानीं॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ॥

शोभा, शील, तेज की खानि सब रानी मन्दिर में विराजमान थीं। सुख सहित जब कुछ समय बीत जाने पर भगवान् प्रगट होने वाले थे वह समय उपस्थित हुआ।

दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥ १९६॥

ग्रह, योग, लग्न, वार, तिथि सब अनुकूल हुए। चर अचर सुख का मूल रामचन्द्र का जन्म जानकर हर्षित हुए॥ १९६॥

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥

पवित्र चैत्र का महीना नवमी तिथि अभिजित मुहूर्त शुक्ल पक्ष के मध्यान्ह काल में न बहुत शीत और न बहुत घाम सब लोक को विश्राम देने वाला समय।

सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥

धीरे-धीरे शीतल और सुगन्धित वायु चल रही थी, देवता और साधु प्रसन्न होकर उत्साहित हो रहे थे। वन प्रफुल्लित हो गए, पर्वतों में मणि की खानें उत्पन्न हो गईं और नदियों में अमृत समान जल बहने लगा।

सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा॥

उस समय को ब्रह्मा ने जानकर देवताओं सहित विमान सजा कर चले। निर्मल आकाश देवताओं से सम्पन्न हो रहा था और गन्धर्वों का झुण्ड गुण वर्णन कर रहा था।

बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा॥

सुन्दर अंजुलियों में सजा सजा कर पुष्प बरसाने लगे और आकाश में गहगहे नगाड़े बजने लगे। नाग, मुनि, देवता सब लोग स्तुति करके अपनी भेंट अलग-अलग से करने लगे।

दो०—सुर समूह बिनती करि पहुंचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥ १९७॥

इस प्रकार भगवान् की स्तुति करके जब सब देवता अपने लोक में चले गए, तब वही अखिल लोक अर्थात् सम्पूर्ण लोकों के सुख और शान्ति प्रदान करने वाले भगवान् प्रगट हुए॥ १९७॥

छं०—भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥ २४॥

परम दयालु कृपालु कौशल्या के हितैषी प्रगट हुए। मुनियों के मन को भी विचलित करने वाला अद्भुत स्वरूप देखकर माता (कौशल्या) हर्षित हो गईं। अत्यन्त सुन्दर विशाल नेत्र, श्यामवर्ण मेघ के समान शरीर और चार हाथ अपने अस्त्रसहित भूषण और वनमाला धारण किये हुए शोभा के समुद्र खरारी (खर राक्षस को मारने वाले) भगवान ने अपनी माता कौशल्या को दर्शन दिया॥ २४॥

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥ २५॥

रानी कौशल्या ने दोनों हाथ जोड़कर भगवान् से कहा कि, मैं आपकी स्तुति किस प्रकार से करूं, आपका अन्त नहीं है, आप माया के गुणों से रहित हैं, आपको मान अपमान बराबर है। ऐसा वेद और पुराण कहते हैं, आप करुणा और गुणरूपी समुद्र हैं, जिसकी कीर्ति सन्त, वेद वर्णन करते हैं, वह भक्त-वत्सल मेरे हित के लिए लक्ष्मीपति साक्षात् प्रगट हुए॥ २५॥

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै॥
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥ २६॥

सब ब्रह्माण्ड जो माया से बना हुआ है वह आपके रोम रोम में वेद बतलाते हैं वह मेरे गर्भ में वास करे यह बड़ा भारी उपहास है जिसे सुनकर धीर मुनि की बुद्धि भी स्थिर नहीं रह सकती है। इस प्रकार कौशल्या के हृदय में ज्ञान उत्पन्न होता देखकर भगवान् हंस दिए क्योंकि उन्हें बहुत प्रकार के चरित्र करने थे। कथा कह कर सुनाई कि जिससे कौशल्या उन्हें अपना पुत्र समझें और ईश्वर न मानें और पुत्र का प्रेम करे॥ २६॥

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥ ४॥

भगवान् की माया से कौशल्या का ज्ञान जाता रहा और भगवान् से उन्होंने कहा कि, हे तात! इस स्वरूप को छोड़ दो और अत्यन्त सुख देने वाली बाल लीला करो। माता की यह बात सुनते ही

देवताओं के पति भगवान् बालक का रूप धारण कर रोने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि जो इस लीला को गाते हैं, वे भगवान् के चरण पाते हैं, और संसार रूपी भवसागर में नहीं गिरते ॥ २७ ॥

दो०—बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार ॥ १९८ ॥

ब्राह्मण, गौ, देवता और सन्तों के लिए मनुष्य का अवतार लिया। माया के गुणों से रहित जो भगवान् हैं, उन्होंने अपनी इच्छा से निर्वाण करके मनुष्य रूप धारण किया ॥ १९८ ॥

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हरषित जहं तहं धाईं दासी। आनंद मगन सकल पुरबासी ॥

अत्यन्त प्यारी वाणी से बालक का रोना सुनकर सब रानी भ्रम सहित चली आईं। खुशी होकर दासियां (मजदूरिन) जहां तहां दौड़ गईं, और सब नगर निवासी आनन्दित हो गए।

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुं ब्रह्मानंद समाना ॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा ॥

महाराज दशरथ जी पुत्र का जन्म सुन ऐसे प्रसन्न हुए कि मानों उन्हें ब्रह्मानन्द का सुख मिल गया। अत्यन्त प्रेम से शरीर पुलकित हो गया और उठने की चेष्टा करने लगे प्रेम वश उठते भी नहीं बनता था।

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा ॥

महाराजा दशरथ जी को बड़ी प्रसन्नता हुई कि जिसका नाम सुनने से शुभ होता है। उसी भगवान ने मेरे भवन में जन्म लिया है। इसी हर्ष में विह्वल हो गए और फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा ने अपने अनुचरों को आज्ञा दी कि गुरु वशिष्ठ जी को बुलाओ और बाजा बजवाओ।

गुर बसिष्ठ कहं गयउ हंकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा ॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूपरासि गुन कहि न सिराई ॥

दशरथ जी के कुल गुरु वशिष्ठजी के यहां बुलावा गया और वह बहुत से ब्राह्मणों को लेकर राज-भवन में आये। जिसकी उपमा नहीं है और जिसके स्वरूप और गुण का वर्णन करने से समाप्ति नहीं हो सकती, ऐसे रूप राशि के बालक को देखा।

दो०—नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहं दीन्ह ॥ १९९ ॥

और फिर नान्दी मुख श्राद्ध करके कुल रीति, जैसे परम्परा से होती थी उसके अनुसार सब कर्म करके राजा ने ब्राह्मणों को गौ, वस्त्र, स्वर्ण मणि आदि देकर सन्तुष्ट किया। ॥ १९९ ॥

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भांति बनावा॥
सुमनबृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥

ध्वज, पताका, तोरण सम्पूर्ण नगर में बंध गए, जिसकी उपमा कहते नहीं बनती। आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी, सब लोग ब्रह्मानन्द का सुख अनुभव करने लगे।

बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं। सहज शृंगार किएं उठि धाईं॥
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥

झुण्ड की झुण्ड स्त्रियां साधारण सुन्दर शृंगार किये हुए अति शीघ्रता से उठकर चलीं। हाथ में सोने का कलश मङ्गल थाल लिए हुए मधुर स्वर से गीत गाती हुई राजा के दरवाजे से जाने लगी।

करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार सिसु चरनन्हि परहीं॥
मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक॥

आरती करके न्यौछावर करने लगीं और बारम्बार बालक के चरण को छूने लगीं। बन्दी, मागध, सूत इत्यादि गाने वाले रघुनाथजी का पवित्र गुणगान करने लगे।

सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥

जिसके पास जो कुछ था वह सब दान दे दिया, जिसने जो पाया उसने भी नहीं रक्खा दूसरे को दे दिया। चन्दन, कस्तूरी अबीर की कीच सर्वत्र गलियों और सड़कों पर हो गई।

दो०—गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहं तहं नगर नारि नर बृंद॥ २००॥

घर-घर में आनन्द के बाजे बजने लगे और सुख के मूल प्रगट हुए नगर के सब स्त्री पुरुष जहां तहां हर्षित हो गए, अर्थात् भगवान् के प्रगट होने से घर घर में उत्सव होने लगा॥ २००॥

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ॥
वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा॥

कैकेयी और सुमित्रा दोनों ने सुन्दर पुत्र का प्रसव किया। उस सुख, सम्पत्ति, समाज तथा समय को सरस्वती और शेष भी नहीं कह सकते।

अवधपुरी सोहइ एहि भांती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥

उस समय अयोध्या की ऐसी शोभा हो गई मानो प्रभु भगवान् से मिलने के लिए रात्रि आई है। मानों सूर्य को देखकर वह लज्जित हो गई तो भी संध्या रूप धारण कर लिया।

अगर धूप बहु जनु अंधियारी। उड़इ अबीर मनहुं अरुनारी॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥

अगर और धूप से बड़ा ही अंधेरा हो गया, अबीर से अरुणता छा गई। राज मन्दिर की मणि

तारे के समान चमक रही थी और राजा के गृह का कलस चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहा था।

भवन बेदधुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समयं जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइं जात न जाना॥

राज मन्दिर में मधुर स्वर से जो वेद ध्वनि हो रही थी, वह ऐसी विचित्र हो रही थी मानो संध्या समय के पक्षीगण अपने घोंसलों में बैठकर बोल रहे हैं। यह कौतुक देख सूर्य भगवान भूल गए और एक महीना बीतते न जाना।

दो०—मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥ २०१॥

एक महीने का एक दिन हुआ, भेद किसी को नहीं मिला कि रथ सहित सूर्य थकित हो गये तब रात्रि कैसे हो सकती है॥ २०१॥

यह रहस्य काहूं नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा॥

इस रहस्य को किसी ने नहीं जाना और भगवान् का गुणानुवाद करते हुए सूर्यनारायण आगे बढ़े। यह उत्सव देख देवता, मुनि, नाग अपने भाग्य की बड़ाई करते अपने-अपने निवास स्थान को चले।

औरउ एक कहउं निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥

हे दृढ़ बुद्धि पार्वती! मैंने जो एक चोरी की थी वह भी कहता हूं। सुनो, काकभुशुण्ड के साथ हमने मनुष्य का रूप धारण कर लिया परन्तु कोई जानता नहीं था।

परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥

अत्यन्त प्रेम में फूले हुए मगन हो गलियों में घूम रहे थे यह शुभ चरित्र वही जान सकता है कि जिस पर रामचन्द्रजी की कृपा हो।

तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हें नृप नानाबिधि चीरा॥

उस समय में जो जिस प्रकार से आया राजा ने उसे वही दिया जो जिसने मांगा। हाथी, घोड़ा, रथ, गौ, सुवर्ण, हीरा और नाना प्रकार के वस्त्र राजा ने दिये।

दो०—मन संतोषे सबन्हि के जहं तहं देहिं असीस।
सकल तनय चिर जीवहुं तुलसिदास के ईस॥ २०२॥

सब कोई हृदय से सन्तुष्ट होकर जहां तहां आशीर्वाद देने लगे कि महाराज दशरथजी के सब पुत्र चिरञ्जीवी हों, अर्थात् तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु को सब लोग आशीर्वाद देने लगे॥ २०२॥

कछुक दिवस बीते एहि भांती। जात न जानिअ दिन अरु राती॥
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी॥

कुछ दिन इसी प्रकार से व्यतीत हो गये और रात दिन का जाना आना भी आनन्दवश नहीं जानते थे और नामकरण का अवसर जान कर राजा ने ज्ञानी मुनि को बुलाया।

करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥
इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥

मुनि की पूजा करके राजा ने कहा, हे मुनि नाथ! आपने जो विचारा हो वह नाम रखिये। इनका नाम अनन्त और उपमा रहित है, हे राजा! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूंगा।

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

जो सुख की राशि आनन्द के समुद्र और तीनों लोक को सुख देने वाले हैं। उनका नाम "राम" है, जो सब संसार को विश्राम देने वाले हैं।

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

और संसार का भरण पोषण करते हैं उनका नाम "भरत" होगा, जिनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है, उनका नाम "शत्रुघ्न" है, वेद में भी ऐसा ही प्रमाण मिलता है।

दो०—लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥ २०३॥

लक्षण धाम रामचन्द्र के प्रिय और संसार के जो आधार थे। वशिष्ठ जी ने उनका नाम "लक्ष्मण" रक्खा॥ २०३॥

बाल—चरित्र

धरे नाम गुर हृदयं बिचारी। बेद तत्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुख माना॥

गुरुजी ने अपने हृदय से विचार यह नाम रक्खा और राजा से कहा कि हे राजन्! तुम्हारे चारों पुत्र वेदतत्व हैं। मुनियों के धन और शिवजी के प्राण आधार हैं, जो बाल लीला के सुख में मगन रहते हैं।

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥

बाल्यावस्था ही से रामचन्द्र को अपना रक्षक और पति जान लक्ष्मणजी उनके चरणों में प्रीति करने लगे। भरत और शत्रुहन दोनों भाई भगवान की सेवा बड़ाई सहित करते थे।

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी॥
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा॥

श्याम और वर्ण की जोड़ी देखकर माता तृण तोड़ती थी जिससे नजर न लगे। यद्यपि चारों भाई शील और गुण में कम नहीं थे तथापि रामचन्द्रजी सबसे अधिक थे।

हृदयं अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥
कबहुं उछंग कबहुं बर पलना। मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना॥

हृदय के अन्तर्गत अनुग्रह रूपी चन्द्रमा के प्रकाश रूपी किरन की सूचना मधुर हंसी से मिल रही थी। कभी गोदी में और कभी पलना पर रखकर माता कौशल्या लल्ला कह दुलार करती थीं।

दो०—ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥ २०४॥

जो सर्वव्यापक ब्रह्म अजन्मा निर्गुण और विनोद रहित भगवान् हैं वह प्रेम और भक्ति के वश होकर कौशल्या जी की गोदी में खेल कर रहे थे॥ २०४॥

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥

नील कमल और नील मेघ के समान, श्याम शरीर की शोभा करोड़ों कामदेव की छवि को क्षीण करती थी। कमल से लाल चरण पर श्वेत नख की शोभा ऐसी प्रतीत होती थी कि जैसे अरुण कमल पर मोती रखी हो।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥

और कुलिश (वज्र) ध्वजा और अंकुश की रेखा शोभायमान थी और पाजेब की ध्वनि सुनकर मुनियों का मन मोहित हो जाता था। कमर में करधनी और पेट में तीन रेखा, नाभी अति गंभीर उसे वही जान सकता है जिसने देखा होगा।

भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियं हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥

भूषणों से भूषित लम्बी भुजा और हृदय में बाघ का नख शोभा बढ़ा रहा था। हृदय में मणियों का हार और भृगुलता का चिन्ह देखकर मन मोहित हो जाता था।

कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥

शंख के समान कंठ सुन्दर ठुड्ढी शोभायमान है, मुंह पर अपरिमित कामदेव की शोभा छा रही थी। अरुण ओंठ दो दो दांत, नाक और तिलक की उपमा वर्णन कर कौन पार पा सकता है।

सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला।
नील कमल दोउ नयन बिसाला। बिकट भृकुटि लटकब बरमाला॥

सुन्दर कान और गाल, अत्यन्त मीठी और मधुर वाणी, अति आनन्द उत्पन्न करती थी। नील कमल के समान विशाल नेत्र और तिरछी भौंहें तथा मस्तक पर बाल लटक रहे थे।

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु संवारे॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुं जेहिं देखा॥

चिकने और टेढ़े बालों को माता ने भली भांति बनाया, शरीर में पीली झिगुलिया पहिराई हैं, ऐसे सुन्दर स्वरूप में रामचन्द्र घुटनों और हाथों से पृथ्वी पर विचर रहे थे। उस रूप का वर्णन वेद और शेष नाग भी नहीं कर सकते, वही जानता है जो स्वप्न में ही देख सकता है।

दो०—सुख संदोह मोहपर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसुचरित पुनीत॥ २०५॥

जो सुख, दुःख, माया मोह से रहित और जिसके ज्ञान का अन्त नहीं है, वही भगवान् दम्पति (राजा और रानी) के प्रेम वश होकर पवित्र बाल लीला कर रहे थे॥ २०५॥

एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रगट भवानी॥

इस प्रकार के पिता और माता रामचन्द्रजी अयोध्यावासियों को सुख देने लगे। रामचन्द्र के चरणों में जो प्रेम करते हैं, हे भवानी! उन लोगों की यही गति प्रकट है।

रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भव बंधन छोरी॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे॥

रामजी से विमुख होकर चाहे कितना ही प्रयत्न कोई करे, परन्तु सांसारिक बन्धन को कौन छुड़ा सकता है। चराचर जीव जिसके अधीन हैं, वह माया भी भगवान से डरती रहती है।

भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥

भौंह के संकेत से जो माया को नचाते हैं, ऐसे भगवान् को छोड़ कहो किसका भजन करना चाहिए। मन, कर्म और वाणी से चातुर्य्य छोड़ भजन करते ही भगवान् कृपा करते हैं।

एहि बिधि सिसु बिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा॥
लै उछंग कबहुंक हलरावै। कबहुं पालनें घालि झुलावै॥

रामचन्द्रजी ने इस प्रकार बाल लीला करके सब नगर निवासियों को सुख दिया। माता कभी गोद में और कभी पालना पर रख कर झुलावें।

दो०—प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान॥
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान॥ २०६॥

कौशल्या प्रेम के वश इस प्रकार हो गई थीं कि रात दिन का आना जाना उनको विदित नहीं होता था। पुत्र के प्रेम में अनुरक्त होकर उन्हीं का चरित्र गाया करती थीं॥ २०६॥

एक बार जननीं अन्हवाए। करि सिंगार पलनां पौढ़ाए॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥

एक समय माता ने नहवा कर और शृंगार करके पालने पर सुला दिया और अपने कुल के इष्टदेव भगवान् की पूजा के निमित्त पकवान बनाया।

करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा। आपु गई जहं पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवां चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥

भगवान् की पूजा कर नैवेद्य चढ़ा कर के जहां पकवान बना था वहां गईं और फिर कौसल्याजी ने वहां से लौट आकर देखा तो रामचन्द्रजी भोजन कर रहे थे।

गै जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहां पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदयं कंप मन धीर न होई॥

माता कौशल्याजी बालक के निकट भयभीत होकर गईं वहां बालक को सोया देखा। फिर आकर देखा तो वही बालक माता का हृदय कांपने लगा, किसी प्रकार से धैर्य न हो सका और अपने मन में सोचने लगीं कि—

इहां उहां दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हंसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥

यहाँ वहां दो बालक दिखाई दे रहे हैं, यह मेरी बुद्धि का भ्रम है अथवा वास्तव में दो बालक हैं रामचन्द्र जी माता को भ्रम में व्याकुल देख धीरे से हंस दिए।

दो०—देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥ २०१॥

और माता को अपना अद्भुत विराट् स्वरूप दिखाया, जिस शरीर के रोम रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड का निवास रहता है॥ २०७॥

अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥

सूर्य, चन्द्रमा, महादेव, ब्रह्मा और बहुत से पर्वत, समुद्र, नदी, वन इत्यादि इतने दिखलाई दिए कि जिनकी गिनती नहीं हो सकती थी। काल, कर्म, दोष गुण और स्वभाव ऐसे दिखाई दिए, जो कभी किसी ने सुना नहीं है।

देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही॥

सम्पूर्ण शक्ति सहित माया अत्यन्त भय से हाथ जोड़े हुए दिखाई दी। उन सब जीवों को देखा, जिन्हें माया दुख देती है और उस भक्ति को देखा, जो माया से छुड़ा कर उसे सुखी करती है।

तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिरु नावा॥
बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी॥

शरीर पुलकित हो गया, मुंह से बात तक न निकली, नेत्र बन्द करके चरण पर सिर रख दिया। तब माता को विस्मित देखकर तुरन्त भगवान् ने बालक का रूप धारण कर लिया।

अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥
हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुं कहसि सुनु माई॥

भय के वश में होकर स्तुति करते न बन सका, भय यह हो रहा था कि भगवान् को मैंने अपना पुत्र समझा था कि कहीं यह क्रोधित न हो जायं। इस प्रकार माता को व्याकुल देख रामजी ने कहा, हे माता! इस चरित्र को कभी न कहना।

दो०—बार बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि।
अब जानि कबहूं ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि॥ २०८॥

बारम्बार विनती करके कौशल्याजी कहने लगीं कि, हे नाथ! अब मुझे कभी आपकी माया मोहित न करें॥ २०८॥

बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहं दीन्हा।
कछुक काल बीतें सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई॥

इसी प्रकार भगवान् ने बहुत बाल-चरित्र करके अपने सेवकों को अत्यन्त आनन्द दिया। कुछ काल बीतने पर कुटम्बियों को सुख देने वाले सब भाई बड़े हुए।

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥

फिर गुरुजी ने आकर के चूड़ाकरण संस्कार किया और ब्राह्मणों को दक्षिणा दी गई। चारों सुकुमार अत्यन्त मनोहर चरित्र करते फिरते थे।

मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

मन, कर्म और वाणी से जिनका पता नहीं लगता, वही भगवान् दशरथ जी के आंगन में विचर रहे थे। दशरथ जी भोजन के समय जब बुलाते तो रामचन्द्रजी बोलकों को छोड़ भोजन करने न आते।

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥
धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाए॥

और जब कौशल्या जी बुलाने जातीं तो रामचन्द्र जी ठुमुक ठुमुक कर भागने लगते। वेद और शिवजी भी जिसका अन्त नहीं पाते, उसको माता कौशल्या जी बलात्कार पकड़ने के लिए दौड़ रही थीं, फिर सब शरीर में धूर लपेटे हुए आये, तब राजा ने हंसकर गोदी में बिठा लिया।

दो०—भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥ २०१॥

चंचल चित्त से भोजन करते, इधर उधर देख, अवसर पाते ही किलकिला कर मुंह में दही भात लपेटे हुए भाग चलते थे॥ २०१॥

बालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु श्रुति गाए।
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता।

रामचन्द्र जी का बालचरित्र शेषनाग, शिवजी और वेद ने अत्यन्त सरलता से वर्णन किया है। जिन लोगों का मन इस चरित्र में नहीं लगता उनकी बुद्धि ब्रह्मा ने नाश कर दी है।

भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरगृहं गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

फिर सब भाई कुमार अवस्था को प्राप्त हुए, तब माता पिता और गुरु ने यज्ञोपवीत कर दिया। फिर विद्या पढ़ने के लिए रामचन्द्र जी गुरुजी के गृह पर गये और थोड़े समय में सब विद्याएं प्राप्त कर लीं।

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥
बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला॥

जिसकी सहज श्वांस से चारो वेद उत्पन्न हुए, वही प्रभु पढ़ें यह बड़ा भारी कौतुक है। विद्या, विनय, गुण और शील में निपुण, सब खेल में राजाओं की ही लीला खेलते थे।

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥

हाथ में अत्यन्त सुन्दर धनुष देखकर चराचर मोह जाते थे। जिन गलियों में रामचन्द्र सब भाइयों सहित विचरते थे, उस गली के सब स्त्री पुरुष चकित हो जाते थे।

दो०—कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुं राम कृपाल॥ १२०॥

श्री अयोध्यापुरी के रहने वाले स्त्री, पुरुष, बूढ़े और युवा सबको श्री रामचन्द्र जी अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थे॥ २१०॥

बंधु सखा संग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहिं जियं जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहि आनी॥

भाई और सब सखा और (मित्र) को बुलाकर उन लोगों के सहित वन में जाकर मृगया करते और प्रति दिन मृगों को ढूंढ़कर मारते और राजा को ले आकर दिखाते थे।

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥
अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं॥

रामचन्द्र के बाण से जिन मृगों की मृत्यु होती वे शरीर छोड़कर सुरधाम को चले जाते। भ्राता और सखा सहित भोजन करते और माता पिता की आज्ञा भंग नहीं करते थे।

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥

जिस प्रकार से पुरबासी प्रसन्न रहें, वही संयोग कृपानिधान रामचन्द्र जी एकत्रित करते थे। वेद और पुराण मन लगाकर सुनते और समझकर अपने भाइयों को समझाते थे।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

नित्य प्रातःकाल उठकर रघुनाथ जी अपने माता, पिता और गुरु को सिर नवाते और उनसे आज्ञा मांगकर नगर का कार्य करते थे। रामजी का कार्य देख दशरथ जी अपने हृदय में प्रसन्न होते थे।

दो०—ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥ २११॥

जो भगवान् सर्वव्यापी, अजन्मा, निर्गुण, निराकार नाम और रूप रहित हैं, वही भगवान् भक्तों के हितार्थ नाना प्रकार का चरित्र कर रहे थे॥ २११॥

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥
बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी॥

यह सब चरित्र मैंने वर्णन किया, अब आगे की कथा मन लगाकर सुनो, महाज्ञानी विश्वामित्र मुनि विपिन में शुभ आश्रम जान कर वास करते थे।

जहं तप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥

वहां मुनि लोग यज्ञ, योग और तप करते थे, परन्तु मारीच, सुबाहु इत्यादि से डरते रहते थे। यज्ञ करते देख सब राक्षस दौड़ जाते थे और नाना प्रकार का उपद्रव करते थे। जिससे मुनि दुख पाते थे।

गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी॥
तब मुनिबर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥

विश्वामित्र के हृदय में चिन्ता हुई कि भगवान् के बिना ये पापी निशाचर न मरेंगे। तब विश्वामित्र ने अपने हृदय में विचार किया कि पृथ्वी का भार उतारने वाले प्रभु का अवतार हो गया है।

एहूं मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥

इसी बहाने से प्रभु के चरण देखूं और विनती करके दोनों भाइयों को ले आऊं। ज्ञान, वैराग्य और सब शुभ गुणों के गृह को मैं नेत्र भर देखूंगा।

दो०—बहुविधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार॥ २१२॥

बहुत प्रकार का मनोरथ करते हुए जाने में विलम्ब न हुआ और सरजू जल में स्नान कर राजा की सभा में गए॥ २१२॥

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी

जब महाराज दशरथ जी को मुनि का आगमन विदित हुआ, तब ब्राह्मणों को साथ लेकर उनसे मिलने चले और मुनि को दण्डवत किया, और आदर पूर्वक अपने साथ में ले आकर उन्हें आसन दिया।

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा॥
बिबिध भांति भोजन करवावा। मुनिबर हृदयं हरष अति पावा॥

फिर चरण धोये और पूजा करके कहा कि, आज मेरे समान भाग्यवान दूसरा कोई नहीं है। विविध भांति से भोजन करवाया, तब मुनि अपने हृदय में अत्यन्त आनन्दित हुए।

पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥

फिर चारों पुत्र मुनि के चरणों पर गिरे, रामचन्द्र को देखकर मुनि सुखी हुए। रामचन्द्र की शोभा देखकर ऐसे प्रसन्न हुए, जिस प्रकार पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर चकोर हर्षित होता है।

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउं बारा॥

तब हृदय में प्रसन्न हो राजा ने कहा कि, हे मुनि ! ऐसी कृपा कभी नहीं की। आपका आगमन किस कारण से हुआ ? सो कहिए उसे करने में विलम्ब न करूंगा।

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउं नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

असुर समूह मुझे सताते हैं, मैं तुमसे याचना करने आया हूं। भाई सहित रामचन्द्र को मुझे दीजिए, निशाचरों के वध से मैं सनाथ होऊंगा।

दो०—देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहं अति कल्यान॥ २१३॥

यह कहकर विश्वामित्र ने कहा कि, हे राजन् ! अज्ञान और मोह छोड़ हृदय से प्रसन्न होकर दीजिए, आपको धर्म और सुयश तथा इनका कल्याण होगा॥ २१३॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी॥
चौथेंपन पायउं सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥

अत्यन्त अप्रिय वाणी सुन राजा का हृदय कांपने लगा और मुख की कान्ति मन्द हो गई और विश्वामित्र से कहने लगे कि, हे मुनि ! चौथेपन में चार पुत्र मिले हैं, आपने विचार करके नहीं कहा है।

मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउं आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउं निमिष एक माहीं॥

पृथ्वी, गौ, धन, कोष जो कुछ मांगिए वह सब बिना क्रोध किये आज दे दूं। शरीर और प्राण से प्रिय कोई वस्तु नहीं है। उसे भी एक पल में दे सकता हूं।

सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
कहं निसिचर अति घोर कठोरा। कहं सुंदर सुत परम किसोरा॥

सब पुत्र मुझे प्राण के समान प्रिय हैं, पर राम को देते नहीं बनता। कहां अति बलि और बड़े कठोर राक्षस और कहां किशोर वय के सुन्दर बालक।

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदयं हरष माना मुनि ग्यानी॥
तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहं पावा॥

प्रेम के रस में सनी हुई राजा की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि विश्वामित्र जी हृदय में प्रसन्न हुए। फिर वशिष्ठ जी ने राजा को बहुत प्रकार से समझाया तब उनका सन्देह दूर हो गया।

अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयं लाइ बहु भांति सिखाए॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

अत्यन्त आदर से दोनों पुत्रों को बुलाया और हृदय से लगा बहुत प्रकार से सिखाया। राजा ने कहा, हे मुनि, ! यह दोनों पुत्र मेरे प्राणों के स्वामी हैं, आपही इनके पिता हैं और कोई नहीं है।

दो०—सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥ २०८॥

फिर महाराज ने पुत्रों को आशीर्वाद देकर मुनि को सौंप दिया, रामचन्द्र जी माता के गृह पर जाय उनको मस्तक नवा कर चले॥२१४॥

विश्वामित्र के साथ

सो०—पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन॥ २१४॥

मनुष्य रूपी सिंह के समान वीर मुनि के भय को दूर करने वाले कृपासिन्धु, धैर्यवान दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) जो समस्त संसार के कारण को उत्पन्न करने वाले हैं, प्रसन्न होकर चले॥ २८॥

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसें बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुं हाथा॥

लाल नेत्र, लम्बी भुजा, विशाल हृदय, नील कमल अथवा तमाम वर्ण श्याम शरीर, कमर में पीताम्बर और तरकस कसा हुआ और दोनों कर-कमलों में सुन्दर बाण फेरते हुए।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्यदेव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥

सुन्दर श्याम और दोनों भाई को (भारी खजाने को पाकर) विश्वामित्र मन में विचारने लगे कि प्रभु मेरे लिए पिता को त्याग मेरी रक्षा करने के लिए आये हैं, इसलिए यह अवश्य ब्रह्मा के अवतार हैं।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

जाते जाते में मुनि ने ताड़का को दिखा दिया, वह सुनते ही क्रोध करके दौड़ी। भगवान ने एक ही बाण में उसके प्राण ले लिये और दीन जान अपना पद लिया।

तब रिषि निज नाथहि जियं चीन्ही। बिद्यानिधि कहुं बिद्या दीन्ही॥
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥

तब मुनि जी ने हृदय में अपने नाथ को पहचाना और विद्यानिधि को विद्या दी। जिससे भूख, प्यास कुछ भी न लगे और शरीर में अतुलित बल, तेज प्रकाश की वृद्धि हो।

दो०—आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि॥ २१५॥

फिर विश्वामित्र ने सम्पूर्ण आयुद्ध रामचन्द्र जी को समर्पण कर अपने आश्रम में ले गए और प्रेम-पूर्वक कंदमूल फल इत्यादि उन्हें भोजन करने के लिए दिए॥ २१५॥

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी॥

प्रातःकाल राम ने मुनि से कहा कि निर्भय होकर यज्ञ कीजिए। रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर सब मुनि यज्ञ करने लगे और रामजी मख की रक्षा करने के लिए बैठ गये।

सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥

मारिच नामक अत्यन्त क्रोधी राक्षस यह सुनते ही अपने सहायकों को साथ लेकर दौड़ा। रामचन्द्र ने उसको फल रहित बाण से मार दिया, जिससे वह सौ योजन समुद्र के पार जा गिरा।

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटुक संघारा॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी॥

फिर अग्नि बाण से सुबाहु राक्षस को भस्म कर दिया, लक्ष्मणजी ने उसकी सेना को विध्वंस कर दिया। ब्राह्मणों को निर्भय करने वाले भगवान ने असुरों को मारा और देवता मुनि उनकी स्तुति करने लगे।

तहं पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥

और उस स्थान में रघुनाथजी कुछ दिनों तक रह, ब्राह्मणों पर दया किए रहे। यद्यपि भगवान् सब कुछ जानते थे, तथापि भक्ति वश ब्राह्मण नाना प्रकार की कथा प्रभु को सुनाया करते थे।

꘡ अहिल्या-तरण ꘡

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा॥

तब मुनि ने आदर से समझाकर कहा कि, हे प्रभु! एक चरित्र चलकर देखिये। रघुकुल नाथ रामचन्द्रजी धनुष यज्ञ सुन कर ही मुनि के साथ चले।

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहं नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी॥

मार्ग में एक आश्रम दिखाई दिया, जहां पर जीव, पशु, पक्षी आदि कोई नहीं रहते थे वहां एक शिला देख रामचन्द्र ने मुनि से पूछा, तब उन्होंने विस्तार सहित सब कथा वर्णन की।

दो०—गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥ २१६॥

गौतम की स्त्री अहिल्या शाप के वश शिला हो गई और आपके चरण की धूलि चाहती है, इसलिये कृपा कीजिये॥ २१६॥

छं०—परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही ॥
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही ॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही ।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही ॥ २८ ॥

रामचन्द्रजी के पवित्र और शोकनाशक चरण का स्पर्श होते ही तप की राशि (अहिला) शिलारूप त्याग अपने स्वरूप को प्राप्त हो गई और भक्तों को सुख देने वाले रामचन्द्र को अपने समुम्ख खड़े देख हाथ जोड़ खड़ी हो गई, प्रेम से इस प्रकार अधीर और पुलकित हो गई कि मुख से शब्द भी न निकाला, तब उस बड़ भागिनी ने भगवान् का चरण पकड़ लिया और उसके दोनों नेत्रों से जल की धारा बहने लगी ॥ २८ ॥

धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुं चीन्हा रघुपति कृपां भगति पाई ।
अति निर्मल बानीं अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ॥
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई ।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई ॥ २९ ॥

भगवान् को अपने हृदय में धैर्य धारण किया और प्रभु की कृपा से उसे भक्ति मिली। अति निर्मल वाणी से स्तुति प्रारम्भ करके कहा कि हे ज्ञान गम्य रघुराज ! आपकी जय हो, मैं अपवित्र स्त्री हूं और आप संसार को पवित्र करने वाले, रावण के शत्रु तथा अपने जन को सुख देने वाले हैं, हे संसार के भव को दूर करने वाले कमल लोचन त्राहि माम् ! त्राहि माम् ! मैं आपकी शरण में आई हूं, मेरी रक्षा कीजिए ॥ २९ ॥

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउं भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ संकर जाना ॥
बिनती प्रभु मोरी मैं अति भोरी नाथ न मागउं बर आना ॥
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥ ३० ॥

मुनि ने शाप देकर मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया मैं उस शाप को उपकार मानती हूं जिस कारण संसार के भय को नाश करने वाले भगवान् का दर्शन नेत्र भर कर मुझको मिला, जिस लाभ को शंकर जी परम लाभ मानते हैं। हे नाथ ! मेरी यही विनती है कि मैं अति बुद्धिहीन स्त्री हूं, इसलिये अन्य कुछ वरदान नहीं मांगती हूं, केवल कमल रूपी मैं चरणों में मधुकर समान मेरी प्रीति सदैव बनी रहे ॥ ३० ॥

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी ।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी ॥
एहि भांति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी ॥
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी ॥ ३१ ॥

जिस चरण से उत्पन्न होने के कारण गंगाजी को परम पवित्र जान शिवजी ने अपने मस्तक पर धारण कर लिया और जिन चरण कमल का पूजन ब्रह्मा जी करते रहते हैं, हे नाथ ! आपने उसी कमल रूपी चरण को कृपापूर्वक मेरे मस्तक पर रख मेरा शाप निवारण कर दिया । इस प्रकार स्तुति करके गौतम की स्त्री अहिल्या बारम्बार हरि के चरणों पर गिरी और जो अत्यन्त अच्छा लगा इस वर को प्राप्त कर आनन्दित हो अपने पति के लोक को चली गयी ।। ३१ ।।

दो०—अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल ॥
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल ॥ २१७ ॥

ऐसे निष्काम और दीनबन्धु भगवान को सब कपट और छल छोड़ कर भजना चाहिए, तुलसीदास जी कहते हैं, सब कपट और जञ्जाल त्याग कर उसका भजन करो ।। २१७ ।।

चले राम लछिमन मुनि संगा । गए जहां जग पावनि गंगा ॥
गाधिसूनु सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥

फिर राम लक्ष्मण मुनि के सहित वहां गए जहां जगत् को पवित्र करने वाली श्री गंगाजी बह रही थीं । फिर विश्वामित्र ने जिस प्रकार गंगाजी पृथ्वी पर आई हैं, वह सब कथा रामजी को सुनाई ।

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए । बिबिध दान महिदेवन्हि पाए ॥
हरषि चले मुनि बृंद सहाया । बेगि बिदेह नगर निअराया ॥

तब रामचन्द्र ने ऋषियों के सहित स्नान किया और ब्राह्मणों को बहुत सा दान मिला और फिर प्रसन्न होकर मुनियों के सहित चले, शीघ्र ही बिदेह नगर नियरा गया ।

पुर रम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत बिसेषी ॥
बापीं कूप सरित सर नाना । सलिल सुधासम मनि सोपाना ॥

और जब नगर में प्रवेश किया तो नगर की रमणीयता देख लक्ष्मणजी के सहित रामचन्द्रजी अत्यन्त प्रसन्न हुए, नगर भर में बहुत से बावड़ी, कुयें, नदी और तालाब हैं । जिनका जल स्वच्छ और पीने में अति मधुर था और सब घाटों पर मणियों की सीढ़ियां बनी हुई थीं ।

गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा । कूजत कल बहुबरन बिहंगा ॥
बरन बरन बिकसे बनजाता । त्रिबिध समीर सदा सुखदाता ॥

सुन्दर भ्रमरगण गूंज रहे थे, नाना रंग के पक्षी धीरे धीरे मीठी बाणी से बोल रहे थे और नाना प्रकार के कमल फूल रहे थे तीन प्रकार की वायु चल रही थी जो सब काल में सुख देने वाली होती है ।

दो०—सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास ।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुं पास ॥ २१८ ॥

पुष्प वाटिका, बाग, वन और पक्षियों का निवास स्थान शोभित हो रहे हैं, सब वृक्ष फूल फल और पल्लवित हो रहे थे, इस प्रकार की शोभा नगर के चारों ओर हो रही थी ॥ २१८ ॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहां जाइ मन तहंइं लोभाई ॥
चारु बजारु बिचित्र ग्रंबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर संवारी ॥

नगर की सुन्दरता का वर्णन नहीं हो सकता, जहां जाइये वहीं मन लुभा जाता था, अत्यन्त सुन्दर बाजार और मणिमय अटारी ऐसी सुन्दर बनी हुई थी, मानों ब्रह्मा ने उसे अपने हाथ से बनाया हो।

धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना ॥
चौहट सुंदर गलीं सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई ॥

धनी और व्यापारीगण नाना प्रकार की वस्तुएं लेकर कुबेर के समान बैठे हुए थे, सब चौमुहानी और गली सुशोभित हो रही थी, जो सदा सुगन्ध से सींची जाती थी।

मंगलमय मंदिर सब केरें। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें ॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ग्यानी गुनवंता ॥

सब मन्दिर मंगलदायक हो रहे थे और उन पर जो चित्र बने थे, वह ऐसे प्रतीत होते थे मानो कामदेव ने अपने हाथ से उन चित्रों को चित्रित किया है। नगर के सब स्त्री पुरुष पवित्र सुन्दर तथा बड़े सज्जन तथा धर्मशील ज्ञान और गुण में परम प्रवीन थे।

ग्रति ग्रनूप जहं जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू ॥
होत चकित चित कोट बिलोकि। सकल भुवन सोभा जनु रोकी ॥

राजा जनकजी का निवास स्थान अनुपम था, जहां का बिलास देख देवता भी चकित हो जाते थे, कोट देखने से चित्त चकित हो जाता था, जिसने मानों सब भवनों की शोभा को रोक रक्खा था।

दो०—धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भांति।
सिय निवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति ॥ २१९ ॥

उज्जवल धाम जो कि स्वर्ण और मणियों से अनेक प्रकार से सुन्दर बनाया गया था और जानकीजी का सुखमय निवास स्थान तो और भी मनोहर था, उसकी शोभा तो किसी प्रकार वर्णन नहीं हो सकती थी ॥ २१९ ॥

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा ॥
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला ॥

बज्र के समान सब द्वारों पर कपाट लगे हुए थे और नट, मागध तथा भाटों की भीड़ हो रही थी। हाथी तथा घोड़ों के रहने के लिए बड़ी विशाल अश्वशाला और गजशाला बनी थी, जिसमें सदा हाथी और घोड़े रहा करते थे।

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहेर सर सरित समीपा। उतरे जहं तहं बिपुल महीपा॥

बड़े बड़े शूर सेनापति सबक गृह पर राजमन्दिर के समान विराजमान थे, नगर के बाहर सरोवर तथा नदियों के निकट जहां तहां बहुत से राजा जो धनुष देखने के लिए आये थे, वे सब अपनी इच्छा के अनुसार जलाशयों के निकट निवास कर रहे थे।

देखि अनूप एक अंवराई। सब सुपास सब भांति सुहाई॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहां रहिअ रघुबीर सुजाना॥

एक अनुपम वाटिका देख जहां सब प्रकार का सुपास था और जो बहुत सुन्दर थी, विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा कि हे सुजान रघुवोर ! मेरी इच्छा होती है कि इसी स्थान में ठहरूं।

भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहं मुनिबृंद समेता॥
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए॥

तब रामचन्द्रजी ने ऋषि की वाणी सुन और बहुत अच्छा कहकर मुनियों के सहित उस बाटिका में उतरे महामुनि जब उस स्थान में उतरे तब राजा को उनके आने का समाचार मिला।

दो०—संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भांति॥ २२०॥

फिर राजा जनकजी मुनि के आगमन का समाचार सुनते ही प्रसन्न हो, मन्त्री, गुरु, सूर, वीर, योद्धा तथा ब्राह्मणों को साथ में लेकर मुनि नायक विश्वामित्र से मिलने के लिये चले॥ २२०॥

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे॥

पृथ्वी पर सिर रख कर प्रणाम किया, तब मुनि ने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया, फिर राजा ने अपना बड़ा भारी भाग्य जान कर सब ब्राह्मणों की वन्दना की।

कुसल प्रस्न कहि बारहिं बारा। बिस्वामित्र नृपहि बैठारा॥
तेहि अवसर आए दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई॥

फिर बारम्बार कुशल प्रश्न कह कर विश्वामित्र ने राजा को बैठाया और उसी समय फुलवारी को देख कर भ्राता सहित रामचन्द्र भी आ गए।

स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा॥
उठे सकल जब रघुपति आए। बिस्वामित्र निकट बैठाए॥

अति कोमल श्याम और गौर वर्ण किशोर, नेत्रों को सुख देने वाले तथा संसार को मोहित करने वाले जब रामजी आये तो सब लोग उठ गये और विश्वामित्र ने अपने समीप बैठाया।

भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

दोनों भाइयों की अनुपम और संसार को मोहित करने वाली शोभा देख, आनन्द वश सब लोगों का शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। मधुर और चित्त को मोहित करने वाली मूर्ति देखकर विदेह और भी विदेह हो गए।

दो०–प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर॥ २२१॥

जनकजी अपने मन को प्रेम से मोहित जान उसे विवेक द्वारा स्थिर करके मुनि के चरणों को मस्तक नवाकर गद्गद वाणी से बोले॥ २२१॥

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥

कहो नाथ! सुन्दर दोनों बालक किसी मुनि कुल के तिलक हैं अथवा किसी राजकुल को पालन करने वाले हैं। जिस ब्रह्म को वेद अन्तरहित कहते हैं, मानों वही देह धारण करके आये हैं।

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ताते प्रभु पूछउं सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥

मेरा मन तो साधारण बैराग्य स्वरूप है परन्तु चन्द्रमा और चकोर के समान चकित हो रहा है। इस कारण सत्य भाव से पूछता हूं, हे नाथ! छिपाव न कीजिये।

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥

इन्हें देखने से मेरा मन बलात् ब्रह्म सुख को त्यागकर अनुराग में लिप्त हो गया। महाराज जनक की वाणी सुनकर विश्वामित्र ने हंस कर कहा कि हे राजन्! तुम्हारी वाणी असत्य नहीं है।

ये प्रिय सबहि जहां लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी॥
रघुकुल मनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए॥

ये सबको प्रिय हैं। यह वाणी सुनकर रामचन्द्र मन ही मन हंसने लगे। इस भांति रामचन्द्र की प्रशंसा करके फिर मुनि ने कहा कि, ये रघुकुलमणि दशरथजी के पुत्र हैं, मेरे हित के निमित्त राजा ने मेरे साथ इन्हें भेजा है।

दो०–रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम॥ २२२॥

इन रूप निधानों का नाम राम लक्ष्मण है, यह दोनों भाई बड़े प्रतापी और सब गुणों के धाम हैं। इन्होंने मेरी यज्ञशाला में असुरों से संग्राम करके और उन्हें जीतकर यज्ञ किया है संसार इनके कार्य का साक्षी है॥ २२२॥

मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकउं निज पुन्य प्रभाऊ॥
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनंदहू के आनंद दाता॥

विश्वामित्र के मुख से रामचन्द्र का परिचय पाकर राजा ने कहा कि, हे मुनिनाथ! आपके चरण देख, अपने पुण्य के प्रभाव का वर्णन मैं नहीं कर सकता हूं, सुन्दर श्याम और गौर रंग के दोनों भाई आनन्द देने वाले हैं।

इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥

इनकी पारस्परिक प्रीति वर्णन करते नहीं बनती और हमको बहुत अच्छी लगती है। फिर जनकजी ने कहा, हे नाथ! ब्रह्म और जीव से ऐसा स्वाभाविक स्नेह होता है।

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लवाइ नगर अवनीसू॥

यह कह और प्रेम से पुलकित होकर जनकजी रामचन्द्र को बारम्बार देखने लगे। फिर जनकजी विश्वामित्र की प्रशंसा कर और उनके चरण पर मस्तक नवाकर उन्हें नगर में ले चले।

सुंदर सदनु सुखद सब काला। तहां बासु लै दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई॥

और जो भवन सब काल में सुख देने वाला था उसी में सबको ठहराया। फिर राजा ने सब प्रकार से पूजा और सेवा कर और मुनि से विदा मांग कर अपने सदन को चले गए।

दो०—रिषय संग रघुबंस मनि करि भोजनु बिश्रामु।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु॥ २२३॥

फिर रामचन्द्र ऋषियों के संग भोजन और विश्राम कर लक्ष्मण जी के सहित बैठे। तब एक पहर दिन बाकी रह गया था॥ २२३॥

लखन हृदयं लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥

लक्ष्मण जी के हृदय में जनकपुर देखने को बड़ी अभिलाषा थी। रामचन्द्र के और मुनि के संकोच से कुछ कह नहीं सकते और मन ही मन हंसकर चुप रह जाते थे।

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हियं हुलसानी॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥

रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी के हृदय की अभिलाषा और भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए। इस कारण समय पाकर संकोच और नम्रतापूर्वक बोले और हंसकर कहा कि।

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥

हे नाथ ! लक्ष्मणजी नगर देखना चाहते हैं परन्तु उनके हृदय में आपका ऐसा संकोच है कि प्रगट नहीं कर सकते । यदि आपकी आज्ञा हो तो नगर दिखाकर तुरन्त ले आऊं ।

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती । कस न राम तुम्ह राखहु नीती ॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता । प्रेम बिबस सेवक सुखदाता ॥

रामचन्द्र की नम्र तथा विनीत वाणी को सुनकर विश्वामित्र ने कहा कि, हे राम ! तुम नीति क्यों न रक्खोगे । हे तात ! तुम धर्म सेतु की रक्षा करने वाले हो, प्रेम के वश सेवकों को बड़ाई देते हो ।

दो०—जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सबके नयन सुंदर बदन देखाइ ॥ २२४ ॥

इस प्रकार रामचन्द्र की प्रशंसा कर फिर विश्वामित्रजी कहने लगे कि, हे सुखनिधान ! दोनों भाई जाकर नगर देख आओ और अपना सुन्दर बदन दिखाकर पुरवासियों को प्रसन्न करो ॥ २२४ ॥

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता । चले लोक लोचन सुख दाता ॥
बालक बृंद देखि अति सोभा । लगे संग लोचन मनु लोभा ॥

मुनि के पद की वन्दना करके नेत्रों को सुख देने वाले दोनों भाई चले । बालक गण नेत्रों से रामचन्द्रजी की शोभा देखकर मोहित हो गए और सब उनके साथ में चलने लगे ।

पीत बसन परिकर कटि भाथा । चारु चाप सर सोहत हाथा ॥
तन अनुहरत सुचंदन खोरी । स्यामल गौर मनोहर जोरी ॥

कमर में पीताम्बर का फेटा और तरकस कसे हुए और हाथ में सुन्दर धनुष बाण सुशोभित हो रहा था । श्याम और गौर वर्ण के शरीर में चन्दन अति शोभा दे रहा था ।

केहरि कंधर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नागमनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन । बदन मयंक तापत्रय मोचन ॥

सिंह के ऐसा कन्धा और विशाल भुजा, हृदय में सुन्दर गजमुक्ता की माला, सुन्दर कान और कमल के समान नेत्र तथा तीनों तापों को नाश करने वाला चन्द्रमा के समान मुख ।

कानन्हि कनक फूल छबि देहीं । चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बांकी । तिलक रेख सोभा जनु चांकी ॥

कानों में सुवर्ण का फूल छवि बढ़ा रहा था, जिसे देखते ही चित्त मोहित हो जाता था । तिरछी चितवन और धनुषाकार भौंह और मस्तक पर तिलक श्याम घटा में तड़ित के प्रकाश की शोभा दे रहा था ।

दो०—रुचिर चौतनीं सुभग सिर मेचक कुंचित केस ।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस ॥ २२५ ॥

सिर पर चौगासिया टोपी पहन और घुंघराले केश वाले दोनों भाइयों का नख से शिखा पर्यन्त अंग अति सुन्दर दिखाता था ॥ २२५ ॥

देखन नगरु भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए ॥
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुं रंक निधि लूटन लागी ॥

और जब पुरवासियों को यह समाचार मिला कि भूप सुत रामचन्द्रजी नगर देखने आये हैं। गृह का सब काम त्याग कर इस प्रकार दौड़े कि जैसे दरिद्री धन लूटने के लिए दौड़ता है।

निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई ॥
जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं ॥

दोनों भाइयों की शोभा और सुन्दरता देख सब लोग अपने नेत्र को सफल करने लगे, और जो तरुण स्त्रियां बाहर नहीं निकलती थीं, वह खिड़कियों तथा झरोखों में खड़ी होकर अत्यन्त प्रेम से रामचन्द्र का स्वरूप देखने लगीं।

कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती ॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुं सुनि अति नाहीं ॥

और परस्पर प्रेममयी वाणी कहने लगीं कि, हे सखी! इन्होंने करोड़ों कामदेव की छवि को जीत लिया है। देवता, मनुष्य, मुनि और पाताल वासियों को भी ऐसी सुन्दरता कभी सुनने में नहीं आई।

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी ॥
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही ॥

विष्णु की चार भुजा और ब्रह्मा के चार मुंह हैं। शिवजी भी विकट वेष बनाये रहते हैं। हे सखी! संसार में ऐसा देवता कौनसा है जिसकी छवि की उपमा रामचन्द्र की छवि से दी जाय।

दो०—बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम ॥ २२६ ॥

गोरे और श्याम रंग, किशोर अवस्था की शोभा पर सैकड़ों कामदेव निछावर हो जाते हैं ॥ २२६ ॥

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी ॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी ॥

हे सखी! कौन ऐसा शरीरधारी है जो इस स्वरूप को देखकर मोहित न हो? किसी सखी ने प्रेम सहित कोमल वाणी से कहा, हे भद्रे! मैंने जो सुना है वह सुनो।

ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा ॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे ॥

ये दोनों बालक हंस के जोड़े अयोध्या नरेश महाराज दशरथ जी के पुत्र हैं। जो विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने वाले तथा संग्राम में अजय निशाचरों का संहार करने वाले हैं।

स्याम गात कल कंज बिलोचन। जो मारीच सुभुज मदु मोचन॥
कौसल्या सुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी॥

मारीच तथा सुबाहु के गर्व का नाश करने वाले, श्याम शरीर और कमल के समान जिनके नेत्र हैं। यह वही सुख राशि हाथ में धनुष और बाण लिए हुए, कौशल्या के पुत्र हैं जिसका नाम राम है।

गौर किसोर बेषु बर काछें। कर सर चाप राम के पाछें॥
लछिमनु नामु राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता॥

और जो गौर वर्ण किशोर यह सब शृंगार किये और हाथ में धनुष बाण लिए हुए, रामचन्द्रजी के, पीछे चल रहे हैं। वह उनके छोटे भाई हैं, उनका नाम लक्ष्मण है और उनकी माता का नाम सुमित्रा है।

दो०-बिप्रकाजु करि बंधु दोउ मग मुनिबधू उधारि।
आए देखन चापमख सुनि हरषीं सब नारि॥ २२१॥

मार्ग में ब्राह्मणों का कार्य कर और अहिल्या का उद्धार करके अब यहां धनुष यज्ञ देखने आये हैं यह सुनकर सब स्त्रियां अत्यन्त प्रसन्न हुईं॥ २२७॥

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई॥
जौं सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू॥

फिर रामचन्द्र जी की छवि देख कुछ स्त्रियां कहने लगीं कि, यह वर तो जानकी के योग्य है। हे सखी! यदि जनक इन्हें देखें तो अपनी प्रतिज्ञा भंग कर हठपूर्व जानकी का ब्याह कर दें।

कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई॥

फिर किसी स्त्री ने कहा कि, राजा ने उन्हें पहचान लिया है और ऋषि के सहित आदर सम्मान भी किया है, हे सखी! परन्तु राजा प्रण नहीं छोड़ते, अबिवेकी हो हठ कर रहे हैं।

कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता। सब कहं सुनिअ उचित फल दाता॥
तो जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि इहां संदेहू॥

किसी ने कहा कि, यदि ब्रह्मा अच्छे हैं और सबको उचित फल देने वाले हैं तो हम लोगों की प्रार्थना सुनेंगे। जानकी को यह वर अवश्य मिलेगा। हे सखी! इसमें संदेह नहीं है।

जौं बिधि बस अस बनै संजोगू। तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू॥
सखि हमरें आरति अति तातें। कबहुंक ए आवहिं एहि नातें॥

यदि दैव की कृपा से यह संयोग हो जाय तो हम लोग भी कृतार्थ हों, हे सखी ! मुझे इसलिए बड़ी आरति है कि इसी नाते कभी कभी यह आया करेंगे ।

दो०—नाहिं त हम कहुं सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि ।
यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि ॥ २२८ ॥

सुनो सखी ! नहीं तो हम लोगों को इनके दर्शन दुर्लभ हैं, यह संयोग तब हो सकता है जब पुराना पुण्य उदय हो तो यह सुख प्राप्त हो सकता है ।

बोली अपर कहेहु सखि नीका । एहिं बिआह अति हित सबही का ॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा । ए स्यामल मृदुगात किसोरा ॥

यह सुन एक और स्त्री बोल उठी कि, हे सखी ! तुमने ठीक कहा है, इस विवाह से सबकी भलाई है । फिर किसी ने कहा महादेवजी का धनुष भारी है, यह कोमल किशोर अवस्था के बालक हैं ।

सबु असमंजस अहइ सयानी । यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी ।
सखि इन्ह कहं कोउ कोउ अस कहहीं । बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं ॥

हे सखी ! यह बड़ी द्विविधा है । यह सुनकर एक अन्य स्त्री ने कोमल वाणी से कहा कि हे सखी ! इन्हें कुछ लोग ऐसा कहते है कि यह देखने में तो छोटे जान पड़ते हैं, परन्तु इनका प्रताप बड़ा है ।

परसि जासु पद पंकज धूरी । तरी अहल्या कृत अघ भूरी ॥
सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरें । यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें ॥

जिसके चरण रज को स्पर्श करते ही अहिल्या तर गई । क्या वह महादेव जी का धनुष नहीं तोड़ सकते, ऐसा विश्वास भूल कर भी मत त्यागना ।

जेहिं बिरंचि रचि सीय संवारी । तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी ॥
तासु बचन सुनि सब हरषानीं । ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी ॥

जिस ब्रह्मा ने जानकी जी को बनाया है उसी ने उनके निमित्त श्याम रंग का वर भी सजा है । उसका वचन सुनकर सब प्रसन्न हो गईं और कोमल वाणी से कहा कि, ऐसा ही हो ।

दो०—हियं हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद ।
जाहिं जहां जहं बंधु दोउ तहं तहं परमानंद ॥ २२९ ॥

फिर सब सुन्दरी स्त्रियां हृदय से प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करने लगीं और जहां दोनों भाई जाते वहां अत्यन्त आनन्द होने लगता ॥ २२९ ॥

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई । जहं धनुमख हित भूमि बनाई ।
अति बिस्तार चारु गच ढारी । बिमल बेदिका रुचिर संवारी ॥

इस प्रकार नगर की शोभा देखते और अपने दर्शन से पुरवासियों को आनन्दित करते हुए नगर के

पूर्व और धनुषयज्ञ का स्थान अर्थात रंगभूमि पर रामचन्द्रजी जा पहुंचे। अत्यन्त विस्तार के साथ बहुत सुन्दर गच बनी हुई थी और उनके मध्य में सुन्दर यज्ञ की वेदी बनी हुई थी।

चहुं दिसि कंचन मंच बिसाला। रचे जहां बैठहिं महिपाला॥
तेहि पाछें समीप चहुं पासा। अपर मंच मंडली बिलासा॥

और उसके चारों ओर सुवर्ण के भवन बने हुए थे, जिस पर राजे महाराजे बैठते थे और उसके पीछे पास ही में और मकान भी बने हुए थे।

कछुक ऊंचि सब भांति सुहाई। बैठहिं नगर लोक जहं जाई॥
तिन्ह के निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम बहुबरन बनाए॥

सब प्रकार के सुन्दर और कुछ ऊंचा (चौतरा) जिस पर नगर के लोग बैठते थे और उनके पास श्वेत और नाना भांति से गृह बने हुए थे।

जहं बैठें देखहिं सब नारी। जथा जोगु निज कुल अनुहारी॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥

जहां यथोचित अपने कुल के अनुसार नागरिक स्त्रियां बैठकर यज्ञ को देखें। पुरवासियों के बालक आदर सहित मधुर वाणी से रामचन्द्र को यज्ञशाला की रचना दिखाने लगे।

दो०—सब सिसु एहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरषु हियं देखि दोउ भ्रात॥ २३०॥

सब लड़के प्रेम वश होकर इसी बहाने से मन मोहिनी शरीर का स्पर्श और दर्शन करके अत्यन्त हर्षित और पुलकित हो रहे थे॥ २३०॥

सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

फिर सब बालकों को प्रेमातुर जानकर रामचन्द्र ने उन सबों का गृह पूछा। अपनी इच्छा के अनुसार सब बुला लेते थें और दोनों प्रीतिवश उनके साथ में चले जाते।

राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेष महुं भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥

और रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी को कोमल तथा मधुर वाणी से वहां की रचना दिखा रहे थे। जिसकी आज्ञा से पल मात्र में माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की रचना कर देती है।

भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुप मखमाला॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥

वही भक्तवत्सल दीनदयालु धनुष की यज्ञशाला चकित चित्त से देख रहे थे। फिर सब रचना देख और विलम्ब हुआ जानकर गुरु के समीप डरते हुए चले।

जासु त्रास डर कहुं डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं॥

जिसके भय से भय को भय उत्पन्न होता है वही भगवान भजन का प्रभाव दिखा रहे थे। उन्होंने उन सब बालकों को मधुर और कोमल वाणी से समझा बुझाकर विदा कर दिया।

दो०—सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥ २३१॥

फिर भय, प्रेम, सकुच और नम्रता पूर्वक दोनों भाई गुरु के कमल रूपी चरणों पर मस्तक नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर बैठ गए॥ २३१॥

निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥

फिर विश्वामित्रजी ने संध्या समय सबको आज्ञा दी और उन लोगों ने संध्याबंदन किया फिर कथा और इतिहास कहते हुए दो पहर रात्रि व्यतीत हुई।

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥

फिर विश्वामित्रजी ने जाकर शयन किया और लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी उनके चरण दबाने लगे। जिनके चरण कमल की प्राप्ति के लिए बैरागी तथा ज्ञानी नाना प्रकार का उपयोग किया करते हैं।

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥

वही भगवान् भ्राता सहित प्रेम के वश में गुरु विश्वामित्रजी के चरण बड़ी प्रीति से दबा रहे थे। जब बारम्बार मुनि ने आज्ञा दी तब रामचन्द्र ने जाकर शयन किया।

चापत चरन लखनु उर लाएं। सभय सप्रेम परम सचु पाएं॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

फिर लक्ष्मणजी रामचन्द्रजी के चरण अपने हृदय में लगा बहुत प्रेम और भय के साथ दबाने लगे। फिर रामचन्द्रजी बारम्बार कहने लगे कि, हे तात! शयन करो, तब लक्ष्मणजी उनके चरणकमल को हृदय में धारण कर शयन किये।

दो०—उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।
गुरते पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥ २३२॥

लक्ष्मणजी प्रातःकाल में कुक्कुट की ध्वनि सुनकर उठ गए और गुरु से पहले रामचन्द्रजी भी उठ गए॥ २३२॥

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

सबों ने शौच कर के स्नान किया और नित्य कर्म से सविकाश पाकर गुरुजी को सिर नवाया। समय विचार और गुरु की आज्ञा पाकर पुष्प लेने के निमित्त वाटिका को चले।

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहं बसंत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥

और भूप का बाग देखा जहां बसन्त ऋतु भी लुभा रही थी। नाना भांति के बहुत से मनोहर वृक्ष लगे हुए थे जिनके ऊपर सुन्दर लताएं छा रही थीं।

नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥

नवीन पत्र, पुष्प, फूलों से सुशोभित, अपने सन्मुख कल्प-वृक्षों को भी लज्जित कर रहे थे। पपीहा, कोकिल, शुक्र और चकोर इत्यादि पक्षी सुहावनी बोली बोल रहे थे और सुन्दर मोर नाच रहे थे।

मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥

बाग के मध्य में सरोवर सुशोभित हो रहा था, जिसकी सीढ़ियां मणियों से बनी हुई थी। निर्मल जल में भिन्न-भिन्न प्रकार के कमल विकसित हो रहे थे, जिन पर भ्रमरों का झुण्ड गुञ्जार कर रहा था।

दो०--बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत॥ २३३॥

बाग और सरोवर देखकर भाई सहित प्रभु रामचन्द्रजी प्रसन्न हुए। यह बाग अत्यन्त रमणीक था, जो रामचन्द्रजी को सुखदाई प्रतीत हुआ॥ २३३॥

चहुं दिसि चितइ पूंछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहं आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥

फिर चारों ओर देख और मालियों से पूछ हर्षित होकर पत्र और पुष्प लेने लगे और उसी समय में माता की भेजी हुई पार्वतीजी की पूजा करने के लिए जानकी जी भी आ गईं।

संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मनु मोहा॥

साथ में चतुर और सुन्दर सखियां मधुर स्वर से गान कर रही थीं। उसी सरोवर के निकट ही पार्वती जी का अवर्णनीय सुन्दर मन्दिर सुशोभित हो रहा था, जिसके देखने से मन मोहित हो जाता था।

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥

फिर जानकीजी ने सखी सहित सरोवर में स्नान कर सबके सहित प्रसन्न होकर पार्वतीजी के मन्दिर में प्रवेश किया और बहुत प्रेम से पार्वतीजी का पूजन कर अपने अनुरूप सुन्दर पति मांगा।

एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥

और जानकी जी को एक सखी उनके साथ से अलग होकर फुलवारी देखने चली गई थी। पहले उसी ने दोनों भाइयों को देखा और प्रेम से विवश होकर जानकी जी के निकट चली गई।

दो०--तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन॥ २३४॥

उस सखी को पुलकित शरीर और नेत्रों में जल देखकर सब सहेलियां उस से पूछने लगीं कि, हे प्यारी! हम लोगों से भी अपनी प्रसन्नता का कारण वर्णन करो॥ २३४॥

देखन बागु कुअंर दुइ आए। बय किसोर सब भांति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

तब उस सखी ने कहा कि, कोमल शरीर और किशोर अवस्था के दो राजकुमार उपवन देखने के निमित्त आये हैं। गोरे और श्याम वर्ण की उपमा मैं किस प्रकार वर्णन करूं? क्योंकि जिह्वा को नेत्र नहीं और नेत्रों को जिह्वा नहीं।

सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हियं अति उतकंठा जानी॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि संग आए काली॥

यह सुनकर सब चतुर सखियां जानकी के हृदय की उत्कण्ठा जानकर प्रसन्न हो गईं। फिर एक सखी ने कहा कि, हे सखी! वे वही राजकुमार हैं जिन्हें कल सुना था कि मुनि के साथ में आये हैं।

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥
बरनत छबि जहं तहं सब लोगू। अवसि देखि अहिं देखन जोगू॥

जिन्होंने अपने रूप की मोहिनी डाल नगर के स्त्री पुरुषों को अपने अधीन कर लिया और जिनकी छवि सब लोग जहां तहां वर्णन कर रहे हैं। उनको अवश्य देखिए, वे देखने के ही योग्य हैं।

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥

उस सखी की वाणी जानकी जी को बहुत अच्छी लगी और दर्शन के लिए नेत्र घबराने लगे। फिर जानकीजी उसी प्यारी सखी को आगे करके चलीं और पुरानी प्रीति किसी को विदित न हो सकी।

दो०-सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जन सिसु मृगी सभीत॥ २३५॥

नारदजी का वचन स्मरण कर पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई और चारों ओर भयभीत बालमृगी के समान देखने लगीं॥ २३५॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयं गुनि॥
मानहुं मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहं कीन्ही॥

जानकीजी का कंगन, करधनी और पाजेब का शब्द सुन कर रामचन्द्रजी अपने हृदय में विचार कर लक्ष्मणजी से कहने लगे कि, मुझे ऐसा विदित हो रहा है कि मानो नगाड़ा बजा कर कामदेव ने संसार को विजय करने का विचार किया है।

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुं सकुचि निमि तजे दिगंचल॥

लक्ष्मणजी से कह कर रामचन्द्रजी ने फिर उस ओर देखा जिस ओर से पहले आभूषणों का शब्द सुनाई पड़ा था और उस ओर दृष्टिपात करते ही जानकी जी के मुख-रूपी चन्द्रमा से रामचन्द्रजी के चकोर-रूपी नेत्रों का साक्षात् हो गया और सुन्दर नेत्र ऐसे स्थिर हो गए, मानों महाराज निमि ने लज्जित होकर रामचन्द्र की पलक पर से अपना निवास छोड़ दिया।

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयं सराहत बचनु न आवा॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहं प्रगटि देखाई॥

जानकी जी की शोभा देखकर रामचन्द्रजी ऐसे प्रसन्न हुए कि मुख से वाणी तक न निकली और मन ही मन उनके स्वरूप की प्रशंसा करने लगे। मानों ब्रह्मा ने जानकी जी को बनाकर अपनी सब निपुर्णता का परिचय संसार को दे दिया है।

सुंदरता कहुं सुंदर करई। छबिगृहं दीपसिखा जनु बरई॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी॥

जिनकी शोभा सुन्दरता को भी सुशोभित करने वाली थी, तथा छवि रूपी भवन में दीपक की ज्योति के समान प्रकाशित हो रही थी। सम्पूर्ण उपमा कवियों ने झूठी कर रखी है। जानकी जी की उपमा किस से दूं।

दो०-सिय सोभा हियं बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचिमन अनुजसन, बचन समय अनुहारि॥ २३६॥

रामचन्द्रजी अपने हृदय में जानकी की शोभा का वर्णन कर और अपनी दशा विचार कर लक्ष्मणजी से पवित्र हृदय से समयानुसार वचन बोले॥ २३६॥

तात जनक तनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लेइ आई। करति प्रकासु फिरइ फुलवाई॥

हे भाई! यह वही जनक-कन्या है जिसके कारण धनुष यज्ञ होने वाला है। पार्वतीजी की पूजा करने के लिए सखियों को साथ लेकर आई हैं और फुलवारी में प्रकाश करती हुई घूम रही है।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
जो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥

जिसकी अलौकिक (अद्भुत) शोभा को देखने से साधारण मेरा पवित्र मन मोहित हो गया। हे भाई! वह सब कारण ब्रह्मा जाने परन्तु मेरा शुभ सूचक अंग फड़क रहा है।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहु परनारि न हेरी॥

रघुवंशियों का ऐसा प्रभाव है कि भूल कर भी कुपंथ में पदार्पण नहीं करते और मुझे भी ऐसा विश्वास है कि जिसने स्वप्न में दूसरों की स्त्रियों पर दृष्टिपात तक नहीं किया।

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर जग थोरे माहीं॥

जो संग्राम में पीठ नहीं दिखाते और न दूसरे की स्त्री पर दृष्टि डालते हैं और जिससे भिक्षुक विमुख नहीं होता ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसार में थोड़े हैं।

दो०—करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान॥ २३७॥

लक्ष्मणजी से इस प्रकार बात करते हुए जानकीजी के स्वरूप पर मोहित होकर उनके कमल मुख के मकरन्दरूपी छवि का पान भौंरे के समान कर रहे थे॥ २३७॥

चितवति चकित चहूं दिसि सीता। कहं गए नृपकिसोर मनु चिंता॥
जहं बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहं बरिस कमल सित श्रेनी॥

जानकीजी चारों ओर चिंतित और चकित चित्त से रामचन्द्रजी को ढूंढ रही थीं। जिस स्थान पर वह बालमृग नयनी दृष्टिपात करती थी उस स्थान पर मानों श्वेत कमलों के समूह की वृष्टि होने लगती थी।

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

फिर उसी समय श्याम और गौरवर्ण किशोर अवस्था के सुन्दर दो राजकुमारों को बेलियों के मध्य में सखियों ने दिखाया। उनका स्वरूप देखकर नेत्रों को ऐसा हर्ष उत्पन्न हुआ जैसा अपने परम प्यारे पति को देखकर होता है।

थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूं परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहं देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

और फिर उस मनोहर छवि को देखकर जानकीजी ने अपने नेत्रों पर पलक का गिराना रोक दिया और एक टक उन्हें देखने लगीं। अत्यन्त प्रीतिवश देह की सुधि भूल कर इस प्रकार देखने लगीं जैसे शरद ऋतु के चन्द्रमा को चकोरी देखती है।

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ॥

और नेत्र-रूपी मार्ग अपने हृदय-मन्दिर में रामचन्द्र को ले आकर, पलक-रूपी द्वार को बन्द कर दिया। जब सखियों को जानकीजी का प्रेम प्रकट हुआ तो कुछ कह न सकीं, पर मन ही मन संकुचित हुई।

दो०—लताभवन त प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ॥ २३८ ॥

उसी समय में लता भवन से रामचन्द्रजी दोनों भाई इस प्रकार निकल आये मानों मेघ पटल को विदीर्ण करके अत्यन्त निर्मल दो चन्द्रमा उदय हो गए। ॥ २३८ ॥

सोभा सीवं सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा ॥
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ॥

दोनों भाइयों का श्याम और पीले कमल के समान शरीर अगाध सुन्दरता की छवि दे रहा था। मोर पंख का मुकुट जिसके बीच बीच में पुष्प की कलियों का गुच्छा लगा हुआ था, ऐसा मुकुट मस्तक पर धारण किए हुए।

भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए ॥
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे ॥

और ललाट पर तिलक तथा थकावट से पसीने का बिन्दु और कानों में सुन्दर आभूषण पहिने हुए, धनुष के समान भौंहें, मस्तक पर घुंघराले बाल और नवीन अरुण कमल के समान नेत्र।

चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला ॥
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥

सुन्दर नाक, ठुड्ढी तथा गाल और हास्य विलास चित्त को मोह लेता था। मुख की कान्ति मुझ से वर्णन नहीं हो सकती, जिसे देखकर अपरिमित कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं।

उर मनि माल कंबु कल गीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा ॥
सुमन समेत बाम कर दोना। सावंर कुअंर सखी सुठि लोना ॥

शंख के समान सुन्दर कण्ठ, हृदय पर मणियों की माला और अथाह बल से परिपूर्ण, हाथी के बच्चे की सूंड के समान भुजा और बाएं हाथ में सुगन्धित पुष्प का दोना लिये हुए, सखी! श्याम रंग का कुंवर तो अत्यन्त सुन्दर है।

दो०—केहरि कटि पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान ॥ २३९ ॥

सिंह के समान पतली कमर में पीताम्बर लपेटे, सुन्दर तथा शील सागर रामचन्द्र को देखते ही सब सखियां अपने देह की सुधि भूल गई ॥ २३९ ॥

धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू ॥

फिर एक चतुर सखी सावधान होकर और जानकीजी का हाथ पकड़कर कहने लगी, कि पार्वती जी का ध्यान फिर कर लेना, इस समय राजपुत्रों को क्यों नहीं देख लेती हो।

सकुचि सीयं तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंध निहारे ॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा ॥

जब जानकीजी ने संकोच सहित नेत्र खोल दिए और अपने सामने सिंह रूपी दो रघुवंशियों को खड़े पाया। फिर रामचन्द्र के सम्पूर्ण शरीर की शोभा देख और जनकजी का प्रण स्मरण कर हृदय में बहुत दुःख उत्पन्न हुआ।

परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता ॥
पुनि आउब वहि बेरिआं काली। अस कहि मन बिहसी एक आली ॥

जानकीजी को इस प्रकार पराधीन देखकर सब सखियां भयभीत होकर कहने लगीं कि बड़ा विलम्ब हुआ। फिर एक सखी ने कहा कि, हे सखी ! कल इसी समय फिर आऊंगी, यह कह फिर मन में हंसने लगी।

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ विलंबु मातु भय मानी ॥
धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनउ पितु बस जाने ॥

उस सखी की गूढ़ वाणी सुन जानकीजी लज्जित हो गई और देर जान माता का भय उत्पन्न हो गया। धैर्य धारण कर और अपने को पिता के अधीन जान रामचन्द्र का ध्यान करती हुई फिर वहां से चलीं।

दो०—देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥ २४० ॥

परन्तु रामचन्द्र की छवि और सुन्दरता देख कर इतना प्रेम उत्पन्न हो गया कि पशु, पक्षी तथा वृक्षों को देखने के बहाने से बारम्बार चारों ओर घूम-घूम कर उनको देखने लगीं और जितना ही उन्हें देखतीं उतना ही प्रेम भी अधिक उत्पन्न होता ॥ २४० ॥

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखी उर स्यामल मूरति ॥
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी ॥

फिर महादेवजी के धनुष की कठिनता स्मरण कर और रामचन्द्रजी के श्याम स्वरूप का हृदय में ध्यान करती हुई अपने देह की सुधि भूलकर चलने लगीं, जब रामचन्द्र ने सुख और शोभा की राशि जानकीजी को जाते हुए देखा तब।

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित भीतीं लिखि लीन्ही॥
गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी॥

अत्यन्त प्रेम-रूपी स्याही से अपने कोमल हृदय-रूपी पट पर सुन्दर चित्र बना लिया। फिर जानकीजी वहां से पार्वतीजी के मन्दिर में चली गईं और उनकी वन्दना कर हाथ जोड़ कर बोलीं।

जय जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी॥
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता॥

हे गिरिराज कुमारी! आपकी जय हो! जय हो!! जय हो!! हे महादेवजी के मुखचंद्र की चकोरी! जय हो! हे गणेश तथा स्वामि कार्तिक की माता! आपकी जय हो! हे विद्युत की कांति के समान शरीर वाली जगज्जननी! आपकी जय हो!

नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्ववस बिहारिनि॥

हे माता? आपके आदि, मध्य तथा अन्त की थाह किसी को नहीं मिली और वेद भी आपके अनन्त प्रभाव को नहीं जानते। आप उत्पत्ति और स्थिति नाश करने, संसार को मोहित करने और स्वाधीन विहार करने वाली हो।

दो०—पतिदेवता सुतीय महुं मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहि कहि सहस सारदा सेष॥ २४१॥

हे माता? पतिव्रता स्त्रियों में सबसे प्रथम आपकी गणना होती है। आपकी अनन्त महिमा का वर्णन हजारों सरस्वती और शेष भी नहीं कर सकते॥ २४१॥

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारि पिआरी॥
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥

आपकी सेवा करने से चारों पदार्थ की प्राप्ति होती है। आप महादेवजी की परम प्यारी तथा सेवकों को मनोवांछित फल देने वाली हो। हे देवी? आपके कमल रूपी चरण की पूजा करके सब देवता, मनुष्य, मुनि सुखी होते हैं।

मोर मनोरथु जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें॥
कीन्हेउं प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेहीं॥

आप सबके मन्दिर-रूपी हृदय में निवास करने वाली हैं। मेरी अभिलाषा आपसे छिपी नहीं है, इस कारण मैंने प्रगट नहीं किया है। यह कह कर जानकीजी ने चरण पकड़ लिए।

बिनय प्रेमबस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥
सादर सियं प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हियं भरेऊ॥

विनती सुन पार्वती ने प्रेम-वश होकर हंस दिया और उनकी माला गिर पड़ी और जानकीजी ने आदर से उस प्रसाद को हृदय पर धारण कर लिया। तब हृदय से प्रसन्न होकर पार्वतीजी कहने लगीं।

सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी ॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा ॥

हे जानकीजी सुनो ! मेरा सत्य आशीर्वाद सुनो, तुम्हारी सब मनोकामना पूर्ण होगी, नारदजी की वाणी सदा पवित्र और सत्य है। जिस वर की इच्छा है वही वर मिलेगा।

छं०—मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सांवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो ॥
एहि भांति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियं हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली ॥ २३१ ॥

जिस वर की इच्छा है वही श्याम वर्ण का साधारण सुन्दर वर मिलेगा, करुणानिधान (रामचन्द्र) सब कुछ जानने वाले हैं, तुम्हारा शील और स्नेह जानते हैं। इस प्रकार पार्वतीजी का आशीर्वाद सुन कर सब सखियों के सहित जानकीजी हृदय में प्रसन्न हो गईं और फिर पार्वतीजी की बारम्बार पूजा करके प्रसन्न होती हुई गृह को चली गईं ॥ ३२ ॥

सो०—जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे ॥ २१ ॥

पार्वतीजी को अपने ऊपर प्रसन्न जानकर जानकीजी को जैसा हर्ष उत्पन्न हुआ, वह वर्णन नहीं हो सकता और उनका मंगलदायी बायां अङ्ग फड़कने लगा ॥ २६ ॥

हृदयं सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ॥

जब जानकीजी वहां से चली गईं, तब रामचन्द्रजी अपने मन में उनकी कोमलता की प्रशंसा करते हुए दोनों भाई विश्वामित्र के यहां चले। रामचन्द्रजी ने विश्वामित्र से वहां का सब समाचार कपट रहित पवित्र मन से वर्णन कर दिया।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही ॥
सुफल मनोरथ होहुं तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भए सुखारे ॥

फिर विश्वामित्रजी ने पुष्प लेकर पूजा की और दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि "तुम लोगों की मनोकामना पूर्ण" यह सुन रामचंद्र और लक्ष्मणजी प्रसन्न हो गए।

करि भोजनु मुनिबर बिग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥
बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई ॥

और भोजन के बाद विज्ञानी मुनि विश्वामित्र प्राचीन इतिहास वर्णन करने लगे। फिर दिन व्यतीत होने पर विश्वामित्र से आज्ञा लेकर दोनों भाई संध्या करने के लिए चले गए।

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥

और पूर्व दिशा में सुहावने चन्द्रमा का उदय जानकीजी के मुख के समान देख प्रसन्न हुए। फिर हृदय में सोचने लगे कि जानकीजी के मुख की कांति के समान चंद्रमा की कांति नहीं है।

दो०—जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक॥ २४२॥

समुद्र से उत्पत्ति, विष भाई, दिन में मलीन होने वाला और कलंक सहित दरिद्री चंद्रमा जानकीजी के मुख की शोभा कैसे पा सकता है। ऐसे दरिद्र चन्द्रमा की तुलना जानकीजी के मुख से नहीं हो सकती॥ २४२॥

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥

क्योंकि यह तो नित्य घटता बढ़ता रहता है और वियोगियों को दुःख देता और अपने संधि के अनुसार राहु इसे भय देता है, चकोर और कमल को शोक देने वाले, हे चंद्रमा! तुझमें बहुत अवगुण हैं।

बैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे॥
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी। गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी॥

इस कारण जानकीजी के मुख से उपमा देने में बड़ा अनुचित और दोष होगा, इस प्रकार रामजी जानकीजी के मुख की छवि को चंद्रमा के बहाने से वर्णन कर अधिक रात्रि व्यतीत जान गरु के यहां चले।

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा॥
बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे॥

मुनि के कमल-रूपी चरण को प्रणाम कर और उनकी आज्ञा पाकर विश्राम करने लगे। रात्रि व्यतीत होने पर रामचंद्रजी उठे और भाई को देखकर इस प्रकार कहने लगे।

उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता॥
बोले लखनु जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी॥

हे तात! कमल, चकोर और सब लोगों को सुख देने वाला अरुन उदय हो गया। लक्ष्मणजी दोनों हाथ जोड़ कर कोमल वाणी से बोले कि यह आपके प्रभाव की सूचना है

दो०—अरुनोदयं सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन॥ २४३॥

जिस प्रकार अरुणोदय होने से कुमुदिनी सम्पुटित होने लगी और तारागणों की ज्योति क्षीण हो गई उसी प्रकार आपका आगमन सुन कर राजाओं का बल भी घट गया॥ २४३॥

नृप सब नखत करहिं उजिआरी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥

तारागण रूपी सब राजा उजाला करते हैं परंतु धनुष-रूपी महाअंधकार दूर नहीं कर सकते हैं। कमल, चकवा, भ्रमर और अनेक पक्षी रात बीतने से प्रसन्न हुए।

ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटें धनुष सुखारे॥
उयउ भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥

हे प्रभु! ऐसे ही धनुष टूटने से तुम्हारे सब भक्त सुखी होंगे! सूर्य उदय होने से बिना परिश्रम ही अंधकार का नाश हो गया, नक्षत्र छिप गए, जगत् में तेज का प्रकाश हुआ।

रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया॥
तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥

हे रघुनाथजी! सूर्यनारायण ने अपने उदय के निमित आपका प्रताप सब राजाओं को दिखाया है। आपके भुजाओं के बल की महिमा जो उदयाचल की घाटी के समान है। उसको प्रगट करने के लिए यह धनुष तोड़ने की रीति चली है, धनुष तोड़ने से सब राजाओं को आपका बल प्रगट हो जायेगा कि कितना बल है।

बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने॥
नित्यक्रिया करि गुरु पहिं आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए॥

भाई के वचन सुन प्रभु रामजी मसुकाये, फिर शौच से निवृत होकर स्वभाव से ही पवित्र प्रभु ने स्नान किया। नित्य क्रिया कर गुरु के पास आये और सुन्दर चरण कमलों में सिर नवाये।

सतानंदु तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए॥
जनक बिनय तिन्ह आइ सुनाई। हरषे बोलि लिए दोउ भाई॥

तब शतानन्द को जनकजी ने बुलाया और तुरंत विश्वामित्रजी के समीप भेज दिया। जनकजी की विनती उन्होंने आकर सुना दी, जिसे सुन विश्वामित्रजी प्रसन्न हुए और दोनों भाइयों को बुला लिया।

दो०—सतानन्द पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ॥ २४४॥

शतानन्दजी के चरणों को प्रणाम कर प्रभु (रामचंद्रजी) गुरु विश्वामित्रजी के निकट बैठ गए, तब मुनि ने कहा कि, हे तात! चलो जनकजी ने बुला भेजा है॥ २४४॥

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई॥
लखन कहा जस भाजनु सोई। नाथ कृपा तव जापर होई॥

सीताजी का स्वयंवर चलकर देखिए, न जाने ईश्वर किसको बड़ाई देता है। यह सुन कर लक्ष्मणजी बोले कि, "हे नाथ! वही यश का पात्र होगा, जिस पर आपकी कृपा होगी।"

हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुषमख साला॥

सब मुनि लक्ष्मणजी की सुन्दर वाणी को सुन प्रसन्न हुए और सब लोगों ने सुख मान उन्हें अशीश दी फिर कृपालु रामचन्द्रजी मुनिगणों के साथ यज्ञ शाला देखने चले।

रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी॥

रंग भूमि में दोनों भाई आए, यह सुधि सब पुरवासियों ने पाई। तब सब घर का काम छोड़कर बालक,युवा, वृद्ध, नर, नारी सब कोई देखने चले।

देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हंकारी॥
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥

राजा जनक ने देखा कि भीड़ बहुत बढ़ गई, तब अपने शुद्ध सेवकों को बुलाया और उनको आज्ञा दी कि तुरंत सब लोगों के पास जाओ और सबको यथा योग्य आसन दो।

दो०—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि॥ २४५॥

अब सब सेकवों ने कोमल और मधुर वाणी से विनय पूर्वक सब उत्तम, मध्यम, नीच लघु सब पुरुष और स्त्रियों को अपने अपने योग्य स्थान के अनुसार बिठा दिया॥ २४५॥

राजकुंअर तेहि अवसर आए। मनहुं मनोहरता तन छाए॥
गुन सागर नागर बर बीरा। सुन्दर स्यामल गौर सरीरा॥

उसी समय राजकुमार राम लक्ष्मणजी मानों मनोहरता की छवि छाये हुए आ गए। सब गुणों के समद्र और बांके वीर तथा सुंदर सांवले गोरे शरीर वाले।

राज समाज बिराजत रूरे। उडगन महुं जनु जुग बिधु पूरे॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मुरति तिन्ह देखी तैसी॥

राजाओं के समाज में राम लक्ष्मण ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो तारा गणों के बीच दो पूर्ण चंद्रमा विराजमान हैं। जिनके मन में जैसी भावना थी, प्रभु की मूर्ति उसने वैसी ही देखी।

देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुं बीर रसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारि। मनहुं भयानक मूरति भारी॥

जो राजा रणधीर थे वे देखने लगे, क्या देखा मानो वीर रस वही इस सभा में दो रूप धारण कर के आ गए हैं। जो खोटे राजा थे उन्होंने प्रभु को देखा तो डर गए।

रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥

जो असुर छल से राजाओं के वेष में बैठे थे उन्होंने प्रभु को प्रत्यक्ष काल के तुल्य देखा। जनकजी के पुरवासियों ने दोनों भाइयों को मनुष्यों में शिरोमणि और नेत्रों को सुख देने वाले के समान देखा।

दो०—नारि बिलोकहिं हरषि हियं निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥ २४६॥

स्त्रियां प्रसन्न मन से अपनी-अपनी रुचि के अनुसार देखने लगीं, तो उन्होंने यह देखा कि मानों शृंगार रस बहुत मूर्ति धारण किये शोभायमान है॥ २४६॥

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥

पण्डितों ने प्रभु को विराट रूप में देखा कि बहुत से मुख, चरण, हाथ, नेत्र और शिर हैं जनक के कुटुम्बी लोग ऐसे देखने लगे जैसे अपने सगे सम्बन्धी प्यारे लगते हैं।

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥

जनक सहित रानी ने प्रभु को पुत्र के समान देखा, जिसका प्रेम वर्णन नहीं किया जा सकता। योगियों को परमतत्व भासित हुए और संतों के शुद्ध मन में स्वभाव से ही प्रकाश करने वाले जान पड़े।

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
रामहि चितव भायं जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥

हरि भक्तों ने दोनों भाइयों को इष्ट देव और सबको सुख देने वाले के समान देखा। रामचन्द्रजी को जिस भाव से सीताजी देख रही थीं, वह स्नेह और सुख कहा नहीं जा सकता।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥

जो अपने हृदय में आनन्द का अनुभव करता है उसको वह भी नहीं कह सकता, कोई कवि किस प्रकार वर्णन कर सके। इस प्रकार जिसके हृदय में जैसा भाव रहा उसने कौशलराज रामजी को उसी के अनुसार देखा।

दो०—राजत राज समाज महुं कोसलराज किसोर।
सुन्दर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥ २४७॥

राजाओं के समाज में अयोध्या के राजकुमार विराजमान थे, जो सुन्दर सांवले और गोरे शरीर वाले और संसार के नेत्रों को चुराने वाले थे॥ २४७॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥

दोनों मूर्ति स्वभाव से ही मन को हरने वाली थीं, करोड़ों कामदेव की उपमा दी जाय तो उनकी मनोहरता के सामने छोटी है। शरद ऋतु के निर्मल चन्द्रमा की निन्दा करने वाला सुन्दर मुख और कमल के समान मन को हरने वाले सुहावने जिनके नेत्र थे।

चितवनि चारु मार मनु हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥

उनकी सुन्दर चितवनि कामदेव के घमण्ड को हरने वाली थी जो मन को अच्छी लगती थी, परन्तु कही नहीं जाती। सुन्दर गोल और चिकने गाल, कानों में हिलते हुए मकराकृति कुण्डल धारण किए, ठोढ़ी और सुन्दर होंठ तथा कोमल जिनका वचन था।

कुमुदबंधु कर निंदक हांसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥

चन्द्र किरणों की निन्दा करने वाली जिनकी हंसी थी, टेढ़ी भौहें और मन हरने वाली नासिका थी। चौड़े मस्तक पर तिलक झलक रहे थे, केशों को देख भौरों की पांति लज्जित हो जाती है।

पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥
रेखें रुचिर कंबु कल गीवां। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवां॥

पीले रंग की चौगसिया टोपी मस्तकों पर सुशोभित थी, जिनके बीच बीच में फूलों की कली गुही हुई थी, शंख के समान सुन्दर कंठ में तीन रेखायें ऐसी शोभा दे रही थीं मानों तीनों लोकों की सुन्दरता की सीमा है।

दो०—कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल॥ २४८॥

गजमुक्ताओं का सुन्दर कंठा गले में पहरे, हृदय पर तुलसी की माला धारण किए वृषभ के समान ऊंचा कंधा और सिंह के समान चाल, बल के निधि और भुजायें जिनकी विशाल थी॥ २४८॥

कटि तूनीर पीत पट बांधें। कर सर धनुष बाम बर कांधें॥
पीत जग्य उपवीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए॥

कटि में तर्कस और पीताम्बर बांधे, हाथ में बाण और बायें कंधे पर धनुष धरे, महीन वस्त्र से पीले रंग का जनेऊ चमक रहा था, नख से शिखा पर्यन्त सुन्दर अंग महा शोभायमान थे।

देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥

दोनों की ऐसी उत्तम छवि देख सब लोग सुखी हुए, नेत्र एक टक उन्हीं की शोभा को देखने लगे और टारे नहीं टरते थे। जनकजी ने दोनों भाइयों को देख प्रसन्न हो विश्वामित्रजी के चरण कमल जाकर छुए।

करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई॥
जहं जहं जाहिं कुअंर बर दोऊ। तहं तहं चकित चितव सबु कोऊ॥

और स्तुति करके सब कथा सुनाकर रङ्ग भूमि की सब रचना मुनि को दिखा दी। जहां जहां दोनों राजकुमार जाते थे, वहां वहां सब कोई चकित होकर उन्हें देखने लगते थे।

निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजां मुदित महासुख लहेऊ॥

अपनी-अपनी रुचि के अनुसार लोगों ने रामचन्द्र को देखा परन्तु इसका भीतरी भेद किसी ने कुछ नहीं जाना। मुनि ने राजा से कहा कि, "रंग भूमि की रचना बहुत अच्छी हुई है।" यह सुन जनकजी प्रसन्न हो सुखी हुए।

दो०—सब मंचन्ह तें मंचु एक सुन्दर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहं बैठारे महिपाल॥ २४९॥

सब सिंहासनों से एक सिंहासन बहुत सुन्दर और उज्ज्वल और जो बड़ा था उस पर राजा जनकजी ने मुनि सहित दोनों भाइयों को बिठा दिया॥ २४९॥

प्रभुहि देखि सब नृप हियं हारे। जनु राकेस उदय भएं तारे॥
असि प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥

प्रभु रामजी को देख सब राजा मन में हार गए, जैसे पूर्ण चन्द्रमा के उदय होने से तारा गणों की छवि छीण हो जाती है, यह विश्वास सबके मन में हो गया कि रामचन्द्रजी धनुष तोड़ेगें, इसमें संशय नहीं है।

बिनु भंजेहुं भव धनुषु बिसाला। मेलेहि सीय राम उर माला॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गवांई॥

शिवजी के बड़े धनुष को बिना तोड़े भी सीताजी रामचन्द्रजी के गले में जयमाला डाल देंगी। ऐसा विचार कर हे भाइयों! यश, प्रताप, बल और तेज को खोकर अपने घर को जाओ।

बिहसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी॥
तोरेहुं धनुषु ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरें को कुअंरि बिआहा॥

यह सुन दूसरे राजा, जो कि ज्ञान से अंधे और अभिमानी थे, हंसने लगे कि तोड़ने पर भी ब्याह होना कठिन होगा, भला बिना धनुष तोड़े, कौन सीताजी को ब्याह सकता है।

एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने॥

एक बार काल भी क्यों न हो, सीता के निमित्त समर में हम लोग उसको भी जीत लेंगे। यह सुन कर और राजा जो धर्मात्मा, हरि भक्त और चतुर थे, वे मुसुकाये।

सो०—सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बांकुरे॥

और बोले कि सब राजाओं का अहंकार दूर करके सीता जी को रामचन्द्रजी विवाहेंगे। इनको संग्राम में कौन जीत सकता है। ये दशरथ के कुमार लड़ाई में बांके हैं॥ ३०॥

ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई॥
सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियं सीता॥

वृथा गाल बजा कर मत करो, मन के लड्डुओं से भूख नही बुझती। हमारी बहुत पवित्र सीख सुनकर सीताजी को अपने मन में जगत् की माता जानों।

जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥
सुन्दर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु संभु उर बासी॥

रामचन्द्र जी को जगत् के पिता विचार कर नेत्र भर के इनकी सुन्दर छवि देख लो। सुंदर और सुख देने वाले सब गुणों की राशि ये दोनों भाई शिवजी के हृदय में वास करने वाले हैं।

सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजलु निरखि मरहु कत धाई॥
करहु जाइ जा कहुं जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फलु पावा॥

अमृत का समुंद्र तट छोड़कर मृग तृष्णा को जल देख क्यों दौड़े मरते हो? जिसको जो अच्छा लगे सो जाकर करो, हमने तो आज अपने जन्म लेने का फल पाया है।

अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना॥

ऐसे कहकर अच्छे राजा प्रेम से राम लक्ष्मण का अनुपम रूप देखने लगे। देवता आकाश में अपने २ विमान पर चढ़कर देखते और फूलों की वर्षा तथा सुंदर गान करते हैं।

दो०—जानि सुअवसरु सीय तब पठइ जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुन्दर सकल सादर चलीं लवाइ॥ २५०॥

तब सुंदर समय जानकर सीता जी को जनक जी ने बुला भेजा, तो चतुर और सुंदर रूप वाली सब सखियां सीताजी को आदर सहित लिवाय ले चलीं॥ २५०॥

सिय सोभा नहीं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागी॥

सीता जी की शोभा बखानी नहीं जाती, जो जगत् की माता रूप गुण की खानि हैं। मुझको सब उपमायें छोटी लगती हैं, क्योंकि वह साधारण स्त्रियों के अङ्ग में अनुरागी हैं।

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहां कमनीया॥

सीता जी के वर्णन में उस उपमा को दे कुकवि कहा कर कौन अपयश लेवे ? जो संसारी स्त्री के साथ सीता जी की उपमा दी जाये तो जगत् में ऐसी सुन्दर स्त्री कहां है ?

गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥

सरस्वती मुखर है और पार्वती जी अर्द्धाङ्गी, रति अपने पति कामदेव को शरीर से हीन जान बहुत दुःखित है। विष और वारुणी जिसके प्यारे बन्धु ऐसी लक्ष्मी के साथ सीता जी की उपमा कैसे दी जाय।

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥

जो छवि रूपी अमृत का समुद्र हो और वही परम रूपमय कछुआ हो। शोभा रूपी रस्सी श्रृंगार रूपी मन्दराचल हो तथा कामदेव अपने कमल समान हाथों से मथे।

दो०—एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥ २५१॥

इस प्रकार सुन्दरता और सुख की मूल लक्ष्मी जब उत्पन्न हो तो भी कवि जन सकुचा कर सीता जी को लक्ष्मी के समान कह सकते हैं॥ २५१॥

चलीं संग लै सखीं सयानी। गावत गीत मनोहर बानी॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥

चतुर सखी जानकी को हरने वाली संगीत गाती हुई चलीं। नवीन शरीर पर सुन्दर साड़ी शोभायमान थी, जगत् की माता श्री जानकी जी अप्रमाण और भारी छवि रूप हो रही थीं।

भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥

सब गहने यथा-स्थान जो जहां चाहिए उस अङ्ग में सखियों ने रचकर पहिराये हैं। जब रंग भूमि में सीता जी ने चरण रक्खा तो उनके रूप को देखकर नर नारी मोहित हो गये।

हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाईं। बरषि प्रसून अपछरा गाईं॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला॥

प्रसन्न होकर देवताओं ने नगाड़े बजाये और फूलों की वर्षा कर अप्सरायें गीत गाने लगीं। कमल समान हाथों में जयमाला लिये हुए औचक सब राजाओं की ओर देखा।

सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥

सीता जी ने मन में घबरा रामचन्द्र जी को देखा, यह देख सब राजा मोह के बस हो गए। विश्वामित्र मुनि के समीप बैठे दोनों भाई को देखते ही ललक कर नेत्र ऐसे लग गए मानों खजाना पा गये।

दो०—गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि॥ २५२॥

एक तो बड़े जनों की लाज दूसरे बड़ी समाज देखकर सीता जी सकुचा गई श्रीरामचन्द्र जी को हृदय में धर कर सखियों के शरीर की ओर देखने लगीं॥ २५२॥

राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं॥

रामजी का रूप और सीता जी की छवि देख नर नारियों ने पलक मारना छोड़ दिया। जनक-नगर के नर नारी सब सोचते थे परन्तु कहते हुए सकुचाते थे और मन ही मन विधाता से विनय कर रहे थे।

हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिबाहू॥

कि हे विधाता! राजा जनक की जड़ता को शीघ्र ही हर लो और हमारी जैसी ही सुन्दर बुद्धि दो। बिना बिचारे अपना प्रण छोड़ राजा जनक जी श्री सीता और राम का विवाह कर देवें।

जगु भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हें अंतहुं उर दाहू॥
एहिं लालसां मगन सब लोगू। बरु सांवरो जानकी जोगू॥

जगत् भला कहेगा और सबको अच्छा लगेगा, हठ करने से अन्त को मन में दाह होगा इसी लालसा में सब लोग मग्न थे कि सांवरा वर जानकी के योग्य है।

तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरिदावली कहत चलि आए॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हियं हरषु न थोरा॥

तब जनक ने बंदीजनों को बुलवाया, वे वंशावली बखानते हुए वहां आये। उनसे कहा कि मेरा प्रण जाकर सबको सुना दो, आज्ञा सुन भाट मन में प्रसन्न हो राजाओं के समीप चले।

दो०—बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥ २५३॥

बन्दी जन सुन्दर वचन बोले कि हे बड़े राजाओं! सुनो, महाराज जनक के प्रण को हम लोग ऊंची भुजा उठाकर कहते हैं॥ २५३॥

नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवंहिं सिधारे॥

राज ाओं की भुजाओं के बलरूपी चंद्रमा को शिवजी का धनुष राहू है, गरुआ है, कठोर है यह तो सब को विदित है। रावण बाणासुर आदि बड़े भारी योद्धा शिव धनुष देख चुप के यहां से चले गये।

सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥

वही शिवजी का यह कठोर धनुष है उसको आज के दिन इस राजसभा में जो कोई तोड़ेगा। तो त्रैलोक्य विजय सहित जानकी बिना बिचारे हठकर उसको वरेंगी।

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे॥
परिकर बांधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई॥

जनक के प्रण को सुन सब राजा धनुष तोड़ने के अभिलाषी हुए, जो अभिमानी योद्धा थे वे मन में बहुत क्रोधित हुए। अपनी-अपनी फेंट बांध अकुलाय कर उठे और इष्ट देवताओं को शिर नवा कर चले।

तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भांति बलु करहीं॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥

तमक-तमक और तक-तक कर शिवजी के धनुष को पकड़ते और करोड़ों प्रकार के बल करते परन्तु धनुष नहीं उठता। जिन राजाओं के मन में कुछ ज्ञान था वे राजा धनुष के निकट नहीं जाते।

दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुं पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ॥ २५४॥

मूर्ख राजा तमक कर धनुष को उठाते थे, जब नहीं उठता था तब लजाकर चल देते थे। मानों योद्धाओं के भजाओं का बल पाकर शिव धनुष अधिक भारी हो जाता था॥ २५४॥

भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥
डगइ न संभु सरासनु कैसें। कामी बचन सती मनु जैसें॥

दश हजार राजा एक ही बार उठाने लगे पर वह धनुष टारे नहीं टरा। उन राजाओं से शिवजी का धनुष कैसे नहीं डिगता, जैसे सती स्त्री का मन कामी मनुष्यों के वचन से नहीं डिगता।

सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसें बिनु बिराग संन्यासी॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥

सब राजा ऐसे हंसी के योग्य हुए, जैसे बिना बैराग्य का संन्यासी हंसी के योग्य हो जाता है, यश, विजय और बड़ी वीरता से सब धनुष से हार कर चले।

श्रीहत भए हारि हियं राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥

और शोभा रहित हो राजा लोग हृदय में हार मान अपने-अपने समाज में आकर बैठ गये। राजाओं को देख राजा जनक जी अकुला गए और ऐसे वचन बोले मानो क्रोध से युक्त हों।

दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥

द्वीप-द्वीप के अनेकों राजा मेरे प्रण को सुन कर यहां आए। देवता, दैत्य, मनुष्य शरीर धारण किए बहुत से वीर रणधीर यहां आये हैं।

दो०—कुअंरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥ २५५॥

कुमारी सीता जी परम सुन्दर हैं और विजय भी बड़ी तथा सुयश भी बहुत अच्छा है परन्तु इन को पाने वाला और धनुष तोड़ने वाला मानो ब्रह्मा ने पृथ्वी पर नहीं रचा है॥ २५५॥

कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुं न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छुड़ाई॥

कहो किसको यह लाभ अच्छा नहीं लगा? किसी ने इस शिव धनुष को नहीं चढ़ाया। हे भाईयों! चढ़ाना और तोड़ना तो एक तरफ रहा, तिल भर पृथ्वी नहीं छुड़ा सके।

अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥

अब कोई अपने को योद्धा मानकर क्रोध न करे, बिना वीर की पृथ्वी मैंने जान ली, आशा छोड़ दो और अपने-अपने घर जाओ, ब्रह्मा ने जानकी विवाह ही नहीं लिखा।

सुकृत जाइ जौं पनु परिहरऊं। कुअंरि कुआरि रहउ का करऊं॥
जौं जनतेउं बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेउं न हंसाई॥

जो अपना प्रण छोड़ दूं तो पुण्य क्षीण हो जाय जानकी क्वांरी रहे मैं क्या करूं! हे भाई! जो पहले से मैं पृथ्वी वीर विहीन जानता तो प्रण करके अपनी हंसी न कराता।

जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥
माखे लखनु कुटिल भइं भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥

राजा जनक के वचन को सुन सब नर नारी जानकी को देख दुखी हुए और लक्ष्मण जी को क्रोध आ गया, भौंहें टेढी हो गई, होंठ फरकने लगे मारे रिस के नेत्र लाल हो गये।

दो०—कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान॥ २५६॥

रामजी के भय से लक्ष्मणजी कुछ कह नहीं सकते, परन्तु जनकजी के वचन बाण के समान लगे इस कारण रामजी के चरण कमलों में माथा नवाकर उचित वाणी बोले॥ २५६॥

रघुबंसिन्ह महुं जहं कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥

रघुवंशियों में जहां कोई बैठा रहता है उस समाज में कोई ऐसी कठोर बात नहीं कहता जैसी जनक ने रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्री राम जी को बैठे जान कर के भी अयोग्य बात कही है।

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउं सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥

हे सूर्य वंश रूपी कमल को खिलने में सूर्य के समान प्रभु! सुनो, अपने स्वभाव से कहता हूं। अभिमान से नहीं कहता हूं जो आपकी आज्ञा पाऊं तो गेंद के समान ब्रह्माण्ड को उठा लूं।

काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउं मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥

और कच्चे घड़े के समान फोड़ डालूं तथा सुमेरु पर्वत को मूली की जड़ के समान तोड़ डालूं। हे भगवान्! आपके प्रताप और महिमा से यह पुराना धनुष क्या वस्तु है।

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

हे नाथ! ऐसा जान आज्ञा दीजिए तो मैं जो कौतुक करूंगा उसे आप देखियेगा। कमल की डण्डी की नाईं धनुष को चढ़ाऊं और सौ योजन तक लेकर दौड़ जाऊं।

दो०—तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥ २५७॥

हे नाथ! तुम्हारे प्रताप के बल से फूल के डण्डी के समान इस धनुष को तोड़ डालूं जो ऐसा न करूंगा तो प्रभु के चरणों की सौगन्ध है, धनुष को फिर हाथ ही में न लूं॥ २५७॥

लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हियं हरषु जनकु सकुचाने॥

लक्ष्मण जी क्रोध सहित जब यह बचन बोले तब पृथ्वी डगमगा गयी और दिग्गज डोल गये और सब राजा डर गये, सीताजी मन में प्रसन्न हुई और राजा जनक भी सकुचा गए।

गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं॥
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥

विश्वामित्र जी, रामचन्द्रजी और सब मुनि जन अपने मन में प्रसन्न हो गए और बारम्बार रोमांचित होने लगे। रामचन्द्र जी ने इशारे से लक्ष्मण जी को निवारण कर सहित अपने पास बिठा लिया।

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

जब विश्वामित्र मुनि ने अच्छा समय जाना तब बहुत प्रेम से कोमल वचन बोले हे राम! उठो शिव धनुष को तोड़ो और जनक जी का दुःख दूर करो।

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएं। ठवनि जुबा मृगराजु लजाएं॥

गुरु का वचन सुन कर चरणों में शिर नवाया, मन में हर्ष विषाद, कुछ नहीं आया सहज स्वभाव से उठ खड़े हुए, जिसको देखकर तरुण सिंह भी लज्जित हो जाता है।

दो०–उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥ २५८॥

मंचरूपी उदयाचल पर्वत पर रामचन्द्र रूपी प्रभात काल के सूर्य के उदय होते ही कमलों के समान सब भक्त जनु प्रफुलित हो गये और भ्रमर समान उनके नेत्र आनन्द युक्त हो गये॥ २५८॥

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥

राजाओं की आशा रूपी रात्रि नष्ट हो गई और उनके वचन रूपी तारागण छिप गये अभिमानी राजारूपी कुमुद सकुचा गये और कपटी राजारूपी उल्लू छिप गये।

भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥
गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मागा॥

मुनि और देवता रूपी चक्रवाक शोक-रहित हुए और फूलों की वर्षा करके अपनी-अपनी सेवा जनाने लगे। विश्वामित्र के चरणों को प्रणाम कर प्रेम सहित रामजी ने मुनियों से आज्ञा मांगी।

सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥
चलत राम सब पुर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥

सब जगत् के स्वामी रामचन्द्रजी सहज ही मतवाले गजराज के समान सुन्दर चाल से चले। रामचन्द्र के चलते ही नगर के सब नर नारी पुलकित हो सुखी हुए।

बंदि पितर सुर सुकृत संभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहुं रामु गनेस गोसाईं॥

अपने पिता और देवताओं को प्रणाम कर अपने पुण्यों को स्मरण कर बोले कि जो हमारे पुण्यों का प्रभाव हो तो शिवजी का धनुष कमल डण्डी के समान, हे गणेश स्वामी श्री रामचन्द्र जी तोड़ डालें।

दो०–रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ॥ २५९॥

रामचन्द्रजी को प्रेम सहित देख कर सखियों को अपने समीप बुलाया सीता जी की माता और प्रीति के वश दुखी होकर कहने लगीं कि ॥ २५९ ॥

सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक असि हठ भलि नाहीं॥

हे सखी ! सब खेल के देखने वाले हैं जो हमारे हितू कहाते हैं। राजा से समझा कर कोई नहीं कहता कि यह बालक है ऐसा हठ अच्छा नहीं है।

रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुअंर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥

रावण और बाणासुर ने जिस धनुष को नहीं छुआ और सब राजा बल करके हार गये वही शिव धनुष राजकुमार के हाथ में देते हैं, भला हंस के बच्चे क्या मन्दराचल को उठा सकते हैं।

भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥

राजा की सब चतुरता जाती रही हे सखी ! विधाता की गति कुछ जानी नहीं जाती। यह सुन चतुर सखी कोमल वाणी से बोली कि हे रानी ! तेज वालों को छोटा मत गिनो।

कहं कुंभज कहं सिंधु अपारा। सोषेउ सुजसु सकल संसारा॥
रबि मंडल देखत लघु लागा। उदयं तासु तिभुवन तम भागा॥

कहां अगस्य मुनि ! कहां अपार समुद्र ! उसको शोष लिया यह सुयश संसार में प्रकट है। सूर्यमण्डल देखने में छोटा लगता है, लेकिन उसके उदय होने से तीनों लोक का अन्धकार दूर हो जाता है।

दो०—मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुं बस कर अंकुस खर्ब॥ २६० ॥

मन्त्र बहुत छोटा होता है जिनके वश में ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सब देवता रहते हैं, तथा बड़े मतवाले गजराज को छोटा अंकुश वश में कर लेता है ॥ २६० ॥

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपनें बस कीन्हे।
देबि तजिअ संसउ अस जानी। भंजब धनुषु राम सुनु रानी॥

कामदेव ने फूलों का ही धनुष बाण लिया है कि जिससे सब लोक अपने वश में कर लिये हैं। हे देवि ! ऐसे जान सन्देह दूर करो, सुनो रानी ! रामजी धनुष को तोड़ेंगे।

सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती।
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयं बिनवति जेहि तेही॥

सखी का वचन सुन रानी को विश्वास हुआ, दुःख दूर हो गया और रामजी पर बहुत स्नेह बढ़ा। तब रामजी को देख सीताजी भयर हित मन में जिस तिस की विनती करने लगीं।

मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥

मन ही मन मनाकर अकुला गईं और बोलीं कि "हे महादेव पार्वती भवानी मझ पर प्रसन्न हो।" अपनी सेवकाई सफल करो और मेरा हित करके धनुष का भारीपन हरो।

गननायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउं तुअ सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥

हे वरदायक गणेश देवता! आज तक इसी हेतु तुम्हारी सेवा की है। बार-बार मेरी विनती सुनकर धनुष की गरुआई बहुत थोड़ी करो।

दो०—देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥ २६१॥

रामचन्द्र जी के कोमल शरीर को देखकर धीरज धरके देवताओं को मनाने लगीं नेत्रों में प्रेम जल भर आया, शरीर में पुलकावली छा गई॥ २६१॥

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥

भली भांति नेत्रों भर शोभा को देखा फिर पिता के प्रण को स्मरण कर मन में दुःख हुआ। खेद है कि पिता ने यह कठिन हठ ठाना है, कुछ लाभ और हानि को वह नहीं समझते हैं।

सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहं धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहं स्यामल मृदुगात किसोरा॥

कोई मंत्री भी भय के मारे सीख नहीं देता, बुधजनों के समाज में यह बड़ी अनचित बात होती है कहां यह धनुष वज्र से भी कठोर होना चाहता है और कहां सांवरे शरीर वाले बालक।

बिधि केहि भांति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभुचाप गति तोरी॥

हे विधाता! किस प्रकार अपने मन में धीरज धरूं? कहीं सिरस का फूल भी हीरा में छेद कर सकता है। सब सभा की बुद्धि भोली हो गई है, हे शिव धनुष! अब मैं तुम्हारी शरण में हूं अथवा अब मुझको तुम्हारा ही भरोसा है।

निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥

हे धनुष! अपनी जड़ता मनुष्यों पर डाल और रामजी की ओर निहार तुम हलके हो जाओ, सीता जी के मन में ऐसा दुःख हुआ कि पलक बन्द करना और खोलना सौ युग के समान व्यतीत होने लगा।

दो०—प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥ २६२॥

प्रभु की ओर देख फिर पृथ्वी की ओर देखने में श्रीजानकी के चंचल नेत्र ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानों खेल करती हुई कामदेव रूपी दो मछलियां चंद्र-मण्डल रूपी हिंडोले में झूल रही हैं॥ २६२॥

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥

वाणी रूपी भौंरा मुख रूपी कमल में रुक गया, लाज रूपी रात को देख प्रगट नहीं हो सका। नेत्रों का काजल नेत्रों के कोनों में ही रह गया, जैसे कंजूस का सोना उसके पास गांठ में ही बंधा रहता है।

सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी॥
तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥

फिर अपने में बड़ी व्याकुलता जानकर सकुच गई और धीरज धर मन में विश्वास लाई जो तन मन वचन से मेरा प्रण सच्चा है और रघुनाथ जी के चरण कमलों में मन लगा है।

तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

तो सबके हृदय में वास करने वाले भगवान् मुझको रामचंद्र जी की दासी करेंगे जिसका जिस पर सच्चा स्नेह है वह उसको मिलता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥

रामचन्द्र जी की ओर देख प्रेम का प्रण ठाना सो कृपानिधान राम ने सब जान लिया रामचंद्रजी ने सीता की ओर देख फिर धनुष को इस प्रकार देखा जैसे गरुड़ छोटे सर्प को देखता है।

दो०—लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंडु।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांडु॥ २६३॥

लक्ष्मण जी ने देखा रघुवंश भूषण श्रीरामचंद्र जी ने शिवजी के धनुष की ओर देखा तो पुलकायमान हो ब्रह्माण्ड को चरण से दबा कर बोले—पहले बोले थे तो पृथ्वी कांप गई थी, इस कारण पृथ्वी को चरण से दबा कर बोले कि॥ २६३॥

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥

हे अष्ट दिग्गजों! हे कूर्म! शेष! हे वाराह जी! इस धरती को धीरज धरकर धारण करो डोलने न पावे। इस समय श्री रामचंद्रजी शिवजी के धनुष को तोड़ना चाहते हैं इस कारण मेरी आज्ञा सुनकर सब लोग सावधान हो जाओ।

चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महिपन्ह कर अभिमानू॥

धनुष के निकट जब रामचंद्र जी आये तब वहां के नर नारियों ने देवता और अपने-२ सुकृत को मनाया। सब स्त्री पुरुषों का संदेह अज्ञान, तथा मूर्ख राजाओं को अभिमान।

भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥

परशुरामजी के अहंकार का भारीपन और देवताओं तथा मुनिवरों की कायरता। सीता जी को सोचना और जनक का पछताना तथा रानियों का कठिन दुःखरूपी दावानल।

संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू॥

शिवजी के धनुष को बड़ी नाव के समान पाकर सब संग बना उस पर जा चढ़े रामजी की भुजाओं का बल अपार समुद्र है उसको पार जाना चाहते है परन्तु कोई केवट नहीं है।

दो०—राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितईं सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि॥ २६४॥

रामचंद्र जी ने सब लोगों की ओर देखा तो सब चित्र लिखे से देख पड़े फिर कृपानिधान ने सीता की ओर देखा तो जान लिया कि वह बहुत व्याकुल हैं॥ २६४॥

देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएं करइ का सुधा तड़ागा॥

जब सीता जी को बहुत ही व्याकुल देखा, कि एक निमिष कल्प के समान बीत रहा है तब रामजी ने मन में विचार किया कि प्यासे ने बिना जल के जो शरीर छोड़ दिया तो मरने पर अमृत का तालाब क्या कर सकेगा।

का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥
अस जियं जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥

जब खेती सूख गई वर्षा होने से क्या! तथा समय पर चूक जाने से क्या होता है। ऐसे मन में जान और जानकी जी की विशेष प्रीति को देख पुलकायमान हुए।

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवं उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ॥

गुरु विश्वामित्र जी को मन ही मन प्रणाम किया और बहुत सहज में धनुष को उठा लिया। उठाते ही धनुष ऐसा चमका कि जैसे बिजली बादल में चमक कर उसी में लय हो जाती हैं, और फिर आकाश मंडल एक ही हो गया।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुं न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

लेते चढ़ाते किसी ने भली-भांति नहीं देखा सब खड़े देखते रहे। उसी क्षण में रामजी ने धनुष तोड़ डाला, उसी समय महाघोर और कठोर शब्द तीनों लोकों में भर गया।

छं०—भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥ ३३॥

सब भुवनों में भयंकर कठोर शब्द भर गया जिसको सुन सूर्य के घोड़े मार्ग छोड़ भागने लगे और दिग्यज चिंग्घारने लगे, पृथ्वी हिलने लगी, शेष, वाराह और कच्छप कलमलाने लगे, देवता, असुर मुनि-गण कानों में हाथ दिये सब विकल होकर विचारने लगे जब जाना कि रामजी ने शिव धनुष तोड़ा। तुलसीदास जी कहते हैं तब सब लोग जय वचन उच्चारने लगे॥ ३३॥

सो०—संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु।
बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस॥ ३१॥

रामचन्द्र के बाहु बल रूपी समुन्द्र में शिवजी के धनुष रूपी जहाज पर जो पहले अज्ञान वश चढ़े थे उनका सब समाज डूब गया। और "बूड़ेउ सकल जहाज" यह लिखकर गोसाई जी की लेखनी रुक गई, तब हनुमान जी ने प्रेरणा की "चढ़े जो प्रथमहि मोहबस" अर्थात् जो पहिले मोहवश धनुष रूपी जहाज पर चढ़े थे उनका सब समाज डूब गया॥ ३१॥

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥

प्रभु ने धनुष को दो खण्ड करके पृथ्वी पर डाल दिया तब यह देख सब लोग सुखी हुए। विश्वामित्र का रूप पवित्र सुन्दर है जिसमें प्रेम रूपी अथाह जल शोभायमान है।

रामरूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना॥

रामचन्द्र जी का रूप पूर्ण चन्द्रमा के समान देखकर पुलकावलिरूपी ऊंची तरंगे बढ़ने लगीं, आकाश में आनन्द के बाजे बजने लगे और अप्सरायें गान करने लगीं।

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा॥
बरिसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किंनर गीत रसाला॥

ब्रह्मा आदिक देवता सिद्ध और मुनीश्वर रामचन्द्रजी की बड़ाई करने लगे, आशीर्वाद देने लगे, अनेक रंग के फूलों की माला वर्षाने लगे और किन्नर रसीले गीत गाने लगे।

रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुषभंग धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहं तहं नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी॥

ब्रह्माण्ड भर में जय जय वाणी भर गई, धनुष टूटने की ध्वनि जानी नहीं जाती। प्रसन्न होकर जहां तहां नर नारी कहने लगे कि रामजी ने शिव का भारी धनुष तोड़ डाला।

दो०—बंदी मागध सूतगन विरुद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर॥ २६५॥

चतुर भाट, मागध और सूतगण यश बखानने लगे और सब लोग निछावर करने लगे घोड़े, हाथी, धन, मणि और वस्त्र देने लगे॥ २६५॥

झांझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहं तहं जुबतिन्ह मंगल गाए॥

झांझ, मृदंग, शंख, नफीरी, ढोल और नगाड़े बजने लगे और भी अनेक प्रकार के सुहावने बाजे बजने लगे और जहां तहां स्त्रियां परम मंगल गीत गाने लगीं।

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई॥

सखियों समेत सब रानियां प्रसन्न हुईं मानों सूखते हुए धानों पर पानी पड़ा, राजा जनक ने सोच को छोड़ कर ऐसा सुख पाया मानों तैरते हुए थक जाने वाले को थाह मिल गया।

श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसें दिवस दीप छबि छूटे॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भांती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥

धनुष टूटने से दुष्ट राजा ऐसे शोभा हीन हुए जैसे दिन में दीपक छवि के टूटने से हो जाता है। सीता जी के हृदय का सुख किस प्रकार वर्णन किया जाय! जैसे चातकी स्वाती का जल पाकर सुखी हो जाती है वैसे ही सीता जी ने सुख पाया।

रामहि लखनु बिलोकत कैसें। ससिहि चकोर किसोरकु जैसें॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीतां गमनु राम पहि कीन्हा॥

रामचन्द्र जी को लक्ष्मण जी कैसे देखते थे जैसे चन्द्रमा को चकोर का बच्चा देखता है। तब शतानन्द ने आज्ञा दी तो सीताजी रामचन्द्र जी के पास चलीं।

दो०—संग सखीं सुन्दर चतुर गावहिं मंगलाचार।
गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार॥ २६६॥

संग में चतुर सखियां मंगल गाती हुई जा रही थीं सीताजी उस समय हंस की छोनी की सी मन्द गति से गमन कर रही थीं, जिनके अङ्गों की अपार शोभा वर्णन नहीं हो सकती॥ २६६॥

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई॥

सखियों के बीच सीताजी कैसी शोभायमान लगती थीं जैसे शोभा के समूह के बीच में महा शोभा लगती हो और कर कमलों में जय माला शोभायमान थी मानों इसी पर संसार के विजय की शोभा छा रही है।

तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू॥
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥

शरीर में लाज, मन में बड़ा उत्साह और गूढ़ प्रेम किसी को देख नहीं पड़ता। निकट आय रामचन्द्र जी की शोभा देख कुंवरि (सीताजी) मानों लिखे हुए चित्र के समान रह गईं।

चतुर सखीं लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥

तब चतुर सखी ने समझाकर कहा कि यह सुहावनी जयमाला 'रघुनाथजी' को पहिराओ यह सुनते ही दोनों हाथ से जयमाल उठायी परन्तु प्रेम के वश पहिराते नहीं बनती।

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियं जयमाल राम उर मेली॥

उस समय ऐसी शोभा हो गई मानों नील सहित दो प्रफुलित कमल चन्द्रमा को भय सहित जय माला देते हुए सुशोभित हों। इस छवि को देख कर सखियां गाने लगीं कि 'सिया जयमाला राम उर मेली' यह सुनते ही सीता जी ने रामचन्द्र जी के गले में जयमाला पहिरा दी।

सो०—रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन॥ ३२॥

रामचन्द्रजी के गले में जयमाला देखकर देवता फूल वर्षाने लगे और सब राजा ऐसे सकुचा गए जैसे सूर्य को देखकर कुमुदों का समूह कुम्हिला गया हो॥ ३२॥

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे॥
सुर किंनर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥

नीचे नगर में और ऊपर आकाश में बाजे बजने लगे, दुष्टजन उदास हुए और सब साधुजन प्रसन्न हुए। देवता, किन्नर, नर, नाग और मुनीश्वर सब लोग जय बोल प्रभु को आशीर्वाद देने लगे।

नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं। बार बार कुसुमांजलि छूटीं॥
जहं तहं बिप्र बेद धुनि करहीं। बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं॥

देवताओं की नवीन स्त्रियां नाचने और गाने लगीं और बारम्बार फूलों की लड़ियां वर्षाने लगीं ब्राह्मण लोग जहां तहा वेदध्वनि करने लगे, वन्दीजन वंश की कीर्ति बखानने लगे।

महि पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥
करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी॥

पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग में यश छा गया कि राम ने सीता को स्वीकार किया और कठिन धनुष को तोड़ा। जनक नगर के सब नर नारी आरती करने लगे और वित्त से अधिक निछावर देने लगे।

सोहत सीय राम कै जोरी। छबि सिंगारु मनहुं एक ठोरी॥
सखीं कहहिं प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥

सीता और राम की जोड़ी ऐसी शोभायमान लगती थी मानों छवि शृंगार दोनों आकर एक ठोर मिल गए हैं। सखी कहती थी कि हे माता ! प्रभु के चरण छुओ, परन्तु सीता जी चरण नहीं छती थीं अति भयभीत सी खड़ी थीं।

दो०—गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥ २६७॥

गौतम की स्त्री (अहिल्या) की गति का स्मरण करके चरणों को हाथ से नहीं छती यह अलौकिक प्रीति जानकर श्री रामचन्द्रजी मन में हंसे ॥ २६७॥

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहं तहं गाल बजावन लगे॥

तब सीता को देख राजा लोग अभिलाषा करने लगे और कपूत मूर्ख राजा मन में क्रोधित हुए। अभागे अपने मञ्च पर उठ कर कवच पहिर जहां तहां गाल बजाने लगे।

लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बांधहु नृप बालक दोऊ॥
तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई। जीवत हमहि कुअंरि को बरई॥

उनमें कोई बोला कि सीता को छीन लो और दोनों नृपबालकों को पकड़ कर बांध लो। धनुष तोड़ने से चाह पूरी नहीं होगी, हमारे जीते कुंवरि को कौन वर सकता है।

जौं बिदेहु कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई॥
साधु भूप बोले सुनि बानी। राजसमाजहि लाज लजानी॥

जो जनकजी कुछ सहायता करें तो लड़ाई में उनको भी दोनों भाइयों सहित जीत लो। साधु राजा यह वाणी सुनकर बोले इस राज सभा को लाज भी लजा गई।

बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥
सोइ सूरता कि अब कहुं पाई। असि बुधि तौ बिधि मुहं मसि लाई॥

यह प्रताप, वीरता, बड़ाई और नाक धनुष के साथ ही चली गई वही शूरता है कि जो धनुष टूटने से पहले थी या अब कहीं पायी है ? ऐसी बुद्धि है इसी से तो ब्रह्मा जी ने तुम्हारे मुख पे स्याही लगा दी।

दो०—देखहु रामहि नयन भरि तजि इरिषा मदु कोहु।
लखन रोषु पावकु प्रबल जानि सलभ जनि होहु॥ २६६॥

ईर्ष्या, मद और मोह को छोड़कर रामचन्द्रजी को नयन भरके देख लो, लक्ष्मण जी के क्रोधरूपी प्रचण्ड अग्नि में जान बूझकर तुम पतङ्ग मत बनो।

बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब संपदा चहै सिवद्रोही॥

गरुण के भाग को जैसे कौआ चाहे और सिंह के भाग को जैसे मृणाल चाहे जैसे बिना कारण क्रोध करने वाला कुशल चाहे और शिवजी से द्रोह करने वाला सुख सम्पदा चाहे।

लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा॥

लोभी और लम्पट कीर्ति चाहे और कामी अकलंकता चाहे तो क्या मिल सकती है? तथा हरि भगवान् के चरणों से विमुख मुक्ति चाहे ऐसे ही हे राजाओं तुम्हारा यह लालच है।

कोलाहलु सुनि सीय सकानी। सखीं लवाइ गईं जहं रानी॥
रामु सुभायं चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥

राजाओं के कोलाहट को सुन सीताजी भयभीत हो गईं तब सब सखियां उन्हें रानी के यहां लेकर चली गईं। रामजी सीधे स्वभाव से सीताजी के प्रेम को मन में सराहते गुरु के समीप चले।

रानिन्ह सहित सोचबस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया॥
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। लखनु राम डर बोलि न सकहीं॥

रानियों के सहित सीताजी इस सोच के वश हुई कि अब न जाने विधाता को क्या करना है। लक्ष्मणजी राजाओं के वचन को इधर उधर देखने लगे परन्तु रामचन्द्र जी के डर से बोल नहीं सके।

दो०—अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवन नृपन्ह सकोप।
मनहुं मत्त गजगन निरखि सिंघकिसोरहि चोप॥ २६१॥

नेत्र लाल हो गये भौंहें टेढ़ी हो गई राजाओं को ऐसे क्रोध सहित देखने लगे जैसे मतवाले हाथियों का झुण्ड देखकर सिंह के बच्चे को उमङ्ग होता है॥ २६६॥

खरभरु देखि बिकल पुर नारीं। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं॥
तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥

हलचल देखकर नर नारी व्याकुल हो गये और सब मिल राजाओं को गाली देने लगे उसी समय शिव धनुष का टूटना सुन भृगुकुल रूपी कमल के सूर्य के श्री परशुराम जो वहां आ पहुंचे।

देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥

उनको देख सब राजा ऐसे सकुचा गये जैसे बाज की झपट से लवा छिप जाते हैं। गोरा शरीर उसमें सुन्दर भस्म शोभायमान और विशाल भाल पर त्रिपुण्ड विराजमान हो रहा था।

सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुं चितवत मनहुं रिसाते॥

शिर पर जटा और चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख रिस के वश कुछ लाल हो रहा था। भौहें टेढी हो रही थीं, नेत्रों में रिस छा रही थी, जिसे स्वाभाविक दृष्टि से भी देखते वह यही जानता था कि यह क्रोधित हो रहे हैं।

वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बांधें। धनु सर कर कुठारु कल कांधें॥

वृषभ ऐसा ऊंचा कन्धा, लम्बी भुजायें, सुन्दर जनेऊ और रुद्राक्ष की माला पहिरे और मृगछाला लिये, कमर में मुनियों के से वस्त्र, दो तरकस बांधे, धनुष बाण हाथ में लिए और सुन्दर कन्धे पर फरसा धरे हुए।

दो०—सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयउ जहं सब भूप॥ २७०॥

साधु के समान वेष और करनी कठिन ऐसे स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता जहां सब राजा थे वहां मानों मुनि का शरीर धारण करके वीर रस आ गया हो॥ २७०॥

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥

परशुराम जी का भयंकर रूप देखते ही भय से व्याकुल होकर सब राजा उठ खड़े हुए पिता सहित अपना नाम कहकर सब दण्डवत प्रणाम करने लगे।

जेहि सुभायं चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आइ खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥

जिसको हित जानकर साधारण दृष्टि से भी देखते थे वह जानता था कि मेरी आयु घट गई। फिर जनकजी ने आकर शिर नवाया और सीता जी को बुलाकर प्रणाम कराया।

आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं। निज समाज लै गईं सयानीं॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥

परशुराम जी ने आशीर्वाद दिया तब वह चतुर सखी प्रसन्न हो अपने समाज में ले गई। फिर विश्वामित्र जी आकर मिले और दोनों भाईयों का चरण कमलों में मेल कर प्रणाम कराया।

राम लखनु दशरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥

और कहा कि राम लक्ष्मण महाराज दशरथ के पुत्र हैं यह सुन सांवली और गोरी सुन्दर जोड़ी को परशुराम जी ने आशीश दी। रामचन्द्र जी को देखकर परशुराम जी के नेत्र थक गये, क्योंकि श्री रामचन्द्र का रूप अपार कामदेव के अभिमान को दूर करने वाला था।

दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर ॥ २७१ ॥

फिर देखकर जनकजी से कहा कि यह बहुत भीड़ कैसी हो रही है ? जान कर भी अन्जान की नाईं पूछते हुए शरीर में क्रोध भर गया ॥ २७१ ॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे ॥

तब राजा जनक ने सब समाचार कह सुनाया कि जिस कारण सब राजा लोग वहां आए थे। राजा का वचन सुन फिर दूसरी ओर देखने लगे तो वहां धनुष को दो खण्ड पृथ्वी पर पड़ा देखा।

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउं महि जहं लहि तव राजू ॥

अब अत्यन्त क्रोध करके कठोर बचन बोले कि हे, जड़ जनक ! कहो इसको किसने तोड़ा है। हे मूर्ख ! शीघ्र दिखा नहीं तो आज जहां तक तेरा राज्य है पृथ्वी को उलट पलट किये देता हूं

अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥

राजा जनक बहुत डर कर उत्तर नहीं देते, यह देखकर खोटे राजा मन में प्रसन्न हुए। देवता, मुनि नाग और नगर के स्त्री पुरुष शोच करने लगे, सबको मन में भय हुआ।

मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब संवरी बात बिगारी ॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता ॥

सीता जी की माता मन में पछताने लगीं। विधाता ने सँभाल कर भी सब बात बिगाड़ दी परशुराम जी का स्वभाव सुन सीता जी को आधे पल का लगना कल्प के समान बीतने लगा।

दो०—सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयं न हरषु बिषादु कछु बोले श्रीरघुबीरु ॥ २७२ ॥

सब लोगों को भयभीत देख और जानकी जी को दुखित जानकर, हृदय में हर्ष विषाद रहित हो इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी बोले ॥ २७२ ॥

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ॥

हे नाथ ! शिवजी के धनुष को तोड़ने वाला कोई एक तुम्हारा सेवक होगा। क्या आज्ञा है, मुझसे क्यों नहीं कहते ? यह सुनते ही क्रोधी मुनि परशुराम जी रिसा कर बोले।

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई ॥
सुनहु राम जेहिं सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ॥

सेवक वह है जो सेवा करे और जो शत्रु का काम करे उससे तो लड़ाई ही करना चाहिये सुनो राम ! जिसने शिवजी का धनुष तोड़ा है वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा ॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने ॥

वह इस समाज को छोड़ अलग खड़ा हो जाये नहीं तो सब राजा मारे जायेंगे। मुनि का यह वचन सुन लक्ष्मण जी मुसुकाये और परशुराम जी के वेष का अपमान करते हुए बोले।

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुं न असि रिस कीन्हि गोसाईं ॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू ॥

बाल्यावस्था में मैंने बहुत से धनुष तोड़े, पर हे गोसाईं ? तब ऐसा क्रोध आपने कभी नहीं किया। इस धनुष पर ऐसी प्रीति किस कारण है ! यह सुन क्रोधित हो परशुराम जी बोले।

दो०—रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न संभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार ॥ २७३ ॥

रे राजपुत्र ! काल के वश है, तुझे बोलने में संभार नहीं है क्या शिवजी का धनुष धनुही के समान है ? जो सब संसार में विख्यात है ॥ २७३ ॥

लखन कहा हंसि हमरें जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें ॥

लक्ष्मण जी ने हंसकर कहा, हे देव ! सुनो मेरे जान में सब धनुष समान हैं। इस पुराने धनुष को तोड़ने से क्या हानि लाभ है ? इसको रामचन्द्र जी ने नये के धोके से देखा था।

छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू ॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥

वह तो छते ही टूट गया, रामजी का दोष नहीं है। हे मुनि ! बिना काम क्यों क्रोध करते हो ? यह सुन परशुराम फरसे की ओर देखकर बोले, रे शठ तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना है।

बालकु बोलि बधउं नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही ॥

बालक जानकर मैं तुझको नहीं मारता हूं, रे जड़ ! तूने मुझको केवल मुनि ही जाना, मैं बाल-ब्रह्मचारी अति क्रोधी हूं और संसार में प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल का द्रोही हूं।

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही।
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥

मैंने अपनी भुजाओं के बल से बहुत बार पृथ्वी बिना राजाओं की करके ब्राह्मणों को दे दी। हे राजकुमार ! सहस्रबाहु की भुजाओं को काटने वाला यह कुठार तू देख ले।

दो०–मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर॥ २७४॥

हे राजकुमार! अपने माता पिता को तू शोच के वश मत कर, यह मेरा कठिन और कुठार गर्भिणियों का गर्भपात करने वाला है॥ २७४॥

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूंकि पहारू॥

यह सुन लक्ष्मण जी हंसकर कोमल वचन बोले कि हे मुनीश्वर! आप बड़े योद्धा और अभिमानी हो। बारम्बार मुझको कुठार दिखाकर फूंक से पहाड़ उड़ाना चाहते हो।

इहां कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥

यहां कोई कुम्हड़ा की बतियां नहीं है जो अंगूठे के पास की अंगुली को देखते ही कुम्हिला जाये आपका कुठार और धनुष बाण देख मैंने अभिमान सहित कुछ कहा था।

भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउं रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई॥

भृगुवंशी ब्राह्मण समझ और जनेऊ देख जो कुछ आपने कहा उसको क्रोध रोककर सह लिया। देवता, ब्राह्मण, हरिभगवान् के भक्त और गौ पर हमारे कुल वाले वीरता नहीं करते हैं।

बधें पाप अपकीरति हारें। मारतहूं पा परिअ तुम्हारे॥
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

इनको मारने से पाप और हारने से अपयश है, इस कारण तुम्हारे मारने पर भी पांव ही पड़ना चाहिये। करोड़ वज्र के समान आपका वचन है, धनुष, बाण, कुठार वृथा धारण करते हो।

दो०–जो बिलोकि अनुचित कहेउं छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंसमनि बोले गिरा गभीर॥ २७५॥

यह आपके वेष को देखकर मैंने जो कुछ अयोग्य कहा है तो हे महाधीर मुनि! क्षमा करो। यह सुनकर क्रोध सहित परशुराम जी गम्भीर वाणी में बोले॥ २७५॥

कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू॥

हे विश्वामित्र! सुनो, यह बालक मूर्ख और खोटा है। काल के वश है और अपने कुल का घात है, सूर्य वंश रूपी चन्द्रमा में कलंकरूप है। यह अति स्वतन्त्र, मूर्ख और निडर है।

काल कवलु होइहि छन माहीं। कहउं पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥

क्षणमात्र में काल को ग्रास हो जायगा, पुकार कर कहे देता हूं, फिर मुझको दोष न देना तुम जो इसकी रक्षा चाहते हो तो मेरा प्रताप, बल, क्रोध समझा कर इसे रोक दो।

लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥
अपने मुंह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भांति बहु बरनी॥

लक्ष्मण जी ने कहा मुनि ! तुम्हारे सुन्दर यश का तुम्हारे होते कौन वर्णन कर सकता है ? अपने मुख से तुमने अपनी करनी अनेक बार बहुत प्रकार से वर्णन की है।

नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥

यदि सन्तोष न हुआ हो तो फिर कुछ कहो, रिस रोक कर कठिन दुःख मत सहो आप वीर वृत्ति धारी हो, धीर और शोभा रहित हो, गारी देते शोभा नहीं पाते हो।

दो०—सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥ २७६॥

शूर लोग युद्ध में करनी करते हैं, अपने को कह कर नहीं जनाते हैं। रण में शत्रु के सम्मुख खड़े होकर केवल कायर पुरुष बकवाद किया करते हैं॥ २७६॥

तुम्ह तौ कालु हांक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥

तुम तो काल को मानों हांक लाये हो, जो बारम्बार मेरे लिये बुला रहे हो। लक्ष्मण जी के कठोर वचन सुनते ही परशुराम जी ने अपना भयंकर फरसा सुधार हाथ में ले लिया और बोले।

अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बधजोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बांचा। अब यहु मरनिहार भा सांचा॥

अब लोग मुझे दोष न देवें, क्योंकि कठोर वचन बोलने वाला यह बालक मारने ही योग्य है। बालक देख मैंने इसको बहुत बचाया परन्तु अब यह सचमुच मरने पर उद्यत हो गया है।

कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरुद्रोही॥

तब विश्वामित्र जी ने कहा कि, अपराध क्षमा कीजिये, बालकों का दोष और गुण साधुजन नहीं गिनते हैं। परशुराम जी बोले, मेरे हाथ में कुठार है, मैं बिना कारण ही क्रोधी हूं और आगे यह अपराधी मेरे गुरू का द्रोही खड़ा है।

उतर देत छोड़उं बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउं श्रम थोरें॥

उत्तर देते हुए इस बालक को बिना मारे छोड़ देता हूं। हे विश्वामित्र! केवल तुम्हारे शील के कारण इसको छोड़ दिया है। नहीं तो इस कठोर कठार से काट कर थोड़े ही परिश्रम में गुरू से उऋण हो जाता।

दो०—गाधिसूनु कह हृदयं हंसि मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अयमय खांड न ऊखमय अजहुं न बूझ अबूझ॥ २७७॥

यह सुन विश्वामित्र जी ने मन में हंसकर कहा कि मुनि को अब तक हरा-हरा ही सुहाता है। जिसने शिव धनुष को ऊख के समान तोड़ा इस बेसमझ को अब भी समझ नहीं॥ २७७॥

कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भए नीकें। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें॥

लक्ष्मण जी ने कहा हे मुनि! संसार भर में प्रसिद्ध आपके शील को कौन नहीं जानता! माता पिता से भली भांति उऋण हो गए अब गुरु ऋण का मन में बड़ा सोच है।

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा।
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउं मैं थैली खोली॥

वह मानों मेरे शिव काढ़ा है और दिन भी बहुत हो गया ब्याज भी बहुत बढ़ा होगा अब उस व्यवहार वाले को बुलाकर लाओ, तुरन्त मैं थैली खोलकर मूल ब्याज समेत दे दूं।

सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउं नृपद्रोही॥

ऐसा कटु वचन सुन परशुराम ने कुठार को सुधार लिया तब हाहा कह सब लोग पुकारने लगे लक्ष्मण जी बोले हे परशुराम! मुझको तुम क्या फरसा दिखाते हो, ब्राह्मण विचार मैं तुमसे बचता हूं।

मिले न कबहुं सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे॥

भारी युद्ध में कहीं अच्छा योद्धा नहीं मिले हैं। ब्राह्मण देवता सब घरही के बड़े होते हैं यह सुन सब लोग बोल उठे कि यह बात अनुचित है, तब रामजी ने सैन से लक्ष्मण जी को निवारण कर दिया।

दो०—लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु॥ २७८॥

लक्ष्मण जी का उत्तर देना आहुति के समान परशुराम जी का कोप अग्नि के समान बढ़ते देखकर श्री रामचन्द्रजी जल समान शीतल वचन बोले॥ २७८॥

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना॥

हे नाथ! बालक पर स्नेह कर दया करो वह शुद्ध दूध मुख है, इस पर क्रोध न करना चाहिये। हे प्रभु! यह कुछ भी आपके प्रताप को जानता होता तो अनजान क्या आपकी बराबरी करता।

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह समसील धीर मुनि ग्यानी॥

जो बालक कुछ अयोग्य करते हैं तो गुरु, पिता, माता मन में आनन्दित होते हैं। उस बालक को सेवक जानकर कृपा करो, आप समशील, धीर और ज्ञानी मुनि हो।

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने॥
हंसत देख नख सिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥

रामजी का यह वचन सुन कुछ शीतल हुए इतने में लक्ष्मण जी ने कुछ कह फिर मुसका दिया। लक्ष्मण को हंसते देख नखशिख तक रिस छा गई और बोले कि हे राम। तेरा भाई बड़ा पापी है।

गौर शरीर स्याम मन माहीं। कालकूट मुख पय मुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही॥

शरीर गोरा है मन में काला है और यह कालकूट मुख वाला है दूध मुख नहीं यह स्वभाव से ही टेढ़ा तुम्हारे अनुसार नहीं है यह नीच मुझको मोच के समान नहीं देखता है।

दो०—लखन कहेउ हंसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल॥ २७७॥

यह सुन लक्ष्मण जी ने हंसकर कहा हे मुनि! क्रोध पाप की जड़ है जिसके अधीन होकर मनुष्य अयोग्य काम करते हैं और विश्व के प्रतिकूल चलते हैं॥ २७९॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोपु करिअ अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिअ होइहिं पाय पिराने॥

हे मुनिराज! मैं तुम्हारा सेवक हूं, अब क्रोध छोड़कर मुझ पर दया कीजिए। टूटा धनुष रिस आने से नहीं जुड़ सकता, अब बैठिये पैर दुखते होंगे।

जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई। जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लखनहिं जनकु डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥

जो धनुष बहुत प्यारा है तो उपाय कीजिए, कोई बड़ा गुणी बुल कर जुड़वाइये। लक्ष्मण जी के बोलने से जनक जी डरने लगे इसलिये बोले कि चुप करो अनुचित वचन बोलना अच्छा नहीं होता।

थर थर कांपहिं पुर नर नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिस तन जरइ होइ बल हानी॥

नगर के नर नारी थर-थर कांप रहे थे कि छोटे कुमार में बड़ी भारी खुटाई है। लक्ष्मण जी की निर्भय वाणी सुन परशुराम जी का शरीर मारे रिस के जलता था और बल की हानि हो रही थी।

बोले रामहि देइ निहोरा। बचउं बिचारि बंधु लघु तोरा॥
मनु मलीन तनु सुन्दर कैसें। बिष रस भरा कनक घटु जैसें॥

परशुराम जी रामचन्द्र जी को निहोरा देकर बोले कि तुम्हारा छोटा भाई विचार इसे बचाता हूं इसका मन मलीन और शरीर कैसा सुन्दर है जैसे विष रस भरा हुआ सोने का घड़ा होता है।

दो०—सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम ॥ २८० ॥

यह सुन लक्ष्मण जी फिर हंसे तब रामचन्द्र जी ने नेत्र के संकेत से रोक दिया, तब सकुचा कर और मुनि के विरुद्ध जो वचन कहना चाहते थे उसको रोककर गुरु के समीप चले ॥ २८० ॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहिं काना ॥

फिर अत्यन्त नीति से युक्त कोमल वाणी श्री रामजी दोनों हाथ जोड़कर बोले, हे नाथ ! सुनो तुम स्वभाव से ही चतुर हो, बालक के वचन पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ ॥
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥

बर्रै और बालक का एक ही स्वभाव होता है। इनको सन्तजन कभी दोष नहीं लगाते हैं। इसने कुछ काम नहीं बिगाड़ा है। हे नाथ ! तुम्हारा अपराधी धनुष तोड़ने वाला मैं हूं।

कृपा कोपु बधु बंधब गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं ॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई ॥

हे गोसाईं ! कृपा, कोप, वध, बन्धन, जो चाहो सो मुझको अपना दास जानकर करो। हे मुनि नायक ! जल्दी कहिये जिस प्रकार आपकी रिस जाय वही उपाय किया जाय ?

कह मुनि राम जाइ रिस कैसें। अजहुं अनुज तव चितव अनैसें ॥
एहि कें कंठ कुठारु न दीन्हा। तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा ॥

यह सुनकर परशुराम जी बोले कि हे राम ! रिस कैसे जाय ? अब भी तुम्हारा भाई टेढ़ी दृष्टि से देख रहा है। इसके कण्ठ में कुठार न दिया तो मैंने कोप करके क्या किया।

दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखउं जिअत बैरी भूपकिसोर ॥ २८१ ॥

जिस कुठार की घोर गति को सुनकर राजाओं की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं उसी फरसा होते हुए भी बैरी राज पुत्र को जीता देखता हूं ॥ २८१ ॥

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृपघाती ॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयं कृपा कसि काऊ ॥

मेरा हाथ नहीं चलता है और रिस के मारे छाती जली जाती है, यह नृपघाती कुठार भी मोथरा हो गया। विधाता उलटा हो गया, स्वभाव बदल गया, नहीं तो मेरे हृदय में कृपा काहे को होती है।

आजु दया दुखु दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥

मुझे आज विधाता ने कठिन दुख सहाया, यह सुन लक्ष्मण जी ने हंसकर शिर झुका लिया। नाथ! आप दया की मूर्ति हो और उसी के अनुकूल वचन बोलते हो मानों फूल झरते हैं।

जौं पै कृपां जरिहिं मुनि गाता। क्रोध भएं तनु राख बिधाता॥
देखु जनक हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥

हे मुनि! कृपा करने पर भी तुम्हारा शरीर जलता है तो क्रोध होने पर विधाता ही रक्षा करता होगा। परशुराम जी बोले हे जनक! देख यह मूर्ख बालक हठ से यमपुर में अपना घर किया चाहता है।

बेगि करहु किन आंखिन्ह ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा॥
बिहसे लखनु कहा मन माहीं। मूदें आंखि कतहुं कोउ नाहीं॥

इसको जल्दी मेरी आंखों से ओट क्यों नहीं कर देते? देखने में तो यह राजपुत्र छोटा है, पर बड़ा ही खोटा है। यह सुन लक्ष्मण ने हंसकर मुनि से कहा कि, आप आंख बन्द कर लीजिये तो कहीं कोई नहीं देख पड़ेगा।

दो०—परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु॥ २८२॥

तब परशुराम जी रामचन्द्र जी से क्रोधित होकर यह बोले कि हे शठ! शिव का धनुष तोड़कर मेराप्रबोध करता है॥ २८२॥

बंधु कहइ कटु संमत तोरें। तू छल बिनय करसि कर जोरें॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा॥

तेरा भाई तेरी ही सम्मति से कटु वचन बोलता है और तू छल से हाथ जोड़कर विनती कर रहा [illegible]। तो युद्ध में मेरा संतोष कर नहीं तो राम कहलाना छोड़ दे।

छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउं तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएं। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएं॥

हे शिवद्रोही? छल छोड़कर युद्ध कर नहीं तो भाई समेत तुझको मार डालूंगा। परशुराम जी [illegible] उठाये इसी प्रकार कह रहे थे और रामजी माथा झुकाये हुए मन में मुसका रहे थे।

गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुं सुधाइहु ते बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू॥

रामचन्द्र जी बोले, विचारो तो सही यहां कटु वचन कहने का दोष तो लक्ष्मण का है और क्रोध मुझपर करते हो, कहीं सीधेपन से भी बड़ा दोष होता है। टेढ़ा जान कर सब किसी को सन्देह होता है [illegible] चन्द्रमा जब तक टेढ़ा रहा है तब तक राहु भी नहीं ग्रसता।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगें यह सीसा॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥

फिर रामजी ने कहा हे मुनीश्वर! रिस छोड़ दीजिये आपके हाथ में कुठार है और आगे मेरा शिर है। स्वामी! जिस प्रकार रिस दूर हो जाय वही कीजिए और मुझको अपना सेवक जानिये।

दो०—प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु॥ २८३॥

स्वामी और सेवक का युद्ध कैसा? यह समझ कर हे विप्रवर! क्रोध का त्याग करो, आपके इस क्षत्रिय वेष को देखकर कुछ कहा है इस कारण बालक का भी कुछ दोष नहीं है॥ २८३॥

देखि कुठार बान धनु धारी। भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायं उतरु तेहिं दीन्हा॥

आपको कुठार, बाण और धनुष धारण किये देख वीर जान बालक को रिस उत्पन्न हो गई परशुराम नाम जानता था पर आपको पहिचाना नहीं और वंश के स्वभाव के अनुसार उसने उत्तर दिया।

जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥

हे गुसांई! जो तुम मुनि की भांति आते तो यही बालक आपके चरणों की रज को अपने मस्तक पर धारण करता। अनजान की चूक को क्षमा करो ब्राह्मण के दिल में तो बहुत ही दया होनी चाहिये।

हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहां चरन कहं माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥

हे नाथ! मेरी और आपकी समता कैसी? कहिये तो कहां चरण और कहां माथा। केवल दो अक्षर का छोटा सा मेरा नाम है और परशुसहित राम बड़ा नाम तुम्हारा है।

देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारें॥

हे देव! हमारे तो एक धनुष ही गुण हैं सो भी हिंसा आदि दोषों से अपवित्र हैं, और तुम्हारे परम पवित्र नव गुण हैं। सब प्रकार से मैं तुमसे हारा हूं, मेरे अपराध को क्षमा करो।

दो०—बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूं बंधु सम बाम॥ २८४॥

बारम्बार मुनि और विप्रवर परशुराम जी से रामचन्द्र जी ने कहा तब परशुरामजी क्रोधित होकर बोले कि, तू भी भाई के समान उलटा है ॥ २८४ ॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउं तोही ॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू ॥

निपट ब्राह्मण ही करके तूने मुझको जान लिया, मैं जैसा ब्राह्मण हूं वैसा तुमको सुनाता हूं। मेरे धनुष को स्रवा, बाण को आहुति और कोप को महा प्रचण्ड अग्नि जानो।

समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई ॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे ॥

सुन्दर चतुरंगिनी सेना समिधा और बड़े बड़े राजा आकर उनमें पशु हुए। मैंने इसी कुठार से काट काट उनका बलि दिया, ऐसा समरयज्ञ संसार में करोड़ों बार किया है।

मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र के भोरें ॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुं जीति जगु ठाढ़ा ॥

मेरा प्रभाव तुमको प्रगट नहीं, इससे तू ब्राह्मण के धोखे में निरादर करके बोल रहा है। धनुष तोड़ा इससे अहंकार बढ़ गया है मानों जो कुछ हैं सो हमी हैं, जगत् को जीत लिया ऐसा समझकर मेरे सामने खड़ा है।

राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥

रामचन्द्र जी ने कहा हे मुनि ! विचार कर बात कहो, आपकी रिस बहुत बड़ी है और मेरी चूक छोटी है। हाथ लगते ही पुराना धनुष टूट गया, मैं किस कारण अभिमान करूं।

दो०—जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ ॥ २८५ ॥

हे भृगुनाथ ! सुनो हम सत्य कहते हैं कि जो हम ब्राह्मण कहकर आपका निरादर करते हों तो जगत् में ऐसा कौन योद्धा है जिसको हम भयभीत होकर मस्तक नवावें ॥ २८५ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना ॥
जौं रन हमहिं पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ ॥

देवता, दैत्य, राजा, योद्धा कोई भी हो, हमारे समान बली अथवा अधिक बलवान् हो। जो रण के निमित्त कोई हमको ललकार कर बुलावे तो काल ही क्यों न हो हम उसके साथ आनन्द पूर्वक युद्ध करें।

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना ॥
कहउं सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी ॥

जो क्षत्रिय का शरीर धारण कर युद्ध से डरा उसको कुल का कलंकी और नीच जानो। मैं स्वभाव से कहता हूं, कल की प्रशंसा नहीं करता, रण में रघुवंशी काल से भी नहीं डरते।

बिप्रबंस के असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥

विप्रवंश की ऐसी प्रभुताई है कि जो तुमसे भय करता है, वह निर्भय हो जाता है। रघुनाथ जी के कोमल और गूढ़ वचन को सुन परशुराम जी की बुद्धि के किवाड़ खुल गये।

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

हे राम! लक्ष्मीपति का यह धनुष हाथ में लो और इस धनुष को चढ़ाओ जिससे मेरा सन्देह मिटे। धनुष को देते ही वह आप चढ़ गया यह देख परशुराम के मन में विस्मय हुआ।

दो०—जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयं न प्रेमु अमात॥ २८६॥

तब रामचन्द्र जी का प्रभाव जाना, शरीर में रोमाञ्च हो आया, अंग प्रफुल्लित हुए हाथ जोड़ कर वचन बोले प्रेम ऐसा बढ़ा कि हृदय में नहीं समाता था॥ २८६॥

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥

हे रघुवंशरूपी कमल वन के सूर्य और सघन राक्षस कुल को भस्म करने में अग्निस्वरूप रामचन्द्र जी आपकी जय हो, हे देवता, ब्राह्मण और गौओं के हितकारी! आपकी जय हो और हे अहंकार, मोह, क्रोध और भ्रम को दूर करने वाले आपकी जय हो।

बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा॥

हे विनय, शील, दया और गुणों के समुद्र तथा वचनों की रचना में बड़े चतुर आपकी जय हो। हे सेवकों के सुख देने वाले और सुन्दर अङ्गों वाले तथा करोड़ों कामदेव के समान शरीर की छवि वाले आपकी जय हो।

करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा॥
अनुचित बहुत कहेउं अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥

एक मुख से क्या प्रशंसा करूं! आप महादेव जी के मन रूपी सरोवर के हंस हो, आपकी जय हो! बिना जाने अज्ञान वश मैंने अनुचित वचन कहा है, सो हे क्षमा के मन्दिर दोनों भाई क्षमा करो।

कहि जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥
अपभयं कुटिल महीप डेराने। जहं तहं कायर गवंहिं पराने॥

श्री रामचन्द्र जी की जय! जय!! जय!! कह परशुराम जी (गन्धमादन पर्वत के) वन में तपस्या करने चले गये। अपने भय से खोटे राजा डर गये और जहां तहां कायर चुपके से चल दिये।

दो०—देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल॥ २८७॥

देवताओं ने दुन्दुभीं बजाई, प्रभु रामचन्द्र और लक्ष्मण जी पर फूल बरसने लगे, नगर के नर-नारी सब प्रसन्न हुए॥ २८७॥

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिलबयनीं॥

जनकपुर में बहुत अच्छी ध्वनि के साथ आनन्द के बाजे बजने लगे। सब लोगों ने अपना-अपना घर मनोहर और मंगलमय कर दिया। सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रों वालीं तथा कोकिला के समान बोलने वाली झुण्ड की स्त्रियां मिलकर सुन्दर गीत गाने लगीं।

सुखु बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुं निधि पाई॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु उदयं चकोरकुमारी॥

जनक जी को जो सुख हुआ वह कहा नहीं जाता मानों जन्म के दरिद्री ने बहुत सा धन पाया हो। दुःख दूर हो जाने से सीता जी ऐसी सुखी हुईं जैसे चन्द्रमा के उदय से चकोर किशोरी सुखी होती हैं।

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुं भाईं। अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं॥

उसी समय राजा जनक जी ने विश्वामित्र जी को प्रणाम किया और कहा कि, हे प्रभु आपकी ही कृपा से रामजी ने धनुष तोड़ा है मुझको दोनों भाइयों ने कृतार्थ किया, हे गुसांई! अब जो उचित हो सो कहिये।

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना॥
टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥

यह सुनकर विश्वामित्र मुनि ने कहा कि, हे राजा जनक! सुनो आप बुद्धिमान हो, विवाह तो धनुष के अधीन था सो धनुष टूटते ही विवाह हो गया। देवता, नर, नाग आदि सब किसी को प्रगट हो गया।

दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥ २८८॥

तो भी अब तुम जाकर अपने वंश का जैसा उचित व्यवहार हो उसको ब्राह्मण और कुल में वृद्धजन तथा गुरु से पूछकर वेद में प्रसिद्ध आचार के अनुसार करो॥ २८८॥

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दसरथहि बोलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला। पठए दूत बोलि तेहि काला॥

और जाकर अयोध्यापुरी को दूत भेज दो, वह बरात सहित दशरथ जी को बुला लावै। यह सुन जनक जी प्रसन्न होकर बोले, हे कृपालु मुनि! बहुत अच्छा। ऐसे कह दूत को बुला उसी समय भेज दिया।

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगरु संवारहु चारिहुं पासा॥

फिर नगर के सब बड़े लोगों को बुलाया और सब लोगों ने आदर से मस्तक नवाया। उनसे राजा ने कहा कि हाठ बाट, मन्दिर, देवालय तथा नगर को चारों ओर से सजाओ।

हरषि चले निज निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि पठाए॥
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई॥

राजा की आज्ञा सुन प्रसन्न होकर चले और अपने घर आये फिर टहलुआ को बुलाया और आज्ञा दी कि विचित्र मण्डप रच कर बनाओ। आज्ञा शीश चढ़ा प्रसन्नतापूर्वक चले।

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥

उन्होंने अनेक गुणियों को जो मण्डप की रचना करने में बड़े चतुर थे, बुलावा भेजा। ब्रह्मा की वन्दना कर उन्होंने आरम्भ किया और पहले सोने के केले का खम्भा बनाया।

दो०—हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥ २८९॥

हरी मणियों के पत्ते और फल बनवाये और पद्मराग का फूल लगाया जिसकी अत्यन्त विचित्र रचना को देख ब्रह्मा का मन भी भ्रमित हो गया॥ २८९॥

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई॥

सब बांस हरे मणि के ऐसे सीधे और पल्लव समेत बनाये जो पहिचाने नहीं जाते। सोने की सुन्दर नागबेलि पत्तों सहित ऐसा अच्छा बनाया जो निरखकर भी पहिचाना नहीं जाता था।

रजतपत्र मय चूरण चारू। रज मकत सह अति मनहारू॥
तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम सुहाए॥

चांदी के पत्रों के निर्मल चूर्ण में नीलमणि को रेणु मिली हुई जो देखने में अत्यन्त मनोहर थी। उनकी बन्धन रचकर और गुहकर बनी थी, बीच-बीच में मोतियों की लरें लटका दीं।

मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥
किए भृंग बहुरंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥

लाल मणि, नील, हीरा और पिरोजा इनको चीर और कोर कर तथा इनको मिलाकर कमल बनाया। उन पर भौंरे और बहुत रङ्ग के पक्षियों को बनाया, जो पवन लगने से गंजने और बोलने लगते।

सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रब्य लिएं सब ठाढ़ीं॥
चौकें भांति अनेक पुराईं। सिंधुर मनिमय सहज सुहाईं॥

देवताओं की मूर्तियां खम्भों में रच कर बना दी जो सब मङ्गल वस्तु लिये खड़ी थीं। भांति २ को गजमोतियों का चौक पुराया जो स्वभाव से ही बहुत शोभायमान लगते थे।

दो०—सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि॥ २९०॥

नीलमणि को कोर कर बहुत सुन्दर आम के पत्ते बनाये जिनमें सोने और नीलमणि की अम्बियों के गुच्छे रेशम की डोरी से लटका दिये॥ २९०॥

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहुं मनोभवं फंद संवारे॥
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए॥

और ऐसे परम मनोहर वन्दनवार बनाये मानो कामदेव ने फन्द संवारे अनेक मङ्गल कलश सजाये ध्वजा, पताका, वस्त्र और सुन्दर चमर जहां तहां लगा दिये।

दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना॥
जेहिं मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै असि मति कबि केही॥

अनेक प्रकार के मणिजटित मनोहर दीपक प्रकाशित हो रहे थे, ऐसे विचित्र मण्डप की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस मण्डप में दुलहिनि श्री जानकी जी थीं ऐसी मति किस कवि की है जो उस मण्डप का वर्णन करे।

दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुं लोक उजागर॥
जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥

जिनमें दूलह सम्पूर्ण गुणों के समुद्र श्री रामजी बैठे थे वह मण्डप तीनों लोक में उजागर है। जनक जी के राजभवन की जैसी शोभा थी, वैसी ही घर-घर में दिखाई देती थी।

जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

जिसने जनक पुरी समय में देखी उसको चौदहो भुवन छोटे लगने लगे। जो सम्पदा नीचों के घर में शोभायमान थी उसे देखकर इन्द्र भी मोहित हो जाता था।

दो०—बसइ नगर जेहिं लच्छि करि कपट नारि बर बेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेषु॥ २९१॥

जिस नगर में लक्ष्मी कपट से स्त्री का सुन्दर वेष धारण किये वास करती थी उस पुर की शोभा कहते शारदा और शेष जी भी सकुचाते हैं॥ २९१॥

पहुंचे दूत राम पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥
भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई॥

जनकजी का दूत रामचन्द्रजी के पवित्र नगर में पहुंच नगर को सुन्दर देख बहुत प्रसन्न हुआ। उसने राजद्वार में अपने आने की खबर दी, दशरथ जी ने सुनते ही अपने समीप बुला लिया।

करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही॥
बारि बिलोचन बांचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥

दूत ने महाराज को प्रणाम कर चिट्ठी दी, सो दशरथ जी ने प्रसन्न हो आप ही उठ चिट्ठी को अपने हाथ में ले लिया। चिट्ठी बांचते ही नेत्रों में जल आ गया, शरीर पुलकायमान हो गया, छाती भर आई।

रामु लखनु उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बांची। हरषी सभा बात सुनि सांची॥

राम लक्ष्मण को हृदय में और अच्छे समाचार वाली चिट्ठी हाथ में लिये रह गए, आनन्द से ऐसे मग्न हो गए कि बुरी भली कुछ कहते नहीं बना। फिर धीरज धरकर चिट्ठी बांची तब राजसभा सच्ची बात सुनके प्रसन्न हुई।

खेलत रहे तहां सुधि पाई। आए भरतु सहित हित भाई॥
पूछत अति सनेहं सकुचाई। तात कहां तें पाती आई॥

खेलते समय वहां सुधिपाये कि चिट्ठी आई है, तब भरत सत्रुहन दोनों प्रसन्न होकर राजसभा में आये और अत्यन्त स्नेह से सकुचा कर पूछने लगे कि हे पिताजी! यह चिट्ठी कहां से आई है।

दो०—कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहिं देस।
सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेश॥ २९०॥

हमारे प्राण प्यारे दोनों भाई कुशलपूर्वक कहिये किस देश में हैं? भरतजी का स्नेहयुक्त वचन सुनकर महाराज ने उसे फिर पढ़ा॥ २९०॥

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु समात न गाता॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभां सुखु लहेउ बिसेषी॥

चिट्ठी सुनकर दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए और अधिक प्रेम से फूले अंग न समाये। भरतजी की पवित्र प्रीति देखकर सबने बहुत सुख पाया।

तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥
भैआ कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीकें निज नयन निहारे॥

तब राजा दशरथ जी ने दूत को समीप बिठाकर मधुर और मनोहर वचन में उससे पूछा। हे भैया! कहो मेरे दोनों पुत्रों को कुशल पूर्वक तुमने भली.भांति अपने नेत्रों से देखा है?

स्यामल गौर धरें धनु भाथा। बय किसोर कौसिक मुनि साथा॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ॥

जो सांवले गोरे, हाथों में धनुष धारण किये, किशोर अवस्था वाले विश्वामित्र मुनि के साथ हैं, पहचानते हो तो स्वभाव कहो, स्नेह वश दशरथ जी ने बार बार यही प्रश्न किया।

जा दिन तें मुनि गए लवाई। तब तें आजु सांचि सुधि पाई॥
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने।

जिस दिन से विश्वामित्र मुनि अपने साथ ले गए तब से आज ही सच्ची सुधि मिली है। कहो जनक जी ने उसको किस प्रकार जाना? ऐसा प्रिय वचन सुन दूत हंसे और कहने लगे।

दो०—सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम्ह सम धन्य न कोउ।
रामु लखनु जिन्ह के तनय बिस्व बिभूषन दोउ॥ २९३॥

हे राजाओं के मुकुटमणि! तुम्हारे समान भाग्यवान कोई नहीं है कि जिसके राम लक्ष्मण दो पुत्र जगत् के आभूषण हैं॥ २९३॥

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंह तिहु पुर उजिआरे॥
जिन्ह के जस प्रताप कें आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥

तुम्हारे पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं, जो पुरुष में सिंह और तीनों लोकों के उजियाले हैं। जिनके यश और प्रताप के आगे चन्द्रमा मलीन और सूर्य शीतल लगते हैं।

तिन्ह कहं कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे॥
सीय स्वयंबर भूप अनेका। समिटे सुभट एक तें एका॥

हे नाथ उनको आपने कहा कि कैसे पहचाना। क्या सूर्य हाथ में दीपक लेकर देखा जाता है। सीताजी के स्वयंवर में अनेक राजा एक से एक योद्धा इकट्ठे हुए थे।

संभु सरासनु काहुं न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा॥
तीनि लोक महं जे भट मानी। सभ कें सकति संभु धनु भानी॥

शिवजी का धनुष किसी ने नहीं टारा सब बड़े बली राजा बल करके हार गए जो तीनों लोक में अपने को बड़ा भारी योद्धा मानते थे, उन सबकी शक्ति को शिवजी के धनुष ने लपेट लिया।

सकल उठाइ सरासुर मेरू। सोउ हियं हारि गयउ करि फेरू॥
जेहिं कौतुक सिवसैलु उठावा। सोउ तेहि सभां पराभउ पावा॥

जो देवता और राक्षस सुमेरु पर्वत भी उठा सकते थे वह भी मन में हार मान धनुष की परिक्रमा कर चले गये। जिसने खेल करते कैलाश पर्वत को उठा लिया उसने भी उस सभा में हार मानी।

दो०—तहां राम रघुबंसमनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल॥ २९४॥

सुनिये महाराज उसी सभा में रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजी ने, जिस प्रकार बिना परिश्रम के हाथी कमल की डण्डी को तोड़ डालता है उसी प्रकार कठोर धनुष को तोड़ दिया॥ २९४॥

सुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भांति तिन्ह आंखि देखाए॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा॥

सो पुन क्रोध करके परशुराम जी आए और बहुत भांति उन्होंने नेत्र दिखाया फिर रामजी का बल देख अपना धनुष दे दिया और अन्त में बहुत सी स्तुति करके वन को चले गए।

राजन रामु अतुलबल जैसें। तेज निधान लखनु पुनि तैसें॥
कंपहिं भूप बिलोकत जाकें। जिमि गज हरि किसोर के ताकें॥

जैसे रामजी अतुल बल से शोभायमान हैं वैसे ही तेज निधान लक्ष्मण जी हैं। जिनको देखते ही राजा ऐसे कांपते हैं जैसे हाथी किशोर अवस्था वाले सिंह को देखने से कांपने लगते हैं।

देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आंखि तर आवत कोऊ॥
दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप बीर रस पागी॥

हे देव! तुम्हारे दोनों बालक देखकर पृथ्वी पर हमारी दृष्टि में कोई नहीं आता। प्रेम प्रताप और वीर रस से सनी हुई, समाचार कहने वाले उस दूत के वचन की रचना सभी को प्यारी लगी।

सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति ते मूदहिं काना। धरमु बिचारि सबहि सुखु माना॥

और सभासदों सहित राजा दशरथ जी प्रेम में मग्न होकर दूत को न्यौछावर देने लगे। अनीति कहकर उसने कान मंदा, धर्म विचार कर सब लोग सुखी हुए।

दो०–तब उठि भूप बसिष्ट कहुं दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरहि सब सादर दूत बुलाइ॥ २९३॥

तब राजा दशरथजी ने वशिष्ठ मुनि को वह चिट्ठी दी और आदर सहित बुलाकर गुरुदेव को सब कथा कह सुनाई॥ २९५॥

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई। पुन्य पुरुष कहुं महि सुख छाई॥
जिमि सरिता सागर महुं जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

सासुन वशिष्ठ मुनि बहुत सुख पाकर बोले कि पुण्यात्माओं के लिए पृथ्वी सुख से छाई रहती है। जैसे नदी समद्र में जाकर मिलती है यद्यपि समुद्र को उसकी कुछ भी कामना नहीं है।

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएं। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएं॥
तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥

वैसे ही सुख सम्पदा बिना बुलाये धर्मात्मा पुरुषों के पास स्वभाव से ही चली जाती है, तुम गुरु, ब्राह्मण, गौ और देवताओं की सेवा करने वाले हो और वैसी ही पवित्र कौशल्या देवी भी हैं।

सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥
तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥

तुम्हारे समान अच्छे कर्मों को करने वाला जगत् में न हुआ है न है न कोई होने वाला है । तुमसे अधिक पुण्यात्मा कौन है जिनके राम सरीखे पुत्र शोभायमान हैं ।

बीर बिनीत धरम ब्रत धारी । गुन सागर बर बालक चारी ॥
तुम्ह कहुं सर्ब काल कल्याना । सजहु बरात बजाइ निसाना ॥

शूर वीर अति नीतवान् धर्मात्मा गुणों के समुद्र सुन्दर चारों पुत्र हैं । तुमको सब समय कल्याण है अब निसान बजाकर बरात सजाओ ।

दो०—चलहु बेगि सुनि गुर बचन भलेहिं नाथ सिरु नाइ ।
भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ ॥ २१४ ॥

गुरु वशिष्ठ मुनि का वचन सुनकर, हे नाथ ! बहुत अच्छा ऐसे कह शिर नवाया राजा जल्दी से चले और दूत को वासस्थान दिखाकर तब राजभवन रनिवास में गये ॥२६६ ॥

राजा सबु रनिवास बोलाई । जनक पत्रिका बाचि सुनाई ॥
सुनि संदेसु सकल हरषानीं । अपर कथा सब भूप बखानीं ॥

राजा ने रनिवास में सब रानियों को बुलाकर राजा जनक जी की चिट्ठी बांचकर सुना दी । यह सन्देश सुनकर सब प्रसन्न हुईं, फिर और सब कथा राजा ने कह सुनाई ।

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी । मनहुं सिखिनि सुनि बारिद बानी ॥
मुदित असीस देहिं गुर नारीं । अति आनन्द मगन महतारीं ॥

सो सुनते ही रानियां मारे प्रेम के प्रफुल्लित हो गईं जैसे मोरनी मेघ के शब्द को सुनकर आनन्द में मग्न हो जाती हैं । प्रसन्न हो गुरु नारी आशीर्वाद देने लगीं और माताएं अत्यन्त आनन्द में मग्न हो गईं ।

लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती । हृदयं लगाइ जुड़ावहिं छाती ॥
राम लखन कै कीरति करनी । बारहिं बार भूपबर बरनी ॥

उस बहुत प्यारी चिट्ठी को परस्पर लेने और हृदय से लगाकर छाती को ठण्डी करने लगीं । राम लक्ष्मण की कीर्ति और करनी महाराज दशरथ जी ने बारम्बार वर्णन की ।

मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए । रानिन्ह तब महिदेव बोलाए ॥
दिए दान आनन्द समेता । चले बिप्रबर आसिष देता ॥

यह विश्वामित्र जी की कृपा है ऐसा कह राजा द्वार पर चले गए । रानियों ने ब्राह्मणों को बुलाया और उन लोगों को आनन्द पूर्वक दान दिया, फिर वे ब्राह्मण को आशीर्वाद देते चले गये ।

सो०—जाचक लिए हंकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि ।
चिरु जीवहुं सुत चारि चक्रवर्ति दशरत्थ के ॥ ३३ ॥

फिर याचक बुला लिये और उन्हें भी कोटि प्रकार का न्योछावर दिया तब उन्होंने आशीर्वाद दी कि चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी के चारों पुत्र चिरंजीवी रहें ॥ ३३ ॥

कहत चले पहिरें पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना॥
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए॥

इस प्रकार कहते और अनेक प्रकार के वस्त्र पहिरे हुए चले और प्रसन्न हो आनन्द के बाजों सहित नगाड़े बजने लगे। यह मङ्गल समाचार सब लोगों ने पाया, घर घर बधाई होने लगी।

भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिग्राहू॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गलीं संवारन लागे॥

चौदहों भुवन में उत्साह भर गया कि जनक सुता और रघुवीर का विवाह है शुभ कथा सुनकर लोग प्रेम में मग्न हो गए मार्ग, घर और गली सब सजाने लगे।

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। राम पुरी मंगलमय पावनि॥
तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥

यद्यपि अयोध्या पुरी सदैव सुहानी है, रामपुरी मंगलमय और जगत् को पवित्र करने वाली है तो भी प्रीति दर्शाने के निमित्त मंगल रचकर बनाई गई है।

ध्वज पताक पट चामर चारु। छावा परम बिचित्र बजारु॥
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥

सुन्दर ध्वजा, पताका, वस्त्र, चंवर, इनकी विचित्रता से बाजार छा दिया, जिससे बाजार बहुत विचित्र हो गया। सोने के कलश, बन्दनवार और मणियों के जाल, हरदी, दूब, दही, अक्षर, फूलों की माला।

दो०—मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथीं सींचीं चतुरसम चौकें चारु पुराइ॥ २९७॥

इन मंगलमय वस्तुओं से अपना घर लोगों ने सजाकर मँगलमय कर दिया, तथा सब चतुर लोगों ने गलियों में छिड़काव कर सुन्दर चौक पुरा दिए॥ २९७॥

जहं तहं जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नव सप्त सकल दुति दामिनि॥
बिधुबदनीं मृग सावक लोचनि। निज सरूप रति मानु बिमोचनि॥

जहां तहां झुण्ड की झुण्ड मिलकर स्त्रियां शृंगार सजाकर चलीं, सबकी कान्ति बिजली के समान चमकीली थी। और चन्द्रमा के समान मुखवाली (चन्द्रबदनी) मृग के बच्चे के समान नेत्र वाली (मृगनयनी) अपने स्वरूप से कामदेव की स्त्री रति के मान को खण्डन करने वाली।

गावहिं मंगल मंजुल बानीं। सुनि कलरव कलकंठि लजानी॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना॥

सुन्दर वाणी से मङ्गल गाने लगी जिनके मधुर शब्द को सुनकर कोकिला लज्जित हो गई। राम-मन्दिर का किस भांति बखान किया जाए जिसमें जगत् को मोहने वाला मण्डप रचा गया।

मंगल द्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना॥
कतहुं बिरिद बंदी उच्चरहीं। कतहुं बेद धुनि भूसुर करहीं॥

तथा जिनमें मन को हरने वाली अनेक प्रकार की मंगल वस्तुओं की शोभा हो रही थी और जहां बहुत नगाड़े बज रहे थे। कहीं बन्दीजन वंश का वर्णन करते हैं, कहीं ब्राह्मण लोग वेद ध्वनि करने लगे।

गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता॥
बहुत उछाहु भवनु अति थोरा। मानहुं उमगि चला चहु ओरा॥

कहीं सुन्दर स्त्रियां रामचन्द्र और सीता का नाम ले ले कर मंगल गीत गाने लगीं, उत्साह तो बहुत और राजभवन अति छोटा, वह मानो उमड़कर चारों ओर को फैल चला।

दो०—सोभा दसरथ भवन कइ को कबि बरनै पार।
जहां सकल सुर सीस मनि राम लीन्ह अवतार॥ २९८॥

महाराज दशरथ के भवन की वर्णन कर कौन कवि पार पा सकता है? जहां सब देवताओं के शिरोमणि श्री रामचन्द्र जी ने अवतार लिया है॥ २९८॥

भूप भरत पुनि लिए बुलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥

फिर राजा ने भरत को बुलाकर आज्ञा दी कि जाकर घोड़ों, हाथी और रथों को सजवाओ और शीघ्र ही रामचन्द्र के बरात को चलो, यह सुनते ही दोनों भाई पुलकावली से पूरित हो गए।

भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए॥
रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥

भरतजी ने सेनापतियों को बुलवाया और उन्हें सेना सजाने की आज्ञा दी, तब वे प्रसन्न हो अपने अपने काम को उठ दौड़े। और उन्होंने रचकर रुचि के साज सजाये। जिनमें रंग बिरंग के घोड़े शोभायमान हुए।

सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी॥
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने॥

वे सब सुन्दर उनकी करनी बहुत चञ्चल है, जैसे मानों लोहा जलता हो ऐसे पृथ्वी पर पैर धरते हैं। अनेक प्रकार के घोड़े जो बखाने नहीं जा सकते, मानों पवन का निरादर कर उड़ना चाहते थे।

तिन्ह सब छयल भए असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा॥
सब सुंदर सब भूषनधारी। कर सर चाप तून कटि भारी॥

उन पर भरत के समान सब छैल राजकुमार सवार हुए सब सुन्दर रूप वाले सब आभूषण धारण किये, हाथ में बाण और धनुष लिए कमर में भारी तरकस कसे हुए थे।

दो०—छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नवीन ॥
जुग पदचर असवार प्रति जे असिकला प्रवीन ॥ २९९ ॥

चुने हुए सुन्दर सब छैल, शूर, वीर, चतुर, नवीन अवस्था वाले एक-एक सवार के संग दो-दो पैदल जो खंग चलाने में निपुण थे ॥ २९९ ॥

बाधें बिरद बीर रन गाढ़े । निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े ॥
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना । हरषहिं सुनि सुनि पवन निसाना ॥

लड़ाई का बाना बांधे हुए सब रण बांकुरे वीर निकल नगर के बाहर खड़े हो गये । चतुर लोग अनेक गति से घोड़े को फेरने और ढोल व दुन्दुभी की ध्वनि सुन प्रसन्न होने लगे ।

रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए । ध्वज पताक मनि भूषन लाए ॥
चवंर चारु किंकिनि धुनि करहीं । भानु जान सोभा अपहरहीं ॥

सारथियों ने रथ को विचित्र सजाकर उसको ध्वजा पताका, मणि और आभूषणों से छा दिया । जिनमें सुन्दर चंवर लगे हुए थे, घण्टियों की मनोहर ध्वनि हो रही थी, सब रथ ऐसे चमक रहे थे मानो सूर्य नारायण के रथ की शोभा को छीन रहे हैं ।

सावंकरन अगनित हय होते । ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते ॥
सुंदर सकल अलंकृत सोहे । जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहे ॥

श्यामकर्ण अनगिनत घोड़े अश्वमेधयज्ञ के योग्य होते हैं उनको सारथियों ने उन रथों में जोत दिया । सुन्दर अलंकारों से सुशोभित हुए, जिनको देख मुनियों का मन मोहित हो जाता था ।

जे जल चलहिं थलहि की नाईं । टाप न बूड़ बेग अधिकाईं ॥
अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई । रथी सारथिन्ह लिए बोलाई ॥

जो जल पर भी थल की भांति चलते हैं अधिक वेग के साथ चलने से जल में टाप नहीं डूबती अस्त्र शस्त्र सब साज सजाये सारथियों ने रथ में बैठने वालों को बुलाया ।

दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात ।
होत सगुन सुंदर सबहि जो जेहि कारज जात ॥ ३०० ॥

रथों पर चढ़ चढ़कर नगर के बाहर बरात जुटने लगी, जो जिस काम को जाय उन सबको सुन्दर सगुन होने लगे ॥ ३०० ॥

कलित करिबरन्हि परीं अंबारीं । कहि न जाहिं जेहि भांति संवारीं ॥
चले मत्त गज घंट बिराजी । मनहुं सुभग सावन घन राजी ॥

सुन्दर हाथियों पर अम्बारी जिस भांति सजाई सो कही नहीं जाती मतवाले हाथी चलने लगे, उनके गले में घण्टों की ऐसी शोभा हुई मानों सुन्दर सावन के मेघ गरज रहे हैं ।

बाहन अपर अनेक बिधाना । सिबिका सुभग सुखासन जाना ॥
तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा । जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा ॥

और भी अनेक प्रकार के वाहन, पालकी, सुन्दर सुखपाल आदि विमान, उन पर चढ़कर ब्राह्मणों के समूह ऐसे चले मानों वेदों के सब छन्द शरीर धारण किये हैं।

मागध सूत बंदि गुनगायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक॥
बेसर ऊंट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भांती॥

मागध, सूत, बन्दीजन और गुण गाने वाले जो जिस सवारी के लायक थे। वे उस पर चढ़कर चले। बहुत जाति के खच्चर, ऊंट, बैल अनगिनत भांति की वस्तु भर कर चले।

कोटिन्ह कांवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साधु समाजु बनाई॥

करोड़ों बहंगी लिए कहार चले जिनमें की वस्तुओं का वर्णन करके कौन पार पा सकता है और सब सेवकों के समुदाय अपना अपना साज समाज बनाकर चले।

दो०—सब के उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लखनु दोउ बीर॥ ३०१॥

सबके हृदय में पूर्ण आनन्द भर गया, शरीर में रोमाञ्च हो आया, अर्थात सब रोम खड़े हो गये और कहने लगे कि नयन भर कर राम लक्ष्मण दोनों वीरों को हम लोग कब देखेंगे॥ ३०१॥

गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहु ओरा॥
निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनहि न काना॥

हाथियों का गरजना और उनके घण्टों की घोर धुनि तथा रथों का गरगराहट शब्द और घोड़ों की हिनहिनाहट का सब्द चारों ओर होने लगा। मेघों के गर्जन का निरादर करते हुए नगाड़े बजने लगे, जिनसे अपना पराया कुछ भी कानों से सुनाई नहीं देता था।

महाभीर भूपति के द्वारें। रज होइ जाइ पषान पवारें॥
चढ़ीं अटारिन्ह देखहिं नारीं। लिएं आरती मंगल थारीं॥

दशरथ द्वार पर ऐसी भारी भीड़ हुई कि पत्थर फेंकने से चूर-चूर हो जाय अटारियों पर चढ़ी स्त्रियां हाथों में आरती मंगल थार लिए हुएबरात की शोभा देख रही थीं।

गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंदु न जाइ बखाना॥
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि हय निंदक बाजी॥

और अनेक प्रकार के मनोहर गीत गा रही थीं, उस समय का अत्यन्त आनन्द बखाना नहीं जा सकता। तब सुमन्त मन्त्री ने दो रथ सजाये जिनमें सूर्य के रथ के घोड़ों का तिरस्कार करने वाले घोड़े जुते हुए थे।

दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहि जाहिं बखाने॥
राज समाजु एक रथ साजा। दूसर तेज पुंज अति भ्राजा॥

और दोनों सुन्दर रथ राजा के पास आये, जो शारदा से भी बखाने नहीं जा सकते, एक रथ राज समाज से दशरथ के निमित्त और दूसरा तेज का समूह अत्यन्त शोभायमान बशिष्ठ मुनि के निमित्त सजाया।

दो०–तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुं हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु ॥ ३०२ ॥

राजा ने प्रसन्न हो उस तेज पुञ्ज (बहुत चमकीले) रथ पर वशिष्ठ मुनि को चढ़ाया फिर आप शिव, गुरु, पार्वती और गणेश जी को स्मरण कर दूसरे रथ पर चढ़े ॥ ३०२ ॥

सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसें। सुर गुर संग पुरंदर जैसें ॥
करि कुल रीति बेद बिधि राऊ। देखि सबहि सब भांति बनाऊ ॥

वशिष्ठ मुनि सहित दशरथ जी कैसे शोभा को प्राप्त हुए जैसे बृहस्पति के संग में इन्द्र की शोभा होती है। राजा ने कुल रीति और वेद विधि करके सब भांति से बनाव देखकर।

सुमिरि रामु गुर आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई ॥
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगल दाता ॥

राम का स्मरण कर और गुरु की आज्ञा पाय राजा दशरथ जी ने शंख बजाकर प्रस्थान किया। देवता बरात देखकर प्रसन्न हुए और मंगलकारी सुन्दर फूल बरसाने लगे।

भयउ कोलाहल हय गय गाजे। ब्योम बरात बाजने बाजे ॥
सुर नर नारि सुमंगल गाईं। सरस राग बाजहिं सहनाईं ॥

घोड़े और हाथियों के बोलने का बड़ा कोलाहल हुआ और आकाश में बरात के बाजे बजने लगे। देवताओं की स्त्रियां सुन्दर मंगल गीत गाने लगीं और रसीले राग से शहनाई बजने लगी।

घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरव करहिं पाइक फहराहीं ॥
करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना ॥

घण्टा घण्टियों की ध्वनि बरणी नहीं जाती और पैदलों के हाथ में झण्डियां फहरा रही थीं। हंसी करने में प्रवीण और गाने में चतुर भांड़ अनेक खेल करते जाते हैं।

दो०–तुरग नचावहिं कुअंर बर अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बंधान ॥ ३०३ ॥

मृदंग और निशान के शब्द की गति पर सुन्दर कुंवर घोड़ों को नचाने लगे जिसकी गति को देख चतुर नट चकित होकर देखने लगे, क्योंकि वे ताल के विधान से नहीं डिगते ॥ ३०३ ॥

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता ॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुं सकल मंगल कहि देई ॥

जैसी बरात बनी उसका वर्णन करते नहीं बनता, सुन्दर शुभ फल देने वाले सगुन होने लगे। नीलकण्ठ पक्षी बाईं ओर अपना चारा ले रहा था, मानों सब मंगल कहे देता है।

दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूं पावा ॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी ॥

दाहिनी ओर कौवा सुन्दर खेत में बैठा दिखाई दिया और न्योले का दर्शन सबको मिला। मन के अनुकूल त्रिविध वायु बहने लगी, घड़े को जल से भर गोद में बालक लिए सुन्दर (सोहागिन) सन्मुख आ रही है।

लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा ॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई ॥

लोमड़ी ने बारम्बार दर्शन दिया, गौ सन्मुख बछड़े को दूध पिला रही थी। मृगों का झुण्ड दाहिनी ओर से आया मानों आनन्द का समूह ही दिखाई दिया है।

छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी ॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥

क्षेमकरी पक्षी विशेष क्षेत्र कर रहा था और श्यामा पक्षी बाईं ओर सुन्दर वृक्ष पर बैठी देख पड़ी। सामने दही और मछली आते देखा, हाथ में पुस्तक लिए दो चतुर ब्राह्मण दिखाई दिये।

दो०—मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार ॥ ३०४ ॥

मंगलमय और कल्याणमय वांछित फल देने वाले सगुन मानों सच्चे होने के निमित्त एक साथ ही हुए ॥ ३०४ ॥

मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुन्दर सुत जाकें ॥
राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दशरथु जनकु पुनीता ॥

सब मंगल और सगुन उनके सुगम हैं जिनके सगुन रूप ब्रह्म सुन्दर पुत्र हैं। राम ऐसा दुलहा और सीता ऐसी दुलहिन तथा दशरथ जनक ऐसे पवित्र समधी।

सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम सांचे ॥
एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना ॥

ऐसा विवाह सुन सब सगुन आकर नाचने लगे कि अब ब्रह्माजी ने हमको सच्चा किया। इस प्रकार बरात ने प्रयान किया तब घोड़े हाथी गर्जने लगे और नगाड़ा आदि बजने लगे।

आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बंधाए सेतू ॥
बीच बीच बर बास बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए ॥

सूर्यवंश में ध्वजारूपी दशरथजी आते हुए जान जनक जी ने नदियों पर पुल बंधवा दिया। मार्ग के बीच में उत्तम निवास स्थान बनवा दिये जिनमें देवलोक के समान सम्पदा छा रही है।

असन सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले॥

भोजन का पदार्थ, शयन स्थान, उत्तम वस्त्र, अपने मन के अनुसार पाते हुए चले हैं। नित्य अपनी इच्छा के अनुसार नया सुख पाकर सब बराती अपने अपने घर का सुख भूल गये।

दो०—आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान॥ ३०५॥

आनन्द के बाजों की ध्वनि और नगाड़ों का शब्द सुन सुन्दर बरात को आते हुए जान हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजाकर मिथिला नगर निवासी अगवानी लेने चले॥ ३०५॥

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा॥
भरे सुधासम सब पकवाने। नाना भांति न जाहिं बखाने॥

सोने के कलश, सुन्दर कटोरे, थाल और अनेक प्रकार के सुन्दर पात्र जिनमें अमृत समान सब पकवान भांति भांति के भरे हुए हैं जिनका बखान नहीं किया जा सकता।

फल अनेक बर वस्तु सुहाईं। हरषि भेंट हित भूप पठाईं॥
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना॥

अनेक प्रकार के मधुर फल और सुन्दर वस्तुएं प्रसन्न होकर जनक ने भेंट के निमित्त भेजे। आभूषण, वस्त्र, अनेक बड़ी बड़ी मणि, अनेक भांति के पक्षी, हरिण, घोड़े, हाथी तथा बहुत प्रकार के वाहन।

मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भांति महिपाल पठाए॥
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि कांवरि चले कहारा॥

मंगल और सगुनदायक सुन्दर सुगन्ध से युक्त बहुत भांति के पदार्थ राजा ने भिजवा दिये। दही चिउड़ा आदि भेंट की अपार वस्तुओं को बहंगी में भर भर कहार ले चले।

अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भर गाता॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना॥

अगवानियों ने जब बरात देखी तब हृदय में बड़ा आनन्द हुआ शरीर में पुलकावली हो गई। अगवानियों को ठाट सहित देख बरातियों ने प्रसन्न होकर नगाड़ा बजवाया।

दो०—हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल।
जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल॥ ३०६॥

प्रसन्न हो मिलने के निमित्त दोनों ओर के सवार कुछ बाग ढीली करके इस प्रकार चले मानों आनन्दरूपी दो समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर मिल रहे हों॥ ३०६॥

बरषि सुमन सुर सुन्दरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभीं बजावहिं॥
वस्तु सकल राखीं नृप आगे। विनय कीन्हि अति अनुरागें॥

फूल वर्षा कर देवताओं की स्त्रियां गान करने लगीं और प्रसन्न हो देवता दुन्दुभी बजाने लगे। सब सामग्री राजा दशरथ जी ने रख दी और बहुत प्रीति से विनती की।

प्रेम समेत रायं सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुं चले लवाई॥

प्रेम सहित सब वस्तुओं को दशरथ जी ने लिया और बकसीस करके, वह सब याचकों को दे दिया। फिर पूजन कर बहुत मान और बड़ाई के साथ जनवासे को ले चले।

बसन विचित्र पांवड़े परहीं। देखि धनदु धन मदु परिहरहीं॥
अति सुन्दर दीन्हेउ जनवासा। जहं सब कहुं सब भांति सुपासा॥

भांति भांति के रंग बिरंगे वस्त्रों के पांवड़े पड़ गए, उस पर राजा दशरथ पैर रखते जाते हैं, जिनको देखकर कुबेर भी धन का अभिमान छोड़ देते हैं और देवता फूल वर्षा कर जय जयकार कहते हैं। बहुत ही सुन्दर जनवासा दिया जहां सबको सब प्रकार से सुपास मिले।

जानी सियं बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयं सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥

सीताजी पुर में बरात आई जान कुछ अपनी महिमा प्रत्यक्ष प्रकट की हृदय में स्मरण कर सब सिद्धियों को बुलाया और दशरथ की पहुनाई करने को जनवासे में भेज दिया।

दो०—सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहां जनवास।
लिएं संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥ ३०७॥

सब सिद्धियां सीता की आज्ञा सुन और सब सुख तथा स्वर्ग लोक का भोग विलास लिए हुए वहां आई जहां जनवासा था॥ ३०७॥

निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भांती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥

अपने अपने निवास स्थान को देख बराती लोग देवताओं के सम्पूर्ण सुख को सब प्रकार सुलभ जानने लगे। विभव का भेद कुछ किसी ने नहीं जाना सब बराती जानकी का बखान करने लगे।

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयं हेतु पहिचानी॥
पितु आगमनु सुनत दोउ भाई। हृदयं न अति आनंदु अमाई॥

सीताजी की महिमा रामजी जान गए और हेतु पहचान मन में बहुत प्रसन्न हुए, पिता का आना सुन दोनों भाईयों को बहुत ही आनन्द हुआ जो हृदय में नहीं समा सकता था।

सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालचु मन माहीं॥
बिस्वामित्र विनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु बिसेषी॥

संकोच से गुर से कह नहीं सके परन्तु पिता के दर्शन को लालच मन में बहुत थी। विश्वामित्र ने जब उन दोनों की बड़ी नम्रता देखी तब उनके हृदय में बड़ा ही सन्तोष उत्पन्न हुआ।

हरषि बंधु दोउ हृदयं लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥
चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुं सरोवर तकेउ पिआसे॥

प्रसन्न होकर दोनों को हृदय से लगा लिया, शरीर पुलकित हो गया और नेत्र में जल भर आया जहां दशरथ जी जनवासे में थे वहां इस प्रकार चले जैसे प्यासा सरोवर को देख दौड़ता है।

दो०—भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत।
उठे हरषि सुखसिंधु महुं चले थाह सी लेत॥३०८॥

राजा दशरथ ने जब विश्वामित्र मुनि को अपने दोनों पुत्रों सहित आते देखा तब आनन्द में मग्न होकर उठे और सुखरूपी सागर में थाह लेने की भांति चले॥ ३०८॥

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा॥
कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई॥

राजा ने बार बार चरण रज शिर पर धारण कर मुनि को दण्डवत किया। विश्वामित्र जी ने राजा को हृदय से लगा और आशीर्वाद देकर कुशल पूछा।

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई॥
सुत हियं लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे॥

फिर दोनों भाइयों को दण्डवत प्रणाम करते देख राजा को ऐसा सुख हुआ कि हृदय में नहीं रुक सका। पुत्रों को हृदय से लगा कठिन दुःख इस प्रकार भूल गये मानों मरे हुए शरीर में फिर प्राण आ गया।

पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम मुदित मुनिबर उर लाए॥
विप्र बृंद बंदे दुहुं भाई। मनभावती असीसें पाईं॥

फिर बशिष्ठ मुनि के चरणों पर शिर नवाया तथा प्रेम में मग्न हो प्रसन्नता पूर्वक मनिवर वशिष्ठ जी ने दोनों भाइयों को हृदय से लगा लिया। फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों को प्रणाम किया और उनसे भी मन को प्रिय लगने वाली अशीष पाई।

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥

भरतजी ने छोटे भाई शत्रुघ्न सहित प्रणाम किया तो रामजी ने उठा दोनों भाईयों को हृदय से लगा लिया। लक्ष्मण जी दोनों भाइयों को देख प्रसन्न हुए और प्रेम से परिपूर्ण अङ्ग होकर मिले।

दो०—पुरंजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत॥३०९॥

नगर के लोग, कुटुम्बीजन, जाति के लोग, याचक, मन्त्री और मित्र इन सबको परम कृपालु और अति नम्र प्रभु रामचन्द्रजी यथायोग्य मिले ॥ ३०९ ॥

रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी ॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी ॥

राम को देख सब बरात शीतल हो गई वह प्रीति की रीति बखानी नहीं जा सकती। राजा के समीप चारों पुत्र ऐसे शोभायमान थे, मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष शरीर धारण किए बैठे हों।

सुतन्ह समेत दशरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी ॥
सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना। नाकनटीं नाचहिं करि गाना ॥

पुत्रों सहित राजा दशरथ को देखकर नगर के सब नर नारी बहुत प्रसन्न हुए। देवता फूल वर्षा कर निसान बजाने लगे और अप्सराएं गीत गाती हुई नाचने लगीं।

सतानंद अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बंदीजन ॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु मांगि फिरे अगवाना ॥

सतानन्द ब्राह्मण तथा मन्त्रीगण, मागध, सूत, विद्वान् और भाट इत्यादि बरात समेत राजा का सम्मान कर आज्ञा पाय अगवानी कर लौटे।

प्रथम बरात लगन तें आई। तातें पुर प्रमोदु अधिकाई ॥
ब्रह्मानंदु लोग सब लहहीं। बढ़हुं दिवस निसि बिधि सन कहहीं ॥

लगन से पहिले बरात आई इस कारण पुर में अधिक आनन्द हुआ। सब लोग ब्रह्मानन्द का सुख पाने लगे इस कारण ब्रह्माजी से प्रार्थना करने लगे कि दिन और रात बढ़ती जाय।

दो०—रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
जहं तहं पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज ॥ ३१० ॥

रामचन्द्र और सीता शोभा की सीमा है। दशरथ और जानकी दोनों पुण्य कर्मों की सीमा हैं। नगर निवासी नर नारी झुण्ड मिलकर जहां तहां इसी प्रकार कहने लगे ॥ ३१० ॥

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही ॥
इन्ह सम काहुं न सिव अवराधे। काहुं न इन्ह समान फल लाधे ॥

जनकजी के सुकृत की मूर्ति सीता जी और दशरथ जी के सुकृत की मूर्ति राम जी ने देह धारण की इनके समान किसी ने महादेव जी की अराधना की और न इसके समान किसी ने फल पाया।

इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूं होनेउ नाहीं ॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी ॥

इनके समान संसार में न कोई हुआ न कोई है, और होने वाला भी नहीं है हम फल सहित सुकृत की राशि हैं, जो संसार में जन्म लेकर जनक जी के पुरवासी हुए।

जिन्ह जानकी राम छबि देखि। को सुकृती हम सरिस बिसेषी॥
पुनि देखब रघुबीर बिग्राहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥

जिन्होंने जनक जी और राम जी की छवि देखी, हमारे समान अधिक पुण्यवान् और कौन है फिर रघुनाथ का विवाह देखेंगे और भली भांति नेत्र लाभ का फल पावेंगे।

कहहिं परसपर कोकिलबयनीं। एहि बिग्राहं बड़ लाभु सुनयनीं॥
बड़ें भाग बिधि बात बनाई। नयन ग्रतिथि होइहहिं दोउ भाई॥

कोकिला के समान बोलने वाली स्त्रियां कहने लगीं कि सुनयनी! यह विवाह बड़ा लाभदायक है। बड़े भाग्य से विधाता ने यह बात बनाई है कि दोनों भाई हमारे नेत्रों के अतिथि हुआ करेंगे।

दो०—बारहि बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय।
लेन ग्राइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय॥३११॥

बारम्बार प्रति के वश जनकजी सीताजी को बुलावेंगे और लेने के लिए करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर दोनों भाई आया करेंगे॥ ३११॥

बिबिध भांति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि ग्रस सासुर माई॥
तब तब राम लखनहि निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुखारी॥

अनेक प्रकार पहुनाई होगी ऐसा ससुराल किसको प्यारा नहीं होता। तब तब राम और लक्ष्मण जी के दर्शन करके सब पुरवासी सुखी हुआ करेंगे।

सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥
स्याम गौर सब ग्रंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे ग्राए॥

हे सखी! जैसी राम लक्ष्मण की जोड़ी है वैसे ही और दो बालक राजा के साथ में हैं। सांवरे गोरे सब अंग जिनके सुन्दर हैं जो देख आये हैं वे सब कहते हैं।

कहा एक मैं ग्राजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ संवारे॥
भरतु रामही की ग्रनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥

यह सुन एक ने कहा कि मैंने आज देखा है उनको तो मानो ब्रह्माजी ने अपने हाथ से रच कर बनाया है भरत और राम की मूर्ति एक रङ्ग की देख नर नारी कोई झट पट पहिचान नहीं सकते।

लखनु सत्रुसूदन एकरूपा। नख सिख ते सब ग्रंग ग्रनूपा॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुं त्रिभुवन कोउ नाहीं॥

लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी का रूप एक सा है नख से शिखा पर्यन्त सब अङ्ग अनुपम हैं। मन में भाते हैं परन्तु मुख से कहे नहीं जाते, उनकी उपमा के निमित्त तीनों लोक में कोई नहीं है।

छं०—उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुं कबि कोबिद कहैं।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एह अहैं॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुं चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥ ३४॥

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि कोई उपमा कहीं भी नहीं है तो कविराज और पंडित लोग क्या कहें ? बल, बिनय, विद्या, शील और शोभा के समुद्र हैं इस कारण इनके समान यही है। नगर की सब स्त्रियां अञ्चल पसार कर विधाता को यह विनय सुनाने लगीं कि इसी जनकपुर में सुन्दर चारों भाई विवाहे जायें और हम सुन्दर मंगल गावें॥ ३४॥

सो०—कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ॥ ३४॥

जनक नगर की स्त्रियां नेत्रों में जल भरकर पुलकित शरीर हो परस्पर कहने लगीं कि हे सखी ! हम लोगों का सब मनोरथ, शिवजी पूर्ण करें क्योंकि दोनों राजा पुण्य के समुद्र हैं॥ ३४॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। आनंद उमगि उमगि उर भरहीं॥
जे नृप सीय स्वयंबर आए। देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए॥

इस प्रकार सब स्त्रियां और पुरवासी मनोरथ करने और उमंग उमंग कर हृदय में आनन्द भरने लगे। जो राजा सीताजी के स्वयंबर में आये थे वे सब चारों भाइयों को देख बहुत सुखी हुए।

कहत राम जसु बिसद बिसाला। निज निज भवन गए महिपाला॥
गए बीति कछु दिन एहि भांती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती॥

और रामचन्द्र के निर्मल यश को वर्णन करते हुए सब अपने-अपने घर चले गये। इस प्रकार पुरवासियों और बरातियों को आनन्द पूर्वक कुछ दिन बीत गया।

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहनु मासु सुहावा॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारु। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥

मंगल का मूल लग्न दिन सुन्दर हेमंत ऋतु अगहन मास आ गया। तिथि, नक्षत्र, योग सुन्दर बार और लग्न शोध कर ब्रह्माजी ने विवाह का मुहुर्त ठीक किया।

पठै दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता॥

वही नारदजी के हाथ भेज दिया जो जनक जी के ज्योतिषियों ने विचारा था, सब लोगों ने बात सुनी तो बोले कि ज्योतिषी पण्डित दूसरे विधाता हैं।

दो०—धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥ ३१२॥

सब सुमङ्गल का मूल गोधूलि का निर्मल अनुकूल जानकर ब्राह्मणों ने राजा जनक से कहा कि गोधूलि का समय विवाह में शुभ है॥ ३१२॥

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा॥
सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब ल्याए॥

जनकजी ने अपने पुरोहित शतानन्द जी को बुलाकर कहा कि अब विलम्ब का क्या कारण है? तब शतानन्द ने मन्त्री को बुलाया और वह सब मंगल कलश सजाकर ले आये।

संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे॥
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता॥

शंखनिधान ढोल आदि बहुत से बाजे बजने लगे, मङ्गल कलश और सब सगुन द्रव्य सजाये। सुन्दर सोहागिन स्त्रियां गीत गाने लगीं विद्वान् ब्राह्मण वेदध्वनि करने लगे।

लेन चले सादर एहि भांती। गए जहां जनवास बराती॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू॥

इस प्रकार आदर से लेने चले और जहां बराती जनवासे में थे वहां गये। राजा दशरथ का समाज देखकर उन लोगों को इन्द्र का समाज बहुत छोटा लगने लगा।

भयउ समउ अब धारिअ पाऊ। यह सुनि परा निसानहि घाऊ॥
गुरहि पूछि करि कुल बिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥

दशरथ जी से कहा कि अब समय आ गया शीघ्र पधारिये, यह सुन नगाड़ा पर चोट पड़ने लगी। गुरु वशिष्ठजी से पूछकर कूलरीत के अनुसार दशरथ समाज सजाय मुनियों के संग चले।

दो०—भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि॥ ३१३॥

दशरथजी का भाग्य और ऐश्वर्य देख ब्रह्मा आदि देवता अपना जन्म वृथा जान सहस्र मुख वाले श्री शेषजी की अथवा शेषावतार श्री लक्ष्मणजी की सराहना करने लगे॥ ३१३॥

सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। बरषहिं सुमन बजाइ निसाना॥
सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥

देवतागण सुमङ्गल समय जानकर फल बरसाने और नगाड़ा बजाने लगे। शिव, ब्रह्मा आदि देवगणों के अनेक यूथ विमानों पर चढ़े।

प्रेम पुलक तन हृदयं उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू॥
देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे॥

प्रेम के कारण सबका शरीर पुलकित और हृदय में उत्साह भरा हुआ ऐसा देवता लोग रामजी का विवाह देखने चले। जनकपुर की शोभा देखकर देवता लोग बहुत प्रसन्न हुए और उस शोभा के सन्मुख उन लोगों को अपना अपना लोक छोटा लगने लगा।

चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥
नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना॥

मण्डप की अनेक प्रकार की सब अलौकिक रचना देखकर देवता लोग चकित होकर देखने लगे। नगर के सब स्त्री पुरुष रूपनिधान, सुघर, धर्मात्मा, सुशील और ज्ञानी थे।

तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारीं। भए नखत जनु बिधु उजिआरीं॥
बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुं न देखी॥

उनको देख देवता और उनकी स्त्रियों का तेज इस प्रकार मन्द हो गया जैसे चन्द्रमा के प्रकाश में नक्षत्रों का तेज, ब्रह्मा को विशेष अचम्भा हुआ, क्योंकि वहां उनकी करनी कहीं कुछ भी न दिखाई दी।

दो०—सिवं समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।
हृदयं बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु॥ ३१४॥

महादेवजी ने सब देवताओं को समझाया कि आश्चर्य करके मत भूलो, धीरज धर कर अपने-अपने हृदय में विचार करो कि सीताजी और श्री रघुवीरजी का विवाह है॥ ३१४॥

जिन्ह कर नामु लेत जगमाहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥

संसार में जिनका नाम लेने से सब अमंगल जड़ से नाश हो जाते हैं और चारों पदार्थ हथेली पर आ जाते हैं। शिवजी ने कहा कि हे देवताओं! यह वही सीता और राम हैं।

एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगें बर बसह चलावा॥
देवन्ह देखे दसरथु जाता। महामोद मन पुलकित गाता॥

इस प्रकार शिवजी ने देवताओं को समझाकर फिर अपने नन्दीश्वर को आगे-आगे चलाया। देवताओं ने दशरथजी को हृदय में बहुत प्रसन्न और पुलकित शरीर से जाते हुए देखा।

साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरें करहिं सुख सेवा॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी॥

साथ में साधुओं का समाज और ब्राह्मण मानो शरीर धारण किये देवता लोग सेवा के लिए उपस्थित हैं साथ में चारों पुत्र ऐसे शोभायमान थे मानो चारों अपवर्ग धारण किये हों।

मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी॥
पुनि रामहि बिलोकि हियं हरषे। नृपहिं सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥

मरकत मणि के समान रामचन्द्रजी और भरतजी और कनक (सुवर्ण) के समान लक्ष्मणजी और

शत्रुघ्नजी की जोड़ी देख देवताओं के मन में बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई । फिर वे लोग राम को देख हृदय में बहुत प्रसन्न हुए तथा दशरथजी की प्रशंसा करके बरसाये ।

दो०–राम रूपु नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि ।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि ॥ ३१५ ॥

नख से शिखा पर्यन्त रामचन्द्रजी का सुन्दर रूप देखकर बारम्बार पार्वती सहित शिवजी पुलकित शरीर हो नेत्रों में जल भरकर मग्न होने लगे ॥ ३१५ ॥

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा । तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा ॥
ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए । मंगल सब सब भांति सुहाए ॥

मोर के कण्ठ के समान कान्तिमान श्याम अङ्ग और बिजली के चमक को तिरस्कार करने वाले सुन्दर रंगीन वस्त्र धारण किये, विवाह के आभूषण, अनेक प्रकार के मंगलमय सब भांति सुन्दर धारण किये ।

सरद बिमल बिधु बदनु सुहावन । नयन नवल राजीव लजावन ॥
सकल अलौकिक सुंदरताई । कहि न जाइ मनहीं मन भाई ॥

शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख और नवीन कमल को लजाने वाले नेत्र । सब अनोखी सुन्दरता कही नहीं जाती, परन्तु मन-ही-मन भाता है ।

बंधु मनोहर सोहहिं संगा । जात नचावत चपल तुरंगा ॥
राजकुअंर बर बाजि देखावहिं । बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं ॥

मनोहर संग में भाई शोभायमान और चंचल घोड़ों को नचाते हुए जाते थे । राजकुमार सुन्दर घोड़ों को नचा रहे थे और भाट लोग साथ-साथ वंश की प्रशंसा सुना रहे थे ।

जेहि तुरंग पर रामु बिराजे । गति बिलोकि खगनायकु लाजे ॥
कहि न जाइ सब भांति सुहावा । बाजि बेषु जनु काम बनावा ॥

जिस घोड़े पर श्री रामचन्द्रजी विराजमान थे, उसकी गति को देखकर गरुड़जी भी लज्जित हो जाते थे । सब प्रकार से सुहावना जो कहा नहीं जाता, मानो कामदेव ने घोड़े का वेष बनाया है ।

छं०–जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई ।
आपनें बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई ॥
जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे ।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे ॥ ३५ ॥

मानो घोड़े का वेष बनाकर कामदेव रामचन्द्रजी के निमित्त अत्यन्त शोभायमान है । अपनी सुन्दर अवस्था बल, रूप, गुण और चाल से सब लोगों को मोहित करता है, जिसकी जड़ाऊ जीन सुन्दर मोती और मणि-मणिक से जड़ी हुई चमक रही थी, करधनी और सुन्दर लगाम देखकर देवता, मनुष्य और मुनि ठगे से रह गये ॥ ३५ ॥

दो०—प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव॥ ३१६॥

रामचन्द्रजी के मन् से अपने मन को लवलीन कर चलता हुआ घोड़ा ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो तारा गण और बिजली से शोभायमान मेघ सुन्दर मोर को नचाता है॥ ३१६॥

जेहिं बर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥

जिस सुन्दर घोड़े पर रामजी सवार थे उसका वर्णन शारदा भी नहीं कर सकती। शिवजी रामजी के रूप को देख प्रेम में मग्न हो गये और उन्हें अपने पन्द्रह नेत्र बहुत ही प्यारे लगे।

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहें॥
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने॥

हरि ने हित के साथ जब अपना रामरूप देखा तो लक्ष्मी समेत भगवान् भी मोहित हो गये। रामजी के रूप की शोभा देख ब्रह्माजी भी प्रसन्न हुए और अपने को आठ ही नेत्र जान पछताने लगे।

सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना॥

रामजी के रूप को देखकर स्वामी कार्तिक के मन में बहुत हर्ष हुआ, क्योंकि ब्रह्माजी से बड़े नेत्रों को लाभ हुआ था। रामजी के दर्शन कर इन्द्र ने गौतम के शाप को अच्छा समझा।

देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥
मुदित देवगन रामहि देखी। नृपसमाज दुहुं हरषु बिसेषी॥

सब देवता इन्द्र की बड़ाई करके कहने लगे कि आज इन्द्र के समान कोई नहीं है। देवतगण राम को देख प्रसन्न हुए और दोनों राज समाज में विशेष आनन्द छा गया।

छं०—अति हरषु राज समाज दुहु दिसि दुंदुभीं बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी॥
एहि भांति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछनि हेतु मंगल साजहीं॥ ३६॥

राज समाज में दोनों ओर अति आनन्द छा रहा था और बहुत से नगाड़े बज रहे थे, देवता प्रसन्न हो श्री रामचन्द्रजी की जय! कहकर फूल बर्षा रहे थे, इस प्रकार बरात आती जान बहुत से बाजे बजने लगे और रानी सुहागिनियों को बुलाकर परछिन निमित्त मङ्गल का साज सजाने लगीं॥ ३६॥

दो०–सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल संवारि।
चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनी बर नारि॥ ३१७॥

अनेक प्रकार से आरती सजाय और सब मंगल पदार्थ संवार कर सुन्दर गजगामिनी स्त्रियां प्रसन्न मन से परछिन करने चलीं ॥ ३१७॥

बिधुबदनीं सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति मदु मोचनि॥
पहिरें बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजें सरीरा॥

चन्द्रमा के समान मुख और हिरण के बच्चों के समान नेत्रों वाली स्त्रियां अपने शरीर की शोभा से कामदेव की स्त्री के मद को दूर करने वाली रङ्ग-रङ्ग के सुन्दर वस्त्र पहिने और शरीर पर सब आभूषण साजे।

सकल सुमंगल अंग बनाएं। करहिं गान कलकंठि लजाएं॥
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चालि बिलोकि काम गज लाजहिं॥

सब अङ्ग सुन्दर मंगलमय बनाये ऐसा मधुर गान कर रही थीं कि जिसे सुन कोकिला भी लज्जित हो जाती। कँकण और नूपुर बज रहे थे, जिनकी चाल देख कामदेव और गजराज लज्जित हो जाते हैं।

बाजहिं बाजने बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा॥
सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥

अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे, आकाश और नगर में चारों ओर सुन्दर मंगलाचार हो रहा था। इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और जो स्वभाव ही से पवित्र सयानी देवांगनायें हैं।

कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥
करहिं गान कल मंगल बानीं। हरष बिबस सब काहुं न जानीं॥

कपट से सुन्दर स्त्री का भेष बनाये सब रनिवास में आ मिलीं और मधुर वाणी में मंगल गाने लगीं वहां सब लोग आनन्द में मग्न थे इस कारण उनको किसी ने भी नहीं पहचाना।

छं०–को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्मु बर परिछन चली।
कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली॥
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु सकल हियं हरषित भई।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई॥ ३७॥

आनन्द के वश कौन किसको पहचाने सब रामचन्द्रजी को परिछन करने चलीं, मीठे स्वर से सुन्दर गान हो रहा था, बाजे बज रहे थे देवताओं के पुष्प-वृष्टि करने से और भी सुन्दर शोभा हो रही थी, आनन्दकन्द दुलहा (श्रीरामचन्द्रजी) को देख सब स्त्रियां मन में प्रसन्न हुईं और कमल समान सबके नेत्रों में जल उमड़ आया, सुन्दर शरीर में पुलकावली छा गई ॥ ३७॥

दो०–जो सुखु भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु॥ ३१८॥

जो सुख सीताजी की माता (सुनयना) के मन में श्रीरामजी के सुन्दर स्वरूप को देखकर हुआ उस सुख का हजारों शारदा और शेष सौ कल्प में भी नहीं कह सकते ॥ ३१८ ॥

नयन नीरु हटि मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी॥
बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू॥

रानियों के नेत्रों में आनन्द के कारण जल आ गया, उसको मंगल जानकर रोक लिया और प्रसन्न मन से सब रानी परछिन करने लगीं। फिर वेद रीति और कुल के व्यवहार अनुसार अच्छे प्रकार से सब नेग और आचार किया।

पंच सबद धुनि मंगल गाना। पट पांवड़े परहिं बिधि नाना॥
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा॥

पांच प्रकार के शब्दों की ध्वनि तथा मांगलिक गान हो रहा था, अनेक प्रकार के वस्त्र के पांवड़े पड़ रहे थे। आरती करके रानियों ने अर्घ दिया, तब रामचन्द्रजी मण्डप में पधारे।

दसरथु सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे॥
समयं समयं सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला॥

दशरथजी भी समाज सहित विराजमान हुए, जिसके ऐश्वर्य को देख इन्द्र आदि लोकपाल लज्जित हो गये। समय-समय पर देवता फूल वर्षा रहे थे, ब्राह्मण समयानुकूल शांति पाठ पढ़ रहे थे।

नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपनि पर कछु सुनइ न कोई॥
एहि बिधि रामु मंडपहिं आए। अरघु देइ आसन बैठाए॥

आकाश और नगर में कोलाहल हो रहा था। जिससे कोई अपना पराया कुछ नहीं सुन सकता था। इस प्रकार रामजी जब मण्डप में आये तब अर्घ देकर उन्हें आसन पर बैठाया।

छं०–बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुखु पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रबि छबि सुफल जीवन लेखहीं॥ ३८॥

आसन पर बैठा आरती कर वर को देखकर सुख पाने लगीं और बहुत रत्न, वस्त्र, आभूषण न्यौछावर कर सब स्त्रियां मंगल गाने लगीं। ब्रह्मा आदि देवता श्रेष्ठ ब्राह्मणों का स्वरूप धारण कर कौतुक देख रहे थे और सूर्यवंशरूपी कमलों को प्रफुल्लित करने को सूर्य के समान श्रीरामचन्द्रजी की छवि को देख अपने जीवन को सफल मान रहे थे॥ ३८॥

दो०–नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदयं समाइ॥ ३१९॥

नाऊ, बारी, भाट, नट, रामजी को न्योछावर पाय प्रसन्न हो शिर नवाया आशीर्वाद देने लगे और उन लोगों के हृदय में ऐसा आनन्द उत्पन्न हुआ कि हृदय में नहीं समा सका ॥ ३१६ ॥

मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं। करि बैदिक लौकिक सब रीतीं॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कवि लाजे॥

फिर जनक जी और दशरथ जी वैदिक और लौकिक रीति करके बड़े प्रेम से मिले। मिलते समय दोनों महाराज अत्यन्त सुशोभित हुए, जिनकी उपमा खोज कर कवि लजा गये।

लही न कतहुं हारि हियं मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे।

जब उपमा कहीं नहीं मिली तब हृदय में हार मान मन में ठान लिया कि इनके समान उपमा वाले यही हैं। समधियों को देख देवता प्रसन्न हुए और फूल वर्षाकर यश गाने लगे।

जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें॥
सकल भांति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥

ब्रह्मा ने जब से जगत् उपजाया तब से बहुत सा ब्याह देखा और सुना। परन्तु सब प्रकार से समान साज समाज वाले बराबर के समधी हम लोगों ने आज ही देखे।

देव गिरा सुनि सुंदर सांची। प्रीति अलौकिक दुहु दिसि माची॥
देत पांवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मंडपहिं ल्याए॥

देवताओं की सुन्दर और सच्ची वाणी सुन दोनों ओर अलौकिक प्रीति बढ़ने लगी। सुन्दर पांव-बिछात और अर्ध देते हुए आदर सहित जनकजी दशरथजी को मण्डप में ले आये।

छं०—मंडपु बिलोकि बिचित्र रचनां रुचिरतां मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुं आनि सिंघासन धरे॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही॥

मण्डप की विचित्र रचना और सुन्दरता को देख मुनियों का मन मोहित हो गया। बुद्धिमान जनकजी ने वहां अपने हाथ से लाकर सबके निमित्त सिंहासन रक्खा और कुल देवता (शतानंद) जी के समान वशिष्ठजी का पूजन किया और विनती कर आशीर्वाद पाकर फिर बड़े प्रेम से विश्वामित्र जी की पूजा करने लगे। उस परम प्रीति की रीति कहने में नहीं आ सकती॥ ३६॥

दो०—बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस।
दिए दिब्य आसन सबहि सब सन लही असीस॥ ३२०॥

फिर राजा जनक जी ने वामदेव आदि ऋषियों की आनन्दपूर्वक पूजा करके सबको दिव्य [illegible] दिया और सबसे आशीर्वाद पाया॥ ३२०॥

बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा॥
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई॥

फिर ईश के समान जानकर दशरथ जी की पूजा की, दूसरा भाव नहीं जाना। फिर हाथ जोड़ कर अपने भाग्य वैभव की प्रशंसा कर जनक जी ने दशरथ जी की विनती और बड़ाई की।

पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भांती॥
आसन उचित दिए सब काहू। कहौं काह मुख एक उछाहू॥

फिर राजा जनक ने सब बरातियों को समधी के समान सब भांति से आदर सहित पूजन किया सबको यथा योग्य आसन दिया, उस उत्सव को मैं एक मुख से क्या कहूं।

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥
बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥

जनक जी ने दान, मान, विनती और मधुर वाणी से सब बरातियों का सम्मान किया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, लोकपाल और सूर्य आदि देवता जो रघुनाथ जी के प्रभाव को जानते हैं।

कपट बिप्र बर बेष बनाएं। कौतुक देखहिं अति सचु पाएं॥
पूजे जनक देव सम जानें। दिए सुआसन बिनु पहिचानें॥

सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों का कपट स्वरूप धारण किये अत्यन्त गुप्त-भाव से सब कौतुक देखने लगे। जनकजी ने देवता समान जान उनका भी पूजन और बिना पहिचाने ही उन्हें सुन्दर आसन दिया।

छं०—पहिचान को केहिं जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनंदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अनलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए॥ ४०॥

वहां कौन किसको पहिचानता और जानता था सबको अपनी सुधि भूल गई, आनंदकंद दुलहा को देखकर दोनों ओर आनन्द छा गया, सुजान रामचन्द्रजी ने देवताओं को देखकर उनका मानसिक पूजन किया और मानसिक आसन दिये। ऐसे सरल स्वभाव वाले प्रभु को देख ब्रह्मादि देवता मन में बहुत ही प्रसन्न हुए॥ ४०॥

दो०—रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥३२१॥

रामचन्द्र जी के चन्द्रमुख की छवि को सुन्दर नेत्र चकोर की भांति आदर सहित पान करने लगे, किसी के हृदय में प्रेम आनन्द थोड़ा नहीं था॥ ३२१॥

समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंदु मुनि आए॥
बेगि कुअंरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई॥

सुन्दर समय देखकर वशिष्ठ जी ने शतानंद को बुलाया, उनको आज्ञा सुनकर आदर सहित शतानंद मुनि आये। उनसे वशिष्ठजी ने कहा अब जाकर शीघ्र कुंवरि को ले आवो, मुनि की आज्ञा पाय शतानंद जी मन में आनन्दित होकर चले।

रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी॥
बिप्र बधू कुलबृद्ध बोलाईं। करि कुल रीति सुमंगल गाईं॥

शतानन्दजी ने जाकर रानी से जानकी जी को मण्डप में ले जाने को कहा तब पुरोहित शतानंद जी की वाणी सुनकर सखियों सहित सयानी रानी (सुनयना) बहुत प्रसन्न हुईं। ब्राह्मणों को और कुल में जो बड़ी स्त्रियां थीं, उनको बुलाकर कुल की रीति करके सुन्दर मङ्गल गाने लगीं।

नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभायं सुंदरी स्यामा॥
तिन्हहि देखि सुखु पावहिं नारी। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारीं॥

ब्रह्मा आदि देवताओं की स्त्रियां सब साधारण सुन्दरी और श्यामा जो स्त्रियों के वेष में वहां थीं। उनको देख सब स्त्रियां खुश हो गईं और बिना पहिचाने प्राण से भी प्यारी मानने लगीं।

बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी॥
सीय संवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लवाई॥

रानी उनको पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती के समान जान बारम्बार सत्कार करने लगीं। सीता जी का शृंगार कर समाज बना आनन्दित हो सब सखियां मण्डप की ओर ले चलीं।

छं०—चलिं ल्याइ सीतहि सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनीं।
नवसप्त साजें सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनीं॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥ ४१॥

सब सुन्दरी सखियां सोलह शृंगार साजे मतवाले हाथी के समान चाल वाली और सब स्त्रियां सुमङ्गल सजाकर आदर सहित सीता जी को मण्डप की ओर ले चलीं, उनके मधुर स्वर का गान सुन मुनियों ने ध्यान छोड़ दिया और काम तथा कोकिला को लाज आ गई, मञ्जीर, नूपुर और कंकड़ सुन्दर ताल गति से बजने लगे॥ ४१॥

दो०—सोहति बनिता बृंद महुं सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥३२२॥

स्त्रियों के समूह में स्वाभाविक सुहावनी सीताजी ऐसी शोभायमान थीं, मानो छविरूपी स्त्रियों के झुण्ड के बीच में बहुत ही सुन्दर शोभायमान हों॥ ३२२॥

सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई ॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भांति पुनीता ॥

सीता जी की सुन्दरता कही नहीं जा सकती, क्योंकि मेरी बुद्धि बहुत छोटी है और सुन्दरता बहुत है। रूप की राशि और सब प्रकार से पवित्र सीताजी को बरातियों ने आते हुए जान।

सबहि मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरनकामा ॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनंदु जेता ॥

सब लोगों ने मन में प्रणाम किया और रामजी सीता जी को देख पूर्ण काम हो गये। दशरथ जी पुत्र सहित बहुत प्रसन्न हुए और उनके हृदय में जितना आनन्द हुआ वह कहा नहीं जा सकता।

सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला ॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी ॥

देवता प्रणाम करके फूल वर्षाने लगे, मङ्गल की मूल मुनिजनों की आशीश ध्वनि होने लगी। गाने और बाजों का कोलाहल होने लगा। नगर के नर नारी प्रेमानन्द में मग्न हो गए।

एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई ॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुं कुलगुर सब कीन्ह अचारू ॥

इस प्रकार सीताजी जब मण्डप में आईं, तब मुनिश्वर लोग आनन्दित हो शांति पाठ पढ़ने लगे। उस समय दोनों कुल गुरुओं ने शास्त्र विधि और कुल व्यवहार के अनुसार रीति भांति की।

छं०—आचारु करि गुरु गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं ॥
मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुं चहैं।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण लोग प्रसन्न हो सब आचार करके, गुरु, पार्वती और गणेश जी की पूजा करने लगे और सब देवता प्रत्यक्ष होकर पूजा लेने और बड़ी प्रसन्नता से आशीर्वाद देने लगे। मधुपर्क और मङ्गल वस्तु जिस समय मुनियों के मन में जो इच्छा हो वह सोने के कटोरों में भरकर हाथ में लिये सेवक उपस्थित रहते ॥ ४२ ॥

कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो।
एहि भांति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियो ॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेम काहु न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करैं ॥ ४३ ॥

कुल की रीति को प्रीति सहित सूर्य नारायण बतलाकर उसी अनुसार आदर से कराने लगे। इस प्रकार देवताओं की पूजा करा कर सीता जी को सुन्दर सिंहासन दिया गया। सीता जी और रामचन्द्रजी का पारस्परिक देखना ऐसा गूढ़ था कि किसी के समझ में नहीं आ सकता था, क्योंकि वह प्रेम, मन, बुद्धि और श्रेष्ठ वाणी से अगोचर है उसको कवि कैसे प्रकट करे ॥ ४३ ॥

दो०—होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं ॥३२३॥

होम के समय अग्नि, वेद शरीर धारण करके आये और उन्होंने अत्यन्त स्नेह के साथ आहुति ली, और वेदों ने ब्राह्मण वेश धारण कर विवाह की विधि कह दी ॥ ३२३ ॥

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी ॥
सुजस सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई ॥

जनक जी की पटरानी और जगत में प्रसिद्ध ऐसी सीता जी की माता कैसे बखानी जा सकती हैं। मानो सुयश, सुकृति, सुख और सुन्दरता इन सबके समेत विधाता ने उनकी रचना की है।

समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं। सुनत सुआसिनी सादर ल्याईं ॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना ॥

समय जानकर मुनीश्वरों ने रानी सुनैना को बुलाया और आज्ञा पाते ही सौभाग्यवती स्त्रियां आदर सहित ले आईं। राजा जनकजी के बाईं ओर रानी सुनैना ऐसी शोभायमान हुई, जैसे राजा हिमाचल के संग पार्वती जी की माता मैंना शोभायमान थीं।

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे ॥
निज कर मुदित रायं अरु रानी। धरे राम के आगें आनी ॥

सोने का कलश और मणियों का सुन्दर थाल, पवित्र तथा सुगन्धित मंगल जल से भरा हुआ अपने हाथ से प्रसन्नतापूर्वक राजा और रानी ने राम जी के आगे लाकर रक्खा।

पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी ॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे ॥

तब मुनिजन मंगल वाणी से वेद पढ़ने लगे, पाणि-ग्रहण का समय जानकर आकाश से देवता फूलों की वर्षा करने लगे। दुलहा (श्रीरामजी) को देख राजा रानी प्रेम में मग्न हो गये और उनका पवित्र चरण प्रक्षालन करने लगे।

छं०—लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुं दिसी चली ॥
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं ॥ ४४ ॥

जिस समय राजा रानी श्रीरामचन्द्र जी का चरण कमल धोने लगे। उस समय उनके शरीर में प्रेम से पुलकावली हो आई, आकाश और नगर से गान निशान तथा जय ध्वनि उमंग कर मानों चारों ओर फैलकर बहने लगी। जो चरण कमल शिवजी के हृदय रूपी सरोवर में सदैव विराजते हैं, जिन पुण्यरूपी चरणों को स्मरण करते ही मन विशुद्ध हो जाता है और कलिकाल के सब पाप भाग जाते हैं॥ ४४॥

जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥ ४५॥

जिस चरण को छूकर गौतम की स्त्री जो पापों से परिपूर्ण थी। उसने उत्तम गति पाई जिस चरण कमलके मकरँद (श्री गङ्गा जी) को शिवजी ने शिर पर धारण किया है तथा देवतागण जिसको पवित्रता की मर्यादा कहते हैं जिस चरण कमल में मुनिजन अपने मन को भौंरों की भांति लगाये रहते हैं, तथा योगीजन जिन चरणों का सेवन करके इच्छानुसार गति पाते हैं, उसी चरणारविन्द को भाग्यवान् जनकजी जब धोने लगे तब सब लोग जय-जय बोलने लगे॥ ४५॥

बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुर करैं।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनंद भरैं॥
सुखमूल दूलहु देखि दम्पति पुलक तन हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥ ४६॥

रामचन्द्र जानकी का करतल जोड़ दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करने लगे, वशिष्ठजी ने नारायण से दशरथ पर्यन्त और शतानन्द ने नारायण से जनक पर्यन्त शाखोच्चार किया। इस प्रकार जानकी का पाणि-ग्रहण हुआ तब ब्रह्मा आदि देवता, मनुष्य और मुनि लोग आनन्दित हुए। आनंदकंद दुलहा को देखकर राजा रानी दोनों का शरीर पुलकित हो गया और हृदय में हुलसे, और हृदय प्रफुल्लित हो गया। अनन्तर लोक और वेद की रीति से भूप शिरोमणि राजा जनक ने कन्यादान दिया॥ ४६॥

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सांवरीं।
करि होमु बिधियत गांठि जोरी होन लागीं भावरीं॥ ४७॥

हिमाचल ने जैसे पार्वती महादेवजी को और समुद्र ने लक्ष्मी हरि भगवान् को दी थी, वैसे ही जनक जी ने रामचन्द्र जी को सीताजी को समर्पण किया जिससे राजा जनक की नवीन और उज्ज्वल कीर्ति संसार में फैल गई, अब विदेह विनती कैसे करें, क्योंकि उनकी सांवली मूर्ति ने और भी विदेह कर दिया, फिर विधिपूर्वक होम करके गांठ जोड़ दी और परिक्रमा होने लगी॥ ४७॥

दो०–जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगल गान निसान।
सुन हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान ॥३२४॥

उस समय जय ध्वनि, बंदीध्वनि, वेदध्वनि, मंगलगान और बाजों के शब्द को सुनकर सुज्ञानी देवता बहुत प्रसन्न हुए और कल्प वृक्ष का फूल बर्षाने लगे। देवताओं ने पहिले साधारण फूल वर्षाया था पीछे से भांवरि के समय कल्पवृक्ष के फूलों की वृष्टि की ॥ ३२४ ॥

कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं ॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी ॥

श्रीराम और जानकी सुन्दर भांवरी देने लगे और सब लोग आदर सहित नेत्रों का लाभ लेने लगे। सीता राम की मनोहर जोड़ी बरणी नहीं जाती। उनको जो छकु उपमा दी जाय, सो थोड़ी है।

राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं ॥
मनहुं मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा ॥

राम सीता की सुन्दर परिछाहीं मणियों के खम्भों में जगमगाने लगी। मानो कामदेव और रति अनेक रूप धारण कर रामचन्द्र जी का अनुपम विवाह देखने आये हैं।

दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी ॥
भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे ॥

दर्शन की लालसा तो है, परन्तु सकुच भी कुछ थोड़ी नहीं है। इस कारण बारम्बार प्रगट होते और छिप जाते हैं, उस समय देखने वाले मग्न हो गये। जनक सरीखे अपने को भूल गये तो दूसरों को क्या कहना है।

प्रमुदित मुनिन्ह भावँरीं फेरीं। नेगसहित सब रीति निबेरीं ॥
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ॥

मुनियों के आनन्द से भांवरी फिरा कर नेग समेत सब रानियों को निपटाया, फिर रामजी सीता जी के सिर में सिन्दूर देने लगे, वह शोभा किसी प्रकार कही नहीं जाती।

अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें ॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन ॥

लाल रज का कमल में भली भांति भर, मानो सर्प अमृत के लोभ से चंद्रमा को भूषित कर रहा है। वशिष्ठ जी ने आज्ञा दी, तब वर-वधू एक आसन पर बैठे।

छं०–बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपनें सुकृत सुरतरु फल नए ॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भांति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा ॥ ४८ ॥

एक सिंहासन पर बैठे हुए राम जानकी को देख दशरथ जी मन में बहुत प्रसन्न हुए और अपने पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के नवीन फल को देखकर बारम्बार उनका शरीर पुलकित होने लगा। संसार में आनन्द भर गया, रामजी का विवाह हुआ। सब लोग यह कहने लगे, उसका वर्णन कर जीव किस प्रकार शीतल हो, क्योंकि मुख एक ही है मंगल बड़ा है ॥ ४८ ॥

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज संवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअंरि लई हंकारि कै॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो सुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥ ४९ ॥

वशिष्ठ जी ने राजा जनक से कहा कि जैसे रूपशील और गुणवती तुम्हारी तीन कन्याएं हैं, वैसे ही सब गुण सम्पन्न तीनों दशरथ कुमार हैं उनका विवाह भी कर देना तुमको योग्य है। वशिष्ठजी ने जब यह कहा तब उनकी आज्ञा पाय जनक जी ने ब्याह का साज संभाल कर माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, उर्मिला, तीनों कुमारियों को बुला लिया। उनमें अपने भाई कुशध्वज की प्रथम कन्या माण्डवी, जो गुण शील सुख शोभा की मूर्ति थी, उसे प्रीति सहित सब रीति करके राजा ने भरत जी से ब्याह दिया ॥ ४९ ॥

जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै॥
जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुनि आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥ ५० ॥

जानकी जी की छोटी बहन जिसका नाम उर्मिला था, उसको सुन्दरियों में शिरोमणि जानकर जनकजी ने सब प्रकार सम्मान करके लक्ष्मणजी से ब्याह दिया और जिसका नाम श्रुतिकीर्ति सुन्दर नेत्र और सुन्दर मुख वाली, सब गुण आगर रूप और शील में प्रसिद्ध उसे राजा ने शत्रुघ्नजी से ब्याह दिया ॥ ५० ॥

अनुरूप वर दुलहिनि परस्पर लखि सकुच हियं हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं॥
सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥ ५१ ॥

सब प्रकार से योग्य वर और दुल्हिन परस्पर एक दूसरे को देख और सकुच कर हृदय में प्रसन्न होने लगे और सब लोग प्रसन्न हो, उनकी सुन्दरता सराहने लगे। देवता लोग फूल बर्षाने लगे। सुन्दरी दुलहिन अपने सुन्दर दुलहा के साथ एक मण्डप में ऐसी शोभायमान हुईं, मानो जीव और अवस्था (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) अपने स्वामियों (विस्व, तैजस, प्राज्ञ, अन्तर्यामी) सहित विराजमान हैं। अथवा मानो जीव और चार प्रकार के देवताओं के साथ शरीर रूपी मण्डप में शोभायमान हो रही हैं॥ ५१ ॥

दो०—मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि ॥३२५॥

अवधपति महाराज दशरथजी सब पुत्रों को बन्धुओं सहित देखकर ऐसे प्रसन्न हुए मानो महाराज ने क्रियाओं के साथ चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा लिया ॥ ३२५ ॥

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअंर ब्याहे तेहिं करनी।
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी ॥

जैसी विधि रामचन्द्रजी के विवाह की कही है, उसी रीति से सब कुंवर ब्याहे गये। दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जा सकती, सुवर्ण और रत्नों से मण्डप भर गया।

कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भांति भांति बहु मोल न थोरे ॥
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी ॥

शाल, दुशाले, रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्र, भांति-भांति के बहुत कीमती कुछ कम नहीं, हाथी, रथ, घोड़े, दासी, सुवर्ण की माला आदि अलङ्कारों से सज कामधेनु के समान दूध देने वाली गायें।

बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा ॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने ॥

और अनेक वस्तुओं का लेखा कैसे किया जाय ? कहा नहीं जा सकता, जिसने देखा हो वही जान सकता है। लोकपाल भी उस दहेज को देख सिहर गये। दशरथजी ने सब वस्तु को सुख मान ले लिया।

दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा ॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी ॥

उसमें से याचकों को दिया जो जिसको अच्छा लगा और देने से जो बच गया सो जनवासे में आया। तब जनक जी हाथ जोड़ सब बरातियों का आदर कर मधुर वाणी से बोले।

छं०—सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महा मुनि बृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै ॥
सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किएं।
सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएं ॥ ५२ ॥

आदर सहित दान विनती और बड़ाई करके सब बरात का सम्मान किया और प्रसन्नता पूर्वक स्नेह सहित बड़े-बड़े मुनियों के समाज की पूजा कर प्रणाम किया, फिर देवताओं को मस्तक नवाय भली-भांति मनाय, हाथ जोड़ सबसे कहने लगे कि देवता, साधु तो भाव चाहते हैं, क्या समुद्र को जल की अंजुली देने से संतोष हो सकता है ॥ ५२ ॥

कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥
संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए॥ ५३॥

फिर जनकजी अपने भाई कुशध्वज सहित हाथ जोड़ महाराज दशरथजी से स्नेह और शील से मिले हुए अपने सुन्दर स्वभाव के अनुसार मनोहर वचन बोले कि हे राजन्! अब हम आपके सम्बन्ध से सब भांति बड़े हुए, हमारा यह राज-साज बिना मोल लिए अपना सेवक जानिए। अर्थात् राज-साज सहित मुझको अपना बिना मोल का सेवक जानिये॥ ५३॥

ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई॥
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए॥ ५४॥

इन कन्याओं को अपनी दासियां जान पालन करना। हे करुणामय! हमने जो आपको बुला भेजा यह बड़ी ढिठाई की सो अपराध क्षमा करना। जनकजी से ऐसे कोमल वचन को सुन दशरथजी ने फिर अपने समधियों का सब प्रकार से सम्मान किया। इस प्रकार जो परस्पर विनती होने लगी, वह कहने में नहीं आ सकती। दोनों और सबके हृदय में प्रेम भर गया॥ ५४॥

बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले।
दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले॥
तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥ ५५॥

देवतागण फूल बरसाने लगे। राजा दशरथजी जनवासे को चले, नगाड़े बजे, वेदध्वनि होने लगी। आकाश और नगर में आनन्दमय खेल होने लगे। तब सुन्दर सखियां मुनिश्वर (वशिष्ठजी) की आज्ञा पाकर मंगल गीत गाती हुई, दुलहिनियां समेत चारों दुलहों को साथ लिवाकर लहकौर के निमित्त भीतर भवन में चलीं॥ ५५॥

दो०—पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मन सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन॥३२६॥

बारम्बार रामचन्द्रजी को देखकर सीताजी लजाती थीं, पर मन नहीं सकुचाता था। प्रेम के प्यासे नेत्र मानो उस समय मनोहर मछली की छवि को हरण कर रहे थे॥ ३२६॥

स्याम सरीर सुभायं सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥

करोड़ों कामदेव को लजाने वाली शरीर की स्वभाविक सुन्दरता। महावर लगे हुए चरण कमल ऐसे शोभायमान हैं कि उन पर मुनियों के मनरूपी भौंरे छाये ही रहते हैं।

पीत पुनीत मनोहर धोती। हरित बाल रबि दामिनी जोती॥
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥

पीली और पवित्र मनोहर धोती प्रातःकाल के सूर्य और बिजली की ज्योति को हर रही थी। सुन्दर मेखली, करधनी, लम्बी-लम्बी भुजायें और सुन्दर भूषण था।

पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे॥

पीला जनेऊ अत्यन्त छवि दे रहा था, अंगूठी चित्त को चुरा लेती थीं। ब्याह के सब साज सजे हुए शोभायमान और चौड़ी छाती पर सब आभूषण सुशोभित।

पिअर उपरना काखासोती। दुहुं आंचरन्हि लगे मनि मोती॥
नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना॥

जनेऊ की तरह बगल में पीला दुपट्टा पड़ा हुआ, जिसके दोनों तरफ मणि और मोती लगी हुई हैं। कमल के समान नेत्र कानों में कुण्डल और मख सुन्दरता का निधान (समुद्र)।

सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥
सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे॥

सुन्दर भौंहें, मन हरने वाली नासिका, विशाल भाल पर शोभा का धाम उज्जवल तिलक। मनोहर माथे पर मांगलिक मोती और मणियों से गुथा हुआ और शोभायमान हो रहा था।

छं०—गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुर नारि सुर सुंदरीं बरहि बिलोकि सब तिन तोरहीं॥
मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु सुनावहीं॥ ५६॥

माथे पर अमूल्य मणियों का जड़ाऊ मन को हरने वाला मौर बंधा हुआ और सब अंग अपनी शोभा के कारण चित्त को चुरा रहे थे। नगर की स्त्रियां सुन्दर दुलहों को देख रही थीं और दृष्टि दोष निवारण के लिए तृण तोड़कर और उन पर मणि, वस्त्र, आभूषण न्यौछावर कर, आरती करने और मंगल गीत गाने लगीं। देवता फूल बरसाने लगे। सूत, मागध, बन्दीजन सुयश सुनाने लगे।

कोहबरहिं आने कुअंर कुअंरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय मन सारद कहैं।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥ ५७॥

सौभाग्यवती स्त्रियां सुख पाकर चारों राजकुमार और कुमारियों को कोहबर में ले आई और मंगल गाकर अत्यन्त प्रीति से लौकिक रीति करने लगीं। पार्वतीजी श्रीरामचन्द्र को ग्रास खिलाने की सीख दे रही हैं और सीताजी से सरस्वती कह रही हैं। सारा रनिवास हंसी और विनोद के रस में डूबा हुआ है सब अपने जीवन का फल पा रही हैं॥ ५७॥

निज पानि मनि महुं देखिअति मूरति सुरूपनिधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी॥
कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं।
बर कुअंरि सुंदर सकल सखीं लवाइ जनवासेहि चलीं॥ ५८॥

लहकौर के समय अपने हाथ की मणि में स्वरूप निधान श्री रामचन्द्रजी के प्रतिबिम्ब को देख सीताजी अपने भुजबल्ली को नहीं हटाती थीं, कि सांवली मूर्ति के दर्शन का वियोग हो जायेगा। उस समय का यह कौतुक, विनोद, आनन्द और प्रेम कहा नहीं जा सकता, उसको तो वही सखियां जाने, जो उस कौतुक को देख रही थीं, फिर सब सखियां सुन्दर वर और दुल्हिनों को लेकर जनवासे में चलीं॥५८॥

तेहि समय सुनिअ असीस जहं तहं नगर नभ आनंदु महा।
चिरु जिअहुं जोरीं चारु चारयो मुदित मन सबहीं कहा॥
जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी॥ ५९॥

उस समय जहां-तहां आशीर्वाद की ध्वनि सुनाई दे रही थीं। नगर और आकाश में परम आनन्द छा रहा था। प्रसन्न मन से सब लोग यह कह रहे थे कि सुन्दर चारों जोड़ी चिरंजीवी रहें और योगिराज सिद्ध, मुनिश्वर और देवताओं ने प्रभु रघुनाथजी का दर्शन कर नगाड़ा बजाया और आनन्द से फूल बर्षाय जय! जय!! जय!!! बोलते हुए अपने लोक को चले॥ ५९॥

दो०—सहित बधूटिन्ह कुअंर सब तब आए पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास॥ ३२७॥

तब अपनी बधूटियों समेत चारों कुमार पिता के पास आये, उस समय शोभा, मंगल और आनन्द से भर कर मानो जनवासा उमंग उठा॥ ३२७॥

पुनि जेवनार भई बहु भांती। पठए जनक बोलाइ बराती॥
परत पांवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा॥

फिर जनकजी ने बरातियों को बुला भेजा और अनेक भांति जेवनार हुई। अनुपम वस्त्रों के पांवड़े पड़ने लगे और उन पर से पुत्रों सहित राजा दशरथ जी चले।

सादर सब के पाय पखारे। जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे।
धोए जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना॥

आदर से चरण धोकर सबको यथा योग्य पीढ़े पर बिठाया। जिस शील और स्नेह से जनकजी ने दशरथजी के चरण धोए, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

बहुरि राम पद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुं गोए॥
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोए चरन जनक निज पानी॥

फिर रामजी का चरण कमल धोया, जिसको शिवजी अपने हृदय कमल में छिपाये रहते हैं। रामचन्द्रजी के तीनों भाईयों को उन्हीं के समान जान, उनके चरण भी जनकजी ने अपने हाथ से धोए।

आसन उचित सबहि नृप दीन्हें। बोलि सूपकारी सब लीन्हे॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान संवारे॥

फिर राजा ने सबको उचित आसन दिया और सब रसोई बनाने वालों को बुलाया। आदर सहित सोने की कीलों से जड़ा हुआ, मणि के पत्तों का पत्तल पड़ने लगा।

दो०—सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत।
छन महुं सब कें परुसि गे चतुर सुआर बिनीत॥ ३२८॥

सुन्दर स्वादिष्ट निर्मल दाल, भात और गौ का घी क्षण भर में सब आगे चतुर और नम्र स्वभाव वाले रसोईदारों ने परोस दिया॥ ३२८॥

पंच कवल करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे॥
भांति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥

पांच ग्राम पृथ्वी पर रख सब लोग भोजन करने लगे और गारी गान सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए। अमृत के समान स्वाद वाला अनेक भांति का पकवान परोसा गया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना॥
चारि भांति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥

अनन्तर चतुर रसोईदार अनेक प्रकार का भोजन परोसने लगे। जिसका नाम भी कोई नहीं जान सकता। चार प्रकार के भोजन की विधि (सूप शास्त्र में कही गई है) जैसे १. भक्ष्य (चबाने वाले पदार्थ, लड्डू आदि जो फांके जाय) २. भोज्य (खाने वाले पदार्थ, दाल, भात, रोटी, पूरी, मिठाई आदि) ३. लेह्य (चाटने वाले पदार्थ, रबड़ी, दही, मलाई, मोहन भोग आदि) ४. चोष्य (चूसने वाले पदार्थ, आम आदि फल) ५. पेय (पीने वाले पदार्थ) को चोष्य के अनुसार जानना एक-एक भोजन की विधि अनेक प्रकार से है, जिसका वणन नहीं किया जा सकता।

छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भांती॥
जेवंत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥

छः रस १ मीठे, २ खट्टे, ३ लोंने, ४ कषैले, ५ चरपरे, ६ कड़ुए सो एक-एक रस के व्यञ्जन

अनेक भांति के परोसे गये । भोजन करते समय नारियां मधुर स्वर में पुरुष और स्त्रियों का नाम ले ले कर गारी देने लगीं ।

समय सुहावनि गारि बिराजा । हंसत राउ सुनि सहित समाजा ॥
एहि बिधि सबहीं भोजनु कीन्हा । आदर सहित आचमनु दीन्हा ॥

समय के अनुसार सुहावनी गारी सुनकर महाराज दशरथजी समाज सहित हंसने लगे इस प्रकार सब लोगों ने भोजन किया अनन्तर आदर के साथ आचमन लिया ।

दो०—देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज ।
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज ॥ ३२९ ॥

पान देकर राजा जनक ने समाज सहित महाराज दशरथजी का पूजन किया, तब सबके सरताज (दशरथजी) जनवासे को पधारे ॥ ३२९ ॥

नित नूतन मंगल पुर माहीं । निमिष सरिस दिन जामिनी जाहीं ॥
बड़े भोर भूपतिमनि जागे । जाचक गुन गन गावन लागे ॥

नित्य नया मंगल जनकपुर में हो रहा था, पलक के समान दिन और रात व्यतीत हो रहे थे । राजा दशरथजी बड़े सवेरे जागे और याचक लोग गुण गाने लगे ।

देखि कुंअर बर बधुन्ह समेता । किमि कहि जात मोदु मन जेता ॥
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीं । महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं ॥

सुन्दर चारों पुत्रों को बंधुओं सहित देख राजा के मन में जितना आनन्द हुआ वह कैसे कहा जाय । प्रातः क्रिया कर मन में बड़े आनन्द और प्रेम से मग्न होकर गुरु के समीप गये ।

करि प्रनामु पूजा कर जोरी । बोले गिरा अमिअं जनु बोरी ॥
तुम्हरी कृपां सुनहु मुनिराजा । भयउं आजु मैं पूरन काजा ॥

हाथ जोड़ कर प्रणाम करके पूजा की, फिर मानो अमृत भरी हुई ऐसी मधुर वाणी बोले कि हे मुनिराज ! सुनो तुम्हारी ही कृपा से आज हमारा काम पूर्ण हुआ ।

अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं । देहु धेनु सब भांति बनाईं ॥
सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई । पुनि पठए मुनि बृंद बोलाई ॥

हे गुसाईं ! अब सब ब्राह्मणों को बुलाकर सब भांति सजाकर गोदान दीजिये । यह सुनकर गुरु वशिष्ठजी ने बड़ाई की फिर मुनियों को बुला भेजा ।

दो०—बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि ।
आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि ॥ ३३० ॥

तब वामदेव, नारद, बालमीकि, जाबालि और महातपस्वी विश्वामित्र आदि अनेक श्रेष्ठ मुनि अपने समूह के सहित आये ॥ ३३० ॥

दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे । पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे ॥
चारि लच्छ बर धेनु मगाईं । कामसुरभि सम सील सुहाईं ॥

तब राजा ने सबको दण्डवत प्रणाम किया और प्रेम सहित पूजा कर सुन्दर आसन पर बैठाया और कामधेनु के समान सुन्दर सीधी चार लाख गौओं को मंगाया।

सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥
करत बिनय बहु बिधि नरनाहू। लहेउं आजु जग जीवन लाहू॥

सब प्रकार से सबको सजाकर प्रसन्न हो राजा ने ऋषियों को दान कर दिया फिर राजा ने बड़े विधि से विनय करते हुए कहा कि, आज हमने जगत में अपने जीवन का लाभ पाया।

पाइ असीस महीसु अनंदा। लिए बोलि पुनि याचक बृंदा॥
कनक बसन मनि हय गय स्पंदन। दिए बुझि रुचि रविकुलनंदन॥

मुनियों से आशीर्वाद पाय आनन्दित होकर राजा ने फिर याचकों को बुलाकर सुवर्ण, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी, रथ याचकों को रुचि के अनुसार सबसे पूछ पूछ राजा ने दिया।

चले पढ़त गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा॥
एहि विधि राम बिआह उछाहू। सकइ न बरनि सहस मुख जाहू॥

गुणों की कथा पढ़ते और गाते हुए याचक लोग चले और बोले कि, सूर्यवंश भूषण महाराज दशरथ जी की जय हो! जय हो!! जय हो!! इस प्रकार रामचन्द्रजी के विवाहोत्सव को शेषजी जिनके हजार मुख हैं वह भी वर्णन नहीं कर सकते तो मैं क्या वर्णन करूं।

दो०—बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ।
यह सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ प्रभाउ॥३३१॥

बारम्बार विश्वामित्रजी के चरणों पर शिर नवाकर महाराज जी कहने लगे कि हे मुनिराज! यह सब सुख आपके कृपा कटाक्ष के प्रभाव से हुआ है॥ ३३१॥

जनक सनेहु सीलु करतूती। नृपु सब भांति सराह विभूती॥
दिन उठि बिदा अवधिपति मांगा। राखहिं जनकु सहित अनुरागा॥

राजा जनक के स्नेह, शील, करतूति और ऐश्वर्य की सराहना दशरथजी सब भांति से करने लगे। नित्य उठ दशरथजी विदा मांगते परन्तु जनक प्रीति सहित रोक लेते थे।

नित नूतन आदरु अधिकाई। नित प्रति सहस भाँति पहुनाई॥
नित नव नगर आनंद उछाहू। दसरथ गवनु सोहाइ न काहू॥

नित्य नवीन आदर बढ़ने लगा और नित्य नित्य हजारों प्रकार से पहुनाई होने लगी। नगर में नित्य नवीन आनन्द होने के कारण दशरथजी का जाना किसी को अच्छा नहीं लगता था।

बहुत दिवस बीते एहि भांती। जनु सनेह रजु बंधे बराती॥
कौशिक सतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई॥

इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो गये मानो प्रेम की रस्सी में सब बंध गये तब विश्वामित्रजी और शतानन्द ने जाकर राजा जनकजी से समझाकर कहा कि।

अब दसरथ कहं आयसु देहू। जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेहू ॥
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए ॥

अब दशरथजी को आज्ञा दो यद्यपि सनेह नहीं छोड़ सकते हो तथापि घर जाने दो हे नाथ! बहुत अच्छा, कह जनक ने मन्त्री को बुलाया और उन्होंने निकट आय 'जय जीव' कह मस्तक नवाया।

दो०—अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ ॥३३२॥

फिर जनकजी ने अपने मन्त्री से कहा दशरथजी जाना चाहते हैं रनिवास में कह दो यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण, सभासद और राजा प्रेम के वश हो गये ॥ ३३२ ॥

पुरवासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परस्पर बाता ॥
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुं साँझ सरसिज सकुचाने ॥

नगर निवासियों ने जब सुना कि बरात चली तो विकल हो परस्पर पूछने लगे कि यह बात सच्ची है, बरात जायगी, तब लोग ऐसे उदास हो गये जैसे संध्या समय में कमल मुरझा जाता है।

जहं तहं आवत बसे बराती। तहं तहं सिद्ध चला बहु भांती ॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना ॥

आते समय बरातियों ने जहां डेरा किया था उन स्थानों पर आगे ही अनेक भांति का सीधा और और सामान भेज दिया। भांति भांति का मेवा पकवान और भोजन का सामान जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

भरि भरि वस्तु अपार कहारा। पठाये जनक अनेक सुसारा ॥
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल संवारे नख अरु सीसा ॥

अनेक प्रकार की बहुत सी वस्तुएं भर भर कर बहुत से कहार और रसोईदारों को जनकजी ने भेजा। एक लाख घोड़ा और पचास हजार रथ सब नख से शिखा पर्यन्त सजा कर।

मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसि कुंजर लाजे ॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना ॥

और फिर दस हजार मतवाले हाथियों को सजाया जिनको देख दिक्पाल लज्जित हो जाते थे। सुवर्ण, वस्त्र और मणि छकड़ों में भर-भरकर भैंसे, गौ और अनेक प्रकार की वस्तु।

दो०—दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहं बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि ॥३३३॥

बहुत सा दहेज जिसका वर्णन नहीं हो सकता, फिर जनक जी ने दिया जिसको देख कुबेर आदि लोकपालों के लोक की सम्पदा भी थोड़ी जान पड़ने लगी ॥ ३३३ ॥

सब समाज एहि भांति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ॥
चलिहिं बरात सुनत सब रानीं। विकल मीनगन जनु लघु पानी ॥

इस प्रकार जनकजी ने सब समाज बनाकर अवधपुरी को भेज दिया बरात की विदाई सुनकर सब रानियां ऐसी बिकल हुईं जैसे मछली थोड़े पानी में विकल हो जाती है।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ अशीश सिखावनु देहीं ॥
होएहु संततु पियहि पिआरी। चिरु अहिवात अशीश हमारी ॥

रानियां बारम्बार सीता को गोद में लेने और आशीश देकर शिक्षा देने लगीं। हे पुत्री! तू सदैव पति की प्यारी हो और तेरा सौभाग्य सदा बना रहे, यही हमारी आशीश है।

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ॥
अति सनेह बस सखीं सयानी। नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी ॥

सास, ससुर और गुरुजनों की सेवा करना तथा पति के रुख के अनुसार कार्य करना। अत्यन्त स्नेह के वश चतुर सखियां सीता जी को कोमल वाणी से स्त्रियों का धर्म सिखाने लगीं।

सादर सकल कुअंरि समुझाईं। रानिन्ह बार बार उर लाईं ॥
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारीं। कहहिं बिरंचि रचीं कत नारीं ॥

आदर से सब कुमारियों को समझाकर रानियों ने बार बार हृदय से लगाया। और माता सुनयना फिर फिर और कहती भेंटती हैं कि ब्रह्मा ने स्त्री को क्यों बनाया।

दो०–तेहि अवसर भाइन सहित, रामु भानुकुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित, बिदा करावन हेतु ॥३३४॥

उसी समय भाइयों को साथ लिए हुए सूर्यवंश भूषण श्री रामचन्द्र जी जनक जी के मन्दिर में प्रसन्नतापूर्वक विदा कराने के निमित्त चले ॥ ३३४ ॥

चारिउ भाइ सुभायं सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए ॥
कोउ कह चलत चलत एहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू ॥

चारों भाइयों की स्वाभाविक सुन्दरता देखने के लिए नगर के सब स्त्री पुरुष दौड़े कोई बोला कि आज जाना चाहते हैं, जनक ने विदाई का साज किया है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी ॥
को जाने केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी ॥

नेत्र भरकर इनका रूप देख लो, ये चारों राजपुत्र प्यारे पाहुने हैं। हे सयानी! कौन जाने किस पुण्य के प्रभाव से विधाता ने इनको यहां लाकर हम लोगों के नेत्रों का अतिथि बनाया है।

मरनसील जिमि पाव पियूषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥
पाव नारकी हरपदु जैसे। इन्ह कर दरसनु हम कहं तैसें॥

जैसे मरणशील मनुष्य को अमृत और जन्म के भूखे को कल्प वृक्ष मिल जाये। तथा नारकी जीवों को मोक्ष मिल जाय वैसे ही हमको इनका दर्शन मिला है।

निरखि राम शोभा उर धरहूं। निज मन फनि मूरति मनि करहूं॥
एहि बिधि सबहि नयन फलु देता। गए कुंअर सब राज निकेता॥

रामचन्द्रजी की सांवली शोभा को देख अपने मनरूपी सर्प से रामचन्द्रजी की मूर्तिरूपी मणि को रख लो। इस प्रकार सबको नेत्रों का जल देते हुए सब राजकुंवर राजभवन में गये।

दो०—रूप सिंधु सब बंधु लखि, हरषि उठा रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती, महा मुदित मन सासु॥३२५॥

रूप के सागर सब भाइयों को देख कर सम्पूर्ण रनिवास प्रसन्न हो गया और सास मन में प्रसन्न होकर न्योछावर और आरती करने लगीं॥ ३२५॥

देखि राम छवि अति अनुरागीं। प्रेम बिबश पुनि पुनि पद लागीं॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेह बरणि किमि जाई॥

रामजी की छवि देख बहुत प्यार करने और प्रेम के वश हो बारम्बार उनके चरणों पर गिरने लगीं। लज्जा जाती रही, हृदय में प्रीति छाई। उस स्वाभाविक स्नेह का वर्णन कैसे किया जाये।

भाइन सहित उबटि अन्हवाए। छरस अशन अति हेतु जिमाए॥
बोले राम सुअवसर जानी। शील सनेह सकुच मय बानी॥

भाईयों सहित रामचन्द्रजी को उबटन और स्नान करा फिर बड़ी प्रीति से षटरस भोजन कराया। फिर रामजी अच्छा अवसर जान शील, सनेह और संकोच भरी वाणी से बोले।

राउ अवधपुर चहत सिधाये। बिदा होन हित हमहिं पठाये॥
मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥

राजाजी अवधपुर जाना चाहते हैं, विदा होने के निमित्त हमको भेजा है। हे माता! मन से प्रसन्न होकर हमको आज्ञा दो और बालक जान सदा स्नेह बनाये रखना।

सुनत वचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू॥
हृदय लगाइ कुंवरि सब लीन्हीं। पतिन सौंपि बिनती अति कीन्हीं॥

श्री रामजी की यह बात सुनते ही रनिवास दुखी हो उठा। सासु प्रेम के वश में होने से बोल नहीं सकती है। सब कुमारियों को हृदय से लगा लिया और उन्हें अपने-अपने पति को सौंप अत्यन्त विनती की।

छन्द—करि बिनय सिय रामहिं समर्पी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउं रामसुजान तुम कहं विदितगति सबको अहै॥
परिवार परिजन मोहिं राजहिं प्राण प्रिय सिय जानकी।
तुलसी सुशील सनेह लखि निज किंकरी करि मानवी॥ ६०॥

रानी सुनैना बहुत सी विनती कर और सीता राम को समर्पण कर हाथ जोड़कर बारम्बार कहने लगीं कि, हे सुजान रामचन्द्र! बलिहारी जाऊं, तुमको सबकी गति विदित है, इस सीता को कुटुम्बियों पुरजनों मुझको और राजा को प्राणों से भी प्रिय जानना और इसकी सुशीलता और स्नेह को देखकर अपनी दासी करके मानना॥ ६०॥

सोरठा—तुम परिपूरण काम, ज्ञान शिरोमणि भाव प्रिय।
जन गुणगाहक राम, दोष दलन करुणायतन॥ ३५॥

हे राम! तुम परिपूर्ण काम हो, प्रेम ही तुमको प्रिय है, अपने भक्तों के गुणों को ग्रहण करने वाले तथा दोषों को नाश करने वाले और दया के स्थान हो॥ ३५॥

अस कहि रही चरण गहि रानी। प्रेम–पंकज जनु गिरा सनमानी॥
सुनि सनेह सानी वर बानी। बहु बिधि राम सासु सनमानी॥

इतना कह कर चरण पकड़ रानी चुप हो गई मानो वाणी प्रेम की कीच में फंस गई। ऐसी स्नेह मयी मधुर वाणी सुन रामचन्द्र जी ने बहुत भांति सासु का सम्मान किया।

राम बिदा मांगेउ करजोरी। कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी॥
पाइ अशीश बहुरि शिरनाई। भाइन सहित चले रघुराई॥

फिर रामचन्द्र जी ने हाथ जोड़ विदा मांगी और बार बार सबको प्रणाम किया। फिर आशीर्वाद पा शिर नवा कर भाइयों सहित रघुनाथ जी चले।

मञ्जु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह शिथिल सब रानी॥
पुनि धीरज धरि कुंवरि हंकारी। बार बार भेंटति महतारी॥

सुन्दर माधुरी मूर्ति को हृदय में धारण कर सब रानी स्नेह से शिथिल हो गई। फिर सब माताओं ने धैर्य धारण कर कुमारियों को बुला लिया और बारम्बार उन्हें भेंटने लगीं।

पहुंचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥
पुनि पुनि मिलत सखिन बिलगाई। बालवत्स जिमि धेनु लवाई॥

बारम्बार पहुंचाने और मिलने लगीं, आपस में थोड़ी प्रीति नहीं बढ़ी फिर फिर सखियों को अलग करके जानकी जी ऐसे मिलने लगीं, जैसे हाल की ब्याई हुई गौ अपने छोटे बच्चे से मिलती है।

दोहा—प्रेम बिवस नर नारि सब, सखिन सहित रनिवास।
मानहुं कीन बिदेहपुर, करुणा बिरह निवास॥ ३३६॥

प्रेम के वश में सखियों सहित रनिवास में सब नर-नारी ऐसे विह्वल हो गए मानो जनक पुर में करुणा और विरहन निवास किया है ।। ३३६ ।।

शुक सारिका जानकी ज्याये । कनक पींजरन राखि पढ़ाये ॥
व्याकुल कहहिं कहां बैदेही । सुनि धीरज परिहरै न केही ॥

जिन शुक सारिकाओं को जानकी जी ने पाला था और सोने के पिंजरा में रख पढ़ाया था वे व्याकुल हो कहने लगे कि हे वैदेही ! कहां जाती हो । पक्षियों का ऐसा वचन सुन किसका धैर्य नहीं छटता ।

भए बिकल खगमृग एहि भांती । मनुज दशा कैसे कही जाती ॥
बन्धु समेत जनक तब आये । प्रेम उमंगि लोचन जल छाये ॥

जब पक्षी और पशु भी इस प्रकार विकल हो गए, तब मनुष्यों की दशा कैसी कही जाय । तब कुशध्वज सहित जनक जी वहां आये और उनके नेत्रों में भी प्रेम की उमंग से जल छा गया ।

सियहिं बिलोकि धीरता भागी । रहे कहावत परम बिरागी ॥
लीन्ह राउ उर लाय जानकी । मिटी महामर्याद ज्ञानकी ॥

यद्यपि बड़ विरक्त कहलाते थे तथापि सीता को देख कर उनकी भी धीरता भाग गई । जनक जी ने जानकी जी को हृदय से लगा लिया, ज्ञान की मर्यादा मिट गई ।

समुझावत सब सचिव सयाने । कीन्ह बिचार अनवसर जाने ॥
बारहिं बार सुता उर लाई । सजि सुन्दर पालकी मंगाई ॥

सब मन्त्री चतुर राजा को समझाने लगे तब अवसर न जान विचार किया । बारम्बार पुत्री को हृदय से लगा फिर सुन्दर पालकी सजाकर मंगाई ।

दोहा—प्रेम बिबश परिवार सब, जानि सुलग्न नरेश ।
कुंवरि चढ़ाई पालकिन, सुमिरे सिद्धि गणेश ॥ ३३७ ॥

सीता जी के जाते समय सब परिवार को प्रेम में मग्न देखकर राजा जनक जी ने सुन्दर लग्न जान सिद्धि दाता गणेश जी का सुमिरण करके कुमारियों को पालकी पर चढ़ाया ।। ३३७ ।।

बहुविधि भूप सुता समुझाई । नारि धर्म कुल रीति सिखाई ॥
दासी दास दिये बहुतेरे । शुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ॥

फिर जनक जी ने बहुत प्रकार से जानकी जी तथा और पुत्रियों को अपने कुल की रीति तथा स्त्री धर्म की शिक्षा दी । बहुत से दास दासी और पवित्र सेवक थे उनके साथ में विदा किया ।

सीय चलत व्याकुल पुरबासी । होहि सगुन शुभ मंगल रासी ॥
भूसुर सचिव समेत समाजा । संग चले पहुंचावन राजा ॥

सीता जी के चलने के समय नगर निवासी व्याकुल हो गये और अनेक प्रकार का मंगलदायक अच्छा सगुन होने लगा। मन्त्री और ब्राह्मणों के समाज सहित जनक जी पहुंचाने के लिए संग चले।

रथ गज बाजि बरातिन साजे। सुनि गहगहे बाजने बाजे॥
दशरथ बिप्र बोलि सब लीन्हें। दान मान परिपूरण कीन्हें॥

बरातियों ने रथ, हाथी और घोड़ों को सजाया, यह सुन आनन्द ध्वनि के बाजे बजने लगे दशरथ जी ने सब ब्राह्मणों को बुला लिया और मान से सबको परिपूर्ण किया।

चरण सरोज धूरि धरि शीशा। मुदित महीपति पाइ असीशा॥
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना। मंगलमूल शकुन भए नाना॥

और उनके चरण कमल की धूलि मस्तक पर धारण कर आशीर्वाद पाकर दशरथ जी प्रसन्न हुए। फिर भी गणेश जी का स्मरण कर गमन किया, चलते समय मंगल-प्रद अनेक प्रकार के सगुन होने लगे।

दोहा–सुर प्रसून बर्षहिं हरषि, करहिं अप्सरा गान।
चले अवधपति अवधपुर, मुदित बजाइ निशान॥ ३३८॥

देवता प्रसन्न हो फूल वर्षाने लगे, अप्सरा गाने लगीं राजा दशरथ जी आनन्द पूर्वक धौंसा बजवा कर अयोध्या को चले॥ ३३८॥

नृप करि विनय महाजन फेरे। सादर सकल मांगने टेरे॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हें। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हें॥

राजा ने विनती करके ब्राह्मण आदि बड़े लोगों को लौटा दिया और आदर सहित भिक्षुकों को बुलाया और उनको बड़े प्रेम से खड़े करा कपड़े घोड़े, हाथी आदि देकर सब को सन्तुष्ट किया।

बार बार बिरदावलि राखी। फिरे सकल रामहिं उर राखी॥
बहुंरि बहुंरि कोशलपति कहहीं। जनक प्रेमवश फिरा न चहहीं॥

तब वे लोग बारम्बार वंश की बड़ाई करके हृदय में रामजी की मूर्ति धारण कर अपने घर को लौटे। बारम्बार दशरथ जी कहने लगे, पर प्रेम के वश जनक जी लौटना नहीं चाहते थे।

पुनि कह भूपति बसन सुहाये। फिरिय महीप दूरि बड़ि आये॥
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम प्रवाह बिलोचन बाढ़े॥

फिर राजा ने मधुर वचन से कहा कि हे राजन्! अब लौट जाइए बड़ी दूर आ गये। राजा उतर कर खड़े हो गए, प्रेम के कारण दोनों राजाओं के नेत्रों से जल की धारा बहने लगी।

तब बिदेह बोले कर जोरी। वचन सनेह सुधा जनु बोरी॥
करहुं कवन विधि बिनय बड़ाई। महाराज मोहिं दीन्ह बड़ाई॥

तब जनक जी हाथ जोड़कर स्नेह रूपी अमृत से भरी हुई वाणी बोले कि, मैं किस प्रकार आपकी विनती और बड़ाई करूं। हे महाराज! आपही ने मुझको बड़ाई दी।

दोहा—कोशलपति समधी जनक, सनमाने सब भांति।
मिलत परस्पर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति॥ ३३९॥

महाराज दशरथ जी ने अपने समधी जनक जी का सब प्रकार से सम्मान किया, आपस में मिलने और बहुत विनय से जो प्रीति बढ़ी, वह हृदय में नहीं समाती थी॥ ३३९॥

मुनि मराडलिहिं जनक सिर नावा। आशिर्वाद बसहिं सन पावा॥
सादर पुनि भेंटे जमाता। रूप शील गुणनिधि सब भ्राता॥

फिर जनक जी ने मुनि मण्डली को सिर नवाया और सबसे आशीर्वाद पाया। फिर आदर सहित रूप, शील और सब गुण निधान दामादों से मिले।

जोरी पंकरुह पाणि सुहाये। बोले वचन प्रेम जनु जाये॥
राम करौं केहि भांति प्रशंसा। मुनि महेश मन मानस हंसा॥

कमल समान हाथ जोड़ कर मानो प्रेम से उत्पन्न हुए वचन बोले, हे राम! आपकी प्रशंसा किस भांति करूँ? आप मुनि और महादेवजी के मनरूपी मान सरोवर के हंस हैं।

करहिं योग योगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी॥
व्यापक ब्रह्म अलख अविनाशी। चिदानन्द निर्गुण गुणराशी॥

जिस के निमित्त योगिजन, क्रोध, मोह, ममता और अहंकार को छोड़ योग करते हैं। जो सब में व्यापक ब्रह्म, देखने में न आने वाला अविनाशी निर्गुण लोकिक गुणों से रहित और गुण राशि हैं।

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुगामी॥
महिमा निगम नेति कर कहहीं। जो तिहुंकाल एकरस रहहीं॥

मन सहित वाणी जिसको नहीं जान सकती, सब अपमान जिसमें तर्क नहीं कर सकते। जिसकी महिमा को वेद नेति-नेति कहा करते हैं, तीनों काल में एक रहते हैं।

दोहा—नयन विषय मो कहं भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबहि लाभ जगजीव कहं, भये ईश अनुकूल॥ ३४०॥

ऐसे सम्पूर्ण सुखों के मूल आप मेरे दृष्टि गोचर हुए, अर्थात् मुझको अपना दर्शन दिया। ईश्वर अनुकूल होने से जगत जीव को सभी कुछ प्राप्त हो जाता है॥ ३४०॥

सबहिं भांति मोहिं दीन्हि बड़ाई। निज जन जाति लीन्ह अपनाई॥
होहिं सहस दश शारद शेषा। करहिं कल्प कोटिक भरि लेषा॥

आपने सब भांति से मुझको बड़ाई दी और अपना भक्त जानकर अपना लिया, यदि दस हजार शारदा और शेष हों और करोड़ों कल्प भर लेखा किया करें।

मोर भाग्य राउर गुण गाथा। कहि न सिराहिं सुनिय रघुनाथा॥
मैं कछु कहौं एक बल मोरे। तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे॥

तो भी हे रघुनाथ! सुनो मेरे भाग्य और आपके गुणों की कथा को कह कर कभी पूरा नहीं कर सकते हैं। मैं कुछ कहूं कि कर्म, उपासना या ज्ञान में एक का भी बल मुझको है सो वह एक भी नहीं है। मुझे तो केवल एक आप ही का बल है सो आप बहुत थोड़े ही निष्कपट स्नेह से प्रसन्न हो जाते हैं।

बार बार मांगहु कर जोरे। मन परिहरै चरन जनि भोरे॥
सुनि बर बजन प्रेम जनु पोषे। पूरण काम राम परितोषे॥

मैं बारम्बार हाथ जोड़कर मांगता हूं कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणों को न त्याग करे। इस प्रकार प्रेम से सने हुए जनकजी के मधुर वचन सुन कामनाओं से पूर्ण श्रीराम जी संतुष्ट हुए।

करि वर बिनय श्वसुर सनमाने। पितु कौशिक वशिष्ठ सम जाने॥
बिनती बहुरि भरत सन कीन्हीं। मिली सप्रेम पुनि आशिष दीन्हीं॥

अपने पिता, विश्वामित्र और वशिष्ठ जी के समान जानकर रामचन्द्रजी ने सुन्दर विनती करके श्वसुर (जनकजी) का सम्मान किया। पिता समान इसलिए जाना कि राम-जानकी एक ही अङ्ग है। जानकी के पिता होने से जनक जी भी पिता हैं, विश्वामित्र के हेतु से विजय प्राप्त हुई, सो विजय रूपी जानकी जनकजी से प्राप्त हुईं। इस कारण विश्वामित्र के समान जाना और वशिष्ठ जी विद्या गुरु हैं। ब्रह्मविद्या रूपी श्री जानकी जी हैं सो जनकजी से प्राप्त होने के कारण वशिष्ठ जी के समान जाना, फिर भरतजी की विनती की और प्रेम सहित मिलकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

दोहा—मिले लषण रिपुसूदनहिं, दीन्ह असीस महीस।
भए परस्पर प्रेमबस, फिरि फिरि नावहिं सीस॥ ३४१॥

अनन्तर राजा जनक लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी से मिले और उन्हें भी आशीश दी, फिर वे परस्पर ऐसे प्रेम के वश हो गए कि बारम्बार शिर नवाने लगे॥ ३४१॥

बार बार करि विनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भाई॥
जनक गहे कौशिकपद जाई। चरण रेणु शिर नयनन लाई॥

बार-बार विनती और बढ़ाई कर रघुनाथ जी सब भाइयों को साथ लेकर वहां से चले, फिर जनक जी ने विश्वामित्रजी के चरण जाकर पकड़ लिया और उनकी चरण-रज को अपने मस्तक और नेत्रों लगा कर कहने लगे कि।

सुनु मुनीश्वर दर्शन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे॥
जो सुख सुयश लोक पति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥

हे मुनिश्वर! सुनो तुम्हारे सुन्दर दर्शन से कुछ अगम नहीं है यह मेरे मन में विश्वास है। सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं और जिसका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं।

जो सुख सुयश सुलभ मोहि स्वामी। सब बिधि तब दर्शन अनुगामी॥
कीन्ह बिनय पुनि पुनि शिरनाई। फिरे महीपति आशिष पाई॥

हे स्वामी! वे सुख और सुन्दर यश मुझको सुलभ हो गए, क्योंकि वे आपके दर्शन के अनुगामी हैं। इस प्रकार चरणों पर मस्तक नवाय बार-बार विनती कर आशीर्वाद पाय जनकजी घर लौटे।

चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड़ सब समुदाई॥
रामहिं निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फल होहिं सुखारी॥

इस भांति नगाड़ा बजाकर जब बरात चली। उस समय छोटे बड़े सब लोग प्रसन्न हुए। जाते समय मार्ग में गांव के स्त्री-पुरुष रामजी के दर्शन कर नेत्रों का फल पा सुखी होने लगे।

दोहा--बीच बीच बर बास करि, मगलोगन सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुंची आय जनेत॥ ३४२॥

बीच बीच में वास करती और मार्ग में लोगों को सुख देती हुई अयोध्यापुरी के निकट अच्छे दिन बरात आ गई॥ ३४२॥

हने निसान पणव बहु बाजे। भेर शंख ध्वनि हय गय गाजे॥
झांझ मृदंग डिमडिमी सहाई। सरस राम बाजै सहनाई॥

नगाड़े और बहुत से ढोल बजने लगे, भेरी और शङ्ख की ध्वनि होने लगी, घोड़े और हाथी गाजने लगे। झांझ और मृदङ्ग, डिमडिमी और रसीले राग से शहनाई बजने लगी।

पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥
निज निज सुन्दर सदन सवारे। हाट बाट चौहट पुरद्वारे॥

पुरवासी बरात का आगमन जान ऐसे प्रसन्न हुए कि सबके शरीर पुलकित हो गए। सब लोगों ने अपने घर, हाट, वाट, चौराहे और पुर के द्वार सब सुन्दर रीति से सजाने लगे।

गली सकल अरगजा सिंचाई। जहं तहं चौके चारु पुराई॥
बनी बजार न जाइ बखाना। तोरण केतु पताक बिताना॥

और जहां तहां सुन्दर चौक, पुरा के सब गलियों में अरगजा इत्यादि सुगन्धित द्रव्य छिड़के गये। बंदनवार, ध्वजा, पताका और चंदवा से बाजार ऐसा सजा दिया गया कि जिसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

सफल पुंगि फल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदम्ब तमाला॥
लगे सुभग तरु परसत धरणी। मणिमय आलबाल कलकरणी॥

घरों के द्वार पर फल सहित सुपारी, केला, आम, बकुल, कदम्ब और तमाल के वृक्ष रोपे गये। ये सुन्दर वृक्ष पृथ्वी को छूते ही लग गये, जिनके थावलों में मणियों की सुन्दर चित्रकारी बनी हुई थी।

दोहा–विविध भांति मंगल कलस, गृह गृह रचे संवारि ।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुवर पुरी निहारि ॥ ३४३ ॥

अनेक भांति के मंगल-कलश सजा कर घर-घर में रखे गये । ब्रह्मा आदि सब देवता अयोध्यापुरी को देखकर सिहाने लगे ॥ ३४३ ॥

भूप भवनु तेहि अवसर सोहा । रचना देखि मदन मनु मोहा ॥
मंगल सगुन मनोहर ताई । रिधि सिधि सुख सम्पदा सुहाई ॥

उस समय राज-भवन की शोभा और रचना देखकर कामदेव का भी मन मोहित हो गया । मंगल सगुन, सुन्दरता, रिद्धि, सिद्धि, सुख और सुन्दर सम्पत्ति ।

जनु उछाह सब सहज सुहाए । तनु धरि धरि दशरथ गृहं छाये ॥
देखन हेतु राम बैदेही । कहहु लालसा होहि न केही ॥

मानों ये सब उत्साहित हो स्वभाव ही से सुन्दर शरीर धर-धर फिर दसरथजी के घर पर आ गये । राम-जानकी को देखने निमित्त कहो किसकी इच्छा न होगी ।

यूथ यूथ मिलि चलीं सुहागिनि । निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि ॥
सकल सुमंगल सजे आरती । गावहिं जनु बहु बेष भारती ॥

यूथ-की-यूथ मिलकर सुहागिनी स्त्रियां ऐसे चलीं, मानों अपनी छवि से रति का निरादर कर रही हैं । सब सुमंगलों से आरती सजे मंगल गीत गाती हुई ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानों सरस्वती ने बहुत सा रूप धारण किया हो ।

भूपति भवन कोलाहलु होई । जाइ न बरनि समय सुख सोई ॥
कौशल्यादि राम महतारी । प्रेम बिबस तनु दसा बिसारीं ॥

राज-भवन में ऐसा कोलाहल हो रहा था कि उस समय का सुख वर्णन नहीं किया जा सकता । कौशल्या आदि रामचन्द्रजी की माता प्रेम के वश शरीर की दशा भूल गईं ।

दोहा–दिए दान बिप्रन बिपुल, पूजि गणेश पुरारि ।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि ॥ ३४४ ॥

गणेश और शिवजी का पूजन कर और ब्राह्मणों को बहुत सा दान देकर ऐसी प्रसन्न हुईं, जैसे महा दरिद्री चारों पदार्थ पाकर प्रसन्न हो, अर्थात् बन्धुओं समेत पुत्रों का आना सुन आनन्दित हुईं ॥ ३४४ ॥

मोद प्रमोद बिबस सब माता । चलहिं न चरन शिथिल भए गाता ॥
राम दरस हित अति अनुरागीं । परिछनि साजु सजन सब लागीं ॥

प्रेम और आनन्द के वश सब माताओं का चरण रुक गया, सर शरीर शिथिल हो गये, रामचन्द्रजी के दर्शन के निमित्त बड़े प्रेम के साथ परिछन का सब साज सजाने लगीं ।

बिबिध बिधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रां साजे॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला॥

अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, रानी सुमित्रा प्रसन्न होकर मङ्गल द्रव्य सजाने लगीं। हल्दी, दूब, दही, पत्ता, पान और सुपारी इत्यादि अनेक प्रकार का मांगलिक फल।

अच्छत अंकुर लोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाये। मदन सकुन जनु नीड़ बनाये॥

अक्षत, अंकुर (नये पौदे) गोरोचन, खील, तुलसी की कोमल मंजरी आदि वस्तु। हल्दी आदि मंगल द्रव्यों से रंगे हुए सोने के घड़े ऐसे सुन्दर सजाये गये, मानो कामदेव रूपी पखेरू ने अपने रहने के लिए घोंसला बनाया है।

सगुन सुगन्ध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी॥
रची आरतीं बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥

सब शकुन और सुगन्ध द्रव्य, वर्णन नहीं किये जा सकते। सब मंगल सामग्री सब रानियां सजाने लगीं। अनेक प्रकार की आरती सजाय और प्रसन्न होकर सुन्दर मनोहर मंगल गीत गाने लगीं।

दोहा—कनक थार भरि मंगलन्हि, कमल करन्हि लिये मात।
चलीं मुदित परिछन करन, पुलक पल्लवित गात॥ ३४५॥

मंगल द्रव्यों से भरकर कमल समान हाथों में सोने का थाल लिए हुए प्रसन्नतापूर्वक पुलकित होने के कारण प्रफुल्लित होकर सब माताएं परिछन करने चलीं॥ ३४५॥

धूप धूम नभु मेचक भयऊ। सावन घन घमण्डु जनु ठयऊ॥
सुरतरु सुमन माल सुर बर्षहिं। मनहुं बलाक अवलि मन कर्षहिं॥

धूप के धुएं से आकाश ऐसा काला हो गया, मानों सावन की अंधियारी घटा छा रही है। देवता आकाश से कल्पवृक्ष के फूलों की माला वर्षाने लगे, जिसकी शोभा ऐसी हो रही थीं। मानों बगलों की पांति श्याम मेघ में सबको मोहित कर रही है।

मंजुल मनिमय बन्दनिवारे। मनहुं पाकरिपु चाप संवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥

भवनों पर सुन्दर मणियों से जड़ी हुई वन्दनवार ऐसी शोभायमान हो रही थी, मानो इन्द्र ने अपना धनुष बनाया है। अटारियों पर स्त्रियां प्रगट होती और छिपती हैं मानो सुन्दर और चंचल दामिनी दमक रही है।

दुन्दुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥
सुर सुगन्ध शुचि बर्षहिं बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी॥

नगाड़ों की ध्वनि ऐसी हो रही है, मानो घोर बादल गरज रहे हैं और याचकों की विरदावली ऐसी जान पड़ती है मानो मेघ का गर्जन सुनकर पपीहे, मेंढक, और मोर बोल रहे हैं। देवता पवित्र और

सुगन्धित जल वर्षाने लगे, जिससे खेती रूप नगर के सब स्त्री पुरुष ऐसे सखी हो गए, जैसे वर्षा आने से खेती करने वाले सुखी हो जाते हैं।

समउ जानि गुर आयसु दीन्हा। पुर प्रबेसु रघुकुल मनि कीन्हा॥
सुमिरि शम्भु गिरजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा॥

समय जानकर गुरुजी ने आज्ञा दी, तब रामचन्द्रजी ने नगर में प्रवेश किया। नगर में प्रवेश करते समय शिव, पार्वती और गणेश जी का स्मरण करके राजा दशरथजी समाज सहित प्रसन्न हुए।

दोहा—होहिं शगुन बरषहिं सुमन, सुर दुन्दुभी बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ॥ ३४६॥

सगुन होने लगा, देवता दुन्दुभी बजाकर फूल वर्षाने लगे। देवाङ्गनाएँ प्रसन्नता से सुन्दर और मंगल गीत गाकर नाचने लगीं॥ ३४६॥

मागध सूत बन्दि नट नागर। गावहिं जसु तिहुं लोक उजागर॥
जयधुनि बिमल बेद बर बानी। दसदिसि सुनिअ सुमंगल सानी॥

मागध, सूत, बंदीजन और चतुर नट तीनों लोक में प्रसिद्ध रामजी का यश गाने लगे। सुमङ्गल से भरी हुई विमल जय ध्वनि और वेद की श्रेष्ठ वाणी दशों दिशाओं में सुनाई देने लगी।

बिपुल बाजने बाजन लागे। नभसुर नगर लोग अनुरागे॥
बने बराती बरनि न जाहीं। महामुदित मन सुख न समाहीं॥

बहुत से बाजे बजने लगे, आकाश में देवता नगर के लोग प्रसन्न हुए। बराती ऐसे सजे थे, जिसका वर्णन नहीं हो सकता, वे मारे प्रसन्नता के हृदय में उस सुख को रोक सकते थे।

पुरबासिन्ह तब रायउ जोहारे। देखत रामहिं भए सुखारे॥
करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा॥

तब पुरवासियों ने आकर राजा को जुहार किया और रामचन्द्रजी को देखकर सब लोग सुखी हुए। मणियों और वस्त्रों का न्यौछावर करने लगे, नेत्रों में जल भर गया, शरीर रोमाञ्चित हो गया।

आरति करहिं मुदित पुर नारी। हर्षहिं निरखि कुंवर बर चारी॥
सिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥

नगर की स्त्रियां प्रसन्न होकर आरती करने और चारों सुन्दर कुंवरों को देखकर आनंद मग्न होने लगीं। पालकी का सुन्दर पट खोल और दुल्हिनियों को देखकर सुखी होने लगीं।

दोहा—एहि विधि सबहीं देत सुखु, आये राजदुलार।
मुदित मातु परिछनि करहिं, बधुन्ह समेत कुमार॥ ३४७॥

इसी प्रकार सबको सुख देते हुए राजद्वार पर आये, तब माताएँ प्रसन्नता से बहुओं सहित कुंवरों का परिछन (आरती) करने लगीं ॥ ३४७ ॥

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेमु प्रमोद कहै को पारा ॥
भूषण मणि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भांती ॥

बारँबार आरती करने लगीं। उस समय के प्रेमानन्द को कह कौन पार पा सकता है। अनेक प्रकार के गहने, रत्न और वस्त्र न्यौछावर करने लगीं, जिसकी गिनती नहीं की जा सकती।

बधुन्ह समेत देखि सुत चारी। परमानन्द मगन महतारी ॥
पुनि पुनि सीय राम छबि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी ॥

बहुओं सहित चारों पुत्रों को देखकर माताएँ अत्यन्त आनन्दित हुईं। बारंबार सीताजी और रामचन्द्रजी की छवि को देख और प्रसन्न होकर जगत में अपना जीवन सफल मानने लगीं।

सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही ॥
वर्षहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा ॥

सखियां सीताजी के मुख को बारंबार देखकर गान करती हुई अपने पुण्य कर्मों की सराहना करने लगीं। देवता क्षण-क्षण में फूलों की वर्षा करने और नाच-गाकर सेवा जनाने लगे।

देखि मनोहर चारिउ जोरीं। सारद उपमा सकल ढंढोरीं ॥
देत न बनहिं निपट लघु लागीं। एकटक रहीं रूप अनुरागीं ॥

चारों जोड़ियों की मनोहरता देख सरस्वती ने सब उपमा खोज डालीं। जब कोई उपमा देते नहीं बनी और सब उपमा छोटी जान पड़ी, तब उस रूप में अनुराग करके सरस्वती जी एकटक देखती रह गईं।

दोहा—निगम नीति कुल रीति करि, अरघ पांवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चलीं लवाई निकेत ॥ ३४८ ॥

वेद और कुल की रीति करके अर्घ पांवड़े देती हुई बहुओं सहित सब पुत्रों की आरती कर घर को ले चलीं ॥ ३४८ ॥

चारि सिंहासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए ॥
तिन्ह पर कुंअरि कुंअर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे ॥

अत्यन्त सुन्दर चार सिंहासन मानो उसे कामदेव ने अपने हाथ से बनाया था। उन पर बहुओं और पुत्रों को बिठाकर फिर आदर सहित चरण धोया।

धूप दीप नैवेद्य वेद विधि। पूजे बर दुलहिनि मंगल निधि ॥
बारहिं बार आरती करहीं। व्यंजन चारु चामर शिर ढरहीं ॥

वेद की विधि के अनुसार धूप, दीप और नैवेद्य आदि से मंगल निधि वर दुल्हिनियों का पूजन किया। बारंबार आरती करके शिर पर सुन्दर पंखा और चँवर घुमाने लगीं।

बस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं॥
पावा परम तत्व जनु जोगीं। अमृतु लहेउ जनु सन्तत रोगीं॥

अनेक प्रकार की वस्तु न्यौछावर होने लगी, उस समय आनंद में भरी हुई सब माताएँ ऐसी शोभायमान हुईं, जैसे योगी को परम तत्व और सदा के रोगी को अमृत मिल जाय।

जन्म रंक जनु पारस पावा। अन्धहिं लोचन लाभु सुहावा॥
मूकबदन जनु सारद छाई। मानहुं समर सूर जय पाई॥

और जन्म के दरिद्री ने मानो पारस पा लिया तथा अँधे को सुन्दर नेत्रों का लाभ हुआ। गूँगे के मुख में मानो सरस्वती आ बैठी और युद्ध में शूर ने विजय प्राप्त की।

दोहा—एहि सुख ते सत कोटि गुन, पावहिं मातु अनन्दु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर, आये रघुकुल चन्दु॥ ३४९॥
लोकरीति जननी करहिं, बर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोदु विनोदु बिलोकि बड़, रामु मनहिं मुसुकाहिं॥ ३५०॥

इस सुख से करोड़ गुना आनन्द माताओं को भाईयों समेत (रामचन्द्रजी) को ब्याह कर घर आने से मिला॥ ३४९॥ सब माताएँ सांसारिक रीतियां करने लगीं। दुल्हा-दुल्हिन सकुचाने लगीं यह आनन्द प्रमोद देख-देख कर रामचन्द्र जी मन-ही-मन खुश हो रहे थे॥ ३५०॥

देव पितर पूजे विधि नीकी। पूजीं सकल बासना जी की॥
सबहि बन्दि मागहिं बरदाना। भाइन सहित राम कल्याना॥

देवता और पितरों की अच्छी विधि से पूजा को मन की सब इच्छा पूरी हुई। सब माताएँ देवता और पितरों को प्रणाम कर यह वरदान मांगने लगीं कि भाइयों सहित राम का कल्याण (भला) हो।

अन्तरहित सुर आशिष देहीं। मुदित मातु अञ्चल भरि लेहीं॥
भूपति बोले बराती लीन्हें। जान बसन मनि भूषन दीन्हे॥

अन्तरिक्ष में छिपे हुए देवता भी आशीर्वाद देने लगे और माताएं आनन्दित हो अँचरा पसार कर लेने लगीं। राजा ने बरातियों को बुला लिया और उनको सवारी, वस्त्र, रत्न और गहने इत्यादि पारितोषिक दिया।

आयसु पाइ राखि उर रामहिं। मुदित गये सब निज निज धामहिं॥
पुनि नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाये॥

फिर वे आज्ञा पाय और रामचन्द्रजी की मूर्ति हृदय में रख प्रसन्न होते हुए अपने-अपने घर को

चले गये। फिर नगर के सब नर-नारियों को पहरावा दिया और सबके घर-घर आनन्द की बधाई बजने लगी।

जाचक जन जाचहिं जोई जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोई सोई॥
सेवक सकल बजनियां नाना। पूरन किये दान सन्माना॥

याचक लोग जो-जो मांगते गये, राजा भी प्रसन्न हो वही-वही वस्तु दान देते गये। सेवक और अनेक प्रकार के बाजे बजाने वालों को दान दे और सम्मान कर सबको संतुष्ट किया।

दोहा—देहिं असीस जोहारि सब, गावहिं गुण गण गाथा।
तब गुर भूसुर सहित गृहं, गवनु कीन्ह नरनाथा॥ ३५१॥

सब जुहार कर आशीर्वाद और गुण की कथा गाने लगे। तब राजा, गुरु और ब्राह्मणों सहित राम भवन में सधारे॥ ३५१॥

जो बशिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक बेद बिधि सादर कीन्ही॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥

तब वशिष्ठ जी ने आज्ञा दी, राजा ने वह सब लोक और वेद विधि से आदर सहित किया। ब्राह्मण की भीड़ देख सब रानियां अपना बड़ा भाग्य जान, सत्कार करने के लिए आदर से उठीं।

पाय पखारि सकल अन्हवाए। पूजि भली बिधि भूप जेवांए॥
आदर दान प्रेम परितोषे। देत असीस चले मन तोषे॥

चरण धोकर सबको स्नान कराया और अच्छी विधि से पूजा करके फिर राजा ने सबको भोजन कराया। आदर, दान और प्रेम से पूर्ण किया, तब सब लोग हृदय से संतुष्ट होकर आशीर्वाद देते हुए चले।

बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा। नाथ मोहिं सम धन्य न दूजा॥
कीन्हि प्रशंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्हि पगधूरी॥

फिर बहुत विधि से विश्वामित्र की पूजा करके उनसे कहा कि हे नाथ! मैं धन्य हूं। मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। इस प्रकार राजा ने विश्वामित्रजी की बहुत प्रशंसा की और रानियों सहित उनके चरण-रज को अपने मस्तक पर चढ़ाया।

भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मन जोगवत रह नृप रनिवासू॥
पूजे गुर पद कमल बहोरी। कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी॥

भीतर भवन में रहने को सुन्दर स्थान दिया और राजा-रानी सब लोग उनका रुख देखते रहे। जो आज्ञा हो, तो हम तुरन्त पालन करें अथवा रनिवास दर्शन करते रहें। फिर गुरु वशिष्ठजी के चरण-कमलों की पूजा कर बहुत प्रसन्न-चित्त से उनकी विनती की।

दो०—बधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीसु।
पुनि पुनि बंदत गुरचरन, देत असीस मुनीसु॥ ३५२॥

बहुओं सहित सब कुमार और रानियों समेत राजा दसरथजी ने बारंबार गुरु के चरणों में प्रणाम किया और मुनिश्वर ने उन्हें आशीर्वाद दिया ।। ३५२ ।।

बिनय कीन्हि उर अति अनुरागें। सुत सम्पदा राखि सब आगें ॥
नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा। आशिर्वाद बहुत बिधि दीन्हा ॥

राजा ने पुत्र और सम्पत्ति आगे रखकर अत्यन्त प्रीति से विनय की । तब मुनिनायक ने अपना नेग मांग लिया और बहुत विधि से आशीर्वाद दिया ।

उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुरु गवनु निकेता ॥
बिप्र बधू सब भूप बुलाई। चैल चारु भूषन पहिराई ॥

सीता-सहित रामजी को हृदय में धारण कर प्रसन्नता से गुरु वशिष्ठजी अपने स्थान को पधारे । फिर रानियों ने ब्राह्मणों की स्त्रियों और कुल की बूढ़ी स्त्रियों को बुलाकर उन्हें सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहिराये ।

बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं। रुचि बिचारि पहिरावन दीन्हीं ॥
नेगी नेग जोग सब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं ॥

फिर सुहागिनियों को बुला और उन लोगों को रुचि के अनुसार पहिरावा दिया । सब नेगी अपना नेग लेने लगे । और दशरथजी भी उनको रुचि के अनुसार देने लगे ।

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भांति सनमाने ॥
देव देखि रघुबीर बिबाहू। बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू ॥

प्यारे पाहुनों को जो पूजा के योग्य थे, उन लोगों का भली-भांति से सम्मान किया । देवगण रामचन्द्रजी का विवाह देख और फूल वर्षा कर उत्सव की प्रशंसा करने लगे ।

दो०—चले निसान बजाइ सुर, निज निज पुर सुख पाइ ।
कहत परस्पर राम जसु, प्रेम न हृदयं समाइ ॥ ३५३ ॥

सब देवता सुखी हो नगाड़ा बजाते और परस्पर रामचन्द्रजी का यश वर्णन करते हुए अपने-अपने लोक को चले और इतने प्रसन्न हो रहे थे कि, वह आनन्द उनके हृदय में नहीं रुकता था ।। ३५३ ।।

सब बिधि सबहिं समदि नरनाहू। रहा हृदयं भरि पूरि उछाहू ॥
जहं रनिवास तहां पगु धारे। सहित बहुटिन्ह कुंअर निहारे ॥

राजा ने सबका सब प्रकार सम्मान किया और मन में पूरा आनन्द भर रहा था । फिर जहां रनिवास था, वहां चरण पधारे और बहुंओं सहित कुँवर देखे ।

लिए गोद करि मोद समेता। को कहि सकइ भयउ सुखु जेता ॥
बधू सप्रेम गोद बैठारीं। बार बार हियं हरषि दुलारीं ॥

और आनन्दित हो पुत्रों का गोद में लिया, उस समय उनको जितना सुख हुआ उसकी कौन कह

सकता है ? बहुंओं को प्रेम सहित गोद में बिठाकर बारम्बार मन में प्रसन्न होते हुंए प्यार करने लगे ।

देखि समाजु मुदित रनिवासू । सबके उर आनन्द कियो बासू ॥
कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू । सुनि सुनि हरषु होत सब काहू ॥

उस समय का समाज देखकर सारा रनिवास प्रसन्न हो गया और सबके हृदय में भी भरपूर उत्साह हो गया, जिस प्रकार विवाह हुआ, वह सब हाल राजा से सुन-सुनकर सब लोगों को प्रसन्नता होती थी।

जनकराज गुन शीलु बड़ाई । प्रीति रीति सम्पदा सुहाई ॥
बहु विधि भूप भाट जिमि बरनी । रानीं सब प्रमुदित सुनि करनी ॥

जनक का गुण, शील, बढ़ाई, प्रीति की रीति और सुन्दर ऐश्वर्य । ये सब बहुत प्रकार राजा दशरथजी ने भाट की भांति वर्णन किये और सब रानियां जनकराज की ऐसी करनी सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं ।

दो०—सुतन्ह समेत नहाइ नृप, बोलि बिप्र गुर ग्याति ।
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पंच गइ राति ॥ ३५४ ॥

अनन्तर राजा ने पुत्रों समेत स्नान कर गुरु और जाति के लोगों को बुला लिया और सबके सहित अनेक प्रकार का भोजन किया । इस अन्तर में पांच घड़ी रात व्यतीत हुई ॥ ३५४ ॥

मंगल गान करहिं बर भामिनि । भै सुखमूल मनोहर जामिनि ॥
अंचइ पान सब काहूं पाये । स्रग सुगन्ध भूषित छवि छाये ॥

सुन्दर स्त्रियां मँगल गाने लगीं । सुख की मूल मन को मोहित करने वाली रात हुई । फिर आचमन करने के पश्चात् सब लोगों ने पान पाया । माला और सुगन्ध से सज कर छवि से छा गये ।

रामहिं देखि रजायसु पाई । निज निज भवन चले सिर नाई ॥
प्रेम प्रमोदु बिनोदु बड़ाई । समउ समाजु मनोहर ताई ॥

रामचन्द्र जी के दर्शन कर और आज्ञा पा सब लोग सिर नवाकर अपने-अपने घर को चले । प्रेम, आनन्द विनोद विवाह का उत्सव बड़ाई, उस समय का समाज और मनोहरता का क्या वर्णन किया जाये ?

कहि न सकहिं संत सारद सेषू । बेद बिरञ्चि महेश गनेसू ॥
सो मैं कहौं कवन विधि बरनी । भूमिनाग शिर धरै कि धरनी ॥

वेद, सरस्वती, शेष, देवता, ब्रह्मा जी, महादेव और गणेशजी भी वर्णन नहीं कर सकते । उसका मैं किस प्रकार वर्णन कर सकता हूं । क्या पृथ्वी पर विचरने वाला सांप पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण कर सकता है ?

नृप सब भांति सबहि सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाई रानी॥
बधू लरिकनीं पर घर आईं। राखेउ नयन पलक की नाईं॥

राजा ने सब प्रकार से सबका सम्मान किया और कोमल वचन कहकर, रानियों को बुलाकर कहा कि ये बहुयें बहुत बालिका हैं, दूसरे घर आई हैं, इनको नयन के पलक के समान रखना।

दो०--लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्रामगृहुं राम चरन चितु लाइ॥३५५॥

लड़कों को थकावट से निद्रा आ रही है इनको ले जाकर शयन कराओ। इतना कहकर महाराज दशरथ जी के चरणों में मन लगाकर विश्राम भवन को चले गये॥ ३५५॥

भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलंग डसाए॥
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेतीं नाना॥

राजा के साधारण और सुहावने वचन को सुनकर रानियों ने सुवर्ण और मणि-जड़ित पलंग बिछाया। सुन्दर गोदुग्ध के फेन के समान उज्ज्वल, कोमल और मनोहर और अनेक प्रकार की तोषकें बिछा दीं।

उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्रग सुगंध मनिमंदिर माहीं॥
रतनदीप सुठि चारु चंदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा॥

उन पर ऐसी सुन्दर तकिया लगाई गई कि जिसकी शोभा अकथनीय है। उस मणिमय मन्दिर में पुष्पों की सुगंध चारों ओर भर गई। अनेक प्रकार के रत्न दीपक सुहावना चन्दोवा पलंग पर तना हुआ, जिसकी शोभा कहते नहीं बनती, जो उसे देखे हो, वही जाने।

सेज रुचिर रचि रामु उठाए। प्रेम समेत पलंग पौढ़ाए॥
अग्या पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥

सुन्दर सेज बिना रामचन्द्र जी को उठाया और प्रेम सहित पलंग पर सुला दिया। रामजी ने बारम्बार भाइयों को आज्ञा दी। तब उन लोगों ने भी अपनी-अपनी सेज पर जाकर शयन किया।

देखि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी॥

रामचन्द्रजी का सुन्दर कोमल श्याम शरीर देखकर सब मातायें प्रेम सहित कहने लगीं कि हे तात! मार्ग में जाते हुए बड़ी डरावनी ताड़का राक्षसी को तुमने किस प्रकार मारा?

दो०--घोर निसाचर बिकट भट समर गनहि नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु॥ ३५६॥

भयंकर राक्षस विकट योद्धा जो युद्ध में किसी को नहीं गिनते, ऐसे दुष्ट सुबाहु और मारीच को सहायकों समेत तुमने कैसे मारा॥ ३५६॥

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी॥
मख रखवारी करि दुहुं भाईं। गुरु प्रसाद सब बिद्या पाईं॥

कौशल्या जी कहने लगीं कि हे तात ! मुनि (विश्वामित्रजी) की कृपा के बल से ईश्वर ने तुम्हारे अनेकों विघ्न को टाल दिया। यज्ञ की रक्षा करके और गुरु की प्रसन्नता से तुम दोनों भाइयों ने सब विद्या प्राप्त की।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥
कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाज महुं सिव धनु तोरा॥

गौतम मुनि की स्त्री (अहिल्या) तुम्हारे चरण की धूरी लगते ही तर गई, यह कीर्ति ब्रह्माण्ड भर में फैल गई। कछुए की पीठ और वज्र की पर्वत के समान कठोर शिवजी का धनुष तुमने राजाओं की सभा में तोड़ डाला।

बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपां सुधारे॥

विश्व में विजय और यश के साथ जानकी जी मिलीं तथा भाइयों को ब्याह करके घर लाये। तुम्हारा सब काम अमानुषिक है यह केवल विश्वामित्रजी की कृपा के कारण हुआ।

आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधुबदन तुम्हारा॥
जे दिन गए तुम्हहिं बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखें॥

हे पुत्र ! तुम्हारे चन्द्रमुख को देखकर जगत में आज हमारा जन्म सफल हुआ। हमारा जितना दिन तुमको देखे बिना बीता है उसे ब्रह्मा हमारी आयु के लेखे में न डालें।

दो०--राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किए नीदबस नैन॥ ३५७॥

रामचन्द्रजी ने नम्रता से मधुर वचन कहकर माताओं को संतुष्ट किया। अनन्तर शिव गुरु और ब्राह्मणों के चरणों को स्मरण कर नेत्र बंद करके शयन करने लगे॥ ३५७॥

नीदउं बदन सोह सुठि लोना। मनहुं सांझ सरसीरुह सोना॥
घर घर करहिं जागरन नारीं। देहिं परसपर मंगल गारीं॥

नींद में भी सुन्दर सलोना मुख ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे सायंकाल में लाल कमल शोभायमान हो जाता है। अयोध्या नगर की स्त्रियां घर-घर जागरण करके मङ्गल गारी देने लगीं।

पुरी बिराजति राजति रजनी। रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी॥
सुंदर बधुन्ह सासु लै सोईं। फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोईं॥

रानी कहने लगीं कि हे "सखियों ! देखो अयोध्यापुरी के विशेष शोभायमान होने से रात भी कैसी शोभायमान हो रही है।" सुन्दर बहुओं को लेकर सासु इस प्रकार शयन करने लगीं मानो नागिन ने अपने मस्तक के मणि को अपने हृदय में छिपा लिया।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥
बंदि मागधन्हि गुनगन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए॥

सवेरे पवित्र काल में जब श्रेष्ठ मुर्गे बोलने लगे, तब रामचन्द्रजी जागे। बन्दी और मागध गण गण गाने लगे तथा नगर निवासी द्वार पर जुहार करने को उपस्थित हुए।

बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे॥

ब्राह्मण, देवता, गुरु और माता-पिता को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद पाकर सब प्रसन्न हुए। माताओं ने आदर सहित पुत्रों का मुख देखा, तब राजा के साथ द्वार पर पधारे।

दो०—कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ।
प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ॥ ३५८॥

सहज ही पवित्र चारों भाई जब शौच क्रिया से निवृत्त हुए, तब पवित्र नदी सरजू में स्नान कर प्रातः क्रिया (सँध्या-वन्दन) आदि करके पिता के पास आये॥ ३५८॥

भूप बिलोकि लिए उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई॥
देखि रामु सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥

राजा ने देखते ही उन्हें हृदय से लगा लिया, फिर आज्ञा पा प्रसन्न होकर बैठ गये। रामचन्द्रजी को देखकर सब सभा प्रसन्न हुई और नेत्रों के लाभ की अवधि का अनुमान कर लिया।

पुनि बसिष्टु मुनि कौसिकु आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे॥

फिर वशिष्ठ मुनि और विश्वामित्रजी आये, तब सुन्दर आसन पर दोनों मुनियों को बिठाया। राजा ने पुत्रों सहित मुनि की पूजा कर उनका चरण स्पर्श किया और राम को देखकर दोनों मुनि मन में प्रसन्न हुए।

कहहिं बसिष्टु धरम इतिहासा। सुनहिं महीसु सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ट बिपुल बिधि बरनी॥

वशिष्ठ मुनि धर्म सम्बन्धी इतिहास कहने लगे और राजा रनिवास के सहित सुनने लगे। मुनियों के मन को अगम विश्वामित्रजी की ऐसी अगाध करणी तपस्या आदि की कथा वशिष्ठजी ने प्रसन्नता से बहुत विधिपूर्वक वर्णन की।

बोले बामदेउ सब सांची। कीरति कलित लोक तिहुं माची॥
सुनि आनंदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू॥

यह सुनकर वामदेव जी बोले कि, "आपका कथन सत्य है, इनकी सुन्दर कीर्ति तीनों लोक में फैल रही है।" यह सुनकर सब लोग आनन्दित हुए और राम-लक्ष्मण जी के मन अधिक प्रसन्नता हुई।

दो०—मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भांति।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति॥ ३५९॥

इस प्रकार नित्य मङ्गल आनन्द और उत्साह में दिन-रात व्यतीत होने लगा। अवधपुरी आनन्द से भरकर ऐसी उमंगी कि, दिन-दिन अधिक बढ़ती ही रही ॥ ३५९ ॥

सुदिन सोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद विनोद न थोरे ॥
नित नव सुखु सुर देखि सिहाहीं। अवध जन्म जाचहिं बिधि पाहीं ॥

अच्छा दिन विचार कर कंकण खोला गया, मङ्गलाचार हुए और बड़ा आनन्द विनोद रहा। नित्य-नित्य नवीन सुख देख, देवता सुख पाते थे और अयोध्या में जन्म लेने से ब्रह्मा से याचना कर रहे थे।

बिस्वामित्रु चलन नित चहहीं। राम सप्रेम विनय बस रहहीं ॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ ॥

विश्वामित्र जी नित्य जाना चाहते थे, परन्तु रामजी के प्रेम और विनय के वश होकर ठहर जाते थे। प्रतिदिन राजा का भी सौ गुना प्रेम देख विश्वामित्रजी उनकी सराहना करते थे।

मागत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे ॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवकु समेत सुत नारी ॥

निदान जब मुनिजी चलना निश्चित कर बार-बार विदा मांगने लगे, तब राजा प्रेम में मग्न होकर पुत्रों सहित मुनि के आगे खड़े हुए और कहने लगे कि, "हे नाथ ! यह सब सम्पदा आप ही की है। मैं पुत्र और स्त्रियों सहित आपका सेवक हूं।"

करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू ॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी ॥

हे मुनिवर ! बालकों पर सदा कृपा करते रहना और मुझको भी दर्शन देते रहना। इस प्रकार कह कर राजा पुत्र और रानियों सहित उनके चरण पर गिर पड़े और प्रेम में ऐसे मग्न हो गये कि उनके मुख से एक बात तक न निकल सकी।

दीन्हि असीस बिप्र बहु भांती। चले न प्रीति रीति कहि जाती ॥
रामु सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुंचाई ॥

फिर विश्वामित्र बहुत भांति से सबको आशीष देकर अपने स्थान को चले और प्रेम के वश उनकी जो दशा हो रही थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। रामचन्द्रजी सब भाइयों के सहित प्रेमपूर्वक विश्वामित्रजी को पहुंचाकर और उनकी आज्ञा पाकर लौट आये।

दो०—राम रूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुलचंदु ॥ ३६० ॥

रामचन्द्रजी का स्वरूप राजा दशरथ की भक्ति तथा विवाहोत्सव के आनन्द की सराहना अपने मन-ही-मन में करते हुए प्रसन्नता-पूर्वक विश्वामित्रजी चले जाते हैं ॥ ३६० ॥

बामदेव रघुकुल गुर ग्यानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी ॥
सुनि मुनि सुजसु मनहिं मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ ॥

वामदेव और रघुकुल के ज्ञानी गुरु वशिष्ठजी ने फिर विश्वामित्रजी की कथा वर्णन की। मुनि के सुयश को सुन दशरथजी मन-ही-मन अपने पुण्य के प्रभाव की प्रशंसा करने लगे।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृहं गयऊ।
जहं तहं राम ब्याहु सबु गावा। सुजसु पुनीत लोक तिहुं छावा॥

फिर सब लोगों को घर जाने की आज्ञा देकर राजा भी पुत्रों सहित चले गये। जहां-तहां रामचन्द्र जी के विवाह का यश गाया जाने लगा और उनका पवित्र सुयश तीनों लोक में छा गया।

आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसइ अनंद अवध सब तब तें॥
प्रभु बिबाहं जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥

जब से रामजी विवाह करके घर आये, तब से सम्पूर्ण आनन्द अवध में वास करने लगा। प्रभु के विवाह में जैसा आनन्द हुआ, उसको सरस्वती और शेष भी वर्णन नहीं कर सकते।

कबिकुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥

सीता जी और रामचन्द्र जी का यश कवि-कुल के जीवन को पवित्र करने वाला तथा मंगल की खानि जान, मैंने भी अपनी वाणी को पवित्र करने के निमित्त कुछ बखान कर कहा है।

छं०—निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसीं कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो॥
उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं॥ ६१॥

तुलसीदासजी ने कहा है कि अपनी वाणी को पवित्र करने के निमित्त रामचन्द्रजी का यश मैंने वर्णन किया है। रघुनाथजी का चरित्र अपार समुद्र के समान, ऐसा कौन कवि है। जो उससे पार पा सके? रामजी का यज्ञोपवीत और विवाह का आनन्द मंगल जो आदर से सुनते और गाते हैं वे भक्तजन सीताजी और रामजी की कृपा से सदा सुखी रहते हैं॥ ६१॥

सो०—मन हरिपद अनुराग, करहु त्यागि नाना कपट।
महामोह निशि जाग, सोवत बीते कालबहु॥ ३६॥

हे मन! अनेक प्रकार के कपट को छोड़कर भगवान के चरणो में प्रीति कर, महामोह अर्थात महा-अज्ञान रूपी रात्रि से जागो, सोते हुए बहुत समय बीत गया है॥ ३६॥

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुं सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥ ३७॥

सीता-रामजी का विवाह जो प्रेम से गावेंगे और सुनेंगे उनको सदा आनन्द प्राप्त होगा, क्योंकि राम का यश मंगल का धाम है, अर्थात राम यश सुनने वालों के घर में सदा मंगल रहेगा॥ ३७॥

इति श्रीरामचरितामानसे सकल कलि कलुषविध्वंस ने विमल विज्ञान वैराग्य सन्तोष षम्पादनो नाम तुलसीदास कृत बालकाण्डः प्रथमः सोपानः समाप्तः॥

❀ इति बाल्यकाण्ड समाप्त ❀

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्री रामचरित-मानस

द्वितीय सोपान

अयोध्याकाण्ड

मंगलाचरण

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम् ॥ १ ॥

बाईं गोदी में श्री पार्वतीजी विराजती हैं और सिर पर श्री गंगाजी शोभायमान हैं। ललाट पर शुक्लपक्ष की द्वितीया का चन्द्रमा और कण्ठ में हलाहल विष, जिनके वक्षस्थल पर नागराज का यज्ञोपवीत है, सब अंगों में भस्म लगाये, यही जिनका आभूषण हैं। देवताओं में श्रेष्ठ, सबके स्वामी हैं। संहारकर्ता, सबमें व्यापक, चन्द्रमा के समान गौरवर्ण, अथवा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, जिनके शरीर की कान्ति है, कल्याण के करने वाले श्रीशंकर भगवान मंगल-स्वरूप महादेवजी सदैव हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥ २ ॥

जो श्री रामचन्द्रजी के मुख कमल की शोभा राज्याभिषेक से प्रसन्नता को प्राप्त नहीं हुई, वैसे ही वनवास के दुःख से मलिन भी न हुई, वह श्री मुखारविन्द मुझको सब प्रकार सुन्दर मंगल की देने वाला हो ॥ २ ॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्ग सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥ ३ ॥

नील कमल के समान कोमल और श्याम शरीर, बायें भाग में श्री सीताजी विराजमान दोनों हाथों में विशाल बाण और सुन्दर धनुष है, ऐसे रघुवंश के स्वामी रामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥

दो०–श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउं रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि॥ १॥

श्री गुरुदेवजी के चरण-कमल की रज अपने मन रूपी दर्पण को निर्मल करके रघुवर के निर्मल यश को वर्णन करना चाहता हूं जो चारों फल को देने वाले हैं॥ १॥

जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥

रामचन्द्र जी जब से विवाह करके घर पर आये, तब से नित्य नवीन मंगल आनन्द बधाई होने लगी। चौदह भुवन रूपी भारी पर्वतों पर पुण्य-रूपी मेघ सुख रूपी जल वर्षाने लगे।

रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुं आई॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भांति॥

ऋद्धि-सिद्धि और सम्पदा रूपी सुन्दर नदियां उमंग कर अयोध्या रूपी समुद्र में आ मिलीं। नगर के स्त्री-पुरुष की मणियों के समूह के समान हैं, जो सब प्रकार पवित्र अनमोल और सुन्दर है।

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती॥
सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी॥

नगर की विभूति कुछ कही नहीं जाती मानो ब्रह्मा की इतनी ही करतूती है। सब प्रकार से नगर के सब लोग रामचन्द्रजी के चन्द्र के समान मख को देखकर सुखी हो गये।

मुदित मातु सब सखीं सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ॥

माता और सखी सहेली अपने मनोरथ रूपी बलि को फलती हुई देख प्रसन्न हुई। रामचन्द्रजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देख मनिश्वर और राजा दशरथ जी प्रसन्न होने लगे।

दो०–सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु॥ २॥

सबके हृदय में ऐसी इच्छा थी और शिवजी से प्रार्थना करके यही कहने लगे कि राजा दशरथज अपने रहते हुए रामचन्द्रजी को युवराज पद दे दें॥ २॥

एक समय सब सहित समाजा। राजसभां रघुराजु बिराजा॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥

एक समय सब समाज सहित राज-सभा में राजा दशरथ जी विराजमान हुए। सब सुकर्मों की मूर्ति दशरथजी रामचन्द्रजी के सुयश को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें॥
तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरिभाग दसरथ सम नाहीं॥

सब राजा कृपा की इच्छा किये हुए और लोकपाल प्रीति का रुख देख रहे थे। तीनों लोक और तीनों काल जगत में दशरथजी के समान बड़भागी कोई नहीं हुआ।

मंगलमूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥
रायं सुभायं मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥

मंगल-मूल रामचन्द्रजी जिनके पुत्र हैं उनको जो कुछ कहा जाय, सो थोड़ी है। राजा ने साधारण स्वभाव से हाथ में दर्पण लिया और अपना मुख देख मुकुट को बराबर किया।

श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुं जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप जुबराज राम कहुं देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

और देखा कि कान के निकट के केश श्वेत हो गये, मानो चौथापन ऐसा उपदेश कर रहा है कि, "हे राजा! राज्याधिकार राम को दे जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं लेते।"

दो०—यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ॥ ३॥

राजा ने अपने मन में ऐसा विचार कर अच्छा दिन और अच्छा समय पाकर प्रेम से पुलकित शरीर और मन में अति प्रसन्न हो, गुरु वशिष्ठजी को अपना विचार जाकर कह सुनाया॥ ३॥

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भए राम सब बिधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमारे अरि मित्र उदासी॥

राजा ने गुरु से कहा कि—"हे मुनिनायक! सुनिए अब तो रामचन्द्र सब प्रकार से सब लायक हो गये। सेवक, मंत्री, नगर निवासी, उदासी और हमारे जितने शत्रु-मित्र हैं।

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं॥

रामचन्द्र मेरे समान सबको प्यारे है, मानो अपना आशीर्वाद ही शरीर धारण करके शोभायमान हो रहा है। हे गुसाईं, कुटुम्ब सहित ब्राह्मण आपकी ही भांति स्नेह करते हैं।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउं रज पावनि पूजें॥

जो गुरुदेव के चरण-रज को शिर पर धारण करते हैं, वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य को अपने अधीन कर लेते हैं। मेरे समान और दूसरा नहीं हुआ। यह सब आपके चरण पूजने से ही प्राप्त हुआ है।

अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥

हे नाथ ! अब एक अभिलाषा मेरे मन में रह गई, वह भी आपकी दया से पूरी हो जायेगी। मुनि की अत्यन्त प्रसन्नता और स्वाभाविक प्रीति देख, राजा ने कहा कि—"आज्ञा दीजिए।"

दो०—राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार॥ ४॥

यह सुनकर वशिष्ठजी ने कहा कि—"हे राजन् ! तुम्हारा नाम और यश सब मनोरथों को देने वाला है। हे राजाओं के मुकुट-मणि ! तुम्हारे मन की अभिलाषा का फल अनुगामी हैं॥ ४॥

सब बिधि गुरु प्रसन्न जियं जानी। बोलेउ राउ रहँसि मृदु बानी॥
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥

सब प्रकार से गुरु के मन में प्रसन्न जान, राजा ने हंस कर कोमल वचन से उनसे कहा कि हे नाथ राम को युवराज कीजिए और कृपा करके समाज करने की आज्ञा दीजिए।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥

मेरे रहते यह आनन्दोत्सव हो और सब लोग अपने अपने नेत्रों का लाभ पावें, हे प्रभु ! आपकी कृपा से शिवजी से सब कामनाएं पूर्ण कीं। अब यही इच्छा मन में रह गई है।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए॥

इच्छा पूरी होने पर शरीर रहे या जाय, कुछ सोच नहीं, पीछे पछतावा तो नहीं रह जायेगा। मंगल और आनन्द का मूल दशरथ जी का सुहावना वचन सुन मुनि वशिष्ठ जी प्रसन्न हो कहने लगे कि—

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥

सुनो राजन् ! जिससे विमुख होकर जीव पछताता है और जिसके भजन बिना जरा भी नहीं रहा जाता, वही प्रभु तुम्हारे पुत्र हैं। श्री रामचन्द्रजी प्रेम के पीछे चलने वाले हैं।

दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु॥ ५॥

हे राजा ! बिलम्ब मत करो, शीघ्र सब समाज सजाओ। अच्छा दिन और सुन्दर मंगल तभी है जब रामचन्द्र युवराज हों॥ ५॥

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥

यह सुनते ही प्रसन्न हो, राजा महल में आये और अपने सेवक तथा सुमन्त आदि मंत्रियों को बुलाया। आते ही उन्होंने जय जीव कह शिर नवाया। तब राजा ने उनको सुमंगल वचन सुनाया।

प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू। रामहिं राय देहु युवराजू॥
जौं पांचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियं रामहि टीका॥

आज गुरुदेव ने प्रसन्न होकर मुझसे कहा कि हे राजा! अब राम को युवराज का पद दो। यदि तुम लोगों को यह मत अच्छा लगे तो चित्त में प्रसन्न होकर राम को राज्य तिलक करो।

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरवं परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी॥

राजा की ऐसी प्रिय वाणी सुन सब मन्त्री प्रसन्न हुए, मानो उनके वाञ्छित पौधे पर जल पड़ गया। मंत्री हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे जगतपति महाराज! आप करोड़ वर्ष जीवित रहे।

जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥
नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥

हे नाथ! आपने जगत् का मंगल करने वाला कार्य विचारा है, इसमें जल्दी कीजिए। बिलम्ब अच्छा नहीं है। मन्त्री की सुन्दर वाणी सुन राजा को ऐसा आनन्द हुआ, मानो बढ़ती हुई बेलि को सुन्दर शाखा मिल गई।

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोई॥ ६ ॥

राजा ने कहा कि—मुनिराज (वशिष्ठ जी) की जो-जो आज्ञा हो, उसे राम के राजतिलक के निमित्त शीघ्र करो॥ ६॥

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥

तब मुनिश्वर ने प्रसन्न हो, कोमल वाणी से कहा कि सब अच्छे तीर्थों का जल ले आओ। औषधि, मूल, फल, पान और अनेक मांगलिक वस्तुओं का नाम गिनकर बता दिया।

चामर चरम बसन बहु भांती। रोम पाट पट अगनित जाती॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका॥

चंवर, मृग और व्याघ्र का चर्म, बहुत भांति के वस्त्र, ऊनी दुशाले और अगणित जाति के रेशमी वस्त्र, अनेक प्रकार की मङ्गल वस्तुओं और रत्न, जो जगत् में तिलक के योग्य हैं।

बेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥
सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुं फेरा॥

वेद में कहा हुआ सब विधान कह सुनाया और नगर में अनेक भांति के मण्डप बनाने की आज्ञा दी। फल समेत आम, सुपारी और केला गलियों और नगर में चारों ओर लगाओ।

रचहु मंजु मनि चौकें चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥

गजमुक्ता और मणि से सुन्दर चौक, पुरा कर बाजार सुसज्जित करो। गणेश, गुरु और देवताओं की पूजा तथा सब ब्राह्मणों की सेवा करो।

दो०—ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग॥ ७॥

ध्वजा, पताक, बंदनवार, कलश, घोड़े, रथ और हाथियों को सजाओ। मुनिवर (वशिष्ठ जी) का वचन सिर पर चढ़ा कर सब लोग अपने काम में लग गये॥ ७॥

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत रामहित मंगल काजा॥

मुनिश्वर ने जिसको आज्ञा दी, वह काम उसने मानों पहिले ही से कर लिया था। राजा दशरथ जी रामचन्द्र जी के निमित्त ब्राह्मण, साधु और देवताओं की पूजा और मंगलाचार करने लगे।

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥

रामचन्द्र जी के राज-तिलक का शुभ समाचार सुन अवध में बधाई बजने लगी। रामचन्द्र जी और सीता जी के शरीर में शकुन प्रकट हुआ और उनका सुन्दर मंगलकारी अंग फड़कने लगा।

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥

तब पुलकित शरीर होकर प्रेम से आपस में बातें कहने लगे कि ये सुन्दर मंगल शकुन भरत के आगमन के सूचक हैं। बहुत दिनों से मिलने की उत्कण्ठा और आशा लग रही है। इस शकुन से प्रतीत होता है कि प्यारे भाई से भेंट होगी।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥
रामहिं बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भांती॥

भरत के समान प्यारा जग में कौन है? इन शकुनों का यही फल है, दूसरा नहीं। रामजी को दिन-रात भाई का ऐसा सोच था, जैसे कछुए के हृदय में अंडों का सोच रहता है।

दो०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु॥ ८॥

उस समय परम मंगल सुनकर रनिवास में ऐसा आनन्द हुआ, जैसे पूर्ण चन्द्रमा को प्रकाशित देखकर समुद्र की तरंगे बढ़ने लगती है॥ ८॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं॥

पहिले जिसने जाकर राज-तिलक का वचन सुनाया, उसे आभूषण, वस्त्र, बहुत सा इनाम मिला। रानियों के शरीर में प्रेम पुलकावली छा गई, मन आनन्दित हुआ और सब मंगल साज सजाने लगे।

चौकें चारु सुमित्रां पूरी। मनिमय बिबिध भांति अति रूरी॥
आनंद मगन राम महतारी। दिये दान बहु बिप्र हंकारी॥

रानी सुमित्रा ने मणियों से अनेक भांति का मनोहर और रंग-बिरंग का सुन्दर चौक पूर दिया। रामचन्द्र जी की माता कौशल्या ने आनन्द में मग्न हो, ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत सा दान दिया।

पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥

गांव की देवी की पूजा की और देवता तथा नागों का पूजन कर और फिर से उनको बलि और भाग देने को कहा। जिस प्रकार रामचन्द्र जी का कल्याण हो, दया करके वही वरदान दो।

गावहिं मंगल कोकिलबयनीं। बिधुबदनी मृगसावकनयनीं॥

सुहागिनी स्त्रियां, जिनकी कोकिला के समान मधुर वाणी, चन्द्रमा के समान मुखारविन्द और हरिण के बच्चे के ऐसे सुन्दर नेत्र थे, मंगल गीत गाने लगीं।

दो०—राम राज अभिषेक सुनि हियं हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि॥ ६॥

रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक सुनकर सब स्त्री-पुरुष प्रसन्न हुए और विधाता के अनुकूल विचार कर सब सुमंगल साज सजाने लगे॥ ६॥

तब नरनाहं बसिष्ठु बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा॥

तब राजा दशरथ जी ने वशिष्ठ जी को बुलाया और रामजी के भवन में उन्हें शिक्षा देने के लिए भेजा। वशिष्ठ जी का आगमन सुन रघुनाथ जी ने द्वार पर आकर उनके चरणों पर मस्तक नवाया।

सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भांति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥

आदर से अर्घ देकर घर लाये और सोलह प्रकार से पूजन कर सम्मान किया। फिर जानकी समेत चरण छूकर रामचन्द्र जी कमल समान हाथ जोड़कर बोले कि—

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥

यद्यपि सेवक के घर स्वामी का आना मंगल का मूल और अमंगल का नाश करने वाला है। तथापि हे नाथ! उचित यह है कि सेवक को प्रीति सहित बुलाकर जिस कार्य पर चाहें भेज दें, ऐसी नीति है।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं॥

हे नाथ! प्रभुता को छोड़कर स्नेह किया, आज यह घर पवित्र हो गया। हे नाथ! जो आज्ञा हो सो करूं, जिससे सेवक सेवा करके शोभा पावे।

दो०—सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस॥ १०॥

रामचन्द्र जी के ऐसे स्नेह भरे वचन सुन वशिष्ठ मुनि ने रामचन्द्र जी की बड़ी प्रशंसा की और बोले, हे राम! तुम ऐसा वचन क्यों न कहो, क्योंकि तुम सूर्यवंश में शिरोमणि हो॥ १०॥

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥

रामचन्द्र जी के गुण और स्वभाव का वर्णन करके प्रेम से पुलकित होकर मुनिराज वशिष्ठजी बोले, राजा ने अभिषेक का समाज सजाया है, तुमको युवराज पद देना चाहते हैं।

राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहै काजू॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदयं अस बिसमउ भयऊ॥

हे राम! आज सब संयम करो, जो विधाता कुशल से इस कार्य को निबाहे। वशिष्ठ जी जब रामचन्द्र जी को शिक्षा देकर राजा के पास गये। तब रामचन्द्र जी के मन में ऐसा संदेह हुआ कि—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥

सब भाई एक ही साथ में जन्मे। भोजन, शयन, बचपन का खेल, कर्ण-छेदन, जनेऊ और विवाह एक ही साथ हुआ।

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥

इस निर्मल वंश में एक बात अनुचित है कि छोटे भाई को छोड़कर बड़े को ही राजतिलक हो। प्रभु रामचन्द्र जी के प्रेम सहित सुहावने पछतावे ने भक्तों की कुटिलता को हर लिया।

दो०–तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद॥ ११॥

उसी समय प्रेम और आनन्द में मग्न होते हुए लक्ष्मण जी भी वहां आये, तो सूर्यबंश रूपी कुमुद को प्रफुल्लित करने वाले चन्द्ररूपी रामचन्द्रजी ने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया॥ ११॥

बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुं बेगि नयन फलु पावहिं॥

अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। नगर में ऐसा आनन्द छा गया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भरत जी का आना सब मनाने लगे कि वह भी शीघ्र आकर अपने नेत्रों का फल पावें।

हाट बाट घर गलीं अथाइँ। कहहिं परसपर लोग लोगाइँ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥

बाजार, रास्ता, घर, गली और बैठक में सर्वत्र लोग आपस में कहने लगे कि कल लग्न किस समय में है, जब विधाता हमारी इच्छा पूर्ण करेंगे।

कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥

सोने के सिंहासन पर सीता सहित रामचन्द्रजी बैठे, तब हमारे मन को बोध हो। सब लोग तो मनाने लगे कि कल कब होगा, पर कुचाली देवता विघ्न मनाने लगे।

तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहि चंदिनि राति न भावा॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं॥

उनको अवध की बधाई ऐसे अच्छी नहीं लगती थी जैसे चोर को चांदनी रात। सरस्वती जी को बुलाकर देवता विनती करने लगे और बारम्बार उनके चरण पर अपना मस्तक रखने लगे।

दो०–बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु॥ १२॥

हे माता! हम लोगों की महा विपत्ति को देखकर आज ही वह उपाय करो, जिससे रामचन्द्र जी राज्य छोड़कर वन को चले जायें और देवताओं का सब काम बन जाये॥ १२॥

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउं सरोज बिपिन हिमराती॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी॥

देवताओं की विनती सुन सरस्वती जी खड़ी पछताने लगीं कि मैं अयोध्यारूपी कमल वन के लिए हिम ऋतु की रात हो रही हूं। सरस्वती जी को चिंतित देख देवता लोग प्रार्थना करने लगे कि हे माता तुमको कुछ भी दोष नहीं होगा।

बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी॥

रघुनाथजी विस्मय और हर्ष से रहित हैं, उनके स्वभाव को तो तुम जानती हो। जीव अपने कर्म के वश दुःख सुख का भागी होता है, इससे देवताओं के उपकार निमित्त अवधपुरी को जाओ।

बार बार गहि चरन संकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची॥
ऊंच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥

देवताओं ने बारंबार सरस्वती जी के चरण छूकर उन्हें संकोचवश कर दिया। वह अपनी खोटी बुद्धि विचार कर चली। ऊंचा निवास है और कर्म नीच हैं, दूसरे के ऐश्वर्य को देख नहीं सकते।

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदयं दसरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई॥

फिर आगे कार्य विचार कर चतुर कवि मेरी चाह करेंगे, फिर हृदय से प्रसन्न हो, दशरथ जी के पुर (अयोध्या) में इस प्रकार आईं, मानो कठिन दुःख देने वाली ग्रह दशा आ गई।

दो०—नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥ १३॥

भरतजी की माता कैकयी की दासी मंद-बुद्धि मन्थरा नामक कुब्जा को अयश की पिटारी बनाकर उसकी बुद्धि को फेरकर सरस्वती जी चली गई॥ १३॥

दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू॥

मन्थरा ने नगर की सजावट और सुन्दर मङ्गल बधाई बजते देखकर लोगों से पूछा कि यह कौन उत्सव है? फिर रामचन्द्रजी का तिलक सुनकर उसके हृदय में दाह उत्पन्न हुआ।

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवं तकइ लेउं केहि भांती॥

यह दुष्ट बुद्धि कुजाति विचार करने लगी कि आज ही रात में कौन उपाय से अकाज हो जैसे दुष्ट भीलनी शहद को छत्ते में लगी देखकर अवसर देखती है कि किस प्रकार इसे लूं।

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हंसि रानी॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आंसू॥

भरत जी की माता के पास दुखी होती हुई गई, उसको देख बारंबार रानी हंसकर पूछने लगीं कि "क्या अनमनी हो रही है।" रानी को उत्तर न देकर वह केवल स्वांस लेने और त्रिया चरित्र करके आंसू बहाने लगी।

हंसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें॥
तबहुं न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु सांपिनि॥

रानी ने फिर हंसकर कहा कि "तेरा गाल बड़ा है, इससे अनुमान होता है कि आज लक्ष्मण ने शिक्षा दी है।" तब भी वह महापापिनो कुछ नहीं बोली और काली सर्पिणी के समान सांस छोड़ने लगी।

दो०—सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु॥ १४॥

तब रानी ने भयभीत होकर कहा कि "कहती क्यों नहीं, रामचन्द्र जी, राजा जी, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशल से तो हैं?" यह सुन कुबरी के हृदय में बड़ा दुःख हुआ॥ १४॥

का सोवति सुहाग अभिमानी। निकट महाभय तुम न डरानी॥
कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू॥

सुहाग के अभिमान में क्यों सोती हो, तुम्हारे निकट भयङ्कर भय है और तुम डरती नहीं हो! मन्थरा कहने लगी कि हे महारानी! मुझे कोई क्या सिखावेगा और मैं किसको बतलाकर गाल बजाऊंगी। रामचन्द्र जी को छोड़कर आज किसकी कुशल है! जिसे राजा युवराज बना रहे हैं।

भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥

कौशल्या पर विधाता बहुत दयालु हुए हैं, जिन्हें देखकर अहंकार हृदय में नहीं रहता। तुम जाकर सब शोभा क्यों नहीं देखती हो? जिसको देखकर मेरे मन में क्षोभ हो रहा है।

पुतू बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥

पुत्र विदेश में है तुमको कुछ सोच नहीं है, तुम जानती हो कि स्वामी मेरे वश में है। तोषक बिछी हुई शैय्या पर तुमको नींद बहुत प्यारी लगतो है। राजा की कपट चतुरता तुम नहीं समझती हो।

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुं कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउं तोरी॥

मन्थरा के मुख से प्यारी वाणी सुन उसका चित्त मलीन जान रानी क्रोधित हुई तब वह चुप हो गई। कैकेयी क्रोधित हो कहने लगी कि फिर कभी ऐसी घर फोरी बात कहेगी तो तेरी जीभ कटवा दूंगी।

दो०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि॥ १५॥

काने, दोषी अथवा लंगड़े, कुबड़े ये स्वभाव से ही कुटिल और कुचाली होते हैं। फिर चेरी का कहना ही क्या है ? इतना कहकर भरत जी की माता कैकेयी हंस दी ॥ १५ ॥

प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउं तोही। सपनेहुं तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥

"प्रियवादिनी ! मैंने तुमको सिखाया है, मुझको स्वप्न में भी तेरे ऊपर क्रोध नहीं है।" सुख मङ्गलदायक सुन्दर दिन वही है। जिस दिन तेरा कहना सच्चा हो।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौं सांचेहुं काली। देउं मागु मन भावत आली ॥

बड़े भाई स्वामी और छोटे भाई सेवक, सूर्य वंश की यही सुहावनी रीति है। जो सचमुच कल राम का तिलक है तो हे सखी ! तेरे मन में जो इच्छा है सो मांग, मैं वही दूंगी।

कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायं पिआरी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥

कौशल्या के समान सब माताएं राम जी को सहज स्वभाव से प्यारी हैं। मुझ पर तो वे बहुत ही स्नेह करते हैं, मैं उनकी प्रीति की परीक्षा कर चकी हूं।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुं राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें ॥

यदि विधाता स्नेह करके जन्म दें, तो सीता और राम के ऐसा पूत और पतोहू देवें। जो राम मुझको प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं, उनके राज-तिलक से तुझको क्षोभ कैसे हुआ।

दो०—भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ ॥ १६ ॥

तुमको भरतजी की शपथ है, कपट और छिपाव को छोड़ सत्य कह दे। आनन्द के समय विस्मय क्यों करती है ? इसका कारण मुझको सुना दे ॥ १६ ॥

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ॥
सुनत बचन मन्थरा रिसानी। बोली बचन कपट छलसानी ॥

वचन सुनते ही मन्थरा रिसा गई और छल, कपट से सने वचन बोली, रानी की बात सुन कुबड़ी कहने लगी कि एक ही बार कहने में सब आशा पूरी हो गई, अब क्या मैं दूसरी जीभ बनाकर कुछ कहूंगी ? मेरा यह अभागा कपाल फोड़ने योग्य है। जो भली बात कहने में भी तुमको बुरा लगता है।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥
हमहुं कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती ॥

हे माई ! जो कोई झूठी बात को सच्ची बनाकर कहे, वह तुमको प्यारा है और मैं कडई हूं। मैं भी अब ठाकुर सुहाती (मुंह देखी, मीठी बात) कहा करूंगी, नहीं तो दिन रात चुप रहूंगी।

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥

विधाता ने मुझे कुरूपा करके परबश कर दिया, जो बोया सो काटा और जो दिया सो पाया। कोई राजा हो, हमारी क्या हानि, चेरी छोड़कर मैं रानी न होऊंगी।

जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
तातें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी॥

मेरा स्वभाव जलाने योग्य है, क्योंकि तुम्हारा बुरा नहीं देखा जाता। इस कारण कुछ बात उचित जानकर कहा था सो हे देवि ! क्या करें मुझसे बड़ी चूक हुई, क्षमा करना।

दो०–गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुद्धि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि॥ १७॥

मन्थरा की गूढ़ और कपट भरी हुई प्यारी वाणी सुन स्त्रियों में अधर बुद्धि रानी कैकेई देवमाया के वश होकर बैरिनि "मन्थरा" को सुहृदय जानकर पतिया गई॥ १७॥

सादर पुनि पुनि पूंछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसि चेरि घात जनु फाबी॥

आदर सहित बारम्बार उससे पूछने लगी, मानो भीलनी का गान सुन मृगी मोहित हो गई, ऐसा होनहार था वैसी बुद्धि भी फिर गई, यह जान कुबड़ी प्रसन्न हुई कि मुझे अच्छा घात मिला।

तुम्ह पूंछहु मैं कहत डेराऊं। धरेहु मोर घरफोरी नाऊं॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥

हृदय में विचार मन्थरा कहने लगी कि तुम पूछती हो, पर मैं कहते डरती हूं, क्योंकि तुमने मेरा नाम घर फोरी रखा। चिकनी चुपड़ी बातें बना और विश्वास दिला, साढ़े साती कहने लगी।

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते! समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते॥

हे रानी ! तुमने जो कहा, सीता और राम तुमको प्यारे हैं और राम को तुम प्यारी हो, यह बात सत्य है पर पहले जो दिन था, वह अब बीत गया। समय पलटने पर मित्र-शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूंधहु करि उपाउ बर बारी॥

सूर्य कमल वन का पोषक है, परन्तु बिना जड़ के वह उसको जला कर भस्म कर देता है। तुम्हारी जड़ को सौत उखाड़ना चाहती है, उपाय कर अच्छी फुलवारी बनाकर रूंध दो।

दो०—तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ॥ १८॥

तुमको तो अपने पति के बल से कुछ सोच नहीं है, और राजा को अपने अधीन जानती हो, पर राजा मन के मलिन और मुंह के मीठे हैं और तुम्हारा स्वभाव सरल है, तुम क्या जानो॥ १८॥

चतुर गंभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात संवारी॥
पठए भरतु भूप ननिग्रउरे। राम मातु मत जानब रउरें॥

राम की माता कौशल्या बड़ी चतुर और गंभीर है, अवसर पाकर उन्होंने अपनी बात बना ली है। राजा ने भरतजी को ननिहाल भेजा है, आप यह सलाह राम की माता ही की जानो।

सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गरबित भरत मातु बल पी के॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई॥

कौशल्या विचारती हैं कि सब सौत मेरी सेवा करती है, परन्तु भरत जो की माता पति के बल से घमण्ड में हैं। कौशल्या तुमसे बहुत जलती हैं, परन्तु हे माई! कपट में चतुर उसका यह दुःख जानने में नहीं आता।

राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई॥

राजा की तुम पर अधिक प्रीति है, उसको सौत के स्वभाव से वह देख नहीं सकती है, प्रपंच रच और राजा को अपनाकर राम के तिलक के निमित्त लग्न धरा लिया।

यह कुल उचित राम कहुं टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही॥

यद्यपि सूर्यवंश में राम को तिलक होना उचित है सबको अच्छा लगता है और मैं भी यही चाहती हूं तथापि आगे की बात समझ मझको डर है। जो कपट करेगा, उसका फल विधाता उसको देगा ही यह मैं जानती हूं।

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥ १९॥

करोड़ खोटेपन से श्रमपूर्वक रच कर कैकेयी को कपट का ज्ञान कराया और अनेक सौत की कथाएं कहीं जिससे विरोध बढ़े॥ १९॥

भावी बस प्रतीति उर आई। पूंछ रानि पुनि सपथ देवाई॥
का पूंछहु तुम्ह अबहुं न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥

होनहार के वश रानी को विश्वास हो गया, तब वह उसको अपनी सौगन्ध दिला उससे पूछने लगीं। तब मन्थरा ने कहा कि तुम क्या पूछती हो, क्या तुमने अब भी नहीं जाना। अपने हित-अनहित को पशु भी पहिचान लेता है।

भयउ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहें नहिं दोषु हमारें॥

पन्द्रह दिन से तैयारी हो रही है, पर तुमको तो आज मुझसे विदित हुआ है। तुम्हारे राज में मैंने खाया पहिना है, तुमसे सत्य कहने में मुझे दोष नहीं।

जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई॥
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुं बिपति बीजु बिधि बयऊ॥

यदि मैं कुछ झूठ बनाकर तुमसे कहूंगी, तो ब्रह्मा मुझको सजा देंगे। जो कल राम को राजतिलक हुआ तो तुम याद रखो कि तुम्हारे लिए विधाता ने विपत्ति का बीज बो दिया।

रेख खंचाइ कहउं बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

रेखा खींच कर और बलभाषि के अर्थात प्रतिज्ञा कहकर कहती हूं कि हे रानी! तुम दूध की मक्खी की हुई। जो पुत्र समेत सेवा करोगी तो घर में रहने पाओगी। दूसरे उपाय से नहीं रह सकोगी।

दो०—कद्रूं बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलां देब।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब॥ २०॥

जिस प्रकार कद्रू ने विनता को दुःख दिया, उसी प्रकार कौशल्या रानी तुमको दुःख देंगी। भरतजी बन्दी-गृह में रहेंगे और लक्ष्मण राम के नायब होंगे॥ २०॥

कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि कांपी। कुबरीं दसन जीभ तब चांपी॥

रानी कैकेयी मन्थरा की कटु वाणी सुनते ही कुछ कह न सकी और सहम कर सूख गई। शरीर में पसीना आ गया और केले के पत्ते की भांति कांपने लगी। तब कुबरी ने दांतों से अपनी जीभ दबा ली।

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। फिरि नवइ जिमि उकठ कुकाठू॥

कपट से भरी अनेक प्रकार की कहानी कह रानी को समझाने लगी कि धैर्य धारण करो। कुपाठ पढ़ा रानी को कठिन कर दिया, उकठा हुआ काठ टूट जाता है परन्तु फिर झुकता नहीं।

फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आंखि नित फरकइ मोरी॥

कर्म बदल गया, इससे कुचाली 'मन्थरा' प्यारी हो गई और रानी उसकी प्रशंसा करने लगी, मानो बगुला को हंसिनी सराहती है। कहने लगी कि—"सुन मन्थरा तेरी बात सत्य है, मेरी दाहिनी आंख नित्य फड़कती है।

दिन प्रति देखउं राति कुसपने। कहउं न तोहि मोह बस अपने॥
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउं काऊ॥

प्रतिदिन रात को अशुभ स्वप्न देखती हूं पर अपने अज्ञान के वश तुझसे नहीं कहती हूं। क्या कहूं सखी! मेरा तो सीधा स्वभाव है, मैं किसी का दांया-बांया नहीं जानती।

दो०—अपनें चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअं दुसह दुखु दीन्ह॥ २१॥

मैंने अपने चलते में आज तक किसी की हानि नहीं की है, न जाने दैव किस पाप से एक साथ ही मुझको कठिन दुःख देना चाहता है॥ २१॥

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही॥

नैहर में जाकर भले ही जन्म व्यतीत करूंगी, पर अपने जीते हुए सौत की सेवा न करूंगी। शत्रु के अधीन विधाता जिसका जिलावे, उसका मर जाना ही अच्छा है, उसको जीना नहीं चाहिए।

दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तियमाया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुं दिन दूना॥

रानी को अनेक दीन वचन सुन कुबरी ने त्रिया-चरित्र रचा। मन्थरा कहने लगी कि हे रानी तुम मन में हीनता मान ऐसा क्यों कहती हो? तुमको सुख और सुहाग दिन दिन दूना होगा।

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका॥
जब ते कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥

जिसने तुम्हारा ऐसा अनभल सोचा है, वह अन्त में इसका फल पावेगा। हे स्वामिनी! जबसे मैंने इस बुरी सलाह को सुना है, तबसे मुझको दिन में भूख नहीं लगती और रात में नींद नहीं आती।

पूंछेउं गुनिन्ह रेख तिन्ह खांची। भरत भुआल होहिं यह सांची॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥

मैंने गुणियों से पूछा तो उन्होंने रेखा खींच बतलाया कि, भरत राजा होंगे यह सच है। हे भामिनी! जो करो तो उपाय बतलाऊं, क्योंकि राजा तुम्हारे ही सेवा के कारण तुम्हारे अधीन हैं।

दो०—परउं कूप तुअ बचन पर सकउं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥ २२॥

तब रानी बोली कि—"तेरी बात के लिए कुएँ में गिर पड़ूंगी, पुत्र और पति छोड़ सकूंगी, क्योंकि मेरा बड़ा दुःख देखकर तू कहती है, अपने हित के लिए तेरा कहा क्यों न करूंगी ॥ २२ ॥

कुबरीं करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे ॥

कुबरी ने कैकेयी को कुबलि बनाया और कपट रूपी छरी हृदय रूप पत्थर पर घिसकर तेज की। रानी अपने समीपक दुःख को कैसे नहीं देखती, जैसे बलिदान का पशु हरी-हरी घास चरता है और अपने गले पर आने वाले पैने छरे को नहीं देखता।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुं मधु माहुर घोरी ॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ॥

बात सुनने में तो कोमल और अन्त में ऐसी कठोर कि, मानों मधु में विष घोलकर दे रही है। मन्थरा ने पूछा हे स्वामिनी ! तुमको स्मरण है या नहीं ? तुम्हीं ने मुझसे वह कथा कही थी कि···

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती ॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥

दो वरदान राजा के यहां धरोहर हैं, सो उनको राजा से मांग लो और अपनी छाती ठण्डी करो। अपने पुत्र भरतजी को राज और राम को वनवास दो ओर अपने सौत का आनन्द ले लो।

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें ॥

जब राजा राम की सौगन्ध खायें तब वर मांगना, जिससे वह अपना वचन तोड़ न सकें। आज की रात व्यतीत हो जाने पर बड़ा अकाज हो जायेगा। मेरे वचन को अपने जी से प्यारा मानो।

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृहं जाहु।
काजु संवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु ॥ २३ ॥

पापिनी मन्थरा बड़ी बुरी घात लगाकर कहने लगी---'कि अब कोप भवन में जाओ और सावधानी से सब काम संभालना, एकाएक पति का विश्वास मत करना ॥ २३ ॥

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा ॥

कुबरी को रानी ने प्राण समान प्यारी जान, बराबर उसकी बुद्धि की बड़ी प्रशंसा की। "तेरे समान मेरा हितकारी संसार में कोई नहीं, मैं दुःख रूपी जल की धारा में बही जाती थी, सो तू मेरा आधार बन गई है।"

जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतरि आली ॥
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई ॥

जो विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा करेगा तो हे सखी ! मैं तुमको अपने आंख की पुतली बना लूंगी। ऐसे बहुत प्रकार से चेरी को आदर देकर कैकेयी कोप-भवन में गई।

बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइं भइ कुमति कैकई केरी ॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा ॥

विपत्ति का बीज बोया गया, तहां चेरी वर्षा-ऋतु और कैकेयी की कुमति पृथ्वी हो गई। कपट-रूपी जल पाकर उस बीच का अंकुर पैदा हुआ। दोनों वरदान पत्ता और परिणाम में दुःख-रूपी फल हुआ।

कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई ॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई ॥

कोप का सब साज सजाकर शयन करने लगी। राज करते हुए उसको कुमति ने किया। राजा के नगर में कोलाहल हो रहा था, यह कुचालि किसी को कुछ भी विदित न थी।

दो०—प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार ॥ २४ ॥

नगर के स्त्री पुरुष प्रसन्नता से सुन्दर और मङ्गल द्रव्य सजाने लगे, एक आने और एक जाने लगे। राज दरबार में भीड़ हो गई ॥ २४ ॥

बाल सखा सुनि हियं हरषाहीं। मिलि दस पांच राम पहिं जाहीं ॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूंछहिं कुसल खेम मृदु बानी ॥

बालक और सखा राज्याभिषेक सुन बहुत प्रसन्न हुए और दस-पांच मील से रामचन्द्रजी के पास आने लगे। उनका प्रेम देख प्रभ रामचन्द्र जी आदर करके और कोमल वाणी से सबका कुशल-क्षेम पूछने लगे।

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई ॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा ॥

प्रभु रामचन्द्र जी की आज्ञा पाय और आपस में उनकी बड़ाई करते हुए, अपने घर को चले जायें। "रघुवीर के समान संसार में शील और स्नेह का निवाहने वाला कौन है।"

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहं तहं ईसु देउ यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू ॥

जिस-जिस योनि में कर्मवश हम लोग भ्रमण करें, वहां वहां शिवजी हमको यही देवें। सेवक हम हों और स्वामी सीतापति रामचन्द्र जी हों। इस नाते का ओर-छोर तक निर्वाह हो जाय।

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदयं अति दाहू॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥

नगर में सबकी यही इच्छा थी, परन्तु कैकेयी के हृदय में अत्यन्त दाह हो रहा था। कुसङ्गति पाकर कौन नाश नहीं होता। नीच के मत से चतुराई नहीं रहती।

दो०-सांझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहं।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहं॥ २५॥

सन्ध्या समय आनन्द सहित राजा कैकेयी के घर गये, मानो स्नेह ने देह धारण करके निठुरता के समीप गमन किया॥ २५॥

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ॥
सुरपति बसइ बाहंबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें॥

रानी कैकेयी को कोप भवन में सुन, राजा सकुचा गये। मारे डर के पांव आगे नहीं पड़ता जिसके बाहुबल से इन्द्र निर्भय वास करता है और सम्पूर्ण राजा जिसका रुख ताकते रहते हैं।

सो सुनि तिय रिस उयग सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अंगवनिहारे। चे रतिनाथ सुमन सर मारे॥

वही राजा स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गए। कामदेव ने प्रताप की बड़ाई देखी, जो त्रिशूल, वज्र और खड्ग को अपने ऊपर लेने वाले थे। उनको रतिनाथ ने फूलों के बाण से मार दिया।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना॥

डरते हुए राजा प्यारी के पास गए और उनकी दशा देख उनको दारुण दुःख हुआ और देखा कि मोटा और पुराना वस्त्र पहिने पृथ्वी पर पड़ी। शरीर पर के सब आभूषण उतार फेंक दिये हैं।

कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भावी॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी॥

खोटी बुद्धि वाली कैकेयी कि कुरूपता कैसी शोभा दे रही है मानो भविष्यता विधवापन की सूचना दे रही है। रानी के समीप जाकर राजा ने कोमल वाणी में कहा कि हे प्राण-प्यारी! तुम किस कारण रिसानी हो।'

छं०-केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुं सरोष भुअंग भामिनि बिषम भांति निहारई॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतब्यता बस काम कौतुक लेखई॥ १॥

हे रानी ! तुम किस कारण क्रोधित हुई हो ? ऐसे कह राजा ने कैकेयी को हाथ से छूना चाहा, त्योंही पति को निवारण कर क्रोध भरी दृष्टि से ऐसे देखने लगी, मानो सर्पिणी टेढ़ी नजर से देख रही है । दोनों वरदान मांगने की वासना जीभ है और वरदान दांत हैं, काटने के निमित्त मर्म स्थान देखती है । तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा होनहार के वश में हो रहे हैं और कामदेव अपना कौतुक दिखला रहा है ।

सो०—बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि ।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ॥ १ ॥

राजा बार बार कहने लगे कि—हे सुमुखी ! हे सुलोचनी ! हे पिकवयनी ! हे गजगामिनी ! अपने कोप का कारण मुझको सुनाओ ॥ १ ॥

अनहित तोर प्रिया केइं कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासौं देसू ॥

हे प्यारी ! तेरा अनहित किसने किया है ? किसके दो सिर हुए ? किसको यमराज लेना चाहता है, कह किस दरिद्र को राजा बनाऊं ? कह किस राजा को देश से निकाल दूं ।

सकउं तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू । मनु तव आनन चंद चकोरू ॥

तेरा शत्रु अमर भी हो तो, मैं उसको मार सकता हूं । कीड़े के समान बिचारे स्त्री-पुरुष क्या वस्तु है । हे सुन्दर जांघ वाली ! तू मेरे स्वभाव को जानती है कि तेरे मुखचन्द्र को मेरा मन चकोर है ।

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें । परिजन प्रजा सकल बस तोरें ॥
जौं कछु कहौं कपटु करि तोही । भामिनि राम सपथ सत मोही ॥

हे प्यारी ! मेरा प्राण, पुत्र सर्वस्व (सारा धन) कुटुम्बी और सब प्रजा तेरे वश में है, जो तुझसे कुछ कपट करके कहता होऊं तो हे भामिनी ! मुझको राम की सौ बार सौगंध है ।

बिहसि मागु मनभावति बाता । भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जियं देखू । बेगि प्रिया परिहरइ कुबेषू ॥

हंस कर जो बात मन में भावे, सो मांग ले और अपने मनोहर शरीर पर आभूषण धारण कर। समय कुसमय को हृदय में विचार कर देख, हे प्यारी ! यह कुवेष शीघ्र त्याग दे ।

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहसि उठी मतिमंद ।
भूषन सजति बिलोकि मृग मनहुं किरातिनि फंद ॥ २६ ॥

यह सुनकर मन्द बुद्धि कैकेयी अपने हृदय में बड़ी सौगन्ध विचार हंसकर उठी और गहने उठाकर इस भांति से सजने लगी, मानो मृग को देखकर भीलनी फंदा संभाल रही है ॥ २६ ॥

पुनि कह राउ सुहृद जियं जानी । प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा । घर घर नगर अनंद बधावा ॥

फिर राजा मन में उसे प्यारी जान, प्रेम से पुलकित होकर कोमल और मनोहर वाणी से बोले, हे भामिनी ! तेरी मनोवांछना पूरी हुई, नगर में घर-घर आनन्द बधाई बजने लगी ।

रामहि देउं कालि जुबराजू । सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू । जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥

कल मैं राम को युवराज पद दूंगा । हे सुलोचनी सुन्दर नेत्र वाली ! तू भी मङ्गल साज सजा । राजा का यह वचन सुनकर कैकेयी चौक उठी, जैसे पके हुए बरतोर को कोई छू गया हो ।

ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखहिं न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥

ऐसी पीड़ा उसने हंसकर हृदय में छिपा ली, जैसे चोर की स्त्री पीड़ा को छिपाती है । राजा ने उसकी कपट चतुरता नहीं जानी, क्योंकि वह करोड़ों अवगुण वाली गुरु मंथरा की पढ़ाई थी ।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू । नारिचरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी । बोली बिहसि नयन मुहु मोरी ॥

यद्यपि राजा दशरथजी नीति में निपुण थे, तथापि त्रिया-चरित्र तो अगाध समुद्र है । फिर कपट स्नेह बढ़ाय, हंसकर नयन और मुख मोड़कर कटाक्ष करके कहने लगी ।

दो०—मागु मागु पै कहहु पिय कबहुं न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदानु दुइ तेउ पावत संदेहु ॥ २७ ॥

हे प्यारे ! मांग-मांग तो कहते हो, पर लेते देते कभी कुछ नहीं । दो वरदान देवासुर संग्राम में देने को कहे थे, सो उसके मिलने में भी संदेह है ॥ २७ ॥

जानेउं मरमु राउ हंसि कहई । तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न मांगिहु काऊ । बिसरि गयउ मोहि मोर सुभाऊ ॥

यह सुन राजा हंसकर कहने लगे, तुम्हारा भेद जाना । तुमको रुठना बहुत प्यारा लगता है । दोनों वरदान धरोहर रख, तुमने कभी नहीं मांगा । मेरा तो भोला स्वभाव है, मैं भी भूल गया हूं ।

झूठेहुं हमहि दोषु जनि देहू । दुइ कै चारि मागि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुं बरु बचनु न जाई ॥

झूठा दोष हमको मत दो, दो के चार क्यों न मांग लो । रघुवंशियों की यह रीति सदा से चली आ रही है कि चाहे प्राण चले जायें पर वचन नहीं जाता ।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥

झूठ के समान पातकों का समूह भी नहीं होता, पर्वत के समान क्या करोड़ घुंघची हो सकती है । सत्य सम्पूर्ण अच्छे कर्मों की सुन्दर जड़ है, सो वेद पुराणों में प्रसिद्ध है और मुनियों ने भी यही कहा है ।

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥
बात दृढ़ाइ कुमति हंसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली॥

तिस पर राम की सौगन्ध करा ली, जो सुकृत और स्नेह की अवधि है, बात को पक्की करके हंसकर ऐसे बोली, मानो दुष्ट बुद्धि वाले हिंसक पक्षी (बाज) की टोपी खोल दी गई हो।

दो०—भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु॥ २८॥

राजा दशरथ का मनोरथ सुन्दर वन है और सुख सुन्दर पक्षियों का झुण्ड है, पर भीलनी की भाँति कैकेयी भयंकर वचन रूपी बाज को छोड़ना चाहती है॥ २८॥

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
मागउं दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥

हे प्राणपति! मेरी इच्छा सुनो। पहला वर मैं यह चाहती हूं कि भरत को राजतिलक कर दो। हे नाथ! दूसरा वर हाथ जोड़कर मांगती हूं, मेरा मनोरथ पूरा करो।

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनाबसी॥
सुनि मृदु बचन भूप हियं सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥

तपस्वी का वेष बनाये और विशेष उदासी हो, ऐसे चौदह वर्ष रामचन्द्र वन में वास करें। ऐसे कोमल वचन सुन राजा के हृदय में ऐसा शोक हुआ, जैसे कि किरण छूते ही चकवा व्याकुल हो जाता है।

गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनी हनेउ मनहुं तरु तालू॥

राजा दशरथ कुछ बोल न सके और ऐसे सहम गये, जैसे बाज के झपटने से वन में बटेर सहम जाते हैं। अत्यन्त विवर्ण हो गए, जैसे ताल के वृक्ष पर बिजली गिरने से वह विवर्ण हो जाते हैं।

माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई॥

माथे पर हाथ रख, दोनों नेत्र बंद कर राजा इस प्रकार सोचने लगे, मानों शरीर को धारण करके सोच-चिन्ता कर रहा है। राजा दशरथजी सोचने लगे कि मनोरथ रूपी कल्प वृक्ष में फूल लग गया था। फल लगते ही कैकेयी ने इसे ऐसे समूल नाश कर दिया, जैसे हथिनी वृक्ष को जड़ समेत उखाड़ डालती है। कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ कर दिया और अटल विपत्ती की नींव दे दी।

दो०--कवनें अवसर का भयउ गयउं नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास॥ २९॥

हाय ! कौन समय में क्या हुआ, स्त्री का विश्वास जाता रहा, जैसे योगी को योग सिद्ध हो जाने पर फल के समय अविद्या नाश कर देती है ॥ २९ ॥

एहि बिधि राउ मनहिं मन झांखा। देखि कुभांति कुमति मन माखा॥
भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही॥

इसी प्रकार सोच करते हुए राजा मन-ही-मन जलने लगे। तब बुरी भांति से उन्हें देख कुमति कैकेयी इस प्रकार कहने लगी, क्या भरत तुम्हारे पुत्र नहीं हैं ? क्या मुझको मोल खरीदकर लाये हो।

जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु संभारें॥
देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं॥

जो सुनकर तुमको बाण के समान लग गया है तो पहले ही संभाल कर वचन क्यों नहीं बोले। उत्तर दो या कहो कि 'नहीं देंगे' तुम तो रघुवंश में सत्य के समुद्र हो।

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मांगि चबेना॥

आपने वर देने को कहा है मत दीजिए। सत्य छोड़ दीजिए और अपयश अपनाइये। सत्य की सराहना कर वर देने को कहा था सो आपने यह सोचा था, कि यह चबेना मांग लेगी।

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा॥
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुं लोन जरे पर देई॥

शिवि, दधीचि, बलि ने जो कुछ कहा, उसके लिये शरीर व धन, त्याग वचन और प्रतिज्ञा का पालन किया। कुबुद्धि कैकेयी ने अत्यन्त कठोर वचन कहे, मानो जले पर नमक छिड़कने लगी।

दो०--धरम धुरंधर धीर धारि नयन उघारे रायं।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायं॥ ३०॥

धर्म-धुरन्धर राजा दशरथजी ने धैर्य धरकर नेत्र खोल और सिर धुन कर ठण्डी श्वांस लेकर कहा कि--"मुझको कठोर तलवार से मारा" ॥ ३० ॥

आगें दीखि जरत रिस भारी। मनहुं रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरीं सान बनाई॥

राजा ने अपने सम्मुख देखा कैकेयी भारी क्रोध से जल रही है, मानो उसने अपनी क्रोध रूपी तलवार को म्यान से बाहर निकाल लिया हो। मूठ रूपी कुबुद्धि और धार रूपी उसकी निष्ठुरता थी, जिस पर कुबड़ी ने भली-भांति सान चढ़ा दिया था।

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥

राजा ने उसकी भयंकरता और कठोरता देख, मन में जाना कि सत्य में यह मेरा जीवन लेगी। राजा बोलने में असमर्थ थे, लेकिन हृदय को कठोर कर नम्र वाणी में बोले, किन्तु वह वाणी उसे अच्छी न लगी।

प्रिया बचन कस कहसि कुभांती। भीर प्रतीति प्रीति करि हांती॥
मोरें भरतु रामु दुइ आंखी। सत्य कहउं करि संकरु साखी॥

हे प्रिये! तू प्रीति, प्रतीति, और रीति को नाश करके ऐसी बुरी भांति से वचन क्यों कह रही है? शिवजी को साक्षी देकर सत्य कहता हूं भरत और राम मेरी दोनों आँखें हैं।

अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। देउं भरत कहुं राजु बजाई॥

प्रातः काल मैं अवश्य दूत भेजूंगा, सुनते ही शीघ्र दोनों भाई आवेंगे। अच्छा दिन सोच और सब साज-सजाकर धूमधाम से भरत का राज-तिलक कर दूंगा।

दो०—लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियं करत रहेउं नृपनीति॥ ३१॥

राम को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उसकी बहुत प्रीति है। मैं तो बड़ छोटे का विचार करके राजनीति का बर्ताव करना चाहता था॥ ३१॥

राम सपथ सत कहउं सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूंछें। तेहि ते परेउ मनोरथु छूछें॥

राम की शपथ खाकर सत्य स्वभाव से कहता हूं कि राम की माता ने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा मैंने यह बात तुझसे बिना पूछे किया। इसी से मेरा मनोरथ नष्ट हो गया।

रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गएं भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा। बर दूसर असमंजस मागा॥

क्रोध छोड़कर अब मङ्गल साजो, कुछ दिन बाद भरत युवराज होंगे। केवल एक ही बात मुझको दुःख प्रद है। दूसरा वर तूने द्विविधा वाला माँगा है।

अजहूं हृदउ जरत तेहि आंचा। रिस परिहास कि सांचेहुं सांचा॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू॥

मेरा हृदय अब भी उसकी आंच से जल रहा है। क्या दूसरा वर तूने प्रणय कोप से हंसी किया है अथवा सत्य माँगा है। क्रोध छोड़ राम का अपराध वर्णन कर, क्योंकि उन्हें सब लोग बहुत अच्छा कहते हैं।

तहूं सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥

तू भी उनकी सराहना स्नेह करती रही, पर अब यह सुनकर मुझको स्नेह हो गया है। जिसके स्वभाव की प्रशंसा शत्रु भी करते हैं। वह माता को कैसे दुखी करेंगे।

दो०—प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु।
जेहिं देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु ॥ ३२ ॥

हे प्यारी ! हंसी और रिस अथवा रिस भरी हंसी को दूर कर अथवा ज्ञान से विचार कर माँग कि जिससे अब भरत का राज-तिलक नेत्र भर देख सकूं ॥ ३२ ॥

जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥

चाहे मछली जल बिना चाहे सांप मणि बिना दुःखी और दीन होकर भी मर जाय, पर मैं सच्चे भाव से कहता हूं कि मेरे मन में छल नहीं है। मेरा जीना राम के बिना नहीं हो सकता।

समुझि देखु जियं प्रिय प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुं अनल आहुति घृत परई ॥

हे प्यारी ! तू चतुर है विचार कर देख, मेरा जीवन रामचन्द्र के दर्शन के अधीन है। राजा के कोमल वचन सुन, कुबुद्धि कैकेयी ऐसे जल उठी, मानो आग में घी की आहुति पड़ गई हो।

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहां न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥

कैकेयी ने कहा—"चाहे जो कहो, करोड़ों उपाय क्यों न करो, यहां तुम्हारी माया नहीं चलेगी। मेरा माँगा हुआ दूसरा वर दो या नहीं करके अपयश लो। मुझे बहुत सा प्रपंच अच्छा नहीं लगता।

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिलां मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥

राम साधू है तुम भी सयाने हो, राम की माता भी बहुत अच्छी है, मैंने तुम लोगों को पहिचान लिया है। कौशल्या ने जैसे मेरा भला देखा है, वैसा फल उसको साका करके दूंगी।

दो०—होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं ॥ ३३ ॥

हे राजा ! प्रातः काल होते ही मुनि वेष धारण करके यदि रामचन्द्र वन को नहीं चले जावेंगे तो मेरा मरण और तुमको अपयश रखा हुआ है। अपने मन में यह समझ लो ॥ ३३ ॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुं रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥

इतना कहकर ऐसे उठ खड़ी हुई, मानो क्रोध रूपी नदी बह चली। सो वह पाप रूपी पहाड़ से उत्पन्न होकर निकली और क्रोध-रूपी जल से ऐसी भरी हुई थी कि देखी नहीं जाती थी।

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भवंर कूबरी बचन प्रचारा॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥

दोनों वर उसी नदी के तट हैं। कठोर हठ उस नदी की धारा है। कुबरी के वचनों का स्मरण उस नदी के भंवर हैं। दशरथ रूपी वृक्ष को जड़ से ढाती हुई विपत्ती रूपी समुद्र के सम्मुख बह चली।

लखी नरेस बात फुरि सांची। तिय मिस मीचु सीस पर नाची॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥

तब राजा ने सब बातों को सत्य जानकर अपने हृदय में विचार किया कि स्त्री के बहाने से मेरे मस्तक पर मृत्यु नाच रही है। राजा ने फिर केकैयी को पांव पकड़ कर बिठाया और विनती करके कहने लगे कि "सूर्यवंशी वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी मत बन।"

मागु माथ अबहीं देउं तोही। राम बिरहं जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहुं जेहि तेहि भांती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती॥

चाहे मेरा सिर मांग, उसे तुझे दे दूंगा पर राम के विरह में मुझको मत मार। जिस प्रकार हो सके उस प्रकार राम को रख, नहीं तो जन्म भर छाती जलती रहेगी।

दो०—देखी ब्याधि असाध नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ॥ ३४॥

दशरथ जी ने जब असाध्य व्याधि देखी, तब सिर को धुनकर पृथ्वी पर गिर पड़े और अत्यन्त दुःखी हो हा राम! हा रघुनाथ! ऐसे वचन कहने लगे॥ ३४॥

ब्याकुल राऊ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुं निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी॥

राजा व्याकुल हो गए और सब शरीर के अंग ऐसे शिथिल हो गए, मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़ डाला। कंठ सूख गया और मुख से बात नहीं निकली। राजा की ऐसी हीन दशा हो गई, जैसे जल के बिना बड़ी मछली दीन हो जाती है।

पुनि कह कटु कठोर कैकई। मनहुं घाय महुं माहुर देई॥
जौं अंतहुं अस करतबु रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ॥

फिर कड़ुए और कठोर वचनों से केकैयी ऐसे कहने लगी, मानो घाव में विष लगा रही हो। जो अन्त में ऐसा करना विचारा था तो किसके बल से मांग-मांग कह रहे थे।

दुइ कि होइ एक समय भुआला। हंसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥

हे राजन्! क्या दोनों बातें एक समय में एक ही साथ हो सकती हैं, ठट्ठा मारकर हंसना और गाल भी फुलाना, दानी कहलाना और कृपणता करना एवं क्षेम कुशल चाहिए और राजपन भी चाहिए, यह कैसे हो सकता है?

छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुं तृन सम बरनी॥

या तो अपने वचन को छोड़ दो या धैर्य धारण करो, स्त्री की भांति करुणा मत करो। शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन, पृथ्वी ये सब पदार्थ सत्याग्रही पुरुषों के निकट तृण के समान होते हैं।

दो०—मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर॥ ३५॥

ऐसे मर्म वचन को सुनकर राजा ने कहा कि—"तेरा कुछ दोष नहीं है, तुमको तो जैसे पिशाच लगा है सो मेरा काल तुझसे कहलाता है।" ॥ ३५॥

चहत न भरत भूपतहि भोरें। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें॥
सो सबु मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू॥

भरत भूलकर भी राज्य-पद नहीं चाहते, विधिवश यह कुबुद्धि तेरे हृदय में बसी है। यह मेरे सब पाप का फल है, जिसके कुठार में विधाता उल्टा हो गया।

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुं पुर राम बड़ाई॥

सुहावनी अयोध्यापुरी, फिर अच्छे प्रकार से बसेगी और सब गुणों के स्थान श्रीराम की प्रभुता होगी। सब भाई रामचन्द्रजी की सेवा करेंगे और तीनों लोकों में उनकी बड़ाई होगी।

तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुं न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई॥

तुम्हारा कलंक और मेरा पश्चाताप मरने पर भी न मिटेगा और न कभी जायेगा। अब तुझको जो अच्छा लगे वह कर और मुख छिपाकर मेरे नेत्रों की ओट में जाकर बैठ।

जब लगि जिऔं कहउ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नाहरू लागी॥

मैं हाथ जोड़कर कहता हूं कि जब तक मैं जीता रहूं, तब तक मुझसे फिर कुछ मत कहना। रे अभागिनी! फिर अन्त को तू ऐसा पछतायेगी, जैसे कोई नाहरू के लिए गाय को मारता है।

दो०—परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुं मसानु॥ ३६॥

दशरथ जी करोड़ों प्रकार से यह कहकर थक गये कि वंश का अन्त क्यों कर रही है, पर वह कपट से भरी कुछ न बोली और इस प्रकार मौन होकर बैठ गई। मानो श्मशान जगा रही है॥ ३६॥

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥
हृदयं मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई॥

राम-राम रटते दशरथ जी ऐसे व्याकुल हो गए, जैसे बिना पंख के पक्षी विकल हो जाता है। अपने हृदय में मनाते हैं कि भोर न हो और रामचन्द्रजी से जाकर बात कोई न कह दे।

उदउ करहु जनि रबि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥

हे रघुकुल के गुरू सूर्यनारायण ! तुम उदय मत होना, नहीं तो अवधपुरी को देख हृदय में दुःख होगा। दशरथ जी की प्रीति और कैकेयी की निष्ठुरता को सीमा के समान ब्रह्मा जी ने रचकर बना दिया।

बिलपत नृपहिं भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक॥

राजा को विलाप करते-करते प्रभात हो गया। द्वार पर वीणा, वेणु और खङ्गों की ध्वनि होने लगी। भाट विरुदावली पढ़ने लगे। गायक गुण गाने लगे, जिसके शब्द सुन राजा को बाण के समान लगने लगे।

मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि बिभूषन जैसें॥
तेहि निसि नीद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू॥

सब मङ्गल राजा को ऐसे अच्छा नहीं लगता था, जैसे सती होने वाली स्त्री को गहने सुशोभित नहीं होते हैं। उस रात्रि में रामजी के दर्शन की अभिलाषा के उत्साह से किसी को नींद नहीं पड़ी।

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुं न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि॥ ३७॥

द्वार पर सेवक और मंत्रियों की भीड़ हो गई। सूर्य को उदित देखकर सब लोग कहने लगे कि—"महाराज अभी तक नहीं जागे, इसका क्या कारण है?" ॥ ३७॥

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई॥

राजा नित्य पिछले पहर जागते थे, परन्तु आज हमको बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे सुमन्त राजा को जगाइए और उनकी आज्ञा लेकर काम कीजिए।

गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुं बिपति बिषाद बसेरा॥

यह सुन सुमन्त राज-भवन में गए, पर उनकी भयानकता देख आगे बढ़ने का साहस न हो सका। वहां ऐसा भयानक हो रहा था, मानो भीतर जाने वालों को खाने के लिए दौड़ रहा है और चारों ओर विपत्ति और विषाद के अतिरिक्त उनमें और कछ दिखाई नहीं देता था।

पूछें कोउ न ऊतरु देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई ॥
कहि जयजीव बैठ सिरु नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई ॥

और पूछने पर कोई उत्तर नहीं देता था। अन्त में सुमन्त उस भवन में गए, जिसमें कैकेयी और राजा थे। जय जीव! अर्थात महाराज की जय हो! ऐसा कहकर और सिर नवाकर सुमन्त बैठ गए और राजा की दशा देख वे सूख गये।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुं कमल मूलु परिहरेऊ ॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूंछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी ॥

राजा अत्यन्त सोच से व्याकुल तन, क्षीण और मन मलिन होकर पृथ्वी पर इस भांति पड़े हुए थे, मानो कमल जड़ से उखड़कर कुम्हला गया हो। यह देखकर डर के मारे मंत्री कुछ पूछ न सके, तब अमङ्गल से भरी हुई और मङ्गल से रहित कैकेयी बोली कि--

दो०—परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु ॥ ३८ ॥

आज रात भर महाराज को नींद नहीं आई। इसका भेद ईश्वर ही जाने? राम-राम रटकर भोर कर दिया, परन्तु कारण कुछ न बताया ॥ ३८ ॥

आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूंछेहु आई ॥
चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥

राम को शीघ्र बुला लाओ, तब आकर समाचार पूछना। यह सुनकर सुमन्त चले और मन में समझ गए कि रानी ने कुचाल की है।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ ॥
उर धरि धीरजु गयउ दुआरें। पूंछहिं सकल देखि मनु मारें ॥

इस कारण मारे सोच के मार्ग में उनका पैर सीधा नहीं पड़ता था कि रामजी को बुला महाराज क्या कहेंगे? फिर हृदय में धैर्य धारण कर द्वार पर गये, उन्हें मन से दुःखी देख सब लोग पूछने लगे।

समाधानु करि सो सबही का। गयउ जहां दिनकर कुल टीका ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥

तब उन लोगों को सन्तोष देकर जहाँ रामचन्द्रजी थे, वहां गए। रामचन्द्रजी ने सुमन्त को आते देखकर अपने पिता के समान उनका आदर-सत्कार किया।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई ॥
रामु कुभाँति सचिव संग जाहीं। देखि लोग जहं तहं बिलखाहीं ॥

रामचन्द्रजी के मुखारविन्द की शोभा देखकर रानी की आज्ञा सुनाई और रघुकुल दीपक रामचन्द्र जी को अपने साथ लेकर राजा के यहां चले। रामजी को बुरी दशा में जल्दी पैदल मन्त्री के संग जाते हुए देखकर सब लोग जहां-तहां दुःख से व्याकल होने लगे।

दो०–जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुं बृद्ध गजराजु ॥ ३९ ॥

रघुवंश-मणि रामचन्द्रजी ने महाराज को ऐसी बुरी दशा में जाकर देखा, मानो बूढ़ा गजराज सिंहनी को देखकर मारे डर के गिर पड़ा हो ॥ ३९ ॥

सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू। मनहुं दीन मनिहीन भुअंगू ॥
सरुष समीप दीखि कैकेई। मानहुं मीचु घरीं गनि लेई ॥

होंठ सूख रहे थे और सारा शरीर जल रहा था, मानो मणि के बिना दुःखी सर्प पड़ा है और क्रोध से भरी कैकेयी को समीप बैठी हुई देखा, मानो वह महाराज की मृत्यु की घड़ियां गिन रही हो।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूंछी मधुर बचन महतारी ॥

रामजी का स्वभाव कोमल था, उन्होंने पहले-पहल यही दुःख देखा, जिसका नाम भी न सुना था, तो भी समय विचार और धैर्य धारण कर मधुर वचन कह माता से पूछा —

मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥

हे माता ! मुझसे पिता के दुःख का कारण कहो और ऐसा उपाय करो जिससे उनका यह दुःख दूर हो। हे राम ! सब कारण यह है कि महाराज का तुम पर बहुत स्नेह है।

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेउं जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू ॥

महाराज ने मुझको दो वरदान देने को कहा था, जो कुछ मुझको अच्छा लगा उसे मैंने मांगा। उसे सुनकर महाराज के हृदय में सोच उत्पन्न हो गया है; तुम्हारे संकोच से दे नहीं सकते हैं।

दो०–सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥ ४० ॥

इधर पुत्र का स्नेह, उधर वचन। दोनों ही त्यागे नहीं जाते। इससे महाराज संकट में पड़े हैं। तुम्हारी सामर्थ्य हो तो महाराज की आज्ञा सिर पर धारण कर उनका यह कठिन क्लेष दूर करो ॥ ४० ॥

निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुं महिप मृदु लच्छ समाना ॥

कैकेयी बेधड़क कटु वाणी बोल रही थी जिसको सुन कठिनता भी बहुत अकुला गई। कैकेयी की जीभ कमान है। वचन अनेक बाण हैं और महाराज का कोमल मन निशान के समान है।

जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखइ धनुषबिद्या बर बीरू॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुं तनु धरि निठुराई॥

कैकेयी जो बोल रही थी, सो मानो कठोरपन शरीर धारण किए हुए कोई वीर धनुष विद्या सीख रहा हो। सब प्रसंग रघुनाथ जी को सुनाकर ऐसे बैठ गई, मानो शरीर धारण किये हुए निष्ठुरता बैठी हो।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥

सूर्यवंश में सूर्य के समान स्वभाव ही से आनन्द के निधान श्री रामचन्द्रजी अपने मन में मुस्कराने लगे और सब दोषों से रहित ऐसे कोमल और मीठे वचन बोले, मानो वीणा (सरस्वती) के आभूषण हों।

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

सुनो माता! वह पुत्र बड़ा भाग्यवान है जो माता-पिता के वचन में प्रीति करने वाला होता है। माता-पिता को सेवा करने वाला पुत्र इस संसार में दुर्लभ है।

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भांति हित मोर।
तेहि महं पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥ ४१॥

वन में विशेष करके मुनि मण्डलो से मिलने में सब भांति मेरा भला होगा, जिसमें पिताजी की आज्ञा, फिर उसमें भी हे माता! तुम्हारी सम्मति है॥ ४१॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउं बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥

प्राणों से प्यारे भरत राज्य पावें, आज सब प्रकार से विधाता मुझको सम्मुख है, जो मैं ऐसे काम में भी वन को न जाऊं, तो मूर्खों के समाज में मुझको पहले गिनना चाहिए।

सेवहिं अरंडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं॥

कल्पवृक्ष को छोड़कर जो एरण्ड की सेवा करते हैं और अमृत को छोड़कर विष मांग लेते हैं, वे भी ऐसा समय पाकर नहीं चूकते, हे माता! अपने मन में विचार करके देखो।

अंब एक दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥

हे माता! महाराज को बहुत व्याकुल देख मुझको एक बड़ा भारी दुःख है। बात थोड़ी-सी है पिता का दुःख बहुत है। हे महतारी! मुझको विश्वास नहीं होता।

राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

महाराज तो बड़े धीर और गुणों के अथाह समुद्र है, इसमें मुझको संदेह है कि मुझसे कुछ बहुत बड़ा अपराध हुआ है। इसी से महाराज मुझसे कुछ नहीं कहते हैं। हे माता! तुमको मेरी सौगन्ध है, सत्य-भाव से कह दो।

दो०—सहज सरल रघुवर वचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान ॥ ४२ ॥

रघुनाथजी के स्वाभाविक और सीधे वचन को कुबुद्धि कैकेयी जोंक की भांति कुटिल होकर के जाना। यद्यपि जल सर्वत्र समान रहता है, तथापि उसमें भी जोंक टेढ़ी ही चलती है ॥ ४२ ॥

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥

रामजी का वन में जाने का रुख देखकर रानी कैकेयी अपने मन में प्रसन्न हुई और ऊपरी प्रेम से कहने लगी कि मुझे तुम्हारी और भरत की सौगन्ध है और दूसरा कारण मैं कुछ भी नहीं जानती हूं।

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी जनक बन्धु सुखदाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू ॥

हैं पुत्र! तुम अपराध के योग्य नहीं हो, माता-पिता और बन्धुजनों को सुख देने वाले हो। हे राम! तुम जो कहते हो वह सत्य है तुम माता-पिता के वचनों में प्रीति करने वाले हो।

पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेपन जेहिं अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हें। उचित न तासु निरादरु कीन्हें ॥

मैं तुम्हारी बलि जाऊं, अपने पिता को समझा यही कहो, जिससे इस चौथेपन में उन्हें अपयश न हो, जिस सुकर्म ने तुम्हारे समान पुत्र दिया, उसका निरादर करना उचित नहीं है।

लागहि कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहं गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए॥

उस कुमुखी के वचन कैसे लग रहें थे, जैसे मगध में गया आदि शुभ तीर्थ हैं। रामजी को कैकेयी का सब बचन ऐसा अच्छा लगा, जैसे गङ्गा जी में जाकर अपवित्र जल भी सुन्दर और पवित्र हो जाता है।

दो०—गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि बिनय समय सम कीन्ह ॥ ४३ ॥

मूर्छा व्यतीत होने पर राम का सुमिरन कर, राजा ने फिर करवट लिया, तब मन्त्री सुमन्त ने रामचन्द्र जी का आगमन कहकर समय के अनुसार विनती की ॥ ४३ ॥

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे ॥
सचिवं संभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे ॥

जब राजा ने सुना कि रामचन्द्र पधारे हैं तब धैर्य धारण कर उन्होंने अपने नेत्र खोले। मन्त्री ने संभाल राजा को बैठाया तो राजा ने राम को अपने चरणों पर गिरते हुए देखा।

लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुं फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥

तब स्नेह से विकल होकर ऐसे हृदय से लगा लिया, मानो गई हुई मणि सांप को फिर मिल गई हो, राजा रामजी को देखते रह गए और नेत्रों से जल का प्रवाह बह चला।

सोक बिबस कछु कहै न पारा। हृदयं लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥

शोक से व्याकुल होने के कारण कुछ न कह सके, बार-बार रामजी को छाती से लगाने लगे। महाराज विधाता को मनाने लगे कि जिसमें रघुनाथ जी वन को न जायें।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

शिवजी का स्मरण करके कहने लगे—"हे सदाशिव, मेरी विनती सुनो, तुम शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले और बिना विचारे दया करने वाले हो मुझको दीन जान मेरा दुःख दूर करो।"

दो०—तुम्ह प्रेरक सब के हृदयं सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥ ४४॥

हे शिव तुम सबके हृदय को प्रेरणा करने वाले हो, सो राम को तुम ऐसी बुद्धि दो कि वह मेरी शील और स्नेह को छोड़ दे और वचन को न मानकर घर में रह जाये॥ ४४॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होंही॥

संसार में चाहे अपयश हो और सुयश का नाश हो जाय। नरक में पडूं चाहे स्वर्ग लोक में जाऊं, न सहने योग्य सब दुःख मझको सहाओ, पर राम मेरे नेत्रों के ओट न हों।

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥

इस प्रकार मन में विचार करते राजा कुछ न बोले और उनका मन पीपल के पत्ते के समान डोल गया। रामजी ने पिता को प्रेमवश जाना और माता फिर कुछ कहेंगी ऐसा अनुमान लगाया।

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहउं कछु करउं ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥

देश, काल और अवसर के अनुसार विचार कर नम्रता पूर्वक बोले हे पिता! मैं कुछ कहता हूं और ढिठाई करता हूं, मेरे इस अनुचित बर्ताव को लड़कपन जान क्षमा करना।

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुं न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइंहि पूंछिउं माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥

बहुत ही छोटी सी बात के लिए आप दुःखित हुए। मुझसे पहले ही क्यों न कह सुनाया। आपको देखकर माता से पूछा, तो प्रसंग सुनकर अंग शीतल हो गया।

दो०—मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियं कहि पुलके प्रभु गात॥ ४५॥

"हे पिताजी! मंगल के समय स्नेह वश आप सोच को त्याग दीजिए और मन में प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिए।" यह कहकर प्रभु रामचन्द्रजी का शरीर पुलकित हो गया॥ ४५॥

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥

इस पृथ्वी तल में उसी पुत्र का जन्म धन्य है; जिसके चरित्र को सुन पिता को आनन्द हो, चारों पदार्थ उनके हाथ में रहते हैं, जिनको माता-पिता प्राण के समान प्यारे हैं।

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउं बेगिहिं होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवउं मागी। चलिहउं बनहि बहुरि पग लागी॥

हे पिता! आपकी आज्ञा का पालन कर जन्म का फल पाय जल्दी आऊंगा। वन को जाने की आज्ञा दीजिए। माता से विदा मांग आऊं फिर आपके चरण छूकर वन को चला जाऊंगा।

अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

ऐसे कहकर रामचन्द्रजी चले, राजा ने शोक के वश कुछ उत्तर न दिया। नगर में यह तीखी बात ऐसे फैल गई, जैसे बिच्छू के डंक मारते ही सब शरीर में विष चढ़ जाता है।

सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहं सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥

यह सुन सब नर-नारी ऐसे व्याकुल हुए, मानो बेलि और वन की अग्नि देख झुलस गये। जो जहां सुने वह वहीं सिर धुनने लगे। सबको बड़ा दुःख हुआ। किसी को धीरज नहीं था।

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयं समाइ।
मनहुं करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ॥ ४६॥

सबके मुख सूखने लगे। नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगी, शोक हृदय में नहीं समाता। मानो करुणा रस की सेना अवधपुरी में डंका बजाकर उतरी है॥४६॥

मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी। जहं तहं देहिं कैकइहि गारी॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥

ब्रह्मा ने भली बात बनाकर बिगाड़ दी, जहां-तहां लोग कैकेयी को गाली देने लगे। इस पापिनी को क्या सूझ पड़ी, जो छाये हुए घर पर आग धर दी।

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥

अपने हाथ से अपना नेत्र निकाल कर देखना चाहती है । अमृत को छोड़कर विष चखना चाहती है । खोटी और कठोर स्वभाव तथा बुरी मतवाली अभागी कैकेयी रघुवंश रूपी बांस को जलाने के लिए अग्नि रूप हो गई ।

पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा । सुख महुं सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
सदा रामु एहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥

पत्तों की डाल पर बैठ इसने वृक्ष को काटा । सुख में शोक का ठाट रच दिया, इसको तो राम सदा प्राणों के समान प्यारे रहे, अब किस कारण से ऐसा कुटिलपन ठान लिया है ।

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ । सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ॥

कविजन सत्य कहते हैं कि स्त्री का स्वभाव सब प्रकार से अगम, अथाह और छिपा हुआ होता है । अपनी परछाई दर्पण में पकड़ी जा सकती है, परन्तु हे भाई स्त्री की गति जानी नहीं जाती ।

दो०—काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ॥ ४७ ॥

अग्नि में क्या नहीं जल सकता और समुद्र में क्या समा नहीं सकता ? प्रबल स्त्री क्या नहीं कर सकती ? जगत में काल किसको नहीं खाता है ॥ ४७ ॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा । बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥

विधाता ने क्या सुनाकर क्या सुनाया और क्या दिखाकर अब क्या दिखाना चाहता है ? कितने लोग कहने लगे कि महाराज ने अच्छा नहीं किया । कुमति कैकेयी को विचार कर वर नहीं दिया ।

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु । अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु ॥
एक धरम परमिति पहिचाने । नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने ॥

जो हठ के कारण सब दुःखों के पात्र हुए, अबला के विशेष वश होकर ज्ञान और गुणों का नाश कर दिया । कितने धर्म की मर्यादा को जानने वाले चतुर लोग महाराज को दोष नहीं देते थे ।

सिबि दधीचि हरिचंद कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर संमत कहहीं । एक उदास भायं सुनि रहहीं ॥

शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कथाएं एक-एक से कहकर समझाने लगे । कितने ही कहने लगे कि इसमें भरतजी की सम्मति है । कितने ही यह बात सुन उदास हो गये कि कुछ समझ में नहीं आता ।

कार मूदि कर रद गहि जीहा । एक कहहिं यह बात अलीहा ॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे । रामु भरत कहुं प्रानपिआरे ॥

हाथों से कान बन्द कर दोनों हाथों से जीभ दबा कितने एक कहने लगे कि यह बात झूठ है। तुम्हारे ऐसे कहने से पुण्य का नाश हो जाएगा। भरतजी रामजी को प्राणों से अधिक प्यारे हैं।

दो०—चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ विषतूल।
सपनेहुं कबहुं न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल ॥ ४८ ॥

चाहे चन्द्रमा में से अग्नि के कण बरसने लगें, चाहे अग्नि अमृत विष के समान हो जाय परन्तु भरतजी स्वप्न में भी रामजी से विरुद्ध कभी कुछ न करेंगे ॥ ४८ ॥

एक बिधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ॥

कितने एक विधाता को दोष देने लगे कि अमृत दिखाकर विष दे दिया। हलचल पड़ जाने से सब किसी को सोच हुआ, हृदय में असह्य दाह होने लगा, उत्साह मिट गया।

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी ॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताही ॥

कुल में पूज्य बड़ी-बूढ़ी और ब्राह्मणों की स्त्रियां जो कैकेयी की परम प्यारी थीं, वे कैकैयी के शील, स्वभाव की सराहना करके सीख देने लगीं, उन लोगों का वचन भी उसको बाण के समान लगा।

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहिं अपराध आजु बनु देहू ॥

भरत मुझको राम के समान प्यारे नहीं हैं, यह तुम सदा कहा करती थीं। यह सारा संसार जानता है और राम को तुम स्वाभाविक प्रीति करती हो। आज किस अपराध से उन्हें बनवास दे रही हो ?

कबहुं न कियहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ॥
कौसल्यां अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥

तुमने कभी सौत का डाह नहीं किया, तुम्हारी प्रीति और प्रतीति को सारा देश जानता है, उसी कौशल्या ने अब तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जिसके कारण नगर पर तुमने वज्र डाल दिया है।

दो०—सीय कि पिय संगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूंजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम ॥ ४९ ॥

क्या सीता अपने पति का साथ छोड़ देगी ? क्या लक्ष्मण राम के बिना घर में रहेंगे ? क्या भरत अयोध्या में राज करेंगे और क्या राजा बिना राम के जीवित रहेंगे ॥ ४९ ॥

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू ॥
भरतहि अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू ॥

ऐसा अपने जी में विचार कर रिस छोड़ दो, शोक और कलंक का गढ़ मत बनो। भरत को अवश्य युवराज पद दो, परन्तु राम को वन में क्या काम है?

नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन विषय रस रूखे॥
गुर गृह बसहुं रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू॥

जो कहो कि राम यहां रहकर विघ्न करेंगे, तो राम राज्य के भूखे नहीं हैं, वे धर्म को धारण करने वाले और सांसारिक सुखों से विरक्त हैं। एक घर में रहना उचित न समझो तो घर छोड़कर राम गुरुदेव के घर में वास करें। राजा से ऐसा दूसरा वर मांग लो।

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुं लोगू॥
जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥

राम सरीखे पुत्र क्या वन के योग्य हैं? लोग सुनकर तुमको क्या कहेंगे? जो हमारे कहने को नहीं मानोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ नहीं लगेगा।

जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि विधि सोकु कलंकु नसाई॥

जो तुमने कुछ हंसी की हो तो उसको भी प्रकट कहकर जनाओ। जल्दी उठो और वह उपाय करो, जिस विधि से सबका शोक और तुम्हारा कलंक दूर हो जाय।

छं०—जेहि भांति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जियं भामिनी॥ २॥

जिस प्रकार शोक और कलंक जाये, वही उपाय करके कल का पालन करो और हठ से राम को जाते हुए वन से लौटाओ, दूसरी बात मत चलाओ, जैसे सूर्य के बिना दिन दुर्दिन हो जाता है, प्राण के बिना शरीर मृतक हो जाता है, बिना चन्द्रमा के रात अंधेरी हो जाती है। तुलसीदास जी कहते हैं कि वैसे ही प्रभु रामचन्द्रजी के बिना अवधपुरी सूनी हो जाएगी। हे भामिनी! हे रानी! अपने जी में समझकर देखो॥ २॥

सो०—सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइं कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥ २॥

सखियों ने जो सिखाया वह सुनने में मधुर और अन्त में हित करने वाली शिक्षा थी। परन्तु कैकेयी ने कुछ कान नहीं दिया, क्योंकि वह तो कुटिल कुबरी की सिखाई हुई है॥ २॥

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥

कैकेयी को सखियों ने जो हितोपदेश दिया, उसका उत्तर कुछ नहीं देती और असह्य कोप से रूखी हो रही थी और उनकी ओर ऐसे देखने लगी, मानो मृगियों को भूखी बाघिन देख रही है। उस रोगी को असाध्य जान उन्होंने त्याग दिया और यह कहती हुई चली कि यह मतिमंद अभागी है।

राजु करत यह दैअं बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई ॥
एहि बिधि बिलपहिंपुर नर नारीं। देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं ॥

राज्य करते इसे प्रारब्ध ने नाश किया, इसने ऐसा किया जैसा कोई न करेगा। इस प्रकार नगर के नर-नारी विलाप कर और कुचाली ककेयी को करोड़ों गालियां दे रहे थे।

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा ॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी ॥

विषम ज्वर के समान जलने लगे और सांस लेकर कहने लगे कि राम के बिना जीवन की कौन आशा है। वियोग से प्रजाजन ऐसे अकुला गए, जैसे पानी के सूखने से जल में रहने वाले मछली आदि जीवों के समूह अकुला जाते है।

अति बिषाद बस लोग लोगाईं। गए मातु पहिं रामु गोसाईं ॥
मुख प्रसन्न चित्त चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ ॥

इस प्रकार सब नर-नारी अत्यन्त दुःख के वश हो गये और रामचन्द्रजी माता के पास गये। मुख प्रसन्न चित्त में चौगुना चाह हो गया कि राजा रख न लें यह सोच भी मिट गया।

दो०—नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान ॥ ५० ॥

रघुवंश-मणि श्री रामजी नवीन गजराज हैं और राज्य बांधने का बन्धन है। वन में जाना बन्धन छूट जाना है और बन में जाना सुन, श्री रामचन्द्रजी के हृदय में अधिक आनन्द उत्पन्न हुआ ॥ ५० ॥

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा ॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे ॥

श्री रामजी ने दोनों हाथ जोड़ प्रसन्न हो माता के चरणों में सिर नवाया। तब माता ने आशीर्वाद देकर उन्हें हृदय से लगा लिया और भूषण-वस्त्रादि न्यौछावर किए।

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदयं लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए ॥

बारम्बार माता मुख चूमने लगी और स्नेह से उनके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया। गोद में बैठाकर फिर हृदय से लगाया। प्रेम के कारण स्तनों से सुन्दर दूध टपकने लगा।

प्रेम प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई ॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी ॥

माता का प्रेम और आनन्द कुछ नहीं कहा जाता, मानो दरिद्री कङ्गाल ने कुबेर की पदवी पाई। आदर से सुन्दर मुख निहार कर माता कौशल्या मधुर वचन बोली।

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी॥
सुकृत सील सुख सींवं सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥

हे प्रिय पुत्र! माता बलिहारी जाए, कहो आनन्द और मङ्गलकारी राज्य-तिलक का शुभ-मुहूर्त्त कब है? जो पुण्य-शील और सुख का सुन्दर शोभा रूपी मुहूर्त्त जन्म के लाभ की पूरी अवधि है।

दो०—जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भांति।
जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति॥ ५१॥

जिस लग्न को सब नर-नारी आतुर होकर इस भांति से चाहते हैं, जैसे प्यारी पपिहारी और पपीहा को शरद ऋतु में स्वाति नक्षत्र की वर्षा की चाहना होती है॥५१॥

तात जाउं बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जाएहु भैआ। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ॥

हे प्यारे बलि जाऊं, जल्दी स्नान करो और जो मन में भावे, सो कुछ मीठा भोजन कर लो। हे भैया! तब पिता के समीप जाना। प्रेम के वशीभूत होकर आदर से माता ने यह वचन कहे।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भवंरु न भूला॥

श्री रामजी ने माता के अति अनुकुल वचन सुने, मानो वे स्वयं स्नेह रूपी कल्पवृक्ष के फल हों। सुख रूपी मकरन्द से भरे हुए और राज-लक्ष्मी जिसकी जड़ है, उसको रामजी का मन रूपी भ्रमर नहीं भूलता।

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पितां दीन्ह मोहि कानन राजू। जहं सब भांति मोर बड़ काजू॥

धर्म में दृढ़ रामचन्द्रजी धर्म की गति जानकर, माता से कोमल वाणी बोले – हे मैया! पिताजी ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहां सब भांति से मेरा बड़ा काम होगा।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनंदु अंब अनुग्रह तोरे॥

हे माता! मन से प्रसन्न होकर आज्ञा दो, जिससे वन को जाने में आनन्द मङ्गल हो, प्रेम वश भूलकर भी मत डरना। हे मां! तुम्हारी कृपा से वन में भी आनन्द प्राप्त होगा।

दो०—बरष चारिदस बिपिन बसि कदि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउं मनु जनि करसि मलान॥ ५३॥

चार और दस चौदह वर्ष वन में बासकर पिता के वचन का पालन करके फिर आकर तुम्हारे चरणों के दर्शन करूंगा। अपना मन मलिन मत करना॥ ५२॥

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥

रघुनाथजी का नम्र मधुर वचन भी माता के हृदय में बाण के समान लगा। और करकने लगा शीतल वाणी सुन कौशल्या सहम कर ऐसे सूख गई, जैसे जवास बरसात के पानी पड़ने से सूख जाता है।

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुं मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर कांपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी॥

हृदय का दुःख कहा नहीं जाता, कौशल्या ऐसी व्याकुल हो गई मानो सिंह का शब्द सुन हथिनी सहम गई हो। नेत्रों में जल भर गया। शरीर थर-थर कांपने लगी, मानो मछली को मांजा व्याप गया।

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महमारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रान पिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥

धीरज धर और पुत्र का मुख गद्‌गद् कण्ठ हो, माता कौशल्या कहने लगी, हे बेटा! तुम तो अपने पिता को प्राणों के समान प्यारे हो और तुम्हारा चरित्र देख उनका चित्त प्रसन्न होता है।

राजु देन कहुं सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥

जिन्होंने तुम्हें राज्य देने का अच्छा दिन भी ठहरा लिया था फिर उन्होंने किस अपराध से वन जाने को कहा—हे पुत्र! मुझको कारण सुनाओ। सूर्यवंश के जलाने को कौन सा अग्नि रूप हुआ?

दो०—निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥ ५३॥

तब राम को ओर देखकर मन्त्री सुमन्त के पुत्र ने सब कारण समझाकर कहा, सो प्रसंग सुनकर कौशल्याजी मूक सी हो गयीं—उनकी दशा कही नहीं जा सकती॥ ५३॥

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूं भांति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥

कौशल्याजी न रख सकती थीं, न कह सकती थीं कि जाओ। दोनों भांति से हृदय में कठिन जलन पड़ गई। चन्द्रमा लिखने में राहु लिख गया। विधि की गति सदा सब किसी के लिए उल्टी रहती है।

धरम सनेह उभयं मति घेरी। भइ गति सांप छुछुंदरि केरी॥
राखउं सुतहि करउं अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥

धर्म और स्नेह दोनों ने कौशल्या की बुद्धि को घेर लिया। सांप छछुन्दर की सी दशा हो गई। जो पुत्र को रोके रखूं तो धर्म और भाई से विरोध होता है।

कहउं जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥

जो वन में जाने को कहूं तो बड़ी हानि होती है। इस संकट और सोच में कौशल्याजी व्याकुल हो गई। फिर स्त्री धर्म में प्रवीण कौशल्या पतिव्रत धर्म समझ, राम-भरत दोनों पुत्रों को समान जान।

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउं बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका॥

सीधे स्वभाव वाली रामचन्द्रजी की माता बड़ी धीरज धारण करके मधुर वचन बोली, हे पुत्र! बलि जाऊँ, तुमने अच्छा किया, पिता की आज्ञा सब धर्म में मुख्य है।

दो०—राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥ ५४॥

राज्य देने को कहकर वन दिया, मुझको इसका सोच और दुःख कछ भी नहीं है, परन्तु तुम्हारे बिना भरत, राजा और प्रजा को बड़ा क्लेश होता है॥ ५४॥

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

हे पुत्र! जो केवल पिता की आज्ञा हो तो, माता को बड़ी जानकर वन को मत जाओ जो माता पिता दोनों ने वन जाने को कहा हो तो वन सौ अवध के समान है।

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहुं उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियं होइ हरांसू॥

पिता वनदेव और माता वनदेवी को जानना। खग-मृग आदि तुम्हारे चरण-कमल के सेवक होंगे। राजाओं को अन्त में वनवास करना चाहिए, परन्तु तुम्हारी अवस्था देख हृदय में दुःख होता है।

बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंसतिलक तुम्ह त्यागी॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयं होइ संदेहू॥

वन बड़ा भागी है, अयोध्या अभागी है जो हे रघुकुलतिलक राम! तुमने त्याग दिया, हे पुत्र! जो कहूं कि मुझको अपने साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय में संदेह होगा।

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊं। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊं॥

हे पुत्र! तुम सबको परम प्यारे हो, प्राणों के प्राण और जीवों के जीव हो, ऐसे जो तुम सबसे परम प्रिय हो, मुझसे वन जाने की आज्ञा मांगते हो और मैं तुम्हारी बात सुनकर बैठी पछताऊं।

दो०—यह बिचारि नहिं करउं हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥ ५५॥

यह विचार कर झूठा स्नेह बढ़ा तुमसे कछ हठ नहीं करती हूं, अब मैं तुम्हारी बलि जाऊं। माता का नाता मान याद बनाये रखना, भूल मत जाना॥ ५५॥

देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुं पलक नयन की नाईं॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना॥

हे पुत्र! देवता और पितर सब कोई तुमको पलक के समान रखें। अवधि जल है और प्यारे कुटुम्बी मछली हैं और तुम करुणा की खान तथा धर्म में दृढ़ हो।

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊं। करि अनाथ जन परिजन गाऊं॥

ऐसे विचार कर वही उपाय करो, जिससे सबको जीते ही आकर मिलो। हे पुत्र! बलि जाऊं, तुम जन, परिजन और गांव को सनाथ कर सुखपूर्वक जाओ।

सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल कालु बिपरीता॥
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥

आज सबके पुण्य का फल जाता रहा, काल और कराल विपरीत हो गए। बहुत प्रकार से विलाप और अपने को बड़ा अभागिनी जान कौशल्या चरणों में लिपट गई।

दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई॥

कठिन और कहा न जाए ऐसा दाह हृदय में व्याप गया और ऐसा विलाप किया कि, उस विलाप के समूह का वर्णन नहीं किया जा सकता। तब रामचन्द्रजी ने माता को उठा कर हृदय से लगा और कोमल वचन कहकर बहुत प्रकार से समझाया।

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥ ५६॥

उस समय वनवास का समाचार सुनकर सीता जी अकुला उठीं और जाकर सासु के दोनों चरण-कमल को प्रणाम कर माथा नवाकर बैठ गई॥ ५६॥

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥

सासु ने कोमल वाणी से आशीश दी और बहुत सुकुमारी देख व्याकुल हो गई। रूप की राशि और पति से पवित्र प्रेम रखने वाली सीता नीचे मुख करके बैठ गई और सोचने लगीं।

चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥

मेरे जीवन नाथ वन जाना चाहते हैं, सो किस सुकृत से प्राणनाथ का साथ होगा, या तो शरीर और प्राण या केवल प्राण ही साथ जाएगा, ब्रह्मा का कर्तव्य कुछ जाना नहीं जाता।

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥
मनहुं प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं॥

सीताजी अपने सुन्दर चरण-नखों से पृथ्वी खोदने लगीं, तब नूपुर से जो मधुर ध्वनि उत्पन्न हुई, उसे कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है, मानो प्रेमवश हो करके विनती करती थी कि सीताजी का चरण कमल हमको न छोड़े।

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी॥

और सुन्दर नेत्रों से जल छोड़ने लगीं, सीताजी को ऐसा देख रामजी को माता कौशल्या बोलीं। हे पुत्र! सुनो सीताजी बहुत ही सुकुमार तथा सास-सुसर और कुटुम्बियों को बहुत प्यारी है।

दो०—पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु॥ ५७॥

इनके पिता जनकजी हैं जो राजाओं में शिरोमणि हैं और ससुर सूर्य-कुल में सूर्य हैं। पति सूर्यकुल रूपी कुमुदिनी जो वन को प्रफुल्लित करने के लिए चन्द्रमा के समान गुण रूप के निधान आप हो॥ ५७॥

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउं प्रान जानकिहिं लाई॥

फिर मैंने रूप की राशि, गुण और शील वाली सुहावनी प्यारी पुत्र-वधू पाई और नेत्र की पुतली की भांति प्रीति बढ़ाकर इस जानकी को हृदय से लगाकर प्राण रखा है।

कपलबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥

कल्प-लता के समान बहुत प्रकार लाड़ किया और स्नेह-रूपी जल से सींचकर पालन किया। उस लता को फूलने फलने में विधाता उल्टा हो गया। यह नहीं जाना जाता कि परिणाम क्या होगा।

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियं न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊं। दीप बाति नहिं टारन कहऊं॥

सिंहासन, गोद, हिंडोला इनको छोड़ सीता ने कठोर पृथ्वी पर पांव नहीं रखा, मैं इसको जीवन-बूटी की भांति देखती हूं और दीपक की बत्ती उसकाने तक को भी नहीं कहती।

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी॥

वही सीता वन को साथ जाना चाहती है, हे रघुनाथ! तुम्हारी क्या आज्ञा होती है। चन्द्रमा की किरणों के रस की रसिक चकोरी सूर्य के सामने नेत्रों से कैसे देख सकती है।

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिकां कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥ ५८॥

हाथी, सिंह, निशाचर आदि दुष्ट जो वन में विचरते फिरते हैं सो हे पुत्र! क्या विष की फुलवारी में सुहावनी संजीवन शोभा देती है, कदापि नहीं॥ ५८॥

बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ॥

वन में रहने के लिए ब्रह्मा ने कोल-किरातों की कन्याओं को रचा है जो विषय सुख से भोली हैं, पत्थर के कीड़े की भांति जो कठिन स्वभाव वाले हैं उनको वन में कभी क्लेश नहीं होता।

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बिन बसिहि तात केहि भांती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥

या तो तपस्वियों की स्त्रियां वन के योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के कारण सब भोग तज दिया है। हे बेटा! सीता वन में किस भांति वास करेगी, जो चित्र में बने वानरों को देखकर डर जाती है।

सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगू कि हंसकुमारी॥
अस बिचारी जस आयसु होई। मैं सिख देऊं जानकिहि सोई॥

मान सरोवर के सुन्दर कमल-वन में विहार करने वाली, जो हंस कुमारी है, क्या वह गंदले जल वाले गढ़े के योग्य है? कदापि नहीं। ऐसा विचार कर जैसो आज्ञा हो, वैसी ही शिक्षा जानकी को दूं।

जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहं होइ बहुत अवलंबा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधां जनु सानी॥

माता कौशल्या ने कहा कि जो सीता घर पर रहेगो, तो मुझको अपने प्राण रखने के लिए सहारा रहेगा। रामचन्द्रजी ने माता की शील और स्नेह-युक्त, मानो अमृत भरी हो ऐसी वाणी सुनी।

दो०—कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष॥ ५९॥

विचार के साथ प्रिय वचन कह माता को संतुष्ट किया, फिर वन के गुण व दोष प्रगट करके जानकीजी को समझाने लगे, यहां प्रगट करने का भाव यह है कि मन में संग ले जाने की इच्छा थी, पर ऊपरी मन से वन का गुण दोष प्रकट करने लगे॥ ५९॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भांति जियं जनि कछु गुनहू॥

माता के समीप कहते हुए सकुचाते थे, परन्तु मन में समय विचार कर बोले, हे राजकुमारी! जो हम कहते हैं सारी शिक्षा सुनो और सुनकर जी में कुछ और भांति मत मानो।

आपन मोरं नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥

जो अपना और हमारा भला चाहो, तो हमारा वचन मानकर घर रहो हमारी आज्ञा का पालन और सासु की सेवा से हे भामिनी! सब भांति घर रहने से ही तुम्हारी भलाई है।

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु कहिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥

इससे अधिक दूसरा धर्म नहीं है कि आदर सहित सास के चरणों की सेवा करना, जब जब माता मेरी सुधि करेगी और भोली मति से प्रेम के वश व्याकुल हुआ करेंगीं।

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी॥
कहउं सुभायं सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउं तोही॥

हे सुन्दरि! तब-तब पुरानी कथा कहकर कोमल वाणी से समझाना। हे सुमुखी! सच्चे मन से कहता हूं, मुझको सौगन्ध है, तुमको यहां केवल माता के हित के लिए रखता हूं।

दो०--गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस॥ ६०॥

गुरु और वेद के कहते हुए धर्म का फल सास ससुर की सेवा के बिना क्लेश पाओगी और जो हठ करोगी तो दुःख उठाना होगा, जैसे हठ के वश गालव मुनि और नहुष ने सब संकटों को सहन किया॥ ६०॥

मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा॥

हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो, मैं पिता का वचन प्रमाणानुसार पालन करके फिर शीघ्र लौट आऊंगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। हे सुन्दरी! तुम हमारा सिखावन सुनो।

जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥

हे वामा! जो प्रेम वश हठ करोगी तो तुम अन्त में दुःख पाओगी। वन बड़ा कठिन और भयंकर है। मर्ग में कड़ी धप और जाड़े में कड़ी सर्दी, बरसात में जल बरसता है। प्रचण्ड पवन चलता है।

कुस कंटक मग कांकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥

मार्ग में कुश-कांटा, अनेक प्रकार के कंकड़ आदि होते हैं, जिसमें बिना जूतों के नंगे पांव से चलना होगा। तुम्हारे चरण-कमल कोमल और मनोहर है. मार्ग कठिन हैं, बड़े-बड़े पहाड़ हैं।

कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥

जहां अँधियारी कन्दरा और खोहें हैं नदी और नाले बहते रहते हैं, जो ऐसे अगम और गहरे हैं कि देखे नहीं जाते। वन के भीतर ऋक्ष, बाग, भेड़िया, सिंह और हाथी ऐसे शब्द करते हैं कि जिसे सुनकर धीरज नहीं रहता।

दो०—भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल ॥ ६१ ॥

पृथ्वी पर सोना, छाल के वस्त्र, कन्द, मूल, भोजन, सो भी क्या सदा सब दिन मिलते हैं। समय-समय के अनुकूल मिलेंगे अर्थात जब जिसका समय होगा, तब वह उस समय मिलेगा ॥ ६१ ॥

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥

वन में राक्षस मनुष्यों का आहार करते हैं। और करोड़ों भांति से कपट वेष धारण करते हैं। पहाड़ का पानी बहुत लगता है, वन की विपत्ति बखानी नहीं जाती।

ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएं। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएं ॥

घोर वन में भयंकर सांप, पक्षी तथा स्त्री-पुरुषों को चुराने वाले राक्षसों का समूह रहता है। वन की सुधि आने से धीर पुरुष डर जाते हैं। हे मृग नयनी ! तुम स्वभाव से ही भीरु हो।

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधां प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥

हे हंस गामिनी ! तुम वन के योग्य नहीं हो। तुम वन में चलोगी तो यह सुन लोग मुझको अपयश देंगे। मान-सरोवर के जल-रूपी सुधा से पालन की हुई हंसिनी क्या खारे समुद्र में जी सकती है ?

नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदयं बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी ॥

नवीन आम के वन में विहार करने वाली कोकिला क्या करील के वन में शोभा पा सकती है ? हे चन्द्रमुखी ! ऐसा हृदय में विचार घर में रहो, वन में बहुत दुःख होता है।

दो०—सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ॥ ६२ ॥

जो स्वभाव से ही मित्र, गुरु और स्वामी की शिक्षा हित मान, उसके अनुसार बर्ताव नहीं करता सो हृदय में बहुत ही पछताता है और उसके हित की अवश्य हानि होती है ॥ ६२ ॥

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चंद निसि जैसें ॥

पति के कोमल और मनोहर वचनों को सुन सीताजी के सुन्दर नेत्रों में जल भर आया शीतल सीख भी कैसी दाह करने वाली हुई, जैसी चकई को शरद की चांदनी दुःख देने वाली है।

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी॥

सीताजी को उत्तर नहीं आया और बहुत विकल हो गयीं कि परम स्नेही प्राणनाथ मुझे छोड़ना चाहते हैं। सीताजी बरबस नेत्रों के जल रोक और मन से धीरज धरकर।

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥

सासू के चरण छूकर हाथ जोड़ कहने लगी कि हे माता! मेरी इस ढिठाई को क्षमा करना। प्राणपति ने मुझको वही शिक्षा दी है, जिसमें मेरा परम हित होगा। फिर मैंने अपने मन में समझकर देख लिया कि पति के बिछुड़ने के समान संसार में दुःख नहीं है।

दो०—प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥ ६३॥

हे प्राणनाथ! हे करुणायतन! हे सुन्दर सुख देने वाले! हे सुजान! हे रघुकुल कुमुद विधु! तुम्हारे बिना मुझको स्वर्ग लोक भी नरक के समान है॥ ६३॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥

माता, पिता, बहिन और प्यारे भाई प्रिय कुटुम्बी और हितकारी अथवा मित्रगण, सासु-ससुर, गुरु अच्छे लोग, सहायक, पुत्र, सुन्दर, सुशील, सुख देने वाले।

जहं लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥

हे नाथ! जहां तक स्नेह और नाता है वह स्त्री को पति के बिना सूर्य से भी अधिक गर्म करने वाले हैं। तन, धन, घर, पृथ्वी, पुर और राज, पति के बिना यह सब शोक का समाज है।

भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुं सुखद कतहुं कछु नाहीं॥

जैसे जीव बिना भोग, रोग के समान, गहना बोझ के समान और संसार यम यातना के समान है। हे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना संसार में मुझको सुख देने वाला कोई नहीं है।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥

जैसे जीव बिना देह और जल बिना नदी, वैसे ही हे नाथ! पुरुष बिना नारी शोभा नहीं पाती। हे नाथ! शरद ऋतु के निर्मल चन्द्रमा के सदृश मुख देखने से सब सुख तुम्हारे साथ होगा।

दो०—खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल॥ ६४॥

वन के पक्षी और मृग आदि पशु कुटुम्बी होंगे। वन नगर होगा, छाल निर्मल रेशमी वस्त्र होंगे और हे नाथ! तुम्हारे साथ स्वर्ग के समान सुखदायक पर्णशाला होगी॥ ६४॥

बनदेबीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु संग मंजु मनोज तुराई॥

वनदेवी और वनदेव जो उदार हैं सो सासु-श्वसुर के समान हमारा प्यार करेंगे। कुश और कोमल पत्तों की सुहावनी साथरी प्रभु के साथ कामदेव के सेज के समान हो जायेगी।

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउं मुदित दिवस जिमि कोकी॥

कन्द, मूल, फल का भोजन अमृत के समान होगा। अयोध्या के सौ राजमहलों के समान पहाड़ होगा। हे प्रभु! क्षण-क्षण में आपके चरणों का दर्शन कर ऐसे प्रसन्न रहूंगी जैसे दिन में चकई रहती है।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

हे नाथ! आपने वन में बहुतेरे दुःख, भय, विषाद और परिताप को कहा है। हे कृपानिधान! वे सब मिलकर स्वामी के वियोग-रूपी दुःख के लवलेश के समान भी नहीं हो सकते हैं।

अस जियं जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥

ऐसा जी में जानकर हे सुजान शिरोमणि! मुझको साथ लीजिए, छोड़िए मत। हे स्वामी! बहुत विनती करूं, आप दयानिधि और हृदयान्तर्यामी हैं।

दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥ ६५॥

हे दीनबन्धु! सुन्दर सुख देने वाले शील और स्नेह की खान, जो चौदह वर्ष तक हमारे प्राण को रहते जानिये, तो अवधपुरी में मुझको रखिये, नहीं तो अपने साथ ले चलिये॥ ६५॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भांति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥

क्षण-क्षण स्वामी के चरण-कमल को देखने में मुझको मार्ग चलने में हार नहीं होगी। सब भांति स्वामी की सेवा करूंगी और मार्ग चलने से उपजी हुई सब थकान दूर करूंगी।

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउं बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहं दुख समउ प्रानपति पेखें॥

वृक्ष की छाया में बैठकर चरण धोय, मन से प्रसन्न हो, पवन किया करूंगी। पसीने की बूंद सहित श्याम शरीर वाले प्राणपति को बार-बार देखने से दुःख का समय कहां होगा ?

सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही॥

समान भूमि पर घास और वृक्षों के पत्ते बिछाकर यह दासी रात भर पांव दबाती रहेगी, बार-बार आपकी यह कोमल मूर्ति को देखकर मुझको उष्ण और वायु नहीं लगेगी।

को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुं भोगू॥

और प्रभु के संग में मेरी ओर देखने वाला कौन है ? जैसे सिंह की स्त्री को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। मैं सुकुमारी हूं और नाथ वन के योग्य हैं। तुमको तप और मुझको भोग उचित है।

दो०—ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पांवर प्रान॥ ६६॥

रामजी ने कहा था कि घर रहो, इस पर सीता जी ने कहा—कि ऐसा कठोर वचन सुनने पर भी मेरा हृदय विदीर्ण न हुआ तो, हे प्रभो मैं जानती हूं कि मेरा नीच प्राण आपके कठिन वियोग का दुःख भी सह लेगा॥ ६६॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी संभारी॥
देखि दसा रघुपति जियं जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना॥

ऐसा कहकर सीताजी बहुत व्याकुल हुईं, वियोग वचन भी संभाल न सकीं तो प्रत्यक्ष वियोग की क्या गणना है ? सीताजी की दशा देख रामजी ने हृदय में जाना कि हठ करके रखने से जानकी प्राण नहीं रखेगी।

कहेउ कृपालु भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥

तब दयालु रामचन्द्रजी कहने लगे कि हे प्रिये ! सोच को छोड़ वन को हमारे साथ चलो, आज विषाद का समय नहीं है, इसलिए जल्दी वन को चलने का सामान तैयार करो।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥

प्रिय वचन कह प्यारी सीता को समझाया और माता के चरणों को प्रणाम कर उनसे आशीष पाई, तब कौशल्याजी ने कहा—शीघ्र आकर प्रजा का दुःख मिटाना और निष्ठुर माता को भूल मत जाना।

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउं नयन मनोहर जोरी॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि॥

हे विधाता क्या फिर मेरी दशा फिरेगी जो नेत्रों से मनोहर जोड़ी देख प्रसन्न होऊंगी। हे प्यारे पुत्र ! अच्छा दिन और शुभ घड़ी कब होगी, जब माता जीते जी तुम्हारा मुख-चन्द्र देखेगी।

दो०—बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियं हरषि निरखिहउं गात॥ ६७॥

और फिर वत्स, लाल, रघुपति, रघवर और तात कहकर न जाने कब बुलाऊंगी और हृदय से लगाकर प्रसन्न हो, तुम्हारे शरीर को देखूंगी॥ ६७॥

लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥

माता प्रेम से अधीर हो गई। मुख से वचन नहीं आ सका और बड़ी व्याकुल हो गईं, यह दशा देख रामजी ने अनेक भांति से समझाया। उस समय के स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअं बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥

तब जानकीजी ने सास के चरण पकड़ लिए और बोली कि सुनो माता मैं बड़ी अभागिन हूं। सेवा करने के समय विधाता ने मुझे दुःख दिया और मनोरथ सफल नहीं किया।

तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥

हे माता क्षोभ छोड़ दो और मोह मत छोड़ना। कर्म की गति कठिन है। मेरा भी कुछ दोष नहीं है। सीताजी के वचन सुन, सासु बहुत व्याकल हुईं। उस दशा को किस भांति से बखान कर कहूं ?

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा॥

बारम्बार जानकी को छाती से लगाया और धीरज धरकर, शिक्षा देकर आशीर्वाद दिया, जब तक गङ्गा-जमुना में जल की धारा रहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहेगा।

दो०—सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार॥ ६८॥

सीता की सास (कौशल्या) ने अनेक प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षा दी। तब सीता बड़ी प्रीति के साथ बारम्बार सासु के चरण-कमलों पर सिर नवाकर चलीं॥ ६८॥

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥

लक्ष्मणजी ने जब सीता सहित रामचन्द्रजी के वन जाने का समाचार पाया तब वे व्याकुल हो गये और उदास मुख किये हुए उठ दौड़े, शरीर कांप उठा, पुलकावली छा गई, नेत्रों में जल भर आया, प्रेम से अधीर होकर उन्होंने रामचन्द्रजी के चरण पकड़ लिए।

कहि न सतक कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े॥
सोचु हृदयं बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा॥

कुछ कह नहीं सके और खड़े ऐसे देखते रह गये, जैसे जल से निकाली हुई मछली दीन हो जाती है। हृदय में सोच करने लगे कि विधाता! क्या हमारा सब सुख और सुकृत एक बार में ही समाप्त हो गया।

मो कहुं काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें॥

मुझको रघुनाथजी क्या आज्ञा देंगे, घर रखेंगे कि साथ लगे? रामचन्द्रजी को देखकर भाई लक्ष्मण ने हाथ जोड़े और देह-गेह सब कछ तृण के समान त्याग कर दिया।

बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदयं परिनाम उछाहू॥

नीति में निपुण, शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र रामचन्द्रजी यह वचन बोले, हे तात! उत्साह का परिणाम अपने हृदय में समझो और प्रेम के वश हो मत घबराओ।

दो०–मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायं॥
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायं॥ ६१॥

माता-पिता, गुरु और स्वामी शिक्षा को जो सिर पर धारण करके भली-भांति उसका पालन करते हैं जन्म का लाभ पाते हैं, नहीं तो जगत में जन्म वृथा हो जाता है॥ ६१॥

अस जियं जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं॥

ऐसा हृदय में जानकर हे भाई! मेरा उपदेश सुनो और माता-पिता के चरण की सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं, राजा वृद्ध हैं और उनके मन में हमारा दुःख है।

मैं बन जाउं तुम्हहि लेई साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुं परइ दुसह दुख भारू॥

मैं वन में तुमको साथ ले जाऊं, तो अवधपुरी सब प्रकार से अनाथ हो जायेगी। गुरु, माता-पिता प्रजा और परिवार, सबको न सहने योग्य दुःख का भार सहना पड़ेगा।

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥

घर रहो और सबको सन्तुष्ट करो, नहीं तो हे तात! बड़ा दोष होगा, जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःख पाती है, वह राजा अवश्य नरक का अधिकारी है।

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी॥
सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें॥

"हे तात ! ऐसी नीति विचार कर घर रहो।" यह सुन लक्ष्मण भी बड़े व्याकुल हुए, रामचन्द्रजी के शीतल वचनों से लक्ष्मणजी ऐसे सूख गये, जैसे पाला के छू देने से फसल सूख जाती है।

दो०–उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥ ७०॥

प्रेम के वश उत्तर नहीं आ सका और अकुलाकर चरण पकड़ लिये और बोले कि, हे नाथ ! मैं दास हूं और तुम स्वामी हो, सो मुझको त्याग करोगे तो मेरा क्या वश है॥ ७०॥

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥
नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहुं ते अधिकारी॥

हे स्वामी ! आपने तो मुझको अच्छी शिक्षा दी, परन्तु मुझको अपनी काहिली से आपका सिखाना कठिन जान पड़ता है जो श्रेष्ठ और धीर मनुष्य धर्म को दृढ़ रीति से धारण करने वाले हैं वे वेद और नीति के अधिकारी होते हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेहं प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुर पितु मातु न जानउं काहू। कहउं सुभाउ नाथ पतिआहू॥

मैं बालक हूं और प्रभु के प्रेम से पाला गया हूं, क्या हंस मन्दराचल और सुमेरू पर्वत को उठा सकता है। गुरु, पिता और माता किसी को नहीं जानता हूं आप ही को जानता हूं, यह स्वभाव से कहता हूं। हे नाथ ! सत्य जानिए।

जहं लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥

हे नाथ ! जब तक स्नेह का सम्बन्ध रहता है, तब तक प्रीति की प्रतीति रहती है। वेद ने स्वयं कहा है। हे स्वामी ! मुझे तो सब कुछ आप ही हो, दीनबन्धु, अन्तर्यामी और घट-घट के जानने वाले हो।

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूमि सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

धर्म व नीति का उपदेश उसे देना चाहिए, जिसे कीर्ति, ऐश्वर्य और सद्गति प्रिय हो, हे कृपासिंधु ! जैसे मन, कर्म और वचन से चरण प्रीति हो। क्या वह भी त्याग के योग्य होता है ?

दो०–करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहं सभीत॥ ७१॥

दया के समुद्र रामचन्द्रजी ने प्यार, भाई का कोमल और नम्र वचन सुनकर भययुक्त जानकर प्रभु ने छाती से लगाकर समझाया॥ ७१॥

मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥

हे भाई ! जाकर माता से विदा मांगो और जल्दी आकर वन चलो, रामजी की वाणी सुन लक्ष्मणजी ऐसे प्रसन्न हुए, मानो उन्हें बड़ा लाभ हो गया और बड़ी हानि दूर हो गई।

हरषित हृदयं मातु पहिं आए। मनहुं अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥

प्रसन्न हृदय होकर माता के पास गए, मानो अन्धे ने फिर से नेत्र पाये। जाकर माता के चरणों पर मस्तक नवाया, परन्तु उनका मन रामचन्द्रजी और जानकी के साथ था।

पूंछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा॥

मन में उदास देख माता ने कारण पूछा, तब लक्ष्मणजी ने सब कथा भली-भांति से कही। कठोर वचन सुन माता सुमित्रा ऐसे सहम गई, जैसे हरिणी बन में चारों ओर आग लगी देख सहम जाती है।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू॥
मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥

लक्ष्मण ने देखा कि अब अनर्थ हुआ जाता है, क्योंकि यह स्नेहवश अकाज करेगी तो लक्ष्मणजी भय से विदा मांगने में सकुचाते थे कि हे विधाता ! प्रभु के संग जाने को माता कहेगी कि नहीं ?

दो०—समुझि सुमित्रां राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥ ७२॥

रानी सुमित्रा ने श्रीराम और जानकी का रूप, सुशील और स्वभाव समझ तथा राजा का स्नेह देखकर सिर धुना कि पापिन ने कुदाव किया॥ ७२॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भांति सनेही॥

कुसमय जान सुमित्रा ने धीरज धारण किया और स्वभाव से हित करने वाली वाणी बोली हे पुत्र ! तुम्हारी माता सीता हैं और पिता रामचन्द्र हैं, जो सब भांति स्नेही हैं।

अवध तहां जहं राम निवासू। तहंइं दिवसु जहं भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

वहां अवधपुरी है, जहां रामजी का निवास हो, वहां दिन है जहां सूर्य का प्रकाश हो। जो सीता-राम वन को जाते हैं तो अवध में तुम्हारा कुछ काम नहीं है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

गुरु, माता-पिता, भाई, देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्राणों के समान करनी चाहिए। राम सबके प्राण प्यारे, जीवन और स्वार्थ रहित सबके सखा हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहां तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियं जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

जहां तक अपने पूज्य और परम प्यारे बन्धु सुहृदय आदि हैं, उन्हें राम के नाते से मानिये। हे तात ! ऐसा अपने मन में जानकर श्री रामचन्द्रजी के साथ वन को जाओ और संसार में जीने का लाभ हो।

दो०—भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउं।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउं॥ ७४॥

मेरे समेत तुम बड़े भाग्य के पात्र हुए, अर्थात तुम बड़े भाग्यशाली हुए, बलिहारी जाऊं तुम्हारे मन से छल जोड़कर, राम के चरणों में स्थान किया॥ ७३॥

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बांझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

संसार में वही स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र रघुनाथजी का भक्त हो, नहीं तो बांझ ही अच्छी है। वृथा ही राम के विमुख पुत्र होने से कल्याण की हानि होती है।

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥

तुम्हारे ही भाग्य से रामचन्द्र वन को जाते हैं, दूसरा हेतु कछ नहीं है। सब सुकर्मों का बड़ा फल यही है कि राम और सीता के चरण में स्वाभाविक स्नेह बना रहे।

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुं इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

राम, क्रोध, द्वेष, अभिमान और अज्ञान इनके वश में सपने में भी मत होना। सब प्रकार का दोष छोड़ मन, कर्म और वचन से सेवा करना।

तुम्ह कहुं बन सब भांति सुपासू। संग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

तुमको वन में सब भांति से सुख है, क्योंकि तुम्हारे माता-पिता राम और सीता तुम्हारे संग में हैं। जिस भांति से वन में रामचन्द्रजी से क्लेश न होने पावे, वही करना। हे पुत्र ! यही हमारा उपदेश है।

छं०—उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥ २॥

हे पुत्र ! बारम्बार यही उपदेश देती हूं कि जिस भांति तुमसे रामचन्द्र और सीता सुख पावें और माता-पिता, प्यारे कुटम्बी और नगर की सुधि वन में भूल जावें, उसी भांति सेवा करना। तुलसीदास

जी कहते हैं कि सुमित्रा ने इस प्रकार पुत्र को शिक्षा देकर आशीष दी कि सीता और राम के चरणों में तुम्हारी सच्ची प्रीति सदा नित्य नई होती रहे ॥ ३ ॥

सो०—मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयं ।
बागुर बिषम तोराइ मनहुं भाग मृगु भाग बस ॥ ३ ॥

माता के चरण पर सिर नवाय और शंकित हृदय से लक्ष्मणजी ऐसे चले, मानो भाग्यवश कठिन जाल को तुड़वाकर हिरन भागता है ॥ ३ ॥

गए लखनु जहं जानकि नाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए । चले संग नृपमंदिर आए ।

फिर लक्ष्मणजी वहां गये, जहां जानकीनाथ थे और प्यारे का साथ पाकर मन में प्रसन्न हुए । सीता-राम के सुन्दर चरण को प्रणाम करके संग चले और राज मन्दिर में आए ।

कहहिं परसपर पुर नरनारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने । बिकल मनहुं माखी मधु छीने ॥

नगर के नर-नारी आपस में कहने लगे कि—ब्रह्मा ने भली बात बनाकर बिगाड़ दी । शरीर दुबला हो गया, मन में दुःख भर गया । मुख उदास हो गया, मानो मक्खी शहद को छिन जाने से दुःखी हो रही हो ।

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा । बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥

सब हाथ भींचने और सिर धुन पछताने लगे, जैसे बिना पङ्ख के पक्षी व्याकल हो जाते हैं, ऐसे ही सब लोग विकल हो गये । राज दरबार में बड़ी भीड़ हो गई, उस समय अपार दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

सचिवं उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे ॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी । ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी ॥

मन्त्री ने राजा को उठाकर बैठाया और प्रिय वचन कहा कि रामजी आये हैं । सीताजी समेत राम-लक्ष्मण जी को देखकर राजा दशरथजी बहुत व्याकुल हो गए ।

दो०—सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ ॥ ७६ ॥

सीता सहित दोनों सुन्दर पुत्रों को देखकर महाराज व्याकुल होने लगे और स्नेहवश बार-बार उन्हें छाती से लगा लिया ॥ ७४ ॥

सकइ न बोलि बिकल नर नाहू । सोक जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब मागा ॥

विकल होने के कारण राजा बोल नहीं सके और शोक से हृदय में कठिन जलन पड़ गई । तब रघुनाथजी ने उठकर अति प्रेम के साथ उनके चरणों में सिर नवाकर विदा मांगी ।

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै॥
तात किएं प्रिय प्रेम प्रमोदू। जसु जग जाइ होइ अपबादू॥

और कहा कि हे पिताजी! मुझको आशीष और आज्ञा दीजिये, आनन्द के समय आप विस्मय क्यों कर रहे हैं? हे पिताजी! प्यारों से प्रेम करने में इस समय आपकी असावधानता है। जगत् में यश जाता रहेगा और निन्दा होगी।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहां। बैठारे रघुपति गहि बाहां॥
सुनहु तात तुम्ह कहुं मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं॥

यह सुनकर राजा ने स्नेहवश उठकर रघुनाथजी की बांह पकड़कर अपने निकट बिठा लिया और बोले हे तात! सुनो तुमको मुनिजन कहते हैं कि राम चर-अचर के स्वामी हैं।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयं बिचारी॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥

ईश्वर हृदय में विचार का शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार फल देता है। जो कर्म करता है वही फल पाता है ऐसा वेद और नीति में कहा है, सब लोग भी यही कहते हैं।

दो०—औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥ ७५॥

अपराध और कोई करे, इसका फल और कोई पावे, अर्थात दूसरा उसका फल पावे, भगवान् की अति विचित्र गति को संसार में जानने योग्य कौन॥ ७५॥

रायं राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥

दशरथ ने राम को रखने के निमित्त छल छोड़ बहुत उपाय किये। जब राम का रुख रहने का न देखा, तब राजा ने जाना कि रामजी धर्म की धुरी को धारण करने वाले धीर और चतुर हैं।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भांति सिख दीन्ही॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए॥

तब महाराज ने सीता को हृदय से लगाया और अत्यन्त हित से उन्हें बहुत भांति की शिक्षा दी। वन में असह्य दुःखों को कह सुनाया और सास-ससुर तथा पिता के यहां रहने का सुख समझाया।

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा॥
औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई॥

सीताजी का मन राम के चरणों में प्रीति के ऐसा मग्न हो गया कि घर को सुगम नहीं जाना और वन भी कठिन नहीं लगा और सबने भी वन का अधिक दुःख कहकर सीताजी को समझाया।

सचिव नारि गुर नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी॥
तुम्ह कहुं तौ न दीन्ह बनवासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू॥

मन्त्री की स्त्री, गुरु की सयानी स्त्री स्नेह सहित कोमल वाणी से कहने लगीं—तुमको तो वनवास नहीं दिया, जो ससुर और सास कहें, सो करो।

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि॥ ७६॥

शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुनकर सीताजी को ऐसे अच्छी नहीं लगी, जैसे शरद-ऋतु के चन्द्रमा की चांदनी के लगने से चकई व्याकुल हो जाती है॥ ७६॥

सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी॥

सीता सकुच के वश उत्तर नहीं देती थीं, सो सुनकर कैकेयी तमक कर उठी, मुनियों के वस्त्र, भूषण लाकर आगे रखकर कोमल वाणी से बोली।

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥

हे रघुवीर! तुम राजा को प्राणों से अधिक प्यारे हो। शील-स्नेह वश तुम्हारा समीपन नहीं छोड़ेंगे, चाहे सुकर्म, सुयश और परलोक का नाश हो जाय, पर तुमको वन में जाने को महाराज नहीं कहेंगे।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा॥
भूपहि बचन बान सम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥

ऐसा विचार कर जो अच्छा लगे सो करो। रामचन्द्रजी माता की ऐसी सीख सुन सुखी हो गये। महाराज को कैकेयी के वचन बाण के समान लगे और बोले कि यह अभागे प्राण निकल क्यों नहीं जाते।

लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू॥
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई॥

शोक से व्याकुल होकर राजा मूर्छित हो गये और किसी को यह नहीं सूझता कि क्या करना चाहिए। रामचन्द्रजी ने तुरन्त मुनि का रूप धारण कर और माता-पिता को सिर नवा कर चल दिये।

दो०—सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥ ७७॥

वनवास का सब साज स्त्री और भाई के सहित सजकर ब्राह्मण और गुरु के चरणों को प्रणाम कर प्रभु रामचन्द्रजी सबको अचेत कर खड़े हो गये॥ ७७॥

निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए॥

फिर निकलकर वशिष्ठ मुनि के द्वार पर खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरह की आग में जल रहे हैं। रघुनाथजी ने प्रिय वचन कह सबको समझाया और ब्राह्मणों को बुला लिया।

गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥

गुरु से कहकर चौदह वर्ष के निमित्त भोजन दिया और आदर, दान, विनय-भाव से सबको वश में किया। याचकों को दान, मान से और मित्रों को सच्चे भाव से सन्तुष्ट किया।

दासीं दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौंपि बोले कर जोरी॥
सब कै सार संभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं॥

फिर दासी और दास को बुलाकर गुरुदेव को सौंप और हाथ जोड़कर बोले कि—हे स्वामी! इन सबका संभाल, पिता और माता की भांति करते रहना।

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी॥
सोइ सब भांति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी॥

बारंबार दोनों हाथ जोड़कर रामजी सबसे कोमल वचन कहने लगे। वही सब भांति से मेरा हितकारी है जिससे महाराज सुखी रहेंगे।

दो०—मातु सकल मोरे बिरहं जेहिं न होहिं दुख दीन।
सो उपाउ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन॥ ७८॥

हे नगर के निवासियों! सब माता मेरे वियोग में दुःख से दीन जिस उपाय से न हों, वही उपाय करना। तुम सब बड़े चतुर हो॥ ७८॥

एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥

इस प्रकार रामजी ने सबको समझाया और गुरु के चरण-कमलों पर प्रसन्न होकर सिर नवाया। गणेश, पार्वती और शिवजी को मना और सबसे आशीर्वाद पा रघुनाथजी चले।

राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू॥

रामजी के चलते ही सबको बड़ा दुःख उत्पन्न हुआ और नगरवासियों के दुःख का शब्द सुना नहीं जाता था। उस समय लङ्का में अशुभ शकुन और अवधपुरी में बड़ा शोक छा गया। देवलोक हर्ष और विषाद के वश हो गया।

गइ मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥

जब मूर्छा बीती, महाराज जागे और सुमन्त को बुलाकर ऐसे कहने लगे। राम वन को चले, पर प्राण नहीं जाते, अब किस सुख के हेतु देह में रह गये हैं?

एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू ॥

इससे अधिक बलवान दुःख कौन-सा होगा, जिसको पाकर प्राण इस देह को छोड़ेंगे, फिर धीरज धरकर सुमन्त से कहने लगे कि—हे सखा ! तुम रथ को लेकर राम के संग जाओ ।

दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि ।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएं दिन चारि ॥ ७१ ॥

दोनों राजकुमार बहुत सुकुमार हैं और जनक-सुता भी बहुत सुकुमारी हैं, इनको रथ पर चढ़ा और वन दिखलाकर चार दिन बाद लौट आना ॥ ७९ ॥

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई ॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी ॥

जो धीरजधारी दोनों भाई न लौटें, क्योंकि रघुनाथजी सत्य के समुद्र दृढ़ प्रतिज्ञा वाले हैं तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभु ! सीता जी को लौटा दीजिए ।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई ॥
सासु ससुर अस कहेउ संदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू ॥

जब सीता वन को देखकर डरे, तब मेरी शिक्षा समय पाकर कहना कि सास-ससुर ने ऐसा संदेशा कहलाया हैं कि हे पुत्री ! घर लौट चलो, वन में बहुत क्लेश होता है ।

पितुगृह कबहुं कबहुं ससुरारी। रहेहु जहां रुचि होइ तुम्हारी ॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा ॥

कभी पिता के घर कभी ससुराल में जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां रहना। इस प्रकार बहुत-सा उपाय करना जो जानकी ही घर लौट आवें तो प्राण रखने का सहारा हो जाय ।

नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भएं बिधि बामा ॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। रामु लखनु सिय आनि देखाऊ ॥

नहीं तो मेरा मरण ही इसका परिणाम होगा, क्या करें कुछ वश नहीं, विधाता उल्टा हो गया। ऐसा कह राजा मूर्छित हो गये और कहने लगे कि राम-लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखाओ ।

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ ।
गयउ जहां बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ ॥ ८० ॥

मन्त्री सुमन्त महाराज की आज्ञा पा सिर नवा बहुत जल्दी से रथ सजाकर वहां गया। जहां नगर के बाहर सीता सहित दोनों भाई राम-लक्ष्मण खड़े थे ॥ ८० ॥

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए ॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयं अवधहि सिरु नाई ॥

तब सुमन्त ने महाराज की आज्ञा सुनाई और विनती करके रामजी को रथ पर चढ़ा लिया। सीता सहित दोनों भाई रथ पर चढ़ और हृदय में अवधपुरी को सिर नवा करके वन को चले ।

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं॥

रामचन्द्रजी के चलते ही अवध को अनाथ देख, सब लोग व्याकुल होकर उनके संग चलने लगे। कृपासिन्धु राम के बहुत भांति समझाने से लोग फिर लौट आते थे।

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुं कालराति अंधिआरी॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी॥

अवधपुरी उनको डरावनी लग रही थी, अंधियारी काल-रात्रि है। नगर के नर-नारी भयानक जन्तु के समान लगने लगे, प्रेमवश एक को देखकर एक डरने लगे।

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुं जमदूता॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

घर श्मशान के समान, कुटुम्बी भूत के समान तथा पुत्र, हित और मित्र ऐसे जान पड़े मानो यमदूत हैं, बागों में वृक्ष, बेल कुम्हलाने लगीं। नदी, सरोवर देखे नहीं जाते थे।

दो०—हय गय कोटिन्हि केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥ ८१॥

करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के पशु, नगर के पशु, पपीहा, मोर, कोयल, चकवा, मैंना, सारस, हंस और चकोर॥ ८१॥

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहं तहं मनहुं चित्र लिखि काढ़े॥
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी॥

राम के वियोग से व्याकुल होकर ऐसे खड़े रह गये, मानो जहां-तहां चित्र बना कर खड़े कर दिये गये हों। सारा नगर बड़ा सघन वन हो गया। सब नर-नारी उसमें पक्षी और पशु के समान दिखाई देने लगे।

बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुं दिसि दीन्ही॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥

उन सबको जलाने के लिए विधाता ने कैकेयी को भिलनी किया। जिसने दसों दिशा में सब ओर दुसह अग्नि लगा दी। सब लोग रघुनाथजी के वियोग-रूपी अग्नि को सह नहीं सके और व्याकुल होकर भाग चले।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
जहां रामु तहं सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥

सब लोगों ने मन में विचार किया कि राम-लक्ष्मण और सीताजी के बिना सुख नहीं हो सकता। जहां राम रहें, वहां सब सुखों का समाज है। रामजी के बिना अवध में हमारा क्या काम है?

चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥

इस प्रकार सलाह पक्की करके देवताओं को दुर्लभ ऐसे सुख देने वाले घर को छोड़, सब लोग रामचन्द्रजी के साथ चले। जिनको रामचन्द्रजी के चरण-कमल प्यारे हैं, उनको क्या विषय-भोग अपने वश में कर सकते हैं।

दो०--बालक बृद्ध बिहाइ गृहं लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥ ८२॥

बालक और बूढ़ों को घर छोड़कर सब लोग साथ लग गये, पहिले दिन रघुनाथजी ने तमसा नदी के तट पर निवास किया॥ ८२॥

रघुपति प्रजा प्रेम बस देखी। सदय हृदयं दुखु भयउ बिसेषी॥
करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइअहिं पीर पराई॥

रघुनाथजी अपनी प्रजा को प्रेमवश देखकर तथा दया सहित हृदय होने से बहुत ही दुःखी हुए। दयामय स्वामी रघुनाथजी पीर को जल्दी पहिचान जाते हैं।

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए॥
किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे॥

रामजी ने प्रेम सहित कोमल वचन कह बहुत भांति से सब लोगों को समझाया और बहुत धर्म का उपदेश किया, परन्तु सब लोग ऐसे प्रेमवश हो गये कि लौटाने से भी नहीं लौटते थे।

सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमायां मति मोई॥

शील, स्नेह को छोड़ा नहीं जाता था, रघुनाथजी द्विविधा के वश हो गये, सब लोग शोक और परिश्रम के वश हो गये और उनमें से कुछ की बुद्धि को देवमाया ने भी मोहित कर दिया।

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥
खोज मारि रथु हांकहु ताता। आन उपायं बनिहि नहिं बाता॥

जब दो पहर रात व्यतीत हुई, तब राम ने सुमन्त से प्रीति-पूर्वक कहा, हे तात! खोज मार कर रथ को हांको और किसी उपाय से बात नहीं बनेगी।

दो०-राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिवं चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ॥ ८३॥

राम, लक्ष्मण और सीताजी महादेव के चरणों में मन लगाकर रथ पर बैठे, तब मन्त्री ने इधर-उधर खोज छिपाकर तुरन्त रथ को चलाया॥ ८३॥

जागे सकल लोग भएं भोरू। गे रघुनाथ भयउ अति सोरू॥
रथ कर खोज कतहुं नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुं दिसि धावहिं॥

भोर होते ही जब सब लोग जागे तो रघुनाथजी चले गये थे। इस कारण बड़ा भारी शोर हुआ। रथ का खोज नहीं पाते, व्याकुल हो और राम-राम कहकर चारों ओर दौड़ने लगे।

मनहुं बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥
एकहि एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥

सब लोग ऐसे व्याकुल हो गये, मानो समुद्र में जहाज डूब जाने से बनियों का सब समाज व्याकुल हो गया। एक को एक उपदेश देने लगे कि रामचन्द्रजी ने क्लेश जानकर हम लोगों को छोड़ दिया है।

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागें दीन्हा॥

अपनी निन्दा और मछली की सराहना करके कहने लगे कि मछली धन्य है जो जल बिना नहीं जीती, राम बिना हमारे जीवन को धिक्कार है, जो बिधाता ने प्यारे का वियोग करा दिया तो मांगने से भी हम लोगों को मरण क्यों नहीं दिया।

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना॥

इस भांति बहुत-सा विलाप करते और दुःख से भरे हुए, सब लोग अवधपुरी में लौट आये, उनका कठिन वियोग बखाना नहीं जा सकता। सब लोग उनके अवध वापस आने की आशा से प्राण रखने लगे।

दो०—राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहुं कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥ ८४॥

रामजी के दर्शन के निमित्त सब नर-नारी नेम और व्रत करने लगे। सब ऐसे दीन हो गये, जैसे चकवा-चकवी और कमल सूर्य के बिना दीन हो जाते हैं॥ ८४॥

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुंचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥

सीता और मन्त्री सहित दोनों भाई शृङ्गबेरपुर में जा पहुंचे, वहां गङ्गाजी को देखकर रामचन्द्रजी रथ पर से उतर पड़े और आनन्द से उनको दण्डवत किया।

लखन सचिवं सियं किए प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा॥
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥

लक्ष्मण, मन्त्री और सीताजी ने प्रणाम किया। रामचन्द्रजी सबके साथ बहुत सुखी हुए। गंगाजी सब आनन्द-मंगल की मूल हैं। सब सुखों को देने वाली और सब दुःखों को हरने वाली हैं।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥

अनेक भांति की कथाओं का प्रसंग कहकर रामजी तरंग को देखने लगे। मन्त्री को, लक्ष्मण को और सीताजी को गंगाजी की अधिक महिमा सुनाई।

मजनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू॥

स्नान करने से मार्ग की थकावट दूर हो गई और पवित्र गंगा जल को पीते ही चित्त प्रसन्न हो गया। जिसका स्मरण करते ही सार-रूपी संभार मिट जाता है। उसकी यह महत्ता होना लौकिक व्यवहार है।

दो०–सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥ ८५॥

शुद्ध और सत-चित आनन्दमय सूर्यवंश की ध्वजा थे, अवतार लेकर जो मनुष्यों का चरित्र करते थे, वह चरित्र संसार सागर से पार उतारने को पुल के समान है॥ ८५॥

यह सुधि गुहं निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई॥
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियं हरषु अपारा॥

यह सुधि जब निषादराज गुह ने पाई, तब प्रसन्न होकर अपने प्रिय बान्धवों को बुलाया कन्द, मूल और भेंट का भार भर हृदय में बहुत ही प्रसन्न होता हुआ प्रभु से मिलने लगा।

करि दंडवत भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूंछी कुसल निकट बैठाई॥

दण्डवत कर और भेंट आगे रख अत्यन्त प्रीति से प्रभु रामजी को देखने लगा। तब रामचन्द्रजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश हो उसको अपने निकट बैठा उसकी कुशल पूछने लगे।

नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउं भागभाजन जन लेखें॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥

तब गुह कहने लगा कि हे नाथ! आपके चरणाविन्दों के दर्शन से कुशल हैं और आज मैं भाग्य का भाजन हुआ हे देव! पृथ्वी धन-धाम सब आपका ही है। मैं तो परिवार सहित आपका नीच जन हूं।

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥

कृपा करके पुर में चरण पधारिये और अपने जन को सहारा दीजिए, रामचन्द्रजी बोले–हे सखा! तुम चतुर हो, तुमने सब सच कहा परन्तु पिताजी ने मुझको और ही आज्ञा दी है।

दो०–बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥ ८६॥

चौदह वर्ष वनवास, मुनियों के समान व्रत, भेष और आहार करना, यह पिताजी की आज्ञा है। इस कारण गांव में वास करना हमको उचित नहीं है। यह सुन गुह को बड़ा दुःख हुआ॥ ८६॥

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥

राम-लक्ष्मण और सीताजी को देखकर गांव के नर-नारी प्रेम से कहने लगे। कहो सखी! वे माता पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे सुकुमार बालकों को वन में भेज दिया है।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहि बिधि दीन्हा॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना॥

उसमें से एक कहने लगी—राजा ने अच्छा किया, जिन्होंने हम सब वनवासियों को नेत्रों का लाभ दिया। तब निषादराज ने मन में अनुमान कर सीसम का मनोहर वृक्ष प्रभु के विश्राम योग्य जाना।

लै रघुनाथहि ठाउं देखावा। कहेउ राम सब भांति सुहावा॥
पुरजन करि जोहारु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए॥

और रघुनाथजी को वहां ले जाकर स्थान दिखा दिया। उसको देख रामजी ने कहा—यह स्थान सब भांति से सुहावना है। गांव के लोग जुहार कर घर गये, तब रामचन्द्रजी भी संध्या करने चले।

गुहं संवारि सांथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥

गुह ने संभालकर कुश और कोमल पत्तों की बहुत सुहावनी साथरी बना दी। पवित्र फल-फूल मधुर और कोमल जानकर दौनों में भर-भर कर प्रभ के लिए ले आकर रख दिया।

दो०—सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ॥ ८७॥

सीताजी, सुमन्त और लक्ष्मणजी सहित कन्द-मूल फल खाकर रामचन्द्रजी ने शयन किया और लक्ष्मणजी उनके पांव दबाने लगे॥ ८७॥

उठे लखनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥

प्रभु को सोते हुए जानकर लक्ष्मणजी उठे और मन्त्री सुमन्त को सोने के निमित्त कोमल वाणी से कहा। कुछ दूर पर धनुष-बाण से सुसज्जित हो, वीर आसन पर बैठ जागने लगे।

गुहं बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावं ठावं राखे अति प्रीती॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई॥

गुह ने विश्वासी पहरुआ को बुलाकर ठौर-ठौर पर बड़ी प्रीति से बैठा दिया। आप लक्ष्मण के पास कटि में तर्कस कर और धनुष-बाण चढ़ाकर जा बैठा।

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदयं बिषादू॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन मन कहई॥

प्रभु को सोते हुए देखकर प्रेमवश निषाद के मन में बड़ा दुःख हुआ। शरीर पुलकित हो गये। नेत्रों से जल बहने लगा।

भूपति भवन सुभायं सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ संवारे॥

हे लक्ष्मणजी ! राजा का भवन साधारण ही ऐसा सुहावना है कि इन्द्र-भवन भी जिसकी बराबरी नहीं कर सकता। जिसमें मणियों से जड़े हुए सुन्दर चौबारे ऐसे बने हैं, मानो कामदेव ने अपने हाथ से संवारा है।

दो०—सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुबास।
पलंग मंजु मनिदीप जहं सब बिधि सकल सुपास॥ ८८॥

ऐसे राजमहल में पवित्र, सुन्दर, विचित्र और सुन्दर भोग पदार्थ धरे हुए, कोमल पलंग बिछे मणियों के दीपक जल रहे हैं जहां सब प्रकार से सबको सुख है॥ ८८॥

बिबिध बसन उपधान तुराईं। छीर फेन मृदु बिसद सुहाईं॥
तहं सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मदु हरहीं॥

और अनेक भांति के वस्त्र, ताकिया, तोषक जो दूध के फेन के समान कोमल उज्जवल और सुन्दर हैं। वहां सीताजी और रामजी रात्रि में शयन करते रहे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के अभिमान को दूर करते रहें।

ते सिय रामु साथरी सोए। श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥

वे सीता और रामजी थके हुए बिना वस्त्र साथरी पर ऐसे सो रहे हैं कि देखे नहीं जाते। माता-पिता, परिवार, नगरवासी अच्छे स्वभाव वाले मित्र दास और दासी।

जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥

प्राण की भांति जिनकी रक्षा करते रहे, वही स्वामी रामजी आप पृथ्वी पर सो रहे हैं, जिनके पिता जनकजी हैं, जिनका प्रभाव जगत में प्रसिद्ध है और श्वसुर इन्द्र के सखा दशरथजी हैं।

रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू॥

रामचन्द्रजी पति हैं वही जानकी पृथ्वी पर सो रही हैं विधाता किसको वाम नहीं होता ? सीता और रामजी क्या वनवास के योग्य हैं कि लोग सत्य कहते हैं कर्म प्रधान है।

दो०—कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह॥ ८९॥

मन्दबुद्धि कैकेयी ने बड़ा खोटापन किया कि जिससे रघुनन्दन और जानकीजी को सुख के समय में दुःख दिया॥ ८९॥

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी॥
भयउ बिषादु निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी॥

सूर्यवंश-रूपी वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी हो गई। इसकी कुमति ने सब जगत् को दुःखी कर दिया। राम और सीता को पृथ्वी पर शयन करते हुए देख, निषाद का मन बड़ा ही दुःखी हुआ।

बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति-रस में सनी हुई मधुर और कोमल वाणी से बोले। हे भाई! किसी को कोई दुःख देने वाला नहीं है। सब अपने किये हुए कर्मों को भोगते हैं।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहं लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू॥

योग-वियोग, भले-बुरे का भोग, भलाई-बुराई, हित-अनहित, मध्यम ये सब केवल भ्रम के जाल हैं। संसार एक जाल है, उसमें जहां तक जन्म-मरण, विपत्ति कर्म और काल है।

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहं लगि ब्यवहारू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥

और पृथ्वी, धाम, धन, पुर, परिवार, स्वर्ग-नरक आदि जहां तक व्यवहार हैं—देखने, सुनने और मन से विचार करने में सब माया की रचना है, इसमें परमार्थ कुछ भी नहीं है।

दो०—सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियं जोइ॥ ९०॥

जो सपने में राजा भिखारी हो जाय, भिखारी इन्द्र हो जाय, परन्तु जागने पर लाभ और हानि कुछ नहीं होती। ऐसे ही जगत के इन सब प्रपंचों को मन में मिथ्या जानना चाहिए॥ ९०॥

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥
मोह निसां सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

ऐसा विचार कर क्रोध न करना चाहिए और किसी को वृथा दोष भी न देना चाहिए। निषाद ने कैकेयी को दोष दिया था। लक्ष्मणजी ने उसका उत्तर यह दिया। सब मोहरूपी रात्रि में सोने वाले हैं और अनेक प्रकार का स्वप्न देखा करते हैं।

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

इस जगत-रूपी रात्रि में योगीजन जागते हैं, जो मोक्ष चाहने वाले और प्रपंच वियोगी हैं संसार-रूपी रात्रि में तभी इस जीव को जागा हुआ जाने। जब सब विषय-भोग में विरक्त हो जाय।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥

जब ज्ञान होता है, अज्ञान तथा भ्रम दूर हो जाता है तब रघुनाथजी के चरणों में अनुराग होता है। हे सखा! सबसे बढ़कर तत्व यह है कि मन, कर्म और वचन से रामचन्द्रजी के चरणों में स्नेह हो।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

रामजी ब्रह्म परमार्थ-स्वरूप हैं, अविगत, अलख, अनादि, अनूप, जिनके समान दूसरा कोई नहीं है। सब विकार से रहित, भेद-भाव जिनमें नहीं और निज को वेद नेति-नेति कह निरूपण करते हैं।

दो०—भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥ ९३॥

भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गऊ देवता इनके निमित्त मनुष्य का शरीर धारण करके चरित्र करते हैं। उन चरित्रों को सुनने से जगत का जाल मिट जाता है॥ ९१॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल सुखदारा॥

हे सखा! ऐसा समझ और मोह को छोड़ सीता और राम के चरणों में प्रीति करो। रामचन्द्रजी के गुण कहते हुए सवेरा हो गया। जगत को मंगल देने वाले प्रभु जागे।

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥

तब शौच क्रिया करके रामजी ने स्नान किया, फिर सुजान प्रभु ने पवित्र वट दूध मंगाया। लक्ष्मण सहित प्रभु ने दुग्ध से सिर पर जटा बनाई। यह देख सुमन्त के नेत्रों में जल भर आया।

हृदयं दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम कें साथा॥

हृदय में जलन उत्पन्न होने लगी। मुख बहुत उदास हो गया। हाथ जोड़ अत्यन्त दीन होकर कहने लगे कि हे नाथ! दशरथजी ने मुझसे ऐसा कहा है कि रथ लेकर राम के साथ जाओ।

बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी। संसय सकल संकोच निबेरी॥

वन दिखा और गंगाजी का स्नान कराकर दोनों भाइयों को जल्दी से वापस लाओ। पहले बेसुध में मुझसे भाइयों को फेर लाने को कहा और जब स्मरण हुआ, तब फिर कहा कि सब संशय और संकोच को दूर करके लक्ष्मण राम और सीता को फेर लाओ।

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइं जस कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ॥ ९२॥

हे स्वामी! बलि जाऊं, महाराज ने ऐसा कहा है आप जैसा कहिए वैसा करूं। ऐसे कह और विनती करके सुमन्त रामचन्द्रजी के चरणों में गिर पड़े और दीन बालक की भांति रोकर कहने लगे॥ ९२॥

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा॥

हे तात! अब कृपा करके ऐसा विचार कीजिए, जिससे अवध अनाथ न हो। रामजी ने मन्त्री को उठाकर समझाया कि—हे तात! तुमने सब धर्म को शोध डाला है, धर्म की ऐसी कोई बात नहीं है जो तुमसे छिपी हो।

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥

शिवि, दधीचि, मुनि, हरिश्चन्द्र ने धर्म के निमित्त करोड़ों क्लेशों को सहन किया है। परम चतुर राजा रतिदेव और राजा बलि अनेकों संकट सहकर धर्म को धारण किये रहे।

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूं पुर अपजसु छावा॥

सत्य के बराबर दूसरा धर्म नहीं है, यह वेद शास्त्र और पुराणों में भी कहा गया है, मैंने उसी धर्म की सुलभ रीति से पाया है, उसे छोड़ने से तीनों लोक में अपयश छा जायगा।

संभावित कहुं अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊं। दिएं उतरु फिरि पातकु लहऊं॥

प्रतिष्ठित, यशस्वी और समर्थ पुरुष को अपयश मिलना करोड़ों मरण के समान दुःख दायक होता है। हे तात! तुमसे बहुत क्या कहूं, क्योंकि बारंबार उत्तर देने से पाप का भागी होता हूं।

दो०—पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि॥ ९३॥

हमारी ओर से पिताजी का चरण पकड़ कोटि भांति से कहकर और हाथ जोड़ विनती करना कि पिता! आप किसी बात की मेरो चिन्ता मत कीजिए॥ ९३॥

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करउं तात कर जोरें॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें॥

फिर तुम भी मेरे पिता के समान हितकारी हो। हे तात! तुमसे भी हाथ जोड़ विनती करता हूं, तुमको भी सब भांति से वही करना चाहिए जिसमें हमारे ख्याल से पिताजी दुःख न पावें।

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥

रामचन्द्रजी और सुमन्त के संवाद को सुन परिवार सहित निषादराज व्याकुल हो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़ुई बात कही, तब प्रभु ने बहुत अनुचित जानकर उन्हें रोक दिया।

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन संदेसु कहिअ जनि जाई॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप संदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपति कलेसू॥

रामचन्द्रजी ने सकुचाकर मन्त्री को अपनी सौगन्ध दिलाई और कहा लक्ष्मण का संदेशा जाकर मत कहना, फिर सुमन्त ने राजा का संदेशा कहा कि सीता वन का क्लेश नहीं सह सकेंगी।

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥

हे रघुनाथ! सीता जिस प्रकार अवध में लौट आवे, वही तुमको करना चाहिए। नहीं तो बिल्कुल सहारा न होने से मैं नहीं जिऊंगा, जैसे जल बिन मछली नहीं जीती है।

दो०—मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहां मनु मान।
तहं तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान॥ ९४॥

माइके (नैयर) और ससुराल में सब सुख हैं, जब जहां मन माने, तब तहां सीता सुख से रहें, जब तक चौदह वर्ष की विपत्ति दूर न हो॥ ९४॥

बिनती भूप कीन्ह जेहि भांती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितु संदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥

राजा ने जिस भांति विनती की है, वह दीनता और प्रीति मुझसे कही नहीं जा सकती है। मन्त्री के मुख से पिता का संदेशा सुन रामजी ने सीताजी को अनेक प्रकार की शिक्षा दी।

सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खभारू॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥

जो तुम लौट जाओगी तो सासु, ससुर, गुरु, विप्रजन और सम्पूर्ण कुटुम्बियों का क्षोभ मिट जायेगा। पति के वचन सुन सीताजी बोली कि- हे प्राणपति! हे परम स्नेही! मेरी विनती सुनो।

प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छांह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहं भानु बिहाई। कहं चंद्रिका चंदु तजि जाई॥

हे प्रभु! आप तो दयालु और बड़े विचारवान हो, शरीर को छोड़कर छाया कैसे रोकी जा सकती है? सूर्य को छोड़ प्रभा कहां जाये, चन्द्रमा को छोड़ के चांदनी कहां जाय?

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउं फिरि अनुचित भारी॥

पति को प्रेम सहित विनय सुनाकर, फिर मन्त्री सुमन्त को सुहावने वचन कहने लगी कि तुम पिता और ससुर के समान हित करने वाले हो, तुमको उत्तर दूं तो फिर बड़ी अनुचित बात है।

दो०—आरति बस सनमुख भयउं बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहां लगि नात॥ ९७॥

विपत्ति के वश आपके सम्मुख हुई हूं। हे तात! विलग मत मानना, आर्यपुत्र श्री रामचन्द्रजी के चरणाविन्द के बिना जहां तक नाता है वह सब वृथा है॥ ९५॥

पितु बैभव बिलास मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा॥
सुखनिधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें॥

पिता के ऐश्वर्य का आनन्द मैंने देखा, जहां राजाओं के मणि जड़ित मुकुट चरण-पीठ में घिसे जाते हैं। ऐसे सुख का स्थान मेरे पिता का घर है, परन्तु पति के बिना मेरे मन को वह भूलकर भी नहीं सुहाता।

ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसनु देई॥

और मेरे ससुर चक्रवर्ती अयोध्या के महाराज हैं जिनका प्रताप चौदह भुवन में प्रसिद्ध हैं, जिनको राजा इन्द्र आगे आकर लेता है और आधे सिंहासन पर आसन देता है।

ससुरु एतादृश अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुं सुखद न लागा॥

ऐसे ससुर और अवधपुर का निवास, प्यारा कुटुम्ब और माता के समान सास है, परन्तु रघुनाथजी के चरणाविन्द की रज के बिना मुझको कोई स्वप्न में सुख देने वाला नहीं लगता।

अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥

कठिन पंथ, वन की पृथ्वी, पहाड़, हाथी, सिंह तालाब जो अनेक प्रकार की नदियां, कोल, किरात, हरिण और पक्षी सब प्राणपति के साथ मुझको सुख देने वाले हैं।

दो०—सासु ससुर सन मोरि हुंति बिनय करबि परि पायं।
मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायं॥ ९८॥

मेरी ओर से पांव पकड़कर सास और ससुर से विनती करना कि – मेरा कुछ सोच न कीजिए। मैं वन में सुखी हूं। मुझे वन बहुत अच्छा लगता है॥ ९६॥

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरें धनु भाथा॥
नहिं मग श्रमु प्रभु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें॥

धनुष और तरकस धारण किये हुए प्राणनाथ और प्यारे देवर लक्ष्मण मेरे साथ हैं। जो वीरों में धुरन्धर हैं। मार्ग का श्रम, भ्रम और दुःख मेरे मन में कुछ न होगा, मेरे लिए भूल कर भी सोच मत कीजिए।

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयब बिकल जनु फनि मनि हानी॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥

सीताजी की शीतल वाणी सुन सुमन्त ऐसे व्याकुल हुए, मानो सांप की मणि खो गई हो। नेत्रों में सूझा नहीं, कानों से सुनाई नहीं दिया, कुछ कह न सके, अत्यन्त व्याकुल हो गये।

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भांती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनंदन दीन्हे॥

रामजी ने बहुत भांति समझाया तो भी उनको छाती ठण्डी नहीं होती थी। सुमन्त ने साथ में चलने के लिए बहुत उपाय किया, पर रामजी ने सबका यथोचित उत्तर दे दिया।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई॥
राम लगन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवांई॥

रामजी की आज्ञा मेटी नहीं जा सकती। कर्म गति कठिन है, उससे कुछ वश नहीं चलता। राम, लक्ष्मण और सीताजी के चरणों पर सिर नवा सुमन्त लौटे, मानो बनिये ने अपनी पूंजी भी गंवा दी।

दो०—रथु हांकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं॥ ९९॥

सुमन्त ने रथ को हांका, तो घोड़े रामजी को देखकर हिनहिनाने लगे। यह देखकर निषाद दुःख के वश हो, सिर धुन-धुनकर पछताने लगा॥ ९७॥

जासु बियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए॥

निषादराज पछताते थे कि जिस प्रभु के वियोग से अश्व ऐसे व्याकुल हो रहे हैं, तो उनके प्रजा और माता-पिता कैसे जीवित रहेंगे? रामजी ने बलपूर्वक से सुमन्त को लौटा दिया और गंगाजी के किनारे पर चले गये।

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुं सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥

और नाव मंगाई, तो केवट नहीं लाया और कहने लगा कि तुम्हारा भेद जानता हूं। आपके चरण-कमल की जर को सब लोग कहते हैं कि मनुष्य बनाने की एक अनोखी जड़ी है।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥

जिस चरण-रज को छूते ही शिला सुन्दर स्त्री हो गई पत्थर से काठ बहुत कठोर नहीं है। मेरी नाव भी स्त्री होकर उड़ जाय तो फिर मेरा क्या होगा?

एहिं प्रतिपालउं सबु परिवारू। नहिं जानउं कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

इसी से सब परिवार का पालन करता हूं और दूसरा गुण कुछ नहीं जानता। हे प्रभु! आप अवश्य पार जाना चाहते हो, तो मुझको अपने चरण-कमल को धोने की आज्ञा दीजिए।

छं०—पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुं लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥ ४ ॥

आपके चरण-कमल धोकर तब आपको नाव पर चढ़ाऊंगा। और हे नाथ! उतराई नहीं चाहता हूं। हे राम! मुझको आपकी आनि और दशरथजी की सौगन्ध है। सब सच कहता हूं। चाहे लक्ष्मणजी तीर मारें, परन्तु जब तक चरण नहीं धो लूंगा, तब तक हे नाथ! हे कृपालु! [illegible] पार नहीं उतारूंगा॥ ४॥

सो०—सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥ ४॥

केवट के प्रेम लपेटे और अटपटे वचन सुनकर दया के अवतार रामचन्द्रजी जानकीजी और लक्ष्मणजी की ओर देखकर हंसे॥ ४॥

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥

दया के समुद्र रामचन्द्रजी मुस्कराकर केवट से बोले कि वही करो, जिससे नाव न उड़ जाये। शीघ्र जल लाकर पांव धो लो, देर हो रही है, हमें गंगाजी पार उतारो।

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥

जिस प्रभु का नाम एक बार स्मरण करने से मनुष्य अपार भवसागर से पार उतर जाते हैं, वही दयालु केवट से निहोरा करते थे। जिस प्रभु ने वामन अवतार लेकर जगत को तीन पग से भी थोड़ा किया।

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहं मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥

रामचन्द्रजी के चरण-नख को देखकर गंगाजी प्रसन्न हुई, परन्तु प्रभु का वचन सुनकर मोह उनकी बुद्धि खींच गई, केवट श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर कठौते में पानी भर लाया।

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

बहुत प्रेम से आनन्द में मग्न हो, रामचन्द्रजी के चरण-कमल को धोने लगा। सब देवता फूल वर्षा कर सराहना करने लगे कि इसके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है।

दो०—पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥ १०१॥

प्रभु का चरण धोये और कुटुम्बियों के सहित चरणामृत पीकर और पितरों को पार करके फिर प्रसन्न हो, प्रभु को गंगा पार ले गया ॥ ६८ ॥

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता ॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥

नाव से उतरकर रामजी सीताजी गुह और लक्ष्मण सहित गंगाजी की रेती में खड़े हुए, केवट ने नाव से उतरकर दण्डवत किया, तब रामचन्द्रजी सकुचा गये कि इनको कुछ नहीं दिया।

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई ॥

पति के मन की बात को जानने वाली सीताजी ने प्रसन्न मन से अपनी मणि की अंगूठी तुरन्त उतार दी। कृपालु रामजी केवट से बोले कि उतराई लो। तब केवट ने अकुलाकर उनका चरण पकड़ लिया।

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी ॥

हे नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया। आज मेरा सब दोष मिट गया और दुःख व दरिद्रता-रूपी सन्ताप हो गया। बहुत काल मैंने मजूरी की। आज विधाता ने सब भरपूर मजूरी दे दी है।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा ॥

हे नाथ ! हे दीनदयालु ! आपके अनुग्रह से मुझको अब कुछ नहीं चाहिए। फिरती बार मझको जो कुछ दोगे, उस प्रसाद को सिर पर चढ़ा कर ले लूंगा।

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियं नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ॥ १०१ ॥

तब प्रभु रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ने बहुत कहा, परन्तु केवट ने कुछ नहीं लिया। तो करुणा-निधान रामजी ने उसको अपनी निर्मल भक्ति का वर देकर विदा किया ॥ ६६ ॥

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा ॥
सियं सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥

अब केवट विदा हो गया, तब रघुनाथजी ने गंगा स्नान कर पार्थिवेश्वर की पूजा करके उनको मस्तक नवाया। सीताजी ने गंगाजी से हाथ जोड़कर कहा कि—हे माता ! तुम मेरा मनोरथ पूरा करना।

पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी ॥
सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी ॥

जिससे पति और देवर के संग कुशल से आकर फिर तुम्हारी पूजा करूं। प्रेम रस से भरी हुई सीताजी की विनती सुनकर निर्मल जल में से सुन्दर वाणी हुई।

सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥

हे रघुनाथ जी की प्यारी जानकी जी! सुनो, तुम्हारे प्रभाव को संसार में कौन नहीं जानता। तुम्हारी दया-दृष्टि से लोकपाल होते हैं। सब सिद्धियां हाथ जोड़े हुए तुम्हारी सेवा करती रहती हैं।

तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥

तुमने मेरी जो बड़ी विनती की, सो कृपा करके मुझको बड़ाई दी है, तो भी हे देवि! तुम्हारी वाणी सफल होने के निमित्त आशीश देती हूं कि

दो०—प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥ १००॥

प्राणनाथ रामचन्द्र जी, देवर लक्ष्मण जी सहित कुशल से अयोध्या में आओगी और तुम्हारी सब मनोकामना पूरी होगी तथा जगत् में सुयश फैल जायेगा॥ १००॥

गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥

गंगाजी का मंगलदायक वचन सुन और उनको अनुकूल जान, सीताजी बहुत प्रसन्न हुई, तब प्रभु ने गुह से कहा कि घर जाओ, सो सुनते ही उसका मुख सूख गया और मन में बड़ा दुःख हुआ।

दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई॥

गुह हाथ जोड़कर दीन वचन से कहने लगा कि हे रघुवंश-मणि! मेरी विनय सुनिये। हे नाथ! आपके साथ रह और मार्ग दिखलाकर चार दिन चरण की सेवा करूं।

जेहिं बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई॥
तब मोहि कहं जसि देब रजाई। सोइ करिहउं रघुबीर दोहाई॥

और जिस वन में जाकर आप रहेंगे, हे रघुनाथजी! मैं वहां सुन्दर पर्णकुटी बनाऊंगा, तब मुझको आप जो आज्ञा देंगे वही करूंगा, मुझे रघुवीर की दुहाई है।

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदयं हुलासू॥
पुनि गुहं ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥

रामजी ने उसका साधारण प्रेम देख हृदय में प्रसन्न हो गुह को अपने संग में ले लिया। फिर गुह ने अपने सब सम्बन्धियों को बुला और सबको समझाकर विदा किया।

दो०—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥ १०१ ॥

तब गणेश और शिवजी का स्मरण कर प्रभु ने गंगाजी को मस्तक नवाया, फिर सखा गुह, अनुज लक्ष्मणजी और सीताजी सहित रघुनाथजी वन को चले ॥ १०१ ॥

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखां सब कीन्ह सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥

उस दिन पेड़ के नीचे वास हुआ। लक्ष्मणजी और गुह ने रहने का सब प्रबन्ध किया। प्रातःकाल होते ही प्रातःकृत्य करके प्रभु रघुनाथजी ने तीर्थराज के दर्शन किये।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भंडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारु ॥

राजाओं के यहां मन्त्री आदि भी होते हैं, जो रूपक अलंकार करके दर्शाया गया है। कि तीर्थराज के यहां जो सत्य है वह मन्त्री है श्रद्धा जो है सो प्यारी नारी रानी है। माधव सरीखे हितकारी मित्र हैं, चार पदार्थ से भण्डार भरा हुआ पृथ्वी भर के पुण्य प्रदेश है।

छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुं नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा ॥

तीर्थ का क्षेत्र ही अगम दृढ़ और सुहावना गढ़ है, जिसको पाप-रूपी शत्रु स्वप्न में भी नहीं पा सकते। चालीस कोस के घेरे में जो सब तीर्थ हैं, वही प्रबल वीरों की सेना है जो पाप-रूपी शत्र सेना को मानने के लिए बड़ी रणधीर है।

संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा ॥
चवंर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा ॥

गंगा-यमुना का संगम वही वहुत सुहावना सिंहासन है, अक्षय वट क्षेत्र है जो मुनि के मन को मोहित करता है। यमुना और गंगाजी की तरंग श्याम और श्वेत हैं सो गंगा-जमुनी चंवर है जिसके दर्शन से दुःख दारिद्र दूर हो जाता है।

दो०—सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मनकाम।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम ॥ १०२ ॥

जो पुण्यात्मा पवित्र साधु-जन तीर्थजन का सेवन करते हैं, वे सब मनोकामना को पाते हैं। वेद, पुराण बन्दीजन जो तीर्थराज का निर्मल गुण-गान करते हैं ॥ १०२ ॥

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा ॥

प्रयागराज का प्रभाव कौन कह सकता है, जो पाप-रूपी हाथियों के समूह को नाश करने के लिए सिंह के समान है। ऐसे सुहावने तीर्थराज को देख सख के समुद्र रामजी को बड़ा सुख मिला।

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई ॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा ॥

सीता, लक्ष्मण और गुह को रामजी ने तीर्थराज की बड़ाई अपने मुख कहकर सुनाई। प्रणाम कर वन, बाग देखते और बड़े प्रेम के साथ माहात्म्य कहते हुए आगे चले।

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा॥

इसी प्रकार त्रिवेणी का दर्शन किया, जो सुमिरन करते ही सुन्दर मङ्गल को देने वाली है। यहां प्रसन्नतापूर्वक स्नान कर शिवजी की पूजा की और यथाविधि तीर्थ के देवताओं का पूजन किया।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दंडवत मुनि उर लाए॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥

तब प्रभु भारद्वाज मुनि के पास आये। दण्डवत् करते ही मुनि ने उन्हें हृदय से लगा लिया। मुनि के मन में जो आनन्द हुआ सो कहा नहीं जाता, मानो ब्रह्मानन्द की राशि मिल गई।

दो०—दीन्ह असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुं किए बिधि आनि॥ १०३॥

मुनिश्वर ने आशीर्वाद दिया और उनके हृदय में बड़ा ही आनन्द बढ़ा। ऐसा जान अति आनन्द हुआ कि ब्रह्मा ने पुण्य का फल लाकर नेत्रों के सम्मुख उपस्थित कर दिया॥ १०३॥

कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुं अमी के॥

कुशल पूछकर आसन दिया, फिर प्रेम से पूजन कर परिपूर्ण किया, फिर सुन्दर कन्द, मूल, अंकुर मानो अमृत के कुञ्ज हों, मुनि ने लाकर भगवान को भेंट दिया।

सीय लखन जन सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए॥
भए बिगतश्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥

सीता, लक्ष्मण और गुह के सहित रामजी ने सुन्दर फल, फूल अत्यन्त प्रीति से खाये। मार्ग का परिश्रम दूर होने से रामजी सुखी हुए, तब भारद्वाज मुनि कोमल वचन बोले।

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥
सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥

आज हमारा तप, तीर्थ, यज्ञ सफल हुआ। आज हमारा तप, योग, वैराग्य सफल हुआ हे राम! आज आपका दर्शन करते ही सब शुभ साधनों का समूह सफल हो गया।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

लाभ की अवधि और आनन्द को अवधि आपका दर्शन है, आपके दर्शन से मेरी सब आशा पूरी हो गई। अब कृपा करके यही वर दीजिए कि आपके चरणों में मेरा स्वाभाविक स्नेह रहे।

दो०—करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुं नहीं किएं कोटि उपचार॥ १०४॥

कर्म, वचन और मन से छल छोड़कर जब तक जन (भक्त) तुम्हारा नहीं होता, तब तक कोटि उपचार करने पर भी स्वप्न में भी सुख नहीं होता॥ १०४॥

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भांति कहि सबहि सुनावा॥

मुनि के वचन सुनकर रामजी सकुचा गये, उनकी भाव-भक्ति और आनन्द से तृप्त हो गये। तब रामचन्द्रजी ने मुनि का सुन्दर सुयश अनेक भांति सबसे कह सुनाया।

सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥

हे मुनीश्वर! वही सब भांति से सब गुणों का घर है जिसे तुम आदर देते हो। भारद्वाज और रघुनाथजी परस्पर एक-दूसरे को प्रणाम करने लगे और जो वाणी से कहा न जाये। ऐसे सुख का अनुभव करने लगे।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए॥

यह समाचार पाकर प्रयाग के निवासी, ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी सब दशरथ जी के पुत्रों को देखने के लिए भारद्वाज जी के आश्रम में आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥

रामजी ने सबको प्रणाम किया और नेत्र का लाभ लेकर सब लोग प्रसन्न हुए। सब लोगों ने परम सुख पाकर आशीश दी और उनकी सुन्दरता की सराहना करते हुए लौट गए।

दो०—राम कीन्ह बिश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ॥ १०५॥

रामजी ने रात में वहीं विश्राम किया। प्रातःकाल प्रयाग में स्नान कर सीता लक्ष्मण और अपने भक्तजन के सहित प्रसन्नतापूर्वक मुनि को सिर नवाकर आगे चले॥ १०५॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहुं अहहीं॥

रामजी ने प्रेम सहित मुनि से कहा कि हे नाथ! कहिए हम किस मार्ग से होकर जावें भारद्वाज मुनि मन में हँसकर राम से कहने लगे कि तुमको सब मार्ग सुगम हैं।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित पचासक आए॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥

साथ के लिए मुनि ने अपने शिष्य को बुलाया तो उनकी आज्ञा सुन मन में प्रसन्न हो पचासों शिष्य आ गये। राम पर सबका प्रेम था। इस कारण सब कहने लगे कि मार्ग हमारा देखा है।

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदयं चले रघुराई॥

तब मुनि ने चार ब्रह्मचारियों को जिन्होंने बहुत जन्म तक सब अच्छा कर्म किया था रामचन्द्रजी के साथ कर दिया। प्रणाम कर ऋषि की आज्ञा पाकर हृदय में प्रसन्न होते हुए रघुनाथजी चले।

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥

गांव के निकट जब जाकर निकलते थे तो वहां स्त्री-पुरुष दौड़ उनका दर्शन कर लेते थे और जन्म लेने का फल पाकर सनाथ हो जाते फिर मन को प्रभु के संग भेजकर दुःखित हो लौट आते।

दो०—बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥ १०६॥

रघुनाथजी ने ब्रह्मचारियों को बहुत विनय करके विदा किया, तब वे मनोकामना पाकर लौटे। उतर कर यमुना जल से स्नान किया, जो उनके शरीर के समान श्याम वर्ण का था॥ १०६॥

सुनत तीरबासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥

यमुना के किनारे रहने वाले नर-नारी सुनते ही अपना काम छोड़कर दौड़े। लक्ष्मण, रामचन्द्रजी और जानकी की सुन्दरता को देख अपने भाग्य की बढ़ाई करने लगे।

अति लालसा बसहिं मन माहीं। नाउं गाउं बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महुं बयबिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥

सबके मन में बड़ी लालसा हुई, परन्तु नाम और ग्राम पूछने में सकुचाने लगे, कोई नाम-गांव पूछ नहीं सकता था जो उनमें बूढ़े और चतुर थे, उन्होंने युक्ति से राम को पहिचाना।

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी रायं कीन्ह भल नाहीं॥

उन्होंने सब कथा सबको सुनाई कि पिता की आज्ञा पाकर वन को चले। यह सुनकर दुःखी होकर सब पछताने लगे कि रानी और राजा ने अच्छा नहीं किया।

तेहि अवसर एक तापसु आवा। तेजपुंज लघुबयस सुहावा॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥

उस समय एक तपस्वी आया, जो छोटी अवस्था का सुन्दर था। जिसकी गति को कवीश्वर भी नहीं जानते। बैरागी के वेष में मन, वचन और कर्म से भगवान में प्रीति करने वाला था।

दो०—सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥ १०७॥

नेत्रों में जल भरकर पुलकित शरीर अपने इष्टदेव को पहचान कर इस प्रकार पड़ गया, जैसे दंड पृथ्वी पर पड़ता है, सो दशा बखानी नहीं जाती ॥ १०७ ॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारसु पावा ॥
मनहुं प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ ॥

श्री रामजी ने प्रेम सहित पुलकित हो, हृदय से लगा लिया। मानो बड़े कंगाल को पारस मणि मिल जाये। मानो स्नेह और परमार्थ दोनों शरीर धारण कर मिले। ऐसा सब लोगों ने कहा।

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा ॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा ॥

फिर वह लक्ष्मणजी के पांवों से लगा, उन्होंने अनुराग में उमंग कर उठा लिया, फिर सीताजी के चरणों की धूलि मस्तक से लगाई, उन्होंने बालक जानकर आशीर्वाद दिया।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही ॥
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा ॥

केवट ने भी उसे दण्डवत किया, रामचन्द्र जी का प्रेमी जानकर प्रेम से मिला। नयनरूपी अमृत पीने लगा, जैसे भूखा अच्छा भोजन पाकर प्रसन्न होता है।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥
राम लखन सिय रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी ॥

कहो सखी ! वे माता पिता कैसे हैं जिन्होने ऐसे सुन्दर बालकों को वन में भेज दिया। राम, लक्ष्मण और सीता जी का रूप देख सब नर-नारी सोच और स्नेह से व्याकुल हो गये।

दो०—तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावनु दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि भवन गवनु तेइं कीन्ह ॥ १०८ ॥

तब रघुनाथ जी ने अनेक प्रकार से गुह को शिक्षा दी कि घर जाओ, तो रामचन्द्रजी की आज्ञा सिर पर चढ़ाकर उसने अपने घर को गमन किया ॥ १०८ ॥

पुनि सियं राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई ॥

फिर सीता-राम और लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर यमुनाजी को बारम्बार प्रणाम किया, अनन्तर सीता सहित दोनों भाई प्रसन्नता से यमुनाजी की बढ़ाई करते चले।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें ॥

मार्ग में जाते हुए अनेक बटोही मिले और दोनों भाइयों को देखकर प्रेम से कहने लगे कि तुम्हारे अंग में सुन्दर राज-लक्षण देखकर हमारे मन में बड़ा सोच होता है।

मारग चलहु पयादेहि पाएं। ज्योतिषु झूठ हमारे भाएं ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महं साथ नारि सुकुमारी ॥

मार्ग में नंगे पांव चलते हो, हमारी समझ में सब ज्योतिष झूठ ही है, जिसमें दूसरों की गति नहीं। ऐसा मार्ग जिसमें बड़े-बड़े पर्वत और सघन वन हैं उसमें तुम्हारे साथ एक सुकुमारी स्त्री है।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम संग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहां लगि तहं पहुंचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई॥

वन में हाथी और सिंह ऐसे भयंकर हैं जो देखे नहीं जाते, यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें, जहां तक जाओ वहां तक पहुंचाकर फिर तुमको सिर नवाकर लौट आयेंगे।

दो०–एहि बिधि पूंछहिं प्रेम बस पलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु तेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन॥ १०९॥

जब इस प्रकार प्रेमवश पुलकित शरीर, नेत्रों में जलकर पूछे, तब कृपा-सिन्धु रामजी नम्र और कोमल वचन कहकर उनको लौटा दें॥ १०९॥

जे पुर गांव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृतीं केहि घरीं बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥

जो पुर और गांव में बसे थे, उनकी नागलोक और देवलोक सराहना करें। किस पुण्यात्मा ने किस शुभ घड़ी में ये पुरी और गांव बसाये थे। वे धन्य हैं, पुण्य से भरे और बड़े शोभायमान हैं।

जहं जहं राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहि सराहहि सुरपुरबासी॥

जहां-जहां रामजी के चरण चलकर जावें, उस स्थान के समान अमरावती भी नहीं है। मार्ग के निकट रहने वाले बड़े पुण्यात्मा हैं, उनकी देवलोकवासी भी बड़ाई करते हैं।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि। सीता लखन सहित घनस्यामहि॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं॥

जो नयन भरकर सीताजी लक्ष्मण राम घनश्याम समेत इन तीनों को देखे। जिस-जिस तालाब और नदियों में रामजी स्नान करें, उनकी सराहना देवसर और देवसरित भी करें।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥

जिस वृक्ष के नीचे प्रभु जाकर बैठें, उसकी बड़ाई कल्पवृक्ष भी करते थे। रामचन्द्रजी के चरण-कमलों की रज छूकर भूमि अपना बड़ा भाग्य मानती थी।

दो०–छांह करहिं घन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं॥ ११०॥

प्रभु के ऊपर मेघ छाया करें, देवता लोग फूल बरसायें और प्रसन्न हों। इस प्रकार पर्वत, वन, पक्षी, और मृग देखते हुए रामजी मार्ग में चले जा रहे थे॥ ११०॥

सीता लखन सहित रघुराई। गांव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाजु बिसारी॥

सीता लक्ष्मण समेत रामचन्द्रजी जब गांव के निकट जा निकले, तब सब बालक, बूढ़े स्त्री-पुरुष तुरन्त घर का काम छोड़कर देखने को चल दें।

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥

राम लक्ष्मण और सीताजी के रूप को देख नेत्र का फल पाके सुखी हो जाये। नेत्रों में जल भर आया, शरीर पुलकित हो गया, दोनों वीरों को देखकर सब लोग मगन हो गये।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥

वन की दशा कही नहीं जा सकती, मानो कङ्गालों को देवमणि की ढेरी मिल गई। एक को एक सिखा रहे थे कि इस समय क्षण भर तो नेत्रों का लाभ ले लो।

रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं संग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

रामजी को देखकर कितने एक ऐसे मन में मगन हो गये कि देखते हुए संग चले जाते थे। कितने एक मार्ग में प्रभु की छवि अपने हृदय में लाकर तन, मन और वाणी से भली-भांति शिथिल हो जाते थे।

दो०—एक देखि बट छांह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवांइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात॥ १११॥

कितने एक लोग वट की अच्छी छाया देख कोमल घास, पत्ते बिछाकर कहें कि महाराज! क्षण भर यहां मार्ग की थकावट दूर कीजिये, फिर कभी चले जाइएगा या सवेरे उठकर जाइयेगा अथवा क्षण भर श्रम गंवाइये, आज ही जाइयेगा कि प्रातःकाल जाइयेगा॥ १११॥

एक कलस भरि आनहिं पानी। अंचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुसील बिसेषी॥

कोई कलश भरकर जल लावें और कोमल वाणी से कहें कि हे नाथ! जल पीजिए। परम दयालु और सुशील प्रभु ने उनके प्रिय वचन को सुनकर अत्यन्त प्रीति से देखा।

जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥

मन में सीताजी को थकी हुई जान कर वट की छाया में घड़ी भर विश्राम किया। स्त्री-पुरुष प्रसन्न हो, शोभा देखने लगे और अनुपम रूप में नेत्र और मन लुभा गए।

एकटक सब सोहहिं चहुं ओरा। रामचंद्र मुख चंद चकोरा॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥

रामचन्द्रजी के मुख रूपी चन्द्रमा को चकोर की भांति चारों ओर से एकटक देखते हुए सब सुशोभित हो रहे थे। नवीन तमाल वृक्ष के समान श्याम-वर्ण प्रभु का शरीर शोभायमान था, जिसको देखते ही करोड़ों का मन मोहित हो जाता था।

दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥
मुनिपट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा॥

बिजली के समान बहुत अच्छा वर्ण लक्ष्मणजी का जो नख शिखा पर्यन्त सुन्दर और मन को प्रिय लगता था। मुनियों के वस्त्र बल्कल भोजपत्र धारण किये हुए कटि में तरकश कसे कमल समान हाथों में धनुष-बाण लिए शोभायमान हैं।

दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल॥ ११२॥

राम-लक्ष्मणजी दोनों के सिर पर जटाओं के मुकुट शोभा दे रहे थे। छाती, भुजायें और विशाल नेत्र और शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख पर पसीने के बिंदुओं का समूह शोभायमान हो रहा था॥ ११२॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥
राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥

राम-लक्ष्मण को मनोहर जोड़ी वरणी नहीं जाती, क्योंकि शोभा बहुत है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। राम-लक्ष्मण और सीता जी को सुन्दरता को सब लोग मन, बुद्धि और चित्त लगा रहे थे।

थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुं मृगी मृग देखि दिआ से॥
सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूंछत अति सनेहं सकुचाहीं॥

प्रेम के प्यासे स्त्री-पुरुष ऐसे थक गए, मानो मृगी, मृग दीपक देखकर चकित हो रहे हैं, जैसे हरिणी हरिण मृग तृष्णा का जल देखकर उसके पीछे दौड़ते-दौड़ते थक जाते हैं। सीताजी के समीप गांव की स्त्रियां जातीं, परन्तु अत्यन्त स्नेह के वश होकर कुछ पूछते हुए सकुचाती थीं।

बार बार सब लागहिं पाएं। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएं॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभायं कछु पूंछत डरहीं॥

सब बार-बार सीताजी के चरण छूने और परम सुहावने तथा कोमल वचन कहने लगी कि हे राजकुमारो! हम बिनती करती हैं, स्त्री स्वभाव से कुछ पूछते हुए डरती हैं।

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवांरी॥
राजकुअंर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत सोने॥

हे स्वामिनी! हमारी ढिठाई को क्षमा करना और हमको गंवारिन जानकर बुरा न मानना। ये दोनों राजकुमार स्वभाव से सलौने हैं, इनसे मर्कश मणि और सोने से भी तेज चमक पाई है।

दो०—स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥ ११३॥

सांवले और गोरे सुन्दर किशोर सुन्दर शोभा के स्थान हैं। शरद के पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख हैं, और शरद ऋतु के प्रफुल्लित कमल पत्रों के समान विशाल नेत्र हैं॥ ११३॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुं मुसुकानी॥

करोड़ों कामदेव को लज्जित करने वाले हैं। हे सुन्दर मुख वाली! कहो यह दोनों तुम्हारे कौन लगते हैं? स्नेह से भरी हुई उनकी प्यारी वाणी सुनकर सीताजी सकुचाकर मन में मुस्काईं।

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुं सकोच सकुचति बरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥

सुन्दर चरण वाली सीताजी इनकी ओर देख, पृथ्वी की ओर देखने लगीं और उत्तर देने और न देने दोनों संकोच से सकुचाती थीं। सकुचाकर प्रेम सहित बाल मृग नयनी! पिक बयनी! जानकीजी मधुर वचन बोलीं।

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढांकी। पिय तन चितइ भौंह करि बांकी॥

साधारण स्वभाव, सुन्दर और गोरे शरीर वाले हैं, इनका नाम लक्ष्मण है। यह मेरे छोटे देवर हैं। फिर अपना चन्द्रमुख आंचल से ढांप बांकी भौं कर और रामचन्द्रजी की ओर देखा।

खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियं सयननि॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं॥

खंजन के समान सुन्दर नेत्रों के तिरछे कटाक्ष से सीताजी ने उनको सैनों से पति को बताया। सीताजी की यह चतुरता देख, गांव की सब स्त्रियां ऐसी प्रसन्न हुईं मानो कङ्गालों ने रत्न की ढेरी लूट ली हो।

दो०—अति सप्रेम सिय पायं परि बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस॥ ११४॥

गांव की स्त्रियां बड़े प्रेम से सीताजी के चरणों को छूकर बहुत भ ति से उन्हें आशीर्वाद देने लगीं कि तुम सदा सुहागिन बनी रहो, जब तक यह पृथ्वी शेषनाग के सिर पर रहे॥ ११४॥

पारबती सम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी॥

पार्वतीजी के समान पति की प्यारी बनो, परन्तु हे देवी! हमारे ऊपर स्नेह है, सो न छोड़ना। बार-बार हाथ जोड़कर हम प्रार्थना करती हैं कि फिर इसी मार्ग से लौटो।

दरसनु देब जानि निज दासी। लखीं सीयं सब प्रेम पिआसी॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं॥

तो अपनी दासी जान हम सबको लौटती बार दर्शन देना। ऐसे वचन सुन सीताजी ने सबको प्रेम की प्यासी जाना और कोमल वचन कहकर सीताजी ने सबको समझाकर ऐसे सन्तुष्ट किया। मानो चांदनी रात्रि विकासी कमलिनी का पोषण करके उसको प्रफुल्लित कर दिया।

तबहिं लखन रघुबर रुख जानी। पूंछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी॥
सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥

उस समय लक्ष्मणजी ने रघुनाथजी की इच्छा जान, कोमल वाणी से वन का मार्ग लोगों से पूछा। सुनते ही सब स्त्री-पुरुष दुःखी हो गये। शरीर पुलकित हो गया और सबके नेत्रों में जल भर आया।

मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥

आनन्द जाता रहा, मन में ऐसे उदास हो गये मानो विधाता दी हुई सम्पत्ति छीन लेता है, पर कर्म की गति समझकर धीरज किया और सहज मार्ग खोजकर बतला दिया।

दो०—लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लइ मन साथ॥ ११५॥

राम-लक्ष्मण और जानकी समेत रघुनाथजी ने वन में गमन किया और प्यारे वचन कहकर सबको लौटा दिया, किन्तु उनके मन को अपने साथ में ले लिया॥ ११५॥

फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहि दोषु देहिं मन माहीं॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥

लौटती बार स्त्री-पुरुष बहुत पछताये और मन में विधाता को दोष देने लगे। दुःख के साथ आपस में कहने लगे कि विधाता के सब कर्तव्य उलटे हैं।

निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्हे सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा॥

विधाता पूर्ण निर्भय है, निष्ठुर है, किसी का डर नहीं, जिसने चन्द्रमा को रोगी और कलंकी किया, सब कामनाओं के देने वाले कल्पतरु को वृक्ष किया, रत्नदाता समुद्र को खारा किया, उसी विधाता ने इन राजकुमारों को भी वन में भेजा है।

जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥

जो इन्हीं को वनवास दिया तो विधाता ने भोग-विलास वृथा ही बनाया। ये मार्ग में बिना जूते नंगे पांव चलें, तो विधाता ने अनेक वाहन वृथा बनाये।

ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवलधाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥

ये पृथ्वी पर कुश पत्ता बिछाकर सोवें तो ब्रह्मा ने सुन्दर शैय्या क्यों बनाई, जो ब्रह्मा ने इनको वृक्ष के नीचे वास दिया तो सुन्दर घर बनाकर क्यों परिश्रम किया?

दो०—जौं ए मुनि पट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भांति भूषन बसन बादि किए करतार॥ ११६॥

जो यह सुन्दर और सुकुमार मुनिपट वल्कल मृग चर्म आदि धारण किये सिर पर जटा रखाये हैं, तो बिधाता ने विविध भांति के आभूषण, वस्त्र वृथा बनाये हैं॥ ११६॥

जौं ए कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए॥

जो ये कन्द-मूल और फल खाते हैं तो संसार में अमृत आदि भोजन वृथा है। एक कहने लगे कि ये स्वभाव से सुन्दर हैं आप ही प्रकट हुए हैं। ब्रह्माजी ने नहीं बनाया, विधाता ने नहीं रचा है।

जहं लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहं अस पुरुष कहां असि नारी॥

जहां तक वेद ने ब्रह्मा की करतूत कही है सो कान, नेत्र और मन से जानने योग्य कही है। चौदह भवन में खोजकर देखो ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्री कहां है ?

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥

इनको देख ब्रह्मा के मन में मोह हुआ, इन्हीं के समान बनाने लगे। बहुत परिश्रम किया परन्तु एक भी इनके समान न बन सका, तब उसने डाह करके इनको वन में ला छिपाया।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥

एक कहने लगे कि हम बहुत नहीं जानते हैं, हम तो अपने को परम धन्य करके मानते हैं और वे भी हमारे लिए पुण्यात्मा हैं, जो देखेंगे और जिन्होंने देखा है।

दो०—एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर॥ ११७॥

इसी प्रकार प्यारा वचन कहकर नेत्रों में जल भर लेते थे कि ये बहुत सुकुमार शरीर वाले वन के कठिन मार्ग में कैसे चलेंगे॥ ११७॥

नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकईं सांझ समय जनु सोहीं॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदयं कहहिं बर बानी॥

गांव की सब स्त्रियां स्नेह के वश ऐसी विकल हो गयीं, मानो सांझ के समय चकई व्याकुल हो रही है। कोमल चरण और कठिन मार्ग जान गदगद कण्ठ होकर हृदय से कोमल वाणी कहती थी।

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥

इनके कोमल और गुलाबी चरणों को छूते ही पृथ्वी ऐसे सकुचाती है, जैसे हमारा हृदय सकुचाता है। जो परमेश्वर ने इनको वन दिया, तो फूलों का ही मार्ग क्यों नहीं बनाया ?

जौं मांगा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आंखिन्ह माहीं॥
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए॥

जो ब्रह्मा के पास मांगे पाइये तो हे सखी ! इनको आंखों में रखिये। जो नर-नारी समय पर नहीं आये, वे सीता-राम को न देख सके।

सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहां लगि भाई॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई॥

दर्शन करने वालों ने स्वरूप की प्रशंसा की, सो सुन अकुलाकर पूछने लगे हे भाई! अभी कहां तक पहुँचे होंगे? उनमें जो सामर्थ्यवान थे, वे दौड़े, जाकर देख लें और आनन्दित हो, जन्म का फल पाकर लौट आवे।

दो०—अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहां जहं जाहिं॥ ११८॥

स्त्री, बालक और बूढ़े हाथ भींचते पछताते रह गये। जहां-जहां रामचन्द्र जी गये, वहां-वहां इसी प्रकार सब लोग प्रेम के वश में हो गये॥ ११८॥

गावं गावं अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं॥

सूर्यवंश रूपी कुमुदिनी को चन्द्रमा के समान रामचन्द्रजी को देखकर गांव-गांव में ऐसा ही आनन्द हो। जो लोग कुछ समाचार सुन पाते थे, वे महाराज दशरथ और कैकेयी पर दोष लगाते थे।

कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहि जोइ लोचन लाहू॥
कहहिं परसपर लोग लोगाईं। बातें सरल सनेह सुहाईं॥

एक कहता था कि महाराज बहुत अच्छे हैं, जिन्होंने हमको नेत्रों का लाभ दिया और आपस में स्त्री-पुरुष सीधे स्नेह भरी सुहावनी बातें कह रहे थे।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगरु जहां तें आए॥
धन्य सो देसु सैलु बन गाऊं। जहं जहं जाहिं धन्य सोइ ठाऊं॥

वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इनको जन्म दिया और वह नगर धन्य है जहां से ये आये हैं। वह देश, पर्वत, वन, बाग धन्य हैं जहां ये जाते हैं और वह स्थान भी धन्य है जहां ये ठहरते हैं।

सुखु पायउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भांति सनेही॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

ब्रह्मा ने उनको रचकर सुख पाया, जिसके ये सब भांति से स्नेही हैं। राम-लक्ष्मण और सीताजी की सुहावनी कथा सब मार्ग, वन में छा रही है।

दो०—एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत॥ ११९॥

इस प्रकार रघुवंश-रूपी कमल के सूर्य रामचन्द्रजी मार्ग के लोगों को सुख देते हुए सीताजी और लक्ष्मणजी समेत वन को देखते चले जाते थे॥ ११९॥

आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥

आगे-आगे रामचन्द्रजी पीछे-पीछे लक्ष्मणजी तपस्वी का वेष बनाये दोनों शोभायमान थे, दोनों के बीच में सीताजी कैसी सुहाती थीं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो।

बहुरि कहउं छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहउं जियं जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥

कवि कहते हैं कि जैसी छवि मन में बसी है उसकी उपमा फिर कहता हूं, मानो बसन्त और कामदेव के बीच रात सुशोभित है। फिर मन में खोजकर उपमा कहता हूं, मानो बुध चन्द्रमा के बीच रोहिणी शोभायमान है।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अंक बराएं। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएं॥

रामजी के चरणों की रेखा के बीच में सीताजी अपने चरण को रखती हुई मार्ग में भय सहित चलती थीं। सीता-रामजी के चरण चिन्ह को बचाते लक्ष्मणजी मार्ग में दाहिने बाएं चलते हैं।

राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोहीं॥

राम-लक्ष्मण और सीताजी की सुन्दर प्रीति में वाणी भी अगोचर है, फिर कैसे कही जा सकती है। पक्षी, मृग छवि देख मग्न हो जाते हैं, राम बटोही ने ऐसे ही सबके चित्त को चुरा लिया है।

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रह सिराइ॥ १२०॥

जिन-जिन ने प्यारे पथिक सीता समेत दोनों भाइयों को देखा, वे आनन्द के सहित बिना परिश्रम संसार रूपी कठिन मार्ग से पार हो गए॥ १२०॥

अजहुं जासु उर सपनेहुं काऊ। बसहुं लखनु सिय रामु बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुं मुनि कोई॥

अब भी कभी जिस किसी के हृदय में राम सीता लक्ष्मण बटोही वास करते हैं, वही रामजी के धाम वैकुण्ठ का मार्ग कभी-कभी कोई मुनिजन पा जाते हैं।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी॥
तहं बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥

तब रघुनाथजी सीताजी को थकी हुई जानकर वट-वृक्ष के निकट शीतल जल देखकर वहां ठहरे और कन्द-मूल फल खाया, फिर प्रातःकाल होते ही स्नान करके रघुनाथजी चल दिये।

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए॥
राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥

सुन्दर वन, सरोवर और पर्वतों को देखते रामजी बाल्मीकि मुनि के आश्रम में आये, रामजी ने मुनि का सुहावना वास स्थान देखा, जहां सुन्दर पर्वत, वन और पवित्र जल बह रहा था।

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥

सरोवर में कमल खिल रहे थे, वन में वृक्ष फूल रहे थे, सुन्दर भौंरे रस में भूले गुंजार रहे हैं। पक्षी, मृग आदि पशु बहुत कोलाहल कर रहे हैं और वैर-भाव छोड़ प्रसन्न मन से सब विचर रहे हैं।

दो०—सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउ लेन॥ १२१॥

पवित्र और सुन्दर आश्रम देखकर कमल-नयन रामजी अति प्रसन्न हुए। रघुनाथजी का आगमन सुनकर मुनि उन्हें लेने आये॥ १२१॥

मुनि कहुं राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने॥

मुनि को रामजी ने दण्डवत् किया, तब श्रेष्ठ ब्राह्मण बाल्मीकिजी ने आशीर्वाद दिया, रामजी छवि देख नेत्र ठण्डे हुए और सम्मान-पूर्वक आश्रम में ले आये।

मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मगाए॥
सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आश्रम दिए सुहाए॥

श्रेष्ठ मुनि बाल्मीकिजी ने जब प्राण-प्यारे अतिथि को पाया, तब आश्रम में आकर उन्हें सुन्दर आसन दिया। मुनि जी ने मीठे कन्द-मूल और फल मंगवाये, सो सीता लक्ष्मण और रामजी ने खाया।

बालमीकि मन आनंदु भारी। मंगल मूरति नयन निहारी॥
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई॥

मंगल-मूर्ति को देखकर बाल्मीकिजी के मन में बड़ा आनन्द हुआ। तब कमल-समान हाथ जोड़कर रामचन्द्रजी कानों को सुख देने वाले वचन बोले।

तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा॥
अस कहि प्रभु कथा बखानी। जेहि जेहि भांति दीन्ह बनु रानी॥

हे मुनिनाथ! तुम तीनों काल को जानने वाले हो, संसार बेर की भाँति तुम्हारे हाथ में हैं। ऐसे कहकर प्रभु ने सब कथा कही कि जिस भांति से उन्हें रानी ने बनवास दिया।

दो०—तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहुं दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ॥ १२२॥

पिता का वचन, फिर माता का हित, भरत ऐसे भाई को राज्य, मुझको आपका दर्शन, हे प्रभु! यह सब मेरे पुण्य का उदय हुआ, जिससे आपका दर्शन पाया॥ १२२॥

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहं राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥

हे मुनिराय! तुम्हारे चरण को देखकर हमारे सब सुकर्म सफल हुए। अब जब आपकी आज्ञा हो और कोई मुनि-जन दुःख न पावे क्योंकि—

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥

मुनि और तपस्वी जिससे दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही भस्म हो जाते हैं, ब्राह्मणों का सन्तोष ही मंगल की जड़ है और ब्राह्मणों का कोप करोड़ कुल को भस्म कर देता है।

अस जियं जानि कहिअ सोइ ठाउं। सिय सौमित्रि सहित जहं जाऊं॥
तहं रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥

ऐसा जी में जानकर वह स्थान बतलाइये कि, जहां सीताजी और लक्ष्मणजी के सहित जाऊं और वहां सुन्दर पल्लव तृण से कुटी बनाकर हे कृपालु! कुछ काल वास करूं।

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥

रामचन्द्रजी की स्वाभाविक तथा सीधी बात सुन ज्ञानी मुनि बाल्मीकिजी बोले कि हे राम! बहुत कठिन है, आपने अच्छा विचार किया है। हे रघुकुल के मर्यादा-रूप रामजी तुम ऐसा क्यों न कहो, तुम सदा वेदों का पालन करने वाले हो।

छं०—श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥ ५॥

हे राम! तुम वेद की मर्यादा के पालक और जगदीश्वर हो, जानकी तुम्हारी माया है कृपानिधान की इच्छा पा जगत् को सृजन, पालती और हरती हैं और जो हजार सिर वाले शेष जी पृथ्वी के धारण करने वाले हैं वही लक्ष्मणजी हैं, जो चराचर के स्वामी हैं, ऐसे आप देवताओं के कार्य निमित्त मनुष्यों में राजा का शरीर धारण कर दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने चले॥ ५॥

सो०—राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नित निगम कह॥ ५॥

हे राम! तुम्हारा स्वरूप, वचन, मन, और बुद्धि से परे हैं। मन से विचारने में नहीं आता। बुद्धि की वहां गति नहीं, जिसको वेद नेति-नेति कहते हैं॥ ५॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥

संसार एक दिखावा है उसको तुम देखने वाले हो और विधि, हरि, हर नचाने वाले हो। वे भी तुम्हारा भेद नहीं जानते हैं और तुमको जानने वाला कौन है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपां तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥

वही जानता है, जिनको तुम जना देते हो, फिर तुम्हें जानकर ही तुम्हारा हो जाता है। हे रघुनंदन! तुम्हारी कृपा से तुमको भक्तजन जानते हैं, क्योंकि तुम भक्तों के उर के चन्दन हो।

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥

तुम्हारी देह चिदानन्दमय है, विगत विकार है, इसलिए अधिकारी ही जानते हैं। मनुष्य शरीर तो देवताओं के कार्य निमित्त धारण करते हो। इस कारण प्राकृत साधारण राजाओं के समान कहते और उसी के अनुसार बर्ताव भी करते हो।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु सांचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥

हे राम! तुम्हारा चरित्र देख-सुनकर मूर्ख मोहित होते हैं और बुद्धिमान सुखी होते हैं। तुम जो कहते हो और करते हो, सो ठीक है जैसा रूप बनाइये, वैसा ही नाचना चाहिए।

दो०—पूंछेहु मोहि कि रहौं कहं मैं पूंछत सकुचाउं।
जहं न होहु तहं देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउं॥ १२३॥

तुमने मुझसे पूछा कि—'कहां रहूं' पर मैं पूछते हुए सकुचाता हूं क्योंकि जहां न हो वो वह कह दो आपको वही स्थान दिखला दूं॥ १२३॥

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुं मुसुकाने॥
बालमीकि हंसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥

मुनि के प्रेम-रस से भरे हुए वचन को सुनकर रामजी सकुचाकर मन में मुस्कराये। बाल्मीकिजी ने हंसकर फिर अमृत-रस से भरी हुई मधुर वाणी कही।

सुनहु राम अब कहउं निकेता। जहां बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥

सुनो रामचन्द्रजी! अब स्थान कहता हूं जहां सीताजी और लक्ष्मणजी सहित वास करो। जिनके कान समुद्र के समान हैं और उनमें जाने की तुम्हारी सुन्दर कथा अनेक नदी है।

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुं गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥

जैसे नदियां सदा समुद्र को भरती हैं, परन्तु वह पूरा नहीं होता। ऐसे ही तुम्हारी कथा सुनने से जिनके कान तृप्त नहीं होते। उनके हृदय में तुम्हारा मनोहर स्थान है। जिन्होंने अपने नेत्र को चातक कर रखा है और तुम्हारे दर्शन-रूपी मेघों की ही अभिलाषा किये रहते हैं।

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहि सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

जो चातक-रूपी भक्त अन्य अनेक रूप समुद्र, नदी और सरोवरों के जल का निरादर करके तुम्हारे स्वरूप-रूपी स्वाती जल की बूंद को पीकर सुखी होते हैं। उनके हृदय-रूपी स्थान में है सुखदायक रघनायक रघनाथ! सीता और लक्ष्मणजी सहित वास करो॥

दो०--जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियं तासु॥ १२४॥

तुम्हारा यश निर्मल मान-सरोवर है उस यश के वर्णन करने को जिसकी जीभ हंसिनी है वह तुम्हारे गुण-समूहरूपी मोतियों को चुगे, हे राम उनके हृदय में वास करो॥ १२४॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥

हे प्रभु! तुम्हारे पवित्र प्रसाद की सुन्दर सुगन्ध सादर जिसकी नासिका नित्य सूंघती है, तुमको निवेदन कर जो भोजन करते हैं और तुम्हारे प्रसाद के वस्त्र-भूषण धारण करते हैं।

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयं नहिं दूजा॥

देवता, गुरु और ब्राह्मण को देखकर प्रीति सहित विशेष विनती करके उनको जो सिर नवाते हैं। नित्य राम के चरण की पूजा करते और हृदय में उन्हीं का भरोसा रखते हैं और दूसरों का नहीं।

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा॥

चरण रामतीर्थ में चलकर जाते हैं। हे राम! उनके मन में वास करो तथा जो तुम्हारा मन्त्रराज राम नाम नित्य जपते हैं और कुटुम्ब सहित तुम्हारा पूजन करते हैं।

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवांइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियं जानी। सकल भायं सबहिं सनमानी॥

अनेक प्रकार से तर्पण और होम करते हैं तथा ब्राह्मणों को जिवाकर बहुत-सा दान देते हैं। तुमसे अधिक गुरु को अपने जी में जानकर सब भाव से भली-भांति सम्मान करते हैं।

दो०--सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥ १२५॥

और सब कार्यों का एक ही फल मांगते हैं कि रामजी के चरणों में प्रीति हो, उनके मन-मन्दिर में सीता रामजी दोनों वास करें॥ १२५॥

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥

काम, क्रोध, अहंकार, मान, मोह, लोभ, क्षोभ, राग और द्वेष नहीं है। जिनके मन में कपट, दम्भ और माया नहीं है, हे रघुनाथजी! उनके हृदय में वास करो।

सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥

जो सबको प्यारे, सबके हितकारी हैं। जिनको सुख-दुःख, प्रशंसा और गारी भी एक समान है तथा जो सत्य और प्रिय वचन विचार करते हैं और जागते-सोते में तुम्हारी शरण में रहते हैं।

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥

तुमको छोड़कर दूसरी गति जिनको नहीं हैं। हे राम! उनके हृदय में वास करो। जो पराई स्त्री को माता के समान जानते हैं और पराये धन को विष से अधिक विष समझते हैं।

जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

जो पराई सम्पत्ति को देख प्रसन्न होते हैं और पराई विपत्ति को देख बड़े दुःखी होते हैं। हे राम! जिनको तुम प्राण-समान प्यारे हो, उनके हृदय में तुम्हारा अच्छा स्थान है।

दो०--स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥ १२६॥

जिनके स्वामी, सखा, माता-पिता, गुरु, सब तुम्हीं हो, हे तात! उनके मन-मन्दिर में सीताजी सहित दोनों भाई वास करें॥ १२६॥

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥

जो अवगुण को छोड़ सबका गुण लेते हैं ओर ब्राह्मण तथा गौ के निमित्त संकट सहते हैं। नीति में चतुर पुरुष के बीच जिनकी जगत में गिनती है उनके मन में तुम्हारा अच्छा घर है।

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भांति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥

जो तुम्हारा गुण और अपना दोष समझे और जिनको सब भांति से तुम्हारा ही भरोसा है। राम-भक्त जिनको प्यारे लगें, उनके हृदय में सीता के सहित वास करो।

जाति पांति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयं रहहु रघुराई॥

जति-पांति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार घर के सब लोग इनको सबको छोड़ कर तुममें लौ लगाये रहे, हे रघुराई! उनके हृदय में वास करो।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहं तहं देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥

जिसको स्वर्ग, नरक और मोक्ष समान है। जिनको जहां-तहां धनुष-बाण धरे हुए तुम्हीं दीख पड़ते हो और मन, कर्म, तथा वचन से तुम्हारा सेवक है। हे राम! उसके हृदय में वास करो।

दो०--जाहि न चाहिअ कबहुं कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥ १२७॥

जिसको कभी कुछ न चाहिए और जिसको तुमसे सहज स्नेह है उसके हृदय में वास करो। वहीं तुम्हारा निज का घर है ॥ १२७ ॥

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए ॥
कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक। आश्रम कहउं समय सुखदायक ॥

इसी प्रकार मुनिवर बाल्मीजी ने स्थान दिखाया। प्रेम सहित वचन रामजी के मन में भाया, फिर मुनि कहने लगे कि भानुकुल नायक राम। अब समय के अनुसार सुखदायक आश्रम कहता हूं।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहं तुम्हार सब भांति सुपासू ॥
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू ॥

चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिए, वहां तुम्हें सब प्रकार से आराम रहेगा तथा सुहावना पर्वत और सुन्दर वन, जहां हाथी, सिंह, हरिण और पक्षी विहार करते हैं।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी ॥
सुरसरि धार नाउं मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि ॥

और वहां पुराणों में बखानी हुई पवित्र नदी मन्दाकिनी को अत्रि मुनि की स्त्री अनसूया अपने तप के बल से ले आई है, वह गंगाजी की धार है जिसका नाम मन्दाकिनी है और सब पातक-रूप बच्चों को डाकिनी के समान है।

अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं ॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू ॥

अत्रि आदि मुनिश्वर वहां वास करते हैं और योग, जप-तप, करके शरीर को कसते हैं, वहां चलो और उनका परिश्रम सफल करो तथा हे राम! चित्रकूट पर वास कर गिरिराज को भी बड़ाई दो।

दो०–चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ ॥ १२८ ॥

इस प्रकार महामुनि वाल्मीकि ने चित्रकट की बहुत-सी महिमा गाकर कही, तब सीता सहित दोनों भाई वहां आकर सुन्दर नदी मन्दाकिनी में नहाये ॥ १२८ ॥

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुं अब ठाहर ठाटू ॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुं दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥

रघुनाथजी ने कहा कि हे भैया लक्ष्मण! यह घाट अच्छा है और अब कहीं निवास स्थान की रचना करो। रामचन्द्रजी का वचन सुनकर लक्ष्मणजी ने जल के उत्तर वाला करार देखा तो उसके ओर जो नाला फिरा था वह धनुष के समान गोल दीख पड़ा।

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना ॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥

नदी मानों उस धनुष की प्रत्यंचा है शम, दम और दान वही मानो उसके बाण है और कलियुग के जो सब पाप है सो मृग आदि वन-जन्तु हैं। चित्रकूट मानो अचल अहेरी है जो दांव नहीं चूकता। एक ही मुठभेरी मार देता है।

अस कहि लखन ठाउं देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखाया। स्थान देखकर रघुनाथजी के मन में भाया। जो स्थान प्रभु को अच्छा लगा, जब देवताओं ने जाना कि रामजी का मन रम गया, तब वे लोग अपने प्रधान इन्द्र को साथ लेकर चले।

कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥

कोल, किरात और भीलों का भेष धरकर आये और पत्तों और तृणों घास आदि से रचकर सुन्दर घर बना दिया, जिसकी शोभा कही नहीं जा सकती। मनोहर दो कुटी बना दी, उसमें एक सुन्दर छोटी और एक बड़ी बनाई।

दो०-लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत॥ १२९॥

लक्ष्मण और जानकीजी सहित प्रभु रामजी उस पर्णकुटी में ऐसे शोभायमान हुए मानो कामदेव मुनि का वेष धारण किये हुए रति और ऋतुराज सहित शोभायमान हैं॥ १२९॥

अमर नाग किंनर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू॥

उस समय देवता, नाग, किन्नर और दिकपाल चित्रकूट में आये। रामचन्द्रजी ने सबको प्रणाम किया और देवता नेत्रों का लाभ पाकर प्रसन्न हुए।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज सदन सिधाए॥

देवताओं ने फूल बर्षाकर कहा कि हे नाथ! आज हम सनाथ हुए। विनती करके अपने कठिन दुःख को सुनाए और प्रसन्न होकर अपने स्थान को चले गए।

चित्रकूट रघुनंदनु छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए॥
आवत देखि मुदित मुनिबृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा॥

रामचन्द्रजी चित्रकूट आकर ठहरे हैं। यह समाचार सुन-सुनकर मुनि लोग वहां आए। आनन्दपूवक मुनिगणों को आते हुए देखकर रघुनाथजी ने दण्डवत् किया।

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं॥

मुनि लोग रघुनाथजी को छाती से लगाने और सफल होने के लिए आशीर्वाद देने लगे। सीता, लक्ष्मण और रामजी की शोभा देखने और अपने सब साधनों को सफल मानने लगे।

दो०-जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनिबृंद।
करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हि सुछंद॥ १३०॥

प्रभ रामचन्द्रजी ने यथोचित सम्मान करके मुनि-मण्डलो विदा की और वे अपने-अपने आश्रम में आकर अपनी इच्छा के अनुसार योग, जप, यज्ञ, तप करने लगे॥ १३०॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥

यह सुधि जब कोल-किरातों ने सुनी तो ऐसे प्रसन्न हुए, मानो उनके घर में नवनिधि आ गई हो। कन्द, मूल, फल दोनों में भर-भर के ऐसे चले, मानो कङ्गाल सोना लूटने के निमित्त चले हैं।

तिन्ह महं जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूंछहिं मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥

उनमें से जिन्होंने दोनों भाईयों को देखा था, उनसे और लोग मार्ग में जाते पूछने लगे और परस्पर रामजी की सुन्दरता कहने-सुनने सब आये और दोनों भाइयों का दर्शन किया।

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहं तहं ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥

आगे भेट धरकर प्रणाम किया, फिर प्रभु को बड़े प्रेम से देखने लगे। जहां-तहां चित्र की भांति खड़े हो गये। शरीर में पुलकावली छा गई। नेत्रों में जल भर आया।

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥

रामजी ने सबको प्रेम में मगन जाना और प्यारा वचन कह स.का आदर किया। प्रभु रामचन्द्रजी को बार-बार प्रणाम कर और हाथ जोड़कर नम्र वचन कहने लगे।

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय॥ १३१॥

हे नाथ! अब हम सब प्रभु के चरण को देखकर सनाथ हुए। हे कौशलराज! आपका वन में आना हमारे भाग्य से हुआ है॥ १३१॥

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहं जहं नाथ पाउ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहग मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी॥

हे नाथ! वह भूमि, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य है, जहां-जहां आपने पांव रखे हैं वहां वन में विचरने वाले पक्षी और मृग धन्य हैं, तुम्हें निहारकर उनका भी जन्म सफल हो गया।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु भल ठाउं बिचारी। इहां सकल रितु रहब सुखारी॥

हम लोग कुटुम्ब सहित धन्य है, जो नेत्र भरकर तुम्हारा दर्शन किया। अच्छा स्थान विचार कर वास किया यहां सब ऋतुओं में सुखी रहोगे।

हम सब भांति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥

हम सब भांति सेवा करेंगे और हाथी, सिंह, सांप तथा बाघ से बचायेंगे। वन, ऊंचा, नीचा पर्वत कन्दरा, खोह। हे प्रभु! ये सब हमारे पग-पग पर देखे हुए हैं।

तहं तहं तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर जल ठाउं देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

जहां-तहां तुम्हें शिकार खेलावेंगे और सरोवर, झरने व जल के स्थान दिखावेंगे। हम कुटुम्ब समेत आपके सेवक हैं। हे नाथ ! आप आज्ञा देने में न स चाना।

दो०—बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥ १३२॥

जो प्रभु वेदों के वचन और मुनियों के मन को भी अगम हैं। वे करुणानिधान श्रीराम भगवान किरातों के वचन ऐसे सुनते हैं, जैसे पिता बालक के वचन को सुनता है॥ १३२॥

रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परितोषे॥

रामजी को केवल प्रेम प्यारा है, जो जानने वाला है सो जान लेवे। रामचन्द्रजी ने कोमल वचन कहकर सब वन-वासियों को प्रसन्न किया और प्रेम को बढ़ाया।

बिदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥

फिर सबको विदा किया, तब वे सिर नवाकर चले और प्रभु के गुण कहते-सुनते हुए अपने-अपने घर आये। इस प्रकार सीताजी समेत दोनों भाई देवता और मुनियों के सुखदाता वन में वास करने लगे।

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥

जब रघुनाथजी आकर रहने लगे। तब से वन मङ्गल आनन्द देने वाला हो गया। अनेक प्रकार के वृक्ष फूलने लगे, उन पर मन को हरने वाली सुन्दर सुहावनी लताओं का मंडप छा रहा था।

सुरतरु सरिस सुभायं सुहाए। मनहुं बिबुध बन परिहरि आए॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुखदेनी॥

कल्पवृक्ष के समान स्वाभाविक सुहावने सब वृक्ष मानो नन्दन वन को छोड़कर आए हैं उन पर सुन्दर भौंरों की पांति गूंज रही है और सुख देने वाली त्रिविध बयार बह रही है।

दो०—नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।
भांति भांति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर॥ १३३॥

नीलकंठ, कोयल, तोता, पपीहा, चकवा, चकोर आदि सब भांति-भांति के पक्षी कानों को सुख और चित्त को चुराने वाली मनोहर बोली बोल रहे थे॥ १३३॥

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगतबैर बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेषी॥

हाथी, सिंह, वानर, सूकर और हरिण आदि सब बैर छोड़कर एक संग विहार करते रहें। आखेट के निमित्त वन में विचरते हुए रामजी की छवि को देखकर हरिणों के झुण्ड बहुत प्रसन्न हो रहे थे।

बिबुध बिपिन जहं लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिराहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥

जगत में जहां तक देवताओं के वन हैं, रामजी को वन में देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। गङ्गा, सरस्वती, यमुना, नर्मदा और गोदावरी आदि श्रेष्ठ नदियां हैं।

सब सर सिंधु नदीं नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुरबासू॥

सब सरोवर, समुद्र और अनेक नदी, नाले ये सब मन्दाकिनी की बड़ाई करने लगे। उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश पर्वत, मन्दराचल, सुमेरू आदि जो सब देवताओं के स्थान हैं।

सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहि तेते॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥

हिमालय आदि जितने पर्वत हैं, ये चित्रकूट का यश गाने लगे। विन्ध्याचल के वन में ऐसा आनन्द हुआ कि सुख मन में नहीं समाया, उसने बिना परिश्रम ही बहुत बड़ाई पाई।

दो०-चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिपट तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति॥ १३४॥

चित्रकूट के पक्षी, हरिण आदि पशु, लता, वृक्ष, तृण, घास आदि सब पुण्य के समूह और धन्य हैं, ऐसे देवता दिन-रात कहते हैं॥ १३४॥

नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी॥

जो नेत्र वाले थे, रघुनाथजी को देख नेत्रों के लाभ का फल पा सुखी हो गये। अचल वृक्ष पर्वत आदि रामजी के चरणों की रज को छूकर सुखी और परम पद के अधिकारी हुए।

सो बनु सैलु सुभायं सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन॥
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू। सुखसागर जहं कीन्ह निवासू॥

यह वन और पर्वत स्वभाव से ही सुहावना और मङ्गल देने वाले पवित्र से भी पवित्र है। किस भांति उसकी महिमा वर्णन करूँ, जहां सुख के सागर-रूप उजागर रघुनाथजी ने निवास किया।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहं सिय लखनु रामु रहे आई॥
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन। जौं सत सहस होहिं सहसानन॥

क्षीर-सागर को छोड़ अवध में आये। अवध को छोड़कर जहां सीता, राम लक्ष्मणजी आकर रहें। उस स्थान की महिमा कोई किस प्रकार से वर्णन करे? जैसा सुख वन में हुआ, उसको तो जो सौ हजार शेष हों, तो भी नहीं कह सकते।

सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं॥
सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥

वह मैं किस प्रकार वर्णन कर सकता हूं, भला गड्ढे का कछुआ कहीं मन्दराचल को उठा सकता है? लक्ष्मणजी कर्म, मन और वाणी से रामचन्द्रजी की सेवा जिस भांति से कर रहे हैं, वह शील और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो०-छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुं लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु॥ १३५॥

क्षण-क्षण सीता और रामजी के चरण देख तथा अपने पर उनका प्रेम जान, लक्ष्मणजी भाई, माता-पिता और को सपने में भी स्मरण नहीं करते थे ॥ १३५ ॥

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुं चकोरकुमारी ॥

रामचन्द्रजी के संग सीताजी सुखी रहीं। नगर, कुटुम्ब और घर की सुधि भुला दी। क्षण-क्षण पति का चन्द्र समान मुखारविन्द देख ऐसी प्रसन्न रहतीं, जैसे चकोर की बच्ची चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न रहती है।

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी ॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा ॥

पति का स्नेह नित्य बढ़ता हुआ देखकर आनन्द से रहें, जैसे दिन में चकई अपने पति चकोर के साथ आनन्द से रहती है। सीताजी का मन रामजी के चरणों में ऐसा अनुरक्त हो गया कि हजार अयोध्या के समान वन उन्हें प्यारा लगा।

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा ॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असनु अमिअ सम कंद मूल फर ॥

पति के संग में पर्णकुटी उन्हें प्रिय लगी और मृग आदि पशु, पक्षी कुटुम्ब के समान प्यारे लगे। मुनियों की स्त्रियां सास और मुनिवर ससुर के समान और कन्द-मूल का भोजन अमृत के समान लगा।

नाथ साथ सांथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई ॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू ॥

स्वामी के साथ साथरी अच्छी लगी और सौ काम-शय्या के समान सुख देने वाली जान पड़ी। जिसकी कृपा दृष्टि से देखते ही लोकपाल हो जाते हैं, क्या उसको विषय-भोग मोहित कर सकते हैं ?

दो०—सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
रामप्रिया जग जननि सिय कछु न आचरजु तासु ॥ १३६ ॥

राम का स्मरण करते ही भक्तजन विषय-भोग को तृण के समान त्याग देते हैं तो रामजी की प्यारी जगत् माता सीताजी ने विषय विलास का त्याग किया तो उसमें कुछ आश्चर्य नहीं हे ॥ १३६ ॥

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं ॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी ॥

सीता और लक्ष्मणजी जिस रीति से सुख पावें, रघुनाथजी वही करें और वही कहें। पुरानी कथा बखान कर कहें और लक्ष्मण तथा सीताजी बहुत सुख मानकर सुनें।

जब जब रामु अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं ॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई ॥

जब-जब रामचन्द्रजी अयोध्या की सुधि करें, तब नेत्रों में जल भर लें। माता-पिता, परिवार, भाई और भरतजी का स्नेह, शील और सेवा का स्मरण कर।

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी ॥
लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं ॥

कृपासिन्धु प्रभु रामचन्द्रजी दुःखी हो गये, परन्तु कुसमय विचार कर धीरज धारण किया। सीता और लक्ष्मणजी उनको देख ऐसे व्याकुल हो गये, जैसे पुरुष की परछांई।

प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत उर चंदनु ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता ॥

प्यारी सीताजी और भाई लक्ष्मणजी की यह दशा देख धैर्यवान दयालु भक्त उरचन्दन श्रीरघुनाथ जो कोई पवित्र कथा कहने लगे जिसको सुन लक्ष्मण और सीता जी ने सुख पाया।

दो०—रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत ॥ १३७ ॥

राम लक्ष्मण सीता सहित पर्णकुटी में ऐसे शोभायमान थे जैसे इन्द्र शची और जयन्त सहित अमरावतीपुरी में शोभायमान हैं ॥ १३७ ॥

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें ॥
सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि ॥

प्रभु रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजी की कैसे रक्षा कर रहे थे, जैसे पलक नेत्रों की पुतलियों की रक्षा करती है। लक्ष्मणजी सीताजी रघुनाथजी की ऐसी सेवा करते रहे, जैसे अज्ञानी पुरुष शरीर की रक्षा में लगे रहते हैं।

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी ॥
कहेउं राम बन गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा ॥

इसी प्रकार प्रभु वन में सुख से वास करें जो पक्षी, मृग, देवता और तपस्वियों के हित करने वाले हैं। रामजी का सुन्दर वन गमन कहा, अब सुमन्त [illegible] अवध में आये सो सुनो।

फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुंचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई ॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू ॥

निषाद प्रभु को वन में पहुंचाकर लौट आया, सो सुमन्त सहित रथ को उसी जगह आकर देखा, जहां छोड़ गया था। मन्त्री को विकल देख निषाद को जैसा विषाद हुआ वह कहा नहीं जा सकता।

राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी ॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥

सुमन्त, हे राम! हे सीता! हे लक्ष्मण! कहां गये पुकारता पृथ्वी पर लौट गया और बहुत व्याकुल हो गया। दक्षिण दिशा की ओर देख घोड़े ऐसे हिनहिनाते हैं जैसे बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो गये हों।

दो०—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि ॥ १३८ ॥

न घास चरते हैं, न पानी पीते हैं, नेत्रों से जल छोड़ रहे हैं। इस प्रकार रामचन्द्रजी के घोड़ों को देखकर निषाद बहुत व्याकुल हुआ ॥ १३८ ॥

धरि धीरजु तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू॥
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥

तब धीरज धरकर निषादराज कहने लगा कि हे सुमन्त ! अब शोक करना छोड़ दो। तुम पंडित हो, परमार्थ के जानने वाले हो, विधाता को बांया देख धीरज धारण करो।

बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी॥
सोक सिथिल रथु सकइ न हांकी। रघुबर बिरह पीर उर बांकी॥

कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथा कह निषादराज ने सुमन्त को जोरावरी से रथ पर लाकर बैठाया। शोक के मारे शिथिल हो, रथ नहीं हांक सकता। रघुवर के विरह की हृदय में बेढब पीड़ा है।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुं आनि रथ जोरे॥
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोगि बिकल दुख तीछें॥

घोड़े तड़फड़ाते और मार्ग नहीं चलते थे, मानो वन के मृग लाकर रथ में जोड़ दिये हों। सुमन्त हांकता तो अटक जाते, फिरकर पीछे देखते रामजी के वियोग से बड़े व्याकुल और दुःखी हो रहे थे।

जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भांती॥

जो राम-लक्ष्मण और सीताजी नाम लेता था, तो घोड़े उसकी और हिकरि-हिकरि देखते थे। घोड़ों की विकलता क्यों कर कही जाय ? जिस भांति बिना मणि का सांप व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार राम के विरह में घोड़े भी व्याकुल हो गये।

दो०—भयउ निषादु बिषादबस देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग॥ १३९॥

मन्त्री और घोड़ों को देखकर निषाद व्याकुल हो गए, तब चार अच्छे सेवकों को बुलाकर सारथी के संग कर दिया॥ १३९॥

गुह सारथिहि फिरेउ पहुंचाई। बिरहु बिषादु बरनि नहिं जाई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा॥

गुह सारथी को पहुंचा लौट आया। उस समय के विरह का दुःख कहा नहीं जाता। निषाद अवध को रथ ले चले, परन्तु क्षण-क्षण में सुमन्त के दुःख में मग्न होकर व्याकुल हो जाते थे।

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥
रहिहि न अंतहुं अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥

सुमन्त विकलता और दुःख से उदास हो, सोचते कि रघुनाथजी के बिना जीने को धिक्कार है ? अन्त को यह अधम शरीर नहीं रहेगा। रघुनाथजी के बिछड़ने से शरीर त्याग कर यश न ले लिया जाय।

भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुं न हृदय होत दुइ टूका॥

यह मेरा प्राण अपयश और पाप का पात्र हुआ, अब किस कारण शरीर से नहीं निकल जाते आह ! मैं मन्द-बुद्धि समय चूक गया और अब भी मेरा हृदय दो टूक नहीं होता।

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुं कृपन धन रासि गवांई ॥
बिरिद बांधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥

हाथ मलकर और सिर धुनकर पछता रहा था, मानो कंजूस ने धन की ढेरी गंवा दी है। बाना बांधकर अच्छा वीर कहावे और वह योद्धा समर से भाग के चला आवे और फिर दुःखी हो, ऐसे ही सुमन्तजी पछताकर दुःखी हो रहे थे।

दो०—बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखें मदपान कर सचिव सोच तेहि भांति॥ १४० ॥

जैसे कोई ज्ञानी वेद को जानने वाला साधुजनों के अनुकूल और कुलीन ब्राह्मण धोखे से मदिरा पीकर पछतावें, उसी प्रकार मन्त्री सुमन्त पछताते और सोच कर रहे थे ॥ १४० ॥

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी ॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदयं तिमि दारुन दाहू ॥

जैसे कोई कुलवती पतिव्रता सयानी स्त्री, जो कर्म, मन, वाणी से पति को देवता मान सेवा करती हो। वह कर्म वश पति को छोड़ दुःखी हो, वैसे ही मंत्री के हृदय में दारुण दाह हो रहा था।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुंह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ॥

नेत्रों में जल भर आया, दृष्टि थोड़ी हो गई, कानों से सुनाई नहीं पड़ता था, बुद्धि विकल और भोथरी हो गई। होंठ सूख रहे थे, मुंह में पपड़ी जम गई, जी नहीं निकलता था।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुं पिता महतारी ॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी ॥

रंग रूप बदल गया जो देखा नहीं जाता था, मानो पिता ने माता को मार डाला हो। हानि और ग्लानि मन में बहुत व्याप गई, जैसे पापी यमपुरी के मार्ग में सोच करता है।

बचनु न आव हृदयं पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई ॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई ॥

मुख से बोली नहीं निकलती थी, हृदय पछता रहा था कि मैं अवधपुरी में जाकर क्या देखूंगा, बिना रथ के जो कोई देखेगा, सो मुझको देखकर सकुचा जायेगा।

दो०—धाइ पूंछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मैं सबहि तब हृदयं बज्रु बैठारि॥ १४१ ॥

नगर के नर-नारी व्याकुल हो दौड़कर जब हमसे पूछेंगे कि राम कहां हैं ? तब मैं छाती पर पत्थर दबाकर सबको क्या उत्तर दूंगा ॥ १४१ ॥

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता ॥
पूछिहि जबहिं लखन महतारी। कहिहउं कवन संदेस सुखारी ॥

जब दीन और दुःखी हो सब माताएं पूछेंगी, हे विधाता! तब मैं उनको क्या उत्तर दूंगा? लक्ष्मण जी की माता जब पूछेंगी, तब मैं कौन सा सुखदायक संदेशा कहूंगा?

राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई॥
पूंछत उतरु देब मैं तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही॥

रामजी की माता जब दौड़ी आवेंगी, जैसे हाल की ब्याई गौ, बछड़े को याद कर दौड़ी आती है। पूछते ही मैं यह उत्तर दूंगा कि सीता सहित राम और लक्ष्मण वन को चले गये।

जोइ पूंछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब यहु सुखु लेबा॥
पूंछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना॥

जो पूछेगा उसको यही उत्तर दूंगा, अवध जाकर अब यही यश लूंगा। जब दुःख से महाराज पूछेंगे, जिनका जीवन राम के आधीन है।

देहउं उतरु कौनु मुहु लाई। आयउं कुसल कुअंर पहुंचाई॥
सुनत लखन सिय राम संदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥

तब महाराज को कौन से मुंह से उत्तर दूंगा कि कुंवरों को कुशल से वन में पहुंचा आया। लक्ष्मण सीता और राम के वन जाने का संदेशा सुनते ही महाराज अपने शरीर का तृण के समान त्याग कर देंगे।

दो०—हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु॥ १४२॥

जैसे प्रीतम जल के बिछड़ते ही कीचड़ फट जाता हैं, ऐसे ही प्रीतम राम के बिछड़ने से मेरा हृदय नहीं फटता, इससे मैंने जान लिया कि ब्रह्मा ने मुझको यम-यातना भोगने को यह शरीर रहने दिया है॥ १४२॥

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पायं परि बिकल बिषादा॥

इसी प्रकार मार्ग में पछतावा करते तमसा नदी के किनारे रथ शीघ्र आ गया। तब सुमन्त ने विनय करके निषादों को विदा किया। तब उनके पैर गिरकर दुःख से व्याकुल होते लौट गये।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुर बांभन गाई॥
बैठि बिटप तर दिवसु गवांवा। सांझ समय तब अवसरु पावा॥

नगर में प्रवेश करते ही सुमन्त ऐसे सकुचाते थे, मानो गुरु, ब्राह्मण और गौ को मारा हो। वृक्ष के नीचे बैठकर किसी तरह दिन बिताया। जब सांझ का समय हुआ, तब नगर में प्रवेश करने का अवसर पाया।

अवध प्रबेसु कीन्ह अंधिआरें। पैठ भवन रथु राखि दुआरें॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए॥

अवधपुरी में अंधेरे में प्रवेश कर रथ को द्वार पर छोड़ आप महल में चले गये। जिस-जिसने सुमन्त के लौट आवे का हाल सुना, वे सब महाराज के द्वार पर रथ को देखने आये।

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें॥

रथ को पहचान घोड़ों को विकल देख उनके शरीर ऐसे गलने लगे, जैसे आतप से ओले गल जाते हैं। नगर के स्त्री-पुरुष कैसे व्याकुल हो रहे हैं, जैसे जल घटने से मछलियां व्याकुल हो जाती हैं।

दो०—सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुं प्रेत निवासु॥ १४३॥

मंत्री का आना बिना राम के सुन सब रनिवास व्याकुल हो गया, उस समय सुमन्त को राजभवन ऐसा भयंकर लगने लगा, मानो प्रेत के रहने का स्थान (श्मशान) है॥ १४३॥

अति आरति सब पूंछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥
सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहां नृपु तेहि तेहि बूझा॥

बड़े दुःख से रानियां पूछने लगीं कि राम लक्ष्मण सीता कहां है? सुमन्त से कछ उत्तर देते नहीं बना। वाणी विकल हुई बोला नहीं गया, कानों से सुनाई नहीं पड़ता। नेत्रों से सुझाई नहीं देता, कहो राजा कहां हैं? यही जिस-तिस से पूछा।

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृहं गईं लवाई॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा॥

दासियों ने मन्त्री जी की व्याकुलता देखी, तब उन्हें कौशल्या के घर ले गयीं। सुमन्त ने जाकर महाराज को ऐसा देखा, मानो अमृत रहित चन्द्रमा विराजमान है।

आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥
लेइ उसासु सोच एहि भांती। सुरपुर तें जनु खंसेउ जजाती॥

न भोजन किया, न शयन किया और आभूषण भी नहीं पहने, पृथ्वी पर बहुत उदास पड़े हैं सांस लेते हुए राजा इस भांति सोच रहे थे, मानो ययाति देवलोक से गिर पड़े हैं।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥
राम राम कहि राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही॥

सोच से सांस लेते समय क्षण-क्षण में छाती भर आती, मानो पंख जल जाने से सम्पाती ही पड़ा सोचता है, ऐसे राजा भी सोच से व्याकुल पड़े हैं। हे राम! हे राम! हे प्यारे राम! कह फिर हे राम, लक्ष्मण, सीता कह।

दो०—देखि सचिवं जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहं रामु॥ १४४॥

महाराज को देखकर मन्त्री सुमन्त ने जय जीव! कहकर प्रणाम किया, सो सुनते ही व्याकुल महाराज यही कहते हुए उठे कि कहो सुमन्त राम कहां है॥ १४४॥

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूंछत राउ नयन भरि बारी॥

महाराज ने सुमन्त को छाती से लगा लिया, मानो गिरते हुए ने आधार पाया है। प्रेम के साथ अपने समीप बैठाकर नेत्रों में आंसू भर राजा सुमन्त से पूछने लगे।

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहं रघुनाथु लखनु बैदेही॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए॥

हे स्नेही सखा ! राम की कुशल कहो, राम लक्ष्मण जानकी कहां हैं ? लौटाकर ले आये कि वन को चले गये ? यह सुनते ही मन्त्री के नेत्रों में जल भर आया।

सोक बिकल पुनि पूंछ नरेसू। कहु सिय राम लखन संदेसू॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥

शोक से व्याकुल राजा ने फिर पूछा कि सीता राम लक्ष्मण का संदेशा कहो। रामजी के रूप, गुण शील और स्वभाव को सुमर-सुमर मन में राजा जी सोच कर रहे थे।

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हरांसू॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥

राज्य सुनाकर बनवास दिया, सो सुन मन में हर्ष, शोक कछ नहीं हुआ और आज्ञा लेकर वन को चले गये, सो पुत्र बिछड़ गया और मेरे प्राण न गये मेरे समान पापी संसार में कौन है ?

दो०—सखा रामु सिय लखनु जहं तहां मोहि पहुंचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउं सतिभाउ॥ १४५॥

हे सखा सुमन्त ! राम सीता और लक्ष्मण कहां हैं मुझको वहां पहुंचाओ, नहीं तो अब प्राण चलना चाहते हैं यह मैं सच्चे मन से कहता हूं॥ १४५॥

पुनि पुनि पूंछत मंत्रिहिं राऊ। प्रियतम सुअन संदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥

महाराज बारम्बार मन्त्री सुमन्त से पूछते थे कि हमारे प्राण प्यारे पुत्रों का संदेशा सुनाओ। हे सखा ! जल्दी वही उपाय करो और राम लक्ष्मण सीता को लाकर दिखाओ।

सचिव धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा॥

तब सुमंत ने धीरज धर कोमल वाणी से कहा—हे महाराज तुम पण्डित, ज्ञानी और वीर हो, बड़े धीरधारी हो, धुरन्धर हो देव स्वरूप हो और तुम साधु समाज की सदा सेवा करने वाले हो।

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥

संसार में जीना मरना, दुःख सुख का भोगना, हानि-लाभ, प्यारे से मिलना, बिछड़ना ये सब काल और कर्म के वश होते रहते हैं, हे स्वामी ! सब परवश हैं जैसे रात और दिन बदलते रहते हैं। इसी प्रकार सुख-दुःख बदलते ही रहते हैं।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िअ सोच सकल हितकारी॥

मूर्ख लोग सुख में आनन्दित और दुःख में व्याकुल हो जाते हैं, परन्तु ज्ञानी दोनों को समान मान

धीरज धरते हैं। ज्ञान से विचार कर धीरज धारण करो और सोच छोड़ दो। आप तो सबके हितकारी हो।

दो०—प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर।
न्हाय रहे जलपानु करि सिय समेत दोउ बीर॥ १४६ ॥

पहिले दिन तमसा नदी के किनारे वास किया, दूसरे दिन गङ्गा नदी के तट पर स्नान कर सीता जी समेत दोनों वीर राम-लक्ष्मणजी जलपान करके रह गये॥ १४६॥

केवट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवांई॥
होत प्रात बट छीरु मगावा। जटा मुकुट निज सीस बनावा॥

केवट ने बहुत सेवा की, वह रात श्रृंगबेरपुर में बिताई। प्रातः होते ही वट-वृक्ष का दूध मंगाया और सिर पर जटाओं का मुकुट बनाया।

राम सखां तब नाव मगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई॥
लखन बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥

तब निषादराज ने नाव मंगाई। उस पर प्रिया को चढ़ाकर आप रघनाथजी चढ़े लक्ष्मणजी भलीभांति धनुष बाण धारण कर प्रभु की आज्ञा पाय आप भी नाव पर चढ़े।

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू॥

मुझको व्याकुल देखकर रघुनाथ जी धीरज धरकर वचन बोले हे तात! पिताजी से हमारा प्रणाम कहना और बारम्बार हमारी ओर से उनका चरण पकड़ना।

करबि पायं परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥
बन मग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें॥

फिर पांव पड़कर हमारी ओर से प्रार्थना करना कि हे तात! हमारी कुछ चिन्ता मत करना। वन के मार्ग में तुम्हारी कृपा, धनुग्रह ओर से कशल होगा।

छं०—तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं॥
जननीं सकल परितोषि परि परि पायं करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहि कुसली रहहिं कोसल धनी॥ ६ ॥

हे पिताजी! तुम्हारी कृपा से वन यात्रा में, मैं सब प्रकार से सुख पाऊंगा और आज्ञा पालन कर कुशल से चरणों का दर्शन करने के लिए फिर लौट आऊंगा। सब माताओं को सन्तोष देकर बार-बार चरणों पर पड़कर मेरी ओर से बहुत सी प्रार्थना करना और वही यत्न करना, जिस प्रकार महाराज कुशल से रहें। रामजी ने यह संदेशा मुझसे बार-बार कहा है, जो मैंने आपको सुनाया॥ ६॥

सो०—गुर सन कहब संदेसु बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति॥ ६ ॥

बार-बार चरण कमल पकड़कर गुरुदेव से यह संदेशा कहना कि वही उपदेश करते रहिए कि जिससे महाराज मेरा सोच न करें॥ ६॥

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएहु बिनती मोरी॥
सोइ सब भांति मोर हितकारी। जातें रह नरनाहु सुखारी॥

फिर मुझसे कहा कि हे तात ! नगरवासी और कुटुम्बी सबसे विनय कर मेरी विनती सुनाकर कहना कि वही सब प्रकार से मेरा हितकारी है, जिससे महाराज सुखी रहें।

कहब संदेसु भरत के आएं। नीति न तजिअ राजपदु पाएं॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी॥

भरतजी के आने पर उनसे यह संदेशा कहना कि राज्य पद की नीति न छोड़ना, कर्म, मन, वाणी से प्रजा का पालन करना और सब माताओं को समान जान उनकी सेवा करना।

ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥
तात भांति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहिं करै न काऊ॥

और हे भाई ! माता-पिता की चरण सेवा करते हुए भाईपन निभाना। हे प्यारे भाई, महाराज को उसी भांति से रखना, जिससे मेरा सोच न करें।

लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई॥

फिर लक्ष्मण ने कुछ कठोर वचन कहे, तब रामजी ने मना कर मुझसे प्रार्थना की और बार-बार अपनी सौगन्ध दिलाकर कहा कि हे तात लक्ष्मण का लड़कपन पिताजी से न कहना।

दो०—कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥ १४७॥

फिर प्रणाम कर सीता जी कछ कहने को उद्यत हुई, परन्तु स्नेहवश शिथिल हो गई। वचन थकित हो गये, नेत्रों में जल भर आया, देह के सब रोम-रोम खड़े हो गये॥ १४७॥

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई॥
रघुकुलतिलक चले एहि भांती। देखउं ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥

उसी समय में रामचन्द्रजी का रुख पाकर केवट ने पार को नाव चलाई। रघुकल तिलक रामचन्द्र जी इस भांति चले और मैं छाती पर वज्र रखकर खड़ा हुआ देखता रहा।

मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउं लेइ राम संदेसू॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ॥

मैं अपना क्लेश किस प्रकार कहूं कि रामजी का संदेशा लेकर जीता हुआ लौट आया। ऐसे कहकर मन्त्री का वचन रुक गया और हानि-ग्लानि से सोच के वश हो गया।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुं मीन कहुं ब्यापा॥

सुमन्त का वचन सुनते ही महाराज जी पृथ्वी पर गिर पड़े। हृदय में बड़ी जलन होने लगी। कठिन मोह से मन में व्याकुलता छा गई जिससे महाराज तड़फने लगे, मानो मछली को वर्षा के नये जल का फेन व्याप गया हो।

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा॥

विलाप करके रानियां रोने लगीं। उस समय की महा-विपत्ति कैसे बखानी जा सकती है? उनका विलाप सुन दुःखी को भी दुःख लगा और धैर्यवानों का भी धीरज भाग गया।

दो०—भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुं कुलिस कठोरु॥ १४८॥

इस प्रकार राजा के रनिवास का रोना सुनकर अवध में बड़ा कोलाहल शब्द हुआ। मानो बहुत से पक्षियों के वन में रात को इन्द्र का कठोर वज्र गिरा हो॥ १४८॥

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥
इंद्री सकल बिकल भइं भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी॥

दशरथ जी के प्राण कण्ठ में आ गए और ऐसे व्याकुल हुए जैसे मणिक बिना सांप व्याकुल हो जाता है सब इन्द्रियां बड़ी व्याकुल हुईं, जैसे सरोवर में कमल बिन पानी सूख जाता है।

कौसल्यां नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अंथयउ जियं जाना॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥

कौशल्या ने राजा को बहुत उदास देखा और सूर्यवंश का सूर्य अस्त होना चाहता है ऐसा जी में जाना, तब रामजी की माता हृदय में धीरज धारण कर समय के अनुसार वचन बोली।

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥

हे नाथ! मन में समझकर विचार कीजिए कि रामजी का वियोग अपार समुद्र है। उसमें कर्ण-धार (मल्लाह) आप ही हो और चौदह वर्ष की अवधि जहाज है उस पर प्यारे कुटुम्बी और सब पुर वासी जो बनियों के समूह के समान चढ़े।

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौं जियं धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥

धीरज धरोगे तो पार जाओगे, नहीं तो सब परिवार डूबा जाता है। हे स्वामी! जब आप मेरी विनय को मन में धरो तो राम-लक्ष्मण और सीता फिर मिलेंगे।

दो०—प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आंखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥ १४९॥

प्यारी रानी कौशल्या के कोमल वचन सुनते ही राजा ने आंखें खोल, ऐसा देखा मानो तड़पती हुई दीन-मलीन मछली को शीतल जल से सींच दिया हो॥ १४९॥

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत्र कहं राम कृपालू॥
कहां लखनु कहं रामु सनेही। कहं प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥

धीरज धर राजा उठ बैठे और बोले कि कहो सुमन्त, कृपालु रामचन्द्रजी कहां हैं, कहां लक्ष्मणजी हैं, कहां स्नेही राम हैं और कहां प्यारी-प्यारी पुत्र-वधू जानकी हैं?

बिलपत राउ बिकल बहु भांती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥
तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥

राजा व्याकुल होकर बहुत भांति से विलाप करने लगे। रात युग के समान हो गई, विपत्ति की रात काटे नहीं कटती। उस समय राजा दशरथ को महात्मा श्रवण के पिता अन्धे तपस्वी के शाप की सुधि आ गई तो कौशल्या रानी को शाप की सब कथा कह सुनाई।

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥

इसी प्रकार श्रवण की कथा कहते दशरथ जी व्याकुल हो गये और बोले राम के बिना जीने की आशा को धिक्कार है। इस शरीर को रखकर मैं क्या करूंगा? जिसने मेरे प्रेम के प्रण को नहीं निभाया।

हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥

हे प्राण प्यारे रघुनाथ! तुम्हारे बिना जीते हुए बहुत दिन बीत गए। हाय जानकी! हाय लक्ष्मण! हाय रामचन्द्र! हा पिता के हित करने वाले! हा चित्त रूपी पपीहा को मेघ के समान सुख देने वाले।

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहं राउ गयउ सुरधाम॥ १५०॥

राम-राम कहकर, राम कहकर फिर राम राम राम कहकर रामचन्द्रजी के वियोग में शरीर छोड़ कर राजा देवलोक को चले गये॥ १५०॥

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु संवारा॥

जीने मरने का फल दशरथ जी ने पाया और अनेक ब्रह्माडों में उनका निर्मल यश छा रहा। जीने पर रामजी का चन्द्रमुख देखा और राम के वियोग में मरकर मरण को सफल किया।

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेजु बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा॥

शोक से व्याकुल हो सब रानियां महाराज के रूप, शील, बल और तेज का बखान कर रोने लगीं। अनेक प्रकार से विलाप कर रही थीं और बारम्बार पृथ्वी पर गिरकर मूर्छित हो जातीं।

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदनु करहिं पुरबासी॥
अंथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू॥

दास-दासी विकल होकर विलाप कर रहे थे सब नगरवासी घर-घर रो रहे थे। आज सूर्यवंश का सूर्य अस्त हो गया, जो महाराज धर्म की मर्यादा और रूप के निधान थे।

गारीं सकल कैकइहि देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी॥

सब कैकेयी को गाली दे रहे थे, जिसने जगत को अन्धा कर दिया। इसी प्रकार विलाप करते हुए रात बीत गई। प्रातःकाल होते ही सब ज्ञानी और महामुनि आये।

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास॥ १५१॥

तब वशिष्ठ मुनि ने समय के अनुसार अनेक इतिहास कहकर अपने विशेष ज्ञान के प्रकाश से सबका शोक निवारण किया॥ १५१॥

तेल नावं भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुं कहहु जनि काहू॥

वशिष्ठ मुनि ने तेल से नाव भरकर उसमें राजा का शरीर रखा, फिर दूत बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा कि तुम यहां से दौड़ते हुए जल्दी भरत के पास जाओ। महाराज के मरने का समाचार किसी से मत कहना।

एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए॥

भरत के पास जा तुम इतना ही कहना कि वशिष्ठ जी ने दोनों भाइयों को बुलाया है। मुनि की आज्ञा सुन धावन दौड़े, ऐसी जल्दी से चले कि अच्छे वेग वाले घोड़ों को लज्जित कर दिया।

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुं तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥

अयोध्या में जबसे अनर्थ का आरम्भ हुआ, तब से ही वहां भरतजी को अपशकुन होने लगे। रात को डरावने सपने देखे तो जागकर मन में अनेक कल्पना करते थे कि क्या बात है जो हम ऐसे बुरे स्वप्न देखते हैं?

बिप्र जेवांइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
मागहिं हृदयं महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

भयानक सपनों की शान्ति के लिए भरत ब्राह्मणों को भोजन कराते थे। दिन में दान देते और अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते और हृदय में महादेवजी को मानकर यही मांगते कि माता, पिता, सम्बन्धी, भाई सब लोग कुशल से रहें।

दो०—एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुंचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ॥ १५२॥

इसी प्रकार भरतजी सोच रहे थे कि इतने में धावन पहुंचे और गुरु की आज्ञा सुनाई। गुरु की आज्ञा सुनते ही भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई महादेवजी को मनाकर चले॥ १५२॥

चले समीर बेग हय हांके। नाघत सरित सैल बन बांके॥
हृदयं सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियं जाउं उड़ाई॥

पवन के समान शीघ्र चलने वाले घोड़े रथ में जुते हुए ऐसा रथ हांकते और नदी तथा बांके-टेढ़े वन को लांघते हुए चले। हृदय में बड़ा सोच था, कुछ अच्छा नहीं लगता था। जी में ऐसा लगता था कि अभी उड़ जाऊं।

एक निमेष बरस सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभांति कुखेत करारा॥

एक-एक पल वर्षों के समान बीतता था। इस प्रकार भरत अयोध्या के निकट आ पहुंचे। नगर की सीमा प्रवेश करते-करते ही अपशकुन होने लगे। काले कौए अशुभ स्थान में बुरी भांति से कांव-कांव रटने लगे।

खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा॥

गदहे, सियार विरुद्ध बोली बोलने लगे, जिसको सुनकर भरतजी के हृदय में पीड़ा होने लगी। सरोवर, नदी, वन और बाग शोभाहीन हो गये।

खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुं सबन्हि सब संपति हारी॥

पक्षी, मृग, घोड़े, हाथी देखे नहीं जाते थे। राम के वियोग रूपी कुरोग से मानो सबके सब अपनी सम्पत्ति हार बैठे हैं।

दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवंहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूंछि न सकहिं भय विषाद मन माहिं॥ १५३॥

नगर के लोग मिलते थे, पर कुछ कहते नहीं थे, चुपचाप जुहार करके चले जाते, मन में भय और दुःख के कारण भरतजी भी कुशल क्षेम पूछ नहीं सकते थे॥ १५३॥

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहं दिसि लागि दवारी॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि॥

बाजार और मार्ग देखे नहीं जाते थे, मानो नगर में दशों दिशाओं से आग लग रही है। कैकेयी अपने पुत्र को आते हुए सुन प्रसन्न हुई, जो सूर्य वंश रूपी कमल को चांदनी के समान दुःख देने वाली हुई।

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुं तुहिन बनज बनु मारा॥

आरती सजाकर प्रसन्न हो उठ आई और द्वार पर मिलकर महल में ले गई। भरतजी ने परिवार को ऐसा दुःखी देखा, मानो पाला ने कमल वन को मारा है।

कैकई हरषित एहि भांती। मनहुं मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूंछति नैहर कुसल हमारें॥

कैकेयी ऐसी प्रसन्न थी, जैसे भिल्लनी वन में आग लगाकर प्रसन्न होती है। पुत्र को सोच करते और मन मारे हुए देखकर पूछने लगी कि मेरे मायके में कुशल तो है।

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूंछी निज कुल कुसल भलाई॥
कहु कहं तात कहां सब माता। कहं सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥

भरत ने सब कुशल कह सुनाई और अपने कुल की कुशल क्षेम पूछी। पिताजी और सब माता कहां हैं और सीता तथा प्यारे भाई राम-लक्ष्मण कहां हैं?

दो०—सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।
भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन॥ १५४॥

पुत्र के स्नेह भरे हुए वचन को सुनकर कपट से नेत्रों में जल भर पापिनी कंकेयी भरत के कान और मन को त्रिशूल के समान छेदने वाले वचन बोली॥ १५४॥

तात बात मैं सकल संवारी। भै मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥

हे तात! मैंने सब बात सम्भाल ली, बिचारी मन्थरा सहायक हुई। विधाता ने शुभ कार्य बीच में ही बिगाड़ दिया कि राजा देवलोक को चले गए।

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥

यह सुनते ही भरत दुःख से ऐसे व्याकुल हुए, जैसे सिंह की गर्जना सुनते ही हाथी डरकर व्याकुल हो जाता है। हा तात! हा पिताजी! ऐसे पुकारकर व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े।

चलत न देखन पायउं तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे संभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥

हाय! स्वर्गवास होते समय मैं तुम्हें देखने भी नहीं पाया। हे पिता! तुम मुझे रामजी को भी नहीं सौंप गये, फिर धीरज धर अपने को संभाल कर उठे और बोले कि हे माता! पिताजी के मरण का कारण तो बतलाओ कि वह कैसे मर गये?

सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पांछि जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥

पुत्र का वचन सुन कैकेयी ऐसे कहने लगी, मानो घाव को पोंछकर उस पर विष लगा रही है। खोटी और कठोर कैकेयी ने प्रसन्न मन आदि से अपनी सब करनी कही।

दो०—भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियं थकित रहे धरि मौनु॥ १५५॥

राम का वन में जाना सुनकर भरतजी पिता का मरण भूल गए और इस अनर्थ के होने का अपने कारण समझकर मौन साधकर थकित हो गये॥ १५५॥

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुं जरे पर लोनु लगावति॥
तात राउ नहिं सोचै जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू॥

पुत्र को व्याकुल देख ऐसे समझाने लगी, मानो जले पर नोन लगा रही हो, हे तात! महाराज सोचने योग्य नहीं हैं, उन्होंने बड़े सुकर्म किये और वैसे ही भोग भोगे।

जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥

जीते जी सब जन्म का फल पाया और अन्त में देवलोक को गये। ऐसा विचार कर दुःख दूर करो और समाज समेत नगर में राज्य करो।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छत जनु लाग अंगारू॥
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भांति कुल नासा॥

यह सुन भरतजी बहुत ही सहम गए, मानो पके हुए घाव पर अँगार रख दिया, धीरज धरकर गहरी सांस ली और बोले हे पापिनी! तुमने सब भांति से कुल का नाश कर दिया।

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा॥

जो तेरे मन में ऐसी ही कुमति थी तो मुझको जन्मते ही क्यों न मार डाला? तुमने पेड़ काटकर पत्ते को सींचा और मछली को जीने के निमित्त जल को उलीच डाला।

दो०—हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ।
जननी तूं जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥ १५६॥

सूर्यवंश कुल के समान पिता दशरथजी और राम लक्ष्मण जैसे मेरे भाई हुए, परन्तु तुम्हारे जैसी माता हुई। ब्रह्मा की गति बलवान है, कोई वश नहीं चलता ॥ १५६ ॥

जब तैं कुमति कुमत जियं ठयऊ। खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ ॥
बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुहं परेउ न कीरा ॥

हे कुमति ! जब से तेरे मन में ऐसी बुरी समझ आ बसी, तब से मेरा हृदय खंड खंड क्यों नहीं हो गया। वर मांगने के समय मन में कुछ पीड़ा नहीं हुई, तेरी जीभ नही कटी और मुख में कीड़े भी नहीं पड़े।

भूपं प्रतीति तोरि किमि कीन्हीं। मरन काल बिधि मति हरि लीन्हीं ॥
बिधिहुं न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥

महाराज ने तेरा विश्वास कैसे किया, मरने के समय ब्रह्मा ने उनकी बुद्धि हर ली, ब्रह्मा ने भी स्त्री के हृदय की गति नहीं जानी, स्त्री सब कपट और अवगुणों की खानि है।

सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किमि जानै तीय सुभाऊ ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं ॥

सीधे, सुशील और धर्म में मग्न रहने वाले महाराज थे, सो स्त्री के स्वभाव को कैसे जानते ? ऐसे पुरुष, स्त्री के स्वभाव को नहीं जान सकते। जगत में ऐसा कौन जीव जन्तु है, जिसको रघुनाथ जी प्राणों से प्यारे नहीं हैं ?

भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही ॥
जो हसि सो हसि मुहं मसि लाई। आंखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

वे रामचन्द्रजी भी तुमको बहुत अप्रिय हुए तो बता तू कौन है ? मुझसे सब कह दे। अब जो हो सो हो, मुंह पर स्याही लगाकर मेरी आंखों को ओट से उठकर जा बैठो।

दो०—राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहउं कछु तोहि ॥ १५७ ॥

राम के विरोध करने वालों के हृदय से ब्रह्मा ने मुझको उत्पन्न किया। मेरे समान पातकी कौन है ? अब तुझको कुछ कहूं तो व्यर्थ है ॥ १५७ ॥

सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई ॥
तेहि अवसर कुबरी तहं आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥

माता की कुटिलता सुन मारे रिस के शत्रुघ्न का शरीर जलने लगा, पर कुछ बस नहीं चलता था। उसी समय कुबरी अनेक भांति के वस्त्र, गहने से सजकर वहां आई।

लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई ॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भर महि करत पुकारा ॥

उसको देख शत्रुघ्नजी ऐसे रिस से भर गये, मानो जलती हुई अग्नि में घी की आहुति पाई हो। उछल कर कुबरी में ऐसी लात मारी कि वह चिल्लाती हुई मुंह के बल पृथ्वी पर गिरी।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू ॥
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा ॥

लात लगने से उसका कूबर टूट गया और मुंह के बल गिरने से उसका कपाल फूट गया, दांत टूटने के कारण मुंह से रुधिर बहने लगा। हाय विधाता! मैंने क्या बिगाड़ा जो भला करते बुरा फल पाया।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥
भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥

फिर शत्रुघ्न उसको नख से शिखा तक खोटी देख उसकी चोटी पकड़ कर घसीटने लगे। दयानिधि भरत ने दया करके उसे छुड़ा दिया और दोनों भाई कौशल्या के पास चले गये।

दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुं हनी तुसार॥ १५८॥

मैले कपड़े, मलीन मुख, व्याकुल चित्त, दुबला शरीर और महादुखी कौशल्या को देखा, मानो वन में कनक-कमल की सुन्दर बेलि को पाला मार गया हो अथवा कनक कल्पतरु बेल वन मानो वन में सुवर्ण को सुन्दर कल्पलता को पाला मार गया हो॥ १५८॥

भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइं आई॥
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी॥

भरत को आते हुए देख कौशल्या उठ दौड़ी, परन्तु उनके समीप तक न पहुंच सकी और बीच में ही घबराहट से मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। माता की ऐसी दशा देखकर भरतजी बहुत व्याकुल हुए और अपनी देह की सुधि भूलकर उनके चरणों पर गिर पड़े।

मातु तात कहं देहि देखाई। कहं सिय रामु लखनु दोउ भाई॥
कैकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त भइ काहे न बांझा॥

हे माता पिताजी कहां हैं मुझे दिखा दो और सीता तथा भाई राम-लक्ष्मण कहां है? संसार में कैकेयी का जन्म क्यों हुआ और जो जन्म भी हुआ तो वह बांझ क्यों नहीं हुई?

कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥

जिसने मुझे कुल-कलंक को पैदा किया, जो अपयश का भाजन और प्रियजनों का द्रोही हुआ, हे माता त्रिलोक में मेरे जैसा अभागा कौन है, जिसके कारण तुम्हारी ऐसी गति हुई।

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयउं बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥

पिताजी देवलोक को गये, रघुवंश में पताका रूप रामजी वन को गये, इन सब अनर्थों का कारण केवल मैं हूं। धिक्कार है बांस के वन को जलाने के लिये आग के समान मैं इस वंश में उत्पन्न हुआ और न सहने योग्य दाह दुःख तथा दूषण (अपराध) का भागी हुआ।

दो०—मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी संभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि॥ १५९॥

माता कौशल्या भरतजी के कोमल वचन को सुनकर फिर देह को संभाल कर उठी और उनको उठाकर छाती से लगा लिया और नेत्रों से जल बहने लगा॥ १५९॥

सरल सुभाय मायं हियं लाए। अति हित मनहुं राम फिरि आए॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयं समाई॥

सीधे स्वभाव से माता ने भरत को बड़े प्रेम के साथ ऐसे छाती से लगा लिया, मानो रामजी लौट आये हैं फिर शत्रुघ्न से मिलीं, उस समय का शोक और स्नेह हृदय में नहीं समाता।

देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई॥
माता भरतु गोद बैठारे। आंसु पोंछि मृदु बचन उचारे॥

कौशल्याजी का स्वभाव देखकर सब कोई कहने लगे कि रामजी की माता ऐसी क्यों न हों। माता ने भरत को गोदी में बैठा लिया और आंसू पोंछ कोमल वचन से कहा।

अजहुं बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियं हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥

हे बेटा! बलि जाऊं अब भी धीरज धरो और कुसमय समझकर शोक करना छोड़ दो अपने मन में हानि और ग्लानि मत मानो। काल और कर्म की गति अघटित है।

काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥
जो एतेहुं मोहि जिआवा। अजहुं को जानइ का तेहि भावा॥

हे पुत्र किसी को दोष मत दो, मुझसे सब भांति से विधाता ही उलटा हो गया है, जो ऐसे दुःख में भी मुझको जीता रखा। अब भी कौन जाने कि उसको क्या अच्छा लगा है?

दो०—पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयं कछु पहिरे बलकल चीर॥ १६०॥

हे पुत्र! पिता की आज्ञा समझकर रामजी ने गहने, वस्त्र सब कुछ त्याग दिया और कुछ भी विस्मय, हर्ष न लाकर वल्कल वस्त्र पहन लिए॥ १६०॥

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय संग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥

प्रसन्न मुख, मन में राग, रोष कुछ नहीं, सबको सब भांति से संतोष कर वन को चले, यह सुन कर सीताजी संग चलीं, रामजी के चरणों में प्रीति करने वाली सीता न रही।

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥

सुनते ही लक्ष्मणजी उठ आये और संग चले। रघुनाथजी के यत्न करने पर भी न रहे और साथ में वन को चले गये। तब रामचन्द्रजी सबको सिर नवाकर सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मण को संग लेकर चले।

रामु लखनु सिय बनहि सिधाए। गइउं न संग प्रान पठाए॥
यहु सबु भा इन्ह आंखिन्ह आगें। तउ न तजा तनु जीव अभागें॥

राम, लक्ष्मण सीता सहित वन को चले गये और मैं न साथ गई और न प्राण ही भेजा। यह सब चरित्र इन आंखों के सामने हुआ, तो भी जीव ने इस अभागे शरीर को न छोड़ा।

मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिऐ मरै भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥

मुझको अपना नेह निहारकर लाज नहीं आती कि राम सरीखा पुत्र और मैं माता हूं। जीना-मरना तो राजा ने भली-भांति जाना, मेरा हृदय सौ वज्र के समान है जो जीती बैठी हूं।

दो०—कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनवासु ।
व्याकुल बिलपत राजगृह मानहुं सोक नेवासु ॥ १६१ ॥

कौशल्या के वचन को सुनकर भरत समेत सब रनिवास व्याकुल हो उठा। राज महल में ऐसा विलाप होने लगा, मानो शोक ने आकर निवास किया ॥ १६१ ॥

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्यां लिए हृदयं लगाई ॥
भांति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुनाए ॥

भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई दुःखी होकर विलाप करने लगे, तब कौशल्या ने उनको हृदय से लगा लिया और अनेक प्रकार से भरत को ज्ञान भरे सुहावने वचन कहकर समझाया।

भरतहुं मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाईं ॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी ॥

भरतजी ने भी सब माताओं को वेद, पुराण की सुन्दर कथा कहकर समझाया, फिर भरतजी हाथ जोड़कर छल रहित शुद्ध सीधी मधुर वाणी बोले।

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महिसुर पुर जारें ॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें ॥

जो पाप माता-पिता और गुरु के मारने तथा गौशाला और ब्राह्मणों के नगर को जलाने से होता है तथा जो पाप स्त्री और बालक को मारने से, मित्र तथा राजा को विष देने से होता है।

जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं ॥
ते पातक मोहि होहुं बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता ॥

जो पातक और उतपातक कर्म, वचन और मन से उत्पन्न करने वाले को कविगण बतलाते हैं। हे माता! वे पातक मुझको विधाता लगावे जो यह मेरा मत हो।

दो०—जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर ॥ १६२ ॥

हे माता! जो हरि भगवान और शिवजी के चरणों को छोड़कर भयंकर भूतों की उपासना करते हैं उनकी गति विधाता मुझको देवे, जो इसमें मेरी सलाह हो ॥ १६२ ॥

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी ॥

जो वेद बेचते हैं, धर्म को दुहते हैं, पिशुन दुष्ट है और पराये पाप को कहते हैं। कपट करने वाले खोटे और कलह प्रिय, क्रोध करने वाले, वेद की निन्दा करने वाले, संसार के विरोधी।

लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा ॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा ॥

बहुत लोभ करने वाले, लम्पट, लोल, लवार और पराया धन तथा पराई स्त्री को ताकते हैं, उन्हीं पापियों के समान भयंकर गति पाऊं। हे माता! जो यह मेरी सम्मत्ति हो।

जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई ॥

जिन्होंने साधुओं से प्रीति नहीं की और जो अभागे मोक्ष मार्ग से विमुख हैं, जो मनुष्य का शरीर पाकर हरि को नहीं भजते, जिनको हरि का सुन्दर यश नहीं सुहाता।

तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानौं भेऊ॥

जो वेद के मार्ग को छोड़कर उसके उलटे मार्ग पर चलते हैं, ठग का वेष बनाकर जगत को छलते हैं, उनकी गति शंकर भगवान मुझको दें। हे जननी! जो यह भेद मैं जानता होता।

दो०—मातु भरत के बचन सुनि सांचे सरल सुभायं।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायं॥ १६३॥

माता कौशल्या भरत के सच्चे और सीधे स्वभावयुक्त वचन को सुनकर कहने लगी कि हे तात! तुम तो वचन, मन और तन से सदा रामचन्द्रजी के प्यारे हो॥ १६३॥

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥

रामजी के प्राण से तुम्हारे प्राण हैं, अर्थात राम तुमको अपने प्राणों से भी प्रिय लगते हैं और रामजी को तुम प्राण से अधिक प्यारे हो, चन्द्रमा से भले ही विष झड़े, बर्फ में से भले ही आग टपके, जलचर जीव भले ही जल से बैरागी हो जायें।

भएं ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुं सुख सुगति न लहहीं॥

ज्ञान होने से मोह भले ही न मिटे पर तुम रामजी से उलटे नहीं होगे। यह तुम्हारा मत है ऐसा जो कोई जगत में कहेंगे, वे सपने में भी सुख और सुगति नहीं पावेंगे।

अस कहि मातु भरतु हियं लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥
मुनि बहु भांति भरत उपदेसी। कहि परमारथ बचन सुदेसी॥

ऐसा कहकर माता ने भरत को छाती से लगा लिया, स्तनों में से दूध टपकने लगा और नेत्रों में जल भर आया। इसी प्रकार बहुत विलाप करते हुए बैठे ही बैठे रात्रि व्यतीत हो गई।

बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
करत बिलाप बहुत यहि भांती। बैठहिं बीति गई सब राती॥

नव वामदेव और वशिष्ठजी ने आकर मन्त्री और महाजनों को बुलाया। मुनि ने परमार्थ के सुन्दर वचन कहकर बहुत भांति से भरतजी को उपदेश दिया।

दो०—तात हृदयं धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु॥ १६४॥

हे तात! अब हृदय में धीरज धरो और जो काम करने का अवसर है वही करो। गुरु का यह वचन सुनकर भरतजी उठे और सब काम करने को कहा॥ १६४॥

नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा॥
गहि पद भरत मातु सब राखी। रहीं रानि दरसन अभिलाषी॥

पहले महाराज के मृतक शरीर को वेद की रीति से स्नान कराया और बहुत अच्छा रंग-बिरंगा विमान बनाया और चरण पकड़कर भरतजी ने सब माताओं को रख लिया, तब वे रामजी के दर्शन की अभिलाषा से रह गई और दशरथ जी के साथ सती नहीं हुई।

चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥

बहुत सा चन्दन अगर भार आये और वेद प्रमाण अनेकों उत्तम सुगन्धित पदार्थ मंगाया गया। सरयू के तट पर चिता बनाई गई, जो ऐसी शोभायमान बनी, मानो सुरपुर की सुहावनी सीढ़ी है।

एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाई तिलांजुलि दीन्ही॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥

इस विधि से सब दाह क्रिया की और विधिपूर्वक स्नान करके तिलाञ्जलि दी, धर्मशास्त्र और सब वेद पुराण से शोधकर भरतजी ने दशगात्र का सब विधान किया।

जहं जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहं तस सहस भांति सबु कीन्हा॥
भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥

मुनिवर वशिष्ठ ने जहां जैसी आज्ञा दी वहां वैसा ही सबने हजार प्रकार से किया। जब शुद्ध हुए तब गौ, घोड़, हाथी अनेक गहनों सहित सब कुछ दान दिया।

दो०—सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम॥ १६५॥

सिंहासन, आभूषण, वस्त्र, भूमि, धन, धाम भरतजी ने सुपात्र ब्राह्मणों को दिया, सबको लेकर वे पूर्ण काम हुए॥ १६५॥

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी॥
सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥

पिता के लिए भरतजी ने जैसी करनी की लाखों मुख से भी कही नहीं जा सकती। फिर अच्छा दिन विचार वशिष्ठ जी वहां आये और महाजनों तथा मन्त्रियों को बुला लिया।

बैठे राजसभां सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥

और जब सब लोग राज सभा में जाकर बैठे, तब मुनि ने भरत शत्रुघ्न दोनों भाइयों को बुला भेजा। वशिष्ठजी ने भरत को अपने पास बिठा लिया और नीति तथा धर्मयुक्त वचन कहा।

प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥
भूप धरमब्रतु सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥

पहले सब कथा मुनिवर (वशिष्ठजी) ने कही जैसी कुटिल करनी कैकेयी ने की थी। अनन्तर राम दशरथ जी के धर्म और सत्य प्रतिज्ञा को कहा कि जिन्होंने सत्य धर्म के कारण अपने शरीर को छोड़ प्रेम का निर्वाह किया।

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखनु सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥

फिर रामजी के गुण, शील और स्वभाव को कहते हुए वशिष्ठ जी के नेत्रों में जल आ गया और शरीर पुलकित हो गया (रोमांच) हो गया फिर लक्ष्मणजी और जानकीजी की प्रीति बखानते हुए ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह में मग्न हो गए।

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥ १६६ ॥

बिलखकर वशिष्ठ जी ने कहा भरत भावी प्रबल है, हानि, लाभ, जीवन, मरन, यश, अपयश सब विधाता के हाथ में है ॥ १६६ ॥

अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं॥

ऐसा विचार कर किसको दोष देवें और किस पर वृथा क्रोध करें? हे तात मन में विचार करके देखो राजा दशरथ सोच करने योग्य नहीं हैं।

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रान समाना॥

सोचिये उस ब्राह्मण को जो वेद विहीन हो और धर्म को छोड़ विषयों में फंसा हो। सोचिये उस राजा को जो नीति नहीं जानता और अपनी प्रजा प्राण के समान प्यारी नहीं।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥

वह वैश्य सोचने योग्य है जो धनवान् होकर कृपण (कन्जूस) हो तथा जो अतिथि का अपमान करे बहुत बोले, जिसको मान प्यारा हो और ज्ञान का घमण्ड करे।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई॥

फिर पति को धोखा देने वाली स्त्री सोचने योग्य होती है तथा जो खोटी हो, लड़ती हो और अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाली हो और सोचने योग्य वह ब्रह्मचारी जो अपने व्रत को छोड़ दे और गुरु की आज्ञा के अनुसार न चले।

दो०—सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥ १६७ ॥

वह गृहस्थ सोच करने योग्य है जो मोह वश धर्म मार्ग को छोड़ दे और वह यती सोचने योग्य होता है जो प्रपञ्च आसक्त हो और ज्ञान वैराग्य से रहित हो ॥ १६७ ॥

बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥

वह वानप्रस्थ सोचने योग्य होता है जिनको तप छोड़कर भोग अच्छा लगता है सोचने योग्य वह होता है जो चुगल हो, बिना कारण क्रोध करने वाला हो और माता-पिता तथा गुरु भाइयों से विरोध करने वाला हो।

सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरि जन होई॥

उसको सब प्रकार से सोचना चाहिए जो पराये काम को बिगाड़ने वाला हो अपने ही शरीर को पुष्ट करने वाला बड़ा निर्दयी हो। वह भी सब भांति से सोच करने योग्य है जो छल छोड़कर भगवान का भक्त नहीं है।

सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥

दशरथ जी सोच करने योग्य नहीं हैं जिनका प्रभाव चौदहों भुवन में प्रकट है। हे भरत ! ऐसा राजा न हुआ और न होने वाला है जैसे राजा तुम्हारे पिताजी हुए।

बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा॥
तीनि काल त्रिभुवन जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं॥

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, दिक्पाल सब दशरथजी के गुणों की कथा वर्णन करते हैं। तीनों काल और तीनों लोकों में राजा दशरथ जी के समान बड़भागी जगत् में कोई नहीं है।

दो०—कहहु तात केहि भांति कोउ करिहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥ १६८॥

कहो प्यारे ! किस भांति कोई उस राजा की बड़ाई करे जिनको रामचन्द्र, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न सरीखे चार पुत्र हैं॥ १६८॥

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी॥
यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू॥

सब प्रकार से राजा जी बड़े भाग्य वाले हैं उनके लिए शोक करना वृथा है। यह सुन मन में समझकर सोच करना छोड़ दो और राम की आज्ञा को सिर पर धारण कर वैसा ही करो।

रायं राजपदु तुम्ह कहुं दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा॥
तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी॥

राजा ने राज्यपद तुमको दिया है सो पिता का वचन तुमको सत्य करना चाहिए। उसने वचनों के लिए रामजी को तज दिया और उनकी चिन्ता में अपने शरीर को छोड़ दिया।

नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना॥
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम्ह कहं सब भांति भलाई॥

राजा को वचन प्यारे हुए प्राण प्यारे नहीं हुए इस कारण हे तात ! पिता के वचनों को प्रणाम करो। राजा की आज्ञा सिर धारण कर उसका प्रतिपाल करो इसमें तुम्हारी सब प्रकार से भलाई है और इसमें तुमको सब अच्छा कहेंगे।

परसुराम पितु अग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु अग्यां अघ अजसु न भयऊ॥

परशुराम जी ने पिता की आज्ञा की रक्षा की, कि अपनी माता (रेणुका) को मार डाला सब लोक जिनके साक्षी हैं। राजा ययाति को, पुत्र पुरु ने युवा अवस्था दे दी थी। पर पिता की आज्ञा के कारण उनको पाप नहीं लगा और न अपराध हुआ।

दो०—अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥ १६९॥

यह अनुचित है अथवा उचित इस विचार को छोड़कर जो पिता के वचन का पालन करते हैं वे सुख और सुयश के पात्र होते हैं और स्वर्ग में वास करते हैं॥ १६९॥

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू॥
सुरपुर नृपु हाइहि परितोषू। तुम्ह कहुं सुकृतु सुजसु नहिं दोषू॥

राजा का वचन अवश्य सत्य करो, प्रजा का पालन करो और शोक को त्याग दो। देवलोक में महाराज सन्तोष पावेंगे तुमको पुण्य और सुन्दर यश प्राप्त होगा, दोष नहीं होगा।

बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी॥

वेद में कहा है और सबका यह मत है कि जिसको पिता देवे वही पुत्र राज्य तिलक पावे। राज्य करो और ग्लानि छोड़ दो और मेरा वचन हितकारी जानकर मानो।

सुनि सुखु लहब राम बैदेहीं। अनुचित कहब न पंडित केहीं॥
कौसल्यादि सकल महतारीं। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारीं॥

सुनकर राम-जानकी सुख पावेंगे और कोई पण्डित अनुचित नहीं कहेंगे और कौशल्या आदि तुम्हारी मातायें भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी।

परम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि॥
सौंपेहु राजु राम के आएं। सेवा करेहु सनेह सुहाएं॥

क्योंकि वे मातायें तुम्हारा और राम का प्रेम जानती हैं, जो सब भांति तुमसे भली मानेंगी। रामजी के आने पर राज्य सौंप देना और उनकी सेवा करना।

दो०—कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएं उचित जस तस तब करब बहोरि॥ १७०॥

यह सुन मंत्री लोग हाथ जोड़कर कहने लगे कि गुरुजी की आज्ञा अवश्य मानिये और उसी के अनुसार कार्य कीजिए फिर रघुनाथजी के आने पर जैसा उचित हो वैसा करना॥ १७०॥

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥

कौशल्या ने धीरज धरकर कहा हे पुत्र! गुरु की जो आज्ञा है सो आदर से हित मानकर उसी के अनुसार कार्य करिये और काल की गति जानकर शोक को त्याग दीजिए।

बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि भांति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहं अवलंबा॥

हे पुत्र! रामजी वन को गये और राजा देवलोक गये और तुम इस प्रकार कतराते हो। कुटुम्बी, प्रजा, मन्त्री सब माता को हे पुत्र! तुम्हारा ही सहारा है।

लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू॥

विधाता की बाम गति और काल की कठिनता देख धीरज धरो, माता बलि जाय। गुरु की आज्ञा सिर पर धर उसी के अनुसार करो और प्रजा का पालन कर पुरजनों का दुःख दूर करो।

गुर के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु॥
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी॥

गुरु वशिष्ठजी का वचन और मन्त्रियों का अनुमोदन सुनते ही भरत के हृदय को भले लगे, जैसे चन्दन लगने से हृदय शीतल हो जाता है, फिर माता की सुन्दर वाणी जो शील, स्नेह और सीधेपन के रस से युक्त थीं।

छं०—सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सींवं सहज सनेह की॥

सीधेपन से रसयुक्त माता की वाणी सुन भरतजी व्याकुल हुए और कमल समान नेत्रों से जल बहकर हृदय के विरह-रूपी नवीन अंकुरों को सींचने लगा, उस समय भरतजी की यह दशा देखते ही सबको अपने-अपने शरीर की सुधि न रही। तुलसीदासजी कहते हैं कि उस समय सब लोग भरतजी के स्वाभाविक प्रेम को आदर से सराहने लगे॥ ७॥

सो०—भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिअं जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥ ७॥

धर्मधुरन्धर भरतजी कमल के समान हाथ जोड़कर धीरज धरकर, मानो अमृत में बोरे हों। ऐसे वचन कहकर सबको उत्तर देने लगे॥ ७॥

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥
मातु उचित धरि आयासु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउं कीन्हा॥

मुझको गुरुजी ने अच्छा उपदेश दिया, जो प्रजा, मन्त्री सबके सम्मति अनुसार है। फिर माता ने भी उचित आज्ञा दी, जिसको मैं मस्तक पर धारण करके करना चाहता हूं।

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किएं बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥

गुरु, माता-पिता, स्वामी और हितकारियों की वाणी सुनकर मन में प्रसन्न हो और भली-भाँति जानकर करना चाहिए, उचित है कि अनुचित ऐसा विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पातक का भार होता है।

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हउं नीकें। तदपि होत परितोषु न जी कें॥

तुम तो वही सीधी शिक्षा देते हो, जिसके करने से मेरा भला हो। यद्यपि मैं इसको भली-भाँति समझता हूं तो भी मेरे मन को सन्तोष नहीं होता है।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतरु देउं छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

अब तुम मेरी विनती सुन लो, तब मेरे योग्य जो हो वैसी शिक्षा दो। उत्तर देता हूं, अपराध क्षमा करना, क्योंकि दुःखित के दोष-गुण को साधुजन नहीं गिनते हैं।

दो०—पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु॥ १७१॥

पिता सुरपुर को, सीता-राम जिसके कारण वन को गये, वही राज मुझको करने को कहते हो, इससे आप सबने मेरा हित जाना है अथवा अपना बड़ा काज सोचा है॥ १७१॥

हित हमार सियपति सेवकाईं। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाईं।
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपायं मोर हित नाहीं॥

हमारा हित सीतापति रामचन्द्रजी की सेवा में है सो माता को कुटिलता ने हरण कर लिया ...लाईं॥
मैंने अपने मन में विचार कर देख लिया है कि और उपाय से मेरा हित नहीं है। ... नाहीं॥

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें॥ ...रे बिना चर-
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू॥

लक्ष्मण को देखे बिना और रामचन्द्रजी व सीताजी के चरणों का दर्शन किए बिना यह शोक का ... काहू॥
समाज राज्य किस गिनती में है, जैसे वस्त्र बिना गहनों का बोझ व्यर्थ है, जैसे वैराग्य बिना ब्रह्म क... कहहू॥
विचार व्यर्थ है।

सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जायं ...भ दिखे जोगा॥ ... यह मेरे खोटे
जायं जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु ... तुम जप ... हो। इस कारण

रोगयुक्त रोगी शरीर हो तो बहुत से भोग व्यर्थ हैं। जीव बिना सुन्दर देह ...
है सो सब रघुनाथजी के बिना व्यर्थ है।

जाउं राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आंक मोर हित ए... १७५॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कह... ...म है। इस स्वभाव से

इस कारण रामजी के पास जाऊं, यही आज्ञा दीजिए, एक ही बात मेरे हित की ...
राजा बनाकर अपना भला चाहते हो, सो मेरे स्नेह की जड़ता के वश कहते हो। ... बदर समाना॥

दो०—कैकई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज। ... बिमुख सबु कोई॥
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम कें राज॥ १७... ...थ में बेर के समान है। सो

...ता हूं कि ब्रह्मा विमुख है इसी
कैकेयी का पुत्र खोटी बुद्धि वाला राम से विमुख (विरोधी) निर्लज्ज ऐसा मैं ...
अधम के राज्य में तुम लोग मोह के वश होकर सुख चाहते हो॥ १७२॥

कहउं सांचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नरना... मत नाहीं॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि त... जहं पानी॥

मैं सत्य कहता हूं इसे सुनकर सब लोग विश्वास मानो कि राजा धर्मशील होना चाहिये ... सुनूंगा और सुख
ज्योंही हठ करके राज्य दोगे, त्योंही पृथ्वी रसातल को चली जायेगी।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू। ... सोचू॥
रायं राम कहुं काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा ... दुखारी॥

मेरे समान पापात्मा कौन है कि जिसके निमित्त सीता और रामचन्द्रजी वनवासी हुए, ... का भी मुझको कुछ
ने राम को वनवास दिया तो उनके बिछड़ते ही देवलोक को गमन किया। ... कारण से सीता और

मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुन... चरन मनु लावा॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्रान सहि जग ... छिताउं अभागी॥

मैं मूर्ख सब अनर्थों का कारण हूं जो बैठकर सावधानी से सब बातें सुन ... चरण में मन लगाया। मेरा
यह स्थान देखकर भी मेरे प्राण रह गये, इससे जो संसार में हंसी हुई उसे भी सह लि... पछिताऊं?

राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग ...
कहं लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लह...।
... ॥ १७६॥

... समझा... क रामचन्द्रजी के चरण देखे बिना जी...
...ज़लन ...गी॥ १७६॥

 मजी तो परम पवित्र हैं, विषय रस से विरक्त हैं, लालची राजा भोग के भूखे होते हैं। कहां
गुरु व... ने हृदय की कठोरता को कहूं जिसने वज्र का भी निरादर कर बड़ाई प्राप्त की है।

बन्दन लगने
रस से युक्त

दो०—कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥ १७३ ॥

छं०-

कारण से कार्य कठिन होता है मेरा दोष नहीं है कारण रूप अधिक से कार्यरूप कुलिश इन्द्र का ...ज्र कठोर है और पत्थर कारण है उसका कार्यरूप लोहा बड़ा कठोर होता है ॥ १७३ ॥

कैकेई भव तनु अनुरागे। पावँर प्रान अघाइ अभागे ॥
जौं प्रिय बिरहँ प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे ॥

सीधे ... कैकेयी के शरीर से उत्पन्न मेरे शरीर में महानीच मेरे प्राण बहुत प्रीति रखते हैं इस कारण ...त ही अभ... इन प्राणों को रामजी का वियोग प्रिय लगा तो अब आगे बहुत कुछ देखेंगे व

बहकर हृदय ... रूपी नवें
सबको अपने-अपने हैं। जो की
स्वाभाविक प्रेम

...सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ॥
सो०—भरत ...चवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू ॥

बचन ...क्ष्मण और सीताजी को वनवास दिया और पति को सुरपुर भेजकर हित किया, आप ...र अपयश लिया, प्रजा को शोक और सन्ताप दिया।

धर्मधुरन्धर
वचन कहकर सबको

...दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकईं सब कर काजू ॥
मोहि उपदे... मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ॥

मातु उचित ध... सुयश और स्वराज्य दिया, इस प्रकार कैकेयी ने सबका काम बना दिया। इससे ...ब क्या होगा, तिस पर भी तुम राजतिलक देने को कहते हो।

मुझको गुरुजी ने ...
मी उचित आज्ञा दी, ...

...र जनमि जग माहीं। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं ॥
गुर पितु ... बात सब बिधिहिं बनाई। प्रजा पांच कत करहु सहाई ॥

उचित कि... के उदर से जन्म लेकर जगत में यह मुझको कुछ भी अनुचित नहीं है। मेरी बात तो सब ... है और पांच पंच मिलकर, पंचायत करके क्यों मेरी सहायता करते हो।

गुरु, मात...
आनकर करना ...
का भार होता है

...ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार ॥ १७४ ॥

तुम्ह ... ने पकड़ लिया, फिर वातादिक त्रिदोष के वश हो गया और उसको बिच्छू ने काट खाया ...ो मदिरा पिला दी जाय, तब उसके बचने का कहो कौन-सा उपाय है ॥ १७४ ॥

जद्यपि
तुम तो...
समझता हूं तो भी

... सुअन जोगु जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई ॥
...य राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई ॥

अब तुम्ह विनय ...ोग्य जगत में जो कुछ चाहिए वही कलंक चतुर ब्रह्मा ने मुझको दिया। परन्तु ...ा छोटा भाई यह बड़ाई मुझको ब्रह्मा ने व्यर्थ ही दे दी।

ऊतरु देउ

अब तुम मेरी विन...
क्षमा करना, क्योंकि दुः...

...हु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका ॥
...हि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥

दो०—पितु सुर...

...राजतिलक करना चाहते हो सो राजा होना और राज्य करना सबको अच्छा लगता ...े किसको उत्तर दूं? जिसकी जैसी रुचि हो सो मुख से कहो।

एहि तें

पिता सुरपुर को,
इससे आप सबने मेरा हित जाना ह ...

सा॰ कोटि

अहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई॥
वे मूर्तु को सचराचर माहीं। जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं॥

विष और अकैकेयी समेत मुझको छोड़कर कहो किसके साथ किसने भलाई की? मेरे बिना चर-
ऐसे ही हे भऐसा कौन है जिनको सीता-राम प्राण के समान प्यारे नहीं हैं।

दो॰ानि सब कहं बड़ लाहू। अदिनु मोर नहिं दूषन काहू॥
सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सब जो कछु कहहू॥

हे भाज्य से मुझको बड़ी हानि पहुंची, वह सबको बड़ा लाभ दिखाई पड़ता है। यह मेरे खोटे
शोक समुन्द्र है किसी का दोष नहीं है। संदेहशील और प्रेम के वश तुम सब हो रहे हो। इस कारण
भा सब उचित है।

चलराम मातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु बिसेषि।
सबकहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि॥ १७५॥

है। प्रातः ही की माता का बहुत ही सीधा स्वभाव है और मुझ पर अधिक प्रेम है। इस स्वभाव से
मेरी दीनता देखकर वह राज करने को कहती हैं॥ १७५॥

मुनि बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥
धन्य हें तिलक साज सज सोऊ। भएं बिधि बिमुख बिमुख सबु कोई॥

वशिष्ठ
अपने घर वशिष्ठ ज्ञान के समुद्र हैं, यह जगत जानता है जिसको जगत हाथ में बेर के समान है। सो
करते चले मुझको राज्य तिलक देने को साज सजा रहे हैं, इससे मैं जानता हूं कि ब्रह्मा विमुख है इसी
कह मुझसे विमुख है।

जेहि रि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी। अंतहुं कीच तहां जहं पानी॥

जगत में रामचन्द्र सीता छोड़कर कौन नहीं कहेगा कि मेरा मत नहीं है सो सुनूंगा और सुख
मानकर सहूंगा, अन्त में कीच वहीं होती है, जहां पानी होता है।

डरु न मोहि जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी॥

मुझको, जगत कहे कि नीच है सो इसका मुझको डर नहीं और परलोक का भी मुझको कुछ
सोच नहीं। इ ही बड़ा भारी दावानल मेरे हृदय में धधक रहा है कि मेरे कारण से सीता और
रामचन्द्रजी दुःखी हुए।

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउं अभागी॥

सम्मुख में सो अच्छा लाभ तो लक्ष्मण ने पाया जो सब छोड़ रामजी के चरण में मन लगाया। मेरा
जन्म रामजी के वनवास के निमित्त हुआ। मैं अभागा झूठ बोलकर क्या पछिताऊं?

दो॰ आपनि दारुन दीनता कहउं सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥ १७६॥

चरण कठिन दीनता को मैं सबसे समझाकर कहता हूं कि रामचन्द्रजी के चरण देखे बिना जी
जलन नहीं जाती॥ १७६॥

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुवर बिनु बूझा ॥
एकहिं आंक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउं प्रभु पाहीं ॥

कोई उपाय मुझको नहीं सूझ पड़ता है, मेरे हृदय की बात बिना रामजी के और कौन जान सकता है। अब एक ही बात मन में जंच गई है कि प्रातःकाल प्रभु के पास चलूंगा।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ॥

यदि मैं खोटा और अपराधी हूं, क्योंकि मेरे ही कारण सब उपाधि हुई तो भी शरण जाने से मुझको अपने सामने देखकर सब अपराध क्षमा करके मुझ पर अधिक कृपा करेंगे।

सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥
अरिहकु अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥

क्योंकि रघुनाथजी शील, संकोच, बहुत सीधे स्वभाव, कृपा और स्नेह के स्थान हैं। रामजी ने शत्रु का भी बुरा नहीं किया है। मैं बालक अज्ञानी तो प्रभु का सेवक हूं यद्यपि मैं प्रभु से उलटा हूं तथापि प्रभु मुझको बालक और सेवक जानकर कृपा ही करेंगे।

तुम्ह पै पांच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी ॥

तुम सब पंच भी मेरा भला मानकर सुन्दर वाणी से आज्ञा और आशीर्वाद दो कि जिससे मेरी प्रार्थना सुन मुझको अपना सेवक जान फिर रामजी अयोध्या को लौट आयेंगे।

दो०—जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ॥ १७७ ॥

यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं मूर्ख दोषयुक्त दोषी हूं, तो भी [illegible]ी मुझको अपना जानकर नहीं त्यागेंगे, मुझको यह भरोसा है ॥ १७७ ॥

भरत बचन सब कहं प्रिय लागे। राम सनेह सुधां ज[illegible]पागे ॥
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत ज[illegible]गे ॥

भरतजी के वचन सबको ऐसे प्यारे लगे, मानो रामचन्द्रजी के स्नेह रूपी अमृ[illegible] डूबे हुए हैं। सब लोग रामजी के वियोग रूपी कठिन दुःख के दाग से अचेत हो रहे थे, वह वचन सुनकर ऐसे सचेत हो गए, जैसे मृतक मनुष्य संजीवन मन्त्र से जाग उठता है।

मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेहं बिकल भए[illegible] ॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु [illegible] ॥

माता, मन्त्री, गुरु, नगर के नर-नारी सब लोग स्नेह से बहुत व्याकुल हो गए। भर[illegible] सराह कर सब कहने लगे कि भरतजी ऐसे हैं, मानो रामचन्द्रजी की प्रेम-मूर्ति हों।

तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अ[illegible]
जो पावंरु अपनी जड़ताईं। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिल[illegible]

हे प्यारे भरत! तुम ऐसा न कहो, तुम तो रामजी को प्राण के समान प्यारे हो। जो [illegible]नी मूर्खता से माता कैकेयी की खोटाई तुमको लगावे और संदेह करे।

सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसिहि कलप सत नरक निकेता॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥

वे मूर्ख अपने करोड़ों पुरुषार्थों सहित सौ कल्प तक नरक स्थान में वास करें। गोमणि सांप के विष और अवगुणों को ग्रहण नहीं करती है, प्रत्युत विष को हरती और दुःख दरिद्र को दूर करती है ऐसे ही हे भरतजी! तुम कैकेयी के गर्भ में जन्मे हो, परन्तु सांप की मणि की भांति निर्दोष हो।

दो०—अवसि चलिअ बन रामु जहं भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥ १७८॥

हे भरतजी! वन को रामजी के पास अवश्य चलना चाहिए, तुमने अच्छी सलाह की है हम सब शोक समुन्द्र में डूब रहे थे, चेतन नहीं था, अब तुमने डूबने को अवलम्बन किया है॥ १७८॥

भा सब कें मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥

सबके मन कम आनन्द नहीं हुआ, जैसे मेघ की गर्जन को सुन पपीहा और मोरों को आनन्द होता है। प्रातः ही चलेंगे। यह सुन्दर निर्णय सुन भरतजी सबके प्राणों के प्यारे हो गये।

मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई॥
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सीलु सनेहु सराहत जाहीं॥

वशिष्ठ मुनि को प्रणाम कर और भरतजी को सिर नवाकर तथा सब लोग विदा लेकर अपने अपने घर चले। भरतजी का जीवन संसार में धन्य है, इस प्रकार भरतजी के शील और स्नेह की बड़ाई करते चले जा रहे थे।

कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी॥

सब आपस में कहने लगे कि बड़ा काम हुआ और अपने घर पहुंच कर चलने का सामान करने लगे। जिसको रखवाली को रखें, वह जाने मानो मेरी गर्दन मार दी गई।

कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। को न चहइ जग जीवन लाहू॥
केहि न भाव लछमण सिय रामू। सब कब प्रिय हिय दर्शन कामू॥

उनमें कोई कहने लगे कि रहने के लिए किसी से न कहे, जगत में जीवन का लाभ कौन नहीं जानता। लक्ष्मण, सीता और रामचन्द्रजी किसको अच्छे नहीं लगते, वे सबको हृदय से प्यारे हैं और उनके दर्शन की इच्छा सभी को है।

दो०—जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥ १७९॥

वह सुन्दर सम्पत्ति, घर का सुख, मित्र, माता-पिता, भाई सब जल जायें तो रामजी चरणों के सम्मुख होने में स्वभाव से सहायता न करें।

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदयं परभात पयाना॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारु। नगरु बाजि गज भवन भंडारु॥

घर-घर सब लोग अनेकों वाहन सवारी सजाने लगे और सब हृदय में प्रसन्न हुए कि सवेरे चलना होगा। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि नगर, घोड़े, हाथी, घर, भण्डार आदि।

संपति सब रघूपति कै आहि। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइं दोहाई ॥

सब सम्पत्ति रघुनाथजी की है सो बिना यत्न इसे छोड़कर चलूं। इसकी रक्षा का उपाय करके न चलूं तो अन्त में मेरी भलाई न होगी और पापियों का शिरोमणि कहलाऊंगा, क्योंकि स्वामी की शरण में रहना और उनकी आज्ञा पालन करना सेवक का धर्म है।

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई ॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुं निज धरम न डोले ॥

जो स्वामी का हित करे, वही सेवक है, करोड़ों दोष कोई क्यों न देवे। ऐसा विचार कर शुद्ध सेवकों को बुलाया, जो स्वप्न में भी अपने धर्म से नहीं डिगे थे।

कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे ॥

उनसे सब धर्म कह, सब भेद बताया और जो जिस लायक था, उसको वहां रख दिया सब उपाय करके रखवाले रखकर, तब रामजी की माता कौशल्या के पास भरतजी गये।

दो०—आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान ॥ १८० ॥

सब माताओं को दुःखी जानकर प्रेम से भली भाँति जानने वाले भरतजी ने पालकी और सुखपूर्वक बैठने वाला वाहन (सुखपाल) सजाने को कहा ॥ १८० ॥

चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी ॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥

चकवा-चकई की भांति नगर के नर-नारी सवेरा होना चाहने लगे और हृदय में बड़ी उत्कंठा हुई कि किसी प्रकार प्रातः हो जाये। सबको जागते हुए सारी रात्रि व्यतीत हो गई और सवेरा हो गया, तब भरतजी ने मन्त्रियों को बुलाया।

कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहि राजू ॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग संवारे ॥

और कहा कि तिलक का सब सामान ले लो, वन में मुनिजी रामजी का राज्य-तिलक करेंगे, जल्दी चलो। यह आज्ञा पाते ही मन्त्रियों ने जुहार कर घोड़े, रथ, हाथी सजाये।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना ॥

अरुन्धति और अग्निहोत्र के पात्रों को लेकर रथ पर चढ़ पहले वशिष्ठजी चले, फिर तप और तेज के निधान सब ब्राह्मणों का झुण्ड अनेक वाहनों पर चढ़कर चल।

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहं कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भई सब रानी ॥

नगर के सब लोगों ने अपने-अपने वाहन सजाकर चित्रकूट को कूच किया। सुन्दर पालकी जिसकी शोभा बखानी नहीं जा सकती उन पर चढ़-चढ़कर सब रानियां चलीं।

दो०-सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ॥ १८१॥

शुद्ध सेवकों को नगर सौंपकर सबको आदर सहित आगे चलाकर, तब राम-सीता के चरणों का स्मरण कर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले॥ १७१॥

राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥
बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहिं जाहीं॥

रामचन्द्रजी के दर्शन के वश सब नर-नारी ऐसे चले, मानो जल के प्यासे हाथियों का झुण्ड जल को देखने जा रहा हो। सीता और रामजी वन में हैं। यह मन में समझ छोटे भाई सहित भरत जी पैदल ही चले।

देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली॥

यह देख लोग प्रेम में मग्न होकर अपने वाहनों पर से उतरकर पैदल चलने लगे। सब लोगों ने घोड़े, हाथी, रथ इत्यादि त्याग दिये, तब भरतजी के समीप जाकर अपनी पालकी रखाकर रामजी की माता कौशल्या कोमल वाणी बोली।

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरें चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥

हे पुत्र! माँ बलि जाये रथ पर चढ़कर चलो नहीं तो यह प्यारा कुटुम्ब दुःखी होगा। तुम्हारे चलने से सब लाग चलेंगे, जो शोक से दुर्बल हो रहे हैं, वें मार्ग में पैदल चलने योग्य नहीं हैं।

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू॥

माता का यह वचन सिर पर चढ़ाये और उनके चरणों पर सिर नवाकर रथ पर चढ़कर भरत शत्रुघ्न दोनों भाई चलने लगे, पहिले दिन तमसा नदी के तट पर वास कर दूसरे दिन गोमती के किनारे पर वास किया।

दो०-पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग॥ १८२॥

दूध का आहार, फल, भोजन एक बार रात को सब लोग भोजन करने लगे। आभूषण और भोग छोड़ रामजी के निमित्त नेम और व्रत करने लगे॥ १८२॥

सई तीर बसि चले बिहाने। सृंगबेरपुर सब निअराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदयं बिचार करइ सबिषादा॥

तीसरे दिन सई नदी के तट पर वास कर, प्रातः होते ही चले और चौथे दिन शृंगबेरपुर के निकट पहुंच गये। जब निषाद ने यह समाचार सुना तब हृदय में दुखित होकर विचार करने लगा।

कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं॥
जौं पै जियं न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई॥

किस कारण भरत वन को जाते हैं, उनके मन में कुछ कपट भाव है ऐसा जान पड़ता है। जो मन में खटाई न होती तो अपने साथ में सेना क्यों लेते?

जानहिं सानुज रामहि मारी। करउं अकंटक राजु सुखारी॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी॥

भरत यह जानते हैं कि लक्ष्मण सहित राम को मारकर सुख से अकण्टक राज्य करूंगा। भरत ने राजनीति हृदय में नहीं रखी तब तो कलंक था, पर अब जीवन की हानि है।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा॥
का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं॥

सब देवता और असुर मिलकर युद्ध करें तो भी समर में रामजी को जीतने वाला कोई नहीं है, भरत ऐसा करें तो क्या अचरज है, क्योंकि बिष बेलि में अमृत के फल नहीं लगते।

दो०—अस बिचारि गुहं ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथवांसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु॥ १८३॥

ऐसा विचार कर गुह ने अपनी जाति के लोगों से कहा कि तुम सब लोग सावधान हो जाओ। पतवार और नावों को डुबो दो, फिर सब घाटों को रोक दो॥ १८३॥

होहु संजोइल रोकहु घाटा। ठटहु सकल मरै के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊं। जिअत न सुरसरि उतरन देऊं॥

सावधान होकर सब घाट रोक लो और मरने का सब ठाट रचो। सामने होकर भरत से लोहा लो, अर्थात युद्ध करो और जीते जी उन्हें गंगा पार उतरने मत दो।

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाई नृपु मैं जन नीचू। बड़ें भाग असि पाइअ मीचू॥

एक तो समर में मरना, फिर गंगा के किनारे, तिस पर रामजी का कार्य यह शरीर क्षण में नाश होने वाला है भरत भाई और मैं नीच हूं, बड़े भाग्य से ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।

स्वामि काज करिहउं रन रारी। जए धवलिहउं भुवन दस चारी॥
तजउं प्रान रघुनाथ निहारें। दुहूं हाथ मुद मोदक मोरें॥

स्वामी के कार्य से रण में युद्ध करूंगा और चौदह भुवन में अचल यश लूंगा। रघनाथजी के उपकार निमित्त प्राण तज दूंगा, मेरे दोनों हाथों में आनन्द के लड्डू हैं।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुं जासु न रेखा॥
जायं जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥

साधु मण्डली में जिनका लेखा नहीं और राम भक्त में जिनकी गिनती नहीं। उनका जीना जगत में व्यर्थ है। वह पृथ्वी पर भार रूप है अपने माता के यौवन रूपी वृक्ष को कुठार है।

दो०—बिगत बिषाद निषादपति सबहि बड़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु॥ १८४॥

इसी प्रकार निषादराज ने दुःख को दूर कर सबका उत्साह बढ़ाया और रामचन्द्रजी का स्मरण कर तुरन्त तरकस धनुष और कवच मांगा॥ १८४॥

बेगहु भाइहु सजहु संजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा॥

हे भाइयों! शीघ्र ही युद्ध का साज सजाओ हमारी आज्ञा सुन कोई मत डरो। हे नाथ! बहुत अच्छी बात है ऐसे सब प्रसन्नता से कहने लगे और एक को एक बहुत बढ़ावा देने लगे।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी॥
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथीं बांधि चढ़ाइन्हि धनहीं॥

सब निषादराज को जुहार करके चले जो बड़े शूरवीर और रण में जिनको लड़ाई अच्छी लगती थी, रामजी के चरण-कमल की जूतियों का स्मरण कर तरकस को बांध धनुष चढ़ाया।

अंगरी पहिरि कूंड़ि सिर धरहीं। फरसा बांस सेल सम करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खांड़े। कूदहिं गगन मनहुं छिति छांड़े॥

कवच पहन, लोहे का टोप सिर पर रखने लगे तथा फरसे, भाले और बरछी को सीधी करने लगे। कोई उनमें खांड़ा को बचाने और ऐसे कूदते, मानो पृथ्वी को छोड़ देते हैं।

निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥

ऐसे अपना-अपना साज-समान बनाकर गुह प्रधान को जुहार करने लगे। योद्धाओं को देख सबको लायक जानकर और नाम लेकर गुह ने सबका सम्मान किया।

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि आजु काजु बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहि॥ १८५॥

निषादराज ने कहा—हे भाइयों! धोखा मत देना, आज मुझको बड़ा काम है। यह सुनकर योद्धा क्रोध करके बोले—हे वीर! अधीर मत हो॥ १८५॥

राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवत पाउ न पाछें धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं॥

हे नाथ! रामजी के प्रताप और तुम्हारे बल से हम भरतजी की सेना को बिना योद्धा और बिना घोड़ों के कर देंगे। अपने जीते जी पीछे पांव नहीं रखेंगे और रुण्ड-मुण्ड से रणभूमि को भर देंगे।

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
एतना कहत छींक भइ बांए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥

निषादनाथ गुह ने अपने लोगों का अच्छा गोल देखकर कहा कि युद्ध का ढोल बजाओ इतना कहते ही बांई ओर छींक हुई, तब शकुन विचारने वालों ने कहा कि खेत सुहावना है बांई ओर की छींक अच्छी होती है। तुम्हारी ही जीत होगी।

बूढ़ु एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं

उनमें से एक वृद्ध व्यक्ति ने शकुन विचार कर कहा कि भरत से मिलना चाहिए, उनसे लड़ाई नहीं होगी। भरतजी तो रामजी को मनाने जा रहे हैं, ऐसा हमारा शकुन कहता है। रामजी और उनमें लड़ाई नहीं होगी और तुमसे भी लड़ाई नहीं होगी।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें॥

तुम सब योद्धाओं को इकट्ठे होकर घाट रोको और मैं वहां जाकर भरत जी से मिलकर भेद लूं और उनके मित्र-शत्रु तथा उदासीन गति को समझकर तब वैसा उपाय करूंगा।

दो०—गहहु घाट भट समिटि सब लेउं मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिउं आइ॥ १८६ ॥

यह सुनकर गुह ने कहा कि बुड्ढा अच्छी बात कहता है, क्योंकि बिना विचारे झटपट काम करके मूर्ख लोग पीछे से पछताते हैं। भरत के स्वभाव शील को बिना जाने युद्ध करने से हित की बड़ी हानि है।

लखब सनेहु सुभायं सुहाएं। बैरु प्रीति नहिं दुरइं दुराएं॥
अस कहि भेंट संजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मागे॥

भरतजी के सुन्दर स्वभाव से ही उनके स्नेह को समझ लूंगा, क्योंकि बैर और प्रीति छिपाने से नहीं छिपती। ऐसा कहकर भेंट की सामग्री तैयार करने लगे और कन्द-मूल, फल, खग, मृग इत्यादि माँगने लगे।

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए॥

मोटी और बड़ी तथा पुरानी रोहू मछलियों को भेंट में भर-भरकर कहार लोग ले अये। मिलने का साज सजा निषादराज मिलने को चले और मङ्गल की जड़ ऐसे अच्छे शकुन हुए।

देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा॥

निषादराज ने दूर से ही अपना नाम कह वशिष्ठजी को प्रणाम किया। वशिष्ठजी ने रामजी का प्यारा जान उसको आशीश दी और भरतजी से समझाकर कहा कि यह राम का सखा है।

राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥
गाउं जाति गुहं नाउं सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥

रामजी का सखा सुन भरतजी ने रथ छोड़ दिया और बड़े प्रेम की उमंग से उतरकर निषादराज से मिलने को चले। गुह ने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाकर, पृथ्वी पर मस्तक रख भरतजी को जुहार किया।

दो०—करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुं लखन सन भेंट भइ न हृदयं समाइ॥ १८७

निषादराज को दण्डवत् करते देखकर भरतजी ने उठाकर उसको हृदय से ऐसे लगाया, मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई और आनन्द हृदय में नहीं समाया॥ १८७॥

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥
धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला॥

भरतजी उस निषादराज से बड़े प्रेम के साथ मिले, जिसे देखकर सब लोग भरतजी के प्रेम की रीति की सराहना करने लगे देवता भी भरतजी की प्रीति देखकर मंगल की मूल धन्य-धन्य ध्वनि कर गुह की सराहना करते हुए फूल बरसाने लगे।

लोक बेद सब भांतिहि नीचा। जासु छांह छुइ लेइअ सींचा॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥

देवता लोग निषादराज को इस प्रकार सराहने लगे कि जो लोक और वेद में सब भांति से नीच है

और जिसकी छाया छु जाने से स्नान करना चाहिए। उस निषाद से रामजी के छोटे भाई भरतजी गोद भरकर पुलकित शरीर होकर मिल रहे हैं।

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा॥

राम-राम कहकर जो जम्हाई लेते हैं, उनके सामने पाप-समूह नहीं आते। इसको तो रामचन्द्रजी ने हृदय से लगा लिया और संसार में कुल सहित पवित्र किया।

करमनास जलु सुरसरि परइ। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

कर्मनाशा नदी का जल गङ्गाजी में पहुंचता है कहो उसको कौन अपने सिर पर नहीं धरता? रामजी का उलटा नाम मरा जपते हुए, बाल्मीकि ब्रह्मा के समान हुए हैं, इस बात को संसार जानता है।

दो०—स्वपच सबर खस जमन जड़ पावंर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥ १८८॥

श्वपच, शबर, खस, यवन, मूर्ख और नीच तथा कोल, भील ये भी राम-राम कहते हुए परम पवित्र और संसार में प्रसिद्ध हो जाते हैं॥ १८८॥

नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं॥

इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है ऐसा तो युग-युगान्तर से होता आया है। रामचन्द्रजी ने किसको बड़ाई नहीं दी? उन्होंने सब भक्तों को परम पावन किया है। इस प्रकार राम नाम की महिमा देवताओं ने कही सो सुनकर अयोध्यावासियों ने सुख पाया।

रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूंछी कुसल सुमंगल खेमा॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

राम-सखा से प्रेम सहित मिलकर भरतजी निषादराज के कुल सहित कुशल-क्षेम पूछने लगे। भरतजी का शील, स्नेह देखकर निषादराज उस समय विदेह हो गया।

सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥

मन में संकोच, स्नेह और आनन्द इतना बढ़ा कि खड़ा हो भरतजी को एकटक देखने लगा। धीरज धर भरतजी के चरणों को प्रणाम किया फिर प्रेम सहित हाथ जोड़ विनती करने लगा।

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहूं काल कुसल निज लेखी॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें॥

कुशल की जड़ आपके चरण कमल देखकर मैंने तीनों काल में अपना कुशल माना है। हे प्रभु! अब तो आपकी अधिक कृपा से करोड़ कुशल सहित मुझे आनन्द मङ्गल है।

दो०—समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जियं जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधि बंचित सोइ॥ १८९॥

मेरे कुशल का कर्म समझ और प्रभु की महिमा को जी में देख जो रामजी के चरणों का भजन

नहीं करता है, वह जगत में अपने कर्म से ठगा गया है अथवा विधाता ने उसको संसार से वंचित किया है ॥ १८६ ॥

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भांती ॥
राम कीन्ह आपन जबहीं तें। भयउं भुवन भूषन तबही तें ॥

मैं कपटी, डरपोक, खोटी बुद्धि, कुजाति, लोक और वेद से सब भांति से बाहर था परन्तु जब से रामचन्द्रजी ने मुझको अपनाया, तभी से मैं भुवन भूषण हो गया।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउं बहोरि भरत लघु भाई ॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारीं रानी ॥

अनन्तर निषादराज की प्रीति देख उनकी सुहावनी विनती सुन लक्ष्मणजी के छोटे भाई शत्रुघ्न जी उससे बार बार मिले, फिर निषादराज ने सुन्दर वाणी से अपना नाम कह आदर सहित सब रानियों को प्रणाम किया।

जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा ॥
निरखि निषादु नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी ॥

तब रानियां निषाद को समान जान आशीर्वाद देने लगीं कि सुख से सौ लाख वर्ष जीवित रहो। अयोध्या के नर-नारी निषादराज को देख ऐसे सुखी हुए, मानो लक्ष्मणजी मिल गए हों।

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू ॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई ॥

कहने लगे कि इसी ने जीने का लाभ पाया है जो रामजी के भाई भरतजी से बांह पसार कर मिला, निषाद अपने भाग्य की बड़ाई सुन मन में प्रसन्न हो, सबको अपने साथ लेकर चला।

दो०—सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ ॥ १९० ॥

फिर निषाद ने सबको समझाया तब वे स्वामी का रुख पा चले और घरों में, वृक्षों के नीचे, सरोवर के किनारे, बाग में, उपवन में जो यथायोग्य सबके लिए स्थान बना दिया ॥ १९० ॥

सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहं सब अंग सिथिल तब ॥
सोहत दिएं निषादहि लागू। जनु तनु धरें बिनय अनुरागू ॥

भरतजी ने जब शृंगबेरपुर को देखा, तब प्रेम के वश उसके सब अंग शिथिल हो गये और उस समय भरतजी निषाद के कंधे पर हाथ धरे हुए, ऐसे शोभायमान लगे मानो विषय और अनुराग शरीर धारण किए हुए हैं।

एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा। दीखि जाइ जग पावनि गंगा ॥
रामघाट कहं कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥

भरतजी ने इस प्रकार सब सेना सहित जाकर जगत को पवित्र करने वाली गंगाजी का दर्शन किया और रामघाट को प्रणाम करके मन में ऐसे प्रसन्न हुए मानो रामचन्द्रजी मिल गये।

करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
करि मज्जनु मागहिं कर जोरी। रामचंद्र पद प्रीति न थोरी ॥

ब्रह्ममय जल देख नगर के नर-नारी प्रसन्न होकर प्रणाम करने लगे और गंगाजी में स्नान कर हाथ जोड़कर यह मांगने लगे कि रामजी के चरणों में प्रीति थोड़ी न हो।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पानि बर मागउं एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥

भरतजी ने कहा हे गंगे! तुम्हारी यह रेणुका सब सुखों की दाता है और सेवकों को कामधेनु के समान हो, फिर हाथ जोड़कर यह वर मांगने लगे कि सीता रामजी के चरणों में हमारा स्वाभाविक प्रेम हो।

दो०—एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ॥ १६१॥

इस प्रकार भरतजी स्नान कर गुरुजी की आज्ञा पाकर और सब माताओं को स्नान किए हुए जानकर डेरे को लिवा चले॥ १६१॥

जहं तहं लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहिं गे दोउ भाई॥

जहां तहां लोगों ने डेरा किया, तब भरतजी ने सबकी जांच की। गुरु की सेवा कर और उनकी आज्ञा पाकर रामजी की माता कौशल्या के पास दोनों भाई गये।

चरन चांपि कहि कहि मृदु बानी। जननीं सकल भरत सनमानी॥
भाइहि सौंप मातु सेवकाई। आपु निषदहि लीन्ह बोलाई॥

और चरण दबाते हुए मधुर वाणी कहकर भरतजी ने सब माताओं का सम्मान किया। शत्रुघ्नजी को माताओं की सेवा में सौंपकर भरतजी ने निषादराज को बुला लिया।

चले सखा कर सों कर जोरें। सिथिल सरीरु सनेह न थोरें॥
पूंछत सखहि सो ठाउं देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥

सखा के हाथ में हाथ मिला भरतजी चले, शरीर ढीला हो रहा था स्नेह कम नहीं भरतजी ने सखा से पूछा कि वह स्थान दिखाओ और कुछ तो नेत्र और मन की जलन ठण्डी करो।

जहं सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहां लइ गयउ निषादू॥

जहां सीता-रामजी लक्ष्मणजी रात्रि में सोये थे, यह कहते ही नेत्रों में जल भर आया। भरतजी का वचन सुन निषाद को बड़ा दुःख हुआ और तुरन्त उन्हें वहां ले गया।

दो०—जहं सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेहं सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु॥ १६२॥

जहां सीसम के पवित्र वृक्ष की छाया में श्रीरामजी ने विश्राम किया था। उस स्थान को बड़े प्रेम से आदर सहित भरतजी ने दण्डवत प्रणाम किया॥ १६२॥

कुस सांथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई॥
चरन रेख रज आंखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥

कुश की सुन्दर साथरी देखकर भरतजी ने उसकी परिक्रमा करके उनको प्रणाम किया और वहां रामचन्द्रजी के अंकुस आदि रेखाओं की रज को लेकर नेत्रों से लगाया। उस समय की प्रीति की अधिकता कहते नहीं बनती।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे ॥
सजल बिलोचन हृदयं गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी ॥

और वहां सीताजी के वस्त्र में से गिरे हुए दो-चार सोने के बिन्दुओं (सुनहरी सितारे) देखकर भरतजी ने उठा लिया और सीताजी के समान समझकर उसे सिर पर रख लिया और नेत्रों में जलभर कर हृदय में ग्लानि मानकर सखा से कोमल वाणी सहित वचन बोले।

श्रीहत सीय बिरहं दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना ॥
पिता जनक देउं पटतर केही। करतल भोगु जोगु जग जेही ॥

ये सितारे भी सीता के विरह से शोभा रहित और ऐसे कान्तिहीन हो रहे हैं, जैसे अयोध्या के नर-नारी मलिन हो रहे हैं, श्री सीताजी के पिता जनकजी हैं, उनकी किससे उपमा दूं?

ससुर भानुकुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू ॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाइँ। जो बड़ होत सो राम बड़ाईं ॥

श्वसुर सूर्य वंश के सूर्य दशरथजी, जिनकी बड़ाई इन्द्र करते हैं और प्राणनाथ स्वामी जिनके रघुनाथजी हैं जो बड़ा होता है वह रामजी की दी हुई बड़ाई से बड़ा होता है।

दो०—पति देवता सुतीय मनि सीय सांथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेषि ॥ १९३ ॥

पतिव्रता स्त्रियों में शिरोमणि सीताजी की साथरी, कुशों की सेज देखकर भी मेरा हृदय हराकर नहीं फटता है, इससे मैं जानता हूं कि यह वज्र से भी अधिक कठोर है ॥ १९३ ॥

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे ॥

प्यार करने योग्य तो छोटे भाई लक्ष्मण हैं ऐसे किसी का न हुआ, न है न होने वाले हैं। नगर के लोगों के प्यारे माता पिता के दुलारे और सीता-रामजी के प्राण प्यारे हैं।

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भांती। निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती ॥

कोमल मूर्ति और सुकुमार स्वभाव, शरीर पर कभी तप्त वायु भी नहीं लगी। वे वन में वास करते हैं जहां सब भांति से विपत्ति है, हमारी यह छाती करोड़ वज्र का निरादर करती है।

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर ॥
पुरजन परिजन गुर पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता ॥

रामजी ने जन्म लेकर संसार को उजागर किया जो रामजी रूप, शील, सुख और गुणों के समुद्र हैं। नगर के लोग, कुटम्बी, गुरु, माता-पिता सबको राम का स्वभाव सुखदायी है।

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ॥
सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा ॥

बरी भी राम की बड़ाई करते हैं, रामजी बोलने, मिलने और विनय से मन को हर लेते हैं करोड़ सरस्वती और सौ करोड़ शेषजी भी प्रभु के गुणों की गिनती नहीं कर सकते।

दो०—सुखस्वरुप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान। १९४ ॥

सुख स्वरूप रघुवंश मणि, मङ्गल और आनन्द के निधान श्री रामचन्द्रजी पृथ्वी पर कुश बिछा कर सोते हैं, देव की गति बलवान है ॥ १६४ ॥

राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ॥
पलक नयन फनि मनि जेही भांती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती॥

रामचन्द्रजी ने दुःख तो कभी कानों से भी नहीं सुना, राजा दशरथ जी जीवन मूर्ति की भांति उनको देखते रहे, जिस भांति पलक नेत्रों की और सांप मणि की यत्न से रक्षा करता है, इसी प्रकार सब मातायें रामचन्द्रजी की बड़े यत्न से रक्षा करती थीं।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी॥
धिग कैकई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥

वे अब वन में पैदल फिरते हुए कन्द-मूल, फल और फूल का आहार करते हैं। अमंगल की मूल कैकेयी को धिक्कार है जो प्राणों से भी अधिक प्यारे से भी उल्टी हो गई।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी॥
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधातां। साइंदोह मोहि कीन्ह कुमाता॥

पापों के समुद्र मुझ अभागे को बार-बार धिक्कार है, जिसके कारण यह उत्पात हुए, मुझ विधाता ने कुल-कलंकी पैदा किया और खोटी माता ने मुझको स्वामी का बैरी बना दिया।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि॥

यह सुन प्रेम से निषाद समझाने लगे हे नाथ! व्यर्थ दुःख क्यों करते हो? रामजी तुमको और तुम राम को प्यारे हो, यह निर्दोष बात है, इसमें किसी को दोष नहीं, दोष प्रारब्ध का है।

छं०—बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राती पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी॥
तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौंहें किएं।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएं॥

बाम विधाता की करनी कठिन है जिसने माता को बावरी बना दिया, उस रात को यहां प्रभुजी बारम्बार आदर सहित तुम्हारी सराहना करते रहे। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस प्रकार समझाकर फिर निषाद ने कहा कि तुससे अधिक प्यारा रामजी को और कोई नहीं है, यह मैं सौगन्ध खाकर कहता हूं, अन्त में भला होगा, ऐसा जान अपने हृदय में धीरज रखिये ॥ ८॥

सो०—अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ बिश्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन॥ ८॥

रामचन्द्रजी अन्तर्यामी हैं घट-घट को जानने वाले हैं। संकोची, प्रेमी और कृपा के स्थान हैं। यह विचार मन में दृढ़ कर स्थान पर चलके विश्राम कीजिए ॥ ८॥

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा॥
यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी॥

सखा के वचन सुन हृदय में धीरज धरकर रामजी का स्मरण करते हुए भरतजी निवास स्थान को चले। यह समाचार पाकर नगर के नर-नारी बड़े दुःखित होकर देखने लगे।

परदखिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं॥

परिक्रमा करके प्रणाम करने और कैकेयी को बेकाम दोष देने लगे। नेत्रों में जल भर कर वाम विधाता को दोष देने लगे।

एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि॥
एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा॥

उन नर-नारियों में से कोई भरतजी की सराहना करने लगे, कोई बोला कि महाराज ने नेह निभाया, अपनी निन्दा और निषाद की प्रशंसा करते हैं। इस मोह और विषाद को कौन वर्णन कर सकता है? इस प्रकार रात भर सब लोग जागते रहे, जब प्रातः हुआ, तब गङ्गाजी पर उतारा होने लगा।

गुरहि सुनावं चढ़ाइ सुहाईं। नईं नाव सब मातु चढ़ाईं॥
दंड चारि महं भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि संभारा॥

गुरु वशिष्ठ जी को सुन्दर सुहावनी नाव पर चढ़ाकर फिर नई नाव पर सब माताओं को चढ़ाया, चार घड़ी में सब पार हो गये, तब भरतजी ने उतरकर सबको जांच की।

दो० प्रातक्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ।
आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ॥ १९५॥

भरतजी ने प्रातः शौच क्रिया आदि कृत्य कर माताओं के चरणों को प्रणाम कर गुरुजी को सिर नवा निषादों को आगे करके सेना को चला दिया॥ १९५॥

कियउ निषादनाथु अगुआईं। मातु पालकीं सकल चढ़ाईं॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा॥

निषादों के स्वामी गुह को अगुवा करके उसके पीछे माताओं की सब पालकी चलादी, भरत ने छोटे भाई शत्रुघ्न को बुलाकर साथ किया और ब्राह्मणों सहित वशिष्ठजी ने गमन किया।

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू॥
गवने भरत पयादेहिं पाए। कोतल संग जाहिं डोरिआए॥

भरतजी ने गङ्गाजी को प्रणाम किया और लक्ष्मण सहित राम का स्मरण किया। भरतजी पैदल चले और घोड़े संगम में लेकर सेवक बागडोर पकड़े कोतल हुए ले चला।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पायं सिधाए। हम कहं रथ गज बाजि बनाए॥

अच्छे सेवक बारम्बार कहने लगे कि हे नाथ! घोड़े पर सवार हो जाइये। रामजी पदल ही गये। इस कारण हमको रथ और घोड़े अच्छे नहीं लगते।

सिर भर जाउं उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी॥

सिर के बल जाऊं, ऐसा मुझको उचित है, क्योंकि सेवक का धर्म सबसे कठिन होता है। भरतजी की दशा देख और उनकी कोमल वाणी सुन सब सेवक लोग ग्लानि करने लगे।

दो०—भरत तीसरे पहर कहं कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥ १९६॥

तीसरे पहर को भरतजी ने प्रयागराज में प्रवेश किया और प्रीति से उमंग-उमंगकर राम-सीता, राम-सीता कहने लगे॥ १९६॥

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें॥
भरत पयादेहि आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू॥

पांवों में छाले ऐसे झलकने लगे, जैसे कमल की कलियों पर ओस की बूंदें झलकती हैं। भरतजी आज पैदल आये हैं, यह सुनकर समाज के लोग दुःखित हुए।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाए। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने॥

भरतजी ने खबर ले ली कि सब लोग आकर स्नान कर चुके, तब आप भी आये और त्रिवेणी को प्रणाम किया। विधिपूर्वक सित श्वेत वर्ण असित श्याम वर्ण गङ्गा यमुना के जल में स्नान किया और दान देकर तीर्थवासी ब्राह्मणों का सम्मान किया।

देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे॥
सकल काम प्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ॥

राम-सीताजी के वर्ण के समान श्याम और धाल गङ्गा-यमुना की हिलोरों को देखकर पुलकित शरीर हो और हाथ जोड़ कहने लगे। तीर्थराज प्रयाग सब कामनाओं को देने वाला है यह वेद में प्रसिद्ध है और जगत में भी इसका प्रभाव प्रकट है।

मागउं भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥
अस जियं जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी॥

अपना धर्म छोड़कर भीख मांगता हूं, अति दुःखित लोग क्या कुकर्म नहीं करते। ऐसे जी में जान कर हे सुजान सुदानी! मुझ याचक की वाणी सफल करो।

दो०—अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउं निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥ १९७॥

अर्थ में, धर्म में और काम में भी रुचि नहीं है और न मोक्ष गति ही चाहता हूं, मैं जन्म-जन्म रामजी के चरणों में प्रीति चाहता हूं। यह वरदान दीजिये, दूसरा कुछ नहीं चाहता हूं॥ १९७॥

जानहुं राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

रामजी मुझको चाहे खोटा करके जानें और चाहे गुरु और स्वामी का द्रोही कहें, किन्तु सीता-रामजी के चरणों में तुम्हारी कृपा से रात-दिन प्रीति बढ़े।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़े प्रेमु सब भांति भलाई॥

मेघ चाहे जन्म भर चातक की सुधि भूल जावे अथवा जल मांगते हुए उसके ऊपर ओले और पत्थर बरसावे, परन्तु पपीहे का रटना घटने से उसकी अनन्यता घट जाती है, सो पपीहे का रटना घटते

घटते भले ही घट जाये, परन्तु प्रेम बढ़ने में उसकी सब प्रकार से भलाई है।

कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥
भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥

जैसे अग्नि में तपने से सोने पर रंगत बढ़ती है, वैसे ही अत्यन्त प्यारे भगवान रामजी के चरणों में को निभाने से शोभा बढ़ती है। भरतजी के वचन को सुनकर त्रिवेणी में से सुन्दर और मङ्गल देने वाली कोमल वाणी हुई।

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥

हे प्यारे भरत! तुम सब भांति साधु हो और रामजी के चरणों में तुम्हारा प्रेम है मन में व्यर्थ ग्लानि करते हो और घबराते हो तुम्हारे समान रामजी को कोई प्यारा नहीं है।

दो०—तनु पुलकेउ हियं हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥ १९८॥

यह सुन भरतजी का शरीर पुलकायमान हो, हृदय में आनन्द हुआ और त्रिवेणी से ऐसे अनुकूल वचन को सुन भरतजी को धन्य-धन्य कह देवता आकाश से फूल बरसाने लगे॥ १९८॥

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पांचा। भरत सनेहु सीलु सुचि सांचा॥

तीर्थराज प्रयाग के निवासी वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासी सब प्रसन्न हुए। दस-पांच मिलकर कहने लगे, भरत का स्नेह, शील, पवित्र और सच्चा है।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे॥

रामचंद्रजी के सुन्दर गुणों को सुनते ही भरतजी श्रेष्ठ मुनि भारद्वाजजी के पास चले आये। भरतजी को प्रणाम करते मुनि ने देखा तो अपना मूर्तिवन्त भाग्य समझा।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहं जनु भजि पैठे॥

दौड़कर भरतजी को उठाकर छाती से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया मुनि ने आसन दिया तब भरतजी नीचा सिर करके ऐसे बैठ गए जैसे कोई सकुचा के घर में भागकर बैठना चाहता है, सो सकुच का कारण यह था कि—

मुनि पूंछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु संकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥

मुनि कुछ पूछेंगे तो क्या उत्तर दूंगा, यही बड़ा सोच था, तब भरद्वाज ऋषि उनके शील संकोच को देख बोले हे भरत! सुनो सब सुधि पाली, विधाता के कर्तव्य पर कुछ वश नहीं चलता।

दो०—तुम्ह गलानि जियं जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥ १९९॥

हे तात ! अपनी माता की करतूत समझकर अपने आप में तुम ग्लानि मत करो क्योंकि कैकेयी का दोष नहीं है, उसकी बुद्धि को सरस्वती ठगकर ले गई ॥ १९९ ॥

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध संमत दोऊ ॥
तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई ॥

यह कहते हुए कोई भला नहीं कहेगा, क्योंकि लोक और वेद, पण्डितों को दोनों सम्मत हैं। हे तात ! तुम्हारा निर्मल यश गाकर जीव लोक और वेद में बड़ाई पावेंगे।

लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई ॥
राउ सत्यब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई ॥

लोक और वेद दोनों की सम्मति से सब ऐसा कहते हैं कि जिसको पिता राज्य दे, वह पावे। सत्यवादी राजा तुमको बुलाकर राज्य देते तो भी सुख, धर्म और बड़ाई थी।

राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला ॥
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहुं पछितानी ॥

रामजी का वन जाना अनुचित हुआ, जिसको सुन सब जगत को दुःख हुआ। सो होनहार के वश वह अज्ञान रानी भी यह कुचाल करके दुःखी हुई और अन्त में पश्चात्ताप करना पड़ा।

तहंउं तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान असाधू ॥
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू ॥

उसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है जो अपराध बतलाये, वह अधम, अनजान और असाधु है। राज्य करते तो भी तुमको कोई दोष नहीं था और रामजी को भी सन्तोष होता।

दो०—अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु ॥ २०० ॥

हे भरत ! अब भी तुमने अच्छा किया, तुमको यही उचित है, क्योंकि संसार में सब सुमङ्गलों की जड़ रामचन्द्रजी के चरणों में स्नेह होना है ॥ २०० ॥

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना ॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥

राम-चरण का स्नेह तुम्हारा धन, जीवन और प्राण हैं, तुम्हारे समान बड़भागी दूसरा और कौन है ? हे तात ! यह तुम्हारे में आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि तुम दशरथजी के पुत्र और रामचन्द्रजी के प्यारे भाई हो।

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं ॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ॥

सुनो भरत ! रघुनाथजी के मन में तुम्हारे समान कोई प्रेम पात्र नहीं है। लक्ष्मणजी, राम और सीताजी को अति प्रीति से सब रात तुम्हारी सराहना करते हुए बीता।

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा ॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें ॥

हमने प्रयाग में नहाते समय यह भेद जाना कि 'जम्बू द्वीपे भरत खण्डे' सुन तुम्हारे प्रेम में मग्न होने लगे और तुम्हारे ऊपर रामचन्द्रजी का ऐसा प्रेम है, जैसे जड़ मनुष्य को सुख से जीने पर होता है।

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई ॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू ॥

यह भी रामजी की बड़ाई नहीं, क्योंकि वे अपने भक्तों के कुटम्ब का पालन करने वाले हैं, हे भरत ! मेरे मन में तुम ऐसे हो, मानो रामजी के स्नेह के देह को धारण किए हो।

दो०—तुम्ह कहं भरत कलंक यह हम सब कहं उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु ॥ २०१ ॥

हे भरत ! तुम्हारा यह कलंक हम सबको उपदेश के निमित्त है, राम भक्ति रूपी रस की सिद्धि के अर्थ यह समय गणेश रूप हुआ ॥ २०१ ॥

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अंथइहि कबहूं ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥

हे तात ! तुम्हारा यश नवीन चन्द्रमा है और रामचन्द्रजी के दास कुमुद और चकोर हैं। यह तुम्हारा निर्मल यश रूपी चन्द्रमा सदा उदय रहेगा, अस्त कभी नहीं होगा और घटेगा नहीं तथा संसार रूपी आकाश में दिन-दिन दूना होता रहेगा।

कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू ॥

मुक्त, मुमुक्षु, विषया ये तीनों प्रकार के कोक अथवा चकई तुम्हारे शब्द रूपी चन्द्रमा की छवि को नहीं हरेगा। रात-दिन सदा सबको सुख देने वाला है और कैकेयी का करतब रूपी राहु तुम्हारे यश रूपी चन्द्रमा को नहीं ग्रसेगा।

पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा ॥
राम भगत अब अमिअं अघाहूं। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूं ॥

रामचन्द्रजी के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत से पूर्ण रहेगा तथा गुरु बृहस्पति के अपमान रूपी दोष से भी दूषित नहीं होगा। श्रीरामचन्द्रजी के भक्त अब इसके अमृत से पूर्ण हैं और गुरु के अपमान दोष से दूषित नहीं है। श्रीरामचन्द्र के भक्त अब इसके अमृत से तृप्त हों, क्योंकि राम-भक्ति रस रूपी अमृत को सुलभ कर दिया है।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी ॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं ॥

भगीरथजी गंगाजी को लाये, जो स्मरण करते हैं, उन्हें सम्पूर्ण सुमङ्गलों को देने वाली है। दशरथजी के गुण-समूह वर्णन नहीं किये जा सकते, अधिक कौन कहे जिनके समान जगत् में कोई नहीं है।

दो०—जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुं निरखे नहीं अघाइ ॥ २०२ ॥

जिन महाराज दशरथ के स्नेह और संकोच-वश रामचन्द्रजी आकर प्रकट हुए, जिनको महादेवजी अपने हृदय के नेत्रों से देखते हुए कभी अगाते हैं ॥ २०२ ॥

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहं बस राम पेम मृगरूपा ॥
तात गलानि करहु जियं जाएं। डरहु दरिद्रहि पारसु पाएं ॥

तुमने कीर्ति रूपी ऐसा चन्द्रमा बना दिया जिसकी उपमा नहीं है और जिसमें रामजी का प्रेम मृग-रूप होकर वास करता है। हे तात! अपने जी में ग्लानि मत करो। पारस पाकर भी दरिद्रता से क्यों डरते हो!

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥

सुनो भरत! हम झूठ नहीं कहते हैं हम उदासीन हैं तपस्या करते हुए वन में रहते हैं सब साधनों का सुन्दर फल यह है कि जो हमने राम-लक्ष्मण और सीताजी का दर्शन पाया।

तेहि फल कर फलु दरसु तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ॥

उसी के फल का यह फल है कि तुम्हारे दर्शन पाये, प्रयागवासियों सहित हमारे धन्य भाग्य हैं हे भरत! तुम धन्य हो, तुमने जगत में यश लिया। ऐसे कह भरद्वाज प्रेम में मग्न हो गये।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन पयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥

मुनि के वचन सुन सभासद प्रसन्न हुए और धन्यवाद सहित प्रशंसा करके देवताओं ने फूल बर्षाये। धन्य-धन्य की और ध्वनि प्रयाग में होने लगी, जिसे सुन भरतजी प्रेम में मग्न हो गये।

दो०—पुलक गात हियं रामु सिय सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गदगद बैन॥ २०३॥

शरीर पुलकायमान हो गया, हृदय में सीता-राम बस रहे थे, कमल समान नेत्रों में जल भर मुनि मण्डली को प्रणाम कर गदगद कण्ठ हो, भरतजी यह बचन बोले॥ २०३॥

मुनि समाजु अरु तीरथराजू। सांचिहुं सपथ अघाइ अकाजू॥
एहिं थल जौं किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥

वहां मुनियों का समाज है और तीर्थराज है यहां तो सच्ची सौगन्ध खाना भी बहुत अकाज है। इस स्थान में जो कुछ बनाकर कहा जाय तो उसके समान कुछ पाप तथा नीचता नहीं है।

तुम्ह सर्बग्य कहउं सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियं जगु जानिहि पोचू॥

तुम सर्वज्ञ हो यह मैं सत्य भाव से कहता हूं और रघुनाथजी हृदय की बात को जानने वाले हैं। मुझको माता के कर्तव्य का शोक नहीं है और न मन में यह दुःख है कि जगत में लोग मुझको पोच जानेंगे।

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥
सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए॥

यह भी डर नहीं है कि परलोक बिगड़ेगा और पिता के मरने का शोक मुझे नहीं है जिसका पुण्य और सुन्दर सुयश लोकों में छा रहा है और लक्ष्मण-रामजी सरीखे पुत्र जिन्होंने पाये।

राम बिरहं तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥

रामजी के वियोग में क्षण में नाश होने वाले शरीर को छोड़कर देवलोक को सिधारे सो महाराज

के शोक का कौन प्रसंग है ? राम-लक्ष्मण और सीताजी के चरणों में जूतों के बिना नंगे पांव मुनि का वेष बनाये हुए वन-वन में फिरते हैं।

दो०—अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥ २०४॥

मृगा के छाल के वस्त्र, फल भोग, पृथ्वी पर शयन कुश पत्ते बिछाकर वृक्ष के नीचे वास करते हुए जाड़ा, गरमी, वर्षा और वायु का दुःख नित्य सह रहे हैं॥ २०४॥

एहि दुख दाहं दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं। सोधेउं सकल बिस्व मन माहीं॥

इस दुःख की जलन से मेरी छाती जलती रहती है, दिन को भूख नहीं लगती और रात को नींद नहीं आती। इस कुरोग की औषधि नहीं है, मन में सब संसार को मैंने ढूंढ़कर देखा है।

मातु कुमत बढ़ई अघ मूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बंसूला॥
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू॥

माता की कुमति इस पाप की जड़ बढ़ई के रूप में है उसने हमारा हित चाहा वही मानो बसूल बनाया है। उस वसूले से कलि-रूप कुकाठ का कुयन्त्र बनाया, उसको कठिन कुयन्त्र मंथरा के सिखाने से वरदान-रूपी खोटा यन्त्र पढ़ अवधपुरी में गाड़ दिया।

मोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा। घालेसि सब जगु बारहबाटा॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएं। बसइ अवध नहिं आन उपाएं॥

मेरे निमित्त यह कुठाट उसने रचा और सब जगत को (बनवासो रूपी कोल्हू में डालकर पेरा) और बारह बाट कर दिया। यह कुरोग राम के लौट आने से मिटेगा और अवधपुरी बसेगी, दूसरे किसी उपाय से यह कुरोग नहीं मिटेगा।

भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई। सबहिं कीन्हि बहु भांति बड़ाई॥
तात करहु जनि सोचु बिसेषी। सब दुखु मिटिहि राम पग देखी॥

भरत के वचन सुन मुनि ने सुख पाया और सब लोगों ने बहुत भांति से उनकी बड़ाई की। हे तात! अधिक सोच मत करो सब दुःख रामजी के चरणों को देखने से मिट जायेंगे।

दो०—करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि पेमप्रिय होहु।
कंदमूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु॥ २०५॥

ऐसा समझकर मुनि ने कहा—हे प्राण प्यारे भरत! आज हमारे अतिथि हो, हम जो कन्द-मूल फल और फूल देवें, सो प्रेम से ग्रहण करो। २०५॥

सुनि मुनि बचन भरत हियं सोचू। भयउ कुअवसर कठिन संकोचू॥
जानि गरुइ गुर गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी॥

मुनि के वचन सुन भरतजी के हृदय में सोच हुआ, एक तो कुअवसर (प्रयाग तीर्थ) है। उसमें संकोच हुआ, यह कि मुनिराज का भोजन लेना। इसी धर्म संकट में पड़ गये, फिर गुरु भरद्वाजजी की वाणी की गहराई जान उनके चरणों को प्रणाम कर भरतजी बोल उठे।

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यहु नाथ हमारा॥
भरत बचन मुनिबर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥

तुम्हारी आज्ञा को माथे पर रखकर करनी चाहिए हे नाथ ! हमारा परम धर्म है। भरत के वचन मुनिवर के मन को अच्छे लगे और सेवक तथा शिष्यों को अपने निकट बुलाया।

चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाये। प्रमुदित निज निज काज सिधाए ॥

उनसे कहा कि अच्छी आवभगत होनी चाहिए सो जानकर उनके निमित्त कन्द-मूल और फूल ले आओ। बहुत अच्छा कह उन्होंने मुनि को सिर नवाया और आनन्दित हो अपने-अपने काम को चल दिये।

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता ॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ॥

मुनि ने सोचा कि हमने बड़े पाहुनों को न्यौता दिया है, जैसा देवता हो वैसी ही उसकी पूजा भी करनी चाहिए। मुनि ने जब इस प्रकार विचार किया, तब उनके विचार सुनकर ऋद्धि-सिद्धि अणिमा आदि वहां आयीं और बोलीं—हे स्वामी ! जो आज्ञा हो वह करें।

दो०—राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज ॥ २०६ ॥

मुनि प्रसन्न हो कहने लगे कि भरत-शत्रुघ्न और सकल समाज समेत रामजी के वियोग से व्याकुल हैं, सो इनकी आवभगत करके इन लोगों की थकावट को दूर करो ॥ २०६ ॥

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥

ऋद्धि-सिद्धि ने मुनि की वाणी को सिर पर धर अपने को बड़ी भाग्यवती माना और सब सिद्धियां आपस में कहने लगी, रामजी के छोटे भाई भरतजी अतुलनीय अतिथि हैं।

मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥

मुनि के चरणों को प्रणाम कर आज वही करो, जिससे सब राज-समाज सुखी हो जाये, ऐसे कह कर बहुत सुन्दर घर बनाया, जिसको देखकर विमान भी उदास होने लगे।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे ॥
दासीं दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें ॥

भोगने योग्य बहुत से उत्तम पदार्थ उसमें भर दिये, जिनको देखकर देवता भी अभिलाषा करने लगे। दास और दासी सब समान लिए हुए मन में मन दिये राह ताकते रहे कि इनको इस समय क्या चाहिए, वही वस्तु मन के अनुसार देवें।

सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुं नाहीं ॥
प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही ॥

इस प्रकार सिद्धियों ने पल में वह सब सामान सजा दिया कि जो सुख सपने में भी देवलोक में नहीं है। पहले जैसी जिसकी रुचि थी, उसी के अनुसार सुन्दर सुख देने वाला निवास स्थान सबको दिया।

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहुं रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह ॥ २०७ ॥

फिर ऋषि ने परिवार समेत भरतजी को उन घरों में रहने की आज्ञा दी। ब्रह्मा को विस्मय देने वाला ऐश्वर्य मुनिवर ने अपने तप के बल से उत्पन्न किया ॥ २०७ ॥

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥

मुनि का प्रभाव जब भरतजी ने देखा तो लोकपाल और सब लोक छोटे लगने लगे। सुख के सामान बखाने नहीं जा सकते, जिसको देखते ही ज्ञानीजन भी वैराग्य को भूलने लगे।

आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना ॥

आसन, शैय्या, सुन्दर वस्त्र, चंदवा वन-बगीचे, वाटिका, लवारी फजिनमें अनेक प्रकार के पक्षी और मृगादि पशु विचर रहे थे। जहां वृक्षों में सुगन्धित फूल और अमृत के समान फल लग हुए तथा अनेक प्रकार के निर्मल जल वाले सरोवर भरे हुए थे।

असन पान सुचि अमिअ अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही कें। लखि अभिलाषु सुरेस सची कें ॥

खाने-पीने के पदार्थ, पवित्र निर्मल और अमृत के समान, जिनको देखकर लोग संयम के समान सकुचाने लगे। सबके घरों के द्वार पर कामधेनु और कल्पवृक्ष थे, जिनको देखकर इन्द्र-इन्द्राणी को भी उसमें वास करने की अभिलाषा हो गई।

रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहं सुलभ पदाथ चारी ॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा ॥

वसन्त ऋतु में तीनों प्रकार की वायु बह रही थी और सबको चारों पदाथ सुलभ हो गये, फूल, माला, चन्दन, स्त्री आदि भोग पदार्थों को देख सब लोग हर्ष और विस्मय के वश हो गये।

दो०—संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजरां राखे भा भिनुसार ॥ २०८ ॥

वे सब संपदा चकई और भरत चकवा और मुनि की आज्ञा खेलवाड़ बहेलिया था। उसने इन चकइयों को उस रात्रि में आश्रम-रूपी पिंजरों में बन्द कर रखा फिर सवेरा हो गया और रात्रि के कारण संग नहीं हुआ, अर्थात वे पदार्थ नही भोगे गये ॥ २०८ ॥

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा। नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा ॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी ॥

तीर्थराज में स्नान कर भरतजी ने समाज सहित मुनि को सिर नवाया। ऋषि की आज्ञा और आशीष को सिर पर रख और दण्डवत प्रणाम करके बहुत सी विनती की।

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें ॥
रामसखा कर दीन्हें लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू ॥

पंथ की गति में कुशल अर्थात रास्ता बतलाने वालों को साथ में लिवा और चित्रकूट को मन लगाकर चले। राम-सखा निषादराज के ऊपर अपना हाथ कर चलते हुए भरतजी ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो अनुराग देह धारण किये चला जा रहा है।

नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया ॥
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूंछत सखहि कहत मृदु बानी ॥

पांवों में जूते नहीं, सिर पर छाया नहीं और प्रेम, नेम, व्रत तथा धर्म बिना छल-कपट करते हुए मार्ग में चले जा रहे थे। मार्ग में राम-लक्ष्मण और सीताजी की कथा रामजी के सखा से पूछते थे और वह कोमल वाणी से कहता था, इसी प्रकार चले जा रहे थे।

राम बास थल बिटप बिलोकें। उर अनुराग रहत नहिं रोकें॥
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥

रामचन्द्रजी के वास का स्थान और वृक्ष को देखकर हृदय में प्रेम रोकने से भी नहीं रुकता था। भरतजी की यह दशा देखकर सब देवता फूल बरसाने लगे और मार्ग की पृथ्वी उस समय कोमल और आनन्द देने वाली हो गई।

दो०—किएं जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहं जस भा भरतहि जात॥ २०९॥

मेघ छाया किये जा रहे थे, सुख देने वाली सुन्दर वायु बह रही थी, वैसा सुखकारी मार्ग रामजी को भी नहीं हुआ, जैसा सुखकारी भरत को हुआ॥ २०९॥

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू॥

जगत में जड़ और चैतन्य बहुत से जीव हैं जिनको प्रभु ने देखा और जिन्होंने प्रभु को देखा वे सब परम पद के योग्य हुए और भरतजी के दर्शन से उनका भय, रोग मिट गया।

यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं॥
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥

यह बात भरतजी की बड़ाई की नहीं है जिनको रामजी मन में स्मरण करते हैं। संसार में एक बार भी जो कोई राम का नाम प्रेम से उच्चारण करते हैं वे तरण तरने और तारण तारने वाले हो जाते हैं, अर्थात स्वयं तरते और दूसरों को भी तारते हैं।

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मग मंगुल दाता॥
सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हियं लहहीं॥

भरतजी तो राम के प्यारे फिर छोटे भाई, उनके लिए मार्ग आनन्ददाता कैसे न हो, सिद्ध साधु और श्रेष्ठ मुनि ऐसे कहने और भरतजी को हृदय में देख आनन्दित होने लगे।

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुं पोचू॥
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेट न होई॥

भरतजी का प्रभाव देखकर इन्द्र को बड़ा सोच हुआ, क्योंकि जगत अच्छे को अच्छा और नीच को नीच है। इन्द्र ने सोचा यदि भरतजी रामचन्द्रजी को लौटा ले जायेंगे तो हमारा काम नहीं बनेगा। इन्द्र ने बृहस्पति से कहा—हे प्रभ! वही उपाय कीजिए, जिससे रामजी में और भरतजी में भेंट न हो।

दो०— रामु संकोची प्रेम बस भरत सपेम पयोधि।
बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि॥ २१०॥

रामजी तो संकोच और प्रेम के वश हैं और भरत प्रेम के समुद्र हैं, बनी हुई बात बिगड़ना चाहती है अब छल को ढूंढ़कर ऐसा उपाय करो, जिससे रामजी वन में ही रहें॥ २१०॥

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन बिनु लोचन जाने॥
कह गुरु बादि छोभ छल छांड़ू। इहां कपट करि होइहि भांडू॥

इन्द्र के वचन सुन बृहस्पतिजी हंसने लग और हजार नेत्र वाले इन्द्र को बिना नेत्र का अन्धा जाना। बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्र! व्यर्थ क्षोभ और छल को छोड़ दो। यहां कपट करोगे तो भंडा फूट जायेगा, अर्थात छल प्रकट हो जायेगा और विग्रह होगा।

मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥
तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी॥

हे सुरराज इन्द्र! मायापति भगवान के सेवक से माया करने पर वह माया उसी करने वाले के ऊपर उलटी पड़ती है। तब वनवास के निमित्त जो कुछ किया सो रामजी की इच्छा जानकर किया था, अब कुचाल उपद्रव करने से हानि होगी।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

हे इन्द्र! रघुनाथजी का स्वभाव सुनो, वे अपने अपराध से कभी किसी पर कोप नहीं करते हैं जो भगवद भक्त का अपराध करता है बस रामजी के क्रोध की अग्नि में जल जाता है।

लोकहुं बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥
भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

लोक और वेद में भी यह इतिहास प्रसिद्ध है, इस महिमा को दुर्वासा ऋषि जानते हैं। दुर्वाषा ऋषि और राजा अम्बरीक की कथा भागवत में है। भरतजी के समान रामजी का स्नेही कौन है कि संसार राम का नाम जपता है और रामजी उन भरतजी को जपते हैं।

दो०—मनहुं न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु॥ २११॥

हे अमरपति! रामचंद्रजी के भक्तों का अकाज तो मन में भी न लाइये। नहीं तो लोक में अपयश, परलोक में दुःख और दिन प्रतिदिन अनेक शोक होते हैं॥ २११॥

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा॥
मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई॥

हे इन्द्र! सुनो हमारा यह उपदेश है कि रामचन्द्रजी को अपना सेवक बहुत प्यारा है। सेवक की सेवा से सुख और उसके साथ बैर करने से अधिक बैर मानते हैं भाव यह है कि रामजी के सेवक भरतजी की सेवा करो और बैर का कार्य मत करो।

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

यद्यपि रामचन्द्रजी समान हैं उन्हें न किसी पर अनुराग है न कोप है, न किसी का पाप-पुन्य ग्रहण करते हैं और न दोष ग्रहण करते हैं, तथापि जगत में कर्म को मुख्यकर रखा है जो जैसा कर्म करता है वह वसा फल भोगता है।

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन अलेप अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत पेम बस॥

तो भी भक्त और अभक्त के हृदय के अनुसार सम-विषम विहार करते हैं यद्यपि राम निर्गुण, अलख, मान-रहित और एक रस हैं, राम भक्तों के वश से सगुण हुए हैं।

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जियं जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥

रामजी ने सदा सेवकों की रुचि रखी है, वेद, पुराण, साधु और देवता इस बात के साक्षी हैं ऐसा मन में जानकर खोटाई करना छोड़ दो और भरतजी के चरणों में प्रीति करो।

दो०—राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥ २१२॥

रामजी के भक्त परोपकारी, पराये दुःख से दुःखी, दयालु, भक्तों में शिरोमणि हैं, इसलिए हे इन्द्र भरतजी से मत डरो॥ २१२॥

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयस अनुसारी॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥

रामजी सत्य के समुद्र और देवताओं के हितकारी हैं और भरतजी उनकी आज्ञानुसार चलने वाले हैं। स्वार्थ के वश होकर तुम विकल हो रहे हो, इसमें भरतजी का कोई दोष नहीं है, यह तुम्हारी अज्ञानता है।

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥

बृहस्पतिजी की सुन्दर वाणी सुन इन्द्र को ज्ञान हुआ और मन की ग्लानि मिट गई, तब सुरराज इन्द्र भी प्रसन्नता से फूल वर्षाकर भरतजी के स्वभाव की बड़ाई करने लगे।

एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत पेमु मनहुं चहु पासा॥

इस भांति भरतजी मार्ग में जा रहे थे और उनकी दशा देख मुनि और सिद्ध लोग प्रसन्न हो रहे थे, भरतजी जब राम कह ऊपर सांस लेते तो मानो चारों ओर से प्रेम उमड़ता था।

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥

उनके प्रेम भरे वचन को सुनकर वज्र और पत्थर तक पिघलने लगे, अयोध्या के मनुष्यों का प्रेम बखाना नहीं जा सकता। बीच में वास करके यमुनाजी के तट पर आये। यमुनाजी का जल देखकर नेत्रों में जल आ गया।

दो०—रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज॥ २१३॥

यमुनाजी के जल का रंग रघुनाथजी के रंग के समान सुन्दर देखकर समाज सहित भरतजी के वियोग-रूपी समुद्र में मग्न होते हुए ज्ञान-रूपी जहाज पर चढ़े॥ २१३॥

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहि सुपासू॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी॥

उस दिन यमुना के तट पर वास कर समयानुसार सबको सुख हुआ। निषादराज की आज्ञा से रात्रि में ही घाट पर अनगिनत नावें आ गयीं, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

प्रात पार भए एकहि खेवां। तोषे रामसखा की सेवां॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई॥

प्रातःकाल होते ही सबके सब एक ही खेवे में यमुना पार हुए। निषादराज की इस सेवा से सन्तुष्ट हुए। स्नान कर यमुनाजी को सिर नवाकर भरतजी साथ में निषादराज और शत्रुघ्नजी को लेकर चले।

आगें मुनिबर बाहन आछें। राजसमाज जाइ सबु पाछें॥
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादें॥

आगे मुनिवर सुन्दर सवारी पर चले आ रहे थे और सब राज-समाज उनके पीछे जा रहा था। उनके पीछे दोनों भाई पैदल आभूषण, वस्त्र से सुन्दर सादे वेष में चल रहे थे।

सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा॥
जहं जहं राम बास बिश्रामा। तहं तहं करहिं सप्रेम प्रनामा॥

सेवक, मन्त्री, मित्र सबके साथ लक्ष्मण सीता और रामजी का स्मरण करते चले जा रहे थे, जहां जहां रामजी ने वास किया था, वहां-वहां प्रेम सहित प्रणाम करते जाते थे।

दो०—मगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ॥ २१४॥

मार्ग मे रहने वाले नर-नारी सुनते ही घर का काम छोड़ दौड़े आये और दोनों भाइयों के सुन्दर रूप को देख स्नेहवश ही अपने जन्म लेने का फल पाकर प्रसन्न होते हैं॥ २१४॥

कहहिं सपेम एक एक पाहीं। रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥
बय बपु बरन रूप सोइ आली। सीलु सनेह सरिस सम चाली॥

प्रेम सहित एक दूसरे से कहने लगीं हे सखी! ये राम-लक्ष्मण तो नहीं? अवस्था, शरीर, रंग रूप वैसा ही है और शील और स्नेह वही है और चाल भी उन्हीं के समान है।

बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगें अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहिं भेदा॥

परन्तु हे सखी! वह वेष नहीं है और न सीता संग में है, इनके आगे चतुरङ्गिनी सेना चली जा रही है। इनका मुख प्रसन्न नहीं है, मन में दुःख है। हे सखी! यही भेद है। इस बात से संदेह होता है कि राम-लक्ष्मण नहीं हैं।

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी॥

उनकी तर्कना सब स्त्रियों की समझ में आ गई और कहने लगीं कि तुम्हारे समान चतुर नहीं है। उनकी बड़ाई को सच्ची वाणी से प्रशंसा की, फिर दूसरी स्त्री बोली।

कहि सपेम सब कथा प्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी॥

प्रेम समेत सब प्रसंग कहा कि जिस प्रकार से रामचन्द्रजी का राज्य-रस भंग हुआ। फिर भरतजी के शील, स्नेह, स्वभाव और सुन्दर भाग्य की बड़ाई करने लगी।

दो०—चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुवरहि भरत सरिस को आजु ॥ २१५ ॥

राम में इनका स्नेह है इस कारण पैदल चलते और फल खाते हुए पिता के दिये हुए राज्य को त्याग कर रामजी को मन में मनाते जाते हैं, आज भरत के समान कौन है ॥ २१५ ॥

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू ॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई ॥

भरतजी का भ्रातृ-भक्ति आचरण कहने-सुनने से दुःख और दोषों का नाश होता है। हे सखी, भरतजी की बड़ाई में जो कुछ कहा जाय वह थोड़ा ही है, रामजी के भाई ऐसे क्यों न हों।

हम सब सानुज भरतहि देखें। भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं ॥

हमारा शत्रुघ्न सहित भरतजी को देखने से स्त्रियों में धन्य हुई। भरतजी के गुण सुन और उनकी दशा देखकर सब पछताने लगीं कि कैकेयी ऐसी माता के योग्य यह पुत्र नहीं है।

कोउ कह दूषनू रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ॥
कहं हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी ॥

उनमें से कोई स्त्री कहती कि रानी का दोष नहीं है सब विधाता ने किया है जो हमको इस समय दाहिन हो रहा है, कहां हम लोग और वेद से ही छोटे कुल और मलीन कर्म की स्त्रियां हैं।

बसहिं कुदेस कुगांव कुबामा। कहं यह दरसु पुन्य परिनामा ॥
अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ॥

कुदेश, कुगांव और कुठौर में रहती हैं, ये कहां प्राप्त हो सकते थे, यह तो हमारे पुण्य का फल है जो इनके दर्शन हुए। ऐसे आनन्द और अचम्भे की बात गांव के स्त्री और पुरुष करने लगे, मानो मरुभूमि (मरु देश की रेतीली पृथ्वी) पर कल्प-वृक्ष उपजा हो।

दो०—भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु ॥ २१६ ॥

भरतजी के दर्शन करते ही मार्गवासियों के भाग्य खुल गये हों, मानो भाग्यवश सिंहल द्वीप वासियों को प्रयाग सुलभ हो गया हो ॥ २१६ ॥

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ॥

अपने गुणों के सहित रामजी के गुणों की कथा सुनते और उन्हीं का स्मरण करते हुए भरतजी चले जा रहे थे। तीर्थ और मुनियों के आश्रम तथा देवताओं के मन्दिरों को देखकर स्नान करते और प्रणाम करते जाते थे।

मनहीं मन मागहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू ॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी ॥

मन ही मन यह वरदान मांगते थे कि सीता-रामजी के चरण-कमलों में प्रीति हो। किरात, कोल वन में रहने वाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, यती योगी, सन्यासी मिले।

करि प्रनामु पूंछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं॥

उनको प्रणाम कर जिनसे-तिनसे पूछते, राम-लक्ष्मण और सीताजी किस वन में हैं? वे रामजी का सब समाचार कहते और भरतजी को देख अपने जन्म लेने का फल पाते।

जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी॥

जो मनुष्य कहते कि राम को कुशलपूर्वक देखा है, वे मनुष्य भरतजी को राम-लक्ष्मणजी के समान प्यारे लगते। इसी प्रकार सबसे मधुर वाणी से पूछते व राम वनवास की कथा सुनते।

दो०–तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥ २१७॥

उस दिन मार्ग में वास करके प्रातःकाल होते ही रघुनाथजी का स्मरण करके चले। रामचन्द्रजी के दर्शन की मन में अभिलाषा बढ़ रही थी और भरतजी के साथ में सबको उन्हीं के समान रामचन्द्रजी के दर्शन की इच्छा थी॥ २१७॥

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू॥

सबको मंगल शकुन होने लगे, सुखदायक नेत्र और भुजा फड़कने लगीं। भरतजी को समाज सहित उत्साह हुआ कि रामजी मिलेंगे और दुःख तथा हृदय की जलन मिट गई।

करत मनोरथ जस जियं जाके। जाहिं सनेह सुरां सब छाके॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन पेम बस बोलहिं॥

जैसा जिसके मन में था, मनोरथ करते प्रेम-रूपी अमृत से सब थके हुए चले जा रहे थे। उस समय सबके अंग ढीले पड़ गये। मार्ग में चरण रखते हुए डगमग डोलने और सब प्रेमवश गदगद वचन बोलने लगे।

रामसखां तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥

उसी समय गुह ने पर्वतों में शिरोमणि सहज सुहावन चित्रकूट पर्वत का दर्शन कराया, जिनके निकट मन्दाकिनी नदी के किनारे सीता सहित दोनों भाई वास करते हैं।

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राजसमाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥

उसे देख सब जानकी के जीवन श्रीराम की जय हो! यह कह दण्डवत प्रणाम करने लगे। सब राज-समाज प्रेम में ऐसा मग्न हो गया, मानो रघुनाथजी अवधपुरी को लौट चले।

दो०–भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥ २१८॥

उस समय भरतजी को जैसा प्रेम था, उसका वर्णन शेषजी भी नहीं कह सकते। कवि के लिए

तो ऐसा कठिन है, जैसे अहंकार और ममता से युक्त मलिन मनुष्य को ब्रह्म का सुख का आनन्द कठिन है ॥ २१८ ॥

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें ॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीतें। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें ॥

सब लोग श्री रामचन्द्रजी के स्नेह से शिथिल थे कि सूर्य अस्त होने पर दो कोस तक गये। जल-थल देखकर वास किया, रात्रि समाप्त होने पर रघुनाथजी के प्यारे व रामजी की प्रीति से युक्त रामजी जिनको प्यारे थे, ऐसे भरतजी ने गमन किया।

उहां रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयं सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए ॥

वहां रामचन्द्रजी कुछ रात रहे, सोने पर सीताजी ने ऐसा स्वप्न देखा कि समाज सहित मानो भरतजी आये हैं और नाथ के वियोग के ताप से उनका शरीर सन्तप्त है।

सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी ॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन ॥

यह लोग मलिन मन, उदास, दीन और दुःखी हैं और सासुओं का और ही अनुहार देखा। सीता जी का स्वप्न सुनकर रामजी के नेत्रों में जल भर आया। सोच और असोच को दूर करने वाले राम सोच के वश हो गये।

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाइ सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥

हे लक्ष्मण ! यह स्वप्न अच्छा नहीं होगा, कोई कठिन कुचाल सुनाएगा। ऐसा कहकर भाई समेत स्नान किया और शिवजी की पूजा करके साधुओं का सम्मान किया।

छं०—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥१॥

देव मुनियों का सम्मान और बन्दना करके बैठे, फिर उत्तर दिशा की ओर देखने लगे तो देखा कि आकाश में धूल छा रही है, बहुत से पक्षी और मृग, पशु भागते हुए व्याकुल होकर आश्रम में गये, तुलसीदासजी कहते हैं कि तब तो राम-लक्ष्मण यह देखकर उठे कि क्या कारण है जो ये वनचर जीव भागकर आये हैं मन में चकित होकर विचारने लगे, उसी समय कोल-भीलों ने भरतजी के आने का सब समाचार आकर कहा ॥ ६ ॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥ १ ॥

भरत का आगमन-रूपी सुन्दर आनन्ददायक वचन सुनते ही श्री रामचन्द्रजी मन में अति आनन्दित हुए, शरीर में पुलकावलि छा गई। तुलसीदासजी कहते हैं कि शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्रों में स्नेह का जल भर आया ॥ ६ ॥

बहुरि सोचबस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥

फिर रामचन्द्रजी शोक के वश हो गए कि यहां भरत के आने का कौन सा कारण है? फिर एक ने आकर कहा कि भरत के साथ में बहुत-सी चतुरङ्गिनी सेना है।

सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥

सो सुनकर रामचन्द्रजी को बड़ा सोच हुआ कि इधर पिता का वचन उधर भाई का संकोच कि हमको मनाकर लौटा ले जाने के लिए तो नहीं आ रहे हैं? भरतजी का स्वभाव मन में समझकर प्रभु के चित्त में किसी कारण स्थिरता नहीं पाता था।

समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुं साधु सयाने॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयं खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥

तब फिर यह जानकर सावधान हो गये कि भरतजी चतुर साधु हैं और हमारे कहने में हैं। हमारी आज्ञा के अनुसार चलने वाले हैं। लक्ष्मण ने प्रभु के हृदय में हलचल देखी तब समय के अनुसार विचार करके कहने लगे।

बिनु पूछें कछु कहउं गोसाईं। सेवकु समयं न ढीठ ढिठाई॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउं अनुगामी॥

हे स्वामी! बिना पूछे हुए कुछ कहता हूं, सो क्षमा करना क्योंकि जो सेवक समय पाकर ढिठाई करे वह ढीठ नहीं होता है। हे स्वामी! तुम सर्वज्ञ हो, शिरोमणि हो मैं सेवक हूं, और अपनी समझ के अनुसार कहता हूं।

दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियं जानिअ आपु समान॥२१६॥

हे नाथ! आप सुहृद हैं और आप बहुत सीधे चित्तवाले शील और स्नेह के निधान हैं और आप जी में सबकी प्रीति का विश्वास करके सबको अपने समान जानते हैं॥ २१६॥

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई॥
भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥

विषयी जीव प्रभुता पाकर मूर्ख हो अज्ञान के वश अपने को जानते हैं भरत तो नीति के जानने वाले साधु और चतुर हैं और आपके चरणों में प्रेम है यह बात सब जानते हैं।

तेऊ आजु राम पद पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबन्धु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनबास एकाकी॥

वे भी आज राज्याधिकार पाकर धर्म की मर्यादा मिटाकर चले हैं। कपटी और खोटे भाई (भरत) ने बुरा समय देख और रामजी को वन में अकेले वास करते हुए जानकर।

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई॥

मन में बुरी सलाह करके समाज सजाकर अकण्टक (बेखटके) राज्य करने को आते हैं करोड़ों प्रकार की खोटाई सोचकर सेना इकट्ठी करके दोनों भाई आये हैं।

जौं जियं होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥
भरतहि दोसु देइ को जाएं। जग बौराइ राज पदु पाएं॥

जो जी में कपट कुचाल न होती तो रथ, घोड़े और हाथियों की पांति कैसे अच्छी लगती? भरत को वृथा दोष कौन दे, राज्य का अधिकार पाने से जगत् बौरा जाता है।

दो०—ससि गुर तिय गामी नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥ २२०॥

चन्द्रमा ने गुरु की स्त्री से सम्भोग किया, राजा नहुष मुनियों की पालकी लगाकर उस पर चढ़े, लोक और वेद से विरुद्ध राजा वेणु के समान नीच कौन हुआ॥ २२०॥

सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥

राजा सहसबाहु, इन्द्र त्रिशंकु इनमें किसको राज्य का मद, अहंकार ने कलंक नहीं दिया। भरत जी ने यह उचित उपाय किया। शत्रु का ऋण कुछ भी नहीं रखूंगा। 'रिपु ऋण रञ्चक रखिये न काऊ' शत्र और ऋण कभी थोड़ा भी नहीं रखना चाहिए।

एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी॥

परन्तु भरत ने एक यही अच्छी बात नहीं की कि रामजी को असहाय जान निरादर किया सो आज युद्ध में प्रेम सहित रामजी का मुख देखकर अच्छी तरह समझ पड़ेगी।

एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाषी॥

इतना कहते ही नीति रस को तो भूल गये और रस का वृक्ष पुलकावली के बहाने फूल आया प्रभु के चरणों को प्रणाम कर और चरणों की धूलि सिर पर रख सत्य और स्वाभाविक बल कह लक्ष्मण जी बोले।

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहि उपचार न थोरा॥
कहं लगि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥

हे नाथ मेरी बात को आप अनुचित न मानिए। भरतजी ने हमारे आपके मारने के लिए थोड़ा सा उपाय नहीं किया कहां तक कहें और मन मारे रहें। हे नाथ! आप हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में हैं।

दो०—छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।
लातहुं मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥ २२१॥

हम क्षत्रिय जाति हैं, रघुवंश में हमारा जन्म है, रामानुज रामचन्द्र जी के छोटे भाई कहलाते हैं, यह जगत् जानता है। लातों के मारे तो धूल भी सिर पर चढ़ती है; धूल के समान नीच कौन है, वह भी तो बदला लेना चाहती है॥ २२१॥

उठि कर जोरि रजायसु मागा। मनहुं बीर रस सोवत जागा॥
बांधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासुन सायकु हाथा॥

यह कह लक्ष्मणजी उठे और हाथ जोड़ आज्ञा मांगी, मानो वीर रस सोते से जाग उठा। लक्ष्मण जी सिर पर जटा बांध कटि में तर्कश कस हाथ में धनुष बाण सुधार कहने लगे।

आजु राम सेवक जसु लेउं। भरतहि समर सिखावन देउं॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुं समर सेज दोउ भाइ॥

आज रामजी के सेवक होने का यश लूं और भरत को समर में शिक्षा दूं कि रामजी के निरादर का फल पाकर दोनों भाई युद्ध-रूपी सेज पर शयन करें।

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउं रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥

सब समाज अच्छा बना, आज पिछली रिस प्रकट करूंगा, जैसे हाथियों के झुंड को अकेला सिंह मारता है, जैसे अकेला बाज छोटी चिड़ियों को लपेट लेता है।

तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउं खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउं रन राम दोहाई॥

वैसे ही भरत को सेना समेत शत्रुघ्न सहित रोककर खेत में गिरा दूंगा, जो शिवजी आकर सहायता करेंगे तो भी रामजी की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि लड़ाई में मरूंगा।

दो०—अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगवान॥ २२२॥

इस प्रकार बड़े क्रोध के साथ जब ये बातें लक्ष्मणजी ने कहीं, तब उनको क्रोधित देख प्रमाण करने योग्य सौगन्ध सुनकर सब लोक और लोकपाल डर और घबड़ाकर भागने की इच्छा करने लगे। २२२॥

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥

जगत मारे डरके बेसुध होने लगा, तब लक्ष्मणजी के बाहुबल की बहुत सराहना करती हुई आकाशवाणी हुई कि हे तात लक्ष्मण! तुम्हारे बल और प्रताप को कौन कहता है?

अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

अयोग्य और योग्य जो कुछ काम हो, उसे समझकर करने से सब कोई अच्छा कहते हैं जो सहसा काम करके पीछे पछताते हैं वेद और बुद्धिजन कहते हैं कि वे बुद्धिमान नहीं होते।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयं सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥

देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये, तब रामचन्द्रजी और सीताजी ने आदर सहित उनका सम्मान किया, फिर रामजी बोले, हे तात! तुमने नीति तो सुहावनी कही। हे भाई लक्ष्मण! राज्य-मद कठिन होता है।

जो अचवंत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महं सुना न दीसा॥

उस राज्य को पाकर वही राजा मतवाले हो जाते हैं, जिन्होंने साधु समाज का सेवन नहीं किया। सुनो लक्ष्मण! भरत के समान भला कोई ब्रह्मा की सृष्टि में न सुना और न देखा।

दो०—भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥ २२३ ॥

भरत को तो ब्रह्मा, विष्णु और महादेव की पदवी पाकर भी राज्य का मद नहीं होगा, क्या कांजी के बूंदों से कभी क्षीर-सागर फट सकता है ॥ २२३ ॥

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ॥

अंधकार दोपहर के सूर्य को भले ही निगल जाय, चाहे आकाश मेघों में मिल जाय, गाय के खुर के जल में भले ही अगस्त्यजी डूब जायें, पृथ्वी चाहे अपनी क्षमा को छोड़ दे।

मसक फूंक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥

चाहे मस्से की फूंक से सुमेरु उड़ जाये, परन्तु हे भाई! भरत को राज्य का अभिमान नहीं होगा। हे लक्ष्मण! तुम्हारी सौगन्ध और पिता दशरथ की आन है कि भरतजी के समान शुद्ध निष्कपट और अच्छा भाई कहीं नहीं है।

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु विधाता ॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥

हे प्यारे लक्ष्मण! सुन्दर गुण दूध के समान, अवगुण जल के समान है। विधाता ने संसार इन दोनों को मिलाकर रचे हैं, भरत इस सूर्यवंश-रूपी सरोवर में हंस हैं। यहां जन्म लेकर उन्होंने गुण व दोष का विभाजन कर दिया जैसे हंस दूध और जल का विभाजन कर देता है।

गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥

गुण रूप दूध ग्रहण कर और अवगुण रूप जल छोड़, अपने यश से जगत को प्रकाशित कर दिया। भरत के गुण, शील, स्वभाव को कहते हुए रघुनाथजी प्रेम के समुद्र में मग्न हो गये।

दो०— सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु ॥ २२४ ॥

रामचन्द्रजी की वाणी सुन और भरत पर उनका स्नेह देखकर देवता सराहना करने लगे कि रामचन्द्रजी के समान कृपानिधान कौन है ॥ २२४ ॥

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥

संसार में भरत का जन्म न होता तो सब धर्मों की धुरी को पृथ्वी पर कौन धारण करता? कवियों को कठिन है ऐसे भरत के गुणों की कथा को हे रघुनाथजी तुम्हारे बिना कौन जाने?

लखन राम सियं सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहां भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनीं पुनीत नहाए ॥

राम-लक्ष्मण और सीताजी ने देववाणी सुन बहुत सुख पाया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यहां भरतजी ने समाज समेत आकर पवित्र नदी मन्दाकिनी में स्नान किया।

सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुर सचिव नियोगा ॥
चले भरतु जहं सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई ॥

नदी के तट पर सब लोगों को ठहराकर माता, गुरु और मन्त्रियों से आज्ञा मांगकर जहां सीता-रामजी थे, वहां पर निषादराज और शत्रुघ्न सहित भरतजी चले।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं ॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊं। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊं ॥

माता का कर्तव्य समझ भरतजी सकुचाने और मन में अनेक कुतर्क करने लगे कि रामजी, लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुन, इस स्थान को छोड़ कहीं दूसरे स्थान को चले न जायें।

दो०—मातु मते महुं मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥ २२५ ॥

माता के मत में मुझको जानकर कुछ कहें सो थोड़ा है, परन्तु मेरे पाप और अवगुणों को क्षमा करके अपनी ओर समझकर प्रभु रामचन्द्रजी मेरा ही आदर करेंगे ॥ २२५ ॥

जौं परिहरि मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी ॥
मोरें सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही ॥

जो स्वामी श्री रामचन्द्रजी मुझे अपने मन में मलीन जानकर छोड़ दें अथवा जो मुझे अपना सेवक मानकर सम्मान करें। मैं तो रामजी की जूतियों की शरण हूं रामजी मेरे अच्छे स्वामी हैं। सब दोष तो मुझ दास ही का है।

जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नबीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेहं सिथिल सब गाता ॥

संसार में यश के पीछे तो चातक, पपीहे और मीन मछली हैं, क्योंकि पपीहा अपने मन-मन में और मछली अपने प्रेम में निपुण और नवीन हैं, भरतजी अपने मन में विचारते हुए मार्ग में चले जाते थे, सकुच और प्रेम के कारण सब शरीर शिथिल हो रहा था।

फेरति मनहुं मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ ॥

माता का अपराध मानो पीछे को लौटता था, परन्तु भक्ति के बल से धीरज धारण किये हुए चलते थे, जब रामजी के स्वभाव को समझते थे, तब मार्ग में जल्दी-जल्दी पांव उठाते थे।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रबाहं जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समयं बिदेहू ॥

भरतजी की दशा उस समय ऐसी थी, जैसे जल के बहाव में जल के भंवर की गति होती है। भरतजी का शोक और प्रेम देख निषाद उस समय विदेह हो गया, शरीर की सुध-बुध न रही।

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु ॥ २२६ ॥

मंगल शकुन होने लगे, उन शकुनों में पक्षियों के शब्दों को सुन और समझ निषादराज कहने लगे कि सोच मिट जायेगा और आनन्द प्राप्त होकर फिर अन्त को विषाद होगा ॥ २२६ ॥

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने॥
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥

सेवक के वचन सच्चे जाने और रामजी के आश्रम के निकट जा पहुंचे। भरतजी वन, पर्वत और समाज को देखकर ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे भूखा सुन्दर भोजन को पाकर प्रसन्न होता है।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गति तेहि अनुहारी॥

जैसे प्रजा इति के भय से दुःखी और तीन प्रकार के तापों और ग्रह से पीड़ित हो, अच्छे राज्य और देश में जाकर सुखी हो, ठीक वैसी ही दशा श्री भरतजी की भी हुई।

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥

रामजी के निवास का वन अपनी सम्पत्ति से ऐसा शोभायमान हुआ जैसे अच्छे राजा को पाकर प्रजा सुखी होती है। यहां मन्त्री, वैराग्य, राजा ज्ञान तथा सुहावना वन पवित्र देश है।

भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥

संयम-नियम उस ज्ञान रूपी राजा के योद्धा हैं, पर्वत राजधानी है, शान्ति, सुमति और पवित्रता ये तीनों सुन्दर रूप वाली रानी हैं। वह ज्ञान रूपी राजा सब अंगों से परिपूर्ण और रामचन्द्रजी ने चरणों के सहारे से उसके चित्त में चाव, आनन्द रहता है।

दो०—जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुरं सुख संपदा सुकालु॥ २२७॥

यह ज्ञान-रूपी राजा मोह, अज्ञान-रूपी राजा की सेना समेत जीतकर पुर में बेखटके राज्य करता है, जहां सुख और सम्पदा की किसी समय में कमी नहीं रहती है॥ २२७॥

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउं गन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना॥

वन में अनेक मुनियों के आश्रम मानो पुर, नगर, गांव और खेरों के समूह हैं जहां विचित्र पक्षी और अनेक प्रकार के मृग हैं, वे प्रजा-समाज हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साजु सराहा॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा। जहं तहं मनहुं सेन चतुरंगा॥

गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, शूकर, बैल, भैंसा, भेड़ियों का समाज सराहना करने के योग्य हैं। सब बैर छोड़कर एक साथ जहां-तहां फिरते हैं, मानो ज्ञान राजा की चतुरङ्गिणी सेना हो।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुं निसान बिबिधि बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन॥

झरनों का झरना और मतवाले हाथियों का गर्जना, मानो अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहे, तोते, कोयल आदि पक्षियों के झुण्ड और सुन्दर हंस प्रसन्नता से मन-भावनी बोली बोल रहे थे।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहु ओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला॥

भौंरों के समूह का गाना और मोरों का नाचना, मानो ज्ञान राजा के स्वराज्य में चारों ओर मंगल हो रहा है। बेलि, वृक्ष, घास आदि सब फूले हुए, इसी प्रकार वन का सब समाज आनन्द-मङ्गल देने वाला हो रहा था।

दो०—राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयं अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु॥ २२८॥

रामजी के पर्वत की शोभा को देखकर भरतजी के हृदय में बहुत प्रेम हुआ जैसे तपस्वी अपनी तपस्या का फल पाकर नियमों को समाप्त करके सुखी होता है॥ २२८॥

तब केवट ऊंचें चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥

तब केवट ने ऊंचाई पर चढ़कर भुजा उठा भरतजी से कहा कि हे नाथ! यह जो वहां पर आम, जामुन और तमाल के बड़े-बड़े वृक्ष दिखाई पड़ते हैं।

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाहं सुखद सब काला॥

इन सुन्दर वृक्षों के बीच में एक बड़ा बड़ का सुन्दर वृक्ष शोभायमान है जिसको देखकर सब मोहित हो जाते हैं। जिस वृक्ष के नीचे और घने पत्ते लाल फल तथा अचल छाया है, जो सब काल में सुख देने वाला है।

मानहुं तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि संकेलि सुषमा सी॥
ए तरु सरित समीप गोसांई। रघुबर परनकुटी जहं छाई॥

मानो अंधकार और लालिमा के समूह को एक कर ब्रह्मा ने उसकी शोभा रच दी हो, उस वृक्ष के नीचे मंदाकिनी नदी के तट पर रघुनाथजी ने जहां अपनी पर्णकुटी छाई है।

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुं कहुं सिय कहुं लखन लगाए॥
बट छायां बेदिका बनाई। सियं निज पानि सरोज सुहाई॥

वहां तुलसी के अनेक वृक्ष अच्छी तरह शोभायमान हैं जिनको कहीं-कहीं सीताजी ने और कहीं-कहीं लक्ष्मणजी ने लगाये हैं। बट की छाया में सीताजी ने अपने कमल समान हाथों से सुन्दर वेदी बनाई है।

दो०—जहां बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥ २२९॥

जहां बैठकर मुनियों की मण्डली के साथ सीताजी और बड़े चतुर रामचन्द्रजी नित्य सब कथा, इतिहास, शास्त्र, वेद और पुराण सुनते हैं॥ २२९॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥

सखा का वचन सुन और उस वृक्ष को देखकर भरतजी प्रसन्न हुए और मारे प्रसन्नता के उनके

नेत्रों में जल भर आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले, जिनकी प्रीति का वर्णन करते हुए शारदा भी सकुचाती है।

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुं पारसु पायउ रंका॥
रज सिर धरि हियं नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥

रामजी के चरण चिन्हों को देख ऐसे प्रसन्न हुए, मानो कंगाल ने पारस-मणि पाया, चरण रज को सिर, हृदय और नेत्रों में लगाते हुए रामजी से मिलने के समान सुख पाने लगे।

देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥

भरतजी की ऐसी बहुत ही न कहने वाली दशा को देखकर पक्षी और मृग आदि पशु तथा जड़-जीव भी प्रेम में मग्न हो गये। भरत-शत्रुघ्न के स्नेह को देखकर सखा निषादराज भी स्नेह वश होकर मार्ग भूले, तब देवताओं ने फूल बरसाकर सुन्दर मार्ग बता दिया।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

यह देखकर सिद्ध और साधक भी प्रेममग्न होकर स्वाभाविक स्नेह की सराहना करने लगे जो पृथ्वी पर भरत का जन्म न होता अथवा भरतजी को ऐसा स्नेह-भाव न होता तो अचरों को जड़, सचर (चैतन्य) और चरों को (चैतन्य) अचर (जड़) कौन करता?

दो०– पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥ २३०॥

राम के वियोग रूपी मंदराचल ने भरत-रूपी गंभीर समुद्र को मथकर कृपासिन्धु रामजी ने साधु रूप भक्त, देवताओं के निमित्त प्रेम-रूपी अमृत को उत्पन्न कर दिया॥ २३०॥

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन॥

सखा सहित मनोहर जोड़े को सघन वन की आड़ के कारण लक्ष्मणजी नहीं देख सके। भरतजी ने प्रभु का पवित्र आश्रम देखा, जो सब सुमंगलों का सुहावना घर है।

करत प्रबेस मिटे दुख दावा। जनु जोगीं परमारथु पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूंछे बचन कहत अनुरागे॥

उस आश्रम में प्रवेश करते ही भरतजी की दुःख-रूपी जलन शान्त हो गई, मानो योगी को परमत्व-रूपी ईश्वर मिल गया हो। भरतजी ने लक्ष्मणजी को प्रभु के आगे बैठे हुए देखा कि वे कुछ पूछते हैं और वे प्रेम से कुछ वचन कहते, अर्थात उत्तर दे रहे थे।

सीस जटा कटि मुनि पट बांधें। तून कसें कर सरु धनु कांधें॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥

रामजी सिर पर जटा, कमर में मुनि वस्त्र बांधे और तरकस कसे, हाथ में बाण, कंधे पर धनुष धारण किये हैं, वेदी पर मुनियों और साधुओं के समाज सहित सीताजी के साथ रघुनाथ जी विराजमान हैं।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हंसि हेरत ॥

रामचन्द्रजी वृक्षों की छाल के वस्त्र पहने, सिर पर जटा बांधे, सांवले शरीर पर ऐसे सुशोभित थे, मानो रति और कामदेव ने मुनि का वेष धारण किया हो, कमल समान हाथों को धनुष-बाण पर फेरते और हंसकर देखते हुए रामजी भक्तों के मन की जलन को हरते हैं।

दो०– लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभां जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु ॥ २३१ ॥

मनोहर मुनि मंडली के बीच सीता और रामचन्द्रजी ऐसे शोभायमान हैं, मानो ज्ञान की सभा में शरीर धारण किये हुए भक्ति और सच्चिदानन्द विराजमान हों ॥ २३१ ॥

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं ॥

शत्रुघ्न और निषाद सहित भरतजी मन में मग्न हुए और हर्ष, शोक के समूह बिखर गये। हे नाथ ! हे स्वामी ! रक्षा करो। ऐसे भरतजी पृथ्वी पर लाठी के समान गिर पड़े।

बचन सपेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियं जाने ॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा ॥

लक्ष्मण ने प्रेम सहित वचन पहिचान और भरतजी को प्रणाम करते हुए मन में जाना, इस ओर तो भाई भरत का सरस प्रेम और उधर स्वामी की बरबस सेवा।

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ॥

न तो मिला था, न छोड़ते बनता था। अच्छे कवि लक्ष्मणजी के उस समय के मन की गति को कैसे वर्णन करे ? भरतजी से मिलने का भार लक्ष्मणजी की से बांह पर रखकर ऐसे रह गये, जैसे ऊंची उड़ती हुई पतङ्ग को खिलाड़ी खींच कर रह जाता है।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुं पट कहुं निषंग धनु तीरा ॥

प्रेम सहित रामजी के चरणों पर मस्तक झुकाकर लक्ष्मणजी कहने लगे—हे रघुनाथजी आपको भरतजी प्रणाम करते हैं। यह सुनकर रामजी उठे और प्रेम में ऐसे अधीर हो गये कि कहीं तरकस और कहीं धनुष बाण रह गया।

दो०–बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ॥ २४० ॥

कृपानिधान रामचन्द्रजी ने बलपूर्वक से भरत को पृथ्वी से उठाकर छाती से लगा लिया, उस समय भरत और रामजी का मिलना देखकर सब लोग अपने को भूल गये ॥ २३२ ॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी ॥
परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥

मिलने की प्रीति बखानी नहीं जा सकती। कर्म, मन और वाणी से कविकुल के अगम कवियों की

बुद्धि उस प्रीति का पार नहीं पा सकती। परम प्रेम से परिपूर्ण दोनों भाई मन बुद्धि, चित्त और अहंकार को भुलाकर परस्पर मिले।

कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥
कबिहि अरथ आखर बलु सांचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥

कहो उस सुन्दर प्रेम को कौन प्रकट कर सकता है? किस कवि की बुद्धि छाया के अनुसार चल सकती है। कवि को तो अक्षरों के अर्थ का सच्चा बल है। ताल की गति के अनुसार तो नट नाचता है।

अगम सनेह भरत रघुवर को। जहं न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भांती। बाज सुराग कि गांडर तांती॥

भरत और रामचन्द्रजी में ऐसा अथाह प्रेम था कि जहां ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी का मन भी नहीं पहुंच सकता था। सो मैं किस प्रकार से वर्णन कर सकता हूं? गांडरि (एक प्रकार की घास) की तांत क्या सुन्दर राग बजा सकती है?

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥

भरत और रामजी का मिलना देख देवता लोग डर गये और सबकी छाती धड़कने लगी। सुगुरु ने सबको समझाया। तब वे जड़ जागे और फूल बरसा प्रशंसा करने लगे।

दो०—मिलि सपेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायं भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम॥ २३३॥

फिर प्रेम से शत्रुघ्नजी से मिलकर रामचन्द्रजी केवट से मिले, अनन्तर बड़े प्रेम से लक्ष्मणजी को प्रणाम करते देखकर भरतजी मिले॥ २३३॥

भेंटेउ लखन ललकि लगु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई॥
पुनि मुनिगन दुहुं भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे॥

अनन्तर लक्ष्मणजी लपक कर अपने छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले, फिर निषादराज को छाती से लगा लिया फिर मुनियों की मण्डली को दोनों भाइयों ने प्रणाम किया और इच्छानुसार आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए॥

भाई सहित भरतजी ने प्रेम में उमंगकर सीताजी के चरण कमलों की रज को सिर पर धारण करके प्रणाम किया। भरत-शत्रुघ्न जी बार-बार प्रणाम करते देखकर सीताजी ने दोनों को उठाया और उनके सिर पर कमल समान हाथ फेरकर बिठा लिया।

सीयं असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेहं देह सुधि नाहीं॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥

सीताजी ने मन में ही आशीष दिया, क्योंकि प्रेम में मग्न होने से उन्हें अपनी देह की सुधि नहीं थी। सीताजी को सब प्रकार से अपने ऊपर अनुकूल देखकर भरतजी सोच रहित हो गये और झूठा डर जाता रहा।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूंछा। प्रेम भरा मन निज गति छूंछा॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥

न तो कोई कुछ कहता था, न कोई कुछ पूछता था। मन में प्रेम भरा है, पर अपनी गति से अछूता है। उस समय केवट धीरज धर हाथ जोड़ प्रणाम करके विनती करने लगा।

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग॥ २३४॥

हे नाथ! मुनिनाथ वशिष्ठजी के साथ सब माताएं, नगर के लोग, सेवक, सेनापति और मन्त्री सब आपके वियोग में विकल होकर आये हैं॥ २३४॥

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला॥

शील के समुद्र रामजी गुरुदेव का आगमन सुनकर सीताजी के समीप शत्रुघ्नजी को रख धीरज धारण करने में दृढ़ दीन दयालु रामचन्द्रजी उस समय बड़े वेग से चले।

गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥

वशिष्ठजी को देखकर भाव सहित प्रेम से प्रभु उनको दण्डवत् प्रणाम करने लगे। वशिष्ठजी ने दौड़कर हृदय से लगा लिया और प्रेम में आनन्दित हो, दोनों भाइयों से मिले।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥

फिर प्रेम से पुलकित हो केवट ने अपना नाम कहकर दूर ही से दण्डवत् प्रणाम किया, उसको राम का सखा जानकर ऋषिजी बलपूर्वक उठाकर उससे मिले, मानो पृथ्वी पर से लूटते हुए प्रेम को समेट लिया।

रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥

रामचन्द्रजी की भक्ति सुन्दर मंगल की जड़ है उस भक्ति की बड़ाई करते हुए देवता आकाश से फूल बर्षाने लगे। इसके समान अति नीच कोई नहीं और वशिष्ठजी के समान जगत में बड़ा भी कोई नहीं है।

दो०—जेहि लखि लखनहु तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ॥ २३५॥

जिस निषादराज को देखकर महामुनि वशिष्ठजी लक्ष्मण से भी अधिक प्रेम से मिले तो सीतापति श्री रामचन्द्रजी के भजन का प्रभाव प्रत्यक्ष है॥ २३५।

आरत लोग राम सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भायं रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥

रामजी ने सब लोगों को दुःखी जाना, तब करुणा करने वाले सुजान भगवान ने जो जिस भांति से रामजी से मिलने की इच्छा करता था, उन्होंने उसकी वैसी ही रुचि रखी।

सानुज मिलि पल महुं सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥

लक्ष्मण सहित रामजी पल में सबसे मिले और सबके दुःख और कठिन दाह को दूर कर दिया। यह कोई बड़ी बात रामजी की नहीं है, जैसे करोड़ घड़े में एक सूर्य देख पड़ता है, वैसे ही अनेक रूप धारण करके रामजी सबको मिले।

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखि राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं॥

फिर केवट से मिल प्रेम में उमंग के अवध के निवासी सब लोग भाग्य की बड़ाई करने लगे, रामजी ने माताओं को ऐसे दुःखित देखा, मानो सुन्दर लताओं की पांति को पाला ने मारा हो।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायं भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

पहले रामजी ने कैकेयी से भेंट की और अपने सीधे स्वभाव व भक्ति रस से उसकी बुद्धि को गीली कर दिया। पांव पड़कर समझाया और काल, कर्म व भाग्य के सिर दोष को रख दिया।

दो०—भेटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु॥ २३६॥

फिर रामजी सब माताओं से मिले और समझाकर सबको सन्तुष्ट किया और फिर बोले, हे माताओं! यह जगत ईश्वर के अधीन है, किसी को दोष नहीं देना चाहिए॥ २३६॥

गुरतिय पद बंदे दुहु भाईं। सहित बिप्रतिय जे संग आईं॥
गंग गौरि सम सब सनमानीं। देहिं असीस मुदित मृदु बानीं॥

गुरु पत्नी अरुन्धती के चरणों को दोनों भाइयों ने प्रणाम किया। गङ्गा और पार्वती के समान सबका सम्मान किया। वे सब प्रसन्न होकर कोमल वाणी से आशीर्वाद देने लगीं।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे पेम ब्याकुल सब गाता॥

फिर चरण छूकर सुमित्रा की गोद में बैठ गये, तब उन्होंने ऐसे प्रसन्न होकर उन्हें हृदय से लगा लिया, मानो महा कंगाल को सम्पदा मिल गई हो, फिर कौशल्या माता के चरणों पर दोनों भाइयों का प्रेम के वश सारा शरीर व्याकुल हो गया।

अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू॥

तब बड़े प्रेम से माता ने हृदय से लगाये और नेत्रों के स्नेह-जल से स्नान कराया। उस समय का आनन्द और दुःख कवि कैसे कहे, जैसे गूंगा स्वाद को नहीं कह सकता है।

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू॥

लक्ष्मण सहित रामजी माता से मिलकर गुरुदेव से कहने लगे कि आप लोग आश्रम को चलिए। पुरवासी मुनीश्वर वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर जल-थल देख-देखकर उतरे।

दो०—महिसुर मंत्री मातु गुर गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय भरत लखन रघुनाथ॥ २३७॥

तब ब्राह्मण, मन्त्री, माताएं, गुरु आदि गिने हुए लोगों को साथ में लेकर लक्ष्मणजी और रघुनाथ जी ने अपने पवित्र आश्रम को गमन किया॥ २३७॥

सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी॥
गुरपतिनिहि मुनितियन्ह समेता। मिली पेमु कहि जाइ न जेता॥

सीताजी ने आकर मुनि वशिष्ठजी के चरण छुए और मन-मांगी उचित आशीष पाई। अरुन्धती को मुनियों की स्त्रियों सहित प्रेम से मिलकर जितना प्रेम बढ़ा, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के॥
सासु सकल जब सीयं निहारीं। मूदे नयन सहमि सुकुमारीं॥

सीताजी ने उन लोगों के चरणों को प्रणाम करके सबसे मन से प्यारा आशीर्वाद पाया। सासुओं ने जब सीताजी को देखा, तब सहमकर नेत्र बन्द कर लिए कि यह सुकुमारी सीता वनवास के दुःख को कैसे सहन करेगी?

परीं बधिक बस मनहुं मरालीं। काह कीन्ह करतार कुचालीं॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा। सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा॥

मानो हंसनी बहेलियों के वश में पड़ी हो, हे कुचाली करतार! तुमने यह क्या किया, उन्होंने भी सीताजी को देखकर बहुत दुःख पाया और बोली, जो दैव ने सताया है।

जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥

तब जानकीजी का हृदय में धीरज धर और नील कमल के समान नेत्रों में जल भरकर सीताजी सब सासुओं से जाकर मिलीं। उस समय पृथ्वी में करुणा छा गई।

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदयं असीसहिं पेम बस रहिअहु भरी सोहाग॥२३८॥

सीताजी सबके पांव लगकर बड़े प्रेम से मिलीं, तब वे प्रेम के वश मन-ही-मन आशीश देने लगीं कि तुम सदा सुहाग से भरी रहो॥ २३८॥

बिकल सनेहं सीय सब रानीं। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानीं।
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा॥

सीताजी और सब रानियों को स्नेह में व्याकुल देखकर ज्ञानी वशिष्ठजी ने सबको बैठने के लिए कहा। मुनीश्वर ने माया से सम्बन्ध रखने वाले संसार की गति कहकर कुछ परमार्थ की कथा कही।

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी॥

फिर महाराज दशरथ का देवलोक गमन सुनाया, जिसे सुनकर रघुनाथजी ने दुसह दुःख पाया। धीरज के धुरी को धारण करने वाले रामचन्द्रजी पिता के मरने का कारण अपना स्नेह विचार व्याकुल हो गये।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुं राजु अकाजेउ आजू॥

वज्र के समान कठोर और कड़ुई वाणी सुनते ही लक्ष्मण सीताजी और सब रानियां विलाप करने लगीं। सब समाज शोक से व्याकुल हो गया, मानो महाराज आज ही मरे हों।

मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जलु काहुं न लीन्हा॥

फिर वशिष्ठजी ने राम को समझाया और समाज समेत मंदाकिनी में स्नान किया। उस दिन प्रभु ने निर्जल व्रत किया। मुनि के कहने पर भी किसी ने जल तक नहीं पिया।

दो०—भोरु भएं रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरु कीन्ह॥२३९॥

प्रातःकाल होते ही रामचन्द्रजी को वशिष्ठजी ने जो आज्ञा दी श्रद्धा और भक्ति से प्रभु ने सब आदर सहित किया॥ २३९॥

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥

जैसी वेद में कही है, उसी प्रकार पिताजी की क्रिया करके पाप-रूपी अन्धकार के नाश करने को सूर्य समान पवित्र हुए। जिस प्रभु का नाम पाप-रूपी रुई को जलाने के लिए अग्नि है और स्मरण करते ही सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलों की जड़ है।

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस॥
सुद्ध भएं दुई बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते॥

सो शुद्ध हुए ऐसा साधुओं की सम्मत्ति है, जैसे सब तीर्थों में स्नान करके गंगाजी को पवित्र माना जाये। जब शुद्ध हुए और दो दिन बीत गये, तब रामचन्द्रजी प्रीति पूर्वक से गुरु वशिष्ठजी से बोले।

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी॥
सनुजा भरतु सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥

हे नाथ! कन्द, मूल, फल और जल के आहार से सब लोग बहुत दुःखी हो रहे हैं। शत्रुघ्न सहित भरत, मन्त्री और सब माताओं को दुःखी देखकर मुझको एक पल एक युग के समान बीतता दिखाई दे रहा है।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहां अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउं सब कियउं ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसांई॥

सबको लेकर आप नगर को पधारिए, आप यहां हैं और महाराज अमरावती में हैं, यह मैंने बहुत कही और बड़ी ढिठाई की है। हे गुसाईं! जैसा आप उचित समझें वैसा ही कीजिए।

दो०—धर्म सेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुं बिश्राम ॥२४०॥

हे धर्म के सेतु, करुणा के स्थान रामजी ! इस प्रकार कसे न कहो। लोग दुःखी थे, परन्तु दो दिन से दर्शन करके विश्राम पा रहे हैं ॥ २४० ॥

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुं बिकल जहाजू ॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहुं मारुत अनुकूला ॥

रामजी के वचन को सुनकर सब समाज डर गया, जैसे समुद्र में जहाज वायु के वेग से डगमगाने लगता है, परन्तु मुनि की सुमंगल-मूल वाणी सुनकर मानो पवन सहायक हुआ हो।

पावन पयं तिहुं काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं ॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥

पवित्र जल में तीनों काल सब स्नान करते थे। जब जल के दर्शन से पापों के समूह नाश हो जाते हैं। सीता और रामजी की मङ्गल मूर्ति को नेत्र भर-भरकर सब लोग दर्शन करते और दण्डवत प्रणाम करके प्रसन्न होते थे।

राम सैल बन देखन जाहीं। जहं सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी ॥

श्रीरामजी के वन और पर्वतों को देखने जाते थे, जहां सब सुख था और दुःख कहीं पर न था। झरने झर रहे थे, जिनमें अमृत समान जल था और तीनों प्रकार के तापों को हरने वाली तीन प्रकार की (शीतल, मन्द और सुगन्ध) वायु बह रही थी।

बिटप बेलि तृन अगिनत जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भांती ॥
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥

वृक्ष, बेलि, अनेक जाति की घास, जिसकी गिनती ही नहीं हो सकती है। उनमें बहुत भांति के फूल और पत्ते लगे हुए थे। सुन्दर शिला और सुख देने वाली वृक्षों की छाया तथा उस वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है ?

दो०—सरनि सरोरुह जल बिहग कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग ॥२४१॥

सरोवर में फूले हुए कमल उन पर जल के पक्षी बोलते और भौंरे गुंजारते थे तथा बैर छोड़कर वन में मृग और अनेक रंग के पक्षी विहार कर रहे थे ॥ २४१ ॥

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी ॥
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी ॥

कोल, किरात और भील वन के रहने वाले मीठे, पवित्र, सुन्दर अमृत के समान स्वादिष्ट कन्द-मूल, फल अंकुर इकट्ठे कर अपनी इच्छा से पत्तों के सुन्दर दोनों में भर-भरकर।

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा ॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं ॥

सबको विनय प्रणाम करके उन कन्द, मूल, फल, अंकुरों का स्वाद, भेद तथा गुण और नाम कह

कर देने लगे। तब लोग उनका बहुत मोल देते थे और वे न लेते थे। मूल्य लौटा कर राम की दुहाई देते थे।

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥

और प्रेम में मगन होकर कोमल वचन कहने लगे, साधुजन तो प्रेम पहचान कर मानते हैं। तुम लोग पुण्यात्मा हो और हम सब नीच निषाद हैं। हम लोगों ने रामजी की कृपा से तुम्हारा दर्शन पाया है।

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥

हमको तुम्हारा दर्शन बड़ा कठिन है, जसे मारवाड़ की भूमि में गंगाजी की धारा दुर्लभ है। कृपानिधान रामचन्द्रजी ने निषाद को अपनाया, आप लोग हम सबको अपनाइए, क्योंकि जैसा राजा हो वैसे ही कुटुम्बी और प्रजा भी होनी चाहिए।

दो०—यह जियं जानि संकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु॥२४२॥

मन में यह जानकर संकुच छोड़ कर दया कीजिए और स्नेह को देखकर हमको कृतार्थ करने के निमित्त फल, तृण और अंकुर लीजिए॥ २४२॥

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसांई। ईंधन पात किरात मिताई॥

तुम सरीखे प्यारे पाहुने वन में पधारे हो, आप सबकी सेवा के योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं, हे गुसाईं! हम तुमको क्या देवें? ईंधन और पत्तों से किरातों की मित्रता होती है।

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥

हमारी यह बहुत बड़ी सेवा है कि आपके वासन और वस्त्र को न चुरा लें। हम सब जड़ जीवों के मारने वाले खोटे, कुचाली, खोटी बुद्धि वाले और कुचाली हैं।

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुं धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥

पाप करते रात-दिन जाते हैं। कमर में वस्त्र नहीं, पेट भर भोजन नहीं, सपने में भी धर्म, बुद्धि किसी की किस भांति हो, आप लोगों की सेवा तो रघुनाथजी के दर्शन का प्रभाव है।

जब ते प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥

जब से प्रभु के चरण-कमल को देखा, तब से हमारे कठिन दुःख और दोष (पाप) दूर हो गये। भीलों के वचन को सुनते ही अयोध्यावासी लोग प्रेम में मगन हो गये और उनके भाग्य की बड़ाई करने लगे।

छं०—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥

नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा ॥१०॥

सब लोग उनके भाग्य की बड़ाई करने और प्रेमयुक्त वचन सुनने लगे और उनका बोलना-मिलना तथा सीता-रामचन्द्रजी के चरणों में उनका स्नेह देखकर सुख पाने लगे। अयोध्यावासी नर-नारी सब कोल, भीलों की वाणी सुनकर अपने स्नेह की निन्दा करने लगे कि इन सबका स्नेह हम सबसे बढ़कर है। तुलसीदासजी कहते हैं कि रघुवंश में मणि-रूपी श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से लोहा लेकर नाव भी पार उतर जाती है ॥ १० ॥

सो०—बिहरहिं बन चहु ओर प्रति दिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम ॥१०॥

अयोध्यावासी लोग वन में चारों ओर विहार करते हुए प्रातः दिन ऐसे प्रसन्नचित्त रहते थे, जैसे बरसात के पहले ही बल से मेंढक और मोर मोटे हो जाते हैं ॥ १० ॥

पुर जन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई ॥

नगर के नर-नारी अत्यन्त प्रीति में मग्न थे, पलक के समान दिन बीत रहा था। सीताजी सासु के प्रति वेष बनाकर आदर सहित एक समान सबकी सेवा करने लगीं।

लखा न मरमु राम बिनु काहूं। माया सब सिय माया माहूं ॥
सीयं सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं॥

रामजी के बिना किसी ने गुप्त भेद नहीं जाना, सीताजी की ही सब माया थी अथवा सब माया सीताजी हैं और माया के स्वामी श्री रामचन्द्रजी हैं। सीताजी ने सब सासुओं को अपनी सेवा से वश में कर लिया, तब उन्होंने सुख पाकर शिक्षा और आशीर्वाद दिया।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अवनि जमहि जाचति कैकेयी। महि न बीजु बिधि मीचु न देई ॥

सीता सहित दोनों भाइयों राम-लक्ष्मणजी को सीधे स्वभाव वाले देखकर खोटी रानी कैकेयी बहुत ही पछताई। अब मन में कैकेयी मानती थी कि पृथ्वी में कीच नहीं जो मैं समा जाऊँ और विधाता मृत्यु भी नहीं देता।

लोकहुं बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥
यहु संसउ सब के मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं ॥

लोक वेद में भी प्रसिद्ध है और कविजन भी कहते हैं कि रामजी से विमुख जीव नरक में भी स्थान नहीं पाते। यह संदेह मन में था कि हे विधाता ! रामजी का जाना अवधपुरी में होगा कि नहीं ?

दो०—निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल संकोच ॥२४३॥

भरतजी को न रात में नींद थी न दिन में भूख और अत्यन्त सोच में ऐसे व्याकुल थे, जैसे थोड़ी कीच में फंसी मछली, जल के संकोच से व्याकुल हो जाती है ॥ २४३ ॥

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥

माता के बहाने से काल ने खोटाई की, जसे पकी हुई धान की खेती की इति-अतिवृष्टि आना, वृष्टि मूसे लगना, कीड़ों का चुग जाना, भीति-टीढ़ी, आग, पाला और ओले गिरना तथा राजाओं के चढ़ आने से गर्द-वर्द हो जाने का भय होता है। किस प्रकार रामचन्द्रजी का राज्य-तिलक हो, मुझको अब कोई उपाय भी दिखाई नहीं देता।

अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहुं बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥

मुनि की आज्ञा मान रामजी अवश्य लौटेंगे, पर मुनिजी तो इच्छा जानकर कहेंगे। कौशल्या माता के कहने से रघुनाथजी लौटेंगे, परन्तु रामजी की माता कभी हठ नहीं करेंगी।

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महं कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउं त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥

मैं कहूं तो मुझ सेवक की कितनी बात है तिसमें खोटा समय और विधाता बांया है जो हठ करूं तो बहुत खोटा काम है, क्योंकि सेवक का धर्म कैलाश पर्वत से भी भारी है।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठए रिषयं बोलाई॥

एक युक्ति भी मन में नहीं ठहरी, भरतजी को सोचते रात बीत गई। प्रातःकाल स्नान कर प्रभु सिर नवाकर बैठे तो ऋषि ने बुला भेजा।

दो०—गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥ २४४॥

गुरु के चरण-कमलों को प्रणाम कर और उनसे आज्ञा पा भरतजी बैठे, उसी समय ब्राह्मण महाजन सब मन्त्री और सब सभासद इकट्ठे हुए और सभा में आ बैठ गये॥ २४४॥

बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू॥

मुनि समय के अनुसार बोले—हे सभासदों! हे सुजान भरतजी! सुनो धर्म की दृढ़ता को धारण करने वाले सूर्यवंश के सूर्य रामजी अपने वश में रहते षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान हैं।

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतू॥
गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥

सत्य प्रतिज्ञा वाले, वेद की मर्यादा की रक्षा करने वाले हैं, रामजी का जन्म जगत के मङ्गल के हेतु है। गुरु, माता-पिता के वचनों के अनुसार आज्ञाकारी हैं और दुष्टों के दल को मारने वाले और देवताओं के हितकारी हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाया। माया जीव करम कुलि काला॥

नीति-प्रीति, परमार्थ-स्वार्थ इनको राम के बिना कोई यथार्थ नहीं जानता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य, दिकपाल, माया, जीव, कर्म और कलिकाल इनके आधीन हैं।

अहिप महिप जहं लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥
करि बिचार जियं देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही कें ॥

शेषनाग और राजाओं की प्रभुता तथा योग सिद्धि, जो वेद-शास्त्रों ने गाई है। मन में भली-भांति विचार कर देखो कि रामजी की आज्ञा सबके सिर पर है।

दो०—राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ ॥ २४५ ॥

रामजी की आज्ञा और इच्छा रखकर हम सबका हित (कल्याण) हो तो समझकर सब चतुर लोग मिलकर वही सलाह करो ॥ २४५ ॥

सब कहुं सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू ॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥

सबको सुख देने वाला राम का अभिषेक है, यही एक मङ्गल और आनन्द का मार्ग है। किस प्रकार रघुनाथजी अवध को चलें समझकर कहो, वही उपाय करें।

सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥

सब लोगों ने आदर से नीति, परमार्थ और स्वार्थ से मिली हुई वशिष्ठजी की वाणी सुनी। उत्तर नहीं आया, लोग भोर हो गये, तब सिर नवा हाथ जोड़कर भरतजी बोले।

भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे ॥
जनम हेतु सब कहं पितु माता। करम सुभासुभ देई बिधाता ॥

सूर्यवंश में बहुत से राजा एक से एक बढ़कर हुए हैं। जन्म के कारण सबके माता-पिता होते हैं और अच्छे-बुरे कर्मों का फल विधाता देता है।

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना ॥
सो गोसाइं बिधि गति जेहिं छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥

दुःखों को दूर कर सब प्रकार से कल्याणों को उत्पन्न करती है ऐसी आपकी आशीष है जिसे संसार जानता है। हे गुसाईं! सो आप जिन्होंने ब्रह्मा की गति (होनहार) रोक दिया। आपने जो टेक टेकी उसे कौन टाल सकता है?

दो०—बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनिसनेहमय बचन गुर उर उमगा अनुरागु ॥ २४६ ॥

ऐसे समर्थवान होकर आप अब मुझसे उपाय पूछते हो, सो सब मेरा अभाग्य है, भरतजी के ऐसे स्नेह भरे वचन सुन वशिष्ठजी के हृदय में अनुराग उत्पन्न हुआ और बोले ॥ २४६ ॥

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुं नाहीं ॥
सकुचउं तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता ॥

हे प्यारे भरत! तुम्हारी बात सच्ची है, राम की कृपा से ऐसा ही हुआ, रामचन्द्रजी से विमुख होने से स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। हे तात! एक बात कहते हुए सकुचाता हूं, वह कि बुद्धिमान जन सर्वस्व जाता हुआ देखकर आधा त्याग देते हैं।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

तुम दोनों वन को जाओ और लक्ष्मण सीता रामचन्द्रजी को लौटा दो। वशिष्ठ मुनि का अच्छा वचन सुन, दोनों भाई प्रसन्न हुए, आनन्द से शरीर परिपूर्ण हो गया।

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भए राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥

मुख पर प्रसन्नता छा गई, शरीर में तेज विचरने लगा, मानो महाराज जीवित हो गये और राम जी महाराज हो गये हों। लोगों को लाभ अधिक और हानि थोड़ी। दुःख-सुख सम न समझकर सब रानियां रोने लगीं।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे॥
कानन करउं जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

भरतजी कहने लगे कि हे मुनिनाथ! आपने जो कहा सो कीजिये, जगत में जोने का मुझको यही इच्छानुसार फल है, वह दीजिए। वन में जन्म भर वास करूंगा। इससे अधिक मेरा सुपात्र नहीं है।

दो०—अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान॥ २४७॥

रामचन्द्रजी और सीताजी दोनों अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञ और चतुर हो, जो मैं सत्य हूं तो हे नाथ! आप अपने वचन को प्रमाण कीजिए॥ २४७॥

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥

भरतजी के वचन सुन और उनके प्रेम को देख सभा समेत मुनि वशिष्ठ जी विदेह हो गये, भरतजी की बड़ी महिमा समुद्र है, उनके तीर पर मुनि की बुद्धि स्त्री की भांति खड़ी रह गई।

गा चह पार जतनु हियं हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥

पार जाना चाहती थी, उपाय भी बहुत ढूंढ़ा, परन्तु नाव जहाज और बेड़ा नहीं पाती थी। वशिष्ठ मुनि की बुद्धि भी थकित हो गई तो कौन भरत की बड़ाई कर सकता है? तलैया की सीपी में समुद्र कैसे समाये।

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥

भरतजी मुनि को मन के भीतर अच्छे लगे, तब सभा सहित रामजी के पास आये। प्रभु ने प्रणाम करके आसन दिया और मुनि की आज्ञा सुनकर सब लोग बैठ गये।

बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥

मुनिवर वशिष्ठजी देश, काल और अवसर (समय) विचार करके वचन बोले। सुनो रामजी! तुम सब कुछ जानते हो। धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के निधान हो।

दो०–सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ ॥ २४८ ॥

सबके हृदय के भीतर वास करते हो और भाव-कुभाव को जानते हो नगर निवासियों, माताओं और भरतजी का हित जिसमें हो सो उपाय कीजिए ॥ २४८ ॥

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥

दुःखी लोग तो कुछ विचार कहते नहीं, क्योंकि जुआरी को अपना ही दांव सूझता है। मुनि के वचन को सुनकर रामचन्द्रजी कहने लगे—हे नाथ आप ही के हाथ में उपाय है।

सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किएं मुदित फुर भाषें ॥
प्रथम जो आयसु मो कहुं होई। माथें मानि करौं सिख सोई ॥

सबका भला आपके रुख रखने और आपकी आज्ञा को प्रसन्न मन से सत्य कहकर करने में है। पहले जो आज्ञा मुझको हो वही सीख माथे पर मानकर करूं।

पुनि जेहि कहं जस कहब गोसाईं। सो सब भांति घटिहि सेवकाईं ॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेहं बिचारु न राखा ॥

फिर जिसको जो आज्ञा हो, वह सब प्रकार से सेवा करे। यह सुनकर मुनिजी बोले—हे राम ! तुमने सत्य कहा, परन्तु भरत के स्नेह ने हमारे विचार को रहने नहीं दिया।

तेहि तें कहउं बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥

इससे मैं बारम्बार कहता हूं कि भरतजी के भक्ति के वश में होकर मेरी बुद्धि भोली हो गई है। मेरे जान में भरतजी की रुचि (इच्छा) रखकर जो कीजिए, सो अच्छा होगा, शिवजी साक्षी हैं।

दो०–भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥ २४९ ॥

पहले भरतजी का विनय आदर से सुन लीजिये और साधुमत, लोकमत, राजनीति तथा जो वेद का सिद्धांत हो, उसके अनुसार कीजिए ॥ २४९ ॥

गुर अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयं आनंदु बिसेषी ॥
भरतहि धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी ॥

भरतजी के ऊपर गुरु वशिष्ठजी की प्रीति देखकर रामजी के हृदय में अधिक आनन्द हुआ। भरत जी को धर्म धुरन्धर और तन-मन-वचन से अपना सेवक जाना।

बोले गुर आयस अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई ॥

रामजी गुरु की आज्ञा के अनुसार सुन्दर, कोमल और मंगलदायक वचन बोले। हे नाथ ! आपकी सौगन्ध और चरणों की दुहाई से कहता हूं कि संसार में भरत के समान भाई न हुआ।

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुं बेदहुं बड़भागी ॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू ॥

जो गुरुदेव के चरण-कमलों में प्रीति करने वाले हैं, वे लोक और वेद दोनों में बड़भागी होते हैं। जिस पर आपका ऐसा प्रेम है, उस भरत का भाग्य कौन बदल सकता है ?

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरतु कहहिं सोइ किएं भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥

छोटे भाई भरत को देखकर मुख पर बड़ाई करते हुए बुद्धि सकुचाती है, जो भरतजी कहें, वही करने में भलाई है, ऐसा कहकर रामचन्द्रजी चुप हो गये।

दो०– तब मुनि बोले भरत सन सब संकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात॥ २५०॥

तब वशिष्ठजी भरतजी से बोले कि हे तात ! सब सकुच छोड़कर दया के समुद्र प्यारे भाई रामचन्द्रजी से हृदय की बात कहो॥ २५०॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥

मुनि के वचन को सुनकर रामजी का रुख पा और स्वामी को अपने अनुकूल समझ भरतजी प्रसन्न हो गये। अपने सिर पर बड़ा बोझ देखकर कुछ कह नहीं सके और विचार करने लगे।

पुलकि सरीर सभां भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहौं मैं काहा॥

पुलकित शरीर होकर सभा में खड़े हो गये और कमल समान नेत्रों में स्नेह का जल भर आया। भरतजी बोले कि मेरा कहना तो मुनिनाथ ने निबाह दिया। इनसे और मैं क्या कह सकता हूं ?

मैं जानउं निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूं देखी॥

मैं अपने स्वामी का स्वभाव जानता हूं कि वे अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते। मेरे ऊपर कृपा और स्नेह अधिक करते हैं। खेलते हुए भी कभी अलख नहीं देखा।

सिसुपन ते परिहरेउं न संगू। कबहुं न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियं जोही। हारेहुं खेल जितावहिं मोही॥

बालकपन से कभी संग नहीं छोड़ा। कभी मेरा मन भंग नहीं किया। मैंने प्रभु की कृपा की रीति अपने मन में देख ली कि मैं खेल में हारा तो भी मुझको जिताया।

दो०– महूं सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन॥ २६०॥

मैंने भी स्नेह और संकोच के वश सामने कभी कोई वचन नहीं कहा है और आज तक प्रेम के प्यासे नेत्र दर्शनों से तृप्त नहीं हुए॥ २५१॥

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनीं समुझि साधु सुचि को भा॥

विधाता मेरा प्यार न सह सका, अपनी नीचता से माता के बहाने बीच में ही गिरा दिया। आज

यह कहते भी मुझको शोभा नहीं, क्योंकि अपनी समझ में साधु और पवित्र कौन हुआ है ?

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव बलि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली॥

माता अधम और मैं साधु सुचाली हूं, ऐसा विचार करना भी करोड़ कुचाल के समान है। क्या कोदों में सुन्दर धान की बाल लग सकती है और क्या तलैया के घोंघा में मोती उत्पन्न हो सकती है।

सपनेहुं दोसक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउं जायं जननि कहि काकू॥

सपने में कभी किसी को दोष और क्लेश नहीं है। यह सब मेरे अभाग्य का अथाह समुद्र है। अपने पाप का फल समझे बिना मैंने माता को टेढ़े वचन कहकर व्यर्थ जलाया।

हृदयं हेरि हारेउं सब ओरा। एकहि भांति भलेहिं भल मोरा॥
गुर गोसाइं साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

हृदय में सब ओर देखकर मैं हार गया। केवल एक ही भांति से मेरा भला है। गुरुदेव वशिष्ठजी महाराज और स्वामी सीता रामजी हैं। इस कारण मुझको परिणाम अच्छा लगता है।

दो०–साधु सभां गुर प्रभु निकट कहउं सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥२५२॥

साधुओं की सभा में स्वामी रामजी और वशिष्ठजी के समीप अच्छे स्थान में अच्छे भाव से कहता हूं। प्रेम और प्रपंच कहता हूं, तो मुनिजी और रघुनाथजी जानते हैं॥ २५२॥

भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं॥

महाराज का मरण प्रेम प्रण रखने से हुआ और माता की खोटी बुद्धि का सब संसार साक्षी है। माताओं की व्याकुलता देखी नहीं जाती है। नगर के नर-नारी सब न सहने योग्य ज्वर से जल रहे हैं।

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउं सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥

मैं ही सब उपाधियों की जड़ हूं, सो सुन समझकर सब दुःख सह रहा हूं। घर आकर सुना कि रघुनाथजी मुनि वेष बनाकर लक्ष्मणजी और सीताजी को साथ में लेकर वन को चले गये।

बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएं। संकरु साखि रहेउं एहि घाएं॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥

और बिना पनही पैदल ही गए, इस घाव के शिवजी साक्षी हैं जैसा दुःख हुआ, परन्तु जीता रह गया फिर निषाद का प्रेम देखकर वज्र से कठोर हृदय में छेद न हुआ।

अब सबु आंखिन्ह देखुउं आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहि निरखि मग सांपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥

अब आकर सब आंखों से देखा जब जीव ने जीते ही सब सहाया। जिसको मार्ग में देखकर सांप, बिच्छू भी अपने कठिन विष और तामसी स्वभाव की तीक्षणता को त्याग देते हो।

दो०–तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि॥२५३॥

वे ही रामचंद्र, लक्ष्मणजी और सीताजी जिनको प्यारे नहीं लगे, उनके पुत्र को छोड़कर कठिन दुःख विधाता किधाता सहावेगा॥ २५३॥

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥
सोक मगन सब सभां खभारू। मनहुं कमल बन परेउ तुसारू॥

बहुत व्याकुल भरतजी की सुन्दर वाणी सुन जो वाणी दुःख, प्रीति, नम्रता और नीति से भरी थी। सब शोक से व्याकुल हो गये और सभी में हलचल पड़ गई, मानो कमल-वन पर पाला पड़ गया।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू॥

तब अनेक भांति की पौराणिक कथा कहकर ज्ञानी मुनि ने भरतजी को उपदेश किया। उस समय सूर्यवंश रूपी कुमुद वन को चन्द्रमा के समान रघुनाथजी उचित वचन बोले।

तात जायं जियं करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्य सिलोक तात तर तोरें॥

हे तात! ईश्वर के अधीन जीव की गति जानकर व्यर्थ की ग्लानि मत करो। हे तात! तीनों काल और तीनों लोक में जो पुण्यात्माजन हैं, मेरे मत में वे सब तुम्हारे हाथ में है।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥

तुम्हारे ऊपर कुटिलता हृदय में विचारते ही लोक-परलोक दोनों बिगड़ जायेगा और माता को भी वह मूर्ख दोष देंगे, जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है।

दो०–मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥२५४॥

तुम्हारा नाम सुमरते ही सब पाप, प्रपंच और अमङ्गलों का भार मिट जायेगा और इस लोक (संसार) में यश तथा परलोक में सुख मिलेगा॥ २५४॥

कहउं सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥
तात कुतरक करहु जानि जाएं। बैर पेम नहि दुरइ दुराएं॥

हे भरत! अपने स्वभाव से सच कहता हूं, शिवजी साक्षी हैं, यह भूमि तुम्हारे रखने से रहेगी। हे तात! व्यर्थ कुतर्क मत करो, बैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपता।

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥

मुनियों के समीप पक्षी और हिरण आदि पशु जाते हैं पर बाधक (सिंह आदि) बधिकों (मारने वालों) को देखकर भाग जाते हैं। मित्र-शत्रु को पशु-पक्षी भी जान लेते हैं और मनुष्य का शरीर तो गुण और ज्ञान की खान है।

तात तुम्हहि मैं जानउं नीकें। करौं काह असमंजस जीकें॥
राखेउ रायं सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥

हे तात! मैं तुमको अच्छी तरह जानता हूं, परन्तु क्या करूं मेरे मन में बड़ी द्विविधा हो रही है। महाराज ने मुझको त्याग कर अपना सत्य रखा, प्रेम और प्रण को रखने के कारण शरीर को त्याग दिया।

तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार संकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउं सोइ कीन्हा॥

उन पिताजी के वचन को मिटाते हुए सोच होता है, उनसे भी अधिक तुम्हारा दबाब है, तिस पर गुरू ने मुझको आज्ञा दी है, अब तुम जो कहो, अवश्य वही करना चाहता हूं।

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु॥२५५॥

मन प्रसन्न कर और सँकोच को छोड़कर जो कहो वही अब करूं, सत्य प्रतिज्ञा वाले रघुनाथजी का यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया॥ २५५॥

सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
बनत उपाउ करत कछु नाहीं। राम सरन सब गे मन माहीं॥

देव गणों सहित डरकर इन्द्र सोचने लगा कि अब अकाज होना चाहता है। विचार करने लगे, परन्तु जब कुछ न बन सका तब मन ही मन रामजी की शरण में गये।

बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं॥
सुधि करि अम्बरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥

फिर आपस में विचार करके कहने लगे कि रघुनाथजी अपने भक्त की भक्ति के अधीन हैं। अम्बरीश और दुर्वाषा मुनि की सुधि कर देवता और इन्द्र बहुत ही निराश हुए।

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा॥

फिर सोचने लगे कि पहले बहुत काल तक देवताओं ने दुःख सहन किया, तब नृसिंह भगवान को प्रहलाद भक्त ने प्रकट किया, देवता परस्पर कान लगाकर और माथा धुनके कहने लगे कि अब देवताओं का कार्य तो भरत के हाथ में है।

आन उपाय न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा॥
हियं सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि॥

दूसरा कुछ भी उपाय देवताओं को दिखाई नहीं पड़ा, तब सोचने लगे कि रामजी तो अपने अच्छे

सेवकों की सेवा को मानते हैं। सब अपने हृदय में प्रेम से भरतजी को स्मरण करो, जो गुण और शील से रामजी को वश में करने वाले हैं।

दो०—सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु ॥ २५६॥

देवताओं की सम्मति को सुनकर बृहस्पतिजी कहने लगे कि तुम्हारा सबका बहुत अच्छा भाग्य है, क्योंकि संसार में भरतजी के चरणों में प्रेम होने से सब सुमंगलों की जड़ है ॥ २५६ ॥

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरत भगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥

रामचन्द्रजी के सेवक की सेवा सौ कामधेनु के समान होती है। भरतजी की भक्ति तुम्हारे मन में छाई है, अब सोच छोड़ दो, विधाता ने बना दी।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभायं बिबस रघुराऊ ॥
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं ॥

हे इन्द्र! भरतजी का प्रभाव देखो कि जिनके स्वभाव स्नेह से रघुनाथजी वश में हो रहे हैं। हे देवताओ! मन को स्थिर करो कुछ डर नहीं है, भरतजी को रामचन्द्रजी की परछाई जानकर संदेह मत करो।

सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू। अन्तरजामी प्रभुहि संकोचू ॥
निज सिर भारु भरत जियं जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना ॥

बृहस्पति और देवताओं को सम्मति तथा सोच को सुनकर अन्तर्यामी प्रभु रामजी को संकोच हुआ। भरतजी अपने सिर बोझ जान हृदय में करोड़ों प्रकार के अनुमान करने लगे।

करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायस आपन नीका ॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ॥

विचार करके मन में यही निश्चय किया कि रामजी को आज्ञा मानने में भलाई है। रामजी ने अपना प्रण छोड़कर मेरा मन रखा और प्यार तथा स्नेह थोड़ा नहीं किया।

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ ॥ २५७ ॥

सीतापति रामचन्द्रजी ने मुझ पर सब प्रकार से बहुत कृपा की है। यह विचार कर भरत कमल-समान दोनों हाथ जोड़ प्रणाम करके बोले ॥ २५७ ॥

कहौं कहावौं का अब स्वामी। कृपा अम्बुनिधि अन्तरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला ॥

हे स्वामी! अब क्या कहूं और क्या कहलाऊं आप तो दया के समुद्र और अन्तर्यामी हो, गुरुदेव प्रसन्न हैं और स्वामी अनुकूल हैं। मेरे मलिन मन से सब कल्पित दुःख मिट गये।

अपडर डरेउं न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें ॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई ॥

मैं अपने डर से डर गया हूं, सोच की कुछ जड़ नहीं है, जैसे कोई दिशा भूल जाए तो सूर्य को दोष नहीं देना चाहिए। मेरा अभाग्य और माता की खोटाई विधाता की विषम गति और काल की कठिनता है।

पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
यह नई रीति न राउर होई। लोकहुं बेद बिदित नहिं गोई॥

इन सबने पांव रोपकर और मिलकर मुझको मारना चाहा, परन्तु दोनों का पालना करने वाले ने अपना प्रण पाला, आपकी नई रीति नहीं है लोक वेद में भी प्रकट है, छिपी नहीं है।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाई॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥

जगत बुरा है, एक आप ही भले ही कहिये, किसकी भलाई से भला हो। हे देव! कल्पवृक्ष के समान आपका स्वभाव है, कभी किसी के सम्मुख विमुख नहीं है।

दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु छाहं समनि सब सोच।
मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच॥२५८॥

कल्पवृक्ष को पहचान जो उसकी छाया के निकट जाता है, तो उसके सोच दूर हो जाते हैं और मांगते ही राजा व कंगाल भला व सोच वाले कोई हो, इच्छानुसार फल पाता है॥२५८॥

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥

सब तरह से गुरु और स्वामी का स्नेह देख दुःख मिट गया और मन में संदेह नहीं रहा। हे दया करने वाले स्वामी! अब वही कीजिए, जिसमें मुझ भक्तजन का हित हो और प्रभु के चित्त में क्षोभ नहीं हो।

जो सेवकु साहिबहि संकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥

जो सेवक अपने स्वामी के मन में बिगाड़कर अपना हित चाहता है उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का भला इसी में है कि स्वामी की सेवा अपने सब सुख और लाभ को जोड़कर करे।

स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएं रजाइ कोटि बिधि नीका॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू॥

हे नाथ! आपके लौट चलने में सभी का स्वार्थ है और आज्ञा पालन करने में उससे करोड़ भांति भला है। यह स्वार्थ और परमार्थ का सार है और सब गुणों का फल तथा सुन्दर गति का शृंगार है।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥

हे देव! मेरी एक विनती सुनकर फिर जैसा उचित हो वैसा कीजिये। तिलक का सब सामान सजा कर लाया हूं। हे प्रभु! जो मन में हो वही सफल कीजिए।

दो०—सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥२५९॥

शत्रुघ्न सहित मुझको वन में भेजिए और सबको सनाथ कीजिए, नहीं तो दोनों भाइयों को लौटाइए। मैं स्वामी के साथ चलूंगा ॥ २५९ ॥

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई ॥

नहीं तो तीनों भाई वन में जायें। हे रघुनाथजी ! आप सीता सहित अयोध्या को लौट जाइये। जिस प्रकार आपका मन प्रसन्न हो वही कीजिए।

देवं दीन्ह सबु मोहि अभारु। मोरें नीति न धरम बिचारु ॥
कहउं बचन सब स्वारथ हेतु। रहत न आरत कें चित चेतू ॥

हे देव ! आपने तो सब बोझ मेरे सिर पर रख दिया, पर मुझे नीति और धर्म का विचार नहीं है। सब वचन मैं तो अपने स्वार्थ के निमित्त कहता हूं, क्योंकि अत्यन्त दुःखी के चित्त में ज्ञान नहीं रहता।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई ॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहं सराहत साधू ॥

जो स्वामी की आज्ञा सुन उत्तर देता है, उस सेवक को देख लाज लज्जित हो जाती है, ऐसा मैं अवगुणों का अथाह समुद्र हूं और स्वामी (आप) मेरे स्नेह को सच्चा सराहते हैं।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइं न पावा ॥
प्रभु पद सपथ कहउं सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ ॥

अब हे दयालु ! मुझको वही मत अच्छा लगता है, हे स्वामी ! जिससे आपका मन सकुचाने न पाये। हे प्रभु ! आपके चरणों की सौगन्ध है, मैं सच्चे मन से कहता हूं संसार के कल्याण के निमित्त यही उपाय है।

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब ॥ २६० ॥

प्रभु आप प्रसन्न मन से संकोच छोड़ जिसको जो आज्ञा दीजिये, उस आज्ञा को मस्तक पर रखकर सब लोग करेंगे और अनुचित उलझन मिट जायेगी ॥ २६० ॥

भरत बचनु सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी ॥

भरतजी के पवित्र वचन सुनकर हृदय में प्रसन्न हो अच्छा कह और उनकी बड़ाई करके देवताओं ने फूल बरसाये। अयोध्यावासी द्विविधा के वश हो गये।

चुपहिं रहे रघुनाथ संकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठं सुनि बेगि बोलाए ॥

रामजी सकुचाकर गये, तब प्रभु की यह दशा देख सब सभा सोचने लगी। उसी समय जनकजी के दूत आये, उनका आना सुन वशिष्ठजी ने उन्हें जल्दी से बुला लिया।

करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे ॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता ॥

उन दूतों ने प्रणाम करके रामजी को देखा और उनका मुनि वेष देखकर वे बहुत दुःखी हुए। वशिष्ठजी ने दूतों से यह बात पूछी कि राजा विदेह का कुशल कहो।

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चर बर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥

मुनि की बात सुनकर पृथ्वी पर माथा नवाकर चतुर दूत हाथ जोड़कर बोले, हे स्वामी आपको आदर सहित जो पूछना है सो हमारे स्वामी के कुशल का हेतु है।

दो०—नाहिं त कोसल नाथ कें साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें जगु सब भयउ अनाथ॥२६१॥

नहीं तो हे नाथ! कुशल तो महाराज दशरथ के साथ गई। सब जगत अनाथ हो गया और मिथिलापुरी तथा अवधपुरी तो बहुत ही अनाथ हो गई॥ २६१॥

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक बस बौरा॥
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू॥

दशरथजी की गति सुन जनकनगर के लोग सोच के वश हो गये, जिसने उस समय जनकजी को देखा, उस समय विदेह ऐसा नाम किसको सच्चा न लगा, अर्थात सबको सच्चा लगा।

रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि॥
भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहि हृदयं हरासू॥

रानी कैकेयी की खोटाई सुनते ही राजा जनक को कुछ न सूझा, जैसे मणि के बिना सांप को नहीं सूझता। भरतजी के राज्य और रामचन्द्रजी के वनवास से महाराज मिथलेश के हृदय में शोक हुआ (कि यह बहुत ही अनुचित हुआ।)

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ॥

राजा ने पण्डित और मन्त्रियों के समाज से पूछा कि विचार कर कहो, आज हमको क्या करना उचित है? अवधपुरी में दोनों (भरत राज्य, राम वनवास) की द्विविधा समझकर चलिए या रहिए यह कोई कुछ नहीं कह सका।

नृपहिं धीर धरि हृदयं बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत सति भाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ॥

तब राजा ने धीरज धर और हृदय में विचार कर अवधपुरी को चार चतुर दूतों को भेज दिया, दूतों से कह दिया था कि भरत के मन का सच्चा भाव, बुरा अथवा भला भाव समझकर जल्दी चले आना और इस बात को कोई जानने न पावे कि जनकपुर से दूत आये हैं।

दो०—गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति॥ २६२॥

दूत अवधपुरी में गये, वहां भरतजी की दशा जानकर करतूत देखी, अर्थात जो कुछ किया सो देखा और भरतजी चित्रकूट को चले, तब दूत जनकपुर को चले आये॥ २६२॥

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी॥
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेहं बिकल अति॥

दूतों ने आकर भरतजी की करनी जनकजी की सभा में अपनी बुद्धि के अनुसार कह सुनाई, यह सुनकर गुरु, पुरजन, मन्त्री और राजा सब सोच और स्नेह से व्याकुल हो गये।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान संवारे॥

फिर धीरज धर भरत की बड़ाई करके अच्छे योद्धाओं और सेनापतियों को बुलाकर घर, नगर और देश में रखवाले रखकर घोड़े, हाथी, रथ आदि वाहन संवारे।

दुघरी साधि चले ततकाला। किए बिश्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥

दुघरिया मुहूर्त विचारकर तुरन्त चल दिए और मार्ग में राजा ने कहीं विश्राम भी नहीं किया। आज प्रातः होते ही प्रयाग में स्नान कर चले और सब कोई यमुना में उतरने लगे।

खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा॥
साथ किरात छः सातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे॥

हमको राजा ने खबर लेने भेज दिया, ऐसे कहकर उन दूतों ने पृथ्वी पर माथा झुकाया। साथ में छः-सात किरातों को देकर मुनिवर वशिष्ठजी ने तुरन्त उन दूतों को विदा कर दिया।

दो०—सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि संकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु॥ २६३॥

राजा जनक का आना सुनकर सब अयोध्यावासी प्रसन्न हुए। रामचन्द्रजी को बड़ा संकोच हुआ और इन्द्र शोक के वश हुए॥ २६३॥

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई॥
अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥

खोटी कैकेयी ग्लानि के मारे गली जाती थी, अपराध किससे कहे और किसे दोष दे? ऐसा मन में विचार कर नर-नारी प्रसन्न हुए कि चार दिन और रहेंगे।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥

इस प्रकार वह दिन भी बीत गया। प्रातःकाल सब कोई स्नान करने लगे, स्नान करके नर-नारी गणेश, पार्वती, शिव और सूर्य का पूजन करने लगे।

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥
राजा रामु जानकी रानी। आनंद अवधि अवध रजधानी॥

फिर लक्ष्मीपति के चरणों को प्रणाम कर हाथ जोड़ और अंचल उठा विनती करने लगे। राजा राम हों और रानी जानकीजी हों। आनन्द की सीमा अयोध्या की राजधानी हो।

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुं जुबराजा॥
एहि सुख सुधां सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥

फिर समाज सहित अयोध्यापुरी अच्छे प्रकार से बसे और रामजी भरतजी को युवराज कर देवें। इस सुख के अमृत से सबको सींचकर संसार में आने का लाभ दीजिए।

दो०—गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ ॥ २६४ ॥

समाज और भाइयों समेत रामचन्द्रजी का राज्य अयोध्या नगर में हो और रामजी के राजा रहते हुए अवध में हमारा मरण हो, यही सब कोई मांगने लगे ॥ २६४ ॥

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी ॥
एहि विधि नित्य करम करि पुरजन। रामहिं करहिं प्रनाम पुलकि तन ॥

अयोध्यावासियों की स्नेहयुक्त वाणी सुन ज्ञानी मुनि योग-वैराग्य की निन्दा करने लगे। इसी प्रकार अपना-अपना नित्य कर्म करने पुरजन रामजी को प्रसन्नता से प्रणाम करते थे।

ऊंच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज-निज अनुहारी ॥
सावधान सबहि सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं ॥

ऊंचे-नीचे और मध्यम नर-नारी अपने-अपने योग्य दर्शन पाते थे, सावधानी के साथ सेवक सम्मान करते थे और वे सब कृपा निधान रामचन्द्रजी की सराहना करते थे।

लरिकाइहि तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥

बालपन से रामजी की यह बानी है कि रीति को पहिचानकर प्रीति को पालते हैं। रामजी शील, संकोच के समुद्र और सुन्दर मुख, सुन्दर नेत्र और सीधे स्वभाव से युक्त हैं।

कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे ॥
हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि रामु जानत करि मोरे ॥

सब लोग रामजी के गुणों का वर्णन करते प्रेम में मग्न हो गये और अपने भाग्य की सराहना करने लगे, हमारे समान पुण्यात्मा जगत में थोड़े हैं, जिन्हें रामजी अपना करके जानते हैं।

दो०—प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु ॥ २६५ ॥

उस समय जनकजी का आगमन सुनकर सब प्रेम में मस्त हो गये और सूर्यवंश रूपी कमल के सूर्य श्री रामचन्द्रजी के सहित आदर से उठे ॥ २६५ ॥

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा ॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं ॥

भाई, मन्त्री, गुरु और पुरजनों को साथ में लेकर रघुनाथजी ने आगे गमन किया। जनकजी ने ज्यों ही सुन्दर पर्वत को देखा, उसी समय उनको प्रणाम करके रथ को त्याग दिया।

राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू ॥
मन तहं जहं रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ॥

रामजी के दर्शन की लालसा के उत्साह से मार्ग के श्रम का क्लेश कुछ भी किसी को नहीं था। उनका मन तो वहां था, जहां रामचन्द्रजी और सीताजी रहे, बिना मन के शरीर के दुःख-सुख की सुधि किसको हो?

आवत जनकु चले एहि भांती। सहित समाज प्रेम मति माती ॥
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे ॥

इस भांति जनकजी चले आते थे। समाज सहित प्रेम में सबकी मति छकी हुई थी। जब समीप आये तो प्रेम से देखकर आदर सहित परस्पर एक-दूसरे से मिलने लगे।

लगे जनक मुनिजन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लवाइ समेत समाजहि॥

राम जनकजी मुनि मण्डली के चरणों को प्रणाम करने लगे और जनकपुर के ऋषियों को रामचन्द्रजी ने प्रणाम किया। भाइयों समेत रामचन्द्रजी राजा जनक से मिलकर फिर समाज सहित लिवा चले।

दो०—आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुं करुना सरित लिएं जाहिं रघुनाथु॥ २६६॥

रामचन्द्रजी का आश्रम समुद्र है उसमें शांति रस रूपी पवित्र जल भरा है, मानो जनकजी की सेना रूपी करुणा रस की नदी को मिलने के लिए रघुनाथजी लिये जाते हैं॥ २६६॥

बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा॥

वह करुणा-रस की नदी का ज्ञान और वैराग्य-रूपी दोनों किनारों को डुबोती है और मिथिलावासी तथा अयोध्यावासियों के शोक से भरे हुए वचन-रूपी नदी नालों के मिलने से बढ़ती जाती है। सोच से सांस लेना पवन की तरङ्ग है जो किनारे के धीर-रूपी सुन्दर वृक्षों को तोड़ती जाती है।

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवंर अबर्त अपारा॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा॥

कठिन दुःख अर्थात दशरथ मरण, राम-वन-गमन आदि क्लेश उस नदी की तेज धारा है और भय व भ्रम अर्थात रामजी के आगे क्या करेंगे, लौटेंगे या नहीं? सो भय उस नदी का भंवर है और भ्रम उस नदी के अपार चक्कर पड़ते जाते हैं। बुद्धिजन वशिष्ठ आदि उस नदी के मल्लाह हैं और उनकी विद्या बड़ी नाव है, जिसको कोई चला नहीं सकता। नाव का चलाना एक को भी नहीं आता।

बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियं हारे॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुं उठेउ अंबुधि अकुलाई॥

वन के रहने वाले कोल, किरात-रूपी बटोही बेचारे उस नदी को देखकर थक गये। आश्रम-रूपी समुद्र में जब वह नदी जाकर मिली तो मानो समुद्र अकुला उठा।

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही॥

दोनों राजसभा शोक से व्याकुल हो गयीं। न ज्ञान रहा, न धीरज रहा और न लाज रही। राजा के रूप, गुण और शील की सराहना करते हुए शोक करते रहते थे, वही मानो शोक सिन्धु में स्नान करते हुए गोता लगाते थे।

छं०—अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा॥
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा॥

सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की ॥
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की ॥११॥

शोक के समुद्र में स्नान करके सोच करते हुए स्त्री-पुरुष व्याकुल हो गये और क्रोध के वश लोग कहने लगे कि वाम विधाता ने यह क्या किया ? देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगीजन और मुनि, विदेह (राजा जनकजी) की दशा देखकर कोई भी समर्थ नहीं रहा, जो स्नेह की नदी को पैर सके ॥ ११ ॥

सो०—किए अमित उपदेस जहं तहं लोगन्ह मुनिबरन्ह ।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ वसिष्ठ बिदेह सन ॥ ११ ॥

मुनिवरों ने जहां-तहां लोगों को बहुत सा उपदेश किया और वशिष्ठजी ने जनकजी से कहा—हे राजन् ! आप भी धीरज धरिये ॥ ११ ॥

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा । बचन किरन मुनि कमल बिकासा ॥
तेहि कि मोह ममता निअराई । यह सिय राम सनेह बड़ाई ॥

जिनके ज्ञान-रूपी सूर्य से जन्म-मरण रूपी रात्रि का नाश हो जाता है तथा जिनके वचन-रूपी किरणें से मन-रूपी कमल खिल जाता है, उस महात्मा के निकट क्या अज्ञान और ममता आ सकती है यह सीताजी और रामजी के स्नेह की बड़ाई ।

बिषई साधक सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभां बड़ आदर तासू ॥

विषयी और चतुर सिद्ध ये तीन प्रकार के जीव संसार में होते हैं, वेद ने ऐसा कहा है । रामजी के प्रेम में जिनका मन सरस है, साधुओं की सभा में उसी का बड़ा आदर है ।

सोह न राम पेम बिनु ग्यानू । करनधार बिनु जिमि जल जानू ॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए । राम घाट सब लोग नहाए ॥

रामजी के प्रेम बिना ज्ञान ऐसे नहीं सुहाता है, जैसे मल्लाह के बिना नाव नही सुहाती । वशिष्ठ जी ने बहुत प्रकार से जनकजी को समझाया, फिर रामघाट पर लोगों ने स्नान किया ।

सकल सोक संकुल नर नारी । सो बासरु बीतेउ बिनु बारी ॥
पसु खग मृगन्ह कीन्ह अहारू । प्रिय परिजन कर कौन बिचारू ॥

सब नर-नारियो के शोक में भरे रहने से वह दिन भी बिना जल पिये बीत गया । पशु, पक्षी और मृगों ने भी भोजन नहीं किया, प्यारे कुटुम्बियों का कौन विचार है ।

दो०—दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात ।
बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृस गात ॥ २६७ ॥

जनकराज और रघुनाथजी की ओर के दोनों समाजों ने मिलकर प्रातःकाल स्नान किया फिर सब लोग बरगद के वृक्ष के नीचे जा बैठे, जिनका मन उदास हो रहा था और शरीर दुबला हो गया था ॥ २६७ ॥

जे महिसुर दसरथ पुर बासी । जे मिथिलापति नगर निवासी ॥
हंस बंस गुर जनक पुरोधा । जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा ॥

जो ब्राह्मण दशरथपुर (अयोध्या) वासी थे और जो जनकनगर के निवासी थे, सूर्यवंश के गुरु वशिष्ठजी और जनकजी के पुरोहित शतानन्दजी जिन्होंने संसार का मोक्ष का मार्ग खोज लिया था।

लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानीं। समुझाई सब सभा सुबानीं॥

दोनों धर्म, नीति, वैराग्य और ज्ञान सहित अनेक उपदेश कहने लगे। विश्वामित्रजी ने पौराणिक कथा कहकर मधुर वाणी से सब सभा को समझाया।

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई॥

तब रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा हे नाथ! कल सब लोग बिना जल के रहे हैं, यह सुन मुनि ने कहा- रघुनाथजी ठीक हैं आज भी अढ़ाई पहर दिन बीत गया है।

रिषि रुख लखि कह तेरहुतिराजू। इहां उचित नहिं असन अनाजू॥
कहा भूप भल सबहि सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥

विश्वामित्र मुनि की यह इच्छा देखकर जनकजी ने कहा कि यहां अन्न का भोजन तो उचित नहीं है। राजा का अच्छा कहना सबको भला लगा और आज्ञा पाकर नहाने चले।

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।
लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि कांवरि भार॥ २६८॥

उसी समय अनेक प्रकार के फूल, फल, दल और मूल कांवरों में भर-भरकर अनेक वनवासी ले आये॥ २६८॥

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनन्द अनुरागा॥

रामजी के प्रसाद से चित्रकूट पर्वत कामनाओं को देने वाला हो गया, देखते ही शोक को हर लेता था। सरोवर, नदी, वन और भूमि के विभाग में मानो प्रेम का समुद्र उमड़ रहा है।

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू॥

बेलि और वृक्ष सब फल से लद गये। पक्षी, पशु और भौंरे समय के अनुसार बोली बोलने लगे। उस समय वन अधिक आनन्ददायक हो गया। सबको सुख देने वाली तीनों प्रकार की (शीतल, मन्द और सुगन्धित) वायु बहने लगी।

जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई॥

वह सुन्दरता कही नहीं जा सकती, मानो वहां की पृथ्वी राजा जनकजी की पहुनाई कर रही हो। तब सब लोग रामजी जनकजी और मुनि की आज्ञा पाकर नहाये।

देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहं तहं पुरजन उतरन लागे॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुन्दर सुधा समाना॥

सुन्दर वृक्ष देखकर प्रसन्न हो, जहां-तहां पुरजन उतरने लगे। दल, फल, फूल, कन्द और भांति भांति के सुन्दर और अमृत के समान थे।

दो०—सादर सब कहं रामगुर पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फरहार॥ २६९॥

आदर से सबके यहां रामजी के गुरु वशिष्ठजी ने थार भर-भरकर भेज दिया, तब सब लोग पितर, देवता, अतिथि और गुरु का पूजन करके फलाहार करने लगे॥ २६९॥

एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी॥
दुहु समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥

इस प्रकार चार दिन बीते और रामजी को देख सब नर-नारी सुखी रहने लगे, दोनों ओर के समाज के मन में ऐसी इच्छा कि बिना सीताजी और रामजी के घर लौटना अच्छा नहीं है।

सीता राम संग बनबासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू॥
परिहरि लखन रामु बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥

सीताजी और रामजी के साथ वन में वास करने में करोड़ों देवलोक के समान आनन्द है। राम-लक्ष्मण सीताजी को छोड़कर जिसको घर अच्छा लगे, उसको विधाता बांया जानिये।

दाहिन दइउ होइ जब सबही। राम समीप बसिअ बन तबही॥
मन्दाकिनी मज्जनु तिहु काला। राम दरसु मुद मंगल माला॥

जब ईश्वर सबको दाहिना हो तभी रामजी के समीप वन में बसना हो। मन्दाकिनी में तीनों काल स्नान और रामजी का दर्शन और आनन्द मङ्गल की माला है।

अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमिअ सम कंद मूल फल॥
सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता॥

यहां रामजी के पर्वत, वन और तपस्वियों के आश्रम में विचारना और अमृत समान कन्द, मूल और फल का भोजन है। सुख के साथ चौदह वर्ष पल भर के समान हो जायेंगे वर्ष जाते हुए नहीं जाने जायेंगे।

दो०—एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहां अस भागु।
सहज सुभायं समाज दुहु राम चरन अनुरागु॥ २७०॥

फिर कहते थे कि ऐसे सुख के योग्य सब लोग नहीं हैं हमारा ऐसा भाग्य कहां है? इसी प्रकार दोनों समाजों के साधारण स्वभाव से रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम था॥ २७०॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीय मातु तेहि समय पठाईं। दासीं देखि सुअवसरु आईं॥

इसी प्रकार सब लोग मनोरथ करते थे, उनके प्रेम सहित वचन सुनने से मन मोह जाता था। सीताजी की माता ने उस समय दासी को भेजा, वह अच्छा अवसर देखकर लौट आई।

सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनकराज रनिवासू॥
कौसल्या सादर सनमानी। आसन दिए समय सम आनी॥

दासी के मुख से सीताजी की सासुओं का अवकाश सुनकर जनकजी का रनिवास वहीं आया। कौशल्याजी ने आदर से सबका सम्मान किया और समय के अनुसार सबको आसन दिया।

सीलु सनेह सकल दुहु ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥

दोनों ओर के रस भरे शील और स्नेह को देख सुनकर कठोर वज्र भी पसीजते थे। रोमान्चित होने से देह शिथिल हो गई। नेत्रों में आंसू भर आये। पृथ्वी पर नख से लिखने और सब सोचने लगीं।

सब सिय राम प्रीति कि सि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बांकी। जो पय फेनु फोर पबि टांकी॥

ये सब सीता और रामजी के प्रेम की मानो मूर्ति हैं और मानो करुणा ही बहुत सा रूप धारण किये हुए सोच रही है। सीताजी की माता रानी सुनयना कहने लगी कि विधाता की बुद्धि टेढ़ी है, जिसने दूध के फेन को वज्र की टांकी को तोड़ा।

दो०— सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहं तहं काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥ २७१॥

सुना जाता है कि अमृत और देखने में आता है विष। अर्थात जहां अमृत सुना जाता है, वहां विष देखने में आता है। विधाता की सब करतूत भयंकर हैं। जहां तहां कौवा, उल्लू, पक्षी, बगुला दीख पड़ते हैं, हंस पक्षी एक मान सरोवर में होते हैं॥ २७१॥

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल केलि सम बिधि मति भोरी॥

सुनयना रानी के वचन को सुनकर सोच-रहित सुमित्रा रानी कहने लगी कि हे रानी! विधाता की गति विपरीत (बड़ी उल्टी) और अनोखी है। जो पहले उत्पन्न करके पालता है फिर उसे हर लेता है, बालक के समान विधाता की मति भोली है।

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥

कौशल्या रानी कहने लगी कि किसी का दोष नहीं है कर्म के अधीन दुःख सुख, हानि और लाभ को जानिये। कर्म की गति कठिन है। 'गहना कर्मणा गति' उस कर्मगति को विधाता ही जानता है और वही अच्छे-बुरे कार्यों का फल देने वाला है।

ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥

ईश्वर की आज्ञा, उत्पत्ति, स्थिति, लय, विष, अमृत सभी के सिर है। हे देवी अज्ञान के वश सोच करना व्यर्थ हैं, विधाता का प्रपंच अनादि काल से ऐसा ही चला आता है।

भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी॥

राजा का जीता मरना हृदय में विचार हे सखी! अपने हित की हानि देख सोच होता है। सीता जी की माता ने कहा कि तुम्हारी सुन्दर वाणी सच्ची है, पुण्यात्माओं के अधिकारी अर्थात अवधपति की तुम रानी हो।

दो०—लखनु रामु सिय जाहुं बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियं कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥ २७२॥

लक्ष्मण, राम और सीताजी भले ही वन को जायें, परिणाम अच्छा ही होगा बुरा नहीं होगा। घबराकर सोच भरे हुए हृदय से कौशल्या ने यह कहा कि मुझको तो भरत का सोच है ॥ २७२ ॥

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी॥
राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहउं सखी सति भाऊ॥

शिवजी की कृपा और तुम्हारे आशीर्वाद से दो पुत्र और पुत्र-वधू गंगा जल के समान और पवित्र हैं। रामजी की सौगन्ध मैंने कभी नहीं की सो करना, हे सखी! मैं सच्चे भाव से कहती हूं।

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई।
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥

भरतजी के शील, गुण, विनय, बड़ाई, भाईपन, भक्ति, भरोसा, भलाई कहते हुए सरस्वती की बुद्धि भी सकुचाती है, क्या सीपी से समुद्र उलीचा जा सकता है?

जानउं सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसें कनकु मनि पारिखि पाएं। पुरुष परिखिअहिं समयं सुभाएं॥

भरत को सदा इस कुल का दीपक जानना, यह बार-बार राजा ने मुझसे कहा है। सोना कसने से और मणि परखने वाले के हाथ में जाने से, पुरुष समय पर स्वभाव से परखा जाता है।

अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेहं सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी॥

भरत की प्रशंसा के बारे में आज मेरा कहना भी अनुचित है, क्योंकि शोक और स्नेह से मुझमें चतुरता थोड़ी है। उनकी पवित्र वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेह से शिथिल हो गयीं।

दो०—कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि॥ २७३ ॥

फिर कौशल्याजी धीरज धरकर कहने लगीं, हे मिथिलेश की महारानी! सुनो तुम ज्ञान के समुद्र महाराज जनक जी की प्यारी हो, तुमको कौन उपदेश दे सकता है॥ २७३ ॥

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भांति कहब समुझाई॥
रखिअहि लखनु भरतु गवनहिं बन। जौं यह मत मानै महीप मन॥

हे रानी! समय पाकर राजा से अपनी ओर से समझाकर कहना कि लक्ष्मण अयोध्या को लौटें और भरत वन को जायें, जो यह राजाजी मन में मानें।

तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं।

तो यह उपाय अच्छा है भली-भांति विचार करें, क्योंकि मुझको भरत का सोच बहुत है। भरत के मन में छिपा हुआ प्रेम है। रामजी के बिना उनका रहना मुझको अच्छा नहीं लगता, कहीं अपनी देह न छोड़ दें।

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेहं सिद्ध जोगी मुनि॥

कौशल्या का स्वभाव देखकर सीधी और मधुर वाणी सुनकर सब रानी करुणा-रस में मग्न हो गयीं। आकाश से फूल बरसने लगे और धन्य-धन्य की ध्वनि होने लगीं। सिद्ध और योगी, मुनि स्नेह से शिथिल हो गये।

सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रां कहेऊ॥
देबि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती॥

सब रनिवास चकित हो देखता रह गया, तब धीरज धर सुमित्रा ने कहा कि हे देवि ! दो घड़ी रात बीत गई, यह सुनकर रामजी की माता कौशल्या रानी प्रीति सहित उठीं।

दो०—बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेह सतिभाय।
हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय॥ २७४॥

प्रेम सहित सच्चे भाव से कहने लगीं कि वेग ही निवास स्थान को चरण पधारिये हमको तो ईश की गति है अथवा महाराज मिथिलेश जी सहायक हैं॥ २७४॥

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गह पाय पुनीता॥
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ घरिनि राम महतारी॥

स्नेह देख अति नीतिवान वचन सुनकर जनकजी की प्यारी रानी सुनयना कौशल्याजी के पवित्र चरणों को पकड़ कर बोली, हे देवि ! तुम्हारी ऐसी विनती उचित ही है, क्योंकि तुम महाराज दशरथ की पत्नी और रामजी की माता हो।

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं॥
सेवकु राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेसु भवानी॥

प्रभु (स्वामी) अपने से नीचों का भी आदर करते हैं, देखो अग्नि धुएं को और पर्वत तिनके को भी अपने सिर पर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणी से आपके सेवक हैं और आपके सहायक तो सदैव शिव और पार्वती जी हैं।

रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै॥
रामु जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥

आपके शरीर के योग्य जगत में कौन है, दीपक की सहायता से सूर्य शोभा को प्राप्त होता है। रामजी वन में जाकर और देवताओं का काम करके अयोध्यापुरी में अचल राज्य करेंगे।

अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा॥

देवता, नाग, और नर रामजी की भुजाओं के बल से अपने स्थान में सुख से बसगे। यह सब याज्ञवलक्यजी ने कह रखा है, हे देवी ! ऋषि का कहना झूठ नहीं होगा।

दो०—अस कहि पग परि पेम अति सिय हित बिनय सुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ॥ २७५॥

ऐसे कह और चरणों पर पड़कर बड़े प्रेम से सीताजी को साथ ले जाने के निमित विनती सुना और कौशल्या जी की सुन्दर आज्ञा पाकर तब सीताजी को साथ लेकर उनकी माता सुनयना रानी अपने डेरे को चलीं॥ २७५॥

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भांति तेहि तेहि॥
तापस बेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी॥

जानकीजी प्यारे कुटुम्बियों से जो जिस योग्य था उसको उसी भांति से मिलीं तपस्विनी के वेष में जानकीजी को देखकर सब लोग दुःख से बहुत व्याकुल हुए।

जनक राम गुर आयसु पाई। चले थलहि सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन पेम प्रान की॥

जनकजी राम और वशिष्ठजी की आज्ञा पा अपने डेरे को चले और जाकर सीताजी को देखा। जनकजी ने प्रेम और प्राणों की पाहुनी जानकी को हृदय से लगा लिया।

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुं पयागू॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। ता पर राम पेम सिसु सोहा॥

हृदय में अनुराग का समुद्र उमड़ पड़ा, तब राजा जनकजी का मन मानो प्रयाग हो गया। सीताजी का स्नेह-रूपी अक्षय-वट बढ़ता देख, उस पर रामजी का प्रेम-रूपी शिशु शोभा हो।

चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलम्बनु॥
मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥

मानो चिरंजीव मार्कण्डेय मनि-रूप जनक का विकल ज्ञान बूढ़ा जाता था, उसने रामजी के प्रेम-रूप शिशु का अवलम्बन पाया, ज्ञान, प्रेम के समुद्र में डूबना चाहता था, परन्तु सीताजी के स्नेह-रूपी वट-वृक्ष का साहरा पाकर और रामजी का स्नेह बाल-स्वरूप देखकर बच गया।

दो०—सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी संभारि।
धरनिसुतां धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥ २७६॥

सीताजी अपने माता-पिता के स्नेह के वश व्याकुल होकर अपने को संभाल न सकी। फिर उन्होंने समय और श्रेष्ठ धर्म का विचार कर धीरज धारण किया॥ २७६॥

तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ पेमु परितोषु बिसेषी॥
पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ॥

जनकजी ने तपस्विनी के वेश में सीताजी को देखा तो उन्हें बड़ा प्रेम और सन्तोष हुआ। फिर बोले कि हे पुत्री! तुमने कुल को पवित्र किया है। तुम्हारा निर्मल सुयश जगत में सब कोई वर्णन करेंगे।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे॥

जैसे गङ्गाजी की कीर्ति ने करोड़ों ब्रह्माण्डों में गमन किया है। पृथ्वी पर गङ्गाजी के तीन स्थान बड़े हैं। हरिद्वार, प्रयागराज, सागर संगम और तुम्हारी कीर्ति के बहुत से साधु समाज हैं।

पितु कह सत्य सनेहं सुबानी। सीय सकुच महुं मनहुं समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥

जनक ने स्नेह से सच्ची और सुन्दर वाणी कही परन्तु सीता सकुच कर मानो पृथ्वी में समा गई, फिर माता-पिता ने हृदय से लगा लिया और हित की शिक्षा और सुन्दर आशीश दी।

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहां बसब रजनीं भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयं सराहत सील सुभाऊ॥

सीताजी मन में सकुचकर कह नहीं सकती थीं कि रात को यहां रहना ठीक नहीं है। सीताजी की इच्छा देखकर रानी ने राजा को बता दिया, तो राजा हृदय में सीताजी के शील, स्वभाव की सराहना करने लगे।

दो०—बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि॥ २७७॥

राजा-रानी बार-बार मिले, भेंटकर सीताजी को सम्मान से विदा किया, फिर समय पाकर चतुर रानी ने मधुर वाणी से भरतजी की दशा कही, जो कौशल्याजी ने कही थी।। २७७॥

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससि सारू॥
मूदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥

राजा ने भरतजी का व्यवहार सुना, जो सोना सुगन्ध अमृत और चन्द्रमा के सार के समान है। जल भर आने से नेत्रों को बन्द कर लिया, शरीर पुलकित हो गया और प्रसन्न मन होकर भरतजी के सुन्दर यश को सराहने लगे।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहां जथामति मोर प्रचारू॥

सावधान होकर सुनो हे सुमुखी! (सुन्दर मुख वाली) हे सुलोचनी! (सुन्दर नेत्र वाली) भरत की कथा संसार के बन्धन को छुड़ाने वाली है। धर्म-शास्त्र राजनीति, ब्रह्म विचार, इन सबमें बुद्धि के अनुसार मेरा अभ्यास है।

सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छांही॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद॥

यह मेरी बुद्धि भरत की महिमा को क्या कहे, वह तो धोखे से भी उसकी छाया को नहीं छू सकती। ब्रह्मा, गणेश, शिव, सरस्वती, कवि पण्डित, विद्वान् बड़े बुद्धिमान हैं।

भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥

भरत का चरित्र कीर्ति, करतूति, धर्म, स्वभाव, गुण, निर्मल, ऐश्वर्य को समझने सुनने में सबको सुख देने वाले हैं, इनकी पवित्रता गंगाजी और रुचि अमृत का भी निरादर करती है।

दो०—निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि॥ २७८॥

हे देवी! भरत के गुणों की अवधि (सीमा) नहीं। भरत की उपमा का कोई भी पुरुष नहीं, इस कारण भरत को भरत के समान जानो, जैसे कवियों की बुद्धि सकुचा गई और कोई उपमा नहीं मिली तो सुमेरु को सुमेरु के ही समान उपमा दी॥ २७८॥

अगम सबहि बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

हे सुन्दरी! भली-भांति से भरत की मन-हरण कथा कहना सबको कठिन है, जैसे जल हीन पृथ्वी पर मछलियों को चलना कठिन है। हे रानी! सुनो, भरत की अपार महिमा को रामजी जानते हैं, परंतु वे बखान नहीं कर सकते।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ॥
बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं। सब कर भल सबके मन माहीं॥

इस प्रकार प्रेम से भरत का सच्चा भाव कहकर स्त्री की रुचि देख राजाजी कहने लगे, लक्ष्मण लौटे और भरत वन को जायें, इसमें सबका भला है और यही सबके मन में भी है।

देबि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की॥

परन्तु हे देवि! भरत और रामचन्द्रजी की प्रीति और प्रतीति में तर्कना नहीं की जा सकती। भरत तो स्नेह और ममता की सीता है, यद्यपि रामजी समता की सीमा है, तथापि भरत में स्नेह और ममता भरत के समान है।

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुं मनहुं निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

परमार्थ और स्वार्थ के सम्पूर्ण सुखों को भरतजी ने सपने में भी नहीं देखा है। रामजी के चरणों में स्नेह होने से सब साधन सिद्ध होते हैं, मुझको तो दिखाई पड़ता है कि भरतजी का यही मत है।

दो०—भोरेहुं भरत न पेलिहहिं मनसहुं राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ॥ २७१॥

भरतजी भूलकर स्वप्न में भी रामजी की आज्ञा को नहीं टालेंगे, राजा जनक ने प्रीति से व्याकुल होकर कहा—हे रानी! तुम स्नेह के वश होकर सोच मत करो॥ २७१॥

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥

रामजी और भरतजी के गुणों के समूह को प्रीति सहित कहते, स्त्री-पुरुष को रात पल के समान बीत गई, प्रातः काल दोनों राज समाज जागे और स्नान करके देव-पूजन करने लगे।

ग नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनवास दुखारी॥

रामजी स्नान कर वशिष्ठजी के पास गए और उनके चरणों को प्रणाम कर और रुख पाकर बोले हे नाथ! भरत, पुरवासी लोग माताएं सोच विकल और वनवास से दुःखी हो रहे हैं।

सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रौरें हाथा॥

समाज सहित राजा जनकजी को भी क्लेश सहते हुए बहुत दिन हो गए हैं, जैसे उचित हो वैसा कीजिए, हे नाथ! सबका हित आपके हाथ में है।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा॥

ऐसे कहकर रघुनाथजी बहुत सकुचे, मुनि वशिष्ठजी शील, स्वभाव देखकर पुलकित हो गये हे राम! तुम्हारे बिना सुख, साज दोनों राज-समाजों को नरक के समान है।

दो०—प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम॥ २८०॥

हे राम ! तुम प्राणों के प्राण, जीवों के जीव और सुख के भी सुख हो। हे प्यारे ! तुमको छोड़कर जिनको अच्छा लगे, उसको विधाता बाम है॥ २८०॥

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहं न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहं नहिं राम पेम परधानू॥

यह सुख, कर्म धर्म, जल जावे, जिनमें रामचन्द्रजी के चरण-कमलों की भावना-भक्ति न होवे। व कुयोग और ज्ञान अज्ञान है जिसमें रामजी का प्रेम प्रधान होवे।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं॥
राउर आयसु सिर सबहीं कें। बिदित कृपालहि गति सब नीकें॥

तुम्हारे बिना राज-समाज दुःखी और तुमसे सुखी है, तुम सब जानते हो। जो जिसके मन में है। आपकी आज्ञा सिर पर है, हे कृपालु ! आपको सब नीति अच्छी तरह से विदित है।

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनामु तब रामु सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥

आप अपने आश्रय को चलिए, यह कह वशिष्ठजी स्नेह से शिथिल हो गए, तब मुनि को प्रणाम कर रामजी अपने आश्रम को गए और वशिष्ठ धीरज धर जनकजी के पास आए।

राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायं सुहाए॥
महाराज अब कीजिअ सोई। सब कर धरम सहित हित होई॥

गुरु वशिष्ठ ने शील, स्नेह और स्वाभाविक सुहावने रामजी के वचन जनकराज को सुनाये और कहा—हे महाराज ! अब वही कीजिए, जिसमें धर्म समेत जिसका हित हो।

दो०—ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल॥ २८१॥

हे राजा ! तुम ज्ञान, निधान, सुजान और पवित्रता हो, धर्म और धीरज को धारण करने वाले हो, मनुष्यों का पालन करने वाले हो। तुम्हारे बिना असमंजस (द्विविधा) को दूर करने में इस समय दूसरा कौन समर्थ है॥ २८१॥

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥
सिथिल सनेहं गुनत मन माहीं। आए इहां कीन्ह भल नाहीं॥

मुनि के वचन को सुनकर जनकजी प्रेम में मग्न हो गए, उनकी गति देख ज्ञान-वैराग्य को भी वैराग्य हो गया। जनकजी स्नेह से शिथिल होकर मन में विचार करने लगे कि हम यहां आये सो अच्छा नहीं किया।

रामहि रायं कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय पेम प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥

राजा दशरथजी ने रामजी को वन को जाने को कहा तो अपने प्यारे प्रेम का प्रमाण किया। हम अब रामजी को वन को भेज और प्रसन्नता से ज्ञान बढ़ाकर लौटेंगे।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बस बिकल बिसेषी॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा॥

चित्रकूट के तपस्वी मुनि, ब्राह्मण सब जनकजी के प्रेम की दशा देख प्रेमवश हो बहुत व्याकुल हुए अनन्तर समय विचार धीरज धर जनकजी समाज समेत भरतजी के पास चले।

भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे॥
तात भरत कह तेरहुति राऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ॥

भरतजी ने आगे आकर उन्हें लिया और समय के अनुसार उत्तम आसन दिया। राजा जनकजी ने कहा - हे तात! तुम तो रामजी के स्वभाव को जानते ही हो।

दो०–राम सत्यब्रत धरम रत सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत संकोच बस कहिअ जो आयसु देहु॥ २८२॥

रामजी सत्य प्रतिज्ञा वाले और धर्म में, प्रीति करने वाले हैं। सबके शील, स्नेह और सकुच के वश संकट सहते हैं। उचित हो सो आज्ञा दो॥ २८२॥

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू॥

जनकजी की बात सुन शरीर से पुलकायमान हो नेत्रों में जल भरकर बड़ा धीरज धरकर भरतजी बोले। प्रभु रामचन्द्रजी हमारे प्यारे और पूज्य हैं, पिता के समान आप हैं।

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अम्बुनिधि आपुनु आजू॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी॥

आज विश्वामित्र आदि मुनीश्वर और मन्त्रियों का समाज ज्ञान के समुद्र आप हैं। हे स्वामी! मुझको तो अपना बालक, सेवक और अपनी आज्ञा के अनुसार चलने वाले जानकर शिक्षा दीजिए।

एहिं समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥

इस समाज के स्थान में आप पूछो और मैं मलीन बावला उत्तर दूं ऐसा उचित नहीं है। छोटे मुख से बड़ी बात कहता हूं, हे तात! विधाता को उलटा देख क्षमा करना।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना॥
स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू। बैरु अन्ध प्रेमहि न प्रबोधू॥

शास्त्र, वेद और पुराणों में प्रसिद्ध है कि सेवा धर्म कठिन है। संसार जानता है। स्वामी धर्म और स्वार्थ से विरोध है। बहरे और अंधे में प्रेम का ज्ञान नहीं होता।

दो०–राखि राम रुख धरमु व्रतु पराधीन मोहि जानि।
सब कें संमत सर्ब हित करिअ पेमु पहिचानि॥ २८३॥

रामचन्द्रजी का रुख और धर्म-व्रत रखकर तुमको पराधीन जानकर सबको सम्मति से प्रेम पहिचान कर सबका हित कीजिए॥ २८३॥

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥

भरतजी के वचन को सुन और स्वभाव को देख समाज समेत उनकी सराहना करने लगे। भरतजी के वचन सुनने में धीमे हैं जिनमें अर्थ समझने में कठिन हैं और कोमल उज्ज्वल तथा कठोर है जिनमें अर्थ तो बहुत है लेकिन अक्षर थोड़े हैं।

ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अद्भुत बानी॥
भूप भरतु मुनि सहित समाजू। गे जहं बिबुध कुमुद द्विजराजू॥

जैसे मुख दर्पण में और दर्पण अपने हाथ होता है, परन्तु दर्पण में मुख पकड़ा नहीं जाता, ऐसे ही भरतजी अद्भुत वाणी थी। राजा जनक, भरत, मुनि-मण्डली और साधु-समाज सब वहां गए जहां रामचन्द्रजी थे।

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुं मीनगन नव जल जोगा॥
देवं प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेषी॥

इस सोच में ऐसे विकल हो गए, जैसे मछलियों का झुण्ड नवीन जल के मिलने से विकल हो जाता है। देवताओं ने पहले कुल-गुरु की दशा देखी और जनकजी का अधिक प्रेम देखा।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हियं हारे॥
सब कोउ राम पेममय पेखा। भए अलेख सोच बस लेखा॥

भरतजी को राम-भक्ति में लवलीन देखकर स्वार्थी देवता घबराकर मन में हार गए। और सबको रामजी के प्रेम में मग्न देखकर सोच के वश देवता अलख हो गए।

दो०—रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाजु॥ २८४॥

रामचन्द्रजी स्नेह संकोच के वश हैं, यह सोचकर इन्द्र के कहा कि अब पंच लोग प्रपंच रचो, नहीं तो अकाज हुआ जानो॥ २८४॥

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुधकुल करि छल छाया॥

देवताओं ने स्मरण करके सरस्वती की सराहना करके स्तुति की कि हे देवि! हम सब देवता शरण में आए हैं हमारी रक्षा करो। भरतजी की बुद्धि अपनी माया करके फेर दो और कपट-रूपी छाया करके देवताओं के कुल का पालन करो।

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥

देवताओं की प्रार्थना सुन चतुर देवी सरस्वती देवताओं को स्वार्थी और जड़ जान बोली। मुझसे कहते हो कि भरत की मति फेर दो, सो तुम्हारे नेत्र हजार हैं, पर सूझता सुमेरु भी नहीं।

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥

ब्रह्मा, विष्णु महादेव की बड़ी भारी माया है जिसको महामाया कहते हैं वह भी तो भरतजी की मति को नहीं फेर सकती है। उस मति को मुझसे कहते हो कि भोली करो क्या चांदनी चन्द्रमा की चोरी कर सकती है? कभी नहीं।

भरत हृदयं सिय राम निवासू। तहं कि तिमिर जहं तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुं कोका॥

भरत के हृदय में सीता और रामजी का निवास है, क्या वहां भी अंधेरा हो सकता है जहां सूर्य का प्रकाश हो ? ऐसे कहकर सरस्वतीजी तो ब्रह्मलोक को चली गई और देवता ऐसे व्याकुल हो गए, जैसे रात को चकवा-चकई व्याकुल हो जाते हैं।

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु॥ २८५॥

स्वार्थी और मलीन मन देवताओं ने कुमन्त्र कर और रचना रचकर संसार को प्रबल माया से भय भ्रम, अप्रीति और उच्चाटन को उत्पन्न कर दिया॥ २८५॥

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥
गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा॥

यह कुचाल करके इन्द्र सोचने लगा कि अब भरत के हाथ का कार्य अकाज है, जनकजी रघनाथजी के समीप गए, तब रघुवंश के दीपक-रूपी रामजी ने सबका सम्मान किया।

समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥

तब रघुवंश के पुरोहित वशिष्ठजी समय, समाज और धर्म के अनुकूल वचन बोले। जनक और भरत का संवाद सुन भरतजी की सुहावनी कहावत कही।

तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करै मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥

हे तात राम! जसी आज्ञा दो वही सब करें, मेरा तो वही मत है। यह सुनकर रामजी दोनों हाथ जोड़ सच्ची सीधी और कोमल वाणी बोले।

बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भांति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥

आप और मिथलापति जनकजी के रहते हुए मेरा कहना सब प्रकार से भद्दा है। आप और राजा जी की आज्ञा हो, आपको सौगन्ध से सत्य कहता हूं कि सिर पर रखकर मानूंगा।

दो०—राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत॥ २८६॥

रामजी की सौगन्ध सुन वशिष्ठ मुनि और जनकजी सभा सहित सकुचा गये, तब भरत के मुख की ओर देखने लगे तथा उत्तर देते नहीं बना॥ २८६॥

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबन्धु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु संभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥

भरतजी ने सभा सकुचित देखी तो भरतजी ने बहुत धीरज धारण किया। कुसमय को देखकर प्रेम को संभाला, जसे बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्य मुनि ने निवारण किया।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी॥
भरत बिबेक बराहं बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥

शोक-रूपी हिरण्याक्ष ने बुद्धि-रूपी पृथ्वी को हर लिया, तब गुणों के समूह-रूपी ब्रह्मा से भरतजी के ज्ञान-रूपी विशाल वराह ने उत्पन्न होकर उसी समय अनायास ही शोक-रूपी हिरण्याक्ष को मारकर बुद्धि-रूपी पथ्वी का उद्धार किया।

करि प्रनामु सब कह कर जरि। रामु राउ गुर साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउं बदन मृदु बचन कठोरा॥

भरतजी हाथ जोड़कर सबको प्रणाम कर राम-जनक-वशिष्ठ और साधुओं से विनयपूर्वक बोले आज मेरे अनुचित को क्षमा करना, क्योंकि मैं कोमल मुख से कठोर वचन कहता हूं।

हियं सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥

अपने हृदय में सुहावनी सरस्वती का स्मरण किया, तब वह मन-रूपी मानसरोवर से मुख-कमल में आ गई। वैराग्य, ज्ञान, धर्म, नीति, रूपी मोतियों की खेती में भरतजी की भारतीय वाणी सुन्दर हंसिनी है।

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेहं समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु॥ २८७॥

अपने ज्ञान के नेत्रों से सभा को शिथिल देखकर प्रणाम कर सीता और रघुनाथजी का स्मरण करके भरतजी बोले॥ २८७॥

प्रभु पितु मातु सुहद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अन्तरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपाल सर्वग्य सुजानू॥

हे प्रभु! आप ही मेरे माता-पिता, गुरु, स्वामी, पूज्य, परम हितकारी और अन्तर्यामी हो, और आप ही उत्तम स्वामी, शील के निधान, दीन जन-पालक, सर्वज्ञ और सुजान हो।

समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघ हारी॥
स्वामि गोसांइहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं साइं दोहाई॥

और सामर्थ्यवान्, शरण आए हुए भक्तों के हितकारी, गुणों के ग्राहक, अवगुण (दोष) और पाप के नाश करने वाले हो। हे स्वामी! स्वामी तो आपके समान तो आप ही हैं और मैं स्वामी की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि मेरे समान कुसेवक भी मैं ही हूं।

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयउं इहां समाजु सकेली॥
जग भल पोच ऊंच अरु नीचू। अमिअ अमरपद माहुरु मीचू॥

हे प्रभु! पिता के वचन को मोह-वश उल्लंघन कर समाज को एकत्रित करके यहां चला आया हूं। जगत् में भले-बुरे, ऊंच-नीच, अमृत का अमर पद और विष मृत्यु भी आप ही हैं।

राम रजाइ मेठ मन माहीं। देखा सुना कतहुं कोउ नाहीं॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

रामजी की आज्ञा मेटता हो, ऐसा मन में विचारने पर भी कहीं कोई देखा-सुना नहीं गया, सो मैंने सब प्रकार से ढिठाई की, आप प्रभु ने उस ढिठाई को स्नेह से सेवकाई मानी।

दो०—कृपां भलाईं आपनीं नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहु ओर॥ २८८॥

अपनी दया और भलाई से हे नाथ! आपने मेरा ऐसा भला किया कि मेरे भी भूषण समान हो गये और आपका सुन्दर सुयश चारों ओर फैल गया॥ २८८॥

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥

आपकी रीति सुन्दर बाणी और बढ़ाई जगत् में प्रसिद्ध है और वेद-शास्त्रों में गाई है। टेढ़ा, खोटा दुष्ट, दुर्बुद्धि, कलंकी, नीच, शील रहित, स्वामि रहित, नास्तिक और निडर।

तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनामु किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुं न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥

वे भी आपके गुण सुन सामने शरण आये तो एक ही बार प्रणाम करने से आपने उनको भी अपना बना लिया। उनका दोष देखकर भी कभी मन में नहीं लाए और गुण सुन साधु-मण्डली में बखान किया।

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोचु उर अपनें॥

ऐसा कौन स्वामी सेवक निवाजने वाला है जो अपने समान सब साज सजा देवे, आप अपनी करतूत सपने में भी नहीं समझते हो और अपने हृदय में सेवक की सकुच का सोच करते हो।

सो गोसाइं नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउं पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥

सो ऐसे स्वामी आप ही हो, दूसरा कोई भी नहीं है। यह बात मैं भुजा उठाकर और प्रतिज्ञा करके कहता हूं। पशु नाचते हैं, तोता पढ़ने में प्रवीण होता है, परन्तु इनके गुण की गति नट और पाठक के अधीन है।

दो०—यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर॥ २९१॥

तैसे ही सुधार और सम्मान करके अपने भक्तों को आपने साधुओं का शिरमोर बनाया है सो आप कृपालु के बिना बल पूर्वक यश-समूह देने के प्रण को कौन पालेगा॥ २८९॥

सोक सनेहं कि बाल सुभाएं। आयउं लाइ रजायसु बाएं॥
तबहुं कृपालु हेरि निज ओरा। सबहि भांति भल मानेउ मोरा॥

शोक, स्नेह अथवा बाल-स्वभाव से आपकी आज्ञा का उलंघन करके मैं यहां आया हूं। तब हे दयालु! आपने अपनी ओर देखकर सभी तरह से मेरा भला माना।

देखेउं पाय सुमंगल मूला। जानेउं स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़ें समाज बिलोकेउं भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू॥

आपके सुन्दर मङ्गल-मूल चरणों का दर्शन किया और स्वामी के स्वभाव से ही अनुकूल जाना। बड़ों के समाज में अपना भाग्य देखा कि बड़ी भूल होने पर भी आपका प्रेम है।

कृपा अनुग्रहु अंगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपनें सील सुभायं भलाईं॥

कृपा और दया से मेरा शरीर तृप्त हो गया, अर्थात् मैं शरीर में फूला नहीं समाता हूं, हे कृपा-निधान! आपने सब अधिक ही किया। हे स्वामी! अपने ही शील, स्वभाव और भलाई से मेरा प्यार रखा।

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहि देउ अति आरति जानी॥

हे नाथ ! मैंने आपके समाज में लाज को छोड़कर बहुत ढिठाई की, विनय रहित या नम्र अपनी इच्छा की अनुसार वाणी मैंने कही हो, उसको हे देव ! बहुत दुखी जानकर क्षमा करो।

दो०—सहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि॥ २९०॥

प्यारे चतुर और अच्छे स्वामी से बहुत कहने में बड़ा दोष है, हे देव, ! आप आज्ञा दीजिए और मेरी सब बिगड़ी हुई बात को सुधारिए ॥ २९०॥

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीवं सुहाई॥
सो करि कहउं हिए अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥

प्रभु के चरण-कमल में रज की दुहाई, जो सत्य, पुण्य, सुख की सुन्दर की मर्यादा है सौगंध करके अपने हृदय की बात कहता हूं जिस पर मेरी रुचि सोते-जागते और सपने में भी हो।

सहज सनेहं स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि विहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा॥

स्वार्थ, छल और चारों फल छोड़ स्वभाविक प्रेम से स्वामी को सेवा करनी चाहिए, अच्छे स्वामी की आज्ञा के समान सेवा नहीं है, सो हे देव ! यह जन अज्ञान-रूपी प्रसाद पावे।

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई॥

ऐसे कहकर भरतजी बड़े प्रेम के वश हो गए, शरीर में रोमांच हो आया। नेत्रों में आंसू भर आये। अकुलाकर प्रभु रामजी के चरण कमल को पकड़ लिया, उस समय का वह प्रेम कहा नहीं जा सकता।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेहं सभा रघुराऊ॥

तब कृपासिन्धु रामचन्द्रजी ने मधुर वाणी से सम्मान कर हाथ पकड़ कर अपने समीप ही बिठा लिया। भरतजी की विनती सुनकर और उनका स्वभाव देखकर सभा सहित ही रघुनाथजी स्नेह से शिथिल हो गये।

छं०—रघुराउ सिथिल सनेहं साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महुं सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥ १२॥

श्री रामचन्द्रजी, साधु समाज, वशिष्ठ आदि मुनिजन, जनकजी ये सब स्नेह से शिथिल हो गये। मन में भरतजी के भाईपन ओर भक्ति की महिमा की बहुत सराहना करने लगे और भरतजी की प्रशंसा करते हुए देवता लोग उदासीन मन से फूल बरसाने लगे। तुलसीदास जी कहते हैं कि देवताओं को भरतजी की प्रशंसा करते हुए सुनकर सब लोग सकुचा गए, जैसे रात्री के आने पर कमल मुरझा जाते हैं॥ १२॥

सो०—देखि दुखारी दीन दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत॥ १२॥

दोनों समाज और सब नर-नारियों को दीन, दुःखी देखकर भी महा-मलीन इन्द्र मरे हुओं को मारकर मङ्गल चाहता है॥ १२॥

कपट कुचालि सीवं सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुं न प्रतीती॥

देवराज कपट और कुचालि की सीमा है उन्हें पराया अकाज और अपना काज प्यारा है। कौए के समान इन्द्र की रीति है छली और मलीन कहीं भी किसी का विश्वास नहीं करता।

प्रथम कुमत करि कपटु संकेला। सो उचाटु सब कें सिर मेला॥
सुरमायां सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥

पहले सुमति करके कपट को इकट्ठा किया, वह उचाट सबके सिर पर डाल दिया। देवमाया ने सब लोगों को मोहित किया, तो भी रामचन्द्रजी में अधिक प्रेम होने के कारण कोई वियोग नहीं चाहता था।

भय उचाट बस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी॥

डर और उच्चाट के मारे मन ठिकाने नहीं रहा, क्षण भर में वन में रुची होती थी और क्षण-भर में घर अच्छे लगते। दो प्रकार की मनोगति होने से प्रजा ऐसी दुःखी हो रही थी, जैसे नदी और समुन्द्र का जल कांपने लगता है।

दुचित कतहुं परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं॥
लखि हियं हंसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुबानू॥

मन में दुविधा होने से कहीं भी संतोष नहीं पाते थे और एक दूसरे से अपना भेद भी नहीं कहते थे। इन्द्र की इस माया को देख कृपा-निधान रामजी मन में हंसकर कहने लगे कि कुत्ता इंद्र अपने स्वभाव में एक समान है।

दो०—भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहि जथाजोगु जनु पाइ॥ २११॥

भरत, जनक, मुनि-मण्डली, मन्त्री, साधु और ज्ञानियों को छोड़कर जिस योग्य जिस मनुष्य को पाया, उसी अनुसार सभी मनुष्यों को देवमाया व्याप गई॥ २९१॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेहं सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री॥

कृपासिन्धु रामजी ने लोगों को अपने प्रेम और इन्द्र के भारी छल से दुःखी देखा। सभा, राजगुरु, ब्राह्मण और मन्त्री इन सबकी मति को भरतजी की भक्ति ने बांध दिया।

रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥

रामचन्द्रजी को चित्र लिखेस (तस्वीर की भांति) सब देखने लगे और बोलते हुए ऐसे सकुचने लगे मानो सिखाई हुई बात बोल रहे हैं। भरतजी की प्रीति, मति, नम्रता और बड़ाई सुनने में सुख देने वाली कहने में कठिन है।

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभायं सुमति हियं हुलसी॥

जिसकी भक्ति का लवलेश देख मुनि-गण और जनकजी प्रेम में मग्न हो गए, उनकी महिमा को तुलसी कैसे कहे, यह तो भक्ति के प्रभाव से सुन्दर मति हृदय में हुलसी है।

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाईं॥

आप तो छोटी है और महिमा बड़ी है, ऐसा जान और कवि-वंश की तरह मानकर मति सकुचा गई। गुण वर्णन नहीं कर सकती, परन्तु कहने की रुचि बहुत है, मति की गति बालक के वचन की तरह हो गई है, जैसे बालक इच्छा करने पर भी कुछ कह नहीं सकता।

दो०—भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोरकुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि॥ २९२॥

भरतजी का निर्मल यश, निर्मल पूर्ण चन्द्रमा है, सुन्दर मति चकोर कुमारी (चकोरी) है, भक्त-जनों के निर्मल आकाश में चन्द्रमा उदय होकर अपना प्रकाश कर रहा है कवि की सुमति चकोरि एकटक देखते ही रह गई, कुछ कहने का सामर्थ न हुआ॥ २९२॥

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूं। लघु मति चापलता कबि छमहुं॥
कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥

भरतजी का स्वभाव कहना तो वेदों को भी सहज नहीं है, मेरी छोटी चपलता का है कवि लोगों! क्षमा करना भरजी के शुद्ध भाव को कहते-सुनते सीता-रामजी के चरणों में कौन मग्न नहीं होता है।

सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की॥

भरतजी का प्रेम स्मरण करते हुए रामजी का प्रेम जिसको सुलभ न हो उनके समान वाम कौन है? दयालु राम सुजान ने उनकी दशा देख और भक्तजन के मन की बात जानकर।

धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू॥

धर्म धुरन्धर, धीरजधारी, नीति में निपुण, सत्य प्रेम, शील और सुख के समुन्द्र, देश, काल, समय और समाज को देखकर नीति और प्रीति के पालन करने वाले रघुनाथजी।

बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससि रसु से॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥

वाणी के सरबस समान (सरस्वति के समान) वचन वाले जो परिणाम में हित करने वाले और सुनने में अमृत के समान हैं। हे प्यारे भरत! तुम धर्म की धुर को धारण करने वाले लोक और वेद के मार्ग में परम प्रवीण हो।

दो०—करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमयं किमि कहि जात॥ २९३॥

हे तात भरत! कर्म वचन और मन से निर्मल तुम्हारे समान तुम्हीं हो, गुरुजनों के समाज में छोटे भाई के गुण कुसमय में कसे व कहे जा सकते हैं ॥ २६३ ॥

जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती ॥
समउ समाजु लाज गुरजन की। उदासीन हित अनहित मन की ॥

हे तात! तुम सूर्यवंश की रीति जानते हो और सत्य प्रतिज्ञा वाले पिता दशरथजी की कीर्ति और प्रीति को भी जान चुके हो। समय, समाज, गुरुजनों की लाज और उदासीन मित्र तथा शत्रु के मन की बात जानते हो।

तुम्हहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू ॥
मोहि सब भांति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउं अवसर अनुसारा ॥

तुमको सभी का भेद विदित है अपना और मेरा परम हित और परम धर्म भी जानते हो। मुझको सब भांति से तुम्हारा भरोसा है तो भी समय के अनुसार कहता हूं।

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपां संभारी ॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू ॥

हे प्यारे भरत! पिताजी के बिना हमारी बात केवल कुलगुरु वशिष्ठजी की कृपा ने ही संभाली नहीं तो मेरे सहित प्रजा, पुरजन और परिवार दुखी हो जाते।

जौं बिनु अवसर अथवं दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ॥

जो बिना समय सूर्य अस्त हो जाए, तो कहो जगत में किसको क्लेश नहीं होगा, हे तात! विधाता ने वैसा ही उपद्रव किया था, परन्तु वशिष्ठजी जनकजी ने सब रख लिया।

दो०—राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम ॥ २६४ ॥

राजा को सब काम, लाज, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, धाम इन सबको गुरुदेव का प्रभाव ही पालेगा और परिणाम करके फल अच्छा होगा ॥ २६४ ॥

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुर प्रसाद रखवारा ॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू ॥

समाज समेत हमारी-तुम्हारी घर और वन में गुरुदेव का प्रसाद ही रक्षा करने वाला है। माता-पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा सब धर्म-रूपी पृथ्वी को धारण करने वाले शेष के समान है।

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू ॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी ॥

पिताजी ने जो आज्ञा दी है सो तुम करो और मुझसे कराओ। हे प्यारे भाई! सूर्यवंश पालक बनो यहां एक साधन (पिता की आज्ञा) सब सिद्धियों की दाता है तथा कीर्ति, मुक्ति और सम्पत्ति को मिली हुई त्रिवेणी है।

सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी ॥
बांटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥

सो विचार कर और भारी संकट सहकर प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई ! मेरी सब विपत्ति बांट लो। तुमको अवधि (चौदह वर्ष) बड़ी कठिनता हैं।

जानि तुम्हहि मृदु कहउं कठोरा। कुसमयं तात न अनुचित मोरा ॥
होहिं कुठायं सुबंधु सहाए। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए ॥

हे प्यारे ! तुमको कोमल जानकर भी जो कठोर वचन मैं कहता हुं, सो समय अच्छा नहीं है, इस कारण मेरा कहना अनुचित नहीं है। कुअवसर में अच्छे भाई ही सहायक होते हैं जैसे खड्ग के घावों को हाथ ही रोकते हैं।

दो०—सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होई।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोई ॥ २९५ ॥

सेवक हाथ पांव नेत्र के समान और स्वामी मुख के समान है। तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसी परस्पर प्रीति की रीति को देखकर उत्तर कवि उसी को सराहते हैं ॥ २९५ ॥

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअं जनु सानी ॥
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी ॥

सब सभा रामचन्द्रजी की वाणी, मानो प्रेम-रूपी समुन्दर से उत्पन्न हुए अमृत से सनी हुई है सो सुनकर ऐसी शिथिल हो गई, मानो समाज ने प्रेम की समाधि लगाई है, ऐसी दशा देखकर सरस्वती भी चुप हो गई।

भरतहि भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू ॥
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूंगेहि गिरा प्रसादू ॥

भरतजी को बहुत सन्तोष हुआ, क्योंकि स्वामी के सम्मुख दुःख, दोष दूर हो गए, मुख प्रसन्न हो गए, मन का शोक मिट गया, मानो गूंगे को वाणी का प्रसाद मिला।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी ॥
नाथ भयउ सुखु साथ गए को। लहेउं लाहु जग जनमु भए को ॥

प्रेम के साथ फिर प्रणाम किया और कमल समान हाथ जोड़कर बोले। हे नाथ ! मैंने आपके साथ जगत् में जन्म होने का लाभ पाया।

अब कृपालु जस आयसु होई। करौं सीस धरि सादर सोई ॥
सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पारु पावौं जेहि सेई ॥

हे दयालु ! अब जसी आपकी आज्ञा हो, वही आदर से सिर चढ़ाकर करूं। हे देव ! मुझको वह सहारा दीजिए, जिसका सेवन करके अवधि का पार पाऊं।

दो०—देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउं सब तीरथ सलिलु तेहि कहं काह रजाइ ॥ २९६ ॥

हे देव ! गुरुदेव की आज्ञा पाकर स्वामी (आप) के अभिषक के निमित्त सब तीर्थों का जल लाया हूं, इसके लिए क्या आज्ञा है ॥ २९६ ॥

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभयं सकोच जात कहि नाहीं ॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई ॥

एक बड़ा मनोरथ मन में है, सो भय और संकोच के कारण नहीं कहा जाता। यह सुनकर रामजी बोले हे तात ! कहो, तब प्रभु की आज्ञा पाकर सुन्दर स्नेह वाणी बोले।

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयसु होइ त आवौं देखी॥

चित्रकूट में मुनियों का आश्रम, तीर्थ, वन, पक्षी, मृग, सरोवर, नदी, झरने, पर्वतों के समूह हैं विशेष करके जो पृथ्वी प्रभु के चरणों से चिन्हित है, यदि आज्ञा हो तो उसे देख आऊं।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगतभय कानन चरहू॥
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥

रामचन्द्रजी बोले कि अवश्य जाओ, परन्तु अत्रि मुनि से आज्ञा मांग लो, उसी के अनुसार हे तात ! वन में निर्भय होकर विचारो। हे भाई ! मुनि की कृपा से यह वन मंगल दायक, पवित्र और परम सुहावना है।

रिषिनायकु जहं आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥

अत्रिजी जहां आज्ञा दें, उसी स्थान पर तीर्थों का जल रखना। प्रभ के वचन को सुनकर भरतजी ने बहुत सुख पाया और प्रसन्न हो, अत्रि मुनि के चरण-कमलों में सिर नवाया।

दो०—भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरु फूल॥ २१७॥

भरत और रामजी का संवाद जो सम्पूर्ण सुन्दर मंगल की जड़ है, उसका सुन्दर, स्वार्थी देवता सुन सूर्यकुल की प्रीति की प्रशंसा कर आनन्दित होते हुए फूल बरसाने लगे॥ २१७॥

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभां सब काहू। भरत बचन सुनि भयउ उछाहू॥

भरत धन्य है। रामजी की जय हो। इस प्रकार देवता प्रसन्न होकर बार-बार कहते थे। मुनि वशिष्ठ जनकजी और सभा के सब किसी को भरतजी के वचन सुनकर आनन्द हुआ।

भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन॥

राजा जनकजी पुलकित हो भरत और रामचन्द्रजी के समूह और प्रेम की प्रशंसा करने लगे। सेवक और स्वामी का स्वभाव नेम पवित्र से अधिक पावन है।

मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम भरत संबादू। दुहु समाज हियं हरषु बिषादू॥

अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशंसा करने लगे, मंत्री और सभा सहित सब लोग प्रसन्न हुए। राम और भरत का संवाद सुन-सुनकर दोनों समाजों के हृदय में आनन्द और सोच हुआ।

राम मातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥

रामजी की माता (कौशल्याजी) ने सुख-दुःख समान जान गुण और दोष कहकर सब रानियों को समझा दिया। कोई रामजी की बड़ाई करे तो कोई भरत की प्रशंसा करें।

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहं पावन अमिअ अनूप ॥ २१८ ॥

तब अत्रि मुनि ने भरतजी से कहा कि पर्वत के समीप सुन्दर कुआं है। उसमें पवित्र निर्मल और उपमा हीन तीर्थों का जल रखिए ॥ २१८ ॥

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई ॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहं कूप अगाधू ॥

भरतजी ने अत्रि मुनि की आज्ञा पाकर सब जल पात्रों को आगे भिजवा दिया। शत्रुघ्न सहित भरत जी अत्रि मुनि और साधुजन समेत वहां गए, जहां वह बहुत गहरा कुआं था।

पावन पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा ॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल विदित नहिं केहू ॥

वह पवित्र जल अत्रि मुनि ने उस पुण्य स्थान (कूप) में रक्खा और फिर प्रेम से कहा कि हे तात ! वह स्थान सदा से प्रसिद्ध है, बहुत काल से लोप हो गया था, कोई जानता नहीं है।

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा ॥
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू ॥

तब सेवकों ने सुन्दर स्थान देखा और उस सुन्दर जल के निमित्त विशेष कुआं बना दिया। दैवयोग से जगत्‌-का उपकार हो गया, धम का विचार सहज हो गया।

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करम मन बानी ॥

अत्रि जी ने कहा—अत्यन्त पवित्र तीर्थों के जल के योग से अब इसकोलोग भरतकूप कहेंगे। प्रेम और नियम से इसमें स्नान करते ही प्राणी कर्म, मन और वाणी से निर्मल हो जायंगे।

दो०—कहत कूप महिमा सकल गए जहां रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाउ ॥ २११ ॥

कुआं की महिमा कहते हुए सब लोग वहां गए, जहां रघुनाथजी थे। अब अत्रि मुनि ने तीर्थ के पुण्य का प्रभाव रामचन्द्रजी को सुनाया ॥ २११ ॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोरु निसि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई ॥

प्रेम से धर्म सम्बन्धी इतिहास कहते हुए भोर हो गया और वह रात सुख से बीत गई, नित्य कर्म करके भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई रामजी, अत्रि मुनि और वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर।

सहित समाज साज सब सादें। चले राम बन अटन पयादें ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥

समाज सहित सब साधारण समान से रामजी के वन में विचरने को पैदल चले। बिना जूती पहिने कोमल चरणों से चलते देख पृथ्वी मन-ही-मन सकुच कर कोमल हो गई।

कुस कंटक कांकरीं कुराईं। कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे ॥

कुवस्तु जिनके लगने से पांव छुन-

कुश, कांटा, कुराई, और कटुर (कडुई) कठोर (कड़ी) तथा कुवस्तु जिनके लगने से पांव छन- छनायें उनको छिपाकर पृथ्वी ने निर्मल और कोमल मार्ग कर दिया, तीनों प्रकार की (शीतल, मन्द और सुगन्धित) सुख देने वाली बयारि चलने लगी।

सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी ॥

देवता फूल बरसाने लगे, मेघ छाया करने लगे, वृक्ष, फूल, फल देने और तृण आदि पदार्थ कोमल हो गए। हिरण देख पक्षी सुन्दर वाणी बोल, सब राम के प्यारे जान सेवा करने लगे।

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुं यह न होइ बड़ि बात ॥ ३०० ॥

साधारण मनुष्य भी जो राम-राम कहते हुए जम्हाई लेते हैं, उनको सब सिद्धियां सुलभ हैं तो रामजी के प्राण प्यारे भरतजी को इस प्रकार का मार्ग होना, यह कुछ बड़ी बात नहीं है ॥ ३०० ॥

एहि बिधि भरतु फिरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥
पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥

इस भांति वन में घूमते हुए भरतजी का नेम और प्रेम देखकर मुनिजन भी सकुचाते थे। पवित्र जलाशय, भूमि के खण्ड, पक्षी, मृग, वृक्ष, पर्वत, वन, बाग।

चारु बिचित्र पबित्र बिसेषी। बूझत भरतु दिब्य सब देखी ॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ ॥

सुन्दर विचित्र और अधिक पवित्र स्थान देख भरतजी अत्रि मुनि से पूछते थे। यह सुन मन में प्रसन्न हो ऋषिराज अत्रिजी उनके होने का कारण नाम, गुण, पुण्य और प्रभाव कहते थे।

कतहुं निमज्जन कतहुं प्रनामा। कतहुं बिलोकत मन अभिरामा ॥
कतहुं बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई ॥

भरतजी कहीं स्नान करते कहीं प्रणाम करते और कहीं सुन्दर वन को देखते थे। कहीं मुनि की आज्ञा पाकर बैठ जाते और सीता सहित रामजी और लक्ष्मणजी का स्मरण करते थे।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा ॥
फिरहिं गएं दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई ॥

इस प्रकार भरतजी का स्वभाव, प्रेम और सुन्दर सेवा देख देवता लोग प्रसन्न मन से आशीर्वाद देते थे। अढ़ाई पहर दिन बीत जाने पर लौटते और प्रभु के चरणों को देखते थे।

दो०—देखे थल तीरथ सकल भरत पांच दिन माझ।
कहत सुनत हरि हर सुजसु गयउ दिवसु भइ सांझ ॥ ३०१ ॥

सब स्नान और तीर्थों को भरतजी ने पांच दिन में देखा, हरि भगवान और महादेवजी को सुन्दर यश कहते सुनते हुए दिन बीत गया और सांझ हो गई ॥ ३०१ ॥

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहुति राजू ॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं ॥

प्रातः होते ही स्नान कर सब समाज इकट्ठा हुआ, भरतजी ब्राह्मण और जनकजी विराजे, आज यात्रा का अच्छा दिन है यह मन में जान दयालु रामजी कहते हुए सकुचाते थे।

गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुं न राम सम स्वामि संकोची॥

वशिष्ठजी, जनकजी भरतजी और सभा को देखा, फिर सकुचाकर रामचन्द्रजी पृथ्वी की ओर देखने लगे। शील और बढ़ाई करके सब सभा ने विचारा कि रामजी के समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है।

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखीं नाथ सकल रुचि मोरी॥

चतुर भरतजी रामजी का रुख देख प्रेम से उठकर बहुत ही धीरज धरकर दण्डवत प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगे हे नाथ! आपने तो मेरी समस्त इच्छाएं पूर्ण कर दी हैं।

मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू। बहुत भांति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाइं मोहि देउ रजाई। सेवौं अवध अवधि भरि जाई॥

मेरे निमित्त सब संताप सहे और आपने बहुत प्रकार से दुःख पाया। अब हे गुसाईं! मुझको आज्ञा दीजिए, अवधि (चौदह वर्ष) पर्यन्त जाकर अवधपुरी का सेवन करूं।

दो०—जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखै दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल॥ ३०२॥

हे दीनदयालु! हे अयोध्या पुरी के पालने वाले कृपालु! जिस उपाय से फिर आपका चरण यह दास देखे। अवधि (चौदह वर्ष) तक के लिए वही शिक्षा दीजिए॥ ३०२॥

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेहं सगाईं॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू॥

हे स्वामी! नगर के लोग, कुटुम्बी और प्रजा इन सबका आपसे पवित्र और सरस स्नेह परम-पद (मोक्ष) का फल व्यर्थ है।

स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहू दिसि ओर निबाहू॥

हे स्वामी! आप तो चतुर हो, समस्त भक्तों के मन की रुचि, लालसा और स्नेह को जानते हो। हे दीनजन पालक। आप सबका पालन करते हैं। हे देव! आप दोनों दिशाओं की ओर (घर और वन) का निर्वाह कीजिए।

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किएं बिचारु न सोचु खरो सो॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुं मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू॥

मुझको सब प्रकार से भरोसा है सो विचार करने से किसी तरह का सोच नहीं है, हे नाथ मेरा दुःख और आपका स्नेह, इन दोषों ने मिलकर मुझको ढीठ कर दिया है।

यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी॥
भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर नीर बिबरन गति हंसी॥

हे स्वामी ! यह ढिठाई का दोष दूर करके और सकुच को छोड़कर मुझ दास को शिक्षा दीजिए। भरतजी की प्रार्थना सुनकर सभा ने बड़ाई की। जो प्रार्थना, दूध और जल को पृथक करने में हंस के समान थी।

दो०—दीनबंधु सुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन॥ ३०३॥

दीनबन्धु और प्रवीण रामचन्द्रजी भाई भरतजी के दीन और छल-हीन (निष्कपट) वचन को सुन कर देश, और अवसर के अनुसार वचन बोले॥ ३०३॥

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुं न कलेसू॥

हे भरत तुम्हारी मेरी, कुटुम्ब की, घर और वन की चिन्ता वशिष्ठजी, जनकजी को है, जब सिर पर वशिष्ठजी और जनकजी हैं तो हमको और तुमको सपने में क्लेश नहीं है।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥

मेरा और तुम्हारा परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म, परमार्थ यही है कि हम-तुम दोनों भाई पिता की आज्ञा का पालन करें लोक और वेद में अच्छा है और राजा की भलाई है।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुं कुमग पग परहिं न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥

गुरु माता-पिता, और स्वामी की आज्ञा पालन करने से और अच्छे मार्ग पर चलने से पांव गड्ढे में नहीं पड़ते। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़ कर चौदह वर्ष की अवधि तक जाकर अवधपुरी की रक्षा करो।

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरु भारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

देश, कोष (खजाना), नगर निवासी, कुटुम्ब, इन सबका बड़ा भार गुरुदेवजी के चरणरज से लगा है। तुम श्री वशिष्ठजी, माता और मन्त्री की सीख मानकर पृथ्वी, प्रजा और राजधानी अयोध्या का पालन करो।

दो०—मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुं एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक॥ ३०४॥

मुखिया तो मुख के समान होना चाहिए कि खाने-पीने का एक हो और सब अंगों का पालन-पोषण करे। तुलसीदास जी कहते हैं कि मुनियों का विचार कर अपने आश्रितों की रक्षा करनी चाहिए जैसे मुख के आश्रय से सब अंग बढ़ते और पुष्ट होते हैं ऐसे ही मुखिया अपने जनों की रक्षा करे॥ ३०४॥

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहं मनोरथ गोई॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भांती। बिनु अधार मन तोषु न सांती॥

राज-धर्म सब इतना ही है, जैसे मन में मनोरथ छिपा रहता है। इस प्रकार रामजी ने भरतजी को बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु बिना आधार मन को संतोष नहीं होता और न शांति होती है।

भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पांवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥

भरत के शील और गुरु, मन्त्री व समाज की सकुच से रघुनाथ जी स्नेह के वश हो गए, तब प्रभु ने कृपा करके अपनी खड़ाऊं दी, उनको आदर से भरतजी ने अपने सिर पर रख लीं।

चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥

दयानिधान रामजी के चरणपीठ मानो प्रजा के प्राणों के यामिक हैं और भरतजी के प्रेम-रूपी रत्न की रक्षा के अर्थ डिब्बा है तथा जीवों के यत्न के लिए दो अक्षर रकार-मकार हैं।

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलम्ब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥

रघुकुल के रक्षक दो किवाड़ हैं, उत्तम कर्मों के दो हाथ हैं तथा सेवा और श्रेष्ठ धर्म के दो निर्मल नेत्र हैं। भरतजी रामजी के दोनों पादुका-रूपी आश्रय पाने से प्रसन्न हुए और ऐसा सुख हुआ, जैसा सीता-रामजी के रहने से होता है।

दो०—मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ॥ ३०५॥

भरतजी ने प्रणाम कर विदा मांगी, तब रामजी ने भरत को हृदय से लगा लिया, उसी समय कुटिल इन्द्र ने कुसमय पाकर सब लोगों का चित्त उच्चाट कर दिया॥ ३०५॥

सो कुचालि सब कहं भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥

इन्द्र की कुचाल सबको अच्छी हुई अवधि की आशा से सबके मन का जीवन हुआ। नहीं तो लक्ष्मण, सीता और रामजी के वियोग-रूपी बुरे रोग से घबराकर सब लोग मर जाते।

रामकृपां अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु कहि न परत सो॥

रामजी की कृपा ने टेढ़ाई को सुधार लिया, क्योंकि देवताओं की माया भी गुणदायक और सहायक हो गई। भाई भरतजी को भुजाओं में भरकर मिलते हुए रामचन्द्रजी का प्रेम-रस से कहा नहीं जा सकता है।

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरन्धर धीरजु त्यागा॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी॥

उस समय तन-मन वचन में ऐसा प्रेम भर गया कि धीर पुरुष रामजी ने धीरज छोड़ दिया, कमल समान नेत्रों से आंसू बहने लगे, यह दशा देख देवताओं की सभा भी दुःखी हो गई।

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसें कनक से॥
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए॥

मुनियों के समूह, गुरुजन वशिष्ठ आदि और बड़े धीरज वाले जनकजी, जिन्होंने ज्ञान-रूपी अग्नि में मन को सुवर्ण के समान कस रखा है, जो ब्रह्मा के उत्पन्न किए हुए जगत के प्रपंच से भिन्न हैं, जैसे कमल का पत्ता जल में ही रहता है, परन्तु जल उसमें नहीं लगता।

दो०—तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार ॥ ३०६ ॥

वे भी रामचन्द्रजी और भरतजी की अनोखी और बहुत अधिक प्रीति देखकर वैराग्य विचार (ज्ञान-वैराग्य) सहित तन-मन-वचन से मग्न हो गये ॥ ३०६ ॥

जहां जनकगुर गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥
बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू ॥

जहां जनकजी और वशिष्ठजी की गति और मति भोली हो रही थीं, उस प्रीति को प्राकृत प्रीति कहने में बड़ा दोष है और भरतजी का वियोग वर्णन करना, सुन लोग मुझे कठोर कवि जानेंगे।

सो सकोच रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी ॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हियं लाए ॥

सो सकुच के वश मेरी वाणी भी कुछ कह नहीं सकती और उस समय के प्रेम को स्मरण कर सकुचाती हैं। भरतजी से मिलकर रामचन्द्रजी ने उन्हें समझाया, फिर शत्रुघ्न को प्रसन्तापूर्वक हृदय से लगा लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई ॥
सुनि दारुन दुखु दुहूं समाजा। लगे चलन के साजन साजा ॥

सेवक और मन्त्री भरत का रुख पाकर, सब कोई जाकर अपने-अपने काम में लग गए, सो सुनकर दोनों समाजों को बड़ा दुख हुआ और चलने का सामान सजाने लगे।

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई ॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥

प्रभु के चरण-कमलों में प्रणाम कर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई रामजी की आज्ञा माथे पर रखकर चले। मुनि, तपस्वी और वन के देवताओं की विनती कर सबका सम्मान किया।

दो०—लखनहि भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि ॥ ३०७ ॥

भरतजी लक्ष्मणजी की भेंटकर और प्रणाम करके सीताजी के चरण-धूलि को मस्तक पर धारण कर प्रेम सहित सब सुमङ्गलों की मूल आशीश सुनकर चले ॥ ३०७ ॥

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई ॥
देव दया बस बड़ दुखु पायउ। सहित समाज काननहिं आयउ ॥

लक्ष्मण सहित रामजी ने राजा जनकजी को सिर नवाया और बहुत भांति से उनकी विनती और बड़ाई की और बोले हे देव ! आपने दया के वश होकर बड़ा दुःख पाया जो कि अपने समाज समेत इस वन में आए।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा ॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने ॥

अब हमको आशीश देकर आप अपने नगर को पधारिए, यह सुन धीरज धरकर राजा जनकजी ने

गमन किया। अनन्तर मुनिश्वर और साधुजनों का सम्मान किया और विष्णु तथा शिवजी के समान जानकर विदा किया।

सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥

फिर सास के समीप दोनों भाई गए और चरणों को प्रणाम कर आशीर्वाद पाकर लौटे। विश्वामित्र, बामदेव, जावालि, कुटुम्बी, अयोध्यावासी श्रेष्ठ आचरण वाले मन्त्रियों को।

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

यथायोग्य प्रणाम करके छोटे भाई लक्ष्मण समेत रामजी ने सबको विदा किया, फिर स्त्री,पुरुष, छोटे, मध्यम, बड़े बूढ़े सबका सम्मान करके दयानिधान रामजी ने विदा किया।

दो०—भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेहं मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि॥ ३०८॥

भरतजी की माता कैकेयी के चरणों को प्रणाम कर प्रभु रामचन्द्रजी ने पवित्र स्नेह से मिल भेंटकर पालकी सजा और सब संकोच को छोड़कर विदा किया॥ ३०८॥

परिजन मातु पितहि मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटीं सब सासू। प्रीति कहत कवि हियं न हुलासू॥

कुटम्बी, माता-पिता इन सब से मिलकर सीताजी लौट आईं, जो सबके प्राणों की प्यारी पवित्र प्रेम वाली हैं, फिर सीताजी प्रणाम कर सब सासुओं से मिलीं, उस समय की प्रीति को कहते हुए कवि के मन में प्रसन्नता नहीं होती।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहु प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकीं मगाईं। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाईं॥

शिक्षा और इच्छानुसार आशीस सीताजी पा रही और दोनों ओर की प्रीति हृदय में समा गई। रघुनाथजी ने सुन्दर पालकी मंगाई और समझाकर माताओं को उन पर चढ़ाया।

बार बार हिलि मिलि दुहु भाई। सम सनेहं जननीं पहुंचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भरत भूप दल कीन्ह पयाना॥

दोनों भाई ने बार-बार हिल-मिलकर एक समान प्रेम करके सब माताओं को पहुंचाया। अनेक घोड़े, हाथी, रथ आदि वाहन सजा जनक और भरतजी की सेना ने प्रस्थान किया।

हृदयं रामु सिय लखन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हियं हारें। चले जाहिं परबस मन मारें॥

सबके हृदय में सीता और लक्ष्मण समेत रामजी का वास था और उन्हीं का स्मरण करते हुए सब लोग बेसुध चले जाते थे। बैल, हाथी और सब पशु हृदय में हारे पराये वश में मन मारे हुए चले जाते थे।

दो०—गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित आए परन निकेत॥ ३०९॥

गुरु वशिष्ठ और गुरु पत्नि अरुन्धतीजी के चरणों को प्रणाम करके प्रभु रामचन्द्रजी सीता लक्ष्मण समेत आनन्द और सोच रहित लौटे और अपनी पूर्णकुटी पर आये ॥ ३०६ ॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयं बड़ बिरह बिषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥

फिर सम्मान करके निषादराज गुह को वापिस किया, तब वह रामचन्द्रजी के वियोग से बड़े दुख सहित चला, फिर कोल, किरात, भील और सब वनवासियों को विदा किया वे सब प्रणाम करके लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ॥
भरत सनेह सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥

प्रभु रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण वट वृक्ष की छाया में बैठकर प्यारे कुटुम्बियों के वियोग में दुःखी होने लगे। रामजी भरतजी का प्रेम, स्वभाव और उनकी मधुर वाणी को अपनी प्यारी सीता और भाई लक्ष्मणजी से बखान कर कहने लगे।

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना ॥

वचन, मन और कर्म से भरतजी की प्रीति और प्रतीति अपने मुख से प्रेम के वश में होकर वर्णन करने लगे। उस समय पक्षी, मृग आदि पशु, मनुष्य, मछली, चित्रकूट के चर-अचर सभी उदास हो गये।

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर-घर की ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो ॥

देवताओं ने रामजी की दशा देख फूल बरसाकर घर-घर की गति कही। प्रभु ने प्रणाम कर भरोसा दिया, तब देवता प्रसन्न होकर चले गए और मन में कुछ भी डर नहीं रहा।

दो०—सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर ॥ ३१० ॥

छोटे भाई लक्ष्मण और सीता समेत रामचन्द्रजी पर्णकुटी में ऐसे विराजते थे, मानो भक्ति, ज्ञान और वैराग्य शरीर धारण किए हुए शोभायमान हों ॥ ३१० ॥

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरहं सबु साजु बिहालू ॥
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥

मुनि, ब्राह्मण, वशिष्ठ भरतजी और जनकजी रामजी के वियोग से समाज सहित व्याकुल हो रहे थे। प्रभु के गुण-समूह को मन में विचारते हुए सब लोग चपचाप मार्ग में चले जाते थे।

जमुना उतरि पार सबु भयऊ। सो बासरु बिनु भोजन गयऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखां सब कीन्ह सुपासू ॥

यमुना उतरकर सब लोग पार हुए और उस दिन बिना भोजन किए ही बीत गया। गङ्गाजी उतरकर दूसरा बास किया, वहां राम सखा गुह ने सबका सुपास किया।

सई उतरि गोमती नहाए। चौथे दिवस अवधपुर आए ॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज संभारी ॥

तीसरे दिन सई नदी उतर गोमती नदी में स्नान किया और वहां ठहरे और चौथे दिन अवधपुर आए। राज-काज के सब समाज को संभाल कर जनकजी अयोध्या में चार दिन रहे।

सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तेरहुति चले साजि सबु साजू॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी॥

मन्त्री गुरु और भरतजी को राज्य सौंप अपना सब समाज सजा जनकजी तिरहुत को चले। अवध नगर के स्त्री-पुरुष गुरुजी की शिक्षा मान सुख से रामजी की राजधानी में बसे।

दो०—राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥ ३११॥

रामचन्द्रजी के निमित्त सब लोग नेम, व्रत करते हुए, भूषण भोग और सुख छोड़कर अवधि चौदह वर्ष की आशा से जीते रहे॥ ३११॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज-निज काज पाइ सिख ओधे॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई॥

मन्त्री और अच्छे सेवक को भरतजी ने समझाया, तब उन्होंने शिक्षा पाकर अपने घर का काम ठीक किया, फिर भरतजी ने छोटे भाई शत्रुघ्नजी को बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओं को सेवा सौंपी।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे॥
ऊंच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब संकोचू॥

फिर भरतजी ने ब्राह्मणों को बुलाया और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनयपूर्वक प्रार्थना की ऊंच-नीच, भला-बुरा जो काम हो उसको आप देने में संकोच न करना।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥
सानुज गे गुर गेहं बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥

अनन्तर कुटुम्बी, नगर के लोग और प्रजा को बुलाया और सावधान कर स्वाधीनता से बसाया फिर छोटे भाई सहित भरतजी वशिष्ठजी के घर गए और दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहने लगे।

आयसु होइ त रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥

कि आज्ञा हो तो नियम से रहूँ, तब वशिष्ठजी पुलकित शरीर होकर प्रेम से बोले-तुम वही समझोगे, कहोगे और करोगे, जो संसार में धर्म का सार होगा।

दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि॥ ३१२॥

तब भरतजी ने मुनि की शिक्षा और बड़ी आशीश पाकर ज्योतिषियों को बुलाया और शुभ दिन देखकर श्रीरामजी की दोनों पादुकों को सिंहासन पर बिठाया॥ ३१२॥

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥
नंदिगावं करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥

रामजी की माता कौशल्याजी और गुरुदेव के चरणों में सिर नवाकर प्रभ के पादुकाओं की आज्ञा पाकर नन्दी ग्राम में पर्ण-कुटी बनाकर भरतजी ने निवास किया।

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस सांथरी संवारी॥
असन बसन बासन व्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥

सिर पर जटाजूट, शरीर पर मुनियों के वस्त्र पहने, पृथ्वी खोदकर कुशों की साथरी सम्हाली। भोजन, वस्त्र, नेम, इन सब कठिन ऋषि धर्मो को प्रेम सहित करने लगे।

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी॥
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥

भूषण, वस्त्र, भोग, बहुत से सुख, इनको तृण के समान तोड़कर भरतजी ने तन-मन-वचन से त्याग दिया। जिस अवधराज की अभिलाषा देवराज इन्द्रजी करते हैं और महाराज दशरथजी के धन को देखकर कुबेर भी लजाते हैं।

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

उसी अवध नगर में भरतजी विरक्त होके वास करते थे, जैसे चम्पा के बाग में भौंरा बिना राग के वास करता है। रामचन्द्रजी में अनुराग (स्नेह) करने वाले भरतजी बड़े भाग्य वाले हैं। जो राम-विलास लौकिक और पारलौकिक सुख को वमन की नाई त्याग देते हैं।

दो०—राम पेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति॥ ३१३॥

रामजी के प्रेम-पात्र भरतजी की यह बड़ी करतूति नहीं है, देखो चातक (पपीहा) और हंस सराहे जाते हैं, जो टेक और विवेक-रूपी एक विभूति वाले हैं॥ ३१३॥

देह दिनहुं दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥

भरतजी की देह दिन-दिन दुबली होने लगी, परन्तु तेज और बल नहीं घटा, मुख की शोभा वही रही जो पूर्व में थी। रामजी में प्रेम नित्य नया और प्रण पुष्ट होता रहा, धर्म रूपी बल बढ़ता रहा, मन मलीन नहीं हुआ।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संजय नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥

जैसे शरद ऋतु में प्रकाश से जल घटता है, आकाश निर्मल हो जाता है, सुन्दर कमल खिलते हैं। शम, नेम और उपास ये नक्षत्र हैं और भरतजी का हृदय निर्मल आकाश है।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥

रामजी का आगमन का विश्वास ही ध्रुव नक्षत्र है, जो सर्वदा अचल है और रामजी के आगमन की जो अवधि है सो पूर्णिमा की रात्रि है स्वामी रामजी की सूरत से ही देवमार्ग प्रकाशित है। रामजी में जो प्रेम है सो निश्चल और क्षीणता आदि दास रहित चन्द्रमा है, जो समाज सहित नित्य अच्छा लगता है।

भरत रहनि समुझनि करतूति। भगति बिरति गुन बिमल बिभूति ॥
बरन सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ॥

भरतजी की रहन, समझानि, करतूति, भक्ति वैराग्य, गुण और उज्ज्वल सम्पत्ति। इन सबको वर्णन करते हुए अच्छे कवि सकुचाते हैं, क्योंकि शेष, गणेश और सरस्वती जो की भी वहां पहुंच नहीं है।

दो०—नित पूजत प्रभु पांवरी प्रीति न हृदयं समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भांति ॥ ३१४ ॥

प्रभु रामजी की चरण-पादुका को भरतजी नित्य पुजते थे, प्रीति हृदय में नहीं समाती थी और उसी से आज्ञा मांगकर बहुत भांति अर्थात सब राजा-काज करते थे ॥ ३१४ ॥

पुलक गात हियं सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥

पुलकित शरीर, हृदय में सीता-रामजी और जीव भी सीताराम का नाम जपते हुए नेत्रों में प्रेम के आंसू भर रहे थे। लक्ष्मण, राम और सीताजी वनवास में थे और भरतजी घर में रहकर भी तप करते और शरीर को कसते थे।

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥

दोनों ओर समझकर सब लोग कहते थे कि सब से भरतजी ही सराहने योग्य हैं। भरतजी के व्रत, नेम को सुनकर साधु लोग सकुचाते हैं और दशा देखकर वशिष्ठ आदि मुनिजन लजाते हैं।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू ॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू ॥

भरतजी का आचरण बहुत शुद्ध, मधुर, मनोहर और आनन्द मङ्गल को देने वाला है, कठिन कलि काल के पाप-रूपी क्लेशों को हरने वाला है और महा अज्ञान-रूपी रात्रि को दूर करने को सूर्य है।

पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू ॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू ॥

पापों के समूह-रूपी हाथियों को सिंह है और सन्ताप समूह को शान्त करने वाला है। रामजी का स्नेह भक्तों को आनन्द देने वाला, सँसार भार को दूर करने वाला तथा रामजी के स्नेह-रूपी चन्द्रमा का सार है।

छं०—सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

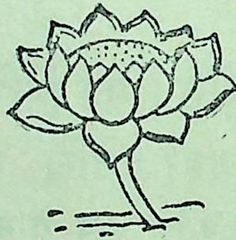
सीता-रामजी के प्रेम-रूपी अमृत से पूर्ण भरतजी का जन्म न होता तो मुनिजनों के मन में भी कठिन, यम नियम, शम-दम जो कठिन व्रत हैं, उसका आचरण कौन करता तथा दुःख, सन्ताप, दारिद्रय

और पाखण्ड आदि दोषों को उत्तम यश के बहाने से कौन हर लेता और इस कलिकाल में तुलसीदास से शठ को हठ करके रामजी के सम्मुख कौन करता ॥ १३ ॥

सो०–भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति ॥ १३ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि भरतजी का चरित्र, नियम करके आदर सहित जो पुरुष सुनते हैं, उनका सीता-रामजी के चरणों में अवश्य प्रेम होता और संसार रूपी विषयों से वैराग्य हो जाता जाता है ॥ १३ ॥

इति श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानसे (रामायणे)
सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलविज्ञानवैराग्यसन्तापेसम्पादनो
नाम द्वितीयः सोपानः अयोध्याकाण्डे सम्पूर्णः
— इति अयोध्याकाण्ड समाप्तः —



—श्रीगणेशाय नमः—

श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरित-मानस

तृतीय सोपान

अरण्यकाण्ड

मङ्गलाचरण

श्लोक—मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम् ।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शङ्करं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूपप्रियम् ॥ १ ॥

धर्म-रूपी वृक्ष के मूल कारण, ज्ञान-रूपी समुद्र की पूर्ण चन्द्रमा के समान आनन्ददायक वैराग्य-रूपी कमल को प्रफुल्लित करने को सूर्य-रूप और पापनाशक अविद्यान्धकार को दूर करने वाले दैहिक दैविक, ...तक इन तीनों तापों का नाश कारक, मोह-रूपी मेघ समूह को विदीर्ण करने के निमित्त वायु-रूप तथा ...कुल के कलंक को दूर करने वाले श्रीमहाराज रामचन्द्रजी के परम प्यारे कल्याणकर्ता श्रीशिव ...जन को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥ २ ॥

जल भरे हुए मेघ के समान सुन्दर स्याम शरीर, सुन्दर पीताम्बर धारण किए दोनों हाथों में धनुष-बाण लिए, कटि में बाणों से भरा हुआ सुन्दर तर्कश, कमल के समान विशाल नेत्र सिर पर जटा-जूट धारण किये सीता और लक्ष्मण को साथ लिए मार्ग में जाते हुए रामचन्द्रजी को भजता हूं ॥ २ ॥

सो०—उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति ॥

श्रीशिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! रामचन्द्रजी के गुण गूढ हैं, जिनके पण्डित और मुनिजन तो ...ग्य पाते हैं, मूर्खजन हरि भगवान से विमुख हैं और धर्म में जिनकी प्रीति है वे मोह को प्राप्त ...हैं ॥ १ ॥

पुर नर भरन प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन ॥

पर्व अयोध्याकाण्ड में भरत की उपमा रहित सुहावनी प्रीति अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने गाई। अब प्रभु का पवित्र चरित्र सुनो। जो वन में वास करते थे और देवता, मनुष्य और मुनियों के अच्छे लगने वाले थे।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए ॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर ॥

एक बार सुन्दर फूल चुनकर रामचन्द्रजी ने अपने हाथ से आभूषण बनाया और आदर से सीताजी को पहनाया और सुन्दर कान्ति को धारण करने वाले रामजी फटिकशाला पर विराजमान हुए।

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा ॥

अनन्तर इन्द्र का पुत्र जयन्त कौए का रूप धारण कर रघुनाथजी के बल को देखना चाहता था, जैसे चींटी समुद्र की थाह पाना चाहे, वैसे ही उस महामन्द बुद्धि जयन्त ने रामचन्द्रजी के बल की थाह पाने की इच्छा की।

चला चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा ॥
सीता रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना ॥

मन्द बुद्धि के कारण वह मूर्ख जयन्त सीताजी के चरण में चोंच मारकर भागा, रुधिर बह चला, रघुनाथजी ने जाना और सींक बाण धनुष पर चढ़ाया।

दो०—अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह ॥ १ ॥

अत्यन्त कृपा करने वाले रघुनाथजी का दीनजनों पर सदा प्रेम रहता है, उनसे आकर मूर्ख और अवगुण के स्थान जयन्त ने छल किया ॥ १ ॥

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा ॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं ॥

मन्त्र से अभिमन्त्रि ब्रह्म-बाण छूटा, तब कौआ डरकर भाग चला और कौए का रूप छोड़ अपना रूप धरकर अपने पिता इन्द्र के पास गया, परन्तु उन्होंने रामजी का विरोधी जानकर उसे नहीं रखा।

भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा ॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका ॥

तब अत्यन्त निराश हृदय में ऐसा त्रासित हुआ, जैसे सुदर्शन चक्र के डर से दुर्वासा ऋषि भागे फिरे थे। ब्रह्म-लोक आदि सब लोकों में भागता फिरा, यहां तक कि थककर भय और शोक से व्याकुल हो गया।

काहूं बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही ॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना ॥

किसी ने उसको बैठने को नहीं कहा रामचन्द्रजी के द्रोही को कौन रख सकता है । काग भुशुण्डि जी कहते हैं कि सुनो गरुड़जी ! रामजी के द्रोही को माता मृत्यु और पिता यम के समान तथा अमृत विष के समान हो जाता है ।

मित्र करइ सत रिपु कै करनी । ता कहं बिबुधनदी बैतरनी ॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता । जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता ॥

मित्र सा बैरियों के समान कार्य करता है, उसको गङ्गा वैतरणी के समान दुःख देने वाली हो जाती है । याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि हे भाई भरद्वाज ! सुनो, उसको सब जगत् अग्नि से अधिक तृप्त हो जाता है जो रामचन्द्रजी से विमुख है ।

दो०—जिमि जिमि भाजत सक्रसुत ब्याकुल अति दुख दीन ।
तिमि तिमि धावत रामसर पीछे परम प्रवीन ॥ २ ॥

इन्द्र का पुत्र जयन्त व्याकुल और अति दुःख से दीन होकर ज्यों-ज्यों भागता था, त्यों-त्यों उसके पीछे परम चतुर रामजी का बाण दौड़ता चला जाता था ॥ २ ॥

बचहिं उरग बरु ग्रसे खगेसा । रघुपति शर छुटि बचन अंदेसा ॥
नारद देखा बिकल जयंता । लागि दया कोमल चित संता ॥

सांप चाहे गरुड़ के पकड़ने से छुट जाय, परन्तु रामचन्द्रजी का बाण छूटने से बचने में अंदेशा है । नारदजी ने जयन्त को व्याकुल देखा तो दया आ गई, क्योंकि सन्तों का चित्त कोमल होता है ।

दुरिहि ते कहि प्रभु प्रभुताई । भजे जात बहुबिधि समुझाई ॥
पठवा तुरत राम पहि ताही । कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही ॥

दूर से ही प्रभु की प्रभुता से भागे जाते हुए जयन्त से अनेक प्रकार से कहकर समझाई और तुरन्त उसको रामजी के पास भेजा और कहा कि पुकारकर कहना कि हे दीन दयालु रघुनाथजी ! मेरी रक्षा करो ।

आतुर सभय गहेसि पद जाई । त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं मतिमंद जानि नहिं पाई ॥

दुःखी जयन्त ने डर के मारे रामजी का चरण जाकर पकड़ लिये और कहा कि हे दयालु रघुनाथ जी ! मेरी रक्षा करो । प्रमाण होने पर भी आपका बल और आपकी प्रभुता को मुझ सरीखे मन्द बुद्धि ने नहीं जाना ।

निज कृत कर्म जनित फल पायउं । अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउं ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी । एकनयन करि तजा भवानी ॥

अपने किए हुये कर्म का फल मैंने पाया, अब हे प्रभु ! रक्षा करो, मैं आपकी शरण में आया हूं । महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! जयन्त की अत्यन्त दुःख-भरी वाणी सुनकर उसको एक नेत्रहीन करके छोड़ दिया ।

सो०—कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित ।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम ॥ २ ॥

जयन्त ने अज्ञानवश रामजी से बैर किया, यद्यपि उसको मारना ही उचित था तो भी प्रभु ने कृपा करके उसको छोड़ दिया । रामजी के समान कृपा करने वाला दूसरा कौन है ॥ २ ॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना॥

रघुनाथजी ने चित्रकूट में बसकर कानों को अमृत के समान सुख देने वाले चरित्रों को किया, फिर रामजी ने मन में ऐसा विचार किया कि यहां रहने से भीड़ होगी, क्योंकि यहां सबने मुझे जान लिया है।

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥

सब मुनियों से विदा कराकर, अर्थात आज्ञा लेकर सीता समेत दोनों भाई वहां से चल दिये और अत्रि मुनि के आश्रम में प्रभु गये, सुनते ही महामुनि बड़े प्रसन्न हुये।

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥

पुलकित शरीर हो अत्रिजी उठे और मुनि को देखकर रामजी भी शीघ्रता से चलकर समीप आ गये, तब मुनि ने दोनों भाइयों को दण्डवत् करते देख हृदय से लगाया और प्रेम रूपी जल से दोनों को स्नान कराया।

देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥

रामजी की छवि देखकर नेत्र शीतल हुए, तब आदर के साथ आश्रम में ले आये और पूजन सत्कार करके मधुर वचन कह कर कन्द-मूल-फल दिये, जो प्रभु के मन को अच्छे लगे।

सो०—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥ ३॥

जब श्री रामचन्द्रजी आसन पर विराजमान हुए, तब नेत्र भरकर रामजी की शोभा देख कर मुनि श्रेष्ठ परम चतुर अत्रिजी हाथ जोड़कर श्रीरामजी की स्तुति करने लगे॥ ३॥

छं०—नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं॥ १॥
निकाम श्याम सुंदरं। भवांबुनाथ मंदरं।
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं॥ २॥

हे रामजी! मैं आपको नमस्कार करता हूं, आप भक्तों पर प्यार करने वाले हो, दयालु हो, कोमल स्वभाव वाले हो, आपके चरण-कमल का मैं भजन करता हूं आप कामना-रहित भक्तों को अपना वैकुण्ठ धाम देने वाले हो॥ १॥ आपका अतिशय श्याम सुन्दर शरीर है, आप संसार सागर के मथने को मन्दराचल हो, प्रफुल्लि कमल के समान नेत्र वाले हो और मत आदि को दूर करने वाले हो॥ २॥

प्रलंब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं।
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं॥ ३॥

दिनेश बंश मंडनं । महेश चाप खंडनं ।
मुनींद्र संत रंजनं । सुरारि वृंद भंजनं ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! आपकी लम्बी भुजाओं का बल, ऐश्वर्य अप्रमाण है, आप तर्कश और धनुष बाण धारण किए हुये तीनों लोक के स्वामी हो ॥ ३ ॥ सूर्यवंश के शिरोमणि हो, महादेवजी के धनुष को तोड़ने वाले हो, मुनिश्वर और सन्तों को आनन्द देने वाले हो और देवताओं के शत्र राक्षसों के समूह का संहार करने वाले हो ॥ ४ ॥

मनोज वैरि वंदितं । अजादि देव सेवितं ।
विशुद्ध बोध विग्रहं । समस्त दूषणापहं ॥ ५ ॥
नमामि इंदिरा पतिं । सुखाकरं सतां गतिं ।
भजे शक्ति सानुजं । शची पति प्रियानुजं ॥ ६ ॥

कामदेव के शत्रु शिवजी के समान वन्दनीय हों, ब्रह्मा आदि देवताओं के सेवित हो, विशेष शुद्ध और ज्ञान स्वरूप हो, काम, क्रोध आदि सब दोषों को हरने वाले हो ॥ ५ ॥ ऐसे आप लक्ष्मी के पति को नमस्कार करता हूं । आप सुख के स्थान हो और सत्पुरुषों की गति हो, सीता और लक्ष्मण सहित आपका मैं भजन करता हूं । आप शचिपति इन्द्र के प्यारे छोटे भाई हो ॥ ६ ॥

त्वदंघ्रि मूल ये नराः । भजंति हीन मत्सराः ।
पतंति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि संकुले ॥ ७ ॥
विविक्त वासिनः सदा । भजंति मुक्तये मुदा ।
निरस्य इंद्रियादिकं । प्रयांति ते गतिं स्वकं ॥ ८ ॥

आपके चरण कमलों को मुख्य जानकर जो मनुष्य ईर्ष्या रहित होकर भजन करते हैं, वे कुतर्क रूपी तरङ्गों वाले समुद्र में नहीं गिरते हैं ॥ ७ ॥ और जो सदा एकान्त में रह कर अपनी मुक्ति के निमित्त प्रसनन्ता से आपका भजन करते है वे इन्द्रिय आदि के सुख को त्याग कर अपनी गति को पाते हैं ॥ ८ ॥

तमेकमद्भुतं प्रभुं । निरीहमीश्वरं विभुं ।
जगद्गुरुं च शाश्वतं । तुरीयमेव केवलं ॥ ९ ॥
भजामि भाव वल्लभं । कुयोगिनां सुदुर्लभं ।
स्वभक्त कल्प पादपं । समं सुसेव्यमन्वहं ॥ १० ॥

। आप एक हो, अद्भत हो, प्रभु हो चेष्टा रहित हो, व्यापक हो, जगत् के गुरु हो सब काल में एक रस रहने वाले हों । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं से परे केवल तुरीयस्रूप हो ॥ ९ ॥ मैं आपका भजन करता हूं, आपको भाव भक्ति प्रिय है, कुयोगियों को आप दुर्लभ हो, अपने भक्तजनों के निमित्त कल्प-वृक्ष हो, सब लोकों को करके निरन्तर ही सेवन करने योग्य हो ॥ १० ॥

अनूप रूप भूपतिं । नतोऽहमुर्विजा पतिं ।
प्रसीद मे नमामि ते । पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥ ११ ॥

पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं।

व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः॥ १२॥

उपमा रहित, रूप वाले राजा हो, सीताजी के पति हो, मैं आपको प्रणाम करता हूं। मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे अपने चरण-कमलों की भक्ति दीजिए मैं आपको नमस्कार करता हूं॥ ११॥ जो मनुष्य मेरे स्त्रोत को पढ़ेंगे वे आपकी भक्ति को प्राप्त होकर पद को प्राप्त होंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं॥ १२॥

दो०—बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।

चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुं तजै मति मोरि॥ ३॥

इस प्रकार विनती करके अत्रि मुनि ने सिर नवा और हाथ जोड़कर फिर कहा कि हे नाथ! मेरी बुद्धि आपके कमलों को कभी न त्यागे॥ ३॥

जन्म जन्म तब पद सुखकन्दा। बढै प्रेम चकोर जिमि चन्दा॥

देखि राम मुनि बिनय प्रणामा। विविध भांति पायउ बिश्रामा॥

और जन्म-जन्म आपके सुखदायक चरणों में ऐसा प्रेम बढ़ता रहे, जैसे चकोर का प्रेम चन्द्रमा में बढ़ता है। रामजी ने अत्रि मुनि की विनती और प्रणाम को देखकर अनेक प्रकार से विश्राम का सुख पाया।

अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता॥

जो सीय सकल लोक सुखदाता। अखिल लोक ब्रह्मारड की माता॥

अत्रिमुनि की स्त्री अनुसूयाजी के चरण लग कर सीताजी सुन्दर शील और नम्रता सहित बारंबार मिलीं। जो सीताजी सब लाकों को सुख देने वाली तथा सम्पूर्ण लोक ब्रह्माण्ड की माता हैं।

तेउ पाइ मुनिवर वरभामिनि। सुखी भईं कुमुदनि जिमियामिनी॥

रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देई निकट बैठाई॥

ऐसी सीताजी भी मुनिवरजी को श्रेष्ठ स्त्री अनुसूया को पाकर ऐसी सुखी हुई, जैसे कुमुदिनी रात्रि में चन्द्रमा को देखकर खिल जाती है। अनुसूया के मन में बहुत ही सुख हुआ और आशीर्वाद देकर समीप बिठा लिया।

दिव्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए॥

जिनहिं निरखि दुख दूर पराहीं। गरुड़ देखि जिमि पन्नग जाहीं॥

दिव्य अर्थात देवलोक के वस्त्र, आभूषण पहिनाये जो नित नये निर्मल और सुहावने रहते हैं, जिनको देखकर दुःख दूर भागते हैं, जैसे गरुड़ को देखकर सांप भाग जाते हैं।

दो०—ऐसे वसन विचित्र सुनि, दिये सीयकहं आनि।

सनमानी प्रिय वचन कहि, प्रीति न जाय बखानि॥ ४॥

इस प्रकार के अनोखे और निर्मल वस्त्र लाकर सीताजी को दिये और प्यारे वचन कह कर सम्मान किया। उस समय की प्रीति बखानी नहीं जा सकती॥ ४॥

कह रिषिवधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु व्याज बखानी॥

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥

ऋषि पत्नी अनुसूयाजी सीताजी को शिक्षा के बहाने से सरल और कोमल वाणी कहकर कुछ स्त्री धर्म कहने लगी। हे राजकुमारी सीता ! सुनो माता, पिता भाई हितकारी ये योग्यता के अनुसार सुख देने वाले होते हैं।

अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

परन्तु हे वैदेही ! अत्यन्त सुख देने वाला पति ही होता है, वह स्त्री अधम है जो कि सेवा नहीं करती है। धीरज, धर्म, मित्र और नारी इन चारों की परीक्षा विपत्तिकाल में होती है।

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएं अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥

बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, निर्धनी, अन्धा, बहिरा, क्रोधी, बहुत दीन ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमलोक में अनेक दुःख भोगती हैं।

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायं बचन मन पति पद प्रेमा॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥

एक ही धर्म एक ही व्रत और एक ही नेम स्त्री का है कि शरीर, वचन, और मन से पति के चरणों में प्रेम हो। संसार में पतिव्रता स्त्री चार प्रकार की होती हैं ऐसा वेद पुराण और सन्तजन कहते हैं।

दो०—उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहौं समुझाय।
आगे सुनहि ते भव तरहि, सुनहु सीय चित लाय॥ ५ ॥

उत्तम, मध्यम, नीच, लघु, इन चारों प्रकार की पतिव्रताओं का लक्षण समझा कर कहती हूं। जो आगे सुनेंगी वे संसार से पार होंगी। हे सीता ! मन लगाकर सुनो॥ ५ ॥

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥

उत्तम पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बस जाता है कि सपने में भी दूसरा पुरुष संसार में नहीं है। मध्यम स्त्री पराये पति को कैसे देखती हैं जैसे अपना भाई, पिता और पुत्र।

धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥

जो धर्म का विचारकर और कुल को समझकर रहती हैं वे नीच स्त्री हैं वेद कहते हैं। जो समय न मिलने से और भय से धर्म में रहती हैं तो जानो वह स्त्री जगत में अधम हैं।

पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटि। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥

जो स्त्री अपने पति से झूठी बातें बना करके पराये से प्रीत करती हैं वह स्त्री सौ कल्प रौरव नरक में पड़ती हैं। क्षणमात्र के सुख के लिये सौ करोड़ जन्म के दुःख को न समझे उसके समान खोटी स्त्री और कौन है।

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहं जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

बिना परिश्रम के ही स्त्री उत्तम गति पाती है जो छल को छोड़कर पतिव्रत धर्म को पालन करती है। पति से विरुद्ध आचरण वाली स्त्री जहां जाकर जन्म पाती है वहां युवावस्था पाकर विधवा हो जाती है।

सो०—सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुं तुलसिका हरिहि प्रिय॥ ४॥

स्वभाव से अपवित्र स्त्री भी पति की सेवा से उत्तम गति पाती है। उसका यश चारों वेद गाते हैं, जलन्धर राक्षस की स्त्री बृन्दा अपने पतिव्रत धर्म के प्रभाव से 'तुलसी' होने से हरि भगवान की प्यारी है॥ ४॥

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउं कथा संसार हित॥ ५॥

सुनो सीता! तुम्हारा नाम स्मरण करके स्त्रियां पतिव्रत धर्म का पालन करेंगी, तुमको तो रामजी प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। यह कथा मैंने संसार के हित के लिए कही है॥ ५॥

सुनि जानकीं परम सुखु पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउं बन आना॥

यह सुनकर जानकीजी ने बहुत सुख पाया, आदर से अनुसूया के चरणों पर सिर झुकाया। तब मुनि से कृपा निधान रामजी ने कहा कि आज्ञा हो तो अब दूसरे वन को जाऊं।

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी॥

सदैव मुझपर कृपा करते रहना, सेवक जानना और स्नेह न छोड़ना। धर्म-धुरन्धर प्रभु रामजी की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि अत्रिजी प्रेम से बोले।

जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी॥
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे॥

जिस प्रभु की कृपा शिव, ब्रह्मा और सनकादिक सब मोक्षवादी चाहते हैं। हे दीनबन्धु राम! ऐसे आप कामना रहित भक्तों के प्यारे कोमल वचन कहते हो।

अब जानि मैं श्री चतुराई। भजि तुम्हहि सब देव बिहाई॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता कर सील कस न अस होई॥

मैं अब आपकी चतुराई को जान गया हूं और सब देवताओं को छोड़ मुझको भजो, जिसके समान अतिशय कोई नहीं है, उसका शील ऐसा क्यों नहीं होगा।

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अन्तरजामी॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा॥

हे स्वामी! मैं किस तरह कहूं कि अब जाओ, हे नाथ! आप ही कहिए, आप अन्तर्यामी हो। ऐसे कह प्रभु को देखकर धीरज धारी मुनि के नेत्रों से जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया।

छं०—तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए॥
जप जोगधर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई॥ ६॥

अत्रि मुनि का शरीर पुलकित और प्रेम से परिपूर्ण हो गया, नेत्र रामजी के मुख-कमल की ओर लग गये और मन में विचारने लगे कि मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियों से न जानने योग्य प्रभु को मैंने देखा। ऐसा क्या जप-तप मैंने किया। तुलसीदास जो कहते हैं कि जप, योग और धर्म-समूह से मनुष्य रामजी की अनुपम भक्ति पाते हैं, जो रघुनाथजी के पवित्र चरित्र रात दिन गान करते हैं॥ ६॥

दो०—कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥ ६॥

श्रीरामजी का सुयश कलियुग के मल को शान्त करने वाला, मन के विकारों का नाश करने वाला तथा सुख का मूल है, जो प्रेम पूर्वक सुनेंगे, उन पर रामजी अनुकूल रहेंगे॥ ६॥

सो०—कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जाग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहि ते चतुर नर॥ ६॥

यह कलियुग मल भंडार है। इसमें ज्ञान, धर्म, योग तप करना कठिन है, इसलिए जो सब तरह के भरोसे को छोड़कर श्री रामचन्द्रजी को भजे वही चतुर नर है॥ ६॥

दो०—मुनि की अस्तुति कीन्ह प्रभु दीन्ह सुभग बरदान।
सुमन बृष्टि नभ संकुल जय जय कृपा निधान॥ ७॥

श्रीरामजी ने भी मुनि की स्तुति की और सुन्दर भक्ति-रूप का वरदान दिया। आकाश से देवता फूल बरसाने लगे और कृपा निधान श्रीरामजी की जय-जय उच्चारण करने लगे॥ ७॥

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥
बन अनेक सुन्दर गिरि नाना। लांघत चले जाहिं भगवाना॥

अत्रि मुनि के चरण-कमलों को मस्तक झुकाकर देव मनुष्य और मुनियों के रक्षक रामजी दण्डक वन को चले। अनेक वन और सुन्दर पर्वतों को लांघते हुए कृपा निधान चले जाते थे।

आगे राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें॥
उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

आगे रामजी और सबसे पीछे लक्ष्मणजी अत्यन्त सुन्दर मुनि-वेष बनाये चले जाते हैं। दोनों के बीच में सीताजी इस प्रकार शोभा दे रहीं थीं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया।

सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहि बर बाटा॥
जहं जहं जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहं तहं नभ छाया॥

नदी, वन पर्वत, औंघट, घाट और ऊंचे नीचे मार्ग में अपने अपने स्वामी को पहचान कर सब कोई सुन्दर रास्ता देते हैं। जहां-जहां देव शिरोमणि श्रीरघुनाथजी जाते हैं, वहां-वहां मेघ आकाश में छाया करते हैं।

उरग समान जोरि शर ताता। गरजा घोर कठोर रिसाता॥
मिला असुर विराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता॥

विराध राक्षस मार्ग में प्रभु को देख क्रोध करके भयंकर और कठोर शब्द करता हुआ गर्जने लगा। सांप के समान विषधर बाण छोड़कर, आते ही रामचन्द्रजी ने उसे मार गिराया।

तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥
पुनि आए जहं मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा॥

मरते समय तुरन्त उसने सुन्दर रूप पाया, उसको दुःखी देखकर रामजी ने अपने धाम को भेज दिया, फिर रामचन्द्रजी शरभङ्ग मुनि के सुन्दर आश्रम में लक्ष्मण और जानकी को संग लेकर आये।

दो०--देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥ ८॥

रामजी के मुख-कमल को देखकर मुनिश्वर के नेत्र-रूपी भ्रमर शोभा-रूपी मकरन्द को परम आदर से पान करने लगे, ऐसे शरभंग मुनि का जन्म धन्य हैं॥ ८॥

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला॥
जात रहेउं बिरंचि के धामा। सुनेउं श्रवन बन ऐहहिं रामा॥

शरभंगजी कहने लगे कि हे कृपानिधान रघुनाथजी! हे शिवजी के मन-रूपी मानसरोवर के राज-हंस! सुनिए, मैं ब्रह्माजी के लोक जा रहा था, इतने में ही मैंने सुना कि वन में श्रीरामजी आ रहे हैं।

चितवत पंथ रहेउं दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

सो दिन-रात आपके आने की राह देखता रहा, अब प्रभु को देखकर मेरा हृदय शीतल हो गया हे नाथ! मैं सब साधनों से रहित हूं, आपने दीनजन जानकर कृपा की।

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥

सो हे देव! कुछ मेरा निहित नहीं है आपने अपना प्रण रखा। आप अपने जन के मन को चुराने वाले हो। आप तब तक मुझ दीन के कल्याण के निमित्त रहिए, जब तक शरीर छोड़कर आपसे न मिलूं।

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहं देई भगति बर लीन्हा॥
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदय छाड़ि सब संगा॥

योग, यज्ञ, जप, तप व्रत जो कुछ मुनि ने किया था, सब प्रभु को देकखर भक्ति वर मांग लिया। इस प्रकार चित्ता रचकर शरभंगजी से सबका संग छोड़कर बैठे।

दो०--सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियं बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम॥ ९॥

सीताजी लक्ष्मण समेत प्रभु नील मेघ के समान श्याम-वर्ण सगुण रूप श्रीरामचन्द्रजी मेरे हृदय में सदा वास करो॥ ९॥

असकहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपां बैकुंठ सिधारा॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ॥
रिषि निकाय मुनिबर गति देखि। सुखी भए निज हृदयं बिसेषी॥

ऐसे कहकर योग अग्नि से अपने शरीर को जला दिया और रामजी की कृपा से बैकुण्ठ को गमन किया, इस कारण मुनि हरि में लीन हुए क्योंकि प्रथम ही भेद-भक्ति का वर मांग लिया था। वहां के सब ऋषियों ने मुनिवर की गति देखी तो अपने हृदय में बहुत सुखी हुए।

अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनत हित करुना कंदा॥
पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृंद बिपुल संग लागे॥

सब मुनियों के वृन्द स्तुति करने लगे कि हे दीन हितकारी करुणा कन्द! आपकी जय हो। फिर रघुनाथजी वन में वहां से आगे चले और बहुत से मुनिश्वरों के झुण्ड भी साथ चले।

अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥
तिन कहं सुनहु देव रघुबीर। प्रणतहाल भज्जन भवभीरा॥

हड्डियों के ढेर को देखकर बहुत दया लगने से रघुनाथजी मुनियों से पूछने लगे। मुनियों ने कहा कि हे देवताओं के शिरोमणि रघुनाथजी! सुनो, आप दीन जन पालक और संसार की भीर को दूर करने वाले हो।

जानतहूं पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥

हे स्वामी! आप जानकर भी पूछते हो, समदर्शी हो, सबके हृदय के अन्तर्यामी हो। यहां राक्षस-समूह ने मुनियों को खाया। यह सुनकर रघुनाथजी के नेत्रों में आंसू भर आये।

दो०—निसिचर हीन करउं महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥ १०॥

भुजा उठाकर श्रीरामजी ने प्रतिज्ञा की कि पृथ्वी को निशाचरों से हीन कर दूंगा। यह कहकर प्रभु ने सब मुनियों के आश्रम में जाकर अभय-दान देकर सुख दिया॥ १०॥

मुनि अगस्ति कर शिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुं आन भरोस न देवक॥

अगत्स्य मुनि का शिष्य सुजान सुतीक्षण नाम भगवान में बहुत प्रीति रखने वाला था, कर्म और वचन से रामचंद्रजी का चरण सेवक था और सपने में भी और देवता का भरोसा उसको नहीं था।

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहिं दाया॥

प्रभु रामजी का आगमन कानों से सुना तो अनेक प्रकार का मनोरथ करता हुआ उठ आया और मन में कहने लगा कि हे विधाता! दीनबन्धु रघुनाथजी क्या मुझ सरीखे मूर्ख पर दया करेंगे।

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियं भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥

लक्ष्मण समेत स्वामी रामजी मुझको अपने सेवक की तरह मिलेंगे। मेरे मन में दृढ़ विश्वास नहीं होता, क्योंकि मेरे मन में भक्ति, ज्ञान और वराग्य नहीं है।

नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

न सत्संग किया, योग, जप और यज्ञ भी नहीं किया तथा रामजी के चरण-कमलों में दृढ़ स्नेह भी नहीं है, पर दयानिधान रामजी की एक वाणी है कि जिसको दूसरे की शरण नहीं होता है वह रामजी को अति प्रिय है।

दो०—पन्नगारि सुनु प्रेम मम भजन न दूसर आन।
यह बिचारि पुनि पुनि मुनि करत राम गुन गान॥ ११॥

काग भुशुन्डिजी गरुड़जी से कहते हैं कि हे पन्नगारि! सुनो, प्रेम के समान दूसरा भजन नहीं है। यह विचार कर मुनि बारम्बार रामजी का गुण-गान करते हैं॥ ११॥

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥

सुतीक्षणजी विचार रहे थे कि आज मेरे नेत्र, रामजी का भवबन्ध-बिमोचन मुख-कमल देखकर सफल होंगे। पूर्ण प्रेम में मुनि ज्ञानी मग्न हो गये। शिवजी कहते हैं, हे पार्वती! प्रेम दशा कही नहीं जा सकती।

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहि सूझा। को मैं चलेउं कहां नहिं बूझा॥
कबहुंक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुंक नृत्य करइ गुन गाई॥

मुनि को मार्ग में दिशा और विदिशा नहीं सूझता था और न यह जान पड़ता था कि मैं कौन हूं और कहां जा रहा हूं। कभी फिरकर पीछे को चला जाता, कभी रामजी का गुणगान करके नाचने लगता।

अबिरल पेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयं हरन भव भीरा॥

ऐसी परिपूर्ण प्रेम-भक्ति मुनि ने पाई, रामजी वृक्ष की ओट में छिपकर देखने लगे। मुनि की अत्यन्त प्रीति देखकर संसार का भय हरने वाले रामजी के मुनि हृदय में प्रकट हुए।

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥

मुनि मार्ग में अचल होकर ऐसे बैठ गये, जिस प्रकार कटहल का फल। रघुनाथजी मुनि के समीप चले आये और प्रेम में मग्न अपने भक्त की दशा देखकर बहुत प्रसन्न हुये।

सो०—राम सुसहज सुभाव सेवक दुख दारद दमन।
मुनिसन कहप्रभु जाव उठ उठ द्विज मम प्राणसम॥ ७॥

रामजी सहज स्वभाव से ही अपने सेवक के दुःख-दरिद्र को दूर करने वाले हैं। मुनि से प्रभु कहने लगे कि हे द्विजदेव! आओ उठो, तुम हमारे प्राण समान हो, शीघ्र उठो॥ ७॥

मुनिहि राम बहु भांति जगावा। जाग न ध्यानजनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयं चतुर्भुज रूप देखावा॥

मुनि को रामजी ने अनेक भांति से जगाया, परन्तु वह नहीं जागे, उन्होंने ध्यान दर्शन में ही बहुत सुख पाया। तब रामजी ने अपना रघुराज-स्वरूप उनके हृदय से छिपा लिया और चतुर्भुज रूप दिखाया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें॥
आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा॥

तब सुतीक्षणजी ऐसे घबरा उठे जसे मणि के बिना सांप व्याकुल हो जाता है। आगे श्याम शरीर राम सुख-धाम को सीता लक्ष्मण सहित देखा।

परेउ लकुट इक चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई॥

लाठी के समान रामजी के चरणों में गिर पड़ा और बड़भागी मुनिवर सुतीक्षणजी प्रेम में मग्न हो गये। तब रामजी ने अपनी लम्बी भुजाओं से सुतिक्षण जी को पकड़कर उठा लिया और बड़े प्रेम से हृदय से लगाया।

मुनिहि मिलत अस सोई कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥
राम बदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा। मानहुं चित्र माझ लिखि काढ़ा॥

सुतिक्षणजी से मिलते हुए कृपालु रामजी ऐसे शोभायमान हो रहे थे, जैसे सुवर्ण के वृक्ष को तमाल का वृक्ष भेंटता हो। रामचंद्रजी के मुख को देखकर मुनि मानो चित्र में लिखकर काढ़े हों, ऐसे खड़े रह गये।

दो०--तब मुनि हृदयं धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥ १२॥

तदन्तर सुतिक्षणजी ने हृदय में धैर्य रखकर बारम्बार चरण पकड़ कर श्री रामचंद्रजी को अपने आश्रम में लाकर अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की॥ १२॥

महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अंजोरी॥

आपकी महिमा अमित, जिसका अंत नहीं है और मेरी बुद्धि बहुत छोटी है, जैसे सूर्य के सामने जुगनु का प्रकाश है, अर्थात सूर्य के सामने जुगनु का प्रकाश नहीं हो सकता।

श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं॥
कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी॥

नील-कमल की माला के समान श्याम और सुन्दर आपका शरीर है, मस्तक पर जटाओं का मुकुट है, मुनियों के जैसे वस्त्र धारण किये हो। सुतिक्षणजी ने कहा प्रभु! मेरी विनती सुनो, मैं किस बिधि से आपकी स्तुति करूं।

पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं॥
मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः॥

हाथों में धनुष-बाण और कमर में तरकस धारण किये हो, ऐसे आप रघुवीर को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूं। हे प्रभो! आप मोह-रूपी घने जंगल को जलाने के लिए अग्नि हो, सन्त-रूपी कमल वन को विकसित करने के लिये सूर्य हो।

निशिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः ॥
अरुण नयन राजीव सुवेशं। सीता नयन चकोर निशेशं ॥

राक्षस-रूपी हाथियों के समूह के लिये सिंह हो और संसार रूपी पक्षी के लिये बाज हो, हमारी रक्षा करो। लाल कमल के समान आपके नेत्र हैं, सुन्दर वेष है। सीताजी के नयन चकोर को आप पूर्ण चंद्रमा के समान हो।

हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विशालं ॥
संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः ॥

आप महादेवजी के हृदय रूपी मान-सरोवर के राजहंस हो, हे राम! विशाल हृदय और बाहु वाले आपको मैं नमस्कार करता हूं। संशय-रूपी सर्प को खाने के लिये आप गरुड़ रूप हो। कठिन तर्कना और विषाद को नाश करने वाले हैं।

भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रातु सदा नो कृपा वरूथः ॥
निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ॥

भय को नाश करने वाले, देवताओं को आनन्द देने वाले, कृपा के समुद्र सर्वदा हमारी रक्षा करो। आप निर्गुण, सगुण, विषम और सम-रूप वाले हैं। आपका ऐसा अनोखा रूप है कि ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से नहीं जाना जाता है।

अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं ॥
भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः ॥

आप निर्मल, अखंड, अनिन्द्य, अनन्त और पृथ्वी का भार दूर करने वाले हो, मैं नमस्कार करता हूं। भक्तों को सुखी बनाने के लिये कल्पवृक्ष हैं और क्रोध, लोभ, मद और काम का नाश करने वाले हैं।

अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः ॥
अतुलित भुज प्रताप बल धामः। कलि मल विपुल विभंजन नामः ॥

बहुत चतुर हो, संसार-रूपी समुद्र के पुल हो, सदा मेरी रक्षा करो। आप सूर्य वंश की ध्वजा हो, आपकी भुजाओं का अतुलित प्रताप है और आपका नाम अनेकों प्रकार के कलि-मल का नाश करने वाला है।

धर्म बर्म नर्मद गुण ग्रामः। संतत शं तनोतु मम रामः ॥
जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सब के हृदयं निरंतर बासी ॥

आपके गुणों का समूह धर्म, कर्म का वर्म, कवच है जो सर्वदा कल्याणदाता है। हे रामजी! आप मेरे लिए कल्याण का विस्तार करो। यद्यपि आप गुणातीत, व्यापक, अविनाशी, सबके हृदय में निरन्तर वास करने वाले हो।

तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी ॥

तद्यपि हे वन में विचरने वाले श्रीरामजी! लक्ष्मण और सीता सहित मेरे मन में बसो।

सो०—मायावश जिमि जीव रहहिं सन्तत सदा मगन।
तिमि लागहु मोहिं प्रिय करुणाकर सुन्दर सुखद ॥ ८ ॥

माया के वश जैसे जीव सदैव मगन रहता है, वैसे ही हे दया के करने वाले और सुन्दर सुख देने वाले राम! मुझको प्यारे लगो ॥ ८ ॥

जे जानहिं ते जानहुं स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥
जो कोसल पति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना ॥

हे स्वामी! जो आपको सगुण, निर्गुण हृदय के अंतर्यामी करके जानते हैं, वे जानो, परन्तु मेरे हृदय में तो श्री अयोध्या के स्वामी कमल-समान विशाल नेत्र वाले आप रामजी हो, वे ही सदा वास करो।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

मैं सेवक और श्रीरामजी मेरे स्वामी हैं, ऐसा अभिमान मेरा कभी भोलेपन से भी न जाय।

सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए ॥
परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउं सो तोही ॥

मुनि का यह वचन सुनकर रामजी के मन को प्यारे लगे, फिर प्रसन्न हो सुतिक्षण जी को हृदय से लगा लिया और बोले कि हे मुनिजी! मुझको बहुत ही प्रसन्न जानकर जो वर मांगो, वही वर दूंगा।

मुनि कह मैं बर कबहुं न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा ॥
तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥

मुनि ने कहा कि मैं वर कभी नहीं मांगता, क्योंकि मेरी समझ में नहीं आता कि क्या झूठ है और क्या सच है? हे रघुनाथजी आपको जो अच्छा लगे, वही वर मुझको दीजिये जो दास को सुखदायक हो।

अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥
प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा ॥

यह सुन रामजी बोले कि तुमको परिपूर्ण भक्ति, वैराग्य और ज्ञान प्राप्त हो, तुम सम्पूर्ण गुण और ज्ञान के निधान होंगे। सुतिक्षणजी बोले, हे प्रभु! जो वर आपने दिया वह मैंने पाया। अब वह वर दीजिये जो मुझको अच्छा लगा है।

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ॥ १३ ॥

लक्ष्मण जानकी सहित हे प्रभु रामजी! धनुष-बाण धारण किये हुए आप मेरे हृदय रूपी आकाश में सुन्दर चंद्रमा के समान सदा विश्राम करो ॥ १३ ॥

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा ॥
मुनि प्रणाम करि कह कर जोरी। सुनहु नाथ कछु बिनती मोरी ॥

ऐसा ही हो! ऐसे कहकर सीतापति रामजी अगस्त्य ऋषि के पास चले, तब सुतिक्षणजी प्रणाम कहकर हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे नाथ! मेरी प्रार्थना सुन लीजिये।

बहुत दिवस गुर दरसनु पाएं। भए मोहि एहिं आश्रम आएं ॥
अब प्रभु संग जाउं गुर पाहीं। तुम्ह कहं नाथ निहोरा नाहीं ॥

बहुत दिन गुरु के दर्शन पाए। मुझे इस आश्रम में आये बहुत दिन हो गये, आज प्रभु के साथ गुरु के पास चलता हूं। हे नाथ! आप पर निहोरा (एहसान) नहीं रखना चाहता।

चले जात प्रभु तव पद कञ्जा। देखिहौं जो बिराध मद गञ्जा॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहसे द्वौ भाई॥

मार्ग में चले जाते हुए हे प्रभु! आपके चरण-कमलों का दर्शन करता चलूंगा, विरोध का मद दूर करने वाले कृपा निधान रामजी ने मुनि की चतुरता देखकर अपने साथ ले लिया और दोनों भाई हंस पड़े।

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुंचे सुरभूपा॥
आश्रम दीख महा सुचि सुन्दर। सरित सरोवर कानन भूधर॥

मार्ग में अपनी अनुपम भक्ति कहते हुए देवों के देव श्रीरामजी अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुंचे। बहुत पवित्र और सुन्दर आश्रम देखा, जहां नदी, सरोवर, सुन्दर वन और पर्वत हैं।

दो०—तरुवर बहुबिधि बिहंग मृग बोलत बिबिध प्रकार।
बसहि सिद्ध मुनि तप करहिं महिमा गुण आगार॥ १४॥

सुन्दर वृक्षों पर बहुत भांति के पक्षी अनेक प्रकार की मधुर बोली बोल रहे थे, मृग विहार कर रहे हैं, महिमा और गुणों के धाम, सिद्ध और मुनिजन बसकर तप कर रहे हैं॥ १४॥

तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥

सुतीक्षणजी तुरन्त गुरु के पास गये और दण्डवत् प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे, हे नाथ! अयोध्या के महाराज के पुत्र जगत के आधार आपसे मिलने आये हैं।

राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥

रामजी, छोटे भाई लक्ष्मण और सीता जी समेत हैं जिनको हे देव! आप रात-दिन जपते हो, सुनते ही अगस्त्य जी उठे और रामजी को देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया।

मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिए उर लाई॥
सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी॥

मुनिजी के चरण-कमलों में दोनों भाई गिर पड़े, तब ऋषि ने बहुत प्रीति से उन्हें हृदय से लगाया, आदर से कुशल पूछकर ज्ञानी मुनि ने भगवान को लाकर आसन पर बिठाया।

पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥
जहं लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुखकंदा॥

फिर बहुत भांति से प्रभु की स्तुति की और कहा—मेरे समान कोई दूसरा भाग्यवान नहीं है, जहां तक और भी मनुष्यों के वृन्द थे, श्रीरामचन्द्रजी को देखकर सब अति प्रसन्न हुए।

दो०—मुनि समूह महं बैठे सन्मुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत मानहुं निकर चकोर॥ १५॥

मुनियों के समूह में प्रभु रामजी सबकी ओर सम्मुख बैठे। शरद-ऋतु के चन्द्रमा को मानो चकोरों का समूह देखता है, ऐसे ऋषि लोग रामजी को देखने लगे॥ १५॥

पाय सुथल जल हर्षित मीना। पारस पाय सुखी जिमि दीना॥
प्रभुहिं निरखि सुखभा इहिभांती। चातक जिमि पाई जल स्वाती॥

सुन्दर जल पाकर जैसे मछली और पारस पाकर जैसे दीनजन सुखी होते हैं। रामजी को देखकर मुनि को इस प्रकार सुख हुआ, जैसे पपीहा स्वांति के जल को पाकर सुखी होता है।

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउं। ताते तात न कहि समुझायउं॥

तब रामजी ने अगस्त्यजी से कहा हे प्रभु! तुमसे कुछ छिपाव नहीं है। आप जानते हैं जिस कारण मैं वन में आया हूं, इस कारण हे तात! कहकर नहीं समझाया।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही॥
द्विज द्रोही न बचहि मुनिराई। जिमि पंकज बन हिम ऋतु पाई॥

हे मुनि! अब मुझे वह सीख दीजिये, किस प्रकार मुनियों के बैरी राक्षसों को मारूं? हे मुनि! ब्राह्मणों के द्रोही अब नहीं बचेंगे, जैसे कमल-वन हेमन्त ऋतु को पाकर नहीं बचता।

मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥
तुम्हरेइं भजन प्रभाव अधारी। जानउं महिमा कछुक तुम्हारी॥

अगस्त्य मुनि प्रभु की वाणी सुनकर मुस्कराये और बोले हे नाथ! आप क्या मुझसे पूछते हैं। पापों के शत्रु अर्थात पापनाशक रामजी! आपके भजन के प्रभाव से आपकी कुछ महिमा जानता हूं।

सो०—भृकुटि निरखत नाथ रहत सदा पद-कमल तर।
रचि जोरे निज हाथ बिबिध बिधाता सिद्ध हर॥ ६॥

हे नाथ! आपकी माया, आपकी भृकुटी को देखती हुई सदा आपके चरण-कमल के तले रहती है, जिसने अपने हाथ से अनेकानेक विधाता, सिद्ध और शिव रच डाले॥ ६॥

अति कराल सब पर जग जाना। औरों कहौं सुनिय भगवाना॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥

आपकी माया सब पर भयंकर है, यह सब जगत जानता है और मैं भी कहता हूं, हे भगवान! सुनिये गूलर के वृक्ष के समान आपकी विशाल माया है और अनेक ब्राह्मडों के समूह उसके फल हैं।

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भयं डरत सदा सोउ काला॥

चराचर जीव इसमें छोटे-छोटे कीड़ों के समान भीतर रहते हैं, बाहर वे और किसी को भी नहीं जानते हैं उन फूलों को खाने वाला कठिन और भयंकर काल है, वह भी आपसे डरता है।

ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूंछेहु मोहि मनुज की नाईं॥
यह बर मागउं कृपानिकेता। बसहु हृदयं श्री अनुज समेता॥
अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥

ऐसे आप सब लोकपाल के स्वामी मुझसे साधारण मनुष्य की भांति पूछते हो। हे दयानिधान!

आपसे यह वर मैं मांगता हूं कि सीता लक्ष्मण सहित आप मेरे हृदय में वास करो। मुझे अविरल भक्ति वैराग्य, संत प्राप्त हो तथा कमलवत् चरण में अखण्ड प्रीति होवे।

जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं गेहि संता॥
अस तव रूप बखानउं जानउं। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउं॥

यद्यपि आप अखण्ड, अनन्त ब्रह्म हो और अनुभव से जानने योग्य हो, जिसका सन्तजन भजन करते हैं, ऐसा आपका रूप बखान करता और जानता हूं, तथापि फिर-फिर सगुण ब्रह्म में ही प्रीति करने को विशेष मानता हूं।

दो०—जाहि जीव पर कृपा सन्तत रहत हुलास।
तिनकी महिमा को कहै जो अनन्य प्रिय दास॥ १६॥

जिस प्राणी पर आपकी कृपा होती है वह सदा आनन्दित रहता है, उसकी महिमा कौन कह सकता है? जो आपके प्यारे भक्त हैं॥ १६॥

संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूंछेहु रघुराई॥
है प्रभु परम मनोहर ठाऊं। पावन पंचबटी तेहि नाऊं॥

आप सदा अपने दासों को बड़ाई देते हो, इससे हे रघुनाथजी! मुझसे पूछते हो। हे प्रभो! एक बहुत ही मनोहर स्थान है, पवित्र पंचवटी उसका नाम है।

गोदवरी नदी तहं बहई। चारिहु युग प्रसिद्ध सो अहई॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥

वहां गोदावरी नदी बह रही है और चारों युगों में प्रसिद्ध है। हे प्रभु वहां जाकर दण्डक वन को पवित्र करो और मुनिवर गौतम के कठिन शाप को हरो।

बास करहु तहं रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी निअराई॥

हे रामचन्द्रजी! वहां पर आप वास करो और सब मुनियों पर दया करो। तब आज्ञा पाकर रामचन्द्रजी चले और तुरन्त ही पंचवटी के निकट पहुंच गये।

दिव्य लता द्रुम प्रभु मनभाये। निरखि राम सब भये सुहाये॥
राम लखन सिय चरण निहारी। कानन अघ गा भा सुखकारी॥

सुन्दर लता और वृक्ष प्रभु रामचन्द्रजी के मन को अच्छे लगे। रामजी को देख सब सुहावने हो गये। राम, लक्ष्मण और सीताजी के चरण-कमलों को देखकर वन पाप-रूपी शाप से मुक्त हो, सुखकारी हो गया।

दो०—गीधराज सें भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ॥ १७॥

गीधराज जटायु से रामजी की भेंट हुई, उससे अनेक प्रकार से प्रीति को दृढ़ करके गोदावरी नदी के समीप प्रभु रामचन्द्रजी पर्णकुटी छवाकर रहने लगे॥ १७॥

जब ते राम कीन्ह तहं बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदीं ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥

जबसे रामजी ने पंचवटी में वास किया, तब से मुनिजन सुखी हुए, क्योंकि उनका डर जाता रहा। वहां के पर्वत, वन, नदी, सरोवर शोभायमान हो गये और दिन-प्रतिदिन उनकी शोभा बढ़ने लगी।

खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहां प्रगट रघुबीर बिराजा॥

पक्षी, मृगों के झुन्ड आनन्दित रहने लगे, भौंरे मीठे स्वर से गूंजते हुए शोभायमान लगने लगे, उनकी शोभा शेषजी भी नहीं कर सकते। जहां साक्षात् रघुनाथजी विराजमान हैं।

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउं निज प्रभु की नाईं॥

एक बार प्रभु रामजी सुख से आसन पर विराजमान थे, उस समय लक्ष्मणजी छल रहित वचन बोले, अर्थात पूछने लगे—हे सुर-नर-मुनि और चर-अचर के स्वामी! मैं अपने प्रभु की नाईं आपसे पूछता हूं।

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥

हे देव! मुझको समझाकर वही उपदेश दीजिये, सब छोड़कर आपके ही चरण रज का सेवन करूं। ज्ञान, वैराग्य और माया का वर्णन कर वह भक्ति कहिये, जिनके करने से आप भक्तों पर दया करते हैं।

दो०—ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥ १८॥

हे नाथ! ईश्वर और जीव का भेद सब समझाकर कहिये, जिससे आपके चरणों में प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम दूर हो जाय॥ १८॥

थोरेहि महं सब कहउं बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥

रामचन्द्रजी बोले हे प्यारे लक्ष्मण! थोड़े ही में सब समझाकर कहता हूं। बुद्धि, मन और चित्त लगाकर सुनो। मैं और मेरा, तैं और तेरा यही माया है, जिसने सब जीवों को अपने वश में कर रखा है।

गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥

जहां तक मन जाता है, हे भाई! सो सब माया जानो। उस माया के दो भेद हैं, वह भी तुम सुनो। एक विद्या, दूसरी अविद्या, ये दोनों माया हैं।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥

एक माया बहुत ही दुष्टा है, जिसके वश में होकर जीव संसार रूपी कुएं में पड़ा है। एक माया जगत को रचती है। सब गुण जिसके वश में हैं, परन्तु वह प्रभु की प्रेरणा से अपना काम करती है, इसको अपना बल नहीं है।

ग्यान मान जहं एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥

ज्ञान वही है जहां मान एक भी न हो सब में ब्रह्मरूपी देखता हो, हे तात! उसको परम वैराग्य करना चाहिये, जो आणिमादि सिद्धियों और सत-रज-तम इन तीनों गुणों को तृण के समान त्याग कर देवे।

दो०—माया ईस न आपु कहुं जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥ १६॥

माया, ईश्वर और अपने को नहीं जानती, उसको जीव कहना चाहिये और जो बन्धमोक्ष का दाता सबसे परे माया का प्रेरक और मर्यादा से युक्त है वह ईश्वर है॥ १६॥

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवउं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

अपने धर्म में प्रीति होने से वैराग्य होता है। वैराग्य से योग, योग से ज्ञान और ज्ञान ही मोक्ष देने वाला है, यह वेद कहता है। हे भाई लक्ष्मण! जिससे शीघ्र ही मैं प्रसन्न हो जाता हूं वह मेरी भक्ति है, जो भक्त को सुख देने वाली है।

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइं अनुकूला॥
भगति कि साधन कहउं बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥

वह भक्ति स्वतन्त्र है दूसरे का साधन, सहारा नहीं चाहती और ज्ञान, विज्ञान उसके अधीन हैं। हे भाई भक्ति अनुपम सुख की जड़ है, परन्तु जब सन्त अनुकूल हों, तभी प्राप्त होती है। उस भक्ति-साधन के सुगम मार्ग का वर्णन करता हूं, जिससे मनुष्य-जन मुझे प्राप्त करते हैं।

प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीति॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥

प्रथम तो ब्राह्मणों के चरणों में अत्यन्त प्रीति हो और शास्त्र की नीति के अनुसार अपने-अपने धर्म में लीन रहे। इसका फल है कि विषयों में मन विराग हो जाता है, तब मेरे चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है।

श्रवनादिक नवभक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ सेवा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहं जानै दृढ़ सेवा॥

श्रवण आदि के नव प्रकार की भक्ति को दृढ़ करके मेरी लीला में अधिक बुद्धि से प्रीति करे, साधु-जनों के चरण-कमलों में बहुत प्रेम करे और मन-कर्म-वचन से दृढ़ करके मेरा भजन करे। गुरु, माता-पिता, भाई, स्वामी, देवता ये मुझको जानकर दृढ़ सेवा करे।

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥

मेरा गुणगान करता हुआ भक्त जन शरीर से पुलकायमान हो जाय, वचन गद्गद हो जाये, नेत्रों से जल बहने लगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार जिसके नहीं हैं, हे भाई लक्ष्मण! मैं सदा उनके वश में रहता हूं।

दो०—बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुं करउं सदा बिश्राम॥ २०॥

वचन, कर्म और मन से जो भक्तजन मेरी शरण हैं और कामना त्याग कर मेरा भजन करते हैं उनके हृदय-कमल में सदा विश्राम करता हूं॥ २०॥

भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥
नाथ सुने मम अति सन्देहा। भयउ बिराग ज्ञान गुणनेहा॥

लक्ष्मणजी ने भक्ति योग सुनकर बहुत सुख पाया और प्रभु रामजी के चरणों में सिर नवाया। हे नाथ! आपका उपदेश सुनने से मेरा सन्देह दूर हो गया और ज्ञान होकर नया स्नेह उत्पन्न हुआ।

अनुज बचन सुनि प्रभु मन भाये। हरषि राम निज हृदय लगाये॥
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥

छोटे भाई लक्ष्मण के वचन सुनकर प्रभु के मन को अच्छे लगे, तब प्रसन्न होकर रामजी ने उनको अपने हृदय से लगाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण, नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये।

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥
पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥

सूर्पणखा नाम की राक्षसी रावण की बहन जो दुष्ट हृदय, भयावनी, सर्पिणी के समान थी। एक बार वह पंचवटी को गई और दोनों राजकुमारों को देखते ही अति व्याकुल हो गई।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥

कागभुशुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुड़जी! भाई, पिता, पुत्र कोई भी पुरुष हो, मनोहर रूप देखते ही स्त्री व्याकुल हो जाती है और मन को रोक नहीं सकती, सूर्य-कान्त मणि सूर्य को देखकर द्रवती है।

दो०—अधम निशाचर कुटिल अति चली करन उपहास।
सुनु खगेश भावी प्रबल भा चह निशिचर नास॥ २१॥

कागभुशुण्डिजी गरुड़जी से कहते हैं कि सुनो पक्षीराज! नीच निशाचरी बहुत ही खोटी हंसी प्रभु से करने लगी। होनहार प्रबल है, राक्षसों का नाश हुआ चाहता है॥ २१॥

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह संजोग बिधि रचा बिचारी॥

सुन्दर रूप रखकर प्रभु के पास आई और मुस्कराकर मधुर वचन बोली। तुम्हारे समान पुरुष और मेरे समान स्त्री कहीं नहीं है, यह अच्छा संयोग विधाता ने विचार कर रचा है।

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउं खोजि लोक तिहु नाहीं॥
तातें अब लगि रहिउं कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥

मेरे समान स्वरूप वाला पुरुष संसार में नहीं मिला, मैंने तीनों लोक में ढूंढकर देखा। इसी से मैं

अब तक कुमारी रही, अब तुमको देखकर कुछ मन ने माना है, अर्थात् विवाह करने की इच्छा हुई है।

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥

सीताजी की ओर देखकर प्रभु ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई लक्ष्मण कुमार है तब लक्ष्मण जी के पास गई, लक्ष्मणजी ने उसको शत्रु की बहिन जानकर रामजी की ओर देखकर कोमल वाणी बोले।

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा॥

हे सुन्दरी! मैं उन प्रभु का दास हूं और पराधीन हूं, तेरा सुभीता हमारे समीप नहीं है। श्रीरामजी समर्थ हैं तथा अयोध्या के राजा हैं, वह जो कुछ करें उनको सब कुछ सुहाता है।

दो०—केहरि सम नहिं कविवर लवा कि बाज समान।
प्रभु सेवक इमि जानहू मानहु वचन प्रमान॥ २२॥

सिंह के समान सुन्दर हाथी भी नहीं हो सकता और क्या लवा पक्षी बाज पक्षी के समान हो सकता है? इसी प्रकार स्वामी और सेवक को जानो और हमारा वचन प्रमाण मानो हम सत्य कहते हैं॥ २२॥

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥

जो सेवक सुख चाहे, भिखारी मान चाहे, व्यसनी धन चाहे और व्यभिचारी अच्छी गति की इच्छा करे, लोभी यश चाहे, गुमानी सुन्दरता चाहे, ये सब प्राणी आकाश में दूध दुहना चाहते हैं।

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥

यह सुनकर फिर रामजी के समीप आई, प्रभु ने फिर लक्ष्मणजी के पास भेज दी। लक्ष्मणजी ने कहा, तुझको वह वरे जो लाज को तृण के समान तोड़कर छोड़ दे।

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥
बिथुरे केश रुदन बिकराला। भृकुटी कुटिल कर्ण लगि गाला॥

तब वह खिसिया गई और रामजी के पास अपना भयङ्कर रूप प्रगट करती हुई गई। बाल बिखरे हुए, दांत भयंकर; भौंहें टेढ़ी, कान गालों तक लटकते हुए।

सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥
अनुज राम मनकी गति जानी। उठे रिसाइ सो सुनहु भवानी॥

सूर्पणखा के भयंकर रूप को देखकर सीताजी डर गई तब रघुनाथजी ने लक्ष्मणजी से सैन में हो समझाकर उसे कुरूप करने को कह दिया। लक्ष्मणजी ने रामजी की इच्छा जान ली और क्रोध कर उठे सो हे पार्वती! सुनो।

दो०-लछिमन अति लाघवं सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहं मनौ चुनौती दीन्हि ॥ १७ ॥

लक्ष्मणजी ने बहुत जल्दी से उसको नाक-कान से हीन कर दिया, उसके हाथ रावण को मानो युद्ध के लिए चुनौती दी ॥ २३ ॥

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता ॥

नाक-कान के बिना शूर्पणखा भयंकर हो गई। रुधिर बह रहा था, मानो पर्वत से गेरु की धारा वह रही हो। खर दूषण के पास विलाप करती हुई गई और बोली—हे भाई! तुम्हारे बल पराक्रम को धिक्कार है! धिक्कार है!!

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई ॥
चौंदह सहस सुभट संग लीन्हे। जिन सपनेहु रण पीठ न दीन्हे ॥

उन दोनों ने पूछा, तब शूर्पणखा ने सब बृतान्त समझाकर कहा, सो सुनकर खर दूषण ने अपनी राक्षसी सेना बुलाई और चौदह हजार योद्धा साथ लिए जिन्होंने सपने में भी रण में पीठ नहीं दिखाई थी।

धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ॥
नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा ॥

राक्षसों के झुण्ड ऐसे दौड़े, मानो पंख वाले काजल के पहाड़ों के समूह दौड़ते चले आते हैं। अनेक वाहनों पर चढ़े अनेक आकार वाले, अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए बहुत राक्षस चले आ रहे थे।

श्याम घटा देखत नभ केरी। तहं वासब धनु मनहुं उगेरी ॥
सूपनखा आगें करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी ॥

देखने में आकाश की काली घटा से, उनके शस्त्र ऐसे थे, मानो वहां इन्द्रजी का धनुष उदय हुआ है। शूर्पणखा को आगे कर लिया, जो अमङ्गल वेष नाक-कान से हीन थी।

दो०--निज निज बल सब मिलि कहहिं एकहि एक सुनाय।
बाजन बाज जुझाऊ हर्ष न हृदय समाय ॥ २४ ॥

सब राक्षस मिलकर अपना-अपना बल एक को सुनाकर कहने लगे और युद्ध के बाजे बजने लगे, उस समय का आनन्द हृदय में नहीं समाता था ॥ २४ ॥

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी ॥
कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई ॥

अनेक भयंकर अपशकुन होने लगे, परन्तु सब राक्षस मृत्यु के वश हैं, इस कारण अपशकुन नहीं गिनते। उनमें कोई कहने लगे कि दोनों भाइयों को जीते ही पकड़ लो और मार डालो और उनकी स्त्री को छीन लो।

कोउ कह सुनहु सत्य हम कहहीं। कानन फिरहिं बीर कोउ अहहीं ॥
बहु बिधि कहत बचन रणधीरा। आये सकल जहां रघुबीरा ॥

कोई कहने लगे, सुनो हम सच कहते हैं कि ये वन में घूमते हैं, इससे जान पड़ता है कि कोई बड़े वीर हैं। अनेक प्रकार के वचन कहते हुए रणधीर राक्षस सब वहां आये जहां पर श्रीरामचन्द्रजी विराजमान थे।

धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा॥
लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥

राक्षसों के अत्यन्त वेग से जब आकाश-मण्डल धूल से पूरित हो गया, तब रामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से कहा—अब जानकी को लेकर किसी पर्वत की गुफा में चले जाओ, क्योंकि राक्षसों की भयंकर सेना आ पहुंची है।

रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी॥
देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥

तब सावधान रहना, प्रभु की यह वाणी सुनकर सीताजी को लेकर लक्ष्मणजी हाथ में धनुष-बाण लेकर चले, जब रामजी ने देखा कि शत्रु का दल चला आ रहा है, तब हंसकर अपना कठोर धनुष चढ़ाया।

छं०—कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बांधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै॥
चितवत मनहुं मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारी कै॥२॥

अपना कठोर धनुष चढ़ाकर प्रभु रामचन्द्रजी सिर की जटा को बाँधते हुए ऐसे शोभायमान हुए, जैसे नीलमणि के पर्वत पर करोड़ों बिजली चमकती हैं जिन पर दो सांप शोभायमान हैं, फिर प्रभु रामचन्द्रजी कमर में तरकस कसकर लम्बी भुजाओं से धनुष-बाण पकड़ संभलकर शत्रु सेना को ऐसे देखने लगे, मानो सिंह निर्भय होकर हाथियों की घटा देखता है॥ २॥

सो०—आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज॥१०॥

राक्षस योद्धा अपनी सवारियों की बागडोर ढीली करके आ गये और पकड़ो-पकड़ो दौड़ो भागने न पावे, ऐसा कहते हुए रामचन्द्रजी को घेर लिया, जैसे अकेले देखकर बाल रवि को दैत्य लोग घेर लेते हैं॥ १०॥

घेरि रहे निशिचर समुदाई। दण्डक खग मृग चले पराई॥
प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥

राक्षसों के झुण्ड रामचन्द्रजी को घेर रहे हैं, यह देखकर डर के मारे दण्डक वन के पक्षी और पशु भाग चले। प्रभु को देखकर बाण नहीं छोड़ सके, सब निशाचर रामचन्द्रजी की मोहिनी मूर्ति को देखकर थकित हो गये।

सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥

मन्त्री को बुला खरदूषण कहने लगे, यह कोई राजकुमार, मनुष्य में भूषण, अर्थात् पुरुषोत्तम हैं। देवता, मनुष्य, नाग, असुर, मुनि कितने हमने देखे सुने और कितने ही मारे हैं।

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

सुनो सब भाइयों! हमने जन्म भर में ऐसी सुन्दरता नहीं देखी। यद्यपि बहिन शर्पणखा को इसने कुरूप किया है तो भी यह अनुपम पुरुष वध करने योग्य नहीं है।

देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥
मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु॥

अपनी छिपाई हुई स्त्री को तुरन्त दे दो और दोनों भाई जीते हुए अपने घर चले जाओ खरदूषण दूतों से कह रहे थे कि हमारा यह संदेश तुम उनको सुनाओ और उनका वचन सुनकर झटपट लौट आओ।

दो०—भये कालवश मूढ़ सब, नहिं जानहिं रघुबीर।
मसक फूंक किमि मेरु उड़, सुनहु गरुड़ मति धीर॥ २५॥

कागभुशुण्डिजी कहने लगे, हे मतिधीर गरुड़! सब मूढ़ राक्षस कालवश हो गये, रामजी के प्रभाव को नहीं जानते, भला मच्छर की फूंक से सुमेरु पर्वत कैसे उड़ सकता है॥ २५॥

दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥
आजु भयउ बड़ भाग हमारा। तुम्हारे प्रभु अस कीन्ह बिचारा॥

दूतों ने रामजी से आकर कहा - सो सुनते ही रामजी मुस्कराकर कहने लगे। आज हमारा बड़ा भाग्य उदय हुआ, जो तुम्हारे स्वामी ने ऐसा विचार किया।

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥

हम क्षत्रिय हैं वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे सरीखे दुष्ट मृगों को ढूंढते फिरते हैं, बलवान शत्रु को देखकर हम नहीं डरते तथा एक बार काल से भी लड़ सकते हैं।

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउं न काहू॥

यद्यपि हम मनुष्य हैं तो भी राक्षस-कुल के विध्वंसक हैं और मुनिजनों के पालक, दुष्टों के हृदय में पीड़ा करने वाले हम बालक हैं। बल न हो तो घर को लौट जाओ, रण में मुख फेरने पर मैं किसी को नहीं मारता हूं।

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दुतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दुषन उर अति दहेऊ॥

युद्ध निमित्त चढ़कर कपट, चतुराई कर शत्रु पर दया करना बड़ा कायरपन कहलाता है। रामचन्द्रजी के वचन सुनकर दूतों ने तुरन्त जाकर सब वृतान्त कह सुनाया, सो सुनकर खरदूषण का हृदय बहुत जल उठा।

छं०—उरदहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥६॥

जब हृदय जल उठे, तब कहने लगे कि पकड़ो, दौड़ो, जाने न पाये। यह सुनकर भयंकर योद्धा सब राक्षस धनुष-बाण, तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर रामचन्द्रजी पर दौड़े। प्रभु ने पहले तो धनुष की टङ्कार की, जिसका बड़ा कठोर और भयंकर शब्द सुनते ही राक्षस लोग बहिरे होकर व्याकुल हो गये, उस समय उनको कुछ भी ज्ञान न रहा ॥ ३ ॥

दो०—सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभांति ॥ २६ ॥

रामचन्द्रजी को बलवान शत्रु जानकर राक्षस लोग सावधान होकर दौड़ पड़े, रामजी पर अनेक प्रकार के अस्त्रों की वर्षा करने लगे ॥ २६ ॥

तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छांड़े निज तीर ॥ २७ ॥

रामचन्द्रजी ने राक्षसों के अस्त्र-शस्त्र तिनके के समान काट डाले और फिर धनुष को कान तक तानकर बाण छोड़े ॥ २७ ॥

छन्द तोमर—

छं०—तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल।
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम ॥१॥

तब रामचन्द्रजी के भयंकर बाण ऐसे चले, मानो सांप फुंकारते हुए चले जाते हैं। श्रीरामजी समर में कोपे बहुत ही पैने बाण चलाये, जो बहुत तीक्ष्ण विषैले थे।

अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर।
इक एककी न संभार। कर तात मात पुकार ॥ २ ॥

वे बाण शरीर पर लगने पर दिखाई नहीं पड़ते, तब निशाचर वीर मुंह मोड़कर चल दिये, एक को संभाल न रहा, हे तात ! हे मात की पुकार करने लगे ॥ २ ॥

कोउ कहहिं खर का कीन्ह। जो युद्ध इन सन लीन्ह।
ये बाण अतिहि कराल। ग्रसे आइ मानहुं काल ॥ ३ ॥

उनमें कोई कहने लगा, खर ने यह क्या किया, जो इनसे युद्ध ठाना। इनके ये बाण बड़े ही भयानक हैं, मानो काल ने आकर बध डाला है ॥ ३ ॥

भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ।
तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुं ठानि ॥ ४ ॥

अपने राक्षस वीरों को भागते देख तीनों भाई क्रोधित हुए और बोले कि जो रण से भाग आयेगा उसको हम अपने हाथ से मार डालेंगे, यह सुनकर सब राक्षस मन में अपना मरण ठानकर लौट पड़े और युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥

आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार ॥
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि ॥ ५ ॥

अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र सामने मारने लगे, तब शत्रुओं को बहुत क्रोध में भरे जानकर प्रभु रामचन्द्रजी ने फिर धनुष पर बाण चढ़ाया ॥ ५ ॥

छांड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच।
उर सीस भुज कर चरन। जहं तहं लगे महि परन ॥६॥

बहुत से बाण छोड़े, जिनसे विकट दुखदाई राक्षस कटने लगे। हृदय, सिर, हाथ, भुज दण्ड, चरण कट-कटकर जहां-तहां पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ ६ ॥

चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान।
भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाषंड ॥७॥

रामजी के बाण लगते ही राक्षस चिक्कारते हैं। धड़ रुण्ड पहाड़ के समान पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। एक-एक योद्धा के कटते ही उसकी देह के सौ-सौ खण्ड हो जाते हैं और माया करके फिर उठते हैं ॥ ७ ॥

नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड।
खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल ॥८॥

आकाश में बहुत से भुजा और मुण्ड उड़ते हैं, बिना मुण्ड के रुण्ड दौड़ते फिरते हैं। गिद्ध पक्षी, कौए और गीदड़ आदि मांसाहारी बहुत भयंकर रूप से कटकटाते, अर्थात् चोंय-चोंय कर मांस खा रहे थे ॥ ८ ॥

छं०—कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं ॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहं तहं परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयकर गिरा ॥ ४ ॥

गीदड़ कटकटाते, भूत-प्रेत, पिशाच खप्पर भरकर रुधिर पीते थे बेताल वीरों के कपाल की ताली बजाते और योगिनी नाचती थीं। रामचन्द्रजी के प्रचण्ड बाण योद्धाओं के भुजदण्ड, हृदय और सिर तोड़ते और वे जहां-तहां गिर पड़ते थे और फिर उठकर लड़ते और पकड़ो-पकड़ो ऐसा भयंकर शब्द करते थे ॥ ४ ॥

अंतावरी गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुर बासी मनहुं बहु बाल गुड़ी उड़ावह ॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहंरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे ॥ ५ ॥

आंतों को लेकर गीध उड़ते, जिनके लटकते हुए छोरों को निशाचर अपने हाथ से पकड़ कर ऐसे दौड़ते थे, मानो संग्राम-रूप नगरवासी बहुत से बालक पतंग उड़ा रहे हैं। रामजी के बाणों ने अनेक योद्धाओं को मारा, अनेकों को पछाड़ा, अनेका का हृदय चीरा, बहुत से योद्धा वहां पड़े कराहने लगे। इस प्रकार सब योद्धाओं को अपने दल में व्याकुल देखकर खरदूषण त्रिसिरा आदि सब राक्षस श्रीरामचन्द्रजी की ओर फिरे ॥ ५ ॥

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं ॥
प्रभु निमिष महुं रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका ॥ ६ ॥

बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, त्रिशूल, तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र लिए हुए एक ही बार कोप करके श्रीरामचन्द्रजी के ऊपर अनेक राक्षस प्रहार करने लगे। प्रभु रामजी ने पल मात्र में शत्रुओं के बाणों को अपने बाण चलाकर काट डाले और दस-दस बाण निशाचरों के नायकों की छाती पर मारे ॥६॥

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करयो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरिमरयो॥ ७॥

राक्षस लोग पृथ्वी पर गिरते ही फिर उठकर लड़ने लगते, मरते नहीं हैं और बहुत सी माया करते हैं, देवता डरते हैं कि राक्षस तो चौदह हजार हैं और रामचन्द्रजी अकेले हैं। तब देवता और मुनियों को भयभीत देखकर मायापति प्रभु रामचन्द्रजी ने बड़ा कौतुक किया। वह यह कि राक्षस लोग परस्पर एक-दूसरे को राम का स्वरूप देखने लगे और मारने लगे। इस प्रकार संग्राम करके शत्रु दल लड़ मरा॥ ७॥

दो०—राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुं कृपानिधान॥ २८॥

राम-राम कहकर देह त्याग करते थे और परम-पद पाते थे। इस प्रकार उपाय करके कृपानिधान रामचन्द्र जी ने क्षण भर में शत्रुओं को मार डाला॥ २८॥

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥ २९॥

आनन्दित होकर देवता फूल बरसाने और आकाश में गहगहे बाजे बजने लगे तथा अनेक सुन्दर विमानों में बैठ हुए देवता स्तुति कर-करके अपने-अपने लोक को चले गये॥ २९॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥

जब रामचन्द्रजी ने युद्ध में शत्रुओं को जीता, तब देवता, मनुष्य, मुनि तथा सबका भय दूर हो गया। लक्ष्मणजी सीताजी को ले आये और प्रभु के चरणों को प्रणाम किया, प्रणाम करते ही प्रभु ने प्रसन्नता से छाती से लगा लिया।

सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥
पंचबटीं बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥

सीताजी रामजी का श्याम-वर्ण और कोमल शरीर को देखकर प्रेम से मग्न हो गईं। श्याम सुन्दर को देखते हुए उनके नेत्र नहीं थकते थे। रामचन्द्रजी पंचवटी में वास कर देवता और मुनियों को सुख देने वाले चरित्र करते रहे।

धुआं देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखां रावन प्रेरा॥
बोलि बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥
करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥

खरदूषण के जलने का जब धुआं देखा, तब शूर्पणखा ने रावण को उकसाया। बड़ा क्रोध करके

शर्पणखा यह वचन बोली कि तुमने दस कोस की सुधि ही भुला दी। मद्यपान करते हो, दिन-रात सोते रहते हो, तुमको यह भी सुधि (खबर) नहीं है कि शत्रु सिर पर आ गये।

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएं। श्रम फल पढ़ें किएं अरु पाएं॥

बिना नीति के राज्य का, बिना धर्म के धन का, बिना हरि के अर्पण किये सत्कर्म का। बिना विवेक किये विद्या का फल श्रम-मात्र है।

संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

संग करने से योगी, बुरे मन्त्रों से राजा और मान से ज्ञान तथा मद्य आदि के पीने से लाज। नम्रता बिना प्रीति अभिमान से गुणी शीघ्र नाश हो जाते हैं, ऐसी नीति मैंने सुनी है।

सो०–रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥ ११॥

हे रावण! शत्रु, रोग, अग्नि, पाप और सांप को छोटा नहीं जानना चाहिए, ऐसा कहकर अनेक प्रकार से विलाप कर रोने लगी॥ ११॥

दो०–सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ॥ ३०॥

सभा में व्याकुल होकर गिर पड़ी और बहुत भांति से रोकर कहने लगी, हे दशकंधर रावण! तेरे जीते क्या मेरी यह दशा होगी॥ ३०॥

सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बांह उठाई॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइं तव नासा कान निपाता॥

ऐसा सुनकर सभासद व्याकुल हो गये, बांह पकड़ समझाते हुए उसे बैठाए, यह सुनकर रावण ने कहा, यह बात क्यों नहीं कहती हो, तुम्हारे नाक-कान किसने काट लिए।

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥

सूर्पणखा बोली, अवधपुरी के महाराज दशरथजी के पुत्र, मनुष्यों में सिंह के समान वन में शिकार खेलने आये हैं। उनकी करणी मुझे समझ पड़ी कि वे पृथ्वी को राक्षसहीन कर देंगे।

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन॥
देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना॥

हे रावण! जिनके भुजाओं का बल पाकर मुनि लोग भय-रहित होकर वन में विचरते हैं, वे देखने में तो बालक हैं, परन्तु काल के समान, अत्यन्त धैर्यवान, धनुषधारी और अनेक गुणों से युक्त हैं।

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता॥
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥

महाबली, महाप्रतापी दोनों भाई दुष्ट राक्षसों को मारने वाले, देवता व मुनियों को सुख देने वाले हैं, उनमें शोभा के धाम जो हैं उनका नाम राम है और उनके साथ एक सुन्दर स्त्री है।

रूप रासि बिधि नारि संवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा॥

विधाता ने उसको रूप की राशि बनाई और ऐसी संवारी कि है सौ करोड़ रति उस पर न्योछावर है। उसके छोटे भाई लक्ष्मण ने तुम्हारी बहिन सुनकर हंसी करके मेरे कान तथा नाक काट लिये।

खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुं सकल कटक उन्ह मारा॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥

मेरी पुकार सुनकर खरदूषण उनसे युद्ध करने लगे, परन्तु उन्होंने क्षण-भर में सब सेना समेत खर-दूषण आदि राक्षसों को मार डाला। खरदूषण और त्रिशिरा का मरण सुन रावण का सारा शरीर क्रोध से जल उठा।

दो०—सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भांति।
गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति॥ २२॥

शूर्पणखा को समझा-बुझाकर अनेक भांति से अपना बल-पराक्रम सुनाकर बहुत सोच करता हुआ रावण भवन में गया, परन्तु मारे सोच के रात भर उसे नींद नहीं पड़ी॥ ३१॥

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहं कोउ नाहीं॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥

देवता, मनुष्य, असुर और नाग जितने बलवान् जगत् में हैं, मेरे अनुचरों के समान भी कोई नहीं है। खरदूषण मेरे समान बलवान् थे, उनको बिना भगवान् के कौन मार सकता है।

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊं। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊं॥

देवताओं के आनन्द देने वाले, पृथ्वी का भार उतारने वाले, जगदीश्वर ने अवतार लिया है तो मैं जाकर हठ कर उनसे बैर करूंगा और प्रभु के बाणों से मरकर भवसागर से तर जाऊंगा।

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहऊं नारि जीति रन दोऊ॥

इस तामसी शरीर से भगवत भजन नहीं होगा। इस कारण मन, कर्म और वचन से यही दृढ़ मन्त्र ठीक है और मनुष्य-रूप में कोई राजपुत्र हैं तो दोनों को युद्ध में जीत कर उनकी स्त्री हर लाऊंगा।

चला अकेल जान चढ़ि तहवां। बस मारीच सिंधु तट जहवां॥
इहां राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥

यह विचार कर रावण अकेला रथ पर चढ़ वहां चला, जहां समुद्र के तट पर मारीच रहता था। यहां रामचन्द्रजी ने जैसी युक्ति बनाई, सो सुन्दर कथा हे पार्वती! सुनो।

दो०—लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनक सुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद॥ ३२॥

जब लक्ष्मणजी वन को कन्द-मूल और फल लेने गये, तब जानकीजी से कृपा और सुख के समूह श्री रामचन्द्रजी हंसकर बोले ।। ३२ ।।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करबि ललित नरलीला ॥
तुम्ह पावक महुं करहु निवासा । जौ लगि करौं निसाचर नासा ॥

सुनो प्यारी ! तुम पतिव्रत धर्म में दृढ़ और परम सुशीला हो अब मैं कुछ सुन्दर मनुष्य की लीला करूंगा, तुम तब तक अग्नि में निवास करो, जब तक मैं निशाचरों का नाश करूं।

जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियं अनल समानी ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहं सीता । तैसइ सील रूप सुबिनीता ॥

जब रामजी ने इस प्रकार समझाकर कहा, तब प्रभु की छवि हृदय में रखकर जानकीजी अग्नि में प्रवेश कर गईं । सीताजी ने अपने प्रतिबिम्ब (परछाहीं) को वहां रखा ।

लछिमनहूं यह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ॥
दसमुख गयउ जहां मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ॥

लक्ष्मणजी ने भी यह भेद नहीं जाना, जो कुछ चरित्र भगवान् ने रचा था । रावण वहां गया, जहां मारीच था, स्वार्थ में प्रीति वाले नीच रावण ने मारीच को मस्तक नवाया ।

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुसधनु उरग बिलाई ॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥

नीच का नवाना भी बहुत दुखदाई होता है, जैसे अंकुश, धनुष, सांप और बिल्ली । दुष्ट की प्यारी बोली भी भय देने वाली होती है । हे पार्वती ! जैसे अकाल में फल लगने से कुछ उत्पात अवश्य होता है ।

दो०—करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात ।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात ॥ ३३ ॥

तब मारीच ने रावण को सत्कार करके आदर से यह बात पूछी कि हे तात ! किस कारण तुम्हारा मन बहुत उचाट है और अकेले ही कैसे आये हो ।। ३३ ।।

दसमुख सकल कथा तेहि आगें । कही सहित अभिमान अभागें ॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी । जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी ॥

मंदभागी रावण ने सब कथा उसके आगे अभिमान के साथ कही और बोला कि तुम छलकारी कपट मृग बन जाओ, जिस प्रकार मैं राम की स्त्री सीता को हरकर लाऊं ।

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा । ते नररूप चराचर ईसा ॥
तासों तात बयरु नहिं कीजै । मारें मरिअ जिआए जीजै ॥

यह सुन मारीच ने कहा, सुनो रावण ! वे रामजी मनुष्य-रूप में चराचर के स्वामी हैं, इस कारण हे तात ! उनसे वैर नहीं करना चाहिए, उनके मारने और जिलाने से जीना पड़ता है ।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा । बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ॥
सत जोजन आयउं छन माहीं । तिन्ह सन बयरु किएं भल नाहीं ॥

विश्वामित्र मुनिजी की यज्ञ रक्षा के निमित्त कुमार अवस्था में रामचन्द्रजी गये थे, वहां बिना फर

के बाण से मुझको मारा। उस बाण से वहां से क्षण-मात्र में मैं सो योजन आ पड़ा, उनसे वैर करने पर भलाई नहीं है।

भइ मम कीट भृंग की नाई। जहं तहं मैं देखउ दोउ भाई॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥

तबसे मेरी बुद्धि भृङ्गी कीड़े की नाई हैं, मैं जहां-जहां दोनों भाइयों को देखता हूं। हे तात। जो वे मनुष्य हैं ऐसा समझो तो भी बड़े शूर है, उनसे विरोध करने से तुम्हारा पूरा न पड़ेगा।

दो०-जेहिं ताड़िका सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥ ३४॥

जिस प्रभु ने ताड़का और सुबाहु को मारा, महादेवजी का धनुष तोड़ा, खरदूषण और त्रिशिरा को मारा। क्या कोई मनुष्य ऐसा बलवान् हो सकता है॥ ३४॥

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा॥

अपने कुल का कुशल विचार कर घर जाओ। मारीच के वचन को सुनते ही रावण जल उठा और उसे गाली देने लगा और बोला—रे मूर्ख! गुरु के समान मुझको सिखाता है। संसार में मेरे समान कौन योद्धा है।

तब मारीच हृदयं अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी॥

तब मारीच ने हृदय में विचार किया कि नौ प्राणियों के साथ वैर करने में भलाई नहीं होती। शस्त्रधारी, भेद जानने वाला पड़ोसी, स्वामी, मूर्ख, धनी, वैद्य अथवा भांड, कवि और गुणवान् मनुष्य।

उभय भांति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरौं रघुपति सर लागें॥

दोनों प्रकार में जब अपना मरण देखा, तब मारीच ने रघुनाथजी की शरण ताकी। उत्तर देने से तो मुझको यह अभागा रावण ही मार डालेगा, इससे तो रघुनाथजी के बाण लगने से क्यों न मरूं।

अस जियं जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउं परम सनेही॥

ऐसा मन में विचार रावण के साथ चल दिया और रामजी के चरणों में दृढ़ प्रेम किया। मन में बहुत ही प्रसन्न था, परन्तु रावण को नहीं बतलाया, आनन्द में ऐसा मग्न था कि आज अपने बड़े प्रेमी रामचन्द्रजी के दर्शन करूंगा।

छं०-निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेतन पद मन लाइहौं॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।
निज पान सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥ ८॥

अपने परम प्यारे रामजी को देखकर नेत्र सफल करके सुख पाऊंगा और सीताजी लक्ष्मण समेत कृपानिधान रामजी के चरणों में मन लगाऊंगा, जिनको क्रोध मोक्षदायक है और भक्ति अवश्य वश में करने वाली है, ऐसे सुख के समुद्र हरि भगवान् अपने हाथ से बाण चलाकर मुझको मारेंगे ॥ ८ ॥

दो०—मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउं धन्य न मो सम आन ॥ ३५ ॥

जब श्रीरामजी धनुष-बाण धारण किये हुए मेरे पीछे लगे हुए दौड़ेंगे, तब मैं पीछे फिर-फिर कर अपने प्रभु का दर्शन करूंगा, मेरे समान और धन्य कौन हो सकता है ॥ ३५ ॥

सीता सहित लखन रघुराई। ज्यहिबन बसहिं मनि सुख दाई ॥
तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ ॥

सीता लक्ष्मण समेत मुनियों को सुख देने वाले रामचन्द्रजी जिस वन में वास करते थे उस वन के समीप जब रावण गया, तब मारीच माया का मृग बन गया।

अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई ॥
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा ॥

बहुत विचित्र वर्णन नहीं किया जा सकता, ऐसा मनोहर मृग बन गया कि अपनी देह सुवर्ण की मणियों से जड़ित बनाई। सीताजी ने बहुत सुन्दर मृग को देखा, जिसके अंग-अंग का वेष अति मनोहर था।

सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥
सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही ॥

हे देव ! हे कृपालु रघुवीर, सुनो इस मृग की बहुत सुन्दर छाल है। हे सत्य-संकल्प स्वामी ! इसको मारकर इसकी छाल लाइए, यह सीताजी ने कहा।

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु संवारन ॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बांधा। करतल चाप रुचिर सर सांधा ॥

तब रघुनाथजी सब कारण जानते हुए प्रसन्न होकर देवताओं का कार्य संभालने के निमित्त उठे। मृग को देखकर रामचन्द्रजी ने कमर में फेंटा बांधा और हाथ में धनुष लेकर सुन्दर बाण चढ़ाया।

प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥

प्रभु ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा कि वन में राक्षस बहुत फिरते रहते हैं। बुद्धि ज्ञान, बल और समय विचारकर सीताजी को रखवाली करना।

दो०—अस कहि चले तहां प्रभु, जहां कपट मृग नीच।
देव हर्ष बिस्मय बिबस, चातक वर्षा बीच ॥ ३६ ॥

ऐसे कहकर प्रभु वहां से चले, जहां कपट-रूप मृग था। देवता आनन्द और अचम्भे के वश में ऐसे हो गये जैसे वर्षा के बीच पपीहा हर्ष और विस्मय हो जाता है ॥ ३६ ॥

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासर साजी॥
निगम नेति सिव ध्यान न पावा। माया मृग पाछें सो धावा॥

प्रभु को देखकर मृग भाग चला, तब रामचन्द्रजी धनुष पर बाण चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े। जिसको वेद नेति-नेति कहते हैं और शिवजी जिनका पार नहीं पाते, सो प्रभु रामजी माया-मृग के पीछे दौड़े।

कबहुं निकट पुनि दूरि पराई। कबहुंक प्रगटक कबहुं छपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरि॥

कभी समीप रहता, कभी भाग जाता, कभी दिखाई पड़ता, कभी छिप जाता इस प्रकार प्रगट होता और छिपता तथा अनेक छल करता हुआ मृग प्रभु को बहुत दूर तक ले गया।

तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुं रामा॥

तब रामजी ने कठिन बाण ताककर मारा, वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने पहले तो लक्ष्मणजी का नाम लिया, फिर मन में रामजी का स्मरण करने लगा।

प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥
अंतर प्रेम तासु पहचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

प्राण छोड़ते हुए अपना शरीर प्रगट किया और सीता रहित रामजी को स्मरण किया। भीतर प्रम पहिचान कर चतुर रामजी ने उसको वह गति दी, जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

दो०—बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुं दीनबंधु रघुनाथ॥ ३७॥

देवता बहुत फूल बरसाने लगे और प्रभु का गुण गाने लगे कि कृपासिन्धु रघुनाथजी ने असुर को भी अपना धाम दिया॥ ३७॥

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥

असुर को मारकर रामचन्द्रजी तुरन्त लौटे, हाथ में धनुष और कमर में तरकस शोभा दे रहा था। हा लक्ष्मण! ऐसी मारीच की कातर वाणी सुन सीताजी लक्ष्मणजी से बहुत डरकर कहने लगीं।

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुं संकट परइ कि सोई॥

जल्दी जाओ, तुम्हारे भाई पर संकट है। यह सुनकर लक्ष्मणजी ने हंसकर कहा, सुनो माता! जिनकी भौंह के तिरछे करने मात्र से संसार का लय हो जाय, उस प्रभु को सपने में भी संकट हो सकता है।

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहां रावन ससि राहू॥

रघुनाथजी मुझको धरोहर सौंप गये है, सो तुमको मैं छोड़कर चला जाऊं, तो हृदय

में सन्तोष नहीं होता। यह सुनकर सीताजी जब भेद वचन बोलीं, तब हरि भगवान की प्रेरणा से लक्ष्मण जी की बुद्धि चलायमान हो गई।

चहुं दिशि देख खंचाइ अहोशा। बार बार नायउ पद शीशा॥
बन दिशि देव सौंपि सब काहू। चले जहां रावण शशि राहू॥

चारों ओर रेखा खींचकर लक्ष्मणजी ने बारम्बार सीताजी के चरणों पर मस्तक झुकाया। वन और दिशाओं के देवता सबको सौंप कर वहां चले, जहां रावण-रूपी चन्द्रमा को ग्रसने वाले श्रीरामजी थे।

दो०—एक डरत डर राम के, दूजे सीय अकेलि।
लखन तेज तनु हत भए, जिमि दाढ़ी दव बेलि॥ ३८॥

लक्ष्मणजी एक तो रामजी से डरते थे, दूसरे सीताजी अकेली थीं, इस विचार में उस समय उनका शरीर ऐसा कान्तिहीन हो गया, जैसे दावानल की जलाई वेलि हो जाती है॥ ३८॥

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं॥

इस बीच में रावण सूना स्थान देख संन्यासी रूप में वह सीताजी के निकट आया जिसके डर से देवता और असुर डरते थे, जिसके भय के मारे रात को नींद नहीं आती और दिन में अन्न नहीं खाते थे।

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥

वह रावण कुत्ते की तरह डरता और इधर-उधर देखता चोरी करने चला। कागभुशुण्डिजी गरुड़जी से कहते हैं कि हे पक्षीराज! इस प्रकार कुमार्ग में पग रखते ही बुद्धिबल नाम-मात्र भी नहीं रहता है।

करि अनेक बिधि छल चतुराई। मांगी भीख दशानन जाई॥
अतिथि जानि सिय कन्दमूल फल। देन लागि तेहि कीन्ह बहुरि छल॥

अनेक प्रकार की छल से चतुरता करके रावण ने जाकर सीताजी से भीख मांगी। सीताजी ने रावण को अतिथि जानकर कन्द-मूल फल देने लगीं, तब उसने फिर छल किया।

कह रावण सुनु सुन्दरि बानी। बांधी भीख न लेहुं सयानी॥
बिधिगति बाम काल कठिनाई। रेख लांघत सिय बाहर आई॥

रावण कहने लगा हे सुन्दरी! हमारी बात सुनो, मैं बांधी भीख नहीं लूंगा, तुम तो चतुर हो और मैं संन्यासी हूं, विधाता की उल्टी गति और काल की कठिनता से सीताजी रेखा को लांघकर बाहर आईं।

दो०—बिश्वभरनि अघ दल दलीन, करनि सकल सुरकाज।
जाना नहिं त्यहि समय तह, दशशिर कपट कुसाज॥ ३९॥

संसार का पालन करने वाली, पाप-रूप राक्षसों के दल को नाश करने वाली, सब देवताओं का काज संभालने वाली, ऐसी जानकीजी ने यही उस समय रावण के कपट तथा कुसाज को नहीं जाना॥ ३९॥

नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥

रावण ने अनेक प्रकार की कथा कहकर सुनाईं। राजनीति, भय और प्रीति दिखाई। तब सीता जी ने कहा, सुनो यती महाराज! तुम दुष्ट के समान वचन बोलते हो।

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा॥

तब रावण ने अपना रूप दिखाया और जब अपना नाम सुनाया, तब सीताजी बहुत डर गईं। तब सीताजी ने धीरज रखकर कहा कि प्रभु आ पहुंचे। रे दुष्ट! खड़ा रह।

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा॥
बायसकर चह खगपति समता। सिन्धु समान होय किमि सरिता॥

जैसे सिंहनी को तुच्छ खरहा चाहे, वैसे ही निसाचरपति! तू कालवश हुआ है। कौवा गरुड़ की समता रखना चाहे, नदी समुद्र के समान होना चाहे तो इनकी समानता कैसे हो सकती है?

खरि कि होय सुरधेनु समाना। जाहु भवन निज सुनु अज्ञाना॥
सुनत वचन दशीश लजाना। मनमहुं चरण बन्दि सुख माना॥

गदही क्या कामधेनु के समान हो सकती है, इसलिए सुन रे मूर्ख! अपना भला चाहे तो चला जा यहां से। सीताजी का वचन सुनते ही रावण ने लज्जित होकर मन में उनके चरणों को प्रणाम कर सुख माना।

दो०—क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयं रथ हांकि न जाइ॥ ४०॥

रावण ने सीता हरण से अपना भला जाना, तब क्रोध कर सीताजी को रथ में बिठाया, शीघ्रता-पूर्वक आकाश मार्ग में चला, पर डर के मारे उससे रथ हांका नहीं जा रहा था॥ ४०॥

हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिनायक॥

हे जगत के स्वामी! हे रघुनाथजी! किस अपराध से ऊपर से दया बिसार दी। आप तो संकट के हरने वाले, शरणागत को सुख देने वाले हो, आप रघुवंश रूपी कमल के सूर्य हो।

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउं कीन्हेउं रोसा॥
कैकेयी मन जो कछु रहेऊ। सो बिधि आज मोहिं दुखदयऊ॥

हा लक्ष्मण! तुम्हारा कोई भी दोष नहीं है, मैंने जो क्रोध किया था, उसका फल पाया। कैकेयी के मन में जो कुछ रहा, सो विधाता ने आज मुझको दुःख दिया।

पञ्चवटी के खग मृग जाती। दुखी भये बनचर बहु भांती॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥

पञ्चवटी के पक्षी और मृग आदि पशु और सब वनचर सीताजी का विलाप सुनकर बहुत भांति दुःखी हुए, सीताजी अनेक प्रकार से विलाप करती हैं कि हे प्रभु मुझ पर बड़ी दया थी, सो स्नेही प्रभु आप मुझसे दूर हो गये।

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा ॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी ॥

यह मेरी विपत्ति प्रभुजी को कौन सुनावे। यज्ञ की खीर गधा खाना चाहता है। इस प्रकार सीता जी का अत्यन्त विलाप सुनकर सब चराचर जीव दुःखी हुए।

दो०—बहुं बिधि करति बिलाप नभ, लिए जात दशशीश।
डरत न खल बर पाइ भल, जो दीन्हे अस ईश ॥ ४१ ॥

सीताजी आकाश में बहुत विलाप करने लगीं, रावण लिए जाता है, दुष्ट डरता नहीं है क्योंकि सुन्दर वर पाकर निडर हो गया है, जो वर ब्रह्मा और शिवजी ने दिया है ॥ ४१ ॥

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई ॥

गीधराज ने बहुत विषादयुक्त वाणी सुनकर पहिचान लिया कि यह रघुवंश-शिरोमणि श्रीरामचंद्र जी की स्त्री हैं। नीच राक्षस ऐसे लिए जाता था, जैसे म्लेक्ष के वश में कपिला गाय हो जाती है।

अहइ प्रथम बल मम तनु नाहीं। तदपि जाइ देखौं बल ताहीं ॥
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउं जातुधान कर नासा।

बड़े दुःख की बात है कि पहले का सा बल मेरे शरीर में नहीं है तो भी आज मैं इस राक्षस के बल को देखूंगा। जटायू ने पुकारकर कहा कि हे पुत्री सीता ! अब कुछ भय मत करना, मैं इस राक्षस का नाश करूंगा।

धावा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहुं जैसें ॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥

यह कहकर जटायु पक्षी क्रोधित होकर ऐसे दौड़ा, जैसे वज्र पर्वत पर गिरता है। रे दुष्ट खड़ा क्यों नहीं होता, निडर चला जा रहा है मुझको नहीं जानता।

आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना ॥
की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई ॥

जटायु को काल के समान आता हुआ देख रावण फिरा और मन में विचार करने लगा। या मैनाक पर्वत है या गरुड़ होगा, सो गरुड़ अपने स्वामी सहित मेरे बल को जानता है।

दो०—मम भुजबल नहिं जानत, आवत तपिन सहाय।
समर चढ़ै तो यहि हतौं, जितय न निज थल जाय ॥ ४२ ॥

अथवा सूर्य का सहायक अरुण सूर्यवंश की सहायता करने आया है जो मेरे भुजबल को नहीं जानता है। यह समर में चढ़े तो इसको ऐसा मारूंगा कि जीता हुआ अपने स्थान को नहीं जायेगा ॥ ४२ ॥

जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छांड़िहि देहा ॥
सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥

जब समीप आ गया, तब रावण बोला कि यह तो वृद्ध जटायु है, मेरे हाथ-रूपी तीर्थ में यह अपना शरीर छोड़ेगा। यह सुनते ही गीध क्रोध कर शीघ्रता से रावण के पास दौड़े और कहने लगे — हे रावण ! मेरी शिक्षा यह है।

तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहुबाहू ॥
राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥

जानकी को छोड़कर कुशल से घर जाओ, नहीं तो हे रावण ! ऐसा होगा कि श्रीरामजी के क्रोध रूपी प्रचण्ड अग्नि में तेरा सब कुल पतंगे के समान भस्म हो जायेगा।

उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥

जब देखा कि रावण योद्धा कुछ उत्तर नहीं देता, तब गीधराज जटायु क्रोध करके दौड़ा और रावण के केश पकड़कर रथ से घसीटा, तब वह पृथ्वी पर गिरा और जटायु सीताजी को रथ से उतार कुछ दूर पहुंचाकर फिर लौट आया।

दशमुख उठि कृतशर सन्धाना। गीध आय काटेसि धनुबाना ॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥

रावण ने उठकर ज्योंही धनुष पर बाण चढ़ाया, त्योंही गीध ने आकर धनुष-बाण को काट डाला और चोंच से मारकर रावण को ऐसा घायल किया कि वह वर के प्रभाव से नहीं मरा, परन्तु एक घड़ी उसे मूर्छा आ गई।

दो०—ज्यहि रावण निज बश किये, मुनिगण सिद्ध सुरेश।
त्यहि रावण सन समर अति, धीर वीर गृधेश ॥ ४३ ॥

जिस रावण ने मुनियों के समूह सिद्धों और इन्द्र आदि को अपने वश में कर लिया, उसी बली रावण से धीर-वीर गीधराज ने बड़ा युद्ध किया ॥ ४३ ॥

कीन्हेसि जब बहु युद्ध खगेशा। थकित भयउ तब जरठ गृधेशा ॥
तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥

हे गरुड़ ! जब रावण ने बहुत युद्ध किया और वृद्ध गीधराज बुढ़ापे के कारण थक गया, तब खिसिया गया। जटायु के युद्ध से लज्जित होकर रावण क्रोध में भर गया और बड़ी भयावनी तलवार निकाली।

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी ॥
मन महं गीध परम सुख माना। राम काज लागै मम प्राना ॥

गीधराज के पंख काट डाले, वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और अद्भुत करनी करके रामजी का स्मरण करने लगा। मन में जटायु ने बहुत सुख माना कि रामजी के कार्य में मेरे प्राण लगे।

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥

सीता को रथ पर चढ़ाकर फिर झपट चला और मन में थोड़ा भय नहीं है। सीता आकाश मार्ग में ऐसे विलाप करती जाती थीं, जैसे व्याघ्र के वश में पड़ी हुई मृगी जाती है।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महं राखत भयऊ ॥

पर्वत पर वानरों को बैठे हुए देखकर हरि का नाम लेकर अपना वस्त्र डाल दिया, इस प्रकार रावण सीताजी को हर ले गया और अशोक वाटिका में रखवा दिया।

दो०—हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाई।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ॥ ४४॥
जेहि बिधि कपट कुरंग संग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥ ४५॥

अनेक प्रकार से भय और प्रीति दिखाकर दुष्ट रावण हार गया, तब अशोक वृक्ष के नीचे यत्न-पूर्वक रखा॥ ४४॥ जिस प्रकार कपट-मृग के साथ श्रीरामचन्द्रजी दौड़कर चले थे, वही छवि हृदय में रखकर सीताजी हरि भगवान् के नाम का जप करने लगीं॥ ४५॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥

रघुनाथजी ने लक्ष्मणजी को आते देखकर मन में बहुत चिन्ता की और बोले। हे तात! जनक सुता को अकेली छोड़ और हमारा वचन उल्लंघन करके यहां चले आये।

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं॥
अहह तात भल कीन्हेउ नाहीं। सिय बिहीन मम जीवन काहीं॥

राक्षसों के झुंड वन में फिरते हैं, मेरे मन में आता है कि सीता आश्रम में नहीं है। हे प्यारे लक्ष्मण! तुमने यह अच्छा नहीं किया, सीता के बिना मेरा जीना कैसे होगा?

इहिते कवन बिपति बड़ भाई। खोरहु सीय काननहिं आई॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥

हे भाई! इससे बड़ी और कौन विपत्ति होगी, वन में आकर सीता को खो दिया तब चरण कमल और हाथ जोड़कर लक्ष्मणजी ने कहा हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है।

अनुज समेत गए प्रभु तहवां। गोदावरि तट आश्रम जहवां॥
आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना॥

लक्ष्मण समेत प्रभु रामचन्द्रजी वहां गये जहां गोदावरी के तट पर आश्रम था। आश्रम को जानकी के बिना देखकर संसारी मनुष्यों की भांति व्याकुल हो गये।

दो०—कानन रहउ तड़ाग इव, चक चकई सियराम।
रावण निसि बिछुरन किया, दुख बीते चहुं याम॥ ४६॥

वन तो तड़ाग के समान था, जिसमें सीता रामजी चकवा-चकई के समान विहार करते थे। रावण-रूपी रात ने बिछोह कर दिया, जिसमें चारों पहर दुःख में बीते, अर्थात् जब तक रावण-रूपी रात्रि रही, तब तक वियोग रहा॥ ४६॥

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाए बहु भांति। पूछत चले लता तरु पाती॥

हा गुणों की खानि जनकनन्दिनी जानकी! रूप, शील, व्रत और प्रेम में पवित्र सीता! लक्ष्मण जी ने बहुत प्रकार से समझाया, तब लता और वृक्षों से पूछते हुए चले।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृग नैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना॥

हे वन के पक्षियों! हे मृगो! हे भ्रमरों! तुमने कहीं मृगनयनी सीता को देखा है? खञ्जन, तोता, कबूतर, हरिण, मछली, भौंरों के झुण्ड, चतुर कोकिला।

कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥

चमेली की कली, अनार, बिजली, शरद ऋतु का कमल, चन्द्रमा और सर्पिणी, वरुण की फाँसी, कामदेव का धनुष, हँस, हाथी, सिंह ये सब अपनी बड़ाई सुनते हैं।

श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।

बेल, कमल, केले के खम्भे प्रसन्न हो रहे है, मन में कुछ शंका और संकोच नहीं है।

सुनु जानकी तोहि बिनु आजु। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥

हे जानकी! सुनो, तुम्हारे बिना आज ये सब ऐसे आनन्दित हैं, मानो इसको राज मिल गया है, तुझसे इनका यह अनख कैसे सहा जाता है, हे प्यारी! इनका मान-मर्दन करने को तुम शीघ्र प्रकट नहीं होती हो।

दो०—फणि मणि हीन दीन जिमि, मीन हीन जिमि वारि।
तिमि ब्याकुल भये लखन तहं, रघुबर दसा निहारि॥ ४७॥

जैसे मणि बिना सांप दुःखी हो जाता है और जल के बिना मछली हो जाती है, तसे ही रामचन्द्र जी की दशा देखकर लक्ष्मणजी व्याकुल हुए॥ ४७॥

धरि उर धीर बुझावहिं रामहिं। तजहिं न सोक अधिक सुखधामहिं॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुं महा बिरही अति कामी॥

लक्ष्मणजी हृदय में धीरज रख रामजी को समझाते हैं, तो भी सुख के धाम रामजी को शोक अधिकाधिक होता जाता था। इस प्रकार स्वामी रामजी सीताजी को ढूंढ़ते हुए और विलाप करते थे, मानो कोई विरही और बड़ा कामी पुरुष हो।

पूरन काम राम सुख रासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी॥
सरवर अमिय नदी गिरि खोहा। बहु बिधि लखन राम तहं जोहा॥

पूर्ण कामना वाले राम सुख की राशि हैं। अजन्मा और अविनाशी हैं, मनुष्य-रूप धारण कर लीला करते हैं। वहां सरोवर, नदी, पर्वत और गुफाओं में बहुत भांति से लक्ष्मण और रामजी ने खोज डाला।

सचि हिये कछु कहि नहिं आवा। टूट धनुष सर आगे पावा॥
कहुं कहुं सोणित देखि कैसे। सावन भादों जल भरि जैसे॥

हृदय में शोक के मारे कुछ कहा नहीं जाता था, इतने में टूटा हुआ धनुष-बाण आगे दिखाई दिया। कहीं-कहीं रुधिर कैसे देखा, जैसे सावन-भादों में जल भरा रहता है।

कहा राम लक्ष्मणहिं बुझाई। काहू युद्ध कीन्ह बरुताई॥
आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥

तब रामजी ने लक्ष्मण को समझाकर कहा कि यहाँ पर किसी ने बड़ा युद्ध किया है। आगे गीधराज को घायल पड़ा देखा, जो रामजी की चरण-रेखाओं का स्मरण कर रहा था।

दो०—कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरख राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर ॥ ४८ ॥

उसे देखकर कृपासिन्धु रामचन्द्रजी ने उस पर अपना कमल समान हाथ फेरा तो शोभा के धाम रामचन्द्रजी के मुख को देखकर उसकी सब व्यथा दूर हो गई ॥ ४८ ॥

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा ॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही ॥

तब गीधराज ने धैर्य धारण कर कहा कि सुनिए रामजी ! आप संसार का दुःख दूर करने वाले हैं, हे नाथ ! रावण ने मेरी यह दशा की है और उसी दुष्ट ने सीताजी का हरण किया है।

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं ॥
दरस लागि प्रभु राखेउं प्राना। चलन चहत अब कृपा निधाना ॥

हे स्वामी ! सीताजी को लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीताजी कुररी पक्षी की तरह बहुत विलाप करती हुई गई हैं। हे प्रभु ! आपके दर्शन के निमित्त मैंने अब तक अपने प्राणों को रखा है। हे कृपानिधान ! सो अब चलना चाहते हैं।

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता ॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥

रामजी ने कहा हे तात ! शरीर को रखो, तब मुस्कराकर जटायु ने यह बात कही, जिस प्रभु का नाम मरते समय उच्चारण हो तो अधम भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद में कहा है।

सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खांगें ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई ॥

यह प्रभु मेरे नेत्रों के आगे प्रत्यक्ष है, हे नाथ ! अब देह किस निमित्त रखूं ? रामजी नेत्रों में जल भरकर कहने लगे हे तात ! तुमने अपने कर्म से ही शुभ गति प्राप्त की है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुं जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउं काह तुम्ह पूरनकामा ॥

पराया हित जिसके मन में बसता है, उसको संसार में कुछ दुर्लभ नहीं है। रामजी ने गीधराज से कहा हे तात ! देह छोड़कर हमारे धाम को जाओ। तुम्हें मैं क्या दूं क्योंकि तुम सब कामनाओं से पूर्ण हो।

दो०—सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥ ४९ ॥

हे तात ! सीता हरण पिताजी से मत कहना, जो मैं रामचन्द्र हूं तो रावण कुल सहित मरकर जाकर कहेगा ॥ ४९ ॥

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥

गीधराज देह त्यागकर हरि का रूप धारण कर बहुत से अनुपम भूषण, पीतवस्त्र धारण किये, श्याम शरीर और विशाल चार भुजाओं से युक्त नेत्रों में जल भरकर स्तुति करने लगा।

छं०—जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव मोचनं॥९॥

हे रामजी! आपके निर्गुण, सगुण, गुण सबके प्रेरक अनूप रूप की जय हो! आप पृथ्वी को भूषित करने तथा रावण के प्रचण्ड भुजाओं का खन्डन करने के लिए तीक्ष्ण बाण धारण किए हो। आपका शरीर श्याम घन के समान और गुण तथा नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं। संसार के भय छड़ाने वाले, विशाल भुजायें कृपालु रामजी को मैं नित्य प्रणाम करता हूं॥ ९॥

बलमप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं॥ १०॥

आपका बल अप्रमेय है, आप अनादि, अजन्मा, अव्यक्त, अद्वैत और इन्द्रियों की गति से परे हो, गोविन्द, इन्द्रियों से परे, द्वंद्व को हरने वाले, विज्ञान के बरसाने वाले, पृथ्वी को धारण करने वाले हो, जो अनन्त सन्त राम मन्त्र को जपते हैं, आप उनके मन को प्रसन्न करते हो। कामादि दुष्ट दलों का नाश करने वाले, ऐसे अकाम प्रिय राम को मैं प्रणाम करता हूं॥ १०॥

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई॥ ११॥

जिनको वेद निरन्जन, रोग रहित, जन्म रहित और व्यापक ब्रह्म कहकर गाते हैं, जिनको अनेक मुनि ध्यान, ज्ञान, विराग, योग करके पाते हैं, वे ही करुणा के कन्द शोभा के समूह जड़, चेतन्य को मोहने वाले, मेरे हृदय-कमल में, भौंरे के समान अंग-अंग में बहुत काम की छवि से युक्त शोभायमान हो॥ ११॥

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥ १२॥

जो अगम और सुगम प्राप्ति योग्य, स्वभाव से निर्मल, विषम, सम और सदा शीतल है। जिनको योगीजन अनेक मन और इन्द्रियों को वश में करने वाले कर्म और यत्न करते हैं तो देखते हैं तो वही राम रमानिवास, सर्वदा अपने सती के वश में रहने वाले, त्रिभुवन धनी, आपकी पवित्र कीर्ति जन्म-मरण को नष्ट करने वाली है, सो हृदय में बसो॥ १२॥

दो०—अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥ ५० ॥

तब जटायु अचल भक्ति वर मांगकर हरि के धाम को गया, उसकी दाह क्रिया जैसी उचित थी, वैसी ही श्रीरामचन्द्रजी ने अपने हाथ से की ॥ ५० ॥

कोमल चित अति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥

रामजी अत्यन्त कोमल स्वभाव तथा दीनों पर दया करने वाले हैं व बिना कारण ही कृपा करते हैं, गीध नीच मांस खाने वाला, उसे वह गति दी कि जो गति योगीजन मांगते हैं।

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई॥

महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती! सुनो, वे जन अभागे हैं, जो हरि को छोड़ विषय से प्रीति करते हैं, फिर सीताजी को ढूंढते हुए दोनों भाई सघन वन की शोभा देखते हुए चले।

संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहं गज पंचानन॥
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता॥

वह वन, बेलि और वृक्षों से पूर्ण हो रहा था। वहां बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह थे। उस मार्ग में आते हुए कबन्ध राक्षस को मार गिराया तब उसने अपने शाप की सब बात कह सुनाई।

दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा॥
सुनु गंधर्ब कहउं मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही॥

दुर्वासा ने मुझे शाप दिया था कि तू राक्षस हो जा, सो प्रभु का चरण देखकर मेरा पाप दूर हो गया। रामजी बोले सुनो गन्धर्व! मैं तुमसे कहता हूं। मुझको ब्राह्मण कुल का विरोध करने वाला नहीं सुहाता है।

दो०—मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥ ५१ ॥

मन, कर्म और वाणी से कपट को त्याग कर, जो ब्राह्मण की सेवा करता है, सो मुझ समेत ब्रह्मा और शिवजी आदि सब देवता उसके वश में हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥

ब्राह्मण शाप देते, ताड़ना करके कटु वचन कहते हुए भी पूज्य हैं, ऐसा सन्तजन कहते हैं। ब्राह्मण शील, गुण से हीन होने पर भी पूजा के योग्य है और शूद्र गुणवान् और प्रवीण होने पर भी पूजनीय नहीं है।

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥

रामजी ने गन्धर्व को अपना धर्म कह समझाया और अपने चरणों में उसकी प्रीति देख मन को प्यारा लगा, फिर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में दण्डवत करके अपनी गति पा आकाश मार्ग को चला गया।

ताहि देई गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा॥
सबरी देखि राम गृहं आए। मुनि के बचन समुझि जियं भाए॥

उसको गति देकर उदार रामजी शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी ने रामजी को अपने आश्रम में आये देख मुनि का वचन विचार कर मन में अति हर्ष हुआ।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥

कमल समान नेत्र और विशाल भुजा, सिर पर जटाओं का मुकुट, हृदय में वनमाला धारण किए, श्याम गौर वर्ण सुन्दर दोनों भाइयों को देखते ही शबरी प्रेमाग्न होकर गिर पड़ी चरणों पर लिपट गई।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥

प्रेम में मग्न होने के कारण मुख से वचन नहीं आया। बारंबार चरण-कमलों में ही सिर नवाया, जल लेकर आदर से चरण धोया, फिर सुन्दर आसन पर बिठाये।

दो०—कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुं आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥ ५२॥

कन्द, मूल बहुत रस भरे लाकर रामजी को दिया, सो प्रेम समेत प्रभुजी ने बारंबार स्वाद कहकर भोग लगाया॥ ५२॥

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥

शबरी हाथ जोड़कर आगे खड़ी हुई और प्रभु रामजी को देखकर उसको बहुत प्रीति बढ़ी और कहने लगी हे प्रभु! किस भांति तुम्हारी स्तुति करूं। मैं नीच जाति भिल्लनी महाजड़ बुद्धि हूं।

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महं मैं मतिमंद अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउं एक भगति कर नाता॥

नीच से नीच महानीच स्त्रियां होती हैं, उनमें भी मैं बड़ी मूर्ख गंवारी हूं। यह सुनकर रघुनाथजी ने कहा हे भामिनी! मेरी बात सुनो, मैं तो एक भक्ति का नाता मानता हूं।

जाति पांति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

जाति (ब्राह्मण आदि) पांती (परिवार समूह) कुल, धर्म, बड़ाई, धन, कुटुम्ब, गुण समूह, चतुरता ये सब हों, परन्तु भक्ति के बिना मनुष्य कैसा लगता है, जसे बिना जल के मेघ दिखाई पड़ते हैं।

नवधा भगति कहउं तोहि पाहीं। सावधाने सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

नौ प्रकार की भक्ति तुमसे कहता हूं, सावधानी से सुनो और मन में रखो। सन्तों की संगति करना पहली भक्ति है। मेरी कथा में प्रीति करना दूसरी भक्ति है।

दो०—गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥ ५३ ॥

गुरु के कमलवत् चरणों की सेवा अभिमान त्याग करना तीसरी भक्ति है और निष्कपट होकर मेरा गुणानुवाद करना चौथी भक्ति है ॥ ५३ ॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठि दम सील बिरत बहु करमा। निरत निरन्तर सज्जन धर्मा ॥

मेरे मन्त्र का दृढ़ विश्वास भजन करना, वेदों में पांचवीं भक्ति कही है। इन्द्रियों को जीत लेना, शीलवान् होना, वैराग्य व सत्कर्म में प्रीति करना तथा सज्जनों के धर्मों का निरन्तर आचरण यह छठी भक्ति है।

सातवं सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवं जथालाभ संतोषा। सपनेहुं नहिं देखइ परदोषा ॥

सारे संसार को मेरे समान देखना और मुझसे अधिक सन्तों को जानना सातवीं भक्ति है। जो चीज मिल जाय, उसी पर संतोष करना और सपने में भी किसी दूसरे के दोषों को न देखना आठवीं भक्ति है।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियं हरष न दीना ॥
नव महुं एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥

सबसे सरल, छलहीन रहना, मेरा ही भरोसा करना, हृदय में हर्ष और शोक का न होना नवीं भक्ति है। इन नौ प्रकार की भक्तियों में से एक भी जिनको होगी, चाहे स्त्री, पुरुष, चर-अचर कोई भी हो।

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ॥

हे भामिनी! वह मुझको अधिक प्यारा है, फिर तुझमें तो सभी प्रकार से भक्ति दृढ़ है।

जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुं आजु सुलभ भइ सोई ॥
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा ॥

योगियों को जो गति दुर्लभ है, वही गति आज तुमको सुलभ है। मेरे दर्शन का बहुत अनुपम फल यह है कि जीव माया से रहित होकर अपने स्वाभाविक स्वरूप को पाता है।

दो०—सब प्रकार तव भाग बड़, मम चरचन अनुराग।
तव महिमा जेहि उर बसहिं, तासु परम बड़भाग ॥ ५४ ॥

सब प्रकार से तुम्हारा भाग्य बड़ा है, जो मेरे चरणों में तुम्हारा प्रेम है। तुम्हारी महिमा जिसके हृदय में बसे उसका भी बहुत बड़ा भाग्य समझना चाहिए ॥ ५४ ॥

पुनि बोले प्रभु गिरा सुहाई। जनक सुता की सुधि कहुं पाई ॥
पंपा सरहि जाहु रघुराई। मुनिबर बिपुल रहे तहं छाई ॥

फिर प्रभु सुहावने वचन बोले कि हे शबरी! कहीं जानकीजी की भी सुधि पाई है? हे रघुनाथ जी! पम्पासर को जाओ, वहां बहुत से मुनिश्वर वास करते हैं।

ऋषि मतङ्ग महिमा गुणभारी। जीव चराचर रहैं सुखारी॥
बैर न कर काहु सन कोई। जासन बैर प्रीति कर सोई॥

मतङ्ग ऋषि की महिमा का भारी गुण यह है कि चराचर सब जीव सुख से रहते हैं और वहां कोई किसी से बैर नहीं करता, जिससे बैर है वे भी परस्पर प्रेम करते हैं।

सिखर सुहावन कानन फूले। खग मृग जीव जन्तु अनुकूले॥
करहु सफल श्रम सबकर जाई। तहं होइहिं सुग्रीव मिताई॥

जहां सुहावने शिखर हैं, वन फूले हैं और पक्षी, मृग आदि जीव-जन्तु सब प्रेम से रहते हैं। वहां जाकर आप सबका श्रम सफल कीजिए। वहां आपकी मित्रता सुग्रीव से होगी।

सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूं पूछहु मतिधीरा॥
बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥

सो सुग्रीव सब कहेगा। हे देव रामजी! हे मतिधीर आप जानते हुए भी पूछते हो, ऐसे बार-बार रामजी के चरणों को सिर नवाकर प्रेम सहित सब कथा सुनाई।

छं०—कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयं पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहं नहिं फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥ १३॥

सब कथा कहकर हरि भगवान् का मुख देखकर चरण-कमल हृदय में धारण किया और योगाग्नि से शरीर को छोड़कर शबरी हरि पद में लीन हो गई, जहां से फिर कोई नहीं लौटता। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे मनुष्यों! अनेक प्रकार के कर्म और अधर्म तथा बहुत से मत, जो शोक के देने वाले हैं, उनको छोड़ दो और विश्वास करके रामजी के चरणों में प्रीति करो॥ १३॥

दो०—जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ ५५॥

जाति से हीन अर्थात् नीच जाति, जिसका पापमय जन्म, ऐसी स्त्री को भी मुक्त कर दिया है। हे महानन्द मन! ऐसे प्रभु को भुलाकर तू सुख चाहता है॥ ५५॥

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥

रामजी चले वह वन भी छोड़ दिया, जिनका बल अतोल है, दोनों भाई मनुष्यों में सिंह हैं। विरही मनुष्य की तरह प्रभु रामजी अनेक कथाओं और सम्वाद कहते हुए चले जा रहे थे।

लछिमन देखि बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुं मोरि करतहहिं निंदा॥

हे लक्ष्मण! इस वन की शोभा तो देखो, इसको देखने से किसका मन चञ्चल नहीं होगा? सब पक्षी और मृगों के झुण्ड स्त्रियों सहित रहते हैं, मानो मेरी निन्दा करते हैं कि तुम स्त्री सहित क्यों नहीं रहे?

हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहं भय नाहीं॥
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥

हमको देख मृग समूह भागने लगते हैं, तब मृगी कहती है कि तुमको इनसे कुछ भय नहीं है, तुम क्यों भागते हो? तुम मृग से उत्पन्न हुए हो, तुम आनन्द करो, यह तो सुबर्ण मृग ढूंढने आये हैं।

संग लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुं मोहि सिखावनु देहीं॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥

हाथी अपनी हथिनियों को संग लिए चलते हैं, मानो मुझको शिक्षा देते हैं, भली भांति चिन्तन किये हुए शास्त्र को भी बार-बार देखते रहो, राजा की अच्छी प्रकार सेवा करते रहो, तो भी वह अपने वश नहीं होता।

राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥

यद्यपि स्त्री को हृदय में रखिए, तिस पर भी स्त्री शास्त्र और राजा वश में नहीं रहते। हे तात! देखो सुहावना बसन्त प्यारी के बिना मुझको भय उपजाता है।

दो०—बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥ ५६॥

मुझको वियोग की कुशलता से बलहीन निपट अकेला जानकर, वन के भौंरे और पक्षियों को साथ ले कामदेव ने इकट्ठे होकर हम पर धावा किया है॥ ५६॥

देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुं तब कटकु हटकि मनजात॥ ५७॥

उस कामदेव के दूत ने हमको तुम्हारे सहित देखा, यह बात उससे जा कही, ऐसा सुनकर तुम्हारे भय से कामदेव ने सेना को पटक कर वहीं डेरा दे दिया॥ ५७॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥

बड़े-बड़े वृक्षों पर जो लतायें लिपट रही हैं, वही मानो कामदेव ने बहुत से तम्बू तान दिये हैं। केले के वृक्ष के ध्वजा और ताड़ के वृक्ष मानो पताका हैं, इनको देख वह मोहित नहीं होता, जिसके मन में धीरज है।

बिबिध भांति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुं कहुं सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥

और ये जो अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे फूल खिल रहे हैं, वे मानो अनेक रंग के बाना धारण किये हुए पटेबाज हैं। कहीं-कहीं सुन्दर वृक्ष जो अलग-अलग शोभायमान हैं, वे मानो अलग-अलग योद्धा स्थित हुए सेना की रक्षा कर रहे हैं।

कूजत पिक मानहुं गज माते। ढेक महोख ऊंट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावर मराल सब ताजी॥

कोयल का शब्द ऐसा मालूम होता है, मानो मतवाले हाथी बोलते हों। ढेंक और महोख पक्षी ऐसे बोलते हैं, मानो ऊंट खच्चर बोलते हैं। मोर चकोर और तोता मानो उत्तम घोड़े हैं। कबूतर, हंस मानो सब ताजी घोड़े हैं।

तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥

तीतर और लवा मानो पैदलों के समूह हैं। इस प्रकार कामदेव की सेना का वर्णन नहीं किया जाता। पहाड़ों की टूटी शिला रथ हैं। झरना नगाड़े हैं और पपीहे गुणों के वर्णन करने वाले भाट हैं।

मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई॥
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें॥

भौंरों का शब्द मानो तुरही और शहनाई और शीतल मन्द सुगन्धित तीनों प्रकार की वायु मानो दूत होकर आई है कि युद्ध न करो। ऐसी यह चार प्रकार की सेना साथ लेकर सबको चुनौती देता कामदेव बिचारता है।

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥
एहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी॥

हे लक्ष्मण! कामदेव की ऐसी सेना को देखने से जो धीरज धारण किये रहें, उनकी जगत् में मर्यादा है, अर्थात् वे ही धीर-वीर हैं। इस काम का एक बल स्त्री ही है, उससे जो बचे वही बड़ा भारी योद्धा है।

दो०—तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महु छोभ॥ ५८॥
लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥ ५९॥

हे तात! संसार में तीन बड़े प्रबल दुष्ट हैं। काम, क्रोध और लोभ ये तीनों ऐसे हैं कि बड़े-बड़े विज्ञानी मुनियों के मन को भी पल भर में चलायमान कर देते हैं॥ ५८॥ लोभ की सेना तो इच्छा और पाखण्ड है, काम की सेना में केवल स्त्री प्रधान है और क्रोध के कटु वचन है॥ ५९॥

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई॥

सत-रज-तम इन तीनों गुणों से परे और सब चराचर के स्वामी हैं तथा हे पार्वती! राम सबके अन्तर्यामी हैं, यहां रामी ने कामी जनों की सी दीनता दिखाई है और अपने धीर भक्तों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया है।

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जापर होइ सो नट अनुकूला॥

क्योंकि क्रोध, काम, लोभ, अहंकार मोह ये सब रामचन्द्रजी की कृपा से छूट जाते हैं। वह मनुष्य इस इन्द्र जाल में नहीं भूलता है। जिस पर वह इन्द्रजाल की माया का रचने वाला नट प्रसन्न होता है।

उमा कहउं मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! मैं अपना अनुभव वर्णन करता हूं कि हरि का भजन सत्य है और संसार स्वप्न के समान है, फिर प्रभु रामचन्द्रजी सरोवर के किनारे गये, जिसका नाम पम्पा है, जो सुन्दर और गहरा है।

संत हृदय जस निर्मल बारी। बांधे घाट मनहर चारी॥
जहं तहं पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥

सन्तों के हृदय जैसा निर्मल जल उसमें भरा हैं, सुन्दर चार घाट उसमें बंधे हैं, उसके चारों ओर जहां-तहां अनेक प्रकार के मृग आदि जल पीते हैं, उसकी ऐसी सोभा है मानो दाताओं के घर मांगने वालों की भीड़ हो रही है।

दो०–पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म॥ ६०॥
सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं॥ ६१॥

पुरइन की सघनता से जल ऐसा ढका है, जिसका भेद जलदी नहीं मिलता, जैसे कि निर्गुण ब्रह्म माया से ढका हुआ दिखाई नहीं देता॥ ६०॥ बहुत गहरे जल से सभी मछलियां आपस में मिलकर ऐसी सुखी रहती हैं, जैसे धर्मात्मा पुरुषों के दिन सदैव सुख से व्यतीत होते हैं॥ ६१॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥

उस सरोवर में अनेक रंग के कमल खिल रहे हैं, जिस पर मधुर स्वर से गुंजारते हुए बहुत से भौंरे विहार कर रहे हैं। जल मुर्गाबी और सुन्दर हंस ऐसे बोल रहे थे मानो अपने प्रभ को आये हुए देखकर स्तुति करते हों।

चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए॥

चकवा, चकवी, बगुले और पक्षियों के समूह देखते ही बनते हैं। वर्णन नहीं किये जा सकते। सुन्दर पक्षियों के समूह की ऐसी सुहावनी मन भावनी बोली है, मानो जाते हुए पथिकों को बुलाये लेती हो। सरोवर के समीप मुनियों के आश्रम बने हैं, उनके चारों ओर वन के वृक्ष सुहावने लग रहे हैं।

चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥

चम्पा, मौलसरी, कदम्ब, आबनूस, पाकर कटहल, ढाक, आम के अनेक वृक्ष नवीन पत्तों और फूलों से शोभायमान हो रहे हैं, उन पर भौरों की पांति गान कर रहो हैं।

सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

वहां शीतल मन्द सुगन्ध से सनी हुई सुन्दर मन को हरने वाली वायु सदा बह रही है, कोकिला, कुहू-कुहू ध्वनि कर रही है, जिसके रसीले शब्द को सुनकर मुनियों के ध्यान छूट जाते हैं।

दो०—फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥ ६२॥

फूलों के बोझ से वृक्ष पृथ्वी पर ऐसे झुक रहे हैं, जैसे परोपकारी सुन्दर सम्पत्ति पाकर झुकते हैं॥ ६२॥

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा॥
देखि सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥

रामजी ने बहुत सुन्दर सरोवर देखकर स्नान किया और बहुत सुख पाया। एक सुन्दर वृक्ष की छाया देखकर लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी वहां बैठे।

तहं पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥

फिर वहां सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने स्थान को चले गये।

बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥
बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥

बहुत प्रसन्नता से बैठे हुए कृपालु श्रीरामजी लक्ष्मणजी से रसीली कथा कहने लगे, विरुद्ध से युक्त भगवान् रामजी को देखकर नारदजी के मन में बड़ा सोच उत्पन्न हुआ।

मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥
ऐसे प्रभुहि बिलोकउं जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥

मेरा शाप अंगीकार करके रामजी अनेक प्रकार के दुःखों को सह रहे हैं। ऐसे प्रभु को जाकर देखूं, फिर ऐसा समय नहीं आयेगा।

यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहां प्रभु सुख आसीना॥
गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भांति बखानी॥

ऐसा विचारकर नारदजी हाथ में वीणा लिए हुए वहां गये, जहां प्रभु सुखपूर्वक विराजमान थे। रामचरित प्रेमपूर्वक कोमल वाणी से बहुत भांति से गाते और बखानते रहे।

करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई॥
स्वागत पूंछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे॥

दण्डवत् करते ही रामजी ने उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाये रहे। आपका आना अच्छा हुआ। इस प्रकार कुशल पुछकर अपने समीप बिठाया और लक्ष्मणजी ने भी आदर-पूर्वक उनके चरण धोये।

दो०—नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियं जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि॥ ६३॥

अनेक प्रकार से विनती कर प्रभ का प्रसन्न मन जान करके तब नारदजी कमल-समान हाथ जोड़ कर यह वचन बोले ॥ ६३ ॥

सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक ॥
देहु एक बर मागउं स्वामी। जद्यपि जानत अन्तरजामी ॥

हे रघुनाथजी ! आप तो परम उदार हो, अगम हो। हे स्वामी ! एक वर मांगता हूं, सो मुझे दीजिए। हे नाथ ! यद्यपि आप अन्तर्यामी हो और सेवक के हृदय की बात जानते हो।

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुं कि करउं दुराऊ ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागि। जो मुनिबर न सकहु तुम्ह मागी ॥

रामजी बोले, हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते हो, मैं अपने भक्त से कभी छिपाव नहीं करता हूं, हे मुनिवर ! कौन सी ऐसी वस्तु मुझको प्यारी लगी जिसको तुम मांग नहीं सकते।

जन कहुं कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउं करउं ढिठाई ॥

भक्तजन को कोई देने योग्य वस्तु मेरे पास नहीं है, अर्थात मैं सब कुछ दे सकता हूं, ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ना। तब नारद जी प्रसन्न होकर बोले कि ऐसा ही वर मांग कर यह ढिठाई करता हूं।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

यद्यपि प्रभु के नाम तो अनेक हैं वेद एक-से-एक को अधिक कहते हैं। तथापि हे नाथ ! आपका (राम) यह नाम सब नामों से अधिक है और आप पाप-रूपी पक्षियों के बाधक हो अर्थात पाप-नाशक हो।

दो०—राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुं भगत उर ब्योम ॥ ६४ ॥
एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरषु अति प्रभु पद नायउ माथ ॥ ६५ ॥

आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि हो, तारागणों के समान अपर नामों के सहित पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान राम-नाम भक्तों के हृदय-रूपी आकाश में निवास करे ॥ ६४ ॥

यह सुनकर कृपासिंधु रघुनाथजी ने नारद-मुनि से कहा कि ऐसा ही हो, तब नारदजी मन में बहुत प्रसन्न हुए और प्रभ के चरणों को मस्तक नवाया ॥ ६५ ॥

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥

अपने स्वामी रामजी को बहुत प्रसन्न जानकर फिर नारदजी कोमल वचन बोले हे रामचन्द्रजी ! मेरी प्रार्थना सुनिए, जब अपनी माया को भेजकर मुझे मोहित किया था।

तब बिबाह मैं चाहउं कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउं सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥

तब मैंने विवाह करना चाहा स हे प्रभु आपने किस कारणो! करने नहीं दिया ? यह सुनकर रामजी बोले, सुनो मुनि ! मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कहता हूं कि जो मुझको सब भरोसा छोड़ कर भजते हैं।

करउं सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहं राखइ जननी अरगाई ॥

मैं सदा उनकी रक्षा करता हूं, जैसे माता बालक का पालन करती है। अजान बालक जब दौड़ कर अग्नि और सर्प को पकड़ना चाहता है, तब माता उसको अलग करके रक्षा करती है।

प्रौढ़ भएं तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।

बड़े होने पर उसी पुत्र के ऊपर माता प्रीति तो करती है, परन्तु पिछली बात की तरह प्रीति नहीं करती, ज्ञानी हमारे बड़े बेटे के समान हैं और आमानी (मान रहित) दास छोटे बालक हैं।

जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहं काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुं ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥

जो छोटे बालक हैं, उन्हें हमारा और ज्ञानी जो बड़े बेटे हैं उनको अपना बल है, परन्तु काम, क्रोध, शत्रु दोनों का घात करने को निकट खड़े हैं यह विचार कर पण्डितजन मेरा भजन करते हैं और ज्ञान पाने पर भी भक्ति को नहीं त्यागते हैं।

दो०—काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कैं धारि।
तिन्ह महं अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥ ६६ ॥

काम, क्रोध, मद, लोभ ये सब मोह की प्रबल सेना है। उनमें अत्यन्त दारुण दुःख देने वाली माया रूपी स्त्री है ॥ ६६ ॥

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुं नारि बसंता ॥
जत तप नेम जलाश्रय भारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ॥

सुनो नारद मुनि ! वेद, पुराण और सन्त कहते हैं कि मोह-रूपी वन में स्त्री बसन्त ऋतु है। जप-तप, नियम-रूपी जलाशयों को स्त्री ग्रीष्म-ऋतु होकर सब सोख लेती है।

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहं सरदा सदा सुखदाई ॥

काम, क्रोध, अहंकार ईर्षा-रूपी मेढ़क हैं, स्त्री शरद-ऋतु की तरह सदा सुख देने वाली है। खोटी वासना कुमुदिनियों के समूह हैं, जिनको स्त्री शरद-ऋतु की तरह सदा सुख देने वाली है।

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥

सब धर्म कमल-समूह हैं, जिनको मूर्ख स्त्री हेमन्त-ऋतु होकर दुःख देती है फिर ममता-रूपी जवास (कांटेदार घास) के वन को स्त्री शिशिर-ऋतु के समान होकर पालती है।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अंधिआरी ॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥

पाप-रूपी उल्लू पक्षी के समूह को स्त्री अन्धेरी रात के समान सुख देने वाली है। बुद्धि, बल, शील, सत्य ये सब मछलियां हैं, इनको स्त्री वंशी (मछली पकड़ने के कांटे) के समान है यह चतुर लोग कहते हैं।

दो०—अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियं जानि॥ ६७॥

स्त्री अवगुणों (दोषों) की जड़, दुःख देने वाली और सब दुःखों की खान है। इस कारण यह दोष अपने मन में विचार कर हे मुनि! मैंने निवारण किया, अर्थात तुम्हारा विवाह नहीं होने दिया॥ ६७॥

सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीति॥

रघुनाथजी के वचन सुनकर नारदजी का शरीर पुलकायमान हो गया और नेत्रों में जल भर आया। नारदजी मन में कहने लगे कि कहो कौन से स्वामी की ऐसी रीति है कि सेवक पर इतनी ममता और प्रीति करे।

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद॥

जो ऐसे प्रभु को भ्रम छोड़ नहीं भजते हैं वे ज्ञान शून्य, मन्द बुद्धि और भाग्यहीन हैं फिर आदर सहित नारदजी बोले, हे शास्त्र ज्ञान में प्रवीण रामजी! मेरी प्रार्थना सुनिए।

संतन्ह के लच्छमन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊं। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊं॥

हे रघुवीरजी! हे भव-भीर भञ्जन! संसार के दुःखों को दूर करने वाले रामचन्द्रजी आप संतों के लक्षण को कहिए। सुनो मुनिराज! मैं सन्तों के गुण को कहता हूं। जिन गुणों से मैं उनके वश में रहता हूं।

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥

जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्षा इन छः विकारों को त्याग कर निष्पाप, कामना-रहित, अचल, अकिञ्चन, पवित्र और सुख के स्थान हैं। बड़े ज्ञानी, चाहना रहित मितभोगी सत्य सागर के कवि (कोविद) योगी अधर्म से सदा सावधान, सबको मान देने वाले, मद से हीन, धीरजधारी भक्ति मार्ग में परम चतुर होना चाहिए।

दो०—गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुं देह न गेह॥ ६८॥

गुणों के स्थान, संसार के दुःखों से रहित, निस्सन्देह और मेरे चरण-कमलों को छोड़ और उनको देह-गेह कुछ भी प्यारा नहीं है॥ ६८॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहीं त्यागहिं नींति। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीति॥

अपना गुण सुनते ही सकुचाते और पराया गुण सुनते ही प्रसन्न होते हैं तथा जो सम हैं, शीतल हैं और नीति को नहीं त्यागते हैं, सीधे स्वभाव हैं सभी से प्रीति करते हैं।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥

जप-तप-व्रत-दम (इन्द्रियों को जीतना) संयम (इन्द्रिय-निग्रह) नेम और गुरु, गोविन्द व ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम करते हैं। श्रद्धा, क्षमा, मित्रता, दया, प्रसनन्ता मेरे चरणों में प्रीति, निष्कपट भाव।

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥

वैराग्य, सत-असत का विचार, विनय विज्ञान, वेद और पुराणों में यथार्थ बोध, इन गुणों से युक्त सन्तजन होते हैं। पाखण्ड और मान, दम कभी नहीं करते हैं और भूलकर भी कुमार्ग में पांव नहीं देते हैं।

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥

सदा मेरी लीलाओं को गाते और सुनते हैं और बिना प्रयोजन ही पराये हित में लगे रहते हैं सुनो मुनि! साधुओं के जितने गुण हैं उतने तो सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते हैं।

छं०—कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे।
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रंग रंए॥

शारद और शेष सन्तों के गुण को नहीं कह सकते। यह सुनते ही नारदजी रामजी के चरण-कमल को पकड़ कर बोले कि हे प्रभु! धन्य हो। आप ऐसे दीनबन्धु और कृपालु हैं कि अपने भक्तों के गुण अपने मुख से कहे। इस प्रकार बारम्बार चरणों पर सिर रखकर नारदजी ब्रह्मलोक चले गये। तुलसीदास जी कहते हैं कि वे लोग धन्य हैं, जो सब आशाओं को छोड़कर हरि भगवान के रंग में रंगे हुए हैं॥ १४॥

दो०—रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥ ६९॥
दीप सिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥ ७०॥

रावण के शत्रु श्रीरामचन्द्रजी के पवित्र यश को जो लोग गावेंगे और सुनेंगे, वे बिना वैराग्य, जप और योग किये भी रामचन्द्र की दृढ़ भक्ति पावेंगे॥ ६९॥ दीपक की ज्योति के समान स्त्री का शरीर है, इसमें मन! तू पतङ्ग मत हो। काम और अभिमान छोड़कर रामजी का भजन और सदा सत्संग कर इसमें भलाई है॥ ७०॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसनेविमलविज्ञानवैराग्यसम्पादनो नाम तृतीयः सोपानः आरण्यकाण्डे सम्पूर्णः।

॥ इति आरण्यकाण्ड समाप्तः॥

श्रीगणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरित-मानस

चतुर्थ सोपान

किष्किन्धाकाण्ड

मङ्गलाचरण

श्लोक

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभा
शोभाढ्यो वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः॥ १॥

कुन्द के समान गौर वर्ण श्रीलक्ष्मणजी और नील-कमल के समान श्यामवर्ण श्रीराम हैं, दोनों बहुत सुन्दर, बहुत बलवान और विज्ञान के धाम हैं। दोनों शोभायमान हैं दोनों उत्तम धनुष धारण किए हैं, दोनों वेदों कहकर प्रशंशित हैं दोनों गोओं और ब्राह्मणों के प्यारे हैं अथवा माया को स्वीकार कर दोनों मनुष्य रूप धारण किये हैं, दोनों रघुवंश के श्रेष्ठ हैं निश्चय करके दोनों श्रेष्ठ धर्म वाले हैं। श्रेष्ठ धर्म रूपी मूर्ति के कवच हैं और सबके हितैषी हैं सीताजी को ढूंढ़ने में मन लगाये दोनों भाई वन मार्ग में जो विचर रहे हैं वे दोनों श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी निश्चय करके हमको भक्ति देने वाले हैं॥ १॥

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकी जीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥ २॥

ब्रह्म-रूपी समुद्र से उत्पन्न कलियुग के पापों को नाश करने वाला और अविनाशी श्रीमान शिवजी के सुन्दर चन्द्र मुख में सदैव शोभायमान संसार की सुन्दर, मधुर औषधि श्री जानकीजी का जीवन ऐसे श्रीराम नाम-रूपी अमृत को जो निरन्तर पान करते हैं, वे सुकर्म करने वाले पुरुष धन्य हैं॥ २॥

सो०—मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहं बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥
जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥

मुक्ति की जन्म-भूमि जानकर ज्ञान की खान पापों को नाश करने वाले जहां महादेव पार्वतजी निवास करते हैं, सो काशी कैसे न सेइये ॥ १ ॥ इन्द्र आदि सब देवतागण जिस हलाहल विष की ज्वाला से जले थे, उस महा विष को पीने वाले शिवजी को हे मन्द बुद्धि वाले मन ! क्यों नहीं भजता, शंकर के समान कृपा करने वाला कौन है ॥ २ ॥

आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया ॥
तहं रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा ॥

फिर रघुनाथजी पम्पा सरोवर से आगे चले और ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुंचे। मन्त्रियों सहित सुग्रीव जहां रहते थे, अतुल बल की सीमा राम और लक्ष्मणजी को आते देखा।

अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना ॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियं सयन बुझाई ॥

बालि के भय से बहुत ही डरे हुए सुग्रीवजी अत्यन्त भयभीत होकर कहने लगे कि सुनो हनुमान ! वे दोनों पुरुष बल, रूप के निधान हैं। तुम ब्रह्मचारी बन उनके समीप जाकर भेद जान मुझे इशारे से समझाकर कह देना।

पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला ॥

जो मन मैला (कपटी) बालि ने भेजा हो, तुरन्त भागूं और यह पर्वत छोड़ दूं, जो मन को मैला कर बालि ने भेजा हो तो तुरन्त पर्वत को त्यागकर भाग जाऊं।

बिप्र रूप धरि कपि तहं गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥

तब ब्राह्मण-रूप धरकर हनुमानजी वहां गये और मस्तक झुका पूछने लगे, आप सांवले और गौर शरीर वाले कौन हो ? जो क्षत्री रूप धारण किये, इस वन में वीरों की भांति घूम रहे हैं।

कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता ॥

हे स्वामी इस कठोर भूमि पर कोमल चरणों से चलते हैं सो किस कारण से इस वन में घूम रहे हो कोमल, मनोहर सुन्दर आपका शरीर है, वन में कठिन धूप और वायु को सहते हो।

की तुम्ह तीनि देव महं कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥

क्या आप तीनों देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में से कोई हो, या तुम दोनों नर-नारायण हो।

दो०—जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ॥ १ ॥

या आप जगत के कारण संसार को तारने वाले और पृथ्वी का भार उतारने वाले हो अथवा आप सब भवनों के स्वामी हैं, आपने मनुष्य का अवतार लिया है ॥ १ ॥

हंसि बोले रघुबंश कुमारा। बिधि कर लिखा को मेटन हारा ॥

हंसकर रामचन्द्रजी बोले, विधाता का लिखा कौन मेटने वाला है ?

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए ॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥

अयोध्या के महाराज दशरथजी के हम पुत्र हैं, पिता की आज्ञा मान वन में आये हैं, हमारा नाम राम और इनका नाम लक्ष्मण है, हम दोनों भाई हैं साथ में सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी।

इहां हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥

यहां उस विदेहराज की पुत्री को किसी राक्षस ने हर लिया है। हे विप्र! उसी को हम ढूंढ़ते फिरते हैं, अपना चरित्र हमने कह सुनाना, अब अपनी कथा समझाकर कहिए।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥

यह सुनते ही प्रभु को पहचान हनुमानजी चरण पर गिर पड़े। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित हो गया मुख से बोल नहीं आया और सुन्दर स्वरूप की रचना देखने लगे।

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयं निज नाथहि चीन्ही॥

फिर धीरज धरकर स्तुति की और अपने स्वामी को पहिचाने से हृदय में प्रसन्न हुए।

मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥
तव माया बस फिरउं भुलाना। ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

हे स्वामी मैंने अनजान होने से पूछा परन्तु आप कैसे मनुष्य की तरह पूछते हैं? आपकी माया के वश भूला हुआ फिरता हूं, इस कारण मैंने प्रभु को नहीं पहचाना।

दो०--एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीदबंधु भगवान॥ २॥

एक तो मैं मूर्ख मोह के वश में हूं। बानर होने से स्वाभाविक अज्ञानी अथवा कुटिल हृदय अज्ञान हूं, फिर हे दीनबन्धु भगवान! आपने मुझे बिसरा दिया॥ २॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायां मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥

हे राम! यद्यपि मुझमें बहुत से अवगुण हैं, परन्तु हे प्रभो! आपने अपने सेवक को भूल रकके भी नहीं त्यागा है। हे नाथ! जीव तो आपकी माया से मोहित है। उसका उद्धार आपकी ही कृपा से होता है।

ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउं नहिं कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥

तिस पर भी हे रघुनाथ! मैं आपकी दुहाई देकर कहता हूं कि मैं भजन का कुछ भी उपाय नहीं जानता हूं, जैसे पुत्र माता-पिता के भरोसे अशोच रहता है, ऐसे ही सेवक स्वामी के भरोसे अशोच रहे तो स्वामी को पालना पड़ता है।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

ऐसा प्रेमाकुल होकर चरणों पर गिर, कपट-रूप दूर हो अपना वानर रूप प्रकट हो गया। प्रीति हृदय में छा गई, तब रघुनाथजी ने उठाकर हृदय से लगाया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर शीतल किया।

सुनु कपि जियं मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ ॥

और बोले सुनो हनुमानजी ! तुम अपने मन में कुछ अपने को हठी मत मानो तुम मुझे लक्ष्मण से भी अधिक प्रिय हो। मुझे सब कोई समदर्शी कहते हैं, यह ठीक है, हमारे जो सेवक अनन्य गति हैं वे अधिक प्यारे हैं।

दो०–सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥ ३ ॥

हे हनुमानजी ! उसको अनन्य भक्त कहते हैं कि जिसकी बुद्धि ऐसी दृढ़ रहे और टले नहीं कि मैं सेवक हूं और यह सब चराचर मेरे भगवान की रूप-राशि हैं ॥ ३ ॥

देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयं हरष बीती सब सूला ॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई ॥

हनुमानजी स्वामी रामजी को प्रसन्न देख हृदय में प्रसन्न हुए और उनका सब दुःख जाता रहा। हे नाथ ! पर्वतों पर वानरों का स्वामी सुग्रीव रहता है वह आपका दास है।

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे ॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहं तहं मरकट कोटि पठाइहि ॥

हे नाथ ! उससे आप मित्रता कीजिए और दीन जान उसको अभय कीजिए। वह सीताजी की खोज करायेगा, जहां-तहां करोड़ों वानरों को भेजेगा।

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई ॥
जब सुग्रीवं राम कहुं देखा। अतिमय जन्म धन्य करि लेखा ॥

इस प्रकार सब कथा कहकर दोनों भाइयों को पीठ पर चढ़ा लिया, कुदका मार हनुमानजी पर्वत पर आ गये, जब सुग्रीव ने रामजी को देखा, तब अपने जन्म को बहुत ही धन्य समझा।

सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा ॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती ॥

आदर से चरणों में मस्तक नवाकर मिला, रामजी भी भाई सहित सुग्रीव से मिले। सुग्रीव के मन में इस प्रकार का विचार हुआ कि हे विधाता ! क्या मुझसे प्रीति करेंगे।

दो०–तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥ ४ ॥

तब हनुमानजी ने दोनों ओर की सब कथा समझाकर कही, अग्नि को साक्षी देकर दृढ़ प्रीति जोड़ी, अर्थात दोनों में बहुत दृढ़ प्रीति कराई ॥ ४ ॥

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाषा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी ॥

ऐसी प्रीति की कि कुछ अन्तर नहीं रखा, तब लक्ष्मण ने रामजी का चरित्र सुनाया तब सुग्रीव ने नेत्रों में आंसू भरकर कहा– हे नाथ ! जनकराज की पुत्री जानकीजी अवश्य मिलेंगी।

मंत्रिन्ह सहित इहां एक बारा। बैठ रहेउं मैं करत बिचारा ॥
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता ॥

यहां एक बार मैं मन्त्रियों सहित बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। आकाश मार्ग में मैंने देखा पराए वश में पड़ी बहुत विलाप करती हुई जाती थी।

राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी ॥
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥

राम-राम हा राम ऐसे पुकार कर हमारी ओर देख वस्त्र डाल दिया। वह वस्त्र रामजी ने मांगा, सो सुग्रीव ने दिया तब वस्त्र को हृदय से लगाकर रामजी ने बहुत शोक किया।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहउं सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥

तब सुग्रीव ने कहा, सुनो रघुनाथजी! सोच को त्याग दीजिये और मन में धीरज धरिये सब प्रकार से मैं सेवकाई करूंगा, जिस प्रकार जानकीजी आ मिलेंगी वही यत्न करूंगा।

दो०—सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ॥ ५ ॥

सखा सुग्रीव का कहना सुनकर परम कृपालु श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए और बोले, हे सुग्रीव तुम किस कारण वन में वास करते हो सो मुझसे कहो ॥ ५ ॥

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई ॥
मय सुत मायावी तेहि नाउं। आवा सो प्रभु हमरें गाऊं ॥

हे नाथ! बालि और मैं दोनों भाई हैं, दोनों भाइयों में जो प्रीति थी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हे नाथ! मयदानव का पुत्र मायावी नाम का दानव हमारे गांव में आया।

अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा ॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउं बंधु संग लागा ॥

आधी रात को नगर के द्वार पर पुकारा। बालि भी शत्रु के बल को नहीं सह सकता था। उसी समय दौड़ा बालि को देखकर वह भागा फिर मैं भी भाई के संग चला गया।

गिरिबर गुहां पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई ॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा ॥

एक बड़े पर्वत की गफा में वह दैत्य दौड़कर घुस गया तब बालि ने मुझको समझाकर कहा। पन्द्रह दिन तक मेरी राह देखना, जो न आऊं तो समझना कि मैं मारा गया।

मास दिवस तहं रहेउं खरारी। निसरी रुधिर धार तहं भारी ॥
तब मैं निज मन कीन्ह बिचारा। जाना असुर बन्धु कहं मारा ॥

हे रामजी! एक महीने के दिनों तक मैं वहीं रहा, तदुपरान्त जब एक बड़ी रुधिर की धार निकली, तब मुझको शंका हुई कि कदाचित भाई को मार डाला।

दो०—बालि महाबल अमित अति, समर न जीते कोय।
त्यहि मारेसि जो निश्चर, सो अब मारेहि मोय ॥ ६ ॥

बालि महा बलवान है जिसका प्रमाण नहीं, भयंकर समर में भी उसे कोई जीत नहीं सकता, उसको जिस राक्षस ने मारा, वह अब मुझको मारेगा ॥ ६ ॥

बाली हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहं चलेउं पराई ॥
पम्पापुर आयउं ततकाला। तब ब्याकुल मन बहुत बिहाला ॥

वालि को मार डाला है अब मुझे भी आकर मारेगा। यह समझ कर मैं उस गुफा के द्वार पर शिला रखकर भाग चला और तुरन्त पम्पापुर को आया। उस समय मेरा शरीर विकल और मन बहुत उदास था।

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं ॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियं भेद बढ़ावा ॥

मंत्रियों ने पम्पापुर को बिना राजा के देख मुझको बलपूर्वक राज्य दे दिया। बालि उस राक्षस को मार जब घर आया तब मुझको राजगद्दी पर बैठा देख अपने मन में भेद बढ़ाया।

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी ॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउं बिहाला ॥

शत्रु के समान मुझको बहुत ही मारा और सब धन तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया। हे कृपालु रघुनाथजी ! उसके भय से मैं सब लोकों में व्याकुल होता हुआ फिरा।

इहां साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउं मन माहीं ॥
सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला ॥

यहां मतङ्ग ऋषि के शाप के वश नहीं आता तो भी मन में डरता हूं। सेवक का दुःख सुनकर दीनदयालु रामजी के दोनों विशाल भुजदण्ड फड़क उठे।

दो०—सुनु सुग्रीव मारिहउं बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएं न उबरिहिं प्रान ॥ ७ ॥

रामचन्द्रजी बोले सुनो सुग्रीव ! मैं बालि को एक ही बाण से मारूंगा। ब्रह्मा और शिवजी की शरण जाने पर भी उसका प्राण नहीं बचेगा ॥ ७ ॥

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥

जो मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उनको देखने में भी बड़ा पाप होता है। अपना दुःख पर्वत के समान हो, तो भी धूल के समान जानो और मित्र का दुःख रज के समान हो तो उसको पर्वत के समान जानो।

जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ॥

जिसको ऐसी बुद्धि स्वभाव से उत्पन्न न हुई, वे शठ हठ करके क्यों मित्रता करते हैं, मित्र को खोटे मार्ग से हटाकर अच्छे मार्ग पर चलाये, अवगुणों को छिपाकर गुणों को प्रकाश करे।

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥

जो देते लेते हुए मन में शंका नहीं करते हैं और बल के अनुसार सदा हित करते हैं तथा मित्र की विपत्ति काल में सौ गुना प्रेम करते हैं, वेदों ने ये गुण सन्त और मित्र के कहे हैं।

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जा कर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥

जो आगे तो कोमल वचन बोलते हैं और पीछे बुराई करते हुए मन में खोटाई रखते हैं। हे भाई जिनका चित्त सांप की गति के समान है, ऐसे मित्र को त्याग देने में ही अच्छाई है।

दो०—मित्र मित्र सो प्रीति करि, हृदय आन मुख आन।
जाके मन बच प्रेम नहिं, दुरे दुराये जान॥ ८॥

मित्र, मित्र से प्रीति करते हैं परन्तु जिनके हृदय में कुछ और मन में कुछ और कहते हैं तथा जिनके मन और वाणी में प्रेम नहीं है और अपने कपट को छिपाते हैं वही खोटे मित्र हैं॥ ८॥

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

मूर्ख सेवक, कन्जूस राजा और खोटी स्त्री, कपटी मित्र ये चारों शूल के समान होते हैं। हे सखा सुग्रीव! मेरे बल से सोच करना छोड़ दो, सब भांति से तुम्हारा काम करूंगा।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥

सुग्रीव ने कहा सुनो रघुधीर! बालि महा बलवान और अति रणधीर है। तब सुग्रीव ने बालि के मारे हुए दुन्दुभी राक्षस के हाड़ और ताड़ का वृक्ष दिखा दिया, जिसे रामजी ने सहज ही गिरा दिया।

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥
बार बार नावइ पद सीसा। प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा॥

रामजी का बे प्रमाण बल देखा, सुग्रीव की प्रीति बढ़ी और बालि को मारने की भी प्रतीति हुई। सुग्रीव ने बारम्बार रामजी के चरणों में सिर झुकाया और प्रभु को जानकर कपिराज मन में बहुत प्रसन्न हुआ।

उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपां मन भयउ अलोला॥
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउं सेवकाई॥

ज्ञान उपजा, तब वह बोला हे नाथ! आपकी कृपा से मेरा मन स्थिर हो गया। सुख, सम्पदा, कुटम्ब और बड़ाई इन सबको छोड़कर आपकी सेवा करूंगा।

ए सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक।
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। माया कृत परमारथ नाहीं॥

यह सब राम-भक्ति के बाधक हैं, ऐसा आपके चरण सेवक सन्तजन कहते हैं। जगत में शत्रु, मित्र सुख, दुःख ये माया के रचे हुए हैं, इनमें परमार्थ नहीं है।

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥
सपनें जेहि सन होइ लराई। जागें समुझत मन सकुचाई॥

हे रामजी ! बालि तो हमारा परम हितकारी हुआ, जिसकी कृपा से सब दुःखों का नाश करने वाले आप मुझे मिले। हे रामजी ! यह संसार स्वप्नवत है। जैसे स्वप्न में किसी से लड़ाई हो तो जागने पर वह समझता है कि यह स्वप्न था और स्वप्न जानकर सकुचाता है।

अब प्रभु कृपा करहु एहि भांति। सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥
सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनु पानी ॥

अब हे प्रभो ! ऐसी कृपा करो, जिसमें सबको तजकर दिन-रात आपका भजन करूं। वैराग्य से युक्त सुग्रीव की वाणी सुनकर धनुषधारी रामजी हंसकर बोले।

जो कुछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई ॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत ॥

जो कुछ तुमने कहा वही सब सत्य है, परन्तु हे सखा ! मेरा वचन भी मिथ्या नहीं होगा। काग-भुशुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुणजी ! वेद कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी जगत को ऐसे नचाते हैं जैसे मदारी बन्दर को नचाता है।

लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा ॥

फिर कपिराज को लेकर रघुनाथजी धनुष-बाण हाथ में लेकर चले।

तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ॥
सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा ॥

तब रघुनाथजी ने सुग्रीव को युद्ध के लिए भेजा। रामजी का बल पाकर बालि के पास जाकर गरजा। सुनते ही बालि मारे क्रोध के घबड़ाकर दौड़ा, तब चरण पकड़कर उसकी स्त्री तारा ने बहुत समझाया।

सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा ॥
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥

हे स्वामी ! सुनो, जिनको सुग्रीव मिला है वे दोनों भाई बड़े पराक्रमी हैं। अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र लक्ष्मण और रामजी युद्ध में काल को भी जीत सकते हैं।

सोइ रघुबीर हृदय महं आनहु। छांड़हु मोह कहा मम मानहु ॥

उन रामचन्द्रजी को हृदय में धारण करो, मोह छोड़ दो, मेरा कहा मानो।

दो०—कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउं सनाथ ॥ ६ ॥

बालि ने कहा हे प्रिये ! तुम बड़ी डरपोक हो, सुनो रघुनाथजी समदर्शी हैं सबको एक समान देखते हैं जो कदाचित मुझको मारेंगे तो फिर सनाथ हो जाऊंगा ॥ ६ ॥

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी ॥
बालि देखि सुग्रीवहिं ठाढ़ा। हृदय क्रोध पुनि बहुबिधि बाढ़ा ॥

ऐसे कहकर बड़ा अभिमानी बालि सुग्रीव को तिनके के समान जानकर चला। बालि ने सुग्रीव को युद्ध के लिए खड़ा देखा, तब तो फिर हृदय में बहुत ही क्रोध बढ़ा।

भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महा धुनि गर्जा ॥

जब दोनों भाई युद्ध करने लगे तो बालि तड़पा और घूंसा मारकर बड़ी ध्वनि से गरजा।

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥

तब सुग्रीव विकल होकर भागा, घूंसा उसे वज्र के समान लगा, तब वह बोला हे रामजी ! मैंने जो कहा था कि यह मेरा भाई नहीं, मेरा काल है। यह सुनकर रामजी बोले—

एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउं सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥

हे सुग्रीव ! तुम दोनों भाई एक ही रूप के हो, इस भ्रम से मैंने उसको नहीं मारा। यह कह सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेरा, तब उसका शरीर वज्र हो गया और सब पीड़ा जाती रही।

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥

तब कपिराज के कण्ठ में फूलों की माला डाल, अधिक बल देकर फिर भेजा। फिर अनेक भांति से लड़ाई हुई और वृक्ष की ओट में से रामचन्द्रजी देखने लगे।

दो०—बहु छल बल सुग्रीव कर हियं हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥ १०॥

बहुत छल-बल करके सुग्रीव लड़ता रहा, जब हृदय में हार तथा भय मानकर रामजी का स्मरण करने लगा तब रामजी ने बालि के हृदय में बाण तानकर मारा॥ १०॥

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥
स्याम गात सिर जटा बनाएं। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएं॥

बाण के लगने से बालि विकल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, फिर प्रभु को आगे देखकर उठ बैठा। सांवला शरीर, जटाजूट बांधे, लाल नेत्र, धनुष पर बाण चढ़ाये।

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदयं प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥

बारम्बार रामजी को देख चरणों में मन लगाया और प्रभु को पहचान अपने जन्म को सफल माना। हृदय में प्रीति थी, परन्तु रामजी की ओर देख मुख से कठोर वचन बोला।

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥

हे गुसाईं ! धर्म के हेतु आपने अवतार लिया है, मुझको व्याधि की तरह क्यों मारा ? मैं बैरी हूं और सुग्रीव प्यारा है। हे नाथ ! इसमें क्या कारण है जो आपने मुझे मारा है ?

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥

यह सुन रामजी बोले हे शठ ! सुनले छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री, कन्या ये चारों समान हैं। इनको जो कुदृष्टि से देखे, उसको मारने में कुछ पाप नहीं होता है।

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

हे मूढ़ ! तुझको बड़ा अभिमान है कि अपनी स्त्री की शिक्षा पर भी ध्यान नहीं दिया। हे अधम अभिमानी मेरी भुजाओं के आश्रित, सुग्रीव को जानकर भी तू मारना चाहता था।

दो०–सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूं मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥ ११॥

बालि बोला हे सुन्दर स्वामी रामजी ! सुनो आपके सामने मेरी चतुरता नहीं चल सकती, परन्तु हे प्रभो ! यह तो बताइए कि अब भी मैं पातकी हूं जो अन्त समय में आप मेरे सम्मुख विद्यमान हैं॥ ११॥

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥

ऐसी कोमल बालि की वाणी को सुनते ही श्रीरामजी ने उसके सिर पर हाथ फेरा और बोले—तुमको अचल कर दूं। प्राणों को रखो, यह सुन बालि ने कहा, सुनो कृपानिधान !

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥

जन्म-जन्म मुनिजन यत्न करते हैं, परन्तु अन्त समय राम का नाम नहीं कहा जाता है। जिस राम के नाम के बल से अविनाशी महादेव काशी में सबको एक समान मुक्ति देते हैं।

मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥

वह राम साक्षात मेरे नेत्रों के सामने आये हैं। हे प्रभु ! फिर क्या ऐसा बनाव बनेगा ?

छं०–सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गवाहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुंक पावहीं॥
मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही॥ १॥

सो प्रभु मेरे नेत्रों के आगे हैं कि जिस प्रभु के गुण वेद नित्य ही नेति-नेति कहकर गाते हैं और मुनिजन वचन और मन को जीतते तथा इन्द्रियों को वश में कर उस प्रभु को कभी-कभी ध्यान में पाते हैं, सो हे प्रभो ! आपने मुझको अत्यन्त अभिमान वश जानकर कहा कि शरीर को रखो। भला ऐसा मूर्ख कौन होगा, जो हठ से कल्पवृक्ष काटकर वहां करील वृक्ष लगाकर जल सींचेगा।

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊं।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहं राम पद अनुरागऊं॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बांह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए॥ २॥

अब हे नाथ ! कृपा दृष्टि से मेरी ओर निहारिये और हे देव ! यह वर मांगता हूं, सो दीजिए कि अपने कर्म के वश जिस योनि में जन्म लूं, वहां राम के चरणों में प्रीति करने वाला होऊं और हे

प्रभो ! यह मेरा पुत्र विनय और बल में मेरे ही समान है, इसको कल्याण पद दीजिए, पुत्र अङ्गद की बांह पकड़ कर आप अपना दास बनाइये, यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है ॥ २ ॥

दो०—राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग ॥ १२ ॥

रामचन्द्रजी के चरणों में दृढ़ प्रीति कर बालि ने अपना शरीर इस प्रकार छोड़ दिया, जिस प्रकार फूलों की माला को हाथी अपने कण्ठ से गिरते हुए नहीं जानता है ॥ १२ ॥

राम बालि निज धाम पठावा । नगर लोग सब व्याकुल धावा ॥
नाना बिधि बिलाप कर तारा । छूटे केस न देह संभारा ॥

रामचन्द्रजी ने बालि को अपने लोक में भेज दिया, यह सुनकर नगर के सब लोग अति व्याकुल होकर दौड़ आये । तारा अनेक भांति से बिलाप करने लगी, सिर के केश खुल गये अपने देह की कुछ सुध न रही ।

पुनि पुनि तासु सीस उर धरई । बदन बिलोकि हृदय महं हतई ॥

बार-बार उसके सिर को छाती पर रखती और मुख देखकर छाती पीट लेती थी ।

मैं पति तुमहिं बहुत समुझावा । काल बिबस कछु मनहिं न आवा ॥
अंगद सन कछु कहन न पाये । बीचहिं सुरपुर प्रान पठाये ॥

हे पति ! मैंने तुमको समझाया परन्तु काल वश हो जाने से तुम्हारे मन में कुछ नहीं आया । अङ्गद से भी कुछ कहने नहीं पाये, बीच में ही देवलोक को प्राण पठा लिए ।

तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया ॥
छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ॥

तारा को पति शोक से दुःखी देखकर रघुनाथजी ने ज्ञान दिया और माया को हर लिया । पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पांच तत्वों से बना हुआ यह अधम शरीर है ।

प्रगट सो तनु तव आगें सोवा । जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ॥
उपज ग्यान चरन तब लागी । लीन्हेसि परम भगति बर मागी ॥

सो यह सब शरीर प्रयत्क्ष तुम्हारे आगे सो रही है और जीव नित्य है जो कभी मरता ही नहीं, फिर तुम किसके लिए रो रही हो ? जब ज्ञान उपजा, तब रामजी के चरणों में गिर पड़ी और परम भक्ति का वर मांग लिया ।

उमा दारु जोषित की नाईं । सबहि नचावत रामु गोसाईं ॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा । मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा ॥

शिवजी कहते हैं, हे पार्वती ! स्वामी रामजी काठ की पुतली की तरह सबको नचाते हैं, तब राम जी की आज्ञा पाकर सुग्रीव ने बालि का मृतक-कर्म विधान के अनुसार किया ।

राम कहा अनुजहि समुझाई । राज देहु सुग्रीवहि जाई ॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा । चले सकल प्रेरित रघुनाथा ॥

रामजी ने लक्ष्मण जी को समझाकर कहा कि अब जाकर सुग्रीव को राज्य दो । रघुनाथजी के चरणों में मस्तक झुकाकर श्रीरामजी के भेजे हुए हनुमान आदि सब चले ।

दो०-लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहं अंगद कहं जुबराज॥ १३ ॥

लक्ष्मणजी ने तुरन्त पुरजन और ब्राह्मणों को बुलाया और रामजी के समझाने के अनुसार सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दे दिया ॥ १३ ॥

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! श्रीरामजी के समान हितकारी संसार में गुरु, पिता, माता, भाई कोई भी नहीं है। देवता, मनुष्य, मुनि सबकी यह रीति रही है कि सब अपने स्वार्थ के लिए प्रीति करते हैं।

बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंता जर छाती॥
सोई सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥

जो बालि के भय से रात-दिन व्याकुल था। शरीर का रंग बिगड़ गया था, मारे चिन्ता के छाती जली जाती थी, उस सुग्रीव को वानरों का राजा बना दिया। रामचन्द्र जी का अत्यन्त दयावान् स्वभाव है।

जानतहूं अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई॥

जानकर भी ऐसे प्रभु को त्याग कर अन्य को भजते हैं, वे मनुष्य क्यों न विपत्ति के जाल में फंसे, फिर रामजी ने सुग्रीव को बुलाया और बहुत प्रकार से राजनीति सिखाई।

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउं दस चारि बरीसा॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउं निकट सैल पर छाई॥

प्रभ ने कहा, सुनो कपिराज सुग्रीव! चौदह वर्ष पुर को नहीं जाऊंगा और ग्रीष्म ऋतु बीत गई। वर्षा ऋतु आ गई तुम्हारे निकट प्रवर्षण पर्वत पर रहूंगा।

अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयं धरेहु मम काजू॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥

अंगद सहित तुम राज्य करो, परन्तु हृदय में सदा हमारे काम का स्मरण रखना, तब सुग्रीव अपने घर लौटे और रामचन्द्रजी प्रवर्षण पर्वत पर जाकर रहे, नित्य वर्षा होने के कारण उस पर्वत का नाम प्रवर्षण था।

दो०-प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाई।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ॥ १४ ॥

देवताओं ने पहले से ही उस पर्वत की गुफा (खोह) सुन्दर बना रखी थी कि कृपानिधि रामचन्द्र जी कुछ दिन यहां आकर वास करेंगे॥ १४॥

सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥
कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए॥

सुन्दर वन फूले हुए वृक्षों से शोभायमान हो रहा था, भौंरे मधु के लोभ से गुंजार रहे थे। सुन्दर कन्द-मूल-फल पत्र उत्पन्न हुए, जब वहां प्रभु रामचन्द्रजी आये।

देखि मनोहर सैल अनूपा । रहे तहं अनुज सहित सुरभूपा ॥
मंगल रूप भयउ बन तब ते । कीन्ह निवास रमापति जब ते ॥

मन को हरने वाले अनोखे पर्वत देखकर देवों के देव श्रीरामजी लक्ष्मण समेत वहां रहने लगे। वह वन तब से मंगल रूप हो गया, जब से वहां रमापति रामजी ने निवास किया।

मधुकर खग मृग तनु धरि देवा । करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा ॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई । सुख आसीन तहां द्वौ भाई ॥

भौंरे, पक्षी, मृग का रूप रख देवता, सिद्ध मुनि प्रभु की सेवा करने लगे। उस पर्वत पर एक पत्थर की चट्टान बहुत उज्जवल सुहावनी थी, उस पर दोनों भाई सुख पूर्वक विराजे।

कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति बिरति नृपनीति बिबेका ॥
बरषा काल मेघ नभ छाए । गरजत लागत परम सुहाए ॥

रामजी लक्ष्मणजी से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञान की अनेक कथाएं कहने लगे। वर्षा काल में मेघ आकाश में छा रहे हैं, सो गरजते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं।

दो०—लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहुं देखि ॥ १५ ॥

हे लक्ष्मण ! देखो मोरों के समूह मेघों को देखकर कैसे नाच रहे हैं, जैसे गृहस्थी पुरुष वैराग्य से प्रेम करने वाले विष्णु-भक्त (वैरागी वैष्णव) को देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ १५ ॥

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दमिनि दमक रह न घन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥

मेघ आकाश में चारों ओर से घिर भयंकर शब्द से गरजते हैं, सो सुन प्यारी के बिना मेरा मन डरता है, बिजली बादलों में ऐसे चमक रही है, जैसे खोटे मनुष्य की प्रीति ठहरती नहीं है।

बरषहिं जलद भूमि निअराएं । जथा नवहिं बुध बिद्या पाएं ॥
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसे ।

बादल पृथ्वी के समीप झुककर ऐसे बरसते हैं, जैसे पण्डित लोग विद्या पाकर झुक जाते हैं बूंदों की चोट को पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन सन्तजन सह लेते हैं।

छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई । जस थोरेहुं धन खल इतराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी । जनु जीवहि माया लपटानी ॥

छोटी नदी जल से भरकर ऐसे उतरा चली, जैसे थोड़े ही धन से दुष्ट बौरा जाते हैं, पृथ्वी पर जल पड़ने से ऐसा मैला हो जाता है, जैसे जीव को माया लिपट जाने से जीव मलीन हो जाता है।

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा । जिमि सद्‌गुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुंजाई । होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥

सिमट-सिमट जल सरोवरों में ऐसा भर गया है, जैसे अच्छे गुण सज्जनों में स्वयं ही आ जाते हैं। नदियों का जल ऐसे स्थिर हो जाता है, जैसे भक्तजन भगवान को पा अचल हो जाते हैं।

दो०–हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥ १६॥

हरी-हरी घास से आच्छादित हुई पृथ्वी हरी हो रही है, उसमें मार्ग ऐसे नहीं समझ पड़ता है, जैसे पाखंडियों के विवाद से सच्चे ग्रन्थ लोप हो जाते हैं॥ १६॥

दादुर धुनि चहु दिशा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥

मेंढकों की ध्वनि चारों ओर से ऐसी सुहावनी हो रही है, मानो वटशाला में ब्रह्मचारी वेद पढ़ रहे हों। बहुत से वृक्षों में नये पत्ते ऐसे निकल आये, जैसे साधन करने वाले के मन में ज्ञान उत्पन्न हो होता है।

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुं मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥

आक और जवासा बिना पत्तों के हो गये, जैसे अच्छे राज्यों में दुष्टों का उद्यम जाता रहता है, ढूंढने पर भी मार्ग में धूल ऐसे नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है।

ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥

खेत की हरी भरी पृथ्वी कैसे शोभायमान लग रही है, जैसे उपकारी की सम्पदा हो। रात के समय घोर अन्धकार में जुगनू चमकते हुए शोभायमान हो रहे हैं, मानो पाखण्डियों का समाज जुड़ा हो।

महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएं बिगरहिं नारीं॥
कृषी निराबहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

अधिक वर्षा होने से खेतों की क्यारी ऐसे फूट निकलती है, जैसे स्वाधीन होने से स्त्रियां बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेती को ऐसे निराव रहे हैं, जैसे बुद्धिजन मोह, मद और मान को त्याग देते हैं।

देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियं उपज न कामा॥

इस ऋतु में चकवा-चकवी ऐसे दिखाई नहीं देते हैं, जैसे कलयुग को पाकर वर्णाश्रम धर्म दूर हो जाते हैं, ऊसर पर बरसने पर तृण कैसे उत्पन्न हुआ, जैसे सन्तजन के हृदय में काम उत्पन्न नहीं होता।

बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहं तहं रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना॥

अनेक जन्तुओं से भरकर पृथ्वी ऐसे शोभित होती है, जैसे अच्छे राजा को पाकर प्रजा बढ़ती है। वर्षा होने से जहां तहाँ अनेक बटोही थककर ऐसे ठहर जाते हैं जैसे इन्द्रिय समूह, ज्ञान उत्पन्न होने से थकित हो जाता है।

दो०–कबहुं दिवस महं निबिड़तम कबहुंक प्रगट पतंग।
उपजे बिनसे ग्यान जिमि पाइ सुसंग कुसंग॥ १७॥

बादल घिरने से कभी तो दिन में अंधेरा हो जाता कभी सूर्य प्रगट हो जाता है, जैसे सत्संग पाकर ज्ञान का प्रकाश होता है और कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

दो०--कबहुं चलैं मारुत प्रबल, जहं तहं मेघ बिलाहिं।
जिमि कुपूत कुल ऊपजे, सम्पति धर्म नसाहिं ॥ १८ ॥

कभी प्रचंड पवन के चलने से जहां तहां मेघ ऐसे बिला जाते हैं, जैसे कुल में कपूत उत्पन्न होने से धन, धर्म दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥१८॥

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषां कृत प्रगट बुढ़ाई ॥

हे लक्ष्मण ! वर्षा ऋतु बीत गयी, अच्छी सुहावनी शरद ऋतु आ गई, कांस फूलने से सब पृथ्वी ऐसी शोभायमान हो रही है, मानो वर्षा-ऋतु की वृद्ध अवस्था प्रगट हुई है।

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा ॥

अगस्त्य मुनि के तारा ने उदय हो, मार्ग का जल ऐसा शोष लिया, जैसे लोभ को सन्तोष शोष लेता है। नदी सरोवरों का जल निर्मल हो, ऐसा सुहाता था, जैसे मद, मोह से दूर हो जाने से सन्त का हृदय निर्मल हो जाता है।

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए ॥

क्रम-क्रम से नदी, सरोवर का जल ऐसे सूख जाता है, जैसे ज्ञानीजन धीरे-धीरे ममता छोड़ते हैं। शरद-ऋतु जानकर खन्जन पक्षी ऐसे आ गये, जैसे समय पाकर मनुष्य के अच्छे कर्म फल देने को आ जाते हैं।

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी ॥
जल संकोच बिकल भइं मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना ॥

अब न कहीं कीच है, न धूल है, पृथ्वी ऐसी सुहाती है, जैसे नीति निपुण राजा को करणी प्रसंसनीय होती है। जल के थोड़े रहने से मछली आदि जल-जीव बहुत कुटुम्ब वाले धनहीन मनुष्य की तरह व्याकुल हैं।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥
कहुं कहुं बृष्टि सारदी थोरी। कोई एक पाव भगति जिमि मोरी ॥

बिना बादलों के निर्मल आकाश ऐसा शोभायमान है, जैसे भगवान के भक्त सभी आशाओं क त्याग कर प्रसन्न होते हैं। कहीं कहीं शरद ऋतु में ऐसी थोड़ी वर्षा होती है जैसे सैकड़ों में कोई एक मेरी भक्ति पाता है।

दो०--चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ॥ १९ ॥

राजा, तपस्वी, व्यापारी, भिखारी ये शरद ऋतु में नगर को छोड़ आनन्दपूर्वक अपने-अपने काम को चले जैसे हरि भक्त को पाकर चार आश्रम के मनुष्य अपने-अपने आश्रम को छोड़ देते हैं ॥ १९ ॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएं जैसा॥

गहरे जल में मछलियां ऐसी सुखी हैं, जैसे हरि की शरण में एक भी बाधा नहीं है। कमलों के फूलने से सरोवर कैसे शोभायमान हैं, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने से अधिक शोभायमान होते हैं।

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥

सुन्दर भौंरों के झुण्ड फूले हुए कमलों पर गुञ्जार रहे थे, सुन्दर पक्षी अनेक प्रकार की बोली बोल रहे हैं। चकवा-चकवी अपने मन में रात को देखकर कैसे दुःखी होते हैं, जैसे दुर्जन पराई सम्पत्ति को देखकर दुःखी होता है।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही॥
सरतातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥

बहुत प्यास होने के कारण पपीहा स्वाती नक्षत्र की वर्षा की बूंद के निमित्त ऐसे दुखी होता है, जैसे शिव का द्रोही सुख नहीं पाता है। शरद-ऋतु की धूप को रात्री में चन्द्रमा ऐसे हर लेता है, जैसे सन्तों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं।

देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विजद्रोह किएं कुल नासा॥

चकोरों का झुंड चन्द्रमा को ऐसे देखता हैं, जैसे हरि के भक्त हरि को पाकर देखते हैं। मच्छर और डांस शरद के शीत से ऐसे नाश हो गये, जैसे ब्राह्मण के साथ बैर करने से कुल का नाश हो जाता है।

दो०--भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥ २०॥

पृथ्वी पर वर्षा ऋतु में उत्पन्न हुए अनेक जीव भर रहे थे, वे शरद ऋतु को पाकर नष्ट हो गए, जैसे सद्गुरु के मिलने से अनेक प्रकार के सन्देह और भ्रम मिट जाते हैं॥ २०॥

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥
एक बार कैसेहुं सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुं आनौं॥

हे प्यारे लक्ष्मण! वर्षा तो बीत गई, निर्मल ऋतु आ गई, परन्तु सीताजी की सुधि अब तक न पाई, एक बार किसी तरह खोज पांऊं, तो काल को भी जीतकर पल-भर में ले आऊं।

कतहुं रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउं सोई॥
सुग्रीवहुं सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥

कहीं भी हो, जो जीती रही तो हे तात! उपाय करके उसको ले ही आऊंगा। सुग्रीव ने मेरी सुधि भुला दी, राज्य-कोष (खजाना), नगर स्त्री, को पाया।

जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहं काली॥
जासु कृपां छूटहिं मद मोहा। ता कहुं उमा कि सपनेहुं कोहा॥

जिस बाण से मैंने बालि को मारा है, उसी से कल उस मूढ़ को मारूंगा। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! जिस प्रभु की कृपा से मद और मोह छूट जाता है उसको क्या सपने में भी क्रोध हो सकता है?

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥

यह चरित्र ज्ञानी मुनि जानते हैं, जिन्होंने रघुनाथजी के चरणों में प्रीति मानी है। लक्ष्मण ने जब प्रभु को क्रोधवन्त जाना, तब धनुष चढ़ाकर हाथ में बाण लिया।

दो०—तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥ २१॥

तब कृपासिन्धु रघुनाथजी ने लक्ष्मणजी को समझाया कि हे भाई! कपिराज हमारा सखा है, उसको मारना उचित नहीं, केवल भय दिखाकर ले आओ॥ २१॥

इहां पवनसुत हृदयं बिचारा। राम काजु सुग्रीवं बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥

यहां हनुमानजी ने अपने मन में विचार किया कि सुग्रीव ने राज्य पाकर रामजी का काम भुला दिया। समीप जाकर चरणों में सिर को झुकाया और राजनीति को चारों प्रकार से सुग्रीव को कहकर समझाया।

सुनि सुग्रीवं परम भय माना। बिषयं मोर हरि लीन्हेउ ग्याना॥
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहं तहं बानर जूहा।

हनुमानजी के वचन सुन सुग्रीव ने बहुत भय माना, और कहा कि इन विषयों ने मेरा ज्ञान हर लिया। हे हनुमान! अब दूतों के समूह को जहां-तहां बानरों की सैना बुलाने भेजो।

कहहु पाख महुं आव न जोई। मोरें कर ता कर बध होई॥
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥

और कह दो कि जो एक पखवाड़ा (१५ दिन) में नहीं आवेगा तो मेरे हाथ से उसका बध होगा-तब हनुमानजी ने दूतों को बुलाया और सबका बहुत सम्मान किया।

भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई॥
एहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहं तहं कपि धाए॥

भय, प्रीति और नीति दिखलाई, तब वे चरणों में सिर झुकाकर चले। उसी समय लक्ष्मणजी नगर में आये, उनको क्रोधवन्त वेखकर वानर जहां-तहां भागे।

दो०—धनुष चढ़ाइ कहां तब जारि करउं पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार॥ २२॥

तब लक्ष्मणजी ने धनुष चढ़ाकर कहा कि मैं नगर को जलाकर भस्म कर दूंगा। तब नगर को व्याकुल देखकर बालि कुमार (अङ्गदजी) आये॥ २२॥

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बांह तेहि दीन्ही॥
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भयं अकुलाना॥

चरणों पर मस्तक झुकाकर विनती की, तब लक्ष्मणजी ने उसको अभय बांह दी लक्ष्मणजी को क्रोधवन्त कानों से सुन कपिराज सुग्रीव ने बहुत ही घबराकर कहा।

सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनतीं समुझाउ कुमारा॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना॥

हे हनुमान! तुम अपने संग तारा को ले, विनती करके लक्ष्मण को समझाओ। तारा को साथ ले हनुमानजी लक्ष्मणजी के पास आए, चरणों में प्रणाम कर प्रभु का सुयश वर्णन किया।

करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलंग बैठाए॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥

विनती करके राज-मन्दिर में लेकर आए, चरण धोकर पलंग पर बिठाया, तब सुग्रीव ने चरणों में सिर नवाया, तब बांह पकड़कर लक्ष्मणजी ने अपने कण्ठ (गले) से लगा लिया।

नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं॥

सुग्रीव बोले कि हे नाथ! विषय के समान और कुछ मन नहीं है, जो मुनियों के मन को भी क्षण में मोहित कर वेता है अथवा मुनियों के मन में मोह उत्पन्न कर देता है।

सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहुबिधि समुझावा॥
पवन तयन सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई॥

फिर हनुमानजी सब कथा सुनाई, जिस प्रकार दूतों के समूह भेजे गये। ऐसे नम्रता भरे वचन को सुनते ही लक्ष्मणजी ने सुख पाया और उसको बहुत प्रकार से समझाया।

दो०--हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगें करि आए जहं रघुनाथ॥ २३॥

तब सुग्रीवजी अंगद आदि वानरों को साथ लेकर प्रसन्न होकर चले। लक्ष्मणजी को आगे किया और जहां रघुनाथजी थे, वहां आये॥ २३॥

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी॥
अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया॥

रामजी के चरणों में सिर नवाया और हाथ जोड़ सुग्रीव ने कहा हे नाथ! मेरा कुछ अपराध नहीं है, हे देव! आपकी माया बहुत ही प्रबल है, वह तभी छुटती है जब आप दया करते हैं।

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥

हे स्वामी! विषय के वश में देवता, मनुष्य, मुनि सभी हैं, फिर मैं नीच पशु वानर हूं जो स्वभाव से ही अति कामी होते हैं। स्त्री के नेत्र बाण जिसके हृदय में नहीं लगे और जो क्रोध-रूपी घोर अंधेरी रात में जागा हो।

लोभ पांस जेहिं गर न बंधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपां पाव कोइ कोई॥

लोभ की फांसी से जिसने अपना गला नहीं बंधाया, हे रामजी! वह मनुष्य आपके समान है। यह गुण साधन करने से नहीं होते, केवल आपकी ही कृपा से कोई कोई पाते हैं।

तब रघुपति बोले मुसुकाई । तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई । जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई ॥

तब सुग्रीव के व्यङ्ग वचन सुनकर रघुनाथ जी मुस्कराये और बोले कि तुम मुझको ऐसे प्यारे हो जैसे भाई भरतजी हैं । वही उपाय मन लगाकर करो, जिस प्रकार से सीता की सुधि मिल जाए ।

दो०—एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ ॥ २४ ॥

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि झुण्ड के झुण्ड बानर आये, उसमें नाना प्रकार के रंग-बिरंगे महाबली वानर और रीछों के समूह दिखाई देने लगे ॥ २४ ॥

बानर कटक उमा मैं देखा । सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥
आइ राम पद नावहिं माथा । निरखि बदनु सब होहिं सनाथा ॥

महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! वानरों की सेना को मैंने देखा, वह मूर्ख है जो उस सैना की गिनती करना चाहे । सब बानर रीछ आकर रामजी के चरणों में मस्तक नवाते हैं और मुख देख सनाथ होते हैं ।

अस कपि एक न सेना माहीं । राम कुसल जेहि पूछी नाहीं ॥
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई । बिस्वरूप ब्यापक रघुराई ॥

ऐसा कपि सेना में एक भी न रहा, जिसकी रामजी ने कुशल न पूछी हो । यह कुछ प्रभु के लिए बड़ी बात नहीं है, क्योंकि रघुनाथजी सब में व्यापक है ।

ठाढ़े जहं तहं आयसु पाई । कह सुग्रीव सबहि समुझाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा । बानर जूथ जाहु चहुं ओरा ॥

जहां तहां आज्ञा पाकर खड़े हो गए, तब कपिराज ने सबको समझाकर कहा । रामजी का काम है और मेरा निबाह है, तुम सब वानरों के यूथ चारों ओर आओ ।

जनकसुता कहुं खोजहु जाई । मास दिवस महं आएहु भाई ॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएं । आवइ बनिहि सो मोहि मराएं ॥

जानकी को जाकर ढूंढो, हे भाइयों ! महीने भर में लौट आना । अवधि को मेटकर जो बिना सुधि पाये आवेगा, वह अवश्य हमारे हाथों से मारा जायेगा ।

दो०—बचन सुनत सब बानर जहं तहं चले तुरंत ।
तब सुग्रीवं बोलाए अंगद नल हनुमंत ॥ २५ ॥

सुग्रीव का वचन सुनते ही सब बानर तुरन्त जहां तहां चल दिये । तब कपिराज ने अङ्गद और हनुमान आदि को बुलाया और बोले ॥ २५ ॥

सुनहु नील अंगद हनुमाना । जामवंत मतिधीर सुजाना ॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू । सीता सुधि पूंछेहु सब काहू ॥

हे नील, अङ्गद, हनुमान और जामवन्त ! सुनो, तुम मतिधरि और सुजान हो । सब योद्धा मिलकर दक्षिण दिशा को जाओ और सीताजी की सुधि सब किसी से पूछो ।

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु संवारेहु॥
भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥

मन, वचन और कर्म से उपाय विचार कर करना, जिससे रामजी का काज बन जाय, सूर्य का पीठ से, अग्नि का हृदय से और स्वामी का सब छल छोड़ सेवन करना चाहिए।

तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव सोका॥
देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

माया को छोड़ परलोक का सेवन करना चाहिए, जिससे संसार के सब शोक मिट जाते हैं, हे भाई! शरीर धारण करने का वह फल है कि सब काम छोड़कर रामजी का भजन करिए, वही गुणी और वही बड़ा भाग्य वाला है, जो रामचन्द्रजी के चरणों का प्रेमी है।

आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥
पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥

आज्ञा पा चरणों में सिर नवा हृदय में स्मरण करते हुए सब चले। सबके पीछे हनुमान ने सिर नवाया, तब उन्हीं से काम पूरा होना जानकर रामचन्द्रजी ने अपने समीप बुलाया।

परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी॥
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥

सिर पर अपना कमल समान हाथ फेरा और अपना सेवक जानकर हाथ की अंगूठी उतार कर दी। बहुत प्रकार से सीता को समझा देना और बल विरह की बात कहकर तुम जल्दी लौट आना।

हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयं धरि कृपानिधाना॥
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥

हनुमानजी ने अपना जन्म सफल कर जाना और कृपानिधान रामजी को हृदय में धारण करके चले यद्यपि प्रभ सब बात जानते हैं। तदापि राजनीति के अनुसार नरलीला करते हुए नीति का पालन करते हैं।

दो०—चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥ २६॥

सब वन, नदी, और सरोवर और पर्वतों की कन्दराओं को खोजते हुए चले, सबका मन रामजी के काज में लग गया, शरीर का स्नेह बिसर गया॥ २६॥

कतहुं होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं॥

कभी-कभी किसी राक्षस से भेंट हो जाय, तो एक चपेट में प्राण ले लेते हैं। बहुत प्रकार से पर्वत और वन ढूंढते हैं, कोई मुनि मिले तो उसको सब घेर लेते हैं।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने॥
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना॥

एक दिन प्यास लगने से बहुत घबरा गये, कहीं जल नहीं मिलता, घने वन में मार्ग भूल गए तब हनुमानजी ने मन में अनुमान किया कि ये सब बिना जल के प्राण छोड़ना चाहते हैं।

चढ़ि गिरि सिखर चहूं दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा॥
चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं॥

तब पर्वत की चोटी पर चढ़कर चारों ओर देखा, तो वहां से पृथ्वी के बिल में एक कौतुक देखा। वहां चकवा-चकई, बगुला और हंस उड़ रहे हैं, बहुत से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं।

गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुं लै सोइ बिबर देखावा॥
आगें कै हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा॥

यह देख हनुमानजी उस पर्वत से उतर कर नीचे आये और सबको ले जाकर वह बिल दिखाया। तब सबने हनुमान जी को आगे कर लिया और बिल में घुसे, विलम्ब नहीं किया।

दो०—दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित कहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहं बैठि नारि तप पुंज॥ २७॥

वहां जाकर देखा कि एक सुन्दर बगीचा है, सरोवर में नाना प्रकार के कमल खिल रहे हैं और एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ है, उसमें एक बड़ी तपस्विनी स्त्री बैठी है॥ २७॥

दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूछें निज बृत्तांत सुनावा॥
तेहिं तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना॥

दूर ही से उसको उन सबने सिर नवाया, तब उसने सब हाल पूछा तो सबने अपना वृतान्त सुनाया। तब उसने कहा तुम सब जलपान करो और रस भरे सुन्दर अनेक फल खाओ।

मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए॥
तेहिं सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहां रघुराई॥

सबने स्नान किया और मधुर फल खाये, फिर सब उसके पास चले आये तब उसने अपनी कथा कह सुनाई और कहा—मैं अब वहीं जाऊंगी जहां रघनाथजी हैं।

मूदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥
नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा॥

अब तुम लोग अपने-अपने नेत्रों को बन्द कर लो और इस बिल को छोड़ कर जाओ। सीताजी को पावेंगे, मत डरो। जब सबने नेत्र बन्द किये, वे बीर क्या देखते हैं कि हम सब समुद्र के किनारे खड़े हैं।

सो पुनि गई जहां रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा॥
नाना भांति बिनय तेहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥

वह फिर वहां गई जहां रघुनाथजी थे और जाकर रामजी के चरण-कमलों में मस्तक नवाया। उसने अनेक प्रकार से रामजी की स्तुति की, तब प्रभु ने उसको अनुपम भक्ति दी।

दो०—बदरीबन कहुं सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस॥ २८॥

तब वह तपस्विनी प्रभु की आज्ञा सिर पर चढ़ा रामजी के दोनों चरणों को जो चरण ब्रह्मा और शिव करके वन्दनीय हैं, हृदय में धारण कर बदरी वन को चली गई॥ २८॥

इहां बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लएं करब का भ्राता॥

यहां समुद्र के तट वानर मन में विचारने लगे कि एक महीने की अवधि बीत गई, परन्तु रामजी का कुछ काम नहीं हुआ। सब मिलकर आपस में बातचीत करने लगे हे भाई! बिना सुधि लिए हम क्या करेंगे?

कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुं प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहां न सुधि सीता कै पाई। उहां गएं मारिहि कपिराई॥

अंगद ने नेत्रों में जल भरकर कहा कि अब दोनों प्रकार से हमारी मृत्यु हुई। यहां सीताजी की खोज नहीं पाई। वहां जाने से कपिराज सुग्रीव मारेंगे।

पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संसय नाहीं॥

पिता के मारने पर ही मुझको मारता, परन्तु रामजी के बचा लेने से मुझको रखा अथवा रामजी ने मुझको बचा लिया। सुग्रीव का निहोरा नहीं है।

अंगद बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा॥
छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस बचन कहत सब भए॥

वीर कपि अंगद के वचन सुनकर बोल तो नहीं सके परन्तु नेत्रों से जल बहने लगा। एक क्षण के लिए सब वानर शोक में मग्न हो गये, फिर सब इस प्रकार कहने लगे—

हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना। नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना॥
अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥

हे चतुर युवराज! हम सीताजी की बिना सुधि लिए नहीं जायेंगे। ऐसा कहकर सब वानर लवण समुद्र (क्षीर समुद्र) के किनारे जाकर कुश बिछाकर बैठे।

जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी॥

बारम्बार अंगद ने सबसे कहा कि मरण हुआ इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। तब जामवन्त ने अंगद का दुःख देखकर विशेष उपदेश की कथा कही।

तात राम कहुं नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥

हे तात! रामजी को मनुष्य मत जानो, उनको निर्गुण पारब्रह्म अजित और अजन्मा मानो। हम सब उनके सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं जो सदैव सगुण ब्रह्म में प्रीति करते हैं।

दो०—निज इच्छां प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहं रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥ २९॥

अपनी इच्छा से प्रभु ने देवता, ब्राह्मण, गौवों की रक्षा और पृथ्वी का भार उतारने के निमित्त अवतार लिया है, सबको उचित हैं कि मोक्ष आदि सुखों को छोड़ सगुण-रूप श्रीरामचन्द्रजी की उपासना में मग्न हो गये॥ २९॥

एहि बिधि कथा कहहिं बहु भांती। गिरि कंदरां सुनी संपाती॥
बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहि अहार दीन्ह जगदीसा॥

इस प्रकार अनेक भांति की कथा कही, वहां पर्वत की गुफा में जटायु के बड़े भाई सम्पात्ति ने राम कथा सुनी उसने बाहर निकल वानरों को देखा और कहने लगा, आज जगदीश्वर ने भोजन दिया है।

आजु सबहि कहं भच्छन करउं। दिन बहु चले अहार बिनु मरऊं॥
कबहुं न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा॥

आज इन सबका भक्षण करूंगा, बहुत दिन बीत गये बिना भोजन के मरा जाता हूं। कभी पेट भर भोजन नहीं मिला, इसलिए आज ब्रह्मा ने एक ही बार दे दिया है।

डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥
कपि सब उठे गीध कहं देखी। जामवंत मन सोच बिसेषी॥

गीध के वचन सुन सब वानर डर गये और कहने लगे कि अब हमने जाना कि मृत्यु निश्चय होगी, सब वानर सम्पाति गीध को देख उठे, जामवन्त के मन में बड़ा सोच हुआ।

कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायु सम कोउ नाहीं॥
राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़भागी॥

अंगद मन में विचारने लगे कि गीधराज जटायु धन्य हुआ जिसके समान कोई नहीं। रामजी के कार्य निमित्त शरीर त्याग कर बैकुण्ठ को गया। उससे अधिक परम बड़भागी कौन है ?

सुनि खग हरष सोक जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥
ताहि देखि कपि चले पराई। ठाढ़ कीन्ह तिन शपथ दिवाई॥

सम्पाति गीध ने हर्ष शोक से युक्त वाणी सुनकर वानरों के निकट आया, उसको देख कपियों ने भय माना। सम्पाति को देख वानर भागने लगे तब उनको रामजी की सौगन्ध दिलाकर खड़ा किया।

तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥
सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहु बिधि बरनी॥

उनको निर्भय कर समीप जाकर जटायु का हाल पूछा तब वानरों ने जटायु और अपने आने की कथा सुनाई। सम्पाति ने जब अपने भाई का मरण सुना, तब रघुनाथजी की अपार महिमा बहुत भांति से वर्णन की।

दो०—मोहि लै जाहु सिंधुतट देउं तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥ ३०॥

मुझे समुद्र के तट पर ले चलो मैं उस जटायु को जलाञ्जलि दूंगा और तुम लोगों की सहायता मैं वचन से करूंगा। अवश्य तुम जानकीजी को पाओगे, जाकर ढूंढ़ो॥ ३०॥

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥

समुद्र के तट पर अपने छोटे भाई की क्रिया करके सम्पाति अपनी कथा सुनाने लगे। हे वीर बन्दरों! सुनो मैं और जटायु दोनों पहले युवा अवस्था में आकाश में उड़ते हुए सूर्यदेव के निकट पहुंच गये।

तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा ॥
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउं भूमि करि घोर चिकारा ॥

जटायु तेज नहीं सह सका सो लौट आया, मैं अभिमानी सूर्य के समीप जाने लगा। मेरे पंख सूर्य नारायण के अपार तेज से जल गये और मैं बहुत ही चिल्लाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही ॥
बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देह जनित अभिमान छड़ावा ॥

तब एक मुनि चन्द्रमा नामक वहां थे, उनको मुझे देखकर दया लगी, उन्होंने मुझको बहुत प्रकार से ज्ञान सिखाया और देह से उत्पन्न हुए अभिमान को छड़ाया।

त्रेतां ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही ॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिलें तैं होब पुनीता ॥

और बोले त्रेता युग में परब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे और उनकी स्त्री को राक्षसराज हरेगा, उसको ढूंढने के लिए प्रभु दूतों को भेजेंगे, उनके मिलने से तुम पवित्र हो जाओगे।

जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता ॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू ॥

तुम्हारे पंख जम जायेंगे, चिन्ता मत करो। उन्हें तुम सीताजी को दिखा देना। उन मुनि की वाणी सत्य हुई, अब मेरा वचन सुनकर प्रभु का कार्य करो।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहं रह रावन सहज असंका ॥
तहं असोक उपबन जहं रहई। सीता बैठि सोच रत अहई ॥

चित्रकूट पर्वत पर लंकापुरी बसती है। उसमें रावण सहज स्वभाव से निडर रहता है उस लंका में अशोक वाटिका है, वहां सीताजी बैठी हुई सोच करती रहती हैं।

दो०—मैं देखउं तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउं न त करतेउं कछुक सहाय तुम्हार ॥ ३१ ॥

मैं देखता हूं, तुम नहीं देख सकते, क्योंकि गीध की दृष्टि अपार होती है, मैं तो अब बूढ़ा हो गया हूं, नहीं तो मैं तुम्हारी कुछ सहायता करता ॥ ३१ ॥

जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर ॥
जो कोइ करै राम काज आजू। तेहि सम धन्य आन नहिं आजू ॥

जो तुम सबमें से सौ योजन (चार सौ कोस) समुद्र लांघ जाय और बहुत चतुर हो, सो रामचन्द्रजी का कार्य करे, उसके समान आज कोई भी दूसरा धन्य नहीं है।

मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपां कस भयउ सरीरा ॥

मुझको देखकर मन में धीरज करो, देखो रामजी की कृपा से कैसा शरीर हो गया।

तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदयं धरि करहु उपाई ॥
पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं ॥

पापी भी जिस प्रभु का नाम स्मरण करते हैं, वे अत्यन्त अपार सागर से पार हो जाते हैं। उस प्रभु के दूत तुम लोग काहिली छोड़कर रामजी को हृदय में धारण कर उपाय करो।

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्ह कें मन अति बिसमय भयऊ॥
निज निज बल सब काहूं भाषा। पार जाइ कर संसय राखा॥

शिवजी कहते हैं हे पार्वती! ऐसा कहकर सम्पाति चला गया, तब सबके मन बड़ा आश्चर्य हुआ। अपना-अपना बल सब किसी ने कहा, परन्तु समुद्र के पार जाने को संदेह रखा।

जरठ भयउं अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा॥
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउं बल भारी॥

तब जामवन्त ने कहा - मैं बूढ़ा हो गया हूं शरीर में पहले का सा बल लेशमात्र भी नहीं रहा जिस समय हरि भगवान् का वामन अवतार हुआ, तब मैं तरुण और बलवान था।

दो०—बलि बांधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभुय घरी महं दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥ ३२॥

राजा बलि को बांधते समय जब प्रभु वामनजी बढ़े, उस शरीर का वर्णन नहीं किया जा सकता, उस समय मैने दो घड़ी में सात प्रदक्षिणा दी थी, अर्थात सात बार परिक्रमा की॥ ३२॥

अंगद कहइ जाउं मैं पारा। जियं संसय कछु फिरती बारा॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥

अंगदजी कहने लगे कि समुद्र पार मैं कर सकता हूं, परन्तु लौटती बार कुछ सन्देह है। जामवन्त ने कहा—आप सब लायक हैं, आप सबके स्वामी हैं, हम आपको कैसे भेज देवें।

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥

फिर जामवन्त कहने लगे सुनो, हनुमान बलवान तुम चुप क्यों साध रहे हो। तुम तो पवन के पुत्र हो, पवन के समान तुममें बल है, बुद्धि, ज्ञान तथा विज्ञान के निधान हो।

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥

हे तात! जगत में वह कौन सा कठिन काम है जो तुमसे नहीं हो सकता, रामचन्द्रजी के कार्य के निमित्त तुम्हारा अवतार है, यह सुनकर हनुमानजी पर्वत के आकार के हो गये।

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुं अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउं जलनिधि खारा॥

सुवर्ण के समान रंग, तेज से शरीर शोभायमान हो गया, मानो पर्वतराज सुमेरु पर्वत हो। सिंह के समान बारंबार गर्जकर कहा—इस क्षीर समुद्र को जीत ही लूं या लांघ जाऊं।

सहित सहाय रावनहि मारी। आनउं इहां त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूंछउं तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥

सहायकों समेत रावण को मार यहां चित्रकूट पर्वत को उखाड़ लाऊं। हे जामवन्त! मैं तुमसे पूछता हूं कि मुझको उचित शिक्षा दीजिए जिससे कि लंका में जाकर मैं क्या करूं।

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥

जामवन्त बोले हे प्यारे हनुमान ! लंका में जाकर तुम इतना काम करो कि सीताजी को देख लौट आओ और सुधि का समाचार कहो, तब अपनी भुजाओं के बल से कमल-नयन रामजी के कौतुक के निमित्त वानरों की सेना अपने संग लेकर लंका पर चढ़ाई करेंगे ।

छं०—कपि सेन संग संघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं ।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई ।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥ ३ ॥

वानरों की सेना संग लेकर निशाचरों का संहार कर रामजी सीताजी को लायेंगे और तीनों लोकों को पवित्र करने वाले सुन्दर यश को देवता, मुनि, नारद आदि बखान करेंगे जिस राम, सुयश को सुनते गाते, कहते और समझते हुए मनुष्य परम-पद पाते हैं, उसी राम सुयश को रघुनाथजी के चरण-कमलों के भ्रमर तुलसीदासजी गान करते हैं ॥ ३ ॥

दो०—भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ॥ ३३ ॥

रघुनाथजी का यश संसार-रूपी रोग को औषधि-रूप है, जो नर और नारी रामजी का यश सुनते हैं, उनके सब मनोरथ शिवजी सिद्ध करते हैं ॥ ३३ ॥

सो०—नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक ।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक ॥ ३ ॥

नील-कमल के समान श्याम शरीर, करोड़ों कामदेव से भी अधिक शोभा वाले, ऐसे उन श्रीरामचन्द्रजी का गुणानुवाद सुनना चाहिए, जिसका नाम पाप पक्षियों के नाश करने को बधिक के समान है ॥ ३ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलविज्ञानवैराग्यसम्पादनो नाम चतुर्थः सोपानः किष्किन्धाकाण्डे सम्पूर्णः ।

॥ इति किष्किन्धाकाण्ड समाप्तः ॥



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरित-मानस

पञ्चम सोपान

सुन्दरकाण्ड

मङ्गलाचरण

श्लोक

शान्तं शास्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ॥ १ ॥

शान्त अर्थात विशुद्ध सत्य वाले, आदि व अन्त रहित, प्रमाण रहित, निष्पाप, मोक्ष और शान्ति के देने वाले, सदैव ब्रह्मा, शिव और शेष करके सेवनीय, वेदान्त से जानने योग्य, सर्वव्यापी राम जिनका नाम है, जगत् के ईश्वर, इन्द्रादिक देवताओं के गुरु, माया करके मनुष्य रूप धारण किये हुए, साक्षात् हरि, दयानिधि रघुवंश में श्रेष्ठ, राजाओं में शिरोमणि ऐसे श्रीरामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥ २ ॥

हे रघुनाथ ! हमारे हृदय में और कोई इच्छा नहीं है । यह मैं सत्य कहता हूं, आप सब जगत् के अन्तःकरण के आत्मा है । हे रघुश्रेष्ठ भगवन् ! मुझको अपनी पूर्ण भक्ति दीजिए और मेरा मन काम आदि दोषों से रहित कीजिए ॥ २ ॥

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥ ३ ॥

अतुलित बल के स्थान, सुमेरु पर्वत के समान, सुन्दर शरीर वाले, राक्षस-रूपी वन के जलाने को अग्नि-रूप, ज्ञानवानों में अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी रघुनाथजी के श्रेष्ठ दूत श्रीहनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ॥
तव लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई ॥

जामवन्त के सुहावने वचन सुनकर हनुमानजी के हृदय को बहुत प्यारे लगे। हे भाइयों तब तक दुःख सहकर और कन्द मूल फल खाकर मेरी राह देखना।

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी ॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुं माथा। चलेउ हरषि हियं धरि रघुनाथा ॥

जब तक सीताजी को देखकर आऊं, रघुनाथजी का यह कार्य होगा, क्योंकि मेरा मन बहुत प्रसन्न हो रहा हैं। ऐसे कहकर सबको मस्तक झुकाकर हृदय में श्रीरघुनाथजी का स्मरण कर प्रसन्नता से चले।

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर ॥
बार बार रघुबीर संभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी ॥

समुद्र के किनारे एक सुन्दर पर्वत था, खेल से ही कूदकर उसके ऊपर चढ़ गये। बार-बार रामचन्द्रजी का ध्यान कर महाबली हनुमानजी बड़े वेग से तड़प कर चल दिये।

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता ॥

जिस पर्वत पर हनुमानजी चरण दें, वह तुरन्त पाताल चला जाये 'सो चलि गयउ पाताल तुरन्ता' जिस पर्वत पर पवनपुत्र चरण रखकर कूदें, वह तुरन्त पाताल में धंस गया।

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भांति चलेउ हनुमाना ॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥

जैसे रामजी का सफल बाण जाता है, उसी भांति हनुमानजी चले। समुद्र ने रामजी का दूत विचार कर कहा कि हे मैनाक ! तुम हनुमानजी का श्रम हरने वाले हो।

सो०—सिन्धु बचन उर धारि, तुरत उठे मैनाक तब।
कपि कहं कीन्ह जुहारी, बारि बारि कर जोरिकै ॥ १ ॥

तब समुद्र का वचन हृदय में रखकर तुरन्त मैनाक पर्वत उठा और बार-बार हाथ जोड़कर [illegible] को प्रणाम किया ॥ १ ॥

दो०—हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहां बिश्राम ॥ १ ॥

हनुमानजी ने उस पर हाथ रखकर बारंबार प्रणाम किया और कहा कि रामचन्द्रजी का काम किये बिना मुझको विश्राम कहां है ॥ १ ॥

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुं बल बुद्धि बिसेषा ॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता ॥

हनुमानजी को जाते हुए देवताओं ने देखा तो उनके बल, बुद्धि की विशेषता जानने की इच्छा की। सुरसा नाम सांपों की माता को भेजा, उसने आकर हनुमानजी से यह बात कही।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥

आज देवताओं ने मुझको भोजन दिया है, यह सुनकर हनुमानजी ने हंसकर कहा। रा[illegible] काम कर लौटकर आऊंगा और सीताजी की सुधि प्रभु को सुनाऊंगा।

तब तव बदन पैठिहउं आई। सत्य कहउं मोहि जान दे माई॥
कवनेहुं जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥

तब तुम्हारे मुंह में आकर बैठूंगा, सच कहता हूं हे माता! मुझको जाने दो। किसी [illegible] नहीं जाने देती, ऐसा जानकर हनुमानजी ने कहा—मुझको क्यों नहीं खा लेती।

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥

एक योजना अपना मुख फैलाया, तब हनुमानजी ने उससे दूना दो योजन का अपना शरी[illegible] दिया। तब उसने सोलह योजन मुख फैलाया, तब हनुमानजी बत्तीस योजन के हो [illegible]

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥

जैसा-जैसा सुरसा ने मुख बढ़ाया, उससे दूना रूप हनुमानजी ने दिखाया, जब उसने [illegible] किया, तब हनुमानजी ने बहुत छोटा सा रूप रख लिया।

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥

सुरसा के मुख में घुस कर फिर बाहर आए और सिर झुकाकर विदा मांगी, तब वह [illegible] देवताओं ने मुझे जिस निमित्त भेजा था, सो तुम्हारी बुद्धि और बल का भेद मैंने पाया।

दो०—राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥ २॥

रामजी का कार्य करोगे, तुम बलवान और बुद्धि-निधान हो। यह आशीर्वाद [illegible] गई, तब हनुमानजी प्रसन्न होकर चले॥ २॥

निसिचरि एक सिंधु महुं रहई। करि माया नभु के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै [illegible]॥

एक राक्षसी समुद्र में रहती थी, वह छल करके आकाश के पक्षियों को पकड़ लेती [illegible] जो आकाश में उड़ते हो, तो जल में उनकी परछाहीं देखकर पकड़ लेती।

गहइ छाहं सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान कहं कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥

छाया पकड़ ले तो वह नहीं उड़ सकता, इस प्रकार सदैव आकाश में उड़ते पक्षियों को [illegible] वही छल हनुमानजी से किया, उसका कपट हनुमानजी ने फौरन पहचान लिया।

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहां जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥

सको चरण प्रहारों से मारकर पवनपुत्र और मतिधीर हनुमानजी समुन्द्र के पास पहुंच गए। वहां न की शोभा देखी, जिसमें मधु के लोभ से भ्रमर गुञ्जार रहे थे।

ना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
ल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥

अनेक वृक्ष फल-फूलों से शोभायमान थे, पक्षी और मृग आदि पशुओं के झुण्ड देखकर मन को । एक बड़ा पर्वत आगे देखकर उस पर कूदकर निडर होकर चढ़ गये।

न मछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥

वजी कहते हैं कि हे पार्वती! यह कुछ कपि की बड़ाई नहीं, किन्तु यह भगवान श्रीरामचंद्रजी है, जो काल को भी खा सकता है।

गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥
अति उतङ्ग जल निधि चहुं पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥

पर्वत पर चढ़कर हनुमानजी ने लंकापुरी देखी, उसमें अवर्णनीय एक बहुत बड़ा गढ़ बना था। लंकापुरी बहुत ऊंची थी, उसके चारों ओर समुद्र है। सोने के कंगूरे बहुत ही जगमगा

कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥ १॥

स्वर्ण का कोट अनेक रंग की मणियों से जड़ा हुआ बहुत बड़ा लम्बा चौड़ा शोभायमान है। चौराहे मार्ग और गलियों से नगर बहुत भांति सुन्दर बना हुआ और हाथी, घोड़े, खच्चर इनके दल व रथों के समूह को कौन गिन सकता है और अनेक रूप के महाबली राक्षसों के झुण्ड वर्णन करते नहीं बनता॥ १॥

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुं माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥ २॥

वन, बाग, बगीचा, फुलवारी, सरोवर कुआं, बावड़ी शोभायमान हैं और मनुष्य, नाग, देवता की कन्याएं अपने रूप से मुनियों के मन को भी मोहित करती हैं तथा कहीं अत्यन्त बलवान पर्वत समान बड़ी देह वाले मल्ल गरजते हैं अनेक अखाड़ों में अनेक भांति से लड़ते हुए एक-दूसरे को ललकारते और डपटते हैं॥ २॥

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुं दिसि रच्छहीं।
कहुं महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥ ३॥

भयंकर शरीर वाले करोड़ों योद्धा यत्न करके नगर के चारों ओर से रखवाली करते हैं। कहीं महिष, मनुष्य, गाय, गधा, बकरा और पक्षियों को राक्षस भक्षण करते हैं और तुलसी दास जी ने इनकी कथा संक्षेप में कही कि ये सब रघुनाथजी के बाण-रूपी तीर्थ में अपना अपना शरीर छोड़कर शुद्ध गति को प्राप्त होंगे। 'रघुबीर शर तीरथ सरित तनु त्याग गति पइहैं सही' रामचंद्रजी के बाण रूपी तीर्थ की नदी में देह छोड़कर मुक्ति को पावेंगे। कहीं ऐसा पाठ भी है ॥ ३ ॥

दो०–पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह विचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ॥ ३ ॥

लंकापुरी के रखवाले बहुत हैं, यह देखकर हनुमानजी ने मन में विचार किया कि बहुत छोटा-सा रूप धारण करूं और रात्री के समय नगर में प्रवेश करूं ॥ ३ ॥

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥

मच्छर तथा बिलाव का रूप रखकर हनुमानजी नर-हरि का स्मरण कर लंका में प्रवेश करने को चले। लंकिनी नाम की एक राक्षसी थी, वह बोली मेरा निरादर कर कहां जाता है?

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहां लगि चोरा ॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी ॥

हे मूर्ख तू मेरा भेद नहीं जानता, लंका का चोर ही मेरा भोजन है यह सुन हनुमानजी ने उसे एक घूंसा ऐसा मारा कि रुधिर वमन करती हुई वह पृथ्वी पर गिर पड़ी।

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका ॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥

वह लंका फिर संभल कर उठी और हाथ जोड़ शंका सहित प्रार्थना करने लगी, जब रावण को ब्रह्माजी ने वर दिया, तब चलते समय उन्होंने मुझको यह पहचान बतला दी थी कि—

बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे ॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउं नयन राम कर दूता ॥

जब वानर के मारने से व्याकुल हो जाय, तब जान लेना कि राक्षस मारे जायेंगे। हे तात! मेरा बड़ा भारी पुण्य है, जो नेत्रों से रामजी के दूत को देखा।

दो०–तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥ ४ ॥

हे प्यारे! स्वर्ग और मोक्ष सुख तराजू के एक पलड़े में रखे और दुसरे पलड़े में लवमात्र को सुख रखे, तो स्वर्ग सुख और मोक्ष सुख मिल करके भी उसके समान नहीं हो सकते, जो सुख लव के सत्संग में है ॥ ४ ॥

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयं राखि कोसलपुर राजा ॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥

नगर में प्रवेश कर रामजी को हृदय में धारण करते हुए सब कार्य कीजिये। उससे विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगता है, अग्नि शीतल हो जाती है।

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

भारी सुमेरु पर्वत उसको रेणु के समान हो जाता है, जिसको श्रीरामजी कृपादृष्टि से देखते हैं। बहुत छोटा सा रूप रखकर और भगवान का स्मरण करके हनुमानजी नगर में घुसे।

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहं तहं अगनित जोधा॥
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥

मन्दिर-मन्दिर प्रति ढूंढ डाला जहां तहां अगणित योद्धाओं को देखा। रावण के मन्दिर में गए, वह राज-मन्दिर बहुत रमणीक था कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सयन किएं देखा कपि तेही। मंदिर महुं न दीखि बैदेही॥
सोचे लाग कहां अब जाऊं। कहां दरश सीताकर पाऊं॥

वहां हनुमानजी ने रावण को सोते देखा और उस मन्दिर में जानकीजी को न पाकर सोचने लगे कि अब कहां जाऊं और सीता का दर्शन कहां पाऊं।

निशिचर घोर भयानक रहहीं। सीता सुधि कोउ नहिं कहहीं॥
पूंछहुं काहि कहहु केहि आई। जनकसुता को देइ बताई॥

यहां महाघोर भयंकर राक्षस रहते हैं, सीताजी की सुधि कोई नहीं कहते हैं। किससे पूछूं किससे [..]र कहूं, जानकी को कौन बतला देगा।

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहं भिन्न बनावा॥
राम नाम अंकित गृह सोहा। बरणि न जाय देखि मन मोहा॥

वि[..] फिर एक सुन्दर महल देखा, हरि मन्दिर वहां अलग बना हुआ था। रामजी के नाम वह मन्दिर [..]ा शोभायमान होता था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, देखकर मन मोहित हो जाता था।

दो०—रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहं देखि हरष कपिराइ॥ ५॥

के[..] राम नाम से अंकित घर ऐसा शोभायमान था कि जिसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता [..]र नवीन तुलसी के वृक्ष के बहुत से झुण्ड को देखकर कपिराज हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुए॥ ५॥

लंका निसिचर निकर निवासा। इहां कहां सज्जन कर बासा॥
मन महुं तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥

कि[..] लंका में निशिचर रहते हैं, यहां सज्जन का वास कहां? यह बात हनुमानजी मन में विचारने लगे [..]किसका स्थान है। इसमें कुछ आसुरी माया तो नहीं, ऐसा तर्क मन में कर ही रहे थे कि उसी [..]भीषण जाग पड़े।

[..] राम[..]
सुरसा[..] रघुबीर[..]

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयं हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउं पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

बिभीषण ने जागते ही राम-नाम का स्मरण किया, तब, सज्जन जानकर हनुमानजी अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए। उनसे तो अवश्य पहिचान करूंगा, क्योंकि सज्जन पुरुषों से कार्य की हानि नहीं होती है।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहं आए॥
करि प्रनाम पूंछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥

ब्राह्मण का रूप धरकर वचन सुनाया, सुनते ही विभीषण उठकर वहां आया, प्रणाम करके कुश पूछी, ओर बोले हे विप्र! अपनी कथा समझाकर कहो।

की तुम्ह हरि दासन्ह महं कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

रात्री में कैसे आये हो, क्या तुम हरि भगवान के दासों में से हो, क्योंकि मेरे मन में अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हो रही है, या तुम रामजी के दीन-भक्तों पर प्रेम करने वाले हो, जो मुझको कृतार्थ करने आ हो।

दो०—तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥ ६॥

तब हनुमानजी ने सब राम कथा कही और अपना नाम बतलाया। इस प्रकार कहते सुनते दोनों का शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया और रामजी के गुण समूह का स्मरण करके प्रेम में मग्न गये॥ ६॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुं जीभ बिचारी॥
तात कबहुं मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥

विभीषण बोले सुनो हनुमानजी! हमारा रहना इस लंकापुरी में ऐसा है, जैसे दांतों के बीच में रहती है। बड़े विचार से हमको यहां रहना पड़ता है, हे प्यारे! कभी मुझको अनाथ जानकर चन्द्रजी कृपा करेंगे।

तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥

मेरा तामसी शरीर है, कुछ साधन होता नहीं है और मन में रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में विशेष प्रीति भी नहीं है। हे हनुमान! अब मुझको भरोसा हुआ, क्योंकि हरि की कृपा के बिना नहीं मिलते हैं।

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥

जो रघुनाथजी ने कृपा की, तभी तो तुमने मुझको हठकर दर्शन दिया है। यह सुनकर हनुम बोले विभीषणजी! प्रभु को यह रीति है कि सेवक पर सदा प्रीति करते हैं जो तुमने कहा तामसी शरीर का हूं।

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

कहो मैं कौन सा बड़ा कुलीन हूं, मैं तो वानर चंचल और सभी प्रकार से नीच हूं। प्रातः समय जो हमारा नाम भी लेवे उसको भोजन भी नहीं मिलता।

दो०—अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥ ७॥

हे सखा! सुनो मैं ऐसा नीच हूं, तो भी रघुनाजी ने मुझ पर कृपा की। इस प्रकार रामजी के गुणों का स्मरण करके दोनों के नेत्रों में जल भर आया॥ ७॥

जानतहूं अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥

जो जान करके भी ऐसे स्वामी को भूल जाते हैं, वे मनुष्य क्यों न दुःखी हों। इस प्रकार रामजी का गुण-समूह विभीषण से कहते हुए दोनों ने सन्त समागम का श्रवणानन्दायक विश्राम पाया।

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहं रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउं जानकी माता॥

फिर सब कथा विभीषण ने कही कि जिस प्रकार जानकीजी वहां रहीं, तब हनुमानजी ने कहा, हे भाई! मैं जानकी माता को देखना चाहता हूं।

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवां। बन असोक सीता रह जहवां॥

तब जानकीजी के मिलने की सब युक्ति विभीषण ने सुनाई, तब हनुमानजी बिदा मांग चले। विभीषण कुछ देर और सत्संग चाहते थे। फिर वही रूप धारण कर वहां गए, जहां अशोक वन में सीता रहती थीं।

देखि मनहि महुं कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयं रघुपति गुन श्रेनी॥

जानकीजी को देखकर हनुमानजी ने मन-ही-मन प्रणाम किया, फिर अशोक वृक्ष के ऊपर जाकर बैठ गये, उस समय पहर भर रात्री थी, सो व्यतीत हो गई। सीताजी को देखा कि शरीर दुबला हो रहा है, सिर के केशों की लटें एक की वेणी हो गई। और हृदय में श्रीरामजी के गुणों का जप कर रहीं हैं।

दो०—निज पद नयन दिएं मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥ ८॥

अपने चरणों की ओर नेत्र किए और मन रामजी के चरणों में लीन हो रहा है। इस प्रकार जानकीजी को दीन दशा में देखकर हनुमानजी बहुत ही दुःखी हुए॥ ८॥

तरु पल्लव महुं रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहं आवा। संग नारि बहु किएं बनावा॥

वृक्ष के पत्तों में छिपे रहे और मन में विचार करने लगे हे भाई! क्या करूं। उसी समय वहां रावण आया, साथ में स्त्रियों को लिए अपना बहुत शृंगार किए था।

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥
कह रावन सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥

अनेक भांति से दुष्ट रावण ने सीताजी को समझाया और साम, दाम, भय, भेद दिखाया। रावण कहने लगा, हे सुन्दर मुख वाली सयानी! सुन, मन्दोदरी आदि सब रानियों को।

तव अनुचरीं करउं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥

तेरी दासी बनाऊंगा, यह मेरा प्रण है, परन्तु एक बार प्रसन्न होकर मेरी ओर देख। यह सुन अपने और रावण के बीच में तृण रखकर और परम स्नेही श्री रामजी का स्मरण कर सीताजी कहने लगीं।

सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुं कि नलिनी करइ बिकासा॥

हे मूर्ख! मुझको सूने में हर लाया है। नीच निर्लज्ज तुझको लाज नहीं आती। सुन रावण, जुगनू के प्रकाश से क्या कमलिनी खिल सकती है।

अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥

ऐसे मन में समझती हुई सीता कहने लगी—रे दुष्ट! तुझे रामजी के बाणों की सुधि भी नहीं है।

दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥ ९॥

रावण ने अपने को जुगनू के समान और रामचन्द्रजी को सूर्य के समान सुना और शठ चोर, अधम और निर्लज्ज ये कटु वचन सुने, तो रावण रानियों के सामने बहुत खिसिया गया और अपना चन्द्रहास खड्ग निकालकर सीताजी से बोला॥ ९॥

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउं तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥

रावण बोला हे सीता! तैंने मेरा अपमान किया, तेरा सिर मैं इस कठिन तलवार से काटूंगा। नहीं तो शीघ्र मेरी बात मान ले, हे सुमुखी! न मानने में जीवन की हानि है।

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥

यह सुन सीताजी बोली, हे दशकन्धर! श्याम कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी शुण्ड-दण्ड के समान सुढाल, जो हमारे श्याम सुन्दर प्रभु की भुजा है सो भुजा मेरे कंठ पर होगी, या तेरी ये घोर तलवार होगी, सुन मूर्ख! ऐसा प्रण मेरा भी पक्का है।

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥

हे चन्द्रहास ! प्रभु के वियोग से उत्पन्न इस मेरे दुःख को हर ले, यह रघुनाथजी का वियोग अग्नि समान सन्तापकारी हो रहा है। सीताजी रावण से कहती है कि शीतल रात्रि के समान अपनी तलवार की तेज धार से, मेरे भारी दुख को हर।

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयां कहि नीति बुझावा॥

सीताजी के वचन सुनते ही रावण फिर मारने को दौड़ा, तब मन्दोदरी ने नीति के वचन कहकर समझाया कि स्त्री का वध करना अनुचित है।

कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥
मास दिवस महुं कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

तब रावण ने वहां की सब राक्षसियों को बुलाकर कहा कि तुम सब जाकर सीता को भय दिखाओ फिर बोला कि जो महीने भर में मेरा कहना नहीं मानेगी तो मैं इस कठोर खड्ग से मार डालूंगा।

दो०-भवन गयउ दसकंधर इहां पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥ १०॥

यह कहकर रावण घर को गया, तब वहीं राक्षसियां सीताजी को बहुत भयंकर रूप रखकर भय दिखाने लगीं॥ १०॥

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥

इतने में रामजी के चरणों में प्रीति करने वाली और ज्ञान में निपुण एक त्रिजटा नामक राक्षसी ने सब राक्षसियों को अपने समीप बुलाकर सपना सुनाया और कहा कि सीताजी की सेवा करके अपना भला करो।

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥

सपने में वानर ने लंका को जलाया और राक्षसों की सेना जो उस पर चढ़ आई, उन सब सेना को उसने मार डाला। गधे पर चढ़ा नंगे शरीर रावण सिर मुड़ाये, बीसों भुजा टूटी हुई।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुं बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥

इस प्रकार रावण दक्षिण दिशा को जा रहा है और मानो लंका विभीषण ने पाई है। नगर में रामचन्द्रजी की दुहाई फिरी, तब प्रभु ने सीताजी को बुला भेजा।

यह सपना मैं कहउं पुकारी। होइहि सत्य गएं दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥

यह सपना मैं पुकार कर कहती हूं। चार दिन बीत जाने पर सत्य प्रतीत होगा, उसका वचन सुन सब राक्षसियां डर गईं और जानकी जी के चरणों में गिरने लगीं कि माता ! हम सब पराधीन हैं, क्षमा करो।

दो०-जहं तहं गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच॥ ११॥

सब राक्षसियां मिलकर जहां-तहां चली गयीं और सीताजी के मन में बड़ा सोच हुआ कि महीना बीतने पर मुझको नीच राक्षस मार डालेगा ॥ ११ ॥

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी ॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरह अब नहिं सहि जाई ॥

त्रिजटा से सीताजी हाथ जोड़कर बोली कि हे माता! तू ही विपत्ति में मेरा संग देने वाली है। देह छोड़ दूं ऐसा उपाय जल्दी करो, अब यह कठिन वियोग सहा नहीं जाता।

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई ॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी ॥

काठ लाकर चिता रचकर बना दो और माता फिर तुम आग लगा दो। हे सयानी! मेरी प्रीति को सत्य करो। कानों को शूल के समान वाणी कौन सुने।

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि ॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी ॥

सीताजी के वचन सुनते ही चरण पकड़कर समझाया और प्रभु रामजी का बल और प्रताप सुनाया और कहा हे राजकुमारी! रात में अग्नि नहीं मिलती, ऐसे कह वह अपने घर चली गई।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला ॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा ॥

तब सीता कहने लगीं, विधाता ही प्रतिकूल हो गया, क्योंकि न तो अग्नि मिलती है न तो दुःख दूर होता है। आकाश में सब तारागण अँगार रूप से प्रगट देख पड़ता है, परन्तु पृथ्वी में एक भी तारा आकर नहीं गिरता है।

पावकमय ससि स्त्रवत न आगी। मानहुं मोहि जानि हतभागी ॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥

चन्द्रमा भी मुझको अग्निमय प्रतीत होता है वह भी मुझको अभागिनी जानकर अग्नि नहीं डालता हे अशोक वृक्ष! मेरी विनय सुनो, अपने नाम को सत्य करो और मेरा शोक हरो।

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता ॥

तुम्हारे नवीन पत्ते अग्नि के समान है, अग्नि देखकर शरीर का अन्त करो इस प्रकार सीताजी को अत्यन्त विरह से व्याकुल देखकर हनुमानजी को वह क्षण कल्प के समान बीता।

सो०—कपि करि हृदयं बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥ २ ॥

हनुमानजी ने अपने हृदय में विचार कर रामचन्द्रजी की दी हुई अँगूठी डाल दी, मानो अशोक वृक्ष ने अँगार डाल दिया हो, उसको उठाकर सीताजी ने हाथ से उठा लिया ॥ २ ॥

तब देखि मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर ॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयं अकुलानी ॥

जब यह मन को हरने वाली अँगूठी देखी, जिस पर राम नाम था और बहुत सुन्दर थी। मन में अत्यन्त भ्रम हुआ, मुन्दरी को पहचान लिया, तब आनन्द और शोक से घबरा गईं।

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥

फिर विचारने लगीं कि रघुनाथजी अजय हैं, उनको कौन जीत सकता है और माया से ऐसी अंगूठी बनाई नहीं जा सकती। जब सीताजी अपने मन में विचार करने लगीं तब हनुमानजी वृक्ष पर से मधुर बचन बोले।

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

रामचन्द्रजी का गुण वर्णन करने लगे, जिसे सुन सीताजी के दुख दूर हो गये। आदि से कथा सब सुनाई, सीताजी कान और मन लगाकर सुनने लगीं।

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥

सीताजी सुनकर बोलीं कि जिसने यह कानों को अमृत समान कथा सुनाई, सो आकर क्यों नहीं प्रगट होता?

तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ॥
राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥

तब हनुमानजी समीप चलकर गये, तब सीताजी फिरकर बैठ गईं। हनुमानजी बोले हे माता जानकी! मैं रामचन्द्रजी का दूत हूं। करुणा निधान रामजी की सत्य सौगन्ध खा करके कहता हूं।

यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहं सहिदानी॥
नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥

हे माता! यह अंगूठी मैं ही लाया हूं, रामजी ने यह पहचान के लिए दी है, मेरे दूत होने की यह सच्ची साक्षी है। यह सुनकर सीताजी ने कहा—कहो मनुष्य और वानर का सँग कैसा? तब हनुमानजी ने सुग्रीव से मिलने की कथा कही कि जैसे संगति हुई।

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥ १२॥

हनुमानजी का प्रेम सहित वचन सुनकर सीताजी के मन में विश्वास हो गया और जान लिया कि मन, क्रम और वचन से यह कृपा सिन्धु रामजी का सेवक है॥ १२॥

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुं जलजाना॥

हरि भगवान रामजी का सेवक जानकर बहुत प्रीति बढ़ी, नेत्रों में जल भर आया, रोमावली खड़ी हो गई। हे प्यारे हनुमानजी! विरह-रूपी समुद्र में डूबते हुए मुझको तुम नाव रूप हुए हो।

अब कहु कुसल जाउं बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥

अब तुम्हारी बलिहारी जाऊं, यह तो कहो कि सुखनिधान खर आदि राक्षसों के मारने वाले राम जी अपने छोटे भाई लक्ष्मण समेत कुशल हैं? हे हनुमानजी! रघुनाथजी तो कोमल हृदय वाले और कृपालु हैं, उन्होंने किस कारण इतनी निठुरता धारण की है।

सहज बानि सेवक सुख दायक। कबहुंक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुं नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥

जिस स्वामी की सहज बानी है और सेवक के सुखदाता हैं वे रघुनाथजी क्या कभी मेरी याद करते हैं हे तात! कभी ऐसा भी होगा कि स्वामी का श्याम, सुन्दर कोमल शरीर देखकर मेरे ये नेत्र शीतल होंगे।

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥

फिर आगे सीताजी के मुख से वचन नहीं आया, नेत्रों में जल भर आया, विरह से अत्यन्त व्याकुल देखकर हनुमानजी ने नम्रता पूर्वक मधुर वचन बोले।

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानहु जियं ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम के दूना॥

हे मात! प्रभु लक्ष्मण सहित कुशल से हैं, परन्तु कृपानिधान रामजी केवल तुम्हारे दुख से दुखी हैं। हे माता! मन में उदासी मत मानो, तुमसे रामजी का दूना प्रेम है।

दो०—रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥ १३॥

हे माता अब धीरज धरकर रघुनाथजी के सन्देश को सुनो, ऐसे कहकर हनुमानजी गद्‌गद कण्ठ हो गये, अर्थात कण्ठ रुक गया, नेत्रों में जल भर आया॥ १३॥

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुं सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुं कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥

रामजी के वियोग में कहा हे सीता! सुनो मुझको सब उलटे हो गये। लाल कोमल पत्ते ऐसे देख पड़ते हैं, मानो अग्नि के अंगार हैं, रात काली रात्री के समान और चन्द्रमा ज्येष्ठ मास के सूर्य के समान हो रहा है।

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥

कमल-वन भाला अथवा बरछी के वन के समान लगता है और बादलों से मानों गर्म तेल बरसता है। जिस वृक्ष के नीचे रहता हूं वही दुःख देता है और तीनों प्रकार की पवन सांप की स्वांस के समान लगती है।

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

कहने से कुछ दुख घट नहीं जाता। किससे कहूं यह कोई जानता नहीं। हे प्यारी! मेरे और तेरे प्रेम का तत्व एक मेरा ही मन जानता है।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

मेरा मन सदा तुम्हारे पास रहता है, बस इतने में ही प्रीति रस को जान लो। प्रभु रामजी का संदेश सुनते ही सीताजी प्रेम में ऐसी मग्न हो गईं कि उनको अपनी देह की सुधि न रही।

कह कपि हृदयं धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

तब हनुमानजी ने कहा – हे माता! सेवक के सुखदाता श्रीराम का स्मरण कर हृदय में धैर्य धरो। रघुनाथजी की प्रभुता हृदय में धारण करो और मेरा वचन सुन व्याकुलता छोड़ दो।

दो०–निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयं धीर धरु जरे निसाचर जानु॥ १४॥

राक्षसगण पतंग के समान हैं और रघुनाथजी के बाण अग्नि के समान हैं, हे माता! हृदय में धीरज रखो और राक्षसों को भस्म हुए जानो॥ १४॥

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएं जानकी। तम बरूथ कहं जातुधान की॥

जो रघुनाथजी ने तुम्हारी सुधि पाई होती तो रामजी देरी नहीं करते। हे माता जानकी! रामचन्द्र जी के बाण-रूपी सूर्य का उदय राक्षस-रूपी अन्धकार समूह के नाश के अर्थ है।

अबहिं मातु मैं जाउं लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥

हे माता! मैं तो तुमको अभी लिवा जाऊं, परन्तु क्या करूं। स्वामी रामजी की आज्ञा नहीं है, रामजी की सौगन्ध से सही कहता हूं। हे माता! कुछ ही दिन और धीरज धरो, फिर वानरों समेत रघुनाथ जी आवेंगे।

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुं पुर नारदादि जसु गैहहिं॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥

राक्षसों को मारकर तुमको ले जायेंगे और तुम्हारा व प्रभु का यश तीनों लोक में नारद आदि भगवत-भक्त गान करेंगे। यह सुनकर जानकी जी ने कहा, कहो पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान हैं, राक्षस तो बड़े बलवान योद्धा हैं।

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

मेरे मन में यह बड़ा सन्देह है, यह सुनकर हनुमानजी ने अपना शरीर प्रकट किया। जो स्वर्ण पर्वत के समान विशाल शरीर, संग्राम में भयँकर, अत्यन्त रणधीर था।

सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥

हनुमानजी का ऐसा शरीर देखकर जब सीताजी के मन में भरोसा हुआ, तब हनुमानजी ने छोटा सा रूप धारण कर लिया।

दो०—सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल ॥ १५ ॥

सुनो माता! मुझ शाखामृग को बल, बुद्धि की विशालता कुछ नहीं, परन्तु प्रभु के प्रताप से बहुत छोटा सांप भी गरुड़ को खा जाता है ॥ १५ ॥

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी ॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना ॥

हनुमानजी की भक्ति, प्रताप, तेज और बल से युक्त वाणी सुनते ही जानकीजी के मन को सन्तोष हो गया। रामचन्द्रजी का प्यारा जानकर हनुमानजी को आशीर्वाद दिया कि हे तात! बल और शील के निधान होओ।

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुं बहुत रघुनायक छोहू ॥
करहुं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥

हे पुत्र! अजर, अमर और गुणों के समुद्र होओ, तुम पर रघुनाथजी सदा कृपा करते रहेंगे। ऐसा वचन जानकीजी का कानों से सुनकर हनुमानजी पूर्ण प्रेम में मग्न हो गये।

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा ॥
अब कृतकृत्य भयउं मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता ॥

बारंबार सीताजी के चरणों में सिर नवा हनुमानजी हाथ जोड़कर बोले। हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया, क्योंकि आपका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता, यह बात प्रसिद्ध है।

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा ॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी ॥

सुनो माता! मुझको बहुत भूख लगी है, वृक्षों में सुन्दर फल लगे देख कर भूख बढ़ गई। सीताजी ने कहा, सुनो पुत्र! इसकी रखवाली बड़े भारी राक्षस योद्धा करते हैं।

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं ॥

यह सुनकर हनुमानजी बोले, इन राक्षसों का डर मुझको नहीं है, जो तुम अपने मन में सुख मानो तो जाकर फल खाऊं।

दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदयं धरि तात मधुर फल खाहु ॥ १६ ॥

तब हनुमानजी को बुद्धि और बल से निपुण देखकर जानकीजी ने कहा कि हे तात! जाओ और रघुनाथजी के चरण हृदय में धारण करके इन मीठे फलों को खाओ ॥ १६ ॥

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागी। फल खाएसि तरु तोरैं लागी ॥
रहे तहां बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ॥

यह सुन जानकीजी की आज्ञा पाकर मस्तक झुकाकर हनुमानजी बाग में गये और फल खाने तथा वृक्षों को तोड़ने लगे। वहां जो बहुत योद्धा रखवाली करते थे, उनमें कुछ को मार डाला और कुछ रावण के पास भाग गए।

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहि असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥

हे नाथ! एक बड़ा भारी वानर आया है, उसने अशोक वाटिका उजाड़ दी। फल खाये और वृक्ष उखाड़ डाले, रखवालों को मार-मारकर पृथ्वी पर डाल दिया।

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥

यह सुनकर रावण ने अनेकों योद्धाओं को भेजा, उनको देखकर हनुमानजी गरजे। सब राक्षसों को कपिराज ने मार डाला, कुछ अधमरे पुकारते हुए रावण के पास गये।

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

फिर रावण ने अक्षय कुमार को भेजा, वह बहुत से योद्धाओं को साथ लेकर चला। उसको आते देखकर हनुमानजी वृक्ष पकड़कर उछले और उसको मारकर बड़े शब्द से गरजे।

दो०–कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥ १७॥

कुछ मार डाले कुछ कुचल डाले, कुछ धूल में मिला दिए, कुछ फिर रावण के पास जाकर पुकारे कि हे स्वामी! वानर बड़ा बलवान है॥ १७॥

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारसि जनि सुत बांधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहां कर आही॥

पुत्र अक्षय कुमार का मरण सुनकर रावण क्रोध में भर गया और मेघनाथ बलवान को भेजा। हे पुत्र! उसको मारना मत बांधकर लाना, देखें कहां का वानर है।

चला इंद्रजित अतुलित बल जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥

पिता की आज्ञा पाकर मेघनाथ महाबली योद्धा चला, भाई को मारना सुनकर उसको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ! हनुमानजी ने देखा कि कोई विकट योद्धा आ रहा है, तब कटकटा करके गरजे और दौड़े।

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥

एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ा और मेघनाथ को रथ-हीन कर दिया।

रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥
तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुं गजराजा॥

और मेघनाथ के साथ बड़े-बड़े योद्धा थे, उन सबको पकड़कर हनुमानजी ने अपने अंग से भींच डाला। उनको मार कर हनुमानजी मेघनाथ से लड़ने के लिए ऐसे जाकर भिड़े, मानो दोनों गजराज ही लड़ रहे हों।

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥
उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥

फिर तो हनुमानजी ने मेघनाथ के हृदय में एक घूंसा मार वृक्ष पर चढ़े, उसको क्षण-भर मूर्छा आ गई, फिर उठकर मेघनाथ ने बहुत माया की, परन्तु हनुमानजी उससे जीते नहीं गये।

दो०--ब्रह्म अस्त्र तेहिं सांधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउं महिमा मिटइ अपार॥ १९॥

तब मेघनाथ ने ब्रह्मास्त्र हाथ में लिया तो हनुमानजी ने मन में विचार किया कि मैं इस ब्रह्मास्त्र को न मानूंगा, तो इसकी अनन्त महिमा मिट जायेगी॥ १९॥

ब्रह्मबान कपि कहुं तेहिं मारा। परतिहुं बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरछित भयउ। नागपास बांधेसी लै गयऊ॥

मेघनाथ ने ब्रह्म-बाण हनुमानजी को मारा, तब गिरते समय भी हनुमानजी ने सेना का संहार किया जब मेघनाथ ने जाना कि वानर मूर्छित हो गया, तब नाग-फांस से बांध कर ले गया।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बंधावा॥

जिस प्रभु का नाम जपकर सुनो पार्वती! ज्ञानी मनुष्य संसार-बन्धन को काट देते हैं, उस प्रभु का दूत कहो कैसे किसी के बन्धन में आ सकता है, उसने तो अपने स्वामी के कार्य के निमित्त अपने को बंधाया।

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभां सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाई कछु अति प्रभुताई॥

वानर को बंध जाना सुनकर राक्षस दौड़े और खेल के लिए सभा में ले आये। रावण की सभा हनुमानजी ने जाकर देखी, जिसकी अति प्रभुताई कुछ कही नहीं जा सकती है।

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महूं गरुड़ असंका॥

देवता और दिक्पाल विनयपूर्वक हाथ जोड़े खड़े सब भय सहित रावण की भृकुटि को देख रहे हैं ऐसा प्रताप देख करके भी हनुमानजी के मन में ऐसी भी शंका नहीं हुई, जैसे सांपों में गरुड़ निशंक रहता है।

दो०--कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयं बिषाद॥ २१॥

हनुमानजी को सभा में आया देखकर रावण कुछ दुर्वचन कहकर हंसा, फिर पुत्र के मरण की सुधि करके हृदय में बहुत दुःख उत्पन्न हुआ॥ २१॥

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउ अति असंक सठ तोही॥

रावण कहने लगा, अरे वानर! तू कौन है और किसके बल से तूने वन को उजाड़ दिया। क्या तूने कभी मुझको कानों से नहीं सुना था? रे शठ! मैं तुझको अब भी बहुत निडर देख रहा हूं।

मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥

निशाचरों को किस अपराध से तूने मारा। रे शठ! कह तुझको अपना प्राण जाने का भय नहीं है, हनुमानजी बोले—सुन रावण! जिसका बल पाकर माया अनेक ब्रह्माण्डों की रचना करती है।

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥

हे रावण! जिसके बल से ब्रह्मा जगत् को उत्पन्न करते, विष्णु पालन करते और शिव संहार करते हैं। जिसके बल से हजार मुख वाले शेष जी पर्वत और वन-सहित इस ब्रह्माण्ड को अपने मस्तक पर धारण किए हैं।

धरइ जो बिबिधि देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥

जो प्रभु अनेक शरीर धारण कर देवताओं की रक्षा करने वाला है और तुम सरीखे मूर्खों को शिक्षा देने वाला है। शिवजी के कठिन धनुष को जिसने तोड़ा और तुम समेत राजाओं के दल का अभिमान दूर किया।

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

खरदूषण और बाली इन महाबली योद्धाओं को जिसने मारा है।

दो०—जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥ २०॥

तथा जिसके नाम-मात्र बल से सब चर-अचर जीता है। उस प्रभु का मैं दास हूं, जिस प्रभु की प्यारी स्त्री को तुम हर लाये हो॥ २०॥

जानउं मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिपसि बिहरावा॥

मैं तुम्हारी प्रभुता को जानता हूं, सहसबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी। बालि से समर करके यश पाया, हनुमानजी का यह बचन सुनकर रावण ने हँसकर बहला दिया।

खायउं फल प्रभु लागी भूंखा। कपि सुभात तें तोरेउं रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बांधेउं तनयं तुम्हारे॥

मुझको भूख लग रही थी, इस कारण मैंने फल खाया और वानर स्वभाव के कारण वृक्ष को तोड़ डाला, स्वामी! अपना शरीर सबको प्रिय होता है। कुमार्ग में चलने वाले राक्षस मुझे मारने लगे (स्वामी पद हनुमानजी ने राजा जानकर कहा) और जिन्होंने मुझको मारा, उनको मैंने मारा, तिस पर भी तुम्हारे पुत्र ने मुझको बांध लिया।

मोहि न कछु बांधे कइ लाजा। कीन्ह चहउं निज प्रभु कर काजा॥
बिनती करउं जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥

मुझको कुछ अपने बंधने की लाज नहीं है, क्योंकि मैं अपने प्रभु का कार्य करना चाहता रावण हाथ जोड़कर तुम्हारी विनय करता हूं, अभिमान छोड़कर मेरी विनती सुनो।

देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी ॥

तुम अपने हृदय में विचार करके देखो और भ्रम को छोड़कर भक्तों के भय को हरने वाले का भजन करो।

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई ॥
तासों बयरु कबहुं नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै ॥

जिनके डर से काल भी डरता है, जो सुर, असुर और चराचर को खाता है। उस प्रभु से कभी न कीजिए, मेरे कहने से जानकीजी को लौटा दीजिये।

दो०—प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएं सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि ॥ २१ ॥

दीनों का पालन करने वाले, रघुकुल में शिरोमणि, कृपा के समुद्र, खरदूषण को मारने रामजी के शरण में जाने से तुम्हारा अपराध भुलाकर प्रभु तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ २१ ॥

राम चरन बिनु पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू ॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुं जनि होहु कलंका ॥

रामचन्द्रजी के करण-कमल हृदय में धारण करो और लंका में तुम अचल राज्य करो। ऋषि का यश निर्मल चन्द्रमा है, उनके कुल में कलंक-रूप मत होओ।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी ॥

राम-नाम के बिना वाणी नहीं सुहाती, मद (अभिमान) और मोह (अज्ञान) को छो... देखो। हे रावण ! सब आभूषणों से युक्त सुन्दर स्त्री जैसे बिना वस्त्र के नहीं सुहाती है।

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई ॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएं पुनि तबहिं सुखाहीं ॥

रामजी से विमुख होने वाले की प्रभुता रहने पर तो गई हुई सी और पाने पर न... है, जैसे नदी की जड़ सजल नहीं है, वह वर्षा ऋतु बीतने पर तुरन्त ही सूख जाती है।

सुनु दसकंठ कहउं पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी ॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥

सुनो रावण ! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि रामजी के विरोधी की रक्षा करने वाला कोई है। हजारों शिव, विष्णु और ब्रह्मा तुझ राम के द्रोही को नहीं रख सकेंगे।

दो०—मोहमूल बल सूलप्रद त्यागहु तुम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान ॥ २२ ॥

अज्ञान की जड़ और बहुत दुखदायक अभिमान को तुम छोड़ दो और कृपानिधान राम भगवान् का भजन करो ॥ २२ ॥

जदपि कहि कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी ॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी ॥

मुझको कुछ अपने बंधने की लाज नहीं है, क्योंकि मैं अपने प्रभु का कार्य करना चाहता
रावण हाथ जोड़कर तुम्हारी विनय करता हूं, अभिमान छोड़कर मेरी विनती सुनो।

देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥

तुम अपने हृदय में विचार करके देखो और भ्रम को छोड़कर भक्तों के भय को हरने
भजन करो।

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुं नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥

जिनके डर से काल भी डरता है, जो सुर, असुर और चराचर को खाता है। उस प्रभु से
कभी न कीजिए, मेरे कहने से जानकीजी को लौटा दीजिये।

दो०—प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएं सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥ २१॥

दीनों का पालन करने वाले, रघुकुल में शिरोमणि, कृपा के समुद्र, खरदूषण को मारने
रामजी के शरण में जाने से तुम्हारा अपराध भुलाकर प्रभु तुम्हारी रक्षा करेंगे॥ २१॥

राम चरन बिनु पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुं जनि होहु कलंका।

रामचन्द्रजी के करण-कमल हृदय में धारण करो और लंका में तुम अचल राज्य करो।
ऋषि का यश निर्मल चन्द्रमा है, उनके कुल में कलंक-रूप मत होओ।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी

राम-नाम के बिना वाणी नहीं सुहाती, मद (अभिमान) और मोह (अज्ञान) को छो
देखो। हे रावण! सब आभूषणों से युक्त सुन्दर स्त्री जैसे बिना वस्त्र के नहीं सुहाती है।

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पा
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएं पुनि तबहिं सुख

रामजी से विमुख होने वाले की प्रभुता रहने पर तो गई हुई सी और पाने पर न
है, जैसे नदी की जड़ सजल नहीं है, वह वर्षा ऋतु बीतने पर तुरन्त ही सूख जाती है।

सुनु दसकंठ कहउं पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं को
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही

सुनो रावण! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि रामजी के विरोधी की रक्षा करने वाला कोई
है। हजारों शिव, विष्णु और ब्रह्मा तुझ राम के द्रोही को नहीं रख सकेंगे।

दो०—मोहमूल बल सूलप्रद त्यागहु तुम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥ २२॥

अज्ञान की जड़ और बहुत दुखदायक अभिमान को तुम छोड़ दो और कृपानिधान राम
भगवान् का भजन करो॥ २२॥

जदपि कहि कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी।
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूंछ प्रजारी॥

ढोल बजने लगे, सब ताली बजाने लगे, नगर भर में फिराकर पूंछ में अग्नि लगा दी।

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥

अग्नि को जलते हुए देखकर हनुमानजी ने बहुत छोटा रूप तुरन्त ही धारण कर लिया और उछल कर सुवर्ण की अटारी पर चढ़ गये, उनको देखकर राक्षसों की स्त्रियां डर गईं।

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥ २४॥

हरि भगवान की प्रेरणा (आज्ञा) से उस समय उनचास पवन चलने लगे। हनुमानजी बड़ा भारी शब्द करके गरजे और बढ़कर आकाश में जा लगे॥ २४॥

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥

देह को बहुत बड़ा परन्तु हलका होने के कारण एक मंदिर से दूसरे मन्दिर पर चढ़ते जाते हैं नगरों के जलने से लोग व्याकुल हो गये। भयंकर अग्नि के लपट की झपट से बहुत प्रकार नगर के अनेक घर जल गये।

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥

हे पिता! हे माता! ऐसे सब पुकार करने लगे कि इस समय हमको कौन बचाये। हमने जो कहा कि यह वानर रूप धरे कोई देवता है।

साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥

साधु का अपमान करने से ऐसा ही फल होता है, जैसा यह नगर अनाथ की तरह जल रहा है। सब नगर एक पल भर में जला दिया, एक विभीषण का घर नहीं जलाया।

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! जिस प्रभु का भक्त विभीषण है, उसी प्रभु ने अग्नि को रचा, इस कारण भक्त विभीषण का घर नहीं जला। उलट-पलटकर हनुमानजी ने लंका को जलाया, फिर समुद्र में कूद पड़े।

दो०—पूंछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघुरूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥ २५॥

पंछ बुझा कर और फिर छोटा रूप धारण कर जानकीजी के आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ २५॥

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥

हे माता मुझको कुछ निशानी दीजिये, जैसे रघुनाथजी ने मुझको दी थी। तब जानकीजी ने चूणामणि उतार दिया, हनुमानजी ने प्रसन्नता पूर्वक उस चूणामणि को ले लिया।

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

हे तात! मेरा प्रणाम कहकर मेरी ओर से यह कहना कि हे प्रभु! आप तो सब प्रकार से पूर्णकाम हैं। हे नाथ! आपका दीन पर दया करने का जो यश है, उसको संभाल कर मेरे भारी विरह-रूपी संकट को हरो।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुं नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥

हे तात! तुमसे इन्द्र के पुत्र जयन्त की कथा कहती हूं, सो कथा सुनाना और बाण के प्रताप की महिमा प्रभु को समझाना, उस कथा के सुनने से प्रभु को यहां तुम्हारे आने को प्रतीति हो जायेगी। महीने भर में स्वामी नहीं आवेंगे, तो मुझको जीती नहीं पावेंगे।

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुं सोइ दिनु सो राती॥

कहो हनुमान! किस भांति से प्राण रखूं? हे पुत्र! तुम भी अब जाने को कहते हो। तुमको देख छाती शीतल हुई फिर मुझको वही दिन और वही रात है।

दो०—जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥ २६॥

जानकीजी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज देकर चरण-कमलों में सिर नवाकर हनुमानजी रामचन्द्रजी के पास चले॥ २६॥

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥

चलते समय हनुमानजी बड़े शब्द से गरजे, जिसको सुनकर राक्षसियों के गर्भ गिर पड़े। समुद्र लांघकर इस पार आये और हनुमानजी ने किलकिला कर शब्द वानरों को सुनाया।

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥

सब वानर हनुमानजी को देखकर प्रसन्न हुए और तब वानरों ने अपना नया जन्म जाना। हनुमान जी का मुख प्रसन्न और शरीर पर तेज विराजमान देखकर उन्होंने जान लिया कि ये रामजी का काम कर आये हैं।

मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूंछत कहत नवल इतिहासा॥

सब वानर मिले और बहुत सुखी हुए, मानो तड़पती हुई मछली को जल मिल गया हो। सब वानर नवीन वृतान्त पूछते और कहते हुए प्रसन्नतापूर्वक रघुनाथजी के पास चले।

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे

तब मधुवन के भीतर सब आये, अंगद समेत सबने मीठे फल खाये। जब रखवाले रोकने लगे तो उनको घूंसों से मारा जिससे सब भाग गये।

दो०—जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज॥ २७॥

वे सब रखवारे कपिराज के पास जाकर पुकारने लगे कि युवराज अंगद ने बन को उजाड़ दिया। यह सुनकर सुग्रीव जी बहुत प्रसन्न हुए कि ये प्रभु का काम कर आये॥ २७॥

जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥

जो सीताजी की खोज न पाई होती तो मधुवन के फल कोई न खा सकता। इस प्रकार कपिराज सुग्रीवजी विचार ही रहे थे कि वानर समाज सहित आ गये।

आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥
पूंछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपां भा काजू बिसेषी॥

सबने आकर चरणों में सिर झुकाया। सुग्रीवजी सबको बड़े प्रेम से मिले और कुशल पूछी। तब सबने कहा कि आपके चरणों को देखकर सब कुशल हैं और श्रीरामजी की कृपा से काम सिद्ध हो गया।

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥

हे नाथ! हनुमान जी ने यह कार्य किया और सब वानरों के प्राणों की रक्षा की। यह सुनकर सुग्रीवजी फिर उठकर मिले और वानरों समेत रघुनाथजी के पास चले।

राम कपिन्ह कहं आवत देखा। किये काज मन हर्ष बिसेषा॥
फटिक शिला बैठे दोउ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥

रामजी ने वानरों को आते देखा कि कार्य किए मन में बहुत प्रसन्न चले आते हैं। बिल्लौरी पत्थर की चट्टान पर दोनों भाई बैठे थे कि सब वानर चरणों पर जा गिरे।

दो०—प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुणा पुञ्ज।
पूंछी कुशल नाथ अब कुशल देखि पदकञ्ज॥ २८॥

प्रेम सहित सबको दया के समूह रघुनाथजी भेंटे और कुशल पूछी, तब सबने कहा—हे नाथ! अब आपके चरण-कमलों के दर्शन से सबकी कुशलता है॥ २८॥

जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥

जामवन्त ने कहा सुनो, रघुनाथ स्वामी! आप जिस पर दया करो, उसका कल्याण है और उसकी सदैव कुशलता है। देवता, मनुष्य और मुनिजन उसके ऊपर प्रसन्न रहते हैं।

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥

वही जय पाने वाला, विनययुक्त, गुणों का समुद्र है और उसका सुन्दर यश तीनों लोकों में प्रसिद्ध

हो जाता है। प्रभु की ही कृपा से सब काम हुआ और हम सबका जन्म भी आज सफल हो गया।

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुं मुख न जाइ सो बरनी॥
पवन तनय के चरित सुहाए। जातवंत रघुपतिहि सुनाए॥

हे नाथ हनुमानजी ने जो करनी की है, वह हजार मुख से भी कही नहीं जा सकती। हनुमानजी के सुन्दर चरित्र जामवन्त ने रघुनाथजी को सुनाया।

सुनत कृपानिधान मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियं लाए॥
कहहु तात केहि भांति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

सुनकर दयालु रामचन्द्रजी ने उठकर छाती से लगा लिया और सुन्दर योद्धा जानकर हनुमानजी रामजी के मन को प्यारे लगे। अनन्तर पूछने लगे कि हे तात! कहो जानकी किस प्रकार रहती हैं और अपने प्राणों की रक्षा करती है।

दो०—नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥ २९॥

हनुमानजी बोले हे नाथ! आपका नाम जपती है, सोई पहरेदार है और आपका ही ध्यान किवाड़ है, नेत्र अपने चरणों की ओर लगाये रहती हैं, सोई ताला लगा है, फिर प्राण किस मार्ग से निकल कर जा सकते हैं॥ २९॥

चलती बार कह्यो मोहिं टेरी। सुरत कराय शक्रसुत केरी॥
चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयं लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥

चलते समय मुझसे बुलाकर आपको जयन्त की याद दिलाने को कहा था। चलते समय ही मुझे यह चूड़ामणि भी दी। उसको लेकर रघुनाथजी ने हृदय से लगा लिया। हे नाथ! दोनों नेत्रों में आंसू भरकर जानकीजी ने कुछ वचन कहे सो सुनिये।

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन्ह बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥

लक्ष्मण सहित प्रभु के चरण पकड़कर कहना कि हे दीनबन्धु! आप अपने भक्तों का दुःख नाश करने वाले हैं। मैं मन, क्रम और वचन से आपके चरणों में प्रीति करने वाली हूं, फिर आपने किस अपराध से मुझको त्याग दिया है।

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥

यहां एक अवगुण अपना मैं जानती हूं कि बिछड़ते समय प्राणों ने पयान नहीं किया। हे नाथ! सो यह नेत्रों का अपराध है, जो प्राण निकलते समय हठ बाधा करते हैं।

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥

आपका वियोग अग्नि है, मेरा शरीर रुई। विरहयुक्त श्वांस पवन है, क्षण-मात्र में यह शरीर जल जाय परन्तु नेत्र अपने हित के लिए जल बरसाते हैं, वियोग-रूपी अग्नि से देह जलने नहीं पाती।

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहे भलि दीन दयाला॥

सीताजी की विपत्ति विशाल है, हे दीनबन्धु ! उसे न कहना ही अच्छा है।

दो०–निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।

बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥ ३०॥

हे दयानिधान ! जानकी का एक-एक पल कल्प के समान व्यतीत होता है। इस कारण शीघ्र चलिए और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीतकर सीताजी ले आइए॥ ३०॥

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना॥

बचन कायं मन मम गति जाही। सपनेहुं बूझिअ बिपति कि ताही॥

सीताजी का दुःख सुनकर प्रभु रामजी, सुखनिधान के कमल समान नेत्रों में आंसू आ गये और मन में विचार करने लगे कि जो वचन, शरीर और मन से मेरे शरण हो, क्या उसको सपने में भी विपत्ति आ सकती है।

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥

हनुमानजी ने कहा हे प्रभो ! विपत्ति वही है कि जब आपका स्मरण भजन न हो, राक्षसों की क्या मजाल है ? शत्रु को जीतकर जानकीजी को चलकर ले आइये।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥

प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

तब रामजी बोले सुनो, हनुमान ! तुम्हारे समान उपकारी देवता, मनुष्य, मुनि आदि कोई शरीरधारी नहीं, मैं तुम्हारा क्या प्रति उपकार करूँ, तुम्हारे सम्मुख मेरा मन नहीं हो सकता।

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउं करि बिचार मन माहीं॥

पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥

सुनो हनुमान ! मैं तुमसे उऋण नहीं हूं, यह मन में विचार कर देखा है, देवताओं के रक्षक बार-बार हनुमानजी को देखकर नेत्रों में जल भर गया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया।

दो०–सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।

चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥ ३१॥

प्रभु के वचन सुन और मुख की ओर देखकर हनुमान जी अपने हृदय में बहुत प्रसन्न होकर चरणों में गिर पड़े और बोले "त्राहि मां-त्राहि मां" हे भगवान मेरी रक्षा करो॥ ३१॥

बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥

प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

बार-बार प्रभो उठाना चाहते हैं और प्रेम में मग्न हनुमानजी को उठना अच्छा नहीं लगता। श्रीरामजी के चरण-कमल पर हनुमानजी का मस्तक और प्रभु रामचन्द्रजी अपना अभय हाथ हनुमानजी के शीश पर रखे। इस दशा का स्मरण कर शिवजी भी प्रेम में मग्न हो गये। वाणी गद्गद् होकर रुक गई, क्योंकि हनुमानजी उनके ही अंशावतार हैं।

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर।

शंकर भगवान फिर अपने मन को सावधान करके बहुत सुन्दर कथा कहने लगे।

कपि उठाइ प्रभु हृदयं लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥
कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥

अनन्त प्रभो ने हनुमानजी को उठाकर हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर अपने बहुत निकट बैठाय और पूछा कहो पवन पुत्र! रावण की पाली हुई बहुत बड़ी लंका के गढ़ को तुमने किस तरह भस्म किया?

प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥
साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥

प्रभो रामजी को हनुमानजी ने प्रसन्न जाना, तब अभिमान रहित वचन बोले—वानरों की बड़ी [illegible] यह है कि एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूद जाते हैं।

नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

परन्तु समुद्र लांघ, सोने का नगर जलाया और राक्षसों को मार, वन को उजाड़ दिया, सो हे [रघु]जी! यह सब आपका प्रताप है, हे नाथ! इसमें मेरी कुछ बड़ाई नहीं है।

दो०—ता कहुं प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावं बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥ ३२॥

हे नाथ! उसको कुछ भी कठिन नहीं जिस पर आप अनुकूल हो क्योंकि आपके प्रताप से बड़ना-[ग्नि] ([स]मुद्र की अग्नि) को निश्चय करके रुई जला सकती है॥ ३२॥

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥

हे नाथ! आपकी जो सब सुख देने वाली और परम पवित्र भक्ति है, कृपा कर मुझे दीजिए। [शिव]जी कहते हैं कि हे पार्वती! हनुमानजी की बहुत सीधी वाणी सुनकर रामजी ने तब 'एवमस्तु' इस [त]रह कहा।

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥

हे पार्वती, जिसने रामजी का स्वभाव जान लिया, उसको रामजी का भजन छोड़कर और कुछ अच्छा नहीं लगता। यह संवाद जिसके हृदय में आया, उसने भी रघुनाथजी की कृपा से रामजी की [भक्]ति पाई।

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा॥

प्रभु के वचन सुनकर वानर-गण बोले, हे कृपा के सागर! आपकी जय हो, जय हो! कहने लगे, तब रघुनाथजी ने सुग्रीव को बुलाया और कहा कि अब चलने का सामान करो।

अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुं आयसु दीजे॥
[कौ]तुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥

अब देर किस कारण करते हो, तुरन्त वानरों को आज्ञा दो यह कौतुक देखकर आकाश से बहुत फूल वर्षाकर देवता प्रसन्न हो, अपने-अपने स्थान को चले।

दो०—कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ॥ ३३॥

सुग्रीवजी ने सबको बुलाया तो सेनापतियों के समूह आये, फिर अनेक रंग और अपार बल वाले वानर और रीछों के झुण्ड आ गए॥ ३३॥

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥

प्रभ के चरणों में सिर झुकाकर महाबली सब रीछ और वानर गरजने लगे, रामजी ने सब वानरों की सेना देखी, तो कमल-नयन भगवान कृपा करके सबकी ओर देखने लगे।

राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुं गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥

रामजी की कृपा का बल पाकर सब वानर ऐसे हो गए, मानो पर्वत पँखों सहित हो गए, तब रामजी ने प्रसन्न होकर गमन किया और अनेक प्रकार के सुन्दर शुभ शकुन हुए।

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अंग जनु कहि देहीं॥

जिसकी कीर्ति सम्पूर्ण मंगलों में पूर्ण है, उसके प्रस्थान के समय सगुन हुए यह केवल नीति है, प्रभु का गमन करना सीताजी ने जान लिया, सीताजी के सुन्दर बाएं अंग फड़कने लगे।

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥

जो-जो शकुन सीताजी को हुए वही अशुकन रावण को हुए। वानरों का दल चला, उसका वर्णन कर कौन पार पा सकता है, वानर और रीछ बहुत गरजने लगे।

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरि नाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥

नख जिनके आयुध (हथियार) हैं, पवन और वृक्ष धारण करने वाले आकाश और पृथ्वी पर इच्छानुसार चलने वाले रीछ और वानर सिंह के समान शब्द करने लगे, दिशाओं के हाथी डगमगाने लगे और चिघारने लगे।

छं०—चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं॥
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥ ४॥

दिशाओं के हाथी चिंघारने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत कांपने लगे। समुन्द्र में खल बल पड़ गई सूर्य चन्द्रमा के मन में प्रसन्नता हुई। देवता, मुनि, नाग और किन्नरों के दुःख दूर हुए, करोड़ों विकट वानर योद्धा कटकटाते और दौड़ते हैं और महाप्रतापी राजा रामचन्द्रजी की जय बोलते और गुण गान करते हैं ॥ ४ ॥

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई ॥
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई ॥
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी ॥
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी ॥ ५ ॥

उस वानरी सेना के अपार भार को शेषजी नहीं सह सकते कारण बारंबार मूर्च्छित हुए और बारंबार दांतों से कछुए की पीठ को पकड़ते हैं, परन्तु उसमें दांत नहीं गड़ता रेखा बन जाती है, वह रेखा कैसी शोभायमान लगती है, मानों, शेषजी कछुए की पीठ को अविचल जानकर उस पर श्रीरामजी के सुन्दर प्रस्थान को प्रस्थति को लिख रहे हैं ॥ ५ ॥

दो०—एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहं तहं लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर ॥ ३४ ॥

इस प्रकार कृपासिंधु श्री रामजी समुद्र के किनारे जाकर उतरे, जहां-तहां बहुत से रीछ और वीर बानर फल खाने लगे ॥ ३४ ॥

उहां निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका ॥
निज निज गृहं सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा ॥

वहां राक्षस संदेहयुक्त होकर रहने लगे, जबसे हनुमानजी लंका को भस्म कर आए अपने-अपने घर सब विचार करने लगे कि अब राक्षसों के वंश की कुशल नहीं है।

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएं पुर कवन भलाई ॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी ॥

जिसके दूत का बल कहा नहीं जाता, फिर उसके आने से कौन सी भलाई होगी। इस प्रकार नगर-वासियों की वाणी दूतियों से सुनकर मन्दोदरी अपने मन में बहुत घबराई।

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी ॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियं धरहू ॥

हाथ जोड़कर पति के चरणों में गिरी और नीति-रस से भरे हुए वचन बोली। हे स्वामी! हरि भगवान से बर छोड़ दो और मेरा कहना जो अति हितकारी है उसको हृदय में रखो, अर्थात मेरा हित-कारी वचन मान लो।

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर धरनी ॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई ॥

जिसके दूत की करतूति को समझते ही राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं। हे कन्त! उसकी स्त्री को अपना मन्त्री बुलाकर भेज दो, जो अपना भला चाहो।

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥

तुम्हारे कुल-कमल को रात्रि के समान दुखदाई सीता शीतकाल की रात्रि के समान आई है। हे नाथ सुनो सीता को बिना दिये शिव और ब्रह्मा के लिए भी तुम्हारा भला न होगा।

दो०–राम बान अहि गन सरिस निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहि तजि टेक॥ ३५॥

रामजी के बाण विषधर सांपों के समान हैं और सब राक्षस मेंढक के समान हैं, जब तक न ग्रसे तब तक हठ छोड़कर इनके बचाने का उपाय कर लो॥ ३५॥

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुं भय मन अति काचा॥

मन्दोदरी की वाणी कानों से सुनते ही शठ और जगद्विख्यात रावण हंसा और बोला, सच है। स्त्री का स्वभाव डरपोक होता है, मंगल से अमंगल रचती है।

जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥

जो बन्दरों का कटक आवेगा, तो बिचारे राक्षस उन्हें खा-खाकर जीवेंगे।

कंपहि लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥
अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभां ममता अधिकाई॥

जिसके, भय से लोकपाल कांपते हैं, उसकी स्त्री होकर भी भय करे। यह बड़ी हंसी की बात है। ऐसे कहकर उसको हृदय से लगाकर बड़े अहंकार के साथ सभा को चला गया।

मंदोदरी हृदयं कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥
बैठेउ सभां खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥

तब मन्दोदरी ने अपने हृदय में विचार किया कि पति पर विधाता उलटा हो गया। सभा के बैठते ही यह खबर पाई कि सब सेना समुद्र पार आई।

बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हंसे मष्ट करि रहहू॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

तब रावण मन्त्रियों से पूछने लगा कि जो उचित सम्मत्ति हो, सो कहो। यह सुनकर सब हंसे और बोले कि चप रहिए। जब देवता और असुर जीतने में श्रम नहीं हुआ, अब मनुष्य और वानर किस गिनती में है।

दो०–सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥ ३६॥

मन्त्री, वैद्य, गुरु ये तीनों भय के मारे प्रिय बचन बोले, अर्थात ठकुर सुहाती कहे तो राज्य, धर्म और शरीर इन तीनों का शीघ्र नाश हो जाता है॥ ३६॥

सोइ रावन कहुं बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीस तेहिं नावा॥

वही सहाय रावण को आकर वनीकी रावण की प्रसन्नता के लिए मारे भय के मन्त्रीगण सुना-सुना कर प्रशँसा करते हैं। उचित समय जानकर विभीषणजी आए और भाई के चरणों में मस्तक झुकाया।

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौं कृपालु पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥

फिर सिर झुकाकर अपने आसन पर बैठ गए, आज्ञा पाकर यह वचन विभीषण बोले हे दयालु, जो मुझसे पूछते हो तो मति के अनुसार हित की बात कहता हूं।

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

जो अपना कल्याण चाहते हो और संसार में सुन्दर कीर्ति, सुबुद्धि, अच्छी गति तथा अनेक प्रकार के सुख चाहते हो तो हे गुसाईं! पराई स्त्री के मस्तक का दर्शन चौथ के चन्द्रमा की तरह छोड़ दो।

चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

चौदह भुवन के एक स्वामी हैं, उनसे बैर करने पर कोई जीव नहीं ठहर सकता। जो गुणों का समुद्र और चतुर मनुष्य होता है पर थोड़े लोभ से भी उसका कोई भला नहीं कहता है।

दो०--काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहिं जेहि संत॥ ३७॥

हे नाथ! काम, क्रोध, अहंकार, लोभ सब नरक के पंथ हैं, इन सबको छोड़कर रामजी ही के ों का भजन करो, अच्छे ग्रन्थ यही कहते हैं॥ ३७॥

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥

हे तात! रामजी मनुष्यों के ही राजा नहीं, सब भुवनों के ईश्वर, काल के भी काल हैं। साक्षात् परब्रह्म, निर्विकार, अजन्मा भगवान, विश्व विख्यात, अज्ञेय, अनादि और अनन्त हैं।

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥

पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के हितकारी, कृपासिंधु रामजी ने इन्हीं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण किया है। अपने भक्तों को आनन्द देने वाले, दुष्टों के समूह को नाश करने वाले, वेद व धर्म की रक्षा करने वाले और देवताओं के पालन करने वाले हैं।

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुं बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥

बैर छोड़कर उन रामचन्द्रजी को मस्तक झुकाइए। रघुनाथजी शरणागत के संकट को दूर करने वाले हैं। हे नाथ! प्रभु को जानकी लौटा दो और बिना कारण स्नेह करने वाले रामजी का भजन करो।

सरन गएं प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियं रावन॥

शरण गए से प्रभु ने उसको भी नहीं त्यागा कि जिसको संसार भर में वैर किए का पाप लगा है। जिस प्रभु का नाम तीनों पापों का नाश करने वाला है, सो प्रभु प्रकट हुए हैं। हे रावण ! यह अपने मन में समझ लो।

दो०—बार बार पद लागउं बिनय करउं दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ॥ ३८ ॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात ॥ ३९ ॥

हे रावण ! बारँबार चरणों में प्रणाम करके विनय करता हूं कि मान, मोह और मद को छोड़कर रामचन्द्रजी का भजन करो ॥ ३८ ॥ हे भाई ! पुलस्त्य मुनि ने अपने शिष्य से यह बात कहला भेजी थी वही अवसर पाकर मैंने कही है। जानकी को दे दो ॥ ३९ ॥

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना ॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन ॥

मालवन्त नामक चतुर मन्त्री ने विभीषण के वचन सुनकर बहुत सुख माना। मालवन्त कहने लगा हे तात ! तुम्हारे भाई नीति के आभूषण हैं। इससे वही हृदय में धारण करो जो विभीषणजी कहते हैं।

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहां हइ कोऊ ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी ॥

यह सुनकर रावण बोला—ये दोनों मूर्ख शत्रु के ही प्रताप का वर्णन करते हैं, कोई यहां है ? इनको दूर क्यों नहीं करते। यह सुनकर मालवन्त तो अपने घर चला गया और विभीषण फिर हाथ जोड़ कर कहने लगा।

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहां सुमति तहं संपति नाना। जहां कुमति तहं बिपति निदाना ॥

सुमति और कुमति सबके हृदय में रहती है। हे नाथ ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं। जहां सुमति होती है, वहां अनेक प्रकार की सम्पत्ति होती है और जहां कुमति होती है, वहां अन्त में विपत्ति होती है।

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥

तुम्हारे हृदय में कुमति आकर बसी है, जो विपरीत को अनहित और शत्रु को मित्र मानते हो। निशाचरों के कुल की काल रात्रि सीता है और उस सीता पर बड़ी प्रीति है।

दो०—तात चरन गहि मागउं राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुं अहित न होई तुम्हार ॥ ४० ॥

हे तात ! चरण पकड़ कर मांगता हूं, मेरा प्यार रखो। सीता राम को लौटा दीजिए तो आपका बहुत ही भला होगा ॥ ४० ॥

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥

यद्यपि पण्डितों, पुराणों और वेदों की अनुकूल वाणी विभीषण ने कही और नीति वर्णन की, तो भी सुनते ही रावण खीझ उठा कि अरे दुष्ट ! तेरी मृत्यु निकट आ गई ।

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा । रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥
कहसि न खल अस को जग माहीं । भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं ॥

रे मूर्ख ! सदा मेरे जिलाए से जीता है । मूढ ! तो भी तुझको वैरी का पक्ष अच्छा लगा है । रे दुष्ट ! कहता क्यों नहीं, ऐसा कौन इस जगत् में है जिसको मैंने भुजबल से नहीं जीत लिया है ।

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा । अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥

हमारे नगर में बसकर तपस्वियों के साथ प्रीति रखता है । रे शठ ! उन्हीं से जाकर मिल और उन्हीं को नीति जाकर सुना । ऐसे कहकर लात मारी, तब विभीषण ने बारंबार चरण पकड़े और कहा ।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ॥

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती ! सन्त लोगों की यह बड़ाई है कि जो मन्द करते भी भलाई करे ।

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा । रामु भजें हित नाथ तुम्हारा ॥
सचिव संग लै नभ पथ गयऊ । सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ ॥

तुम मेरे पिता के समान हो अच्छा किया मुझको मारा, परन्तु मैं फिर भी यही कहूंगा कि रामजी का भजन करने से तुम्हारा भला होगा । मन्त्री को साथ लेकर विभीषणजी आकाश मार्ग में गए और और सबको सुनाकर इस प्रकार कहने लगे ।

दो०—रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि ।
मैं रघुबीर सरन अब जाउं देहु जनि खोरि ॥ ४१ ॥

रामचन्द्रजी प्रभु सत्य संकल्प है, तुम्हारी सभा काल-वश है, इस कारण मैं अब रघुनाथजी की शरण जाता हूं, मुझको दोष न देना ॥ ४१ ॥

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं । आयुहीन भए सब तबहीं ॥
साधु अवग्या तुरत भवानी । कर कल्यान अखिल कै हानी ॥

ऐसे कहकर जब विभीषण लंका से चले, तब सब राक्षस आयुहीन हो गए । शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! साधु का निरादर तुरन्त सब कल्याणों का नाश कर देता है ।

रावन जबहिं बिभीषनु त्यागा । भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं । करत मनोरथ बहु मन माहीं ॥

रावण ने जब विभीषण को त्यागा, अभागा ऐश्वर्य रहित हो गया । विभीषणजी अति प्रस से रामचन्द्रजी के पास मन में बहुत से मनोरथ करते हुए चले ।

देखिहउं जाइ चरन जलजाता । अरुन मृदुल सेवक सुखदाता
जे पद परसि तरी रिषिनारी । दंडक कानन पावनकारी

आज प्रभु के समीप जाकर लाल-कमल के समान चरणों का दर्शन करूंगा, जोकि कोमल और सेवक को सुख देने वाले हैं। जिन चरणों को छूकर गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या तर कर गई और जो चरण दण्डक बन को पवित्र करने वाले हैं।

जे पद जनकसुतां उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउं तेई॥

जो चरण जानकीजी ने हृदय में धारण किए तथा जो चरण कपट-मृग के संग पीछे-पीछे दौड़े तथा जो चरण शिवजी के हृदय-रूपी सरोवर के कमल हैं, मेरे धन्य भाग्य हैं जो आज मैं उन चरणों के दर्शन करूंगा।

दो०–जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउं इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥ ४२॥

जिन चरणों की खड़ाऊंओं में भरतजी मन लगा रहे हैं, उन्ही चरणों को अब आज अपने इन नेत्रों से देखूंगा॥ ४२॥

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥

इस भांति प्रेम-सहित विचार करते हुए विभीषण शीघ्र समुद्र के इस पार आये। वानरों ने विभीषण को आते देखा तो जाना कि कोई शत्रु का दूत है।

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥

विभीषण को वहीं ठहराकर वानर सुग्रीव के पास आए और उनको सब समाचार सुनाया। तब सुग्रीव ने कहा सुनो रघुनाथजी! रावण का भाई आपसे मिलने आया है।

कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥

प्रभु ने कहा, हे सखा! मुझसे क्या पूछते हो, तब सुग्रीव ने कहा—हे महाराज! सुनिए इन राक्षसों की माया जानी नहीं जाती, न जाने यह काम-रूप किस कारण यहां आया है।

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बांधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥

मुझको जान पड़ता है कि यह शठ हमारा भेद लेने आया है। इसको बांधकर रखना चाहिए। यह सुनकर प्रभु बोले—हे सखा! तुमने अच्छी नीति विचारी है, परन्तु मेरा प्रण है कि मैं शरण आये हुए के भय को दूर करने वाला हूं।

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥

श्रीरामचन्द्रजी के वचन को सुनकर हनुमानजी अति हर्षित हुए, कि भगवान शरणागत वत्सल हैं।

दो०–सरनागत कहुं जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावंर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥ ४३॥

जो अपना अनहित, अनुमानकर शरण हुए को त्याग देते हैं, वे मनुष्य नीच और पापी हैं, उनको देखने से पुण्य की हानि होती है ॥ ४३ ॥

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएं सरन तजउं नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

जिसको करोड़ ब्राह्मण मारने का पाप लगा हो, शरण आने पर उसको त्याग नहीं सकता हूं जिस समय वह जीव मेरे सम्मुख होता है, उसी क्षण उसके करोड़ों पापों का नाश कर देता हूं।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरें सन्मुख आव कि सोई ॥

पापियों का यह साधारण स्वभाव है कि मेरा भजन उसको कभी अच्छा नहीं लगता। दुष्ट हृदय के पुरुष मेरे सामने कभी भी नहीं आ सकता।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुं न कछु भय हानि कपीसा ॥

जिस भक्त का मन निर्मल है वह मुझे पाता है, मुझे छल-कपट छिद्र अच्छा नहीं लगता। हे कपि-राज ! जो रावण ने भेद लेने को भेजा होगा, तो भी कुछ डर और हानि नहीं।

जग महुं सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुं तेते ॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउं ताहि प्रान की नाईं ॥

हे सखा सुग्रीव ! इस जगत में जितने राक्षस हैं, उन सबको लक्ष्मण एक पल में मार सकते हैं, जो जो डरकर शरण आया है तो उनको प्राणों की तरह रखूंगा।

दो०—उभय भांति तेहि आनहु हंसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत ॥ ४४ ॥

जैसे भी आया हो मेरे पास ले आओ, जब यह बात हंसकर कृपानिधान रामजी ने कही तब कृपालु भगवान की जय बोलकर हनुमान और अंगदादि वानर चले ॥ ४४ ॥

सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहां रघुपति करुनाकर ॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता ॥

आदर सहित विभीषण को आगे कर वानर चले, जहां करुणानिधान राम भगवान थे। विभीषण ने दूर से ही दोनों भाइयों को देखा, जो नेत्रों को आनन्द दान देने वाले हैं।

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन ॥

फिर शोभा के स्थान रामचन्द्रजी को देखा, तो रुक गए और पलकों की गति को रोककर बिभी-षण एकटक दर्शन करते रहे। रामचन्द्रजी कैसे शोभायमान हैं कि लम्बी भुजायें, कमल समान लाल नेत्र श्याम शरीर, दीनजन या भक्त के भय को दूर करने वाले हैं।

सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥

राम विभीषण मिलन और संवाद

सिंह के समान ऊंचे कंधे, सुन्दर चौड़ी छाती, मुखारविन्द असंख्य कामदेवों श्रीरामचन्द्रजी की शोभा को देखते ही प्रेम में मग्न होने के कारण विभीषण के नेत्र शरीर अति पुलकायमान हो गया, मन में धीरज रखकर कोमल वचन कहने लगे।

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम ...
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर ...

हे नाथ! मैं रावण का भाई हूं, हे देव रक्षक! निशिचर वंश में मेरा जन्म है। पाप प्यारा है, क्योंकि तामसी शरीर है, जसे उल्लू पक्षी को अंधेरे पर प्रेम होता है।

दो०—श्रवन सुजसु सुनि आयउं प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥ ४५॥

कानों से सुन्दर यश को सुनकर आया हूं। हे प्रभु! आप संसार के अनेक जन्म-मरण को दूर करने वाले है। हे आरतिहरण! हे शरणागत! आप अपने भक्तों को सु... हैं॥ ४५॥

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बि...
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयं लगावा॥

ऐसे कहकर दण्डवत करते देखा तो प्रभु प्रसन्न होकर तुरन्त उठे। विभीषण के दीन वचन प्रभु के मन को अच्छे लगे, लम्बी भुजाओं से पकड़कर विभीषण को हृदय से लगाया।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भ...
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तु...

लक्ष्मण सहित मिलकर समीप बिठाकर भक्ति के भय को हरने वाले रामचन्द्रजी ... हे लंकापति! परिवार सहित कुशल से तो हो, क्योंकि तुम्हारा कुठौर में वास है।

खल मंडलीं बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँ...॥
मैं जानउं तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनी...॥

हे सखा! दुर्जनों की मन्डली में रात-दिन बसते हो, धर्म का किस प्रकार नि... तुम्हारी सब रीति को जानता हूं, तुम बहुत चतुर हो और तुमको अनीति नहीं सुहाती।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधा...
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दा...

हे प्यारे! नरकवास भले ही अच्छा, परन्तु विधाता दुष्ट का संग न दे। यह सुन विभीषण ... लगे, हे रघुनाथजी! अब आपके चरणों को देख कुशल है, जो अपना भक्त जान दया ...

दो०—तब लगि कुसल न जीव कहुं सपनेहुं मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुं सोक धाम तजि काम॥

तब तक जीव सपने में भी कुशल नहीं होती और न मन को विश्राम ही मिलता है, ... के देने वाली कामनायें को छोड़कर, हे रामजी! आपका भजन नहीं करता॥ ४६॥

तब लगि हृदयं बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद मा...
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि ...

जो अ...

देखने ... —

...य में अनेक दुष्ट लोभ, मोह, ईर्ष्या, अहंकार और मान आदि वास करते हैं, जब तक ...ष और कमर में तरकस धारण किये हृदय में वास नहीं करते।

...न तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
...बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥

...र तरुण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेष-रूपी उल्लू आदि को सुख देने वाली है, जब तक ...ती है, हे प्रभो ! जब तक आपका प्रताप-रूपी सूर्य उदय नहीं होता।

...कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
...ल जा पर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिबिध भव सूला॥

...ब सब प्रकार कुशल हुई, आपके चरण-कमलों के दर्शन कर सम्पूर्ण भय दूर हो गये। ...स पर अनुकूल होते हो, उसको तीनों प्रकार के दुःख नहीं व्यापते हैं।

...र अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
...मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयं मोहि लावा॥

...चर अत्यन्त नीच स्वभाव वाला हूं, शुभ आचरण मैंने नहीं किया जो स्वरूप मुनियों के ...ाता सो प्रभु ! आपने प्रसन्न होकर मुझको हृदय से लगाया।

...भाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
जो ...उं नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥ ४७॥

...र सुख के समूह रामजी ! मेरे तो बहुत बड़े धन्य भाग हैं कि जो ब्रह्मा और शिवजी ...य दोनों चरण-कमलों को मैंने अपने नेत्रों से दर्शन किया॥ ४७॥

...सखा निज कहउं सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
...र होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥

...बोले, सुनो सखा ! अपना स्वभाव कहता हूं जिसको कागभुशुन्डि और शिव पार्वती ये ... जो मनुष्य चराचर का बैरी हो, वह भी भय सहित जो मेरे शरण तक आवे।

... मोह कपट छल नाना। करउं सद्य तेहि साधु समाना॥
...जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥

..., कपट, छल को त्याग कर मैं उसको उसी समय साधु के समान कर देता हूं। माता-...पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र, कुटुम्ब।

...के ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बांध बरि डोरी॥
...सी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥

...की ममता के तागों को इकट्ठा करके मन से उसकी डोरी को बटकर मेरे चरणों में बांध ...ो एक समान देखता है, जिसको कुछ इच्छा नहीं। हर्ष, शोक और भय जिसके मन में

...ज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयं बसइ धनु जैसें॥
...सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउं देह नहिं आन निहोरें॥

...मेरे हृदय में कैसे बसते हैं, जैसे लोभी के हृदय में धन बसता है। तुम्हारे समान

सन्त मुझको सदा प्यारे हैं, उन्हीं के निमित्त मैंने मनुष्य शरीर धारण किया है किसी और के भरोसे से नहीं किया।

दो०—सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥ ४८॥

जो सज्जन बड़े हित से सगुण ब्रह्म की उपासना करने वाले हैं और जो नीति में अति प्रीतियुक्त हैं तथा नेम में दृढ़ हैं, वे मनुष्य मुझको प्राण के समान प्यारे हैं और वे भी मुझे प्यारे हैं, जिनका ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है॥ ४८॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥

सुनो लंकेश! तुममें सब गुण हैं, इससे तुम मुझको बहुत प्यारे हो। श्रीरामचन्द्रजी के सुनकर सब वानर समूह कहने लगे कि कृपासिन्धु की जय हो।

सुनत बिभीषन प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयं समात न प्रेमु अपारा॥

विभीषण प्रभु की वाणी को सुनते हुए कानों से अमृत समान जानकर नहीं अंघाते हैं। बारम्बार चरण-कमल पकड़ते हुए विभीषण के हृदय में अपार प्रेम नहीं समाता है।

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥

हे देव! सुनो आप चराचर के स्वामी हो, दीनजनों के पालक हो, सबके हृदय के अन्तर्यामी घट-घट को जानते हो। मेरे हृदय में पहले वासना रही, परन्तु प्रभु के चरणों की प्रीति-रूपी नदी में बह गई।

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥

हे कृपालु अब अपनी परम पवित्र भक्ति दया करके दीजिए, जो शिवजी के मन को अच्छी लग है। यह सुन रणधीर प्रभु ने कहा 'एवमस्तु' फिर तुरन्त समुद्र का जल माँगा।

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥

हे सखा, यद्यपि तुम्हें कुछ इच्छा नहीं, परन्तु मेरे दर्शन जगत में निष्फल नहीं जाते हैं, ऐसे कह रामजी ने विभीषण के मस्तक में तिलक किया तब आकाश से फूलों की अपार वर्षा हुई।

दो०—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥ ४९॥

रावण का क्रोध तो अग्नि के समान है और सांस प्रचन्ड वायु है, उससे जलते हुए विभीषण की रक्षा की और लंका का अखंड राज्य दिया॥ ४९॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएं दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥ ५०॥

जो सम्पदा शिवजी ने रावण को दी, जब कि उसने दस सिर काट कर चढ़ा दिये, वो सम्पदा विभीषण को रघुनाथजी ने सकुचकर दी ॥ ५० ॥

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूंछ बिहाना ॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा ॥

ऐसे प्रभु को छोड़ जो दूसरों का भजन करते हैं, वे मनुष्य बिना पूंछ और सींग के पशु हैं। अपना भक्त जान उसको अपना लिया। प्रभु का यह स्वभाव सब वानरों को बहुत अच्छा लगा।

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी ॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक ॥

[illegible]स पर [illegible] सर्वज्ञ, सबके हृदय में वास करने वाले, सब चराचर में व्याप्त, सबसे रहित, उदासीन, [illegible]ीत के पालन करने वाले, माया से मनुष्य रूपधारी, राक्षस-वंश के नाशकर्त्ता रामजी यह वचन बोले—

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भांती ॥

सुनो सुग्रीव, विभीषण और वीरों! किस प्रकार यह गहरे समुद्र से उतरना चाहिए? यह सांप, मगर और अनेक जातियों की मछलियों से भरा बहुत ही गहरा तथा सब भांति से दुस्तर है।

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक ॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई ॥

यह सुनकर विभीषण ने कहा सुनो रघुनाथजी! करोड़ों समुद्रों को सोखने वाला आपका बाण है। यद्यपि आपका बाण ऐसा ही है, तो भी नीति ऐसा कहती है कि सागर के समीप जाकर प्रार्थना करनी चाहिए।

दो०—प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि ॥ ५१ ॥

हे प्रभु! समुद्र आपका कुलगुरु है, विचार कर उपाय कहेगा, जिससे बिना परिश्रम ही सब ऋक्ष और वानरों की सेना पार उतर जायेगी ॥ ५१ ॥

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई ॥
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा ॥

यह सुनकर रामजी बोले, हे सखा! तुमने अच्छा उपाय बतलाया, यही करूंगा जो दैव (प्रारब्ध) सहायक होगा। यह सम्मति लक्ष्मणजी के मन को अच्छी नहीं लगी। रामजी के वचन सुनकर [illegible] जी ने बहुत दुःख पाया।

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ॥
कादर मन कहुं एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥

हे नाथ, दैव का कौन भरोसा? मन में क्रोध कर समुद्र शोष लीजिए। दैव तो कायरों [illegible] एक आधार (सहारा) है, आलसी दैव-दैव पुकारा करते हैं।

सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥

यह सुनते ही रामचन्द्रजी बोले—ऐसा ही करेंगे, मन में धीरज रखो। ऐसा कहकर प्रभु ने लक्ष्मण को समझाया फिर रघुनाथजी समुद्र के समीप गये।

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए॥

रघुनाथजी ने पहले तो समुद्र को प्रणाम किया फिर कुश बिछाकर उसके तट पर बैठ गये। जिस समय विभीषण प्रभु के पास आये तो पीछे से रावण ने दूत भेजे।

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयं सराहहिं सरनागत पर नेह॥ ५२॥

उन दूतों ने कपट से वानर देह धारण कर सब चरित्र देखा और प्रभु के गुणों की अपने मन में बड़ी प्रशंसा की कि शरण आये हुए पर तो इनका बड़ा स्नेह है॥ ५२॥

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बांधि कपीस पहिं आने॥

प्रकट में अत्यन्त प्रेम सहित रामजी का स्वभाव वर्णन करते-करते उनको अपना छिपाव भूल गया, तब वे राक्षस प्रकट हो गये, जब वानरों ने उनको शत्रु दूत जाना तो उन्हें बांधकर सुग्रीव के पास ले आये।

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बांधि कटक चहु पास फिराए॥

उनको देखकर सुग्रीव ने कहा, सुनो सब वानरों! अंग-भंग करके इन राक्षसों को भेजो। सुग्रीव के वचन को सुनकर वानर दौड़े और उनको बांधकर सेना के चारों ओर फिराया।

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥

अनेक प्रकार से वानर उनको मारने लगे और वे दीन होकर पुकारने लगे तो भी नहीं छोड़े तब इन दूतों ने कहा कि जो हमारे नाक-कान काटे, उसको रामचन्द्रजी की आन है।

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हंसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी ने सबको अपने समीप बुलाया और दया आने से हंसकर उसी समय उनको छुड़वा दिया और एक चिट्ठी लिखकर लक्ष्मणजी ने उन दूतों को देकर कहा कि हे कुल के नाश करने वाले! लक्ष्मण के इन वचनों को पढ़ ले।

दो०—कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥ ५३॥

और उस मूढ़ रावण से जबानी भी हमारा यह सुन्दर संदेश कहना कि सीताजी को देकर मिलो नहीं तो अब तुम्हारा काल आ गया है॥ ५३॥

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरतन गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंकां आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥

यह सुनकर वे दूत लक्ष्मणजी के चरणों में मस्तक झुकाकर प्रभु के गुणों का वर्णन करते हुए चलकर और रामजी का यश वर्णन करते हुए लंका में आये और आकर रावण के चरणों में उन्होंने सिर झुकाया।

बिहसि दसानन पूंछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥

उनको देख हंसकर रावण ने यह बात पूछी कि हे शुक ! अपनी कुशल क्यों नहीं कहत हो, फिर विभीषण की कुशल कहो, जिसकी मृत्यु बहुत निकट आ गई है।

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जब कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥

उस मूर्ख ने राज्य करते हुए लंका को छोड़ दिया, वह अभागा जौ का कीड़ा होगा, फिर ऋक्ष और वानरों की सेना का वृतांत कहो, जो कठिन काल की भेजी हुई चलकर आई है।

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयं त्रास अति मोरी॥

उनके जीवन की रक्षा करने वाला कोमल चित बिचारा सागर हुआ है फिर तपस्वियों की बात कहो जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है।

दो०—की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर॥ ५४॥

तेरी उन दोनों तपस्वियों से भेंट हुई, क्या मेरा सुयश सुनकर लौट गये ? शत्रु की सेना और तेज बल क्यों नहीं कहता ? तेरा चित्त कैसा घबड़ाया हुआ सा हो रहा है॥ ५४॥

नाथ कृपा करि पूंछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥

यह सुनकर रावण से शुक बोला कि हे नाथ ! जैसे कृपा करके पूछते हैं, वैसे क्रोध को शान्त कर मेरा कहना मानिए। जब तुम्हारा भाई विभीषण जाकर मिला तो जाते ही रामचन्द्र ने उसको लंका का राज्य-तिलक कर दिया।

रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बांधि दीन्हें दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥

हमको रावण का दूत कानों से सुनकर वानरों ने बांधकर अनेक दुःख दिए और हमारे कान-नाक काटने लगे तो हमने रामचन्द्र की सौगन्ध दिलाई, तब छोड़ दिया।

पूंछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥

हे नाथ ! जो वानरों की सेना का वृतांत आपने पूछा, सो सौ करोड़ मुख से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। अनेक वर्ण के रीछ और वानरों की सेना है। भयंकर मुख और बड़े भयंकर जिनके

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महं तेहि बलु थोरा।
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला।

जिस वानर ने लंका जलाई और पुत्र को मारा, सब वानरों में उसका बल थोड़ा है अ
के योद्धा बड़े भयंकर है। उनमें बहुतों को हाथियों का बल और बड़ा तेज है।

दो०–द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥ ५५॥

द्विविद, मयन्द, नील, नल और अंगद आदिक लंगूरी वानर और विकटास्य, द
कुमुद, गर्व और जामवन्त बल की राशि हैं॥ ५५॥

ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को न
राम कृपां अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि तब शुक

ये सब वानर सुग्रीव के समान हैं, इनके समान और भी करोड़ों हैं, उनको
रामजी की कृपा से उसमें बे प्रमाण बल है, तृण के समान त्रिलोक को गिनते हैं। हैं,

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप
नाथ कटक महं सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन मारा॥

हे रावण! मैंने कानों से ऐसा सुना है कि अठारह पद्म सेनापति वानर हैं। महाबे
ऐसा कोई वानर नहीं है जो तुमको रण में जीत न ले। । रामचन्द्र

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर

वे वानर क्रोध से दोनों हाथ मलते हैं परन्तु रामजी उनको आज्ञा नहीं देते हैं
मछली और सांपों सहित समुद्र को सोख लें, नहीं तो बड़े पर्वत रख समुद्र को भी पाट

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं स
गर्जहि तर्जहिं सहज असंका। मानहुं ग्रसन चहत हहिं लंका

मलकर आपको धूल में मिला दें, ऐसे वचन सब वानर कहते हैं, गरजते हैं, उन
स्वभाव ही से सब निडर हैं, मानो तुम्हारी लंका को निगलना चाहते हैं।

दो०–सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु
रावन काल कोटि कहुं जीति सकहिं संग्राम॥ ५६॥

एक तो सब वानर रीछ स्वाभाविक शूर हैं, फिर उनके सिर पर स्वामी रामचन्द्र
रावण! वे करोड़ों कालों को संग्राम में जीत सकते हैं॥ ५६॥

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न ग
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूंछेउ नय

रामजी के तेज, बल और बुद्धि की अधिकता को सो हजार शेष भी
उनका एक ही बाण सौ समुद्र शोष सकता है तथापि नीति में चतुर राम
पूछा कि क्या उपाय किया जाये, तब उन्होंने समुद्र से विनती करने की स सुन

सु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥

वभाषण के वचन सुनकर समुद्र के समीप जाकर वे मार्ग मांगते हैं, मन में दया है। इस प्रकार करके उसका शोषण नहीं करना चाहते। यह वचन सुनते ही रावण हँसा कि जो ऐसी बुद्धि है, वानरों को सहायक बनाया है।

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥

भव से डरपोक विभीषण का वचन दृढ़ मानकर समुद्र से मचलाई ठानी है। रे मूर्ख क्या झूठी शठ के बल और बुद्धि की थाह मैंने पा लिया।

सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहा जग ताकें॥
बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥

तोक मंत्री विभीषण है, उसके विजय का ऐश्वर्य कहां तक है अर्थात कुछ भी नहीं है। औ र दूत को क्रोध बढ़ा, तब समय विचार कर चिट्ठी निकाली।

दीन्ही पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥
कहु रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥

उनके छोटे भाई लक्ष्मणजी ने यह चिट्ठी दी है। इसको पढ़वाकर कहो जिनके रावण ने हंसकर वह चिट्ठी बाएं हाथ में ली और मन्त्री को बुलवाकर

ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥ ५७॥
मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग॥ ५८॥

बातों से ही मन को प्रसन्न कर अपने वंश का नाश मत कर, रामजी से वैर करके तू की शरण में जाने पर भी नहीं बचेगा॥ ५७॥ अभिमान को छोड़कर अपने भाई तरह के चरण-कमलों के भौंरे के समान हो जा। रे दुष्ट! रामचन्द्रजी के बाण, रूपी पतङ्ग मत हो॥ ५८॥

त सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥

सुन मन में तो डर गया परन्तु सुख समझा। रावण सबको सुना कहने लगा, जैसे कोई आकाश को छूना चाहता है, ऐसे ही इस छोटे तपस्वी का वाग्विलास है।

नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
नाना परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥

हे नाथ! जो नाथ! तुम्हारी वाणी सत्य है, परन्तु अपने अभिमान स्वभाव को छोड़ आ सकता। अनेक वचन सुनो, हे नाथ! रामजी से वैर छोड़ दो।

शरीर हैं।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥

यद्यपि रामजी सम्पूर्ण लोकों के स्वामी हैं, तथापि उनका स्वभाव बहुत कोमल है। मिलते ही प्रभु तुम पर कृपा करेंगे, तुम्हारा एक अपराध भी मन में नही रखेंगे।

जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥

जानकी रघुनाथ जी को लौटा दीजिए। हे प्रभु! इतना मेरा कहना मान लीजिए।

जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥
नाइ चरन सिरु चला सो तहां। कृपासिंधु रघुनायक जहां॥

जब शुक ने जानकी को देने के लिए कहा, तब उस मूर्ख रावण ने उसको लात मारी तब शुक चरणों पर सिर झुकाकर वहां चला, जहां कृपासिन्धु रघुनाथजी थे।

करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपां आपनि गति पाई॥
रिषि अगस्ति की साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुं पगु धारा॥

रामजी को प्रणाम कर अपनी कथा सुनाई और रामजी की कृपा से अपनी गति पाई। महादेव कहते हैं हे पार्वती! यह एक ज्ञानी मुनि था। अगत्स्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। रामचन्द्र के चरणों में बारंबार प्रणाम किया फिर अपने आश्रम को गया।

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥ ५९॥

जड़ समुद्र विनती नहीं मानता, तीन दिन बीत गए, तब रामचन्द्रजी क्रोध करके बोले कि भय के प्रीति नहीं होती है॥ ५९॥

लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिध बिसिख कृसानू॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीति॥

हे लक्ष्मण! मेरा धनुष लाओ, समुद्र को अग्नि बाण से शोख लूं। मूर्ख से विनती खोटे से प्रीति स्वाभाविक कृपण से सुन्दर नीति का उपदेश।

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएं फल जथा॥

ममता में प्रीति वाले से ज्ञान की कथा कहना, महालोभी से वैराग्य का उपदेश करना क्रोधी को शान्ति की शिक्षा देना, कामी को हरि की कथा सुनाना, ऊसर भूमि में बीज बोने से जैसे कुछ फल प्राप्त नहीं होता, ऐसे ही ये सब निष्फल हैं।

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर

ऐसे कहकर रघुनाथजी ने धनुष चढ़ाया, यह मत लक्ष्मणजी के मन को अच्छा ... ने कठिन बाण धनुष पर चढ़ाया, तब समुद्र के हृदय के भीतर ज्वाला उठी।

मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥

जब मगर, सांप और मछलियों के समूह व्याकुल हुए और समुद्र ने जल-जन्तुओं को जब जलते हुए जाना। स्वर्ण के थाल में अनेक प्रकार की मणियों को भरकर ब्राह्मण-रूप से मान को त्याग कर आया।

दो०—काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥ ६०॥

कागभुशुन्डजी कहते हैं कि हे गरुड़जी! सुनो, करोड़ों उपाय से कोई क्यों न सींचे, परन्तु केला काटने पर ही फलता है, ऐसे ही नीच विनती को नहीं मानता, वह धमकाने पर ही नम्र होता है॥६०॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥

समुद्र ने डरकर प्रभु के चरण पकड़ लिए और बोला कि हे नाथ! मेरे सब अपराध क्षमा करो! आकाश, पवन, अग्नि जल, पृथ्वी इनकी स्वभाव से जड़ करनी है।

[illegible] प्रेरित मायां उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
प्रभु आयसु जेहि कहं जस अहई। सो तेहि भांति रहें सुख लहई॥

और [illegible] की भेजी हुई माया से उत्पन्न किए हुए सृष्टि के कारण हैं, सब ग्रन्थों ने ऐसा वर्णन किया है, [illegible]! आपकी आज्ञा जिसे जैसी होती है वह उसी भांति रहता है और सुख पाता है।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥
ढोल गवांर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

हे प्रभु! अच्छा किया जो मुझको शिक्षा दी, परन्तु मर्यादा सब आपकी ही बांधी हुई है। ढोल, [illegible], शूद्र, पशु, स्त्री ये सब ताड़ना के अधिकारी हैं।

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥

प्रभु के प्रताप से मैं सूखकर मर जाऊंगा और सेना उतरे तो मेरी बढ़ाई नहीं रहेगी कि जो बढ़ाई [illegible] मुझको दी है। हे प्रभु! आपकी आज्ञा माननी चाहिए, यह वेदों ने गाया है आप वही कीजिए जो आपको अच्छा लगे।

दो०—सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥ ६१॥

समुद्र का अत्यन्त नम्र वचन सुनते ही कृपालु रामचन्द्रजी मुस्कराकर कहने लगे कि जिस प्रकार [illegible] की सेना उतरे, हे तात! सो उपाय करो॥ ६१॥

[illegible] नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाईं॥
तिन्ह के परस किएं गिरि भारे। तरिहहि जलधि प्रताप तुम्हारे॥

[illegible] नील वानर दोनों भाई आपकी सेवा में हैं, इन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद [illegible] हे नाथ! जो [illegible] बड़े-बड़े पर्वत आपके प्रताप से तैरेंगे।

[illegible] जा सकता। अनेक वर्ण के [illegible] शरीर हैं। [illegible] जिनके

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउं बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बंधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुं गाइअ॥

फिर मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण कर अपने बल के अनुसार सहायता करूंगा। हे नाथ! इस प्रकार समुद्र को बांधिए, जिससे कि यह आपका सुन्दर यश तीनों ही लोक में गाया जाय।

एहिं सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥

हे नाथ! इस सन्धान किए हुए बाण से मेरे उत्तर तट के वासी दुष्ट समूह किरत जो पाप की राशि हैं, उनको मारिए। यह सुनकर दयालु रणधीर रामजी ने उसी समय सागर के मन की पीड़ा हर ली।

देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥

रामचन्द्रजी का बड़ा बल पौरुष देखकर समुद्र प्रसन्न होकर सुखी हुआ। सब चरित्र प्रभु से सुनाया और उनके चरण की वन्दना करके समुद्र चला गया।

छं०—निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥ ६॥

समुद्र अपने स्थान को गया। श्रीरामजी को उसका यह मत अच्छा लगा, यह सब चरित्र कलि के पापों को हरने वाला है, सो अपनी बुद्धि के अनुसार तुलसीदास जी ने गाया है। सुख के धाम संशय को हरने वाले और दुःखों को नाश करने वाले श्रीरामजी के गुण-गणों को सब आशा और भरोसा त्याग, सज्जन पुरुष पवित्र मन से गान करते और सुनते हैं॥ ६॥

दो०—सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥ ६२॥

सम्पूर्ण सुमङ्गल के देने वाले रघुनाथजी के गुण-गान को जो कोई आदर से सुनते हैं, वे बिना जहाज के भवसागर से पार हो जाते हैं, अर्थात राम गुण गान करने और सुनने वाले मोक्ष-पद पाते होते हैं॥ ६२॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसनेविमलवैराग्यसंतोषसम्पादनो नाम पञ्चमः सोपानः सुन्दरकाण्डे सम्पूर्णः।

॥ इति सुन्दरकाण्ड समाप्तः ॥

श्रीगणेशाय नमः
श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरित-मानस

षष्ठ सोपान
लङ्काकाण्ड

मङ्गलाचरण
श्लोक

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥ १॥

कामदेव के शत्रु श्रीशिवजी से सेवित, संसार के भय को हरने वाले, काम-रूपी मतवाले हाथी को [illegible]ने को सिंह के समान, योगियों के ईश्वर, ज्ञान के जानने योग्य, सवर्ण गुणनिधान, किसी से न जीतने [illegible] माया सम्बन्धी गुणों से रहित, विकारहीन, माया से भिन्न देवताओं के स्वामी, दुष्टों का नाश [illegible] तत्पर, ब्राह्मणों के एक देवता अथवा कन्द पुष्प के समान उज्जवल, कमल समान नेत्र वाले, [illegible] रामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूं॥ १॥

शङ्खेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गङ्गाशशाङ्कप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम्॥ २॥

[illegible] और चन्द्रमा की कान्ति के समान बहुत ही सुन्दर और शरीर वाले, व्याघ्र चर्म रूप वस्त्र [illegible] काल के काल अथवा काले सांप और कपाल-रूपी आभूषण मुण्ड माला धरे अथवा कपाल [illegible]त लगाये, गङ्गा और चन्द्रमा को प्यार करने वाले, काशी पुरी के स्वामी, कलियुग के पाप-समूहों [illegible] करने वाले, कल्याणों के कल्प-वृक्ष, चराचर के पूजनीय, पार्वती के पति, गुण-निधान, कामदेव [illegible] करने वाले श्रीशंकर भगवान को मैं प्रणाम करता हूं॥ २॥

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।
[illegible] दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे॥ ३॥

[illegible] भगवान सत्पुरुषों को कठिनता से प्रेम प्राप्त होने योग्य मोक्ष प्रदान करते हैं तथा जो [illegible] जा सकता। [illegible] शरीर हैं। [illegible] मेरे लिए कल्याण का विस्तार करें॥ ३॥

दो०—लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥ १॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि हे मन रामचन्द्रजी को क्यों नहीं भजता, जिसका काल ही धनुष है और लव, निमेष, परमाणु, युग, वर्ष और कल्प जिनके तीक्ष्ण बाण हैं ।। १ ।।

सो०—सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरै कटकु॥ १॥

समुद्र के वचन सुनकर प्रभु रामजी ने मन्त्रियों को बुलाकर यह कहा कि अब विलम्ब क्यों करते हो, पुल बनाओ तो सेना उतरे ।। १ ।।

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कहे।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं॥ २॥

यह सुनकर जामवन्त हाथ जोड़कर बोले कि हे सूर्य-वंश के ध्वजा-रूपी रघुनाथजी ! आपका नाम ही सेतु है, उस पर चढ़कर मनुष्य भवसागर के पार उतर जाते हैं ।। २ ।।

यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥

तो यह छोटा समुद्र पार होते क्या देर लगेगी, ऐसी जामवन्त की युक्ति सुन हनुमानजी बोले हे प्रभु, आपके प्रताप-स्वरूप भारी वड़वानल ने समुद्र के जल को पहले ही शोष लिया।

तब रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा॥
सुनि अति उकुति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी॥

परन्तु आपके शत्रुओं की स्त्रियां अपने-अपने पतियों को मृतक जानकर रोईं, उनके नेत्रों से निकली हुई जल की धारा से समुद्र फिर भर गया, इसी से वह खारा हो गया। हनुमान की ऐसी युक्ति को सुन कर हनुमानजी की ओर देखकर रघुनाथजी हंस पड़े।

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई॥
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥

जामवन्त ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर समुद्र की कही हुई सब बात सुनाई। रामजी का प्रताप हृदय में स्मरण कर पुल बनाओ, कुछ परिश्रम न होगा।

बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी॥
राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू॥

फिर सब वानरों को बुलाकर कहा कि तुम सब हमारी एक बिनती सुनो। रामजी का चरण-कमल [illegible]य में धारण करके रीछ और वानरों, तुम एक खेल करो।

धावहु मर्कट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा॥

हे वानर रीछगणों, तुम सब मिलकर धावा करो और वृक्ष, पर्वतों को ले-लेकर आओ। यह सुन [illegible]वानर रीछ हूहा शब्द कर रामजी के प्रताप-समूह की जय बोलते हुए चले।

दो०—अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ॥ २॥

वानर रीछ बहुत ऊंचे वृक्ष और पर्वत समूह खेल से ही उठा लेते हैं और लाकर नल-नील को देते हैं और वे दोनों भाई बनाकर पुल को रचाते जाते हैं॥ २॥

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं॥
देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहसि कृपानिधि बोले बचना॥

बड़े-बड़े पर्वतों को वानर लाकर दे रहे और गेंद के समान नल-नील उनको ले रहे, नल-नील सुन्दर पुल बना रहे, उनकी बहुत सुन्दर रचना देख कृपासिन्धु रामजी हंसकर बोले।

परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥
करिहउं इहां संभु थापना। मोरे हृदयं परम कलपना॥

यह बहुत सुन्दर रमणीक पृथ्वी है इनकी असंख्य महिमा कही नहीं जाती। यहां शिवजी की स्थापना करूंगा, मेरे मन में यह बड़ी अभिलाषा है अथवा परम सँकल्प है।

सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥

यह सुन सुग्रीव ने दो दूत भेजे, वे श्रेष्ठ मुनिगणों को बुलाकर ले आए। शिव लिङ्ग की स्थापना करके विधिपूर्वक पूजा करके कहा—शिवजी से प्यारा मुझको दूसरा कोई नहीं है।

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुं मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥

जो शिव का वैरी होकर मेरा भक्त कहावे तो वह स्वप्न में भी मुझको अच्छा नहीं लगता है शिव जी से विमुख हो मेरी भक्ति चाहे वह मूर्ख और नीच है या उसकी बुद्धि थोड़ी है।

दो०—संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुं बास॥ ३॥

शिवजी का प्यारा हो और मेरा द्रोही हो अथवा शिव का द्रोही हो और मेरा दास हो। वे मनुष्य कल्प-भर घोर नरक में वास करते हैं॥ ३॥

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥

जो रामेश्वरजी का दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर बैकुण्ठ को जायेंगे, जो गङ्गा-जल लाकर सेतु-बन्धु रामेश्वर को चढ़ायेगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्ति पावेगा।

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥

जो कामना रहित हो और छल को छोड़कर सेवा करेगा, उसको शिवजी मेरी भक्ति देंगे, मेरे रचे हुए सेतु का दर्शन करेंगे वे बिना परिश्रम भवसागर पार हो जायेंगे।

राम बचन सब के जिय भाए। मुनिबर निज निज आश्रम आए॥
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती॥

रामजी के वचन सबके मन को अच्छे लगे और श्रेष्ठ मुनि अपने आश्रम को आये। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! रघुनाथजी की यह रीति है कि शरण में आये हुए पर सदा प्रीति करते हैं।

बांधा सेतु नील नल नागर। राम कृपां जसु भयउ उजागर॥
बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई॥

चतुर नील-नल ने पुल बांधा रामजी की कृपा से यश सर्वत्र फैल गया। जो आप डूबते हैं औरों को डुबाते हैं वे परस्पर बड़ी नाव के समान हो गए।

महिमा यह न जलधि कइ बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कइ करनी॥

यह समुद्र की महिमा नहीं कही न पत्थरों का गुण और वानरों की करतूति कही।

दो०—श्रीरघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥ ४॥

श्री रघुनाथजी के प्रताप से समुद्र पर पत्थर तैरे वे मन्दबुद्धि हैं जो रामजी को छोड़कर और स्वामी को जाकर भजन करते हैं॥ ४॥

बांधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गर्जहिं मर्कट भट समुदाई॥

पुल बांधकर बहुत दृढ़ बनाया देखकर कृपानिधि के मन को अच्छी लगी। रामजी की सेना चली जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जाता, वानर आदि सब योद्धा गरजने लगे।

सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई॥
देखन कहुं प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥

सेतुबन्ध के किनारे पर चढ़कर दयालु रामचन्द्रजी समुद्र की अधिकता देखने लगे। दया के समूह प्रभु रामचन्द्रजी को देखने निमित्त सब जलचर के समूह प्रगट हुए।

मकर नक्र नाना झष ब्याला। सतजोजन तन परम बिसाला॥
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं॥

अनेक मगर, घड़ियाल, मछली, सांप सबका सौ योजन का बहुत बड़ा शरीर है। उनमें ऐसे भी हैं जो एक को पकड़कर खा जाए एक के डर से एक भाग जाते हैं।

प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥

श्रीरामचन्द्रजी को सब देखते हैं, टारने से भी नहीं टरते और सब मन में प्रसन्न हो सुखी हुए।

तिन्ह की ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी॥
चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपि दल बिपुलाई॥

उनकी ओट में जल नहीं देख पड़ता हरिका रूप देखकर सब मग्न हो गए। रामजी का दल चला जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जाता, वानर सेना की अधिकता कौन वर्णन कर सकता है।

दो०—सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥ ५॥

सेतबन्ध पर बड़ी भीड़ हुई, तब वानर आकाश मार्ग से होकर उड़ने लगे और अनेक वानर जलचरों के ऊपर चढ़कर बिना श्रम पार जाने लगे ॥ ५ ॥

असि कौतुक बिलोकि द्वौ भाई। बिहंसि चले कृपाल रघुराई ॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ॥

यह खेल दोनों भाई देख रघुनाथजी हँसकर चले। सेना सहित रामचन्द्रजी सागर पार हुए। यूथपतियों की भीड़ इतनी हुई कि कुछ कहा नहीं जाता।

सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुं आयसु दीन्हा ॥
खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालु कपि जहं तहं धाए ॥

समुद्र पार रामजी ने डेरा किया और सब वानरों को आज्ञा दी कि सुन्दर फल, फूल जाकर खाओ यह सुनते ही रीछ-वानर जहां-तहां दौड़े।

सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सन्मुख सिखर चलावहिं ॥

सब वृक्ष रामजी के हित, ऋतु ऋतुराज के समय का नियम त्याग कर फल गए, मीठे फल खाए और वृक्ष हिलाने लगे और लँका के सामने पत्थर फेंकने लगे।

जहं कहुं फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं ॥
दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजसु देहि तब जाना ॥

जहां कहीं फिरते हुए राक्षस को पावें तो उनको धरकर नाच नचावें। दांतों से उसके नाक-कान काटकर प्रभु का सुयश जब वह कहें, तब जाने दें।

जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कहि सब बाता ॥
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दस मुख बोलि उठा अकुलाना ॥

जिन निशचरों के नाक-कान काट लिए, उन सबों ने रावण की सेना से आगमन का सब समाचार कहा। कानों से समुद्रसेतु का बन्धन सुनते ही रावण घबरा गया और दसों मुख से बोलकर व्याकुल हो उठा।

दो०—बांध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ॥ ६ ॥

क्या सचमुच जलनिधि, नीरनिध, जलधि सिन्धु, वारिश, तोयनिधि, पंकनिधि और उधति, पयोधि क्या नदीश को बांध दिया ॥ ६ ॥

निज बिकलता बिचारि बहोरी। बिहंसि गयउ गृह करि भय भोरी ॥
मंदोदरी सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बंधायो ॥

फिर अपनी व्याकुलता को समझ और हँसकर घर को चला गया। मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु खेल-ही-खेल में समुद्र पार सेतु बंधवाकर उतर आये।

कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी ॥
चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा ॥

तब हाथ पकड़ कर पति को अपने घर लाई और बहु त ही मनोहर वाणी बोली। चरणों में मस्तक नवाय, अन्चल पसार कर बोली। हे स्वामी ! क्रोध को त्याग कर हमारे वचन सुनो।

नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥

हे नाथ! बैर उसी से करना चाहिए कि जिससे बुद्धि और बल करके जीत सके। तुममें और रघुनाथजी में किस प्रकार अन्तर है जिस प्रकार निश्चय ही जुगनू और सूर्य में है।

अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे॥
जेहिं बलि बांधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥

महाबली मधुकैटभ को मारा और बड़े वीर दितिपुत्र, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिप आदि दैत्य मारे जिस प्रभु ने राजा बलि को बांधकर पाताल भेजा और सहस्त्राबाहु को मारा उसी विष्णु भगवान ने पृथ्वी का भार उतारने को राम नामक अवतार लिया है।

तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा॥

हे नाथ! जिनके हाथ में काल, कर्म और गुण हैं उनसे विरोध मत करो।

दो०—रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुं राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ॥ ७॥

रामजी को जानकी सौंप दीजिए और चरण-कमलों में मस्तक नवा पुत्र को राज्य देकर वन में जाय रघुनाथजी का भजन कीजिये॥ ७॥

नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गए न खाई॥
चाहिअ करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते॥

हे नाथ! रामचन्द्रजी दीनों पर दया करते हैं शरण जाने पर रक्षा करेंगे देखो सामने जाने से तो बाघ भी नहीं खाता है। जो कुछ करना चाहिये सो सब तुम कर चुके, सुर और असुर चर-अचर को जीत चुके हो।

संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेंपन जाइहि नृप कानन॥
तासु भजन कीजिअ तहं भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता॥

हे दशमुख स्वामी! सन्तजन ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन में राजा को वन में जाना चाहिये। हे स्वामी! वहां जाकर उस प्रभु का भजन करना चाहिए जो उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाला है।

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥
मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी॥

वह रघुनाथजी दीनों पर दया करने वाले हैं, हे नाथ! ममता और अभिमान छोड़ राम जी को भजो। श्रेष्ठ मुनिवर जिस प्रभु के निमित्त यत्न करते हैं राजा राज्य को छोड़ त्यागी हो जाते हैं।

सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहुं पुर अति पावन॥

वही कौशल्याधीश रामजी घर बैठे हुए तुम्हारे ऊपर कृपा करने को आए हैं। हे स्वामी जो तुम मेरी शिक्षा मानोगे तो तीनों लोक में तुम्हारा पवित्र और सुन्दर यश होगा।

दो०—अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात॥ ८॥

ऐसे कह नेत्रों में आंसू भरकर चरण पकड़ लिये; शरीर कांपने लगा और बोली हे नाथ! रामचन्द्रजी के चरणों का भजन करो, जिससे मेरा सुहाग अचल हो जाये॥ ८॥

तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई॥
सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥

तब रावण ने मन्दोदरी को उठाया और वह दुष्ट अपनी बड़ाई अपने मुख से करने लगा। हे प्यारी! सुन तूने व्यर्थ भय माना है, जगत में दूसरा योद्धा कौन मेरे समान है?

बरुन कुबेर पवन जम काला। भुजबल जितेउं सकल दिगपाला॥
देव दनुज नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें॥

वरुण, कुबेर, यम, काल ये सब दिग्पाल मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीत ही लिए। देवता, दैत्य मनुष्य सब मेरे वश में है, फिर किस कारण से तुमको डर उत्पन्न हुआ है।

नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभां बहोरि बैठ सो जाई॥
मंदोदरी हृदयं अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना॥

अनेक भांति से उसको समझाकर, फिर वह सभा में जाकर बठा। मन्दोदरी ने ऐसा अपने हृदय में अनुमान किया कि काल के वश में होने के कारण अभिमान हो आया है।

सभां आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा। करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा॥
कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा॥
कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥

सभा में जाकर मन्त्रियों से इस प्रकार पूछने लगा कि शत्रु से किस भांति युद्ध करना चाहिए, मन्त्री कहने लगे, हे राक्षसराज! सुनो, स्वामी होकर आप बारम्बार क्यों पूछते हो, कहो कौन भय है कि जो विचार किया जाय, मनुष्य, वानर, रीछ तो हमारे भोजन हैं।

दो०—सब के बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि॥ ९॥

सब मन्त्रियों के वचन सुनकर प्रहस्त (रावण का पुत्र) हाथ जोड़कर कहने लगा, हे नाथ! नीति के विरुद्ध बर्ताव न करो। इन मन्त्रियों की बुद्धि तो बहुत थोड़ी है॥ ९॥

कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती। नाथ न पूर आव एहि भांती॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महुं सबु गावा॥

ये सब मन्त्री ठकुर सुहाती (मुंह देखी) कहते हैं। हे नाथ! इस प्रकार भला नहीं होगा। समुद्र लांघकर एक वानर आया, उसका चरित्र मन में सब निशाचर गाते हैं।

छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू॥
सुनत नीक आगें दुख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा॥

उस समय तुममें से किसी को भूख नहीं रही, नगर जलाते समय उसको पकड़कर क्यों नहीं खा

सके। भाव यह है कि एक वानर को नहीं खा सके तो सब सेना को कैसे खाओगे सुनते में तो अच्छा, परन्तु आगे दुःख पाओगे, मन्त्रियों ने ऐसा मत प्रभु को सुनाया है।

जेहिं बारीस बंधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥

खेल में ही जिसने समुद्र को बंधवाकर सेना के सहित पार उतर कर सुबल पर्वत पर डेरा डाला। उसको मनुष्य जानकर हम खा जायेंगे, यह वचन सब गाल फुलाकर कहते हैं।

तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥

हे तात! मेरा वचन बहुत आदर से सुनो, मुझको अपने मन में डरपोक मत गिनना, प्यारी वाणी जो सुनते और जो कहते है, ऐसे मनुष्य जगत में बहुत हैं।

बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥

जो वजन बहुत अच्छे हैं, परन्तु सुनने में कठोर होते हैं। ऐसे वचन जो कहते और सुनते हैं वे मनुष्य संसार में बहुत थोड़े हैं। यह नीति है कि पहले दूत भेजिए फिर सीताजी देकर प्रीति कर लीजिए।

दो०—नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि॥ १०॥

स्त्री पाकर लौट जायें तो रारि न बढ़ाइए, नहीं तो सामने समर में हे नाथ! हठ से युद्ध कीजिये॥ १०॥

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जम तोरा॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई॥

हे प्रभु! जो यह मेरा मत मानो तो दोनों प्रकार से जगत में तुम्हारा सुयश होगा। यह सुन पुत्र से रावण ने क्रोध करके कहा कि रे मूर्ख! ऐसी बुद्धि तुमको किसने सिखाई?

अबहीं ते उर संसय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा॥

अभी से तेरे हृदय में संदेह हो गया रे पुत्र! बांस की जड़ में कांटेदार पौधे की भांति हुआ। पिता की टेढ़ी अति भयंकर वाणी सुनकर प्रहस्त कठोर वचन कहकर घर को चला।

हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहुं भेषज जैसें॥
संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा॥

हित की सम्मत्ति तुमको कैसे अच्छी नहीं लगती, जैसे काल के वश में हुए रोगी को औषधि सांझ का समय जान सभा से रावण अपनी बीसों भुजाओं को देखता हुआ घर को चला।

लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहं होइ अखारा॥
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। लागे किंनर गुन गन गावन॥

लंका के शिखर पर सुन्दर और बहुत विचित्र स्थान था। वहां नृत्य, मन्दिर, अखाड़ा होता था। उस मन्दिर में जाकर रावण बैठ गया, किन्नर और गन्धर्व गाने लगे।

बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना॥

ताल, पखावज, वीणा बजने लगे, चतुर अप्सरायें नाचने लगीं।

दो०—सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास॥ ११॥

वह रावण सौ इन्द्र के समान सदा आनन्द भोगता है, यद्यपि बड़ा प्रबल शत्रु सिर पर है तथापि उसके मन में कुछ डर नहीं है॥ ११॥

इहां सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी॥

यहां सुबेल पर्वत पर रघुनाथजी सेना समेत उतरे जिससे बड़ी भीड़ हुई। उस पर्वत का एक सुन्दर शिखर देखा जो बहुत ऊंचा जिसकी भूमि समान और विशेष उज्जवल है।

तहं तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला॥

वहां वृक्षों के कोमल पत्ते और सुन्दर फूल लक्ष्मणजी ने अपने हाथों से रचकर बिछाये, उस पर सुन्दर कोमल मृगछाला बिछाया, उस आसन पर दयालु रामचन्द्रजी विराजमान हुए।

प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥
दुहुं कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥

प्रभु ने अपना सिर सुग्रीव की गोद में रख लिया और बाईं दाहिनी ओर धनुष और तरकस रख लिया, दोनों कर-कमलों से बाणों को सुधार रहे और विभीषण के कानों में लगकर कुछ सलाह कर रहे थे।

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥

बड़े भाग्यवान अङ्गद और हनुमानजी अनेक प्रकार से प्रभु के चरण-कमल दबा रहे थे, प्रभु के पीछे लक्ष्मणजी आसन से बैठे, कमर में तरकस और हाथ में धनुष धारण किए हैं।

दो०—एहि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन।
धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन॥ १२॥
पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक॥ १३॥

इस प्रकार करुणाशील और गुणों के धाम रामचन्द्रजी विराजमान थे। धन्य वे पुरुष हैं जो इस ध्यान में सदा लवलीन रहते हैं॥ १२॥ पूर्व दिशा की ओर देखकर प्रभु ने उदय हुए चन्द्रमा को देखा तो सबसे कहा—चन्द्रमा को देखो यह सिंह के समान निर्भय है॥ १३॥

पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी॥

पूर्व दिशा-रूपी पर्वत की कन्दरा में वास करता है बड़ा प्रतापी है, तेज और बलवान राशि है। अन्धकार-रूपी मतवाले साथी के मस्तक को चीरने वाला है, ऐसा सिंह के समान चन्द्रमा आकाश-रूपी वन में भ्रमण करता है।

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुं मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥

आकाश-रूपी वन में गजमुक्ता बिखर रहे हैं वही नक्षत्र हैं, जो रात्रि-रूपी सुन्दर स्त्री का शृंगार है। फिर प्रभु ने कहा- चन्द्रमा में यह श्यामता है, सो क्या है? हे भाइयों! अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कहो।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि कहुं प्रगट भूमि कै झांई॥
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महं परी स्यामता सोई॥

यह सुन सुग्रीव ने कहा सुनो रामजी! चन्द्रमा में भूमि की छाया प्रकट देख पड़ती है, कोई कहने लगा चन्द्रमा को राहु ने मारा है, उसके हृदय में उसी चोट की श्यामता पड़ गई है।

कोउ कह जबबिधि रतिमुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥

किसी ने कहा, जब ब्रह्मा ने रति का मुख बनाया तब चन्द्रमा का सारांश हर लिया था, यह छेद चन्द्रमा के हृदय में प्रकट होता है, उसी मार्ग से आकाश के ऊपर की छाया देख पड़ती है।

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥

प्रभु ने कहा कि विष चन्द्रमा का भाई, सो बहुत प्यारा होने से इसने अपने हृदय में उसे बसाया है। विष से मिली हुई किरणों के समूह को फैलाकर विरही पुरुष और स्त्रियों को जलाता है, इस कथन से रामजी नें अपना वियोग दर्शाया है।

दो०—कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥ १४॥

यह सुनकर हनुमान जी ने कहा सुनो प्रभो! चन्द्रमा आपका प्यारा दास है। इस कारण आपकी मूर्ति उसके हृदय में बसती है, वही श्यामता चमक रही हैं॥ १४॥

पवन तनय के बचन सुनि बिहंसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपानिधान॥ १५॥

हनुमानजी के वचन सुनकर सुजान रामजी हंस पड़े, फिर दक्षिण दिशा की ओर देख कर कृपा-निधान भगवान बोले॥ १५॥

देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा॥

हे विभीषण! दक्षिण दिशा को देखो, मेघ घुमड़ रहा है और बिजली चमक रही है। मीठे स्वर से भयंकर मेघ ऐसे गरजते हैं, मानो कठोर ओलों की वर्षा हो रही है।

कहत बिभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥

यह सुन विभीषण कहने लगे, सुनो कृपालु रघुनाथजी! न यह बिजली है, न मेघमाला है। हे प्रभु! लंका के शिखर पर सुन्दर स्थान है, वहां रावण का अखाड़ा (नाचघर) है।

छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अति कारी॥
मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका॥

मेघों के समान उमड़ा हुआ छत्र जो रावण के सिर पर लगा हुआ है, वही मानो मेघों की बहुत काली घटा हो। हे प्रभु! मन्दोदरी के जो कर्णफूल हैं, उनकी आभा जो छत्र में पड़ती है, वही मानो बिजली चमकती हो।

बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना॥

और हे देव! सुनो सुन्दर ताल मदंग बज रहे हैं, वही मधुर शब्द सुनाई दे रहा है। यह सुनकर प्रभु ने मुस्कराकर रावण का अभिमान समझ धनुष चढ़ाकर बाण लगाकर छोड़ा।

दो०—छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥ १६॥

रावण के छत्र, मुकुट, मन्दोदरी के कर्णफूल, सबको एक ही बाण से काट दिया। सब सभा के देखते पृथ्वी पर गिर पड़े, यह भेद किसी ने नहीं जाना॥ १६॥

अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग॥ १७॥

ऐसा खेल करके रामजी का बाण आकर उनके तरकस में प्रवेश कर गया। रावण की सभा में बड़ा रस भंग हो गया, यह देखकर बहुत डर हो गई कि यह क्या हो गया॥ १७॥

कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा॥
सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥

न पृथ्वी कांपी, न बहुत पवन ही चला, न किसी ने कोई अस्त्र-शस्त्र नेत्रों से देखा। सब अपने मन में विचार कर सोचने लगे कि यह तो रावण को बड़ा ही अपशकुन हुआ।

दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहसि बचन कह जुगुति बनाई॥
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥

जब रावण ने देखा कि सभा डर गई, तब हँसकर युक्ति बना यह वचन कहने लगा—सिर गिरने से भी जिसका सदा शुभ होता है, उसको मुकुट गिरने में अपशकुन कैसा?

सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥

अपने-अपने घर जाकर शयन करो, यह आज्ञा पाकर सब सिर झुकाकर अपने-अपने घर को गये। मन्दोदरी के हृदय में तभी से सोच बस गया जब से कर्णफूल पृथ्वी पर गिरे।

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू॥

नेत्रों में जल भर दोनों हाथ जोड़कर कहने लगी, हे प्राणपति ! मेरी विनती सुनो। हे कन्त ! रामजी का विरोध छोड़ दो, उनको मनुष्य जानकर हृदय में हठ मत धरो।

दो०—बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥ १८ ॥

हे रघुवंश में मणि-रूप श्रीरामजी संसार रूप हैं। इस मेरे वचन पर विश्वास करो। जिनके अङ्ग में लोकों की कल्पना की जाती है, ऐसा वेदो ने कहा है ॥ १८ ॥

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अंग अंग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥

पाताल विश्व-रूप भगवान का चरण है, ब्रह्मलोक मस्तक है, अन्य लोक अंग-अंग में ठहरे हैं, भयंकर का भृकुटी विलास (भौंह का फेरना) है, सूर्य नेत्र हैं, मेघमाला केस है।

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥

जिस प्रभु की नासिका अश्विनी कुमार है, रात-दिन असंख्य पलकें खोलना बन्द करना है। दसों दिशायें जिनके कान हैं, ऐसा वेदों में कहा है, पवन श्वांस है, वेद भगवान की वाणी है।

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥

लोभ जिनके होंठ हैं, यम दांत हैं, बड़े तीक्ष्ण हैं जो जगन्मोहनी, माया हास्य विलास है और दिग्पाल भुजा है, अग्नि मुख है, वरुण जिह्वा हैं, जगत की उत्पत्ति पालन संहार चेष्टा है।

रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥

अठारह भार वनस्पति रोमावलि हैं, पर्वत हड्डी हैं, नदियां नसों का समूह है, समुद्र पेट है, नरक गुदा आदि नीचे की इन्द्रिय हैं, ऐसे विस्मय (विराट-रूप) प्रभु की बहुत सी कल्पना है।

दो०—अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥ १९ ॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥ २० ॥

जिनके शिव अहंकार, ब्रह्मा-बुद्धि, चन्द्रमा, मन, महत्तत्व, चित्त (चैतन्यता) है, मनुष्य आदि चराचर में वास है, ऐसे रूप की राशि भगवान संसार मय है ॥ १९ ॥ ऐसा विचार कर सुनो प्राणपति ! प्रभु से वर छोड़कर रामचन्द्रजी के चरणों में प्रीत करो, जिससे मेरा सुहाग न जाये ॥ २० ॥

बिहंसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥

मन्दोदरी के वचन कानों से सुन रावण हंसा कि अहो ! मोह की महिमा बलवान है। स्त्रियों का स्वभाव कविजनों ने सत्य कहा है कि आठ अवगुण सदा उनके हृदय में रहते हैं।

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥

बिना विचारे काम करने लगना, झूठ, चञ्चलता, कपट, डर, अज्ञान, अपवित्रता और निर्दयी होना ये आठ अवगुण हैं, शत्रु का समस्त रूप मैंने कहा और मुझे बहुत भय दिखाया।

सो सब प्रिया सहज बस मोरें। समुझि परा प्रसाद अब तोरें॥
जानिउं प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई॥

हे प्यारी! वे सब सहज ही मेरे वश में हैं, अब तेरे प्रभाव से समझ पड़ा। हे प्यारी! तेरी चतुरता मैंने जानी कि इसी बहाने से तैंने मेरी प्रभुता कही है।

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि॥
मंदोदरि मन महुं अस ठयऊ। पियहि काल बस मतिभ्रम भयऊ॥

हे मृगनयनी! तेरी बात कही गूढ़ है सो समझने में सुख देने वाली और सुनने से भय को लुभाने वाली है, तब मन्दोदरी ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया कि पति को काल के मति भ्रम हो गया है।

दो० एहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति सभां गयउ मद अंध॥ २१॥

बहुत प्रकार से रावण सारी रात बकवास करता रहा। प्रातःकाल होने पर सहज ही निडर वह लंकापति अभिमान से अन्धा रावण सभा में गया॥ २१॥

सो०—फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयं न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥ ३॥

यद्यपि मेघ अमृत की वर्षा करे तो भी जैसे बेत फूलता-फलता नहीं है, वैसे ही मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं होता जो ब्रह्मा के समान भी गुरु मिलें॥ ३॥

अथ क्षेपक

रावण से मन्त्री शुक द्वारा राम सेना का वर्णन

दो०—मंत्रिन सहित दशानन, चढ़ेउ धौर हर जाइ।
सुक सारन कहं राजसन, देखहु दल समुदाइ॥ १॥

रावण मन्त्रियों समेत जाकर लंका के ऊंचे शिखर पर चढ़ा, तब रावण के मन्त्री शुक सारन ने राजा से कहा कि सेना की भीड़-भाड़ को भी देखो॥ १॥

यह जो सिंह नाद किलकाई। तरुवर सप्त समान ऊंचाई॥
सहसकोटि अतुलित बलवाना। संग इनके बानर परिमाना॥

यह जो सिंहनाद करके किलकारी मारते हैं और सुन्दर सात वृक्षों के बराबर ऊँचे हैं। इनके साथ में हजार करोड़ बड़े बली बन्दरों का परिणाम है।

रन अजीत अरु सहज असंका। नाद सुने कांपे गढ़ लंका॥
लगि अकास बनचर लंगूरे। जनु ऋतु पावस धनु नभ पूरे॥

और जो लड़ाई में जीते न जायं और सहज ही में निर्भय हैं और जिनके शब्द को सुनते ही लंका गढ़ कांपता है और जिन वनचरों की पूंछें आकाश से ऐसे लग रही हैं, मानो वर्षा ऋतु के धनुष आकाश में पड़ रहे हैं।

बिसकर्मा के सुत अभिमानी। इन सागर बांदेउ अनुमानी॥
बसहिं ताम्रगिरि कन्दर माहीं। गोदादरी बिमल जल पाहीं॥

सो ये विश्वकर्मा के अभिमानी पुत्र हैं, इन्होंने ही विचार कर समुद्र को बांधा है। ये ताम्रगिरि की कन्दरा में रहते हैं और गोदावरी का निर्मल जल पीते हैं।

अति बल आगे धावहिं बीरा। इन पर कृपा करहिं रघुबीरा॥
इनके परस किग गिरि सीला। जल में तरहिं नाम नल नीला॥

ये बड़े बली योद्धा आगे दौड़ते हैं और इन पर रामचन्द्रजी दया करते हैं। इनके ही छूने से पर्वत की शिला जल पर तैरती है और इनके नाम नल और नील हैं।

दो०—पद्म अठारह कपि कटक, चल इनके भुज छांह।
अपने हाथ सुपुष्प ले, रघुपति पूजी बांह॥ २॥

अठारह पद्म बन्दरों की सेना इनकी भुजा की छवि में चलती है और रघुनाथजी ने अपने हाथों से सुन्दर फूल लेकर भुजाओं की पूजा की है॥ २॥

यह जो आवत अचल समाना। चौदह ताल ऊंच परमाना॥
बास पुलिन्द के तट करई। अंबुद ऊपर यह संचरई॥

यह जो पर्वत के समान आता है कि चौदह ताल वृक्षों के समान ऊँचा है। जो पुलिन्दा (नदी) के किनारे रहता है, यह बादलों के ऊपर भ्रमण करता है।

रक्त कमल केसर सम देहा। जनु अकास संध्या कर मेहा॥
हतै मेदनी पूंछ भ्रमाई। लंका सोह चितै जनु खाई॥

लाल कमल के केसर के समान इनका शरीर ऐसा लगता है, मानो आकाश में संध्या का बादल है। यह पूंछ फिराकर पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े कर सकता है और लंका की ओर देखने में ऐसा सुहाता है, मानो खा जायेगा।

बाली सुत तारा की जायो। अति जुझार रघुपति मन भायो॥
मन में जपै राम कर नाऊ। निसि दिन तिहि कर एक स्वभाऊ॥

यह बाली का पुत्र तारा से उत्पन्न हुआ अङ्गद बड़ा लड़ने वाला है और रघुनाथजी के मन को अच्छा लगता है। रात-दिन मन में रामजी का नाम जपता रहता है। इसका यही एक स्वभाव है।

करै बज्र बासव कर भंगा। उदयाचल कहं लेइ उछंगा॥
सेना पति यह सबके आगे। रघुपति कृपा भाग इहि जागे॥

यह इन्द्र के वज्र को तोड़ सकता है और उदयाचल को गोद में ले सकता है। यह सबके आगे सेनापति है, रामजी की दया से इनके भाग्य खुल गये हैं।

दो०—पांव भूमि जो चापहा, पन्नग होहि अकाज।
पांच पद्म वानर लिये, यह अंगद युवराज॥ ३॥

जो पांव से पृथ्वी को दबा दे, तो शेषजी का अकाज हो जाय अर्थात घबराकर पृथ्वी धारण न कर सकें, सो पाँच पद्म बन्दरों को साथ लिए युवराज अङ्गद हैं॥ ३॥

यह जो स्वेत लसै तनु रेखा। जनु रूपे कर शृंग सुवेखा॥
दीर्घ केश दारुण भुज दण्डा। चलत चपल बल बुद्धि प्रचण्डा॥

और यह कि जिसके शरीर में सफेद-सफेद धारियां हो रही हैं, सो ऐसी लगती हैं जैसे चांदी के पर्वत के सुन्दर शिखर हैं और जिसके लम्बे बाल, कठिन भुजदण्ड हैं और जो चलने में चञ्चल और बल व बुद्धि में व्रती है।

बास करै जलनिधि के तीरा। पान करै गोमती सुनीरा॥
नृप सुग्रीव केर अधिकारी। सबल ब्यूह यह रचै संवारी॥

और समुद्र के किनारे निवास करता है और गोमती के सुन्दर जल का पान करता है, सो राजा सुग्रीव का अधिकारी है, यह बलवान सेना को संभाल कर सजाता है।

बल अरु बुद्धि न इहि सम आना। इहि कर पुरषारथ जग जाना॥
जेहि दिन जनमेउ बल अधिकाई। चढ़ेउ गगन शशि देख ललाई॥

इनके समान बल और बुद्धि दूसरे में नहीं, इसके पराक्रम को संसार जानता है जिस दिन जन्म लिया था, उसी दिन बल की अधिकता से आकाश में चन्द्रमा की ललाई देखकर चढ़ गया था।

चन्द्रहि धरे गगन कहं उछरेउ। सत्तर योजन ते पुनि फिरेउ॥

चन्द्रमा को पकड़कर आकाश में उछल गया था और सत्तर योजन से लौटा।

दो०—मर्कट कोटि पचास सो, रहै सर्बदा साथ।
कालहु ते रण में जुझै, कुमुद नाथ कपिनाथ॥ ४॥

इनके साथ में पचास-सौ करोड़ बानर सदा रहते और लड़ाई में काल से भी जूझ सकता है, इन बन्दरों के स्वामी का नाम कुमुद है॥ ४॥

यह देखहु जो घटा सुहाई। मानों नभ भोंदों बहुताई॥
आगे पीछे दस दिसि धावहिं। सिला श्रंग तरु तोरत आवहिं॥

यह देखो कैसी घटा से शोभायमान हैं मानो बड़ी भारी सावन-भादों की घटा हो। वानर आगे-पीछे दशों दिशाओं को दौड़ते हैं और शिला, शिखर और वृक्षों को तोड़ते चले आते हैं।

सहस नाग बल धरहिं समाना। सत्त पद्म इन कर परनामा॥
ये ऋच्छप कासी के बासी। अजरअजित अविचल अविनासी॥

हजार हाथियों के समान बल रखते हैं और इनकी संख्या सात पद्म है। यह रीछों के पति काशी के रहने वाले हैं, जो न तो लड़ाई में टलते हैं और न इनका नाश होता है।

तीछन दन्त नखायुध धारी। गहि मारहिं गज दन्त उपारी॥
इन ऋच्छन कर यूथ अपारा। धूमकेतु यह पालन हारा॥

इनके पैने दांत और नख ही हथियार हैं और दांत उखाड़ कर हाथियों को पकड़-पकड़कर मारते हैं। इन रीछों की सेना अपार है और इनको पालने वाला धूमकेतु है।

इन्ह कर ज्येष्ठ बन्धु जंबवन्ता। जेहि के बल कर अहहिं न अन्ता॥
तीन लोक से जूझै पारै। संकट पर सुमेरु उखारै॥

इनका बड़ा भाई जामवन्त है जिनके बल का छोर नहीं है और तीनों लोकों से लड़ाई ठान सकता है और कष्ठ पड़ने पर सुमेरु को उखाड़ सकता है।

बसे असंक नर्मदा नीरा। वज्र समान अभेद शरीरा॥

सो नर्मदा के किनारे निर्भय रहता है, जिसका वज्र के समान अभेद्य (कठोर) शरीर है।

दो०—राजा कर यह मन्तरी, रघुपति को प्रिय दास।
कालहु ते जूझै समर, नेक न लेइ उदास॥ ५॥

यह राजा सुग्रीव का मन्त्री और रामचन्द्रजी का प्यारा दास है, वह काल से भी लड़ाई लड़े और तनिक भी उदासी न लेवे अर्थात लड़ाई ही करता रहे॥ ५॥

अब देखहु जहँ यूथ अपारा। पीत वर्ण हो गयऊ पहारा॥
बाल अरुन रवि किरन सछूटी। कुम्कुम उबटि दिशा जनु फूटी॥

अब इस अपार समूह को देखो जिससे पर्वत पीला हो गया है। सवेरे के लाल सूर्य की किरण सी छूटी हुई है, मानो दिशा में केसर का माट फूट गया है।

चोबीस अर्बुद इहिकर जूहा। सहज बृन्द सो कोटि समूहा॥
शिला शृगं जे आगे परहीं। पायन माड़ि किरकिरा करहीं॥

इसका झुण्ड चौबीस अरब है और सौ करोड़ हजार बृन्द इसका पूरा-पूरा समूह है जो शिला और शिखर इसके आगे पड़ते हैं, उनको यह पैरों से मोड़कर चूर-चर कर देता है।

कंचनगिरि कन्दर की बासी। इहि कर यूथ नाथ अबिनासी॥
अतिबल बासब कर हितकारी। सखा सुकन्ठ केरि सुभकारी॥

यह कंचनगिरि की कंदरा का रहने वाला है। हे नाथ इसके झुण्ड का नाश नहीं होता है और बहुत बलवान तथा इन्द्र का हित करने वाला है और सुकण्ठ का शुभकर्ता मित्र है।

पान करै गंगाकर नीरा। पर्वत शृंग समान शरीरा॥
छण छण सिहनाद जो होई। यह गर्जत आवत है सोई॥

वह गंगाजी का जल पीता है और इसका शरीर पर्वत के शिखर के समान है और क्षण-क्षण में जो सिंह का शब्द होता है सो यह वही गर्जता आता है।

दो०—यश तिहुं मंडल गलित गज, बल कर नाहि न अंत।
यह कपि राजा केशरी, जिहिकर सुत हनुमन्त॥ ६॥

इसका यश तीनों लोकों में फैल रहा है, इसने बहुत से हाथी मारे हैं और जिसके बल का छोर नहीं है, यह वही बन्दरों का राजा केसरी है जिसका पुत्र हनुमान है॥ ६॥

घटा एक आवत है जूटी। जनु मधुसिंधु बलै निश फूटी॥
भूमि अकाश अचल अबसाने। उत्तर ते जनु शलभ उड़ाने॥

एक घटा जो गिरी हुई सी आ रही है, मानो रात हो जाने पर मदिरा का समुद्र जलता हो। पृथ्वी, आकाश और पर्वत ऐसे ढक गये मानो उत्तर टिड्डी दल उड़ाई है।

यहिकर यूथ नाथ जों अहई। अतिबल राजा के संग रहई॥
कपि के रूप अनल अबिनासी। ये दोउ पारिपात्र के बासी॥

इसके जो सेनापति हैं सो बड़े बलवान राजा सुग्रीव के साथ रहते हैं और बन्दर के स्वरूप में अग्नि के समान अविनाशी ये दोनों परिपात्र के रहने वाले हैं।

अति सुन्दर अरु समर विपत्ती। महाबीर दोउ गवय गवच्छी॥
पीवहिं तुंगभद्र कर नीरा। मर्दन गन्ध मदन दोउ बीरा॥

और दोनों अत्यन्त सुन्दर और लड़ाई में पीठ न देने वाले, बड़े योद्धा, गवय और गवाक्ष हैं। ये तुङ्गभद्रा नदी का जल पीते हैं और दोनों योद्धा गन्धमादन पर्वत मोड़ सकते हैं।

साठि सहस्र नाग बल जाही। इन महं एक कहौं मैं ताही॥
भेरी नाद सिंह कर ठाना। बिक्रम सारदूल अनुमाना॥

और इनमें एक साठ हजार हाथियों के समान बलवान है जिसे मैं कहता हूं, जिसका शब्द मृदङ्ग का सा, चाल सिंह की सी और पराक्रम बाघ के समान है।

दो०—देवन में जस सुरपति, तेजन में जस भानु।
पनस नाम मर्कट यह, अति बल नीति निधानु॥ ७॥

और देवताओं में जैसे इन्द्र, तेजवान में सूर्य ऐसे ही बहुत बल और नीति का समुद्र यह पनस नाम बन्दर है॥ ७॥

यह जो कमल पात्र सम देहा। जनु कैलाश श्रृंग की रेहा॥
लोचन मधु पिंगल अति लीने। कामरूप चितवत चहुं कोने॥

और यह जिसका कमल के पत्ते के समान देह है और ऐसा लगता है मानो कैलाश पर्वत का शिखर है और जिसके मधु लाल पीले मिले हुए सुन्दर नेत्र हैं और जो चाहें जैसा रूप धर लेता और चारों ओर देखता है।

लंका सोह लंगूर भ्रमाई। गर्जत आव बज्र की नाईं॥
सुरहनि संग युद्ध कह गयऊ। तबते कामरूप यह भयऊ॥

और जो लंका के सामने पूंछ घुमाकर व्रज के समान आता है, यह इन्द्र के साथ लड़ने गया था। तब से काम रूप अर्थात इच्छानुसार शरीर धारण करने वाला हो गया है।

यहि की बासव सन मित्राई। ताते यह देवन को भाई॥
सहस कोटि कपि यहिके संगा। रीते पीते स्वेत बहु रंगा॥

इससे इन्द्र की मित्रता है इसी कारण यह देवताओं का भाई है। इसके साथ में चार करोड़ बन्दर लाल, पीले, श्वेत और बहुत से रंग के हैं।

बचन मृषा मम प्रभु यह नाहीं। अपर वालि जानहु कनमाहीं॥
दद्दुर शैल सदन इहि केरा। मन बचन कर्म राम कर चेरा॥

हे स्वामी ! मेरा यह वचन झूठा नहीं है इससे आप अपने मन में दूसरा बालि जानो। इसका नाम द्विरद है, इसका घर दर्दुद पर्वत है और यह मन-क्रम वचन से रामजी के दास हैं।

दो०-गिरिवर लांघत आवही, चलत उड़ावै रेनु।
तरनि तेज यह रूंधऊ, तारा तनय सुषेनु॥ ८॥

और जो श्रेष्ठ पर्वतों को लांघता चलता है और चलने में धूल उड़ाता है, इसने सूर्य का प्रकाश खूंद डाला था और जिसकी तारा बेटी है, इसका नाम सुषेण है॥ ८॥

यह कपि को देखहु तनु फेरा। जनु सपच्छ उड़ चलेउ सुमेरा॥
एक बार लंका यहिं जारी। पुनि गर्जत आवत यही बारी॥

अब उस बन्दर को देखो, जो शरीर को घुमाता हुआ कैसा आता है, मानो सुमेरु पर्वत पक्षों सहित उड़ चला, इसने एक बार तो लंका जला दी, फिर इस बार भी गर्जता आता है।

जेहि दिन गर्भ अञ्जनी जायो। बाल अरुन लीलन कहं धायो॥
योजन तीस सहस उड़ि गयऊ। उदयाचल ऊपर को गयऊ॥

जिस दिन अञ्जनी ने जाया था, तभी बाल सूर्य के लीलने को दौड़ा था और तीन हजार योजन उड़ गया और उदयाचल के ऊपर हो गया।

सब देवन्ह मिलि अस्तुति कीन्हा। तब रबि छांड़ि पवनसुत दीन्हा॥
कालरूप अतुलित बल येही। कालदण्ड कुलिसन सम देही॥

और जब सब देवताओं ने मिलकर स्तुति की, तो हनुमानजी ने सूर्य को छोड़ दिया। यह भी काल रूप और अतुल बलवान है और इसका शरीर काल दण्ड और वज्र के समान है।

जामवन्त जस गरुड़ उड़ाहीं। बुद्धिवन्त दूसर अस नाहीं॥
विद्या पढ़न भानु पहं जाहीं। उलटी गति रवि संग उड़ाहीं॥

जैसे गरुड़ है ऐसा शीघ्र चलने वाला है और ऐसा बुद्धिमान कोई दूसरा नहीं है। यह सूर्य के पास विद्या पढ़ने गया तो उल्टी चाल से सूर्य को दौड़ाता था।

नाक नाग नरपुर गति कारी। महा अवधि तप तेज पुरारी॥
वारिधि लांघेउ गोपद जैसे। यह कपीस सन जूझब कैसे॥

स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोक में जाने वाला है, बड़ी अवधि तक तप तेजपूर्ण रहेगा। यह समुद्र को गोखुर की भांति उलांघ आया था, इस वानर से कैसे लड़ोगे।

दो०-तेज दिवाकर अनल इव, पवन ते वेग अपार।
कन्ध लिये दोउ बन्धु को, श्री रघुवंश कुमार॥ ९॥

इसका तेज सूर्य और अग्नि के समान है और वेग पवन से भी अपार है कि जिसने श्री रघुवंश कुमार रामचन्द्र लक्ष्मण दोनों भाइयों को कँधे पर बिठा लिया॥ ९॥

अलसी बरन कुसुम तनु रेखा। पुरुष पुरान धरे नर वेषा॥
मत्त गजेन्द्र सुण्ड भुज दण्डा। धनुष बान असि धरे प्रचण्डा॥

अलसी के फूल के समान रेखा जिसके शरीर में जो पुराण पुरुष मनुष्य का भेष धारण किया है और मतवाले हाथी की सूण्ड के समान जिनके भुजदण्ड है और प्रचण्ड धनुष-बाण और तलवार के धारण करने वाले हैं।

उर बिशाल अति उन्नत कन्धर। कम्बु कण्ठ रेखा प्रसन्न वर॥
मुख छबि की उपमा कबि जोहै। ससि सरोज सम कहे न सोहै॥

चौड़ी छाती बहुत ऊंचे कंधे हैं और कण्ठ में सुन्दर शंख की तीन रेखा शोभायमान हैं और जो मुख की शोभा की उपमा कवीश्वर ढूंढे, तो चन्द्रमा और कमल के समान कहने में शोभा नहीं पाता है।

दसन पांति की कांति कहै को। लसकत मन पटतरहिं लहै को॥
देखत अधरन की अरुनाई। बिम्बाफल बन्धूक लजाई॥

उनके दांतों की पंक्ति की चमक को कौन कह सकता है? जिन्हें देखकर मन ललचाता है। उनकी बराबरी कौन पा सकता है। होठों की ललाई देखते ही बिम्बाफल और गुण दुपहरिया के पुष्प लज्जित होते हैं।

सक तुराडहिं नासिका लजावै। थके सुकवि नहिं पटतर पावै॥
सीर्ष जटा के मुकुट बनाये। भाल बिसाल तिलक अति भाये॥

उनकी नाक तोते की चोंच को लज्जित करती है सुन्दर कवीश्वर थक गये पर उपमा नहीं मिली माथे पर जटाओं के मुकुट बंधे हैं और चौड़े माथे पर तिलक बहुत सुन्दर लगा है।

दच्छिन दिशि लच्छिमन बलबीरा। राम बाहु सम अति धीरा॥

दाहिनी ओर बलबीर लक्ष्मण हैं, जो रामचन्द्र की भुजा के समान रणधीर है।

दो०—बाम बिभीषण सोहहीं, सिर अभिषेका राज।
बीज मन्त्र सब जानहीं, अब कस करहि अकाज॥ १०॥

बाईं ओर विभीषण शोभायमान हैं, जिनके माथे पर राज्याभिषेक का तिलक लग रहा है और जो तुम्हारे सब गुप्त मन्त्रों को जानते हैं, अब रामचन्द्रजी के काम में विघ्न कैसे करेंगे॥ १०॥

अब देखहु यह सेना आई। जस भादों की घटा सुहाई॥
किष्किन्धापुर इन कर थाना। देव सरिस मधुवन उद्याना॥

अब देखो यह सेना आई, जैसे भादों की सुहावनी घटा छाई हो। इनका स्थान किष्किन्धा नगर में है कि जहां देवताओं के समान मधुवन बगीचे लग रहे हैं।

ऋष्यमूक इनकर बिश्रामा। चातुर्मास्य बसे जहं रामा॥
बाली ज्येष्ठ राम रन मारा। यहि कहुं राजतिलक प्रभु सारा॥

इनका विश्राम ऋष्यमूक पर्वत पर है, जहां रामजी चौमासे में बसे थे, इसके जो बड़े भाई बालि को तो लड़ाई में रामजी ने मार डाला और इसको भगवान ने राज तिलक किया है।

तारा तासु पाट की रानी। जिहि कर सुत अंगद अभिमानी॥
सहस संकुकर अर्बुल एका। अर्बुद सहस कि बृन्द बिशेखा॥

तारा उस बालि राजा की पटरानी है, जिसका पुत्र अभिमानी अंगद है। हजार शंख का एक अर्ध का एक वृन्द होता है।

सहस बृन्न जो होइ अमाना। महापदम तेहि कर परमाना॥
ऐसे पदम अठारह साजा। विग्रह बढ़ेउ राम के काजा॥

जो पूरे हजार वृन्द हों, उनका परिणाम महापद्म होता है। ऐसे अठारह पद्म बन्दर रामचन्द्रजी के काम की लड़ाई करने के लिए सजे हुये हैं।

बीर वेष अरु नयन बिशाला। कंबु कराठ मोतिन की माला॥

और जिसका योद्धाओं सा वेष है, बड़ बड़े नेत्र हैं और शंख समान कण्ठ में मोतियों की माला पड़ी है।

दो०—हस्ती साठि सहस्त्र बल, सदा धर्म की सीव।
स्वेत छत्र सिर सोहही, यह राजा सुग्रीव॥ ११॥

और साठ हजार हाथियों का सा जिसमें बल और जो धर्म की सीमा है और जिसके मस्तक पर श्वेत छत्र शोभायमान है, सो यह राजा सुग्रीव है॥ ११॥

यहि विधि सकल देखायउ, सारन कपिदल यूह।
गनै न रावण कालवस, अतिसय सर्व समूह॥ १२॥

सारन मन्त्री ने इस भांति बन्दरों की सेना का समूह दिखलाया, परन्तु रावण काल के वश कुछ नहीं गिनता क्योंकि बड़ा अभिमानी है॥ १२॥

इति क्षेपक

इहां प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई॥

यहां प्रातः काल रघुनाथजी जागे, तब सब मन्त्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र कहो क्या उपाय करना चाहिए? यह सुन जामवन्तजी प्रभु के चरणों में सिर झुकाकर बोले।

सुनु सर्बग्य सकल उर बासी। बुधि बल तेज धर्म गुन रासी॥
मंत्र कहउं निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालिकुमारा॥

सुनो हे सर्वज्ञ! आप सबके हृदय में वास करने वाले, बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुण की राशि हो, पर मैं अपनी मति के अनुसार सलाह कहता हूं कि आप बालि पुत्र अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भजिए।

नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥

यह सलाह सबके मन को बहुत अच्छी लगी, तब अंगद से कृपानिधान रामचन्द्रजी ने कहा— हे बालि कुमार अंगद! तुम बुद्धि और गुणों के स्थान हो। सो हे प्यारे! मेरे काम के लिए तुम लंका में जाओ।

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊं। परम चतुर मैं जानत अहऊं॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकहीं सोई॥

बहुत समझाकर तुमसे क्या कहूं, तुम बड़े चतुर हो, यह मैं जानता हूं। हमारा काम हो और उसका भला हो, शत्रु से वही बात करना।

सो०--प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोई गुन सागर ईस राम कृपा जा पर करहु ॥ ४ ॥
स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ।
अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरषित हियउ ॥ ५ ॥

प्रभु की आज्ञा सिर चढ़ाकर चरणों को प्रणाम कर अंगद बोले हे स्वामी रामजी! वही गुणों का समुद्र है, जिस पर आप कृपा करो ॥ ४ ॥ हे नाथ! आपका काम तो सब अपने आप सिद्ध हैं परन्तु हे नाथ! आपने मुझको आदर दिया है। ऐसा विचार कर युवराज अंगद का शरीर पुलकित हो गया और वह अति प्रसन्न हुआ ॥ ५ ॥

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई ॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रन बांकुरा बालिसुत बंका ॥

रामजी के चरणों में प्रणाम और प्रभु की प्रभुता को हृदय में रखकर अंगदजी सबको सिर झुकाकर चले। प्रभु के प्रताप से सहज ही निडर लड़ाई में बांकुरा, ऐसा बालि का पुत्र अंगद बांका है।

पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गै भेटा ॥
बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ॥

नगर में घुसते ही रावण का बेटा खेल रहा था, सो उसकी भेंट अंगद से हो गई। बात ही बात में रिस गई, दोनों अतुल बली फिर युवा अवस्था वाले थे।

तेहिं अंगद कहुं लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भवांई ॥
भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहिं जारी ॥

उसने अंगद की लात उठाई, तब अंगद ने उसी पैर को पकड़ कर घुमाया और पृथ्वी पर ऐसे पटक दिया कि वह गिरते ही मर गया। नगर में बड़ा कोलाहल शब्द हुआ कि वही वानर आ पहुंचा, जिसने लंका जलाई थी।

निसिचर निकर देखि भट भारी। जहं तहं चले न सकहिं पुकारी ॥
एक एक सन मरमु न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं ॥

अंगद को भारी योद्धा देख सब निशाचर जहां-तहां चल दिये, भय के कारण भी न पुकार सकते थे। एक-दूसरे से भेद की बात नहीं करते। उसके छल-बल को जानकर सब चुप हो गये।

अब धौं कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा ॥
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई ॥

अब कौन जाने विधाता क्या करेंगे, बहुत डरकर सब लोग विचार करने लगे अंगद के बिना पूछे ही रास्ता बता देते थे जिसकी ओर अंगदजी देखते हैं, वह सूख जाता है।

दो०—गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज ॥ २२ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजी के चरण-कमलों का स्मरण करके सिंह के समान चाल से इधर-उधर देखते हुए वीर और बल के समूह अङ्गदजी सभा के द्वार पर पहुंचे ॥ २२ ॥

तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा ॥
सुनत बिहंसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहां कर कीसा ॥

और उसी समय एक राक्षस को भेजकर समाचार सुनाया। वचन सुनते ही रावण बोला कि उसे बुलाकर ले आओ, कहां का वानर है ?

आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपिकुंजरहि बोलि लै आए ॥
अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें ॥

आज्ञा पाकर बहुत दूत दौड़े और वानरों में गजराज के समान अंगदजी को बुला ले आए। अंगद ने रावण को ऐसा देखा, जैसे जीवित काजल का पर्वत होता है।

भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना ॥

बीस भुजा वृक्षों के समान हैं, दसों सिर शृङ्ग के समान हैं, दसों मुख, नासिका, बीस नेत्र और कान पर्वत की कंदरा और खोह के समान हैं।

गयउ सभां मन नेकु न मुरा। बालितनय अतिबल बांकुरा ॥
उठे सभासद कपि कहुं देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी ॥

बालि पुत्र अंगद अत्यन्त बल में बांका मन में कुछ डरा नहीं, सीधा रावण की सभा में चला गया, अंगद को देख सब सभासद खड़े हुए, रावण के हृदय में बड़ा क्रोध हुआ।

दो०—जथा मत्त गज जूथ महुं पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभां सिरु नाइ ॥ २३ ॥

जैसे मतवाले हाथियों के झुण्ड में सिंह चला जाए, उसी प्रकार अंगद रामचन्द्रजी के प्रताप को हृदय में स्मरण कर सभा को सिर झुकाकर बैठ गये, क्योंकि सभा भी उनके सम्मानार्थ उठी थी ॥ २३ ॥

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर ॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउं भाई ॥

रावण ने पूछा—हे बन्दर ! तू कौन है ? यह सुनकर अंगदजी ने उत्तर दिया, हे रावण ! मैं श्रीरामजी का दूत हूं। मेरे से और तुम्हारी मित्रता रही, इस कारण मैं तुम्हारी भलाई के निमित्त हे भाई ! मैं यहां आया हूं।

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भांती ॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा ॥

तुम्हारा उत्तम कुल है, पुलस्त्य मुनि के नाती हो, शिव और ब्रह्मा का तुमने बहुत भांति से पूजन किया है। वर पाकर तुमने सब काम किए, लोकपाल और इन्द्र को भी जीत लिया है।

नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा ॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ॥

हे राक्षसराज ! अभिमान और मोह के वश होकर जगत्माता सीताजी को हर लाये हो, अब तुम मेरा अच्छा कहना करो। प्रभु रामजी तुम्हारे सभी अपराध क्षमा कर देंगे।

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें॥

दांतों से तिनका पकड़कर, कण्ठ में कुल्हाड़ी बांधो। नगर निवासियों के साथ रानी मन्दोदरी को संग लेकर चलो और आदर सहित जानकीजी को आगे करके इस प्रकार सब भय रहित होकर चलो।

दो०—प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि॥ २४॥

और चलकर यह कहो कि हे दीनजन पालक रघुवंशमणि ! अब आप मेरी रक्षा करो ! रक्षा करो ! अत्यन्त दुःखी वचन को सुनते ही प्रभु तुमको अवश्य ही अभय करेंगे॥ २४॥

रे कपिपोत बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी॥
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नातें मानिऐ मिताई॥

रे नीच वानर ! संभाल कर नहीं बोलता। रे मूर्ख ! तू मुझको नहीं जानता कि मैं देवताओं का कट्टर शत्रु हूं। अरे भाई ! अपना और अपने बाप का नाम तो बता कि सुनाने से मित्रता मानी जाये।

अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुं भई ही भेटा॥

अङ्गद मेरा नाम है, बालि का पुत्र हूं, उससे कभी तुम्हारी भेंट हुई है ?

अंगद तूहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥

अङ्गद का वचन सुनते ही रावण सकुचा गया और बोला बालि वानर था, मैं जानता हूं। हे अङ्गद तू ही बालि का पुत्र है, तू अपने वंश में कुलनाशक अग्नि-रूप पैदा हुआ है।

गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु॥
अब कहु कुसल बालि कहं अहई। बिहंसि बचन तब अंगद कहई॥

गर्भ ही में क्यों न गिर गया ? तेरी माता ने तुझे व्यर्थ ही जन्मा, जो ऐसे वीर का पुत्र होकर अपने ही मुख से तपस्वी का दूत कहलाया। अब कुशल कह, बालि कहां है ? तब हँसकर अङ्गद ने यह वचन बोले।

दिन दस गएं बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥
राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥

दस दिन बीतने पर बालि के पास जाकर अपने ही सखा को हृदय से लगाकर कुशल पूछना। राम जी से वैर करने पर जैसा कुशल होता है, सो सब तुमको वही सुनावेगा।

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥

रे मूर्ख भेद उसके मन में होता है, जिसके हृदय में श्रीराम का निवास नहीं होता है।

दो०—हम कुल घालक सत्य तुम्ह कुल पालक दससीस।
अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस॥ २५॥

हे रावण ! सत्य है हम कुलघालक हैं और तुम कुलपालक हो । अन्धे और बहरे भी तो ऐसा नहीं कहते हैं । तेरे तो बीस कान और बीस नेत्र हैं ।। २५ ।।

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई । चाहत जासु चरन सेवकाई ।।
तासु दूत होइ हम कुल बोरा । अइसिहुं मति उर बिहर न तोरा ।।

शिव, ब्रह्मा, मुनि, देवता ये सब जिस प्रकार प्रभु के चरणों की सेवा करना चाहते हैं, उस प्रभु के दूत होकर हमने कुल को दाग दिया, ऐसी बुद्धि होने पर भी तेरा हृदय फट नहीं जाता ।

सुनि कठोर बानी कपि केरी । कहत दसानन नयन तरेरी ।।
खल तव कठिन बचन सब सहऊं । नीति धर्म मैं जानत अहऊं ।।

अंगद की कठोर वाणी सुनकर रावण नेत्रों से डपटकर कहने लगा, रे दुष्ट ! कठोर वचन को मैं सहता हूं, क्योंकि नीति, धर्म सब जानता हूं ।

कह कपि धर्मसीलता तोरी । हमहुं सुनी कृत पर त्रिय चोरी ।।
देखी नयन दूत रखवारी । बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी ।।

अंगद ने कहा—तेरी धर्मशीलता मैंने भी सुनी कि तुमने पराई स्त्री चुराई है और दूत की रक्षा करना तो नेत्रों से देखा, ऐसे धर्म व्रतधारी हो । तुम डूब क्यों नहीं मरते ? अंगद के सामने ही एक दूत कुबेर का भेजा हुआ आया और उसने कहा था कि श्रीरामजी से मिलाप कर लो, उसको आपने मरवा डाला ।

कान नाक बिनु भगिनि निहारी । छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी ।।
धर्मसीलता तव जग जागी । पावा दरसु हमहुं बड़भागी ।।

नाक-कान से हीन अपनी बहिन शूर्पणखा देखकर तुमने धर्म का विचार कर क्षमा की । तुम्हारी धर्मशीलता जगत में फैल रही है, हम बड़े भाग्यवान हैं, जो आपके दर्शन हुए ।

दो०—जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु ।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु ।। २६ ।।

रावण बोला बकवास मत कर, रे जड़-जन्तु मूर्ख वानर ! मेरी भुजाओं को देख जो लोकपालों में अधिक बल-रूपी चन्द्रमा के ग्रसने को मानो बीस राहु हैं ।। २६ ।।

पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास ।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास ।। २७ ।।

फिर आकाश-रूपी सरोवर में मेरे सम्पूर्ण कर-कमलों पर वास करते हुए शिवजी कैलाश पर्वत सहित ऐसे शोभायमान हुए, जैसे कमल पर हँस शोभायमान होता है ।। २७ ।।

तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद । मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ।।
तव प्रभु नारि बिरहं बलहीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ।।

सुन अंगद ! तुम्हारे कटक में ऐसा योद्धा कौन सा है, जो मुझसे लड़ेगा उसे तो बता । तुम्हारा स्वामी राम स्त्री-विरह से निर्बल है, लक्ष्मण उसके दुःख से दुःखी और मलीन है ।

तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ।।
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा । सो कि होइ अब समरारूढ़ा ।।

तुम और सुग्रीव दोनों नदी किनारे के वृक्ष हो, जब युद्ध-रूपी अग्नि बढ़ेगी, तब बह जाओगे और मेरा भाई विभीषण है, वह भी बड़ा डरपोक है। जामवन्त मन्त्री बहुत बूढ़ा और कमजोर है, वह लड़ाई में कैसे ठहर सकता है ?

सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा। सुनत बचन कह बालिकुमारा ॥

नल-नील शिल्प-कर्म (कारीगरी) जानते हैं, हाँ ! एक वानर बड़ा बलवान है जो पहले आया था जिसने इस नगर को जलाया। यह सुनकर अंगद हंसकर बोला—

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। सांचेहुं कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
रावन नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई ॥

हे रावण ! सत्य कहो, क्या वास्तव में उस वानर ने नगर जला दिया ? रावण के नगर को एक छोटा-सा वानर जला दे, ऐसे वचन को सुनकर कौन सत्य मानेगा ?

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई ॥

हे रावण ! जिसको तुमने बड़ा योद्धा माना, सो सुग्रीव का छोटा हलकारा है। बहुत चलता है, वह वीर नहीं होता, उसको हमने खबर लेने को भेजा था।

दो०—सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ ॥ २८ ॥

मैंने अब जाना कि प्रभु की आज्ञा के बिना कपि ने तुम्हारे नगर को जला डाला, लौटकर अपने स्वामी के पास नहीं गया, उसी डर के मारे कहीं छिप गया ॥ २८ ॥

सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥ २९ ॥

हे रावण ! तुमने सब सत्य कहा, तुम्हारे वचन सुनकर मुझको कुछ भी क्रोध नहीं है, हमारे कटक में अब ऐसा कोई नहीं है, जो तुम्हारे साथ लड़कर शोभा पावे ॥ २९ ॥

प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ॥ ३० ॥

ऐसी नीति है कि प्रीति और बैर बराबर वालों से करना चाहिए, जो सिंह मेढ़कों को मारे तो उसको भला कौन कहेगा ॥ ३० ॥

जद्यपि लघुता राम कहुं तोहि बधें बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष ॥ ३१ ॥

हे रावण ! तुम्हें मारने से बड़ा दोष है, यद्यपि राम की इसमें बड़ी लघुता है। तिस पर भी हे रावण ! सुनो क्षत्री जाति का क्रोध कठिन होता है ॥ ३१ ॥

हंसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक ॥ ३२ ॥

तब रावण हंसकर बोला कि वानर का एक बड़ा गुण है कि जो पालता है उसके हित के अर्थ अनेक उपाय करता है ॥ ३२ ॥

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहं तहं नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि कर लोग रिझाई। पति हित करइ धर्म निपुनाई॥

धन्य वानर जो अपने प्रभु के काम को जहां-तहां लाज छोड़कर नाचते हैं। नाच कूदकर लोगों को रिझा अपने स्वामी के निमित्त धर्म और चतुरता के काम करते हैं।

अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भांती॥
मैं गुन गाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करउं नहिं काना॥

हे अंगद! तुम्हारी जाति ही स्वामि भक्त होती है, तो स्वामी के गुण तुम इस प्रकार कैसे न कहोगे? मैं गुण के ग्राहकों में बड़ा चतुर हूं, इसी से तुम्हारे कठोर वचनों पर ध्यान नहीं देता हूं।

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा॥

यह सुन अंगद ने कहा, तुम्हारी गुण-ग्राहकता ठीक है, जो हनुमान ने मुझको सुनाई। वन को उजाड़, पुत्र को मारकर नगर को जलाया तो भी तुमने उसका कुछ अपकार नहीं किया।

सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई॥
देखेउं आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरें लाज न रोष न माखा॥

सो तुम्हारा अच्छा स्वभाव विचार कर हे रावण! मैंने भी ढिठाई की। जो कुछ भी हनुमान ने कहा था, सो आकर मैंने देख लिया कि तुमको न लाज है, न क्रोध है, न अनख।

दो०—बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहु काढ़त भट दससीस॥ ३३॥

अंगद की टेढ़ी उक्ति तो धनुष है और तीक्ष्ण वचन बाण हैं जिनसे शत्रु का हृदय बेध डाला, उन बाणों को योद्धा रावण अपने प्रत्युत्तर-रूप संडसियों से मानो काढ़ता है॥ ३३॥

जौं असि मति पितु खाए कीसा। कहि अस बचन हंसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउं पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥

हे वानर! जो ऐसी बुद्धि है, तभी पिता को खा गया, ऐसे कहकर रावण हंसा, सो यह सुन अङ्गद बोला, पिता को खा गया तुमको भी खा लेता परन्तु इस समय मुझको कुछ सूझ न पड़ा।

बालि बिमल जस भाजन जानी। हतउं न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते॥

रे नीच अभिमानी! बालि के निर्मल यश का तू पात्र है, यह समझकर मैं तुझे नहीं मारता हूं। कहो रावण! रावण जगत में कितने हैं, मैंने अपने कानों से जितने सुने हैं, उतने सुन ले।

बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बांधि सिसुन्ह हय साला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥

राजा बलि के जीतने को एक रावण पाताल गया, उसको बांधकर बालकों ने घुड़साल में रखा। बालक उससे खेल करते और जाकर मारते। तब राजा बलि को दया लगी तो उसको छुड़ा दिया।

एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥

फिर एक रावण को सहस्रबाहु ने देखा, तो दौड़कर ऐसे पकड़ लिया, मानो बड़ा कीड़ा है। उसे खेल के निमित्त घर ले आया, तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर छुड़ाया।

दो०—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि कीं कांख।
इन्ह महुं रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥ ३४॥

एक रावण को कहते मुझको बड़ी सकुच है कि मेरे पिता बालि की कांख में रहा था। इसमें कौन से रावण तुम हो, सो क्रोध छोड़कर सच-सच कहो॥ ३४॥

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउं जेहि सिर सुमन चढ़ाई॥

रावण बोला, सुन मूर्ख अङ्गद! मैं वही बली रावण हूं, जिसकी भजाओं के बल को शिवजी का पर्वत कैलाश जानता है तथा जिस रावण की शूरता को पार्वती के पति शिवजी जानते हैं, जिसको मैंने अपने मस्तक रूपी फूल चढ़ाकर पूजा है।

सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउं अमित बार त्रिपुरारी॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहू जिन्ह कें उर साला॥

अपने हाथों से सिर रूपी कमलों को उतार कर अनेकों बार शिवजी का पूजन किया। मूर्ख मेरी भुजाओं के बल को दिक्पाल जानते हैं, अब भी जिनके हृदय में पीड़ा होती है।

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउं जाइ बरिआई॥
जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥

दिशाओं के हाथी मेरे हृदय की कठोरता को जानते हैं कि जब उन दिग्गजों से सजाकर जल्दी से लड़ा हूं जिनके कठोर दांत कभी नहीं टूटे, पर मेरे हृदय में लगते ही मूली के समान टूट गये।

जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी॥

जिसके चलने से पृथ्वी ऐसी डोलती है, जैसे मतवाले हाथी के चलने से छोटी नाव डगमगाने लगती है। मैं वही रावण जगत में प्रतापी हूं। अरे झूठें बकवादी अङ्गद! मुझको क्या तूने कानों से नहीं सुना?

दो०—तेहि रावन कहं लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान॥ ३५॥

उस महाबली और महाप्रतापी रावण को छोटा कहता है और मनुष्य का बखान करता है, रे वानर बकवादी! तू छोटा है, मैंने अब तेरा ज्ञान जाना, तूने मुझको तब नहीं जाना, तो अब जान ले॥ ३५॥

सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु संभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥

यह सुनकर अंगद क्रोध सहित वाणी बोले, अरे अधम अभिमानी! संभाल कर बोल अरे अधम

अभिमानी जिस सहस्त्रबाहु ने तुमको जीत लिया, उसकी भुजायें सघन वन के समान अपार थीं, इनको जलाने को जिसका कुठार अग्नि के समान हुआ।

जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥

जिसके फरसा-रूपी समुद्र की तीक्ष्ण धार में असंख्य राजा बहुत बार डूब गये, उसका (परशुराम जी का) भी अहंकार जिस प्रभु के देखते ही भाग गया। हे अभागे रावण! सो रामचन्द्रजी मनुष्य कैसे हो सकते हैं?

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा॥

रे मूर्ख टेढ़ी प्रकृति वाले! राम मनुष्य कैसे, कामदेव साधारण धनुषधारी कैसा? जिस कामदेव ने फूलों के धनुष बाण से त्रिलोक को जीत लिया और फिर गंगा क्या एक साधारण नदी है? कामधेनु क्या पशु है? कल्पवृक्ष क्या रूख है? अन्न दान क्या सामान्य दान है और क्या अमृत सामान्य रस है?

बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥

हे रावण! गरुड़ क्या पक्षी है? शेष क्या सर्प है? चिन्तामणि क्या पाषाण है? सुन मन्द बुद्धि रावण! बैकुण्ठ क्या साधारण लोक हैं और भगवद्भक्ति क्या साधारण लाभ है, जिसकी अखण्ड लाभ में गगना है।

दो०—सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि॥ ३६॥

सेना समेत तुम्हारे मान को मथकर वन को उजाड़, नगर को जलाकर और तुम्हारे पुत्र को मार कर जो हनुमान गया। रे शठ! वह वानर कैसा॥ ३६॥

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
जौं खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥

सुन हे रावण! इस चतुरता को छोड़कर कृपासिन्धु रघुनाथजी का भजन क्यों नहीं करता। रे दुष्ट! जो तू रामचन्द्रजी का द्रोही हुआ है, तो जिन ब्रह्मा-शिव के वरदान का तुझको अभिमान है, सो ब्रह्मा और शिवजी तुझको नहीं बचा सकते हैं।

मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला। राम बयर अस होइहि हाला॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें। परिहहिं धरनि राम सर लागें॥

इस कारण रे मूढ़! व्यर्थ गाल मत मार, रामजी के बैर से तेरी ऐसी दशा होगी कि तेरे सब सिर वानरों के आगे पृथ्वी पर रामजी के बाण लगने से गिरेंगे।

ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना॥
जबहिं समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥

वह तेरे अनेक सिरों से गेंद की तरह रीछ और वानर चौगान में खेलेंगे। जिस समय समर में रघुनाथजी कोप करेंगे और अत्यन्त कराल अनेक बाण छोड़ेंगे।

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचार भजु राम उदारा ॥
सुनत बचन रावन परजरा। जरत महानल जनु घृत परा ॥

तब क्या तुम्हारा गाल चलेगा, ऐसा विचार कर परम उदार रामचन्द्रजी का भजन करो। अंगद के वचन सुनते ही रावण जल गया। जलती हुई अग्नि में मानो घी पड़ गया हो।

दो०—कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउं चराचर झारि ॥ ३७ ॥

रावण बोला, कुम्भकरण समान मेरा भाई, इन्द्र को जीतने वाला मेघनाद मेरा पुत्र प्रसिद्ध है और मेरा पराक्रम क्या तूने कभी नहीं सुना है कि चराचर में सभी प्राणियों को जीत चुका हूं ॥ ३७ ॥

सठ साखामृग जोरि सहाई। बांधा सिंधु इहइ प्रभुताई ॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा ॥

अरे मूर्ख, इधर-उधर से वानरों की सेना जोड़कर समुद्र में पुल बांधा, बस यही उसकी प्रभुताई है। अनेक पक्षी समुद्र को लांघते हैं, तो सुन मूर्ख वानर वे शूर नहीं होते हैं।

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहं बूड़े बहु सुर नर सूरा ॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा ॥

मेरी बीस भुजा-रूपी समुद्र में बल-रूपी जल भरा हुआ है जिसमें बहुत से देवता और मनुष्य शूर वीर उसमें डूब गये। ये मेरी बीस भुजा गहरी और अपार समुद्र है, कौन ऐसा वीर इस जगत में है, जो इनका पार पा सकता है।

दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा ॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा ॥

दिग्पालों से तो मैंने पानी भरवाया है। रे दुष्ट वानर, सो तूने मुझे राजा का सुयश सुनाया, जो तेरा स्वामी संग्राम में शूरवीर है, जिसका तू बारम्बार सुयश बखानता है।

तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा ॥
हरगिरि मथन निरखु मम बाहु। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ॥

सो उसने तुझको दूत बनाकर किस कारण भेजा? शत्रु से प्रीति करते उसको लाज भी नहीं आती है। शिवजी के पर्वत कैलाश को मथने वाली मेरी भुजाओं को देख फिर मूर्ख वानर, तू अपने स्वामी की सराहना करना।

दो०—सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस ॥ ३८ ॥

रावण समान शूरवीर कौन है, जिसने अपने हाथों अपने सिरों को काटकर अनेक बार प्रसन्नता से अग्नि में होम किया, जिसके साक्षी शिवजी हैं ॥ ३८ ॥

जरत बिलोकेउं जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला ॥
नर कें कर आपन बध बांची। हसेउं जानि बिधि गिरा असांची ॥

जब वे कपाल जलते देखे, तो अपने मस्तक पर ब्रह्मा के लिए अङ्क देखे। मनुष्य के हाथ से अपना मरना बांचकर ब्रह्मा की वाणी को झूठ जानकर मुझको हँसी आ गई।

सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें॥
आन बीर बल सठ मम आगें। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें॥

सो भी मन में समझकर मुझको भय नहीं है, क्योंकि ब्रह्मा ने बुढ़ापे की भूल से लिख दिया होगा। अरे मूर्ख! दूसरा कौन-सा वीर मेरे आगे है जो बार-बार लाज को छोड़कर उसका वर्णन करता है?

कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥

यह सुनकर अंगद ने कहा—हे रावण! लाज वाला तो तेरे समान संसार में कोई नहीं है। लाज वाले का तो सहज स्वभाव है कि अपना गुण अपने मुख से कभी नहीं कहते।

सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कही॥
सो भुजबल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली॥

परन्तु सिर काटने और पर्वत उठाने की कथा चित्त में भर रही है, इससे बीसों बार तैंने उसी को कहा है। अपनी भजाओं का बल क्या हृदय में छिपा रखा है जिससे सहस्रबाहु, बलि और बालि को जीता।

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटें सीस कि होइअ सूरा॥
इंद्रजालि कहुं कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥

सुन मन्दबुद्धि, तेरी देह अब तो पूर्ण है, सिर काटने से कोई शूर नहीं होता, बाजीगर को शूर नहीं कहना चाहिए जो कि अपने हाथ से सारा शरीर काट डालता है।

दो०—जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद।
ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद॥ ३१॥

पतंगे अज्ञानता के वश दीपक पर गिरकर जल मरते हैं। गधा के समूह बहुत बोझ ढोते हैं, परन्तु वे शूर नहीं कहलाते हैं। हे मन्दबुद्धि! समझकर देख॥ ३१॥

अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥
दसमुख मैं न बसीठीं आयउं। अस बिचारि रघुबीर पठायउं॥

हे निन्दक! अब बात का बढ़ावा मत कर, मेरा वचन सुनकर अभिमान छोड़ दे। हे रावण! दूत होकर नहीं आया हूं, लेकिन ऐसा विचार कर रामचन्द्रजी ने मुझको भेजा है।

बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बधें सृकाला॥
मन महुं समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउं कठोर बचन सठ तेरे॥

बार-बार दयालु श्रीरामजी ने इस प्रकार कहा है कि मत्त हाथियों को मारने वाले सिंह को गीदड़ मारने से यश नहीं मिलता है। प्रभु के वचन को मन में समझ। अरे शठ! तेरा कठोर वचन मैंने सहा है।

नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। लै जातेउं सीतहि बरजोरा॥
जानेउं तव बल अधम सुरारी। सूनें हरि आनिहि परनारी॥

नहीं तो तेरा मुंह तोड़कर बलपूर्वक सीताजी को ले जाता। अरे अधम असुर! तेरे बल को मैं जानता हूं कि सूने में पराई स्त्री को उठा लाया।

तैं निसिचर पति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानहि डरऊं। तोहि देखत अस कौतुक करऊं॥

तू राक्षसों का स्वामी है, बहुत घमण्ड रखता है। मैं रघुनाथजी के सेवक सुग्रीव का दूत हूं, जो रामजी के अभिमान को न डरूं तो तेरे देखते ही ऐसा कौतुक करूं।

दो०—तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउं।
तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउं॥ ४०॥

रे मूर्ख! तुझको पृथ्वी पर पटक सेना को मार और तेरे नगर को उजाड़ कर मन्दोदरी समेत जानकीजी को ले जाऊं॥ ४०॥

जौं अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई॥
कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥

जो ऐसा करूं तो भी बड़ाई नहीं है, क्योंकि मरे हुए को मारने में कुछ बहादुरी नहीं होती है। जो सदा मद्य-पान से अचेत रहते हैं, कामी, कन्जूस, बहुत ही मूर्ख, महा दरिद्र, जिसकी दुर्नामता संसार में फैली हो, बहुत बूढ़े।

सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥

सदा रोगी, सदा क्रोध करने वाले, रामजी से विमुख, वेद और सत्पुरुषों से विरोध करने वाला, अपने ही शरीर को पालने वाला, पराई निन्दा करने वाला, पापों की खान ये चौदह प्राणी जीते ही मुर्दा के समान हैं।

अस बिचारि खल बधउं न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा। अधर दसन दसि मीजत हाथा॥

अरे दुष्ट, यह विचार कर तुमको नहीं मारता हूं, अब तू मुझको रिस मत उपजा। यह सुनकर क्रोध करके रावण होठों को दांतों से दबा, हाथ मींजते हुए बोला—

रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें॥

रे नीच वानर! अब तू मरना चाहता है, जो छोटे मुख बड़ी बात कह रहा है। रे मूर्ख वानर, जिसके बल से तू यह वचन बोलता है, उसको बल, बुद्धि, तेज, प्रताप कुछ भी नहीं है।

दो०—अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसि दिन मम त्रास॥ ४१॥
जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक॥ ४२॥

गुणहीन और मानहीन विचार कर उसको पिता ने बनवास दिया, सो दुःख और स्त्री का वियोग रात-दिन मेरा डर लगा रहता है॥ ४१॥ जिनके बल का तुझे घमण्ड है, ऐसे मनुष्य बहुत हैं जिनको राक्षस दिन-रात खाते हैं। अरे मूर्ख, हठ छोड़कर समझ जा॥ ४२॥

जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥

जब रावण ने रामजी की निन्दा की, तब अंगद क्रोधित हुआ।

हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥
कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहुं भुजदंड तमकि महि मारी॥

विष्णु और शिवजी की निन्दा जो कानों से सुनते हैं, उनको गौ मारने के समान पाप होता है। वानरों में हाथी के समान अंगद ने बहुत कटकटाकर अपने दोनों भुजदण्डों को तमक कर पृथ्वी पर दे मारा।

डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥
गिरत संभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुंदर॥

भुजदण्डों के पटकने से वहां की पृथ्वी हिली, जिससे सभा में बैठे हुए सभासद औंधे मुख गिर पड़े और भय-रूपी पवन लगने से सब भाग चले। गिरते ही रावण संभल कर उठा, परन्तु उसके दसों मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े।

कछु तेहिं लै निज सिरन्हि संवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे॥
आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे॥

कुछ तो रावण ने अपने सिर पर संभाल लिए और कुछ अंगद ने प्रभु के पास फेंक दिए। मुकुटों को आते देख वानर भागने लगे कि हे विधाता, क्या दिन में ही लूक पड़ने लगे।

की रावन करि कोप चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए॥

अथवा रावण ने क्रोध करके चार वज्र फेंके, जो बड़े वेग से दौड़े चले आते हैं।

कह प्रभु हंसि जनि हृदयं डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू॥
ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालि तनय के प्रेरे॥

तब प्रभु ने हंसकर कहा कि हृदय में डरो मत, ये न लूक हैं, न वज्र हैं, न राहू हैं। ये रावण के मुकुट हैं और अंगद के फेंके हुए आ रहे हैं।

दो०—तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास॥ ४३॥

हनुमानजी ने कूदकर उन मुकुटों को हाथ से पकड़ लिया और प्रभु के पास लाकर रखा। रीछ, वानर उसका तमाशा देखने लगे, वह सूर्य के समान प्रकाश वाले मुकुट थे॥ ४३॥

उहां कहत दसानन रिसाइ। धरि मारहु कपि भाग न जाइ॥
एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहं जहं पावहु॥

वहां रावण क्रोध से कहने लगा कि इस वानर को पकड़ कर मार डालो, भागकर न जाने पाये, इस प्रकार जल्दी सब योद्धाओं दौड़ो और रीछ-वानरों को जहां भी पाओ, वहीं खाओ।

मर्कटहीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस द्वौ भाई॥
पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा॥

पृथ्वी को वानर-हीन कर मेरी दुहाई फेरकर दोनों भाई तपस्वियों को जीते ही पकड़ लो, फिर क्रोध करके अंगदजी बोले—गाल बजाते हुए तुझको लाज नहीं लगती।

मरु गर काटि निलज कुल घाती। बल बिलोकि बिहरत नहिं छाती॥
रे त्रिय चोर कुमारग गामी। खल मल रासि मंदमति कामी॥

रे निर्लज्ज ! कुल का घात करने वाला, अपना गला काटकर मर जा। मेरे बल को देखकर तेरी छाती, छाती क्यों नहीं ? रे नारी चोर, खोटे मार्ग पर चलने वाले दुष्ट, मल की राशि, मन्दबुद्धि कामी।

सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबस खल मनुजादा॥
याको फलु पावहिगो आगें। बानर भालु चपेटन्हि लागें॥

र दुष्ट, नरभक्षी रावण ! सन्निपात से व्यर्थ बकवास कर रहा है और काल के वश में हो गया है इस बोलने का फल तो आगे पावेगा, जब रीछ-वानरों की चपेटें लगेंगी।

राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥
गिरिहहिं हसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समर महि माहीं॥

रामजी मनुष्य हैं, ऐसी वाणी को बोलते हुए रे अभिमानी, तेरी जीभ कटकर नहीं गिर पड़ती। समरभूमि में सिरों सहित जीभ गिरेंगी इसमें संदेह नहीं है।

सो०—सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर।
बीसहुं लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़॥ ६॥
तव सोनित कीं प्यास तृषित राम सायक निकर।
तजउं तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम॥ ७॥

अरे रावण ! वह प्रभु मनुष्य कैसा ? जिसने एक ही बाण से बालि को मारा, बीसों नेत्रों से अंधे कुजाति मूर्ख तेरे जन्म को धिक्कार है। रामचन्द्रजी के प्यासे बाण समूह तेरे रुधिर के प्यासे हैं। इस आशा से छोड़ता हूं, हे अधम निशाचर ! तू बड़ा कडुवा वचन बोलता है॥ ६-७॥

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥
असि रिस होति दसउ मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महं बोरौं॥

मैं तेरा दांत तोड़ने लायक हूं, परन्तु रघुनाथजी ने आज्ञा नहीं दी। ऐसी रिस होती है कि तेरे दसों मुख को तोड़ूं और लंका को उठाकर समुद्र में डुबाऊँ।

गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा॥

गूलर फल के समान तेरी लंका में राक्षस निर्भय हैं, जैसे भुनगा गूलर में रहते हैं। मैं बानर, फल खाते देर न लगती, लेकिन उदार राम ने आज्ञा नहीं दी।

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखिहि कहं उहुत झुठाई॥
बालि न कबहुं गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा॥

यह युक्ति की बात सुनते ही रावण मुस्कराकर बोला—मूर्ख ! बहुत झूठ बोलना कहां से सीखा, बालि ने कभी ऐसा गाल नहीं बजाया, तपस्वियों से मिलकर तू मक्कार हो गया है।

सांचेहुं मैं लबार भुज बीहा। जौं न उपारिउं तव दस जीहा॥
समुझि राम प्रताह कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा॥

हे बीस भुजा वाले ! मैं सत्य ही लबार (मक्कार) हूं, जो तेरी दसों जीभ न उखाड़ूं। रामजी के प्रताप का स्मरण कर अंगद ने कोप किया और कहा—

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥

हे शठ ! जो मेरा चरण कोई उठा सके तो रामजी लौट जायेंगे, सीताजी मैंने हार दी। तब रावण बोला—सुनो सब योद्धाओं, इस वानर का पांव पकड़कर पृथ्वी पर पछाड़ दो।

इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहं तहं भट नाना॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई॥

मेघनाद आदि अनेक बलवान योद्धा प्रसन्न होकर जहां-तहां उठकर खड़े हो गये। बल और अनेक उपाय करके झपटते हैं, लेकिन पांव नहीं टलता। सब सिर झुकाकर बैठ जाते हैं।

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरइ न कीस चरन एहि भांती॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी॥

कागभुशुण्डिजी गरुड़जी से कहते हैं कि फिर उठकर देवताओं के बैरी राक्षस-गण चरण उठाने को झपटते हैं, लेकिन अंगदजी का चरण इस प्रकार नहीं टरता है, जैसे कुयोगी पुरुष मोह-रूपी वृक्ष को उखाड़ नहीं सकता।

दो०—कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ॥ ४४॥
भूमि न छांड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग॥ ४५॥

कोटिन मेघनाथ के समान योद्धा प्रसन्न होकर उठते हैं और अंगदजी के चरण को उठाने के लिए झपटते हैं, लेकिन जब पैर नहीं हटता तो सिर झुकाकर बैठ जाते हैं॥ ४४॥ अंगदजी का चरण भूमि को नहीं छोड़ता, यह देखते ही शत्रु का अभिमान दूर हो गया, जैसे करोड़ों विघ्न होने पर भी सन्त का मन नीति को नहीं छोड़ता है॥ ४५॥

कपि बल देखि सकल हियं हारे। उठा आपु कपि कें परचारे॥
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा॥

वानर का बल देख सब अपने हृदय में हार मान गये, तब रावण उठा और अंगदजी को ललकारा चरण पकड़ते ही अंगद ने कहा—मेरे चरणों को पकड़ने से तेरा उद्धार न होगा।

गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥

हे शठ ! रामजी के चरण जाकर क्यों नहीं पकड़ता। यह सुनते ही मन में सकुचाकर लौटा, तेजहीन हो गया सब शोभा जाती रही। जैसे दोपहर में चन्द्रमा की शोभा मलीन हो जाती है।

सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुं संपति सकल गंवाई॥
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा॥

सिंहासन पर सिर नीचा कर रावण ऐसे बैठ गया मानो सब सम्पदा गंवा दी। जगत के आधार प्राणपति जो श्रीरामचन्द्रजी हैं उनके विमुख रहने से विश्राम कैसे मिल सकता है?

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई॥

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजी के भृकुटी के मरोड़ से संसार उत्पन्न होता है और फिर नाश हो जाता है। जो तृण से वज्र और वज्र से तृण कर सकते हैं, उसके दूत का पद कहो किस प्रकार टल सकता है?

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु निअराना॥

फिर अंगदजी ने अनेक प्रकार से नीति कहकर समझाया, परन्तु रावण नहीं मानता है, क्योंकि उसका काल निकट आ गया है।

रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृप जायो॥
हतौं न खेत खेलाइ खेलाइ। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई॥

शत्रु के अहंकार को तोड़कर प्रभु का सुयश सुनाया और यह कहकर अंगदजी चल दिये, इस समय अपने मुख से क्या बड़ाई करूं, तुझको युद्ध में खेला-खेलाकर मारूंगा।

प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा॥
जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भए बिसेषी॥

राक्षस अंगद का बल देखकर अपने हृदय में बहुत दुःखी हुए। पहले लंका में आते ही रावण का पुत्र अंगद ने मारा था, सो सुनकर रावण दुःखी हुआ था।

दो०-रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बल पुंज।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज॥ ४६॥
सांझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ।
मंदोदरीं रावनहि बहुरि कहा समुझाइ॥ ४७॥

शत्रु के बल को दबाकर हृदय में प्रसन्न हो महाबली अंगद ने नेत्रों में जल भरकर अति पुलकित शरीर होकर रामचन्द्रजी के चरण पकड़ लिये॥ ४६॥ सन्ध्या समय जान कर रावण बहुत उदास होकर घर को गया। वहां मन्दोदरी रावण को समझाकर फिर कहने लगी॥ ४७॥

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥

हे कन्त! मन में समझकर कुमति को त्याग दो। तुमको रघुवीरजी से युद्ध करते नहीं सुहाता। लक्ष्मणजी ने धनुष की रेखा खींच दी थी, उसको तुम लांघ नहीं सके, क्या यही तुम्हारी बहादुरी है?

पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥

हे प्यारे! उनसे संग्राम में जीतोगे जिनके दूतों के ऐसे काम हैं?

कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी असंका॥
रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा॥

खेल करके ही समुद्र लांघकर तुम्हारी लंका में सिंह के समान एक निडर वानर आया। रखवारे मार बाग उजाड़ कर तुम्हारे देखते ही जिसने अक्षय कुमार को मार डाला।

जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहां रहा बल गर्ब तुम्हारा॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुलबल जानहु॥

नगर को जला उसने भस्म कर दिया, तब तुम्हारा बल और अभिमान कहां रहा? हे नाथ! श्रीरामजी को मनुष्य मत जानो बल्कि सारे संसार के स्वामी अतुल बलवान जानो।

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा॥
जनक सभां अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥

उनके बाण का प्रताप मारीच जानता है। उसका कहा कहना भी आपने नहीं माना। राजा जनक की सभा में अगणित राजा थे, वहां आप भी बल और अभिमान वाले थे।

भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आंखि गहि फोरा॥

वहां रामचन्द्रजी ने ही धनुष तोड़कर जानकीजी को वर लिया। ऐसे रामचन्द्रजी को संग्राम में कौन जीत सकता है? इन्द्र का लड़का जयन्त भी थोड़ा बल जानता है, जिसको एक आंख फोड़कर जिंदा छोड़ दिया।

सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदयं नहिं लाज बिसेषी॥
अब पति वृथा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयं बिचारहु॥

सूर्पणखा की गति तुमने देखी ही है, उस पर भी हृदय में कुछ लाज नहीं आती। हे पति! अब निरर्थक बातें मत करो, मेरे कहने से कुछ मन में विचार कर देखो।

दो०—बधि बिराध खर दूषनहि लीलां हत्यो कबंध।
बालि एक सर मारयो तेहि जानहु दसकंध॥ ४८॥

वन में विरोध को मार खरदूषण को मारा और खेल ही से कबन्ध को मारा, बालि को एक ही बाण में मारा। उस प्रभु को हे दशकन्ध! मनुष्य बताते हो॥ ४८॥

जेहिं जलनाथ बंधायउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला॥
कारुनीक दिनकर कुल केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू॥

जिस प्रभु ने खेल हीं से सागर को बांध लिया और जो वानर सेना सहित सुबेल पर्वत पर उतरे हैं। दयावान् सूर्यवंश के ध्वजा-रूप रामजी ने तुम्हारे हित के लिए दूत भेजा है।

सभा माझ जेहिं तव बल मथा। करि बरुथ महुं मृगपति जथा॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बांकुरे बीर अति बांके॥

जिसने सभा में तुम्हारे बल को ऐसे मथा जैसे हाथियों के झुण्ड में सिंह आ गिरता है। अंगद हनुमानजी जिस प्रभु के सेवक रण-बांकुरे और बड़े बांके वीर हैं।

तेहि कहं पित पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥
अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥

उस प्रभु को हे प्यारे! बार-बार मनुष्य कहते हो और व्यर्थ मान, ममता और मद को ग्रहण करते हो। हा कन्त! रामजी के साथ विरोध करते हो, काल के वश मन में ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है।

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं॥

काल दण्ड पकड़कर किसी को नहीं मारता धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है जिसके समीप काल आ जाता है, हे स्वामी! उसको तुम्हारी ही तरह भ्रम हो जाता है।

दो०—दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुं पूर पिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु॥ ४६॥

दो पुत्र मारे गये, नगर जला दिया गया। हे प्यारे! आज भी सीताजी को दे दो और कृपासिन्धु रघुनाथजी का भजन करके हे नाथ! निर्मल यश ले लो॥ ४६॥

नारि बचन सुनि बिसिख समाना। सभां गयउ उठि होत बिहाना॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली॥

स्त्री के वचन रावण को बाण के समान जान पड़े और सवेरा होते ही उठकर सभा में गया सिंहासन के ऊपर फूलकर जा बैठा, अत्यन्त अभिमान के कारण सब डर भूल गया।

इहां राम अंगदहि बोलावा। आइ चरन पंकज सिरु नावा॥
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहंसि कृपाल खरारी॥

यहां रामचन्द्रजी ने अंगद को बुलाया। अंगद ने आकर चरण-कमलों में सिर नवाया। आदर से अपने निकट बिठाकर दयालु रामजी हँसकर बोले।

बालितनय कौतुक अति मोहि। तात सत्य कहु पूछउं तोहि॥
रावनु जातुधान कुल टीका। भुज बल अतुल जासु जग लीका॥

हे बालि कुमार अंगद! मुझको बड़ा आश्चर्य है। हे तात! सच कहो मैं तुमसे पूछता हूं, रावण राक्षस कुल का तिलक है, जिसकी भुजाओं के अतुल बल की जगत में मर्यादा है।

तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए॥
सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥

उसके चार मुकुट तुमने फेंके थे? कहो तात! मुकुट तुमने किस विधि से पाये थे? यह सुन बालि-सुत ने कहा—सुनो खरारी! ये मुकुट नहीं, ये राजा के चारों गुण हैं।

साम दाम अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कहबे दा॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियं जानि नाथ पहिं आए॥

हे नाथ! वेद ऐसा कहते हैं कि साम, दाम, दण्ड और भेद ये सब राजा के हृदय में बसते हैं। ऐसा जानकर नीति और धर्म के सुन्दर चरण स्वामी के पास आये।

दो०—धर्महीन प्रभु पद बिमुख काल बिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस॥ ५०॥
परम चतुरता श्रवन सुनि बिहंसे रामु उदार।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार॥ ५१॥

रावण धर्महीन प्रभु के चरणों से विमुख काल के आधीन है, हे अयोध्यापति रामजी ! सुनिए, इसी कारण रजोगुण रावण को छोड़कर आपके पास आ गये ॥ ५० ॥ अंगदजी की यह परम चतुरता कानों से सुनकर उदार रामजी हँस पड़े। तब लंका गढ़ का सारा समाचार अंगदजी ने कहा ॥ ५१ ॥

रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए ॥
लंका बांके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा ॥

जब बैरी का समाचार मिला, तब रामजी ने सब मन्त्रियों को समीप बुलाया और कहा, लंका के जो चार बांके दरवाजे हैं, उनको किस प्रकार लांघना चाहिए, सो विचार करो।

तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदयं दिनकर कुल भूषन ॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा ॥

तब सुग्रीव, जामवन्त और विभीषण ने हृदय में सूर्यवंश-भूषण श्रीरामजी का स्मरण कर और विचारकर उन्होंने पक्की सलाह की, फिर वानरों के दल की चार सेना बनाईं।

जथा जोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंघनाद करि धाए ॥

उन सेनाओं में यथायोग्य सेनापति बनाये, फिर उन्होंने यूथपतियों को बुलाया और प्रभु का प्रताप कहकर सबको समझा दिया, सो सुनकर सिंह के समान गरजते हुए दौड़े।

हरषित राम चरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं ॥
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा ॥

प्रसन्न होते हुए रामचन्द्रजी के चरणों में सिर झुकाते हैं और रीछ-वानर पहाड़ों के शिखर को पकड़ कर दौड़ते हैं। कौशलाधीश श्रीरामचन्द्रजी की जय बोलते हुए रीछ और वानर गरजते और तरजते हैं।

जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥
घटाटोप करि चहुं दिसि घेरी। मुखहिं निसान बजावहिं भेरी ॥

जानते हैं कि लंका गढ़ बड़ा कठिन है, फिर भी प्रभु के प्रताप से रीछ और वानर अति निर्भय होकर चले। घटाटेप करके चारों ओर से लंकापुरी को घेर लिया और मुख से बाजे और नगाड़े बजाने लगे।

दो०—जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंघनाद कपि भालु महा बल सींव ॥ ५२ ॥

भाई लक्ष्मण सहित श्रीरामजी की जय ! कपिपति सुग्रीव की जय हो ! यह कहकर महा-बलवान वानर और रीछ सिंहनाद करके गरजने लगे ॥ ५२ ॥

लंकां भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहंकारी ॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहंसि निसाचर सेन बोलाई ॥

लंका में बड़ा ही कोलाहल (शब्द) हुआ जिसको महा-अभिमानी रावण ने सुना। देखा वानरों की ढिठाई ! यह कहकर रावण हँसा और राक्षसों की विशाल सेना बुलाई।

आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा॥
सुभट सकल चारिहुं दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू॥

ये वानर काल के भेजे हुए आये हैं, मेरे राक्षस भी भूखे हैं। ऐसा कहकर मूर्ख रावण ने अट्टहास किया कि ब्रह्मा ने घर बैठे ही भोजन दे दिया। सब योद्धाओं चारों दिशाओं में जाओ और सब रीछ-वानरों को पकड़-पकड़कर खाओ।

उमा रावनहिं अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥
चले निसाचर आयसु मागी। गहि कर भिंडिपाल बर सांगी॥
तोमर मुग्दर परसु प्रचंडा। सूल कृपान परिघ गिरिखंडा॥

शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि हे पार्वती! रावण को ऐसा अभिमान है, जैसे टिड्डी पैरों को ऊँचे करके सोता है। (यानी आकाश गिरेगा तो पैरों से रोक लूंगा), तब राक्षस आज्ञा मांग कर चले। हाथों में गोफन, सुन्दर सांगी, तोमर, मुदगर, मूसलाकार शस्त्र, प्रचण्ड त्रिशूल, खड्ग, फरसा, पहाड़ के टुकड़े लिए हुए हैं।

जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं सठ खग मांस अहारी॥
चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा। तिमि धाए मनुजाद अबूझा॥

जैसे लाल पत्थरों के समूह देखकर मूर्ख मांसाहारी पक्षी दौड़ते हैं और चोंच टूट जाने का दुःख उनको नहीं सूझता, उसी प्रकार अजान राक्षस वानरों पर दौड़े।

दो०—नानायुध सर चाप धर जातुधान बल बीर।
कोट कंगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर॥ ५३॥

अनेक प्रकार के हथियार और धनुष-बाण लिए हुए गढ़ के कंगूरों पर करोड़ों शूरवीर रणधीर योद्धा राक्षस चढ़ गये॥ ५३॥

कोट कंगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे॥
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ॥

सुवर्ण के कोट के कंगूरों पर काले राक्षस कैसे सुहाते थे, जैसे मेरु के शिखर पर बादल छा जाते हैं। ढोल, निशान और जुझाऊ बाजे बजने लगे, जिनको सुनकर योद्धाओं के मन में युद्ध करने की इच्छा हो रही है।

बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा॥
देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा॥

नगाड़े और नफीरी बहुत सी बज रही थीं, सो सुनकर कायरों के हृदय फट जाते हैं। योद्धा वानरों के भट्ट और बहुत बड़े शरीर वाले रीछ देखे नहीं जाते हैं।

धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं॥

धावा किए हुए घुसे चले जाते हैं औघट घाट कुछ नहीं गिनते। जहां मार्ग नहीं मिलता वहां पर्वत को पांवों से फोड़कर रास्ता बना लेते हैं। करोड़ों योद्धा कटकटाते और गरजते हैं। दांतों से ओठों को काटकर बहुत डपटते हैं।

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहि॥

उधर रावण और इधर रामजी की दुहाई और जय-जयकार बोलकर लड़ाई होने लगी। राक्षस पर्वतों के शिखर समूह गिराते हैं, उनको कूदकर वानर बीच में ही पकड़ कर ऊपर को राक्षसों पर चला देते हैं।

छं०—धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं॥
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहं तहं राम जसु गावत भए॥ १॥

पर्वतों के टुकड़ों को लेकर प्रचण्ड वानर और रीछ गढ़ पर फेंकते हैं और झपटते हैं, फिर पांव पकड़कर पृथ्वी पर पटक कर बार-बार ललकारते हैं कि उठो और लड़ो, बड़े ही चंचल युवा और प्रतापी वानर-रीछ ललकारते और तमककर (फुर्ती से) गढ़ पर चढ़ गये और मन्दिरों पर चढ़कर जहां-तहां रामजी का यश गाने लगे॥ १॥

दो०—एकु एकु निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ॥ ५४॥

एक-एक राक्षस को पकड़कर, फिर वानर नीचे को लौट कर कूदते, ऊपर आप और नीचे राक्षस करके पृथ्वी पर गिरते हैं॥ ५४॥

राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा॥
चढ़े दुर्ग पुनि जहं तहं बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर॥

रामजी के प्रताप से प्रबल वानरों के समूह, राक्षसों के अनेक झुण्डों का नाश करने लगे। गढ़ पर जहां-तहां वानर चढ़ गये और बोले—रामजी प्रताप के सूर्य हैं, उनकी जय हो।

चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी॥

राक्षसों के समूह भाग चले, जैसे प्रचण्ड वायु के झोकों से मेघों के समूह उड़ जाते हैं। नगर में बड़ा हाहाकार हुआ, अत्यन्त दुःखित होकर बालक और स्त्रिया रोने लगीं।

सब मिलि देहिं रावनहि गारी। राज करत एहिं मृत्यु हंकारी॥

सब मिलकर रावण को गाली देते हैं, जिसने राज्य करते हुए मृत्यु को बुला लिया।

निज दल बिचल सुनी तेहिं काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना॥
जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना॥

अपनी सेना को जब भागते हुए कानों से सुना, तब योद्धाओं को लौटाकर रावण क्रोध में भर गया और यह आज्ञा सुनाई, जो कोई रण से मुख छिपाकर लौटेगा और मैं जानूंगा तो पैनी तलवार से मैं उसे मारूंगा।

सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भए बल्लभ प्राना॥
उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने॥

सब कुछ खा अनेक भोग भोगकर युद्ध के समय प्राण प्यारे हो गये। रावण का यह भयंकर वचन सुनकर सब डर गये और क्रोध करके राक्षस योद्धा लज्जित होकर फिर लौट पड़े।

सन्मुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥

सामने मरने से ही वीरों की शोभा होती है, ऐसे विचार किया, तब अपने प्राणों का लोभ छोड़ दिया।

दो०—बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥ ५५॥

सब राक्षस अनेक अस्त्र-शस्त्रों को लेकर ललकार-ललकार युद्ध करने लगे और भारी मुदगल और त्रिशूलों से मारकर रीछ और वानरों को व्याकुल कर दिया॥ ५५॥

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे॥
कोउ कह कहं अंगद हनुमंता। कहं नल नील दुबिद बलवंता॥

वानर व्याकुल हुए और भागने लगे। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! यद्यपि आगे जीतेंगे। कोई कहता है कि अंगद और हनुमान कहां हैं और बलवान नल-नील और द्विविध कहां हैं?

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनाद तहं करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥

अपने दल को चलायमान सुना, उस समय हनुमान बलवान पश्चिम द्वार पर था। जहां से मेघनाद लड़ रहा था, द्वार नहीं टूटता था। बड़ी कठिनाई थी।

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुं धावा॥

हनुमानजी के मन में बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ तब वीर हनुमान प्रलयकाल के समान गरजा। कूद कर लंका गढ़ पर चढ़ और पर्वत को लेकर मेघनाद पर झपटे।

भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुं मारेसि लाता॥
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना॥

पर्वत के प्रहार से रथ को तोड़, सारथी को मार गिराया और मेघनाद की छाती में लात मारी। दूसरे सारथी ने व्याकुल जाना, तब रथ पर डालकर तुरन्त उसको घर ले आया।

दो०—अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गयउ अकेल।
रन बांकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल॥ ५६॥

अंगद ने जब सुना कि हनुमानजी गढ़ पर अकेले ही हैं, तब रण-बांकुरा बालि कुमार अंगद वानरी खेल के अनुसार उछलकर चले और गढ़ पर पहुंच गये॥ ५६॥

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर॥
रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई॥

युद्ध में बैर से क्रोधयुक्त हुए दोनों वानर रामजी के प्रताप को हृदय में स्मरण करके रावण के महल के ऊपर भागकर चढ़ गये और श्रीरामजी की दुहाई करने लगे।

कलस सहित गहि भवनु ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा॥
नारि बृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती॥

कलश सहित सब भवन ढाने लगे, यह देखकर राक्षस बहुत डरने लगे। राक्षसियों के झुण्ड हाथों से छाती पीटने लगे कि अब दोनों उत्पाती वानर फिर आ गये।

कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं॥
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा॥

वानर लीला करके उनको डराते हैं और रामचन्द्रजी का सुयश सुनाते हैं। फिर हाथों में सुवर्ण के खम्भों को लेकर उत्पात करने लगे।

गर्जि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दै भुज बल भारी॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहि सो फल लेहू॥

फिर शत्रु की सेना में कूद पड़े और अपनी भुजाओं के बल से निशाचरों को मसलने लगे। किसी को लातों से, किसी को चपेटों से मारकर कहने लगे कि तुमने श्रीरामजी का भजन नहीं किया, उसका फल यह लो।

दो०—एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड।
रावन आगें परहिं ते जनु फूटहिं दधि कुंड॥ ५७॥

एक-एक को मसल करके उनके सिर को फोड़कर फेंकते हैं, वे रावण के आगे जाकर गिरते हैं। उनकी चर्बी ऐसी बिखर जाती है मानो दही के कुण्डे फूटते हों॥ ५७॥

महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥

बड़े-२ मुखिया (सरदारों) को जो पाते हैं, उनके पैर पकड़ कर प्रभु के पास फेंक देते हैं। विभीषण उनके नाम बतलाते हैं। रामजी उनको अपने धाम (बैकुण्ठ) देते हैं।

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी॥
उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥

दुष्ट राक्षस, मनुष्यहारी, ब्राह्मण के मांस भक्षण करने वाले वह गति पाते हैं, जिस गति की याचना योगीजन करते हैं। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! रामजी कोमल स्वभाव दया के करने वाले हैं, सो कहते हैं कि ये राक्षस मुझको बैर-भाव से स्मरण तो करते हैं।

देहिं परम गति सो जियं जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥

ऐसे मन में जानकर उनको परम गति देते हैं, हे पार्वती! सुनो ऐसा कृपालु कौन है जो ऐसे प्रभु का भजन भ्रम त्याग कर नहीं करते वे मनुष्य मन्दबुद्धि और बड़े ही अभागे हैं।

अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा॥
लंका द्वौ कपि सोहहिं कैसें। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसें॥

जान पड़ता है कि अंगद और हनुमानजी ने गढ़ में प्रवेश किया है, यह रामचन्द्रजी कहने लगे। लंका में दोनों वानर कैसे सुहाते हैं, जैसे दो मन्दराचल समुद्र को मथ रहे हों।

दो०—भुज बल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत श्रम आए जहं भगवंत॥ ५८॥

अपनी भुजाओं के पराक्रम से शत्रु का दल मसलकर मींज दिया और दिन का अन्त देखकर दोनों बिना परिश्रम कूदे और वहां आये जहां राम भगवान थे॥ ५८॥

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगतश्रम परम सुखारे॥

प्रभु के चरण-कमलों में दोनों ने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया उन्हें देखकर रामजी बड़े प्रसन्न हुए। रामजी ने कृपा कर दोनों को देखा तो वे श्रम-रहित होकर बहुत ही सुखी हुए।

गए जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई॥

अङ्गद हनुमान को गये जानकर रीछ-वानर अनेक योद्धा भी लौटे आये। राक्षस सायंकाल का बल पाकर रावण की दुहाई करके दौड़े।

निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहं तहं कटकटाइ भट भिरे॥
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी॥

राक्षसों की सेना देखकर रीछ-वानर योद्धा लौटे कटकटाकर फिर जहां-तहां भिड़ गये। दोनों प्रबल दल एक-दूसरे को ललक र-ललकार कर लड़ते हैं, कोई हार नहीं मानते हैं।

महावीर निसिचर सब कारे। नाना बरन बलीमुख भारे॥
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥

सब वीर राक्षस बहुत काले और रीछ-वानर अनेक रंग के बलवान और बहुत वीर थे। बड़े बलवान दोनों दल के सब बड़े योद्धा अनेक प्रकार से क्रोध करके लड़ते हैं।

प्राबिट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहुं मारुत के प्रेरे॥
अनिप अकंपन अरु अति काया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया॥

वर्षा और शरद के घने मेघ मानो पवन के उड़ाये हुए लड़ रहे हैं। अवनि, अकम्पन और अतिकाय न.म वाले जो सेनापति राक्षस थे, उन्होंने अपनी सेना को भागते देखकर माया की।

भयउ निमिष महं अति अंधियारा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा॥
माह खाहु सब करहिं पुकारा। बृष्टि होय रुधिरोपल छारा ..

पल-मात्र में बड़ा अन्धेरा हो गया, अपना हाथ पसारा नहीं सूझ पड़ता था, मारो और खाओ, सब पुकार कर रहे थे। रुधिर, पत्थर और धूल की वर्षा हो रही थी।

दो०—देखि निबिड़ तम दसहुं दिसि कपिदल भयउ खभार।
एकहि एक न देखई जहं तहं करहिं पुकार॥ ५१॥

दसों दिशाओं में बड़ा अन्धरा देखकर वानर सेना में खलबली मच गई। एक को एक नहीं सूझ पड़ता। जहां-तहां पुकार करने लगे॥ ५९॥

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपि कुंजर धाए॥

यह भेद विभीषण ने जाना। तब अंगद और हनुमानजी को बुला लिया। कहीं यह पाठ भी है। "सकल मर्म रघुनायक जाना" सब भेद रघुनाथजी ने जान लिया। सब समाचार कहकर समझाया, सो सुनते ही दोनों श्रेष्ठ वानर क्रोध करके दौड़े।

पुनि कृपाल हंसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा॥
भयउ प्रकास कतहुं तम नाहीं। ग्यान उदयं जिमि संसय जाहीं॥

फिर दयालु रामजी ने हँसकर धनुष चढ़ाया और तुरन्त अग्नि-बाण चलाया, जिससे उजाला हो गया, कहीं भी अन्धेरा नहीं रहा, जैसे ज्ञान उदय होने से संदेह जाता रहता है।

भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरष बिगत श्रम त्रासा॥
हनूमान अंगद रन गाजे। हांक सुनत रजनीचर भाजे॥

रीछ वानर उजाला पाकर कोप करके दौड़े, अन्धकार का भय जाता रहा। ज्यों ही हनुमान और अंगद रण में गरजे, त्योंही हांक सुनकर राक्षस भागे।

भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं॥

भागते हुए राक्षस योद्धाओं को पकड़कर पृथ्वी पर पटक देते हैं। उनको मगर, सांप और मछली आदि जलचर जीव नोंच-नोंचकर खा जाते हैं।

दो०—कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु बयीमुख रिपु दल बल बिचलाइ॥ ६०॥

कुछ राक्षस घायल हुए, कुछ लड़ाई में मारे गये, कुछ गढ़ को भाग गये, तब वानर, रीछ योद्धा शत्रु के दल-बल को विचार कर गरजे॥ ६०॥

निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहां कोसला धनी॥
राम कृपा करि चितवा सबही। भए बिगत श्रम बानर तबही॥

रात जानकर चारों सेना के सब वानर मिलकर वहां आए, जहां पर श्रीरामचन्द्रजी थे। रामजी ने कृपा करके जिस समय उनको देखा, उसी समय सब वानर श्रम-रहित हो गये।

उहां दसानन सचिव हंकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे॥
आधा कटकु कपिन्ह संघारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा॥

वहां रावण ने मन्त्री बुलाए और सबको कहा—जो-जो योद्धा मारे गये थे। वानरों ने आधी सेना का संहार किया। शीघ्र कहो, क्या विचार करना चाहिए?

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥

माल्यवन्त नामक एक बूढ़ा राक्षस रावण की माता का पिता (नाना) प्रधान मन्त्री था। वह नीति से बहुत पवित्र वचन बोला कि हे तात! कुछ मेरी शिक्षा मान लो।

जब ते तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी॥
बेद पुरान जासु जसु गायो। राम बिमुख काहुं न सुख पायो॥

जब से तुम सीता को हर लाये हो, तब से अपशकुन होते हैं, जो वर्णन नहीं किये जा सकते। वेद और पुराण ने जिसका यश गाया है, उससे विमुख होकर किसी ने कभी सुख नहीं पाया।

दो०—हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥ ६१॥
कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥ ६२॥

भाई हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्ष और बलवान मधुकैटभ को जिसने मारा, वही कृपासिन्धु भगवान अवतार लेकर आये हैं॥ ६१॥ जो काल-रूप और दुष्टजन-रूप बन के जलाने की अग्नि है। ...ों के स्थान और विशेष ज्ञान वाले हैं, जिनको शिव और कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी भजते हैं। उनसे ...न विरोध करेगा॥ ६२॥

परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
ताके बचन बान सम लागे। करिअ मुह करि जाहि अभागे॥

हठ छोड़कर सीता को दे दो और परम स्नेही कृपानिधान रामजी का भजन करो। उसके वचन रावण को बाण के समान लगे और बोला, अरे अभागे! काला मुख करके चला जा।

बूढ़ भएसि न त मरतेउं तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥

बूढ़ा हो गया है, नहीं तो तुझको मार डालता। अब मुझको अपना मुख मत दिखला।

तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत चहि कृपानिधाना॥
सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा॥

यह सुनकर उसने अपने मन में यह अनुमान लगाया कि भगवान इसको अब मारना चाहते हैं। सो वह बुरे वचन कहते हुए उठ गया, तब क्रोध सहित मेघनाद बोला।

कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहउं बहुत कहौं का थोरा॥
सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा॥

मेरा खेल सवेरे देखना बहुत कुछ करके दिखाऊंगा। अभी थोड़ा ही कहता हूं। रावण को मेघनाद के वचन सुनकर भरोसा आया और प्रेम सहित उसे निकट बिठाया।

करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहुं दुआरा॥
कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा॥
बिबिधायुध धर निसिचर धाए। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए॥

विचार करते हुए सवेरा हो गया, रीछ और वानर लंका के चारों द्वारों पर आ डटे। वानरों ने कोप करके उस कठिन गढ़ को घेर लिया, तब लंका नगर में कोलाहल हुआ। राक्षस बहुत से हथियार लेकर दौड़े और गढ़ से पर्वतों के शिखर ढकेलने लगे।

छं०—ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥

मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहं सो तहं निसिचर हए॥ २॥

पर्वतों के करोड़ों शिखर ढकलने लगे और अनेक भांति से गोले चलने लगे, जो वज्रपात की तरह घहराते हैं, अर्थात उनका धं-धूं शब्द ऐसा होता है मानो प्रलय के बादल गरजते हैं। वानर भयंकर योद्धा जुटते हैं पर कटते नहीं। लड़ने में उनके शरीर लोहूलुहान हो गये और वे पर्वत लेकर उन्हें गढ़ पर ऐसे चलाते हैं कि राक्षस जहां-तहां ही मरकर रह जाते हैं॥ २॥

दो०–मेघनाथ सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ।
उतरयो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ॥ ६३॥

मेघनाद ने कानों से सुना कि वानरों ने फिर गढ़ को घेर लिया तो वह बड़ा वीर मेघनाद गढ़ से उतर कर जुझाउ बाजे बजवाता हुआ सामने चला॥ ६३॥

कहं कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता॥
कहं नल नील द्विबिद सुग्रीवा। अंगद हनुमंत बल सींवा॥

मेघनाद ने जाते ही ललकारा कि कहां है कौशलाधीश दोनों भाई राम, लक्ष्मण जो लोकों में बड़े धनुधारी कहलाते हैं। कहां हैं नल-नील, द्विविद, सुग्रीव। कहां है महाबली हनुमान और अंगद ?

कहां बिभीषनु भ्राताद्रोही। आजु सबहि हठि मारउं ओही॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥

कहां है भाई से बैर करने वाला विभीषण ? आज मूर्ख को तो अवश्य ही मारूंगा। ऐसे कहकर कठिन बाण धनुष पर लगाये और बड़े कोप से कानों तक खींचे।

सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥
जहं तहं परत देखिअहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर॥

वह बाणों के समूह ऐसे छोड़ने लगा, मानो पंख समेत बहुत से सांप दौड़ रहे हैं। जहां-तहां वानर गिरते-पड़ते दिखाई देते थे, उस समय सामना नहीं कर सकते थे।

जहं तहं भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा॥
सो कपि भालु न रन महं देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा॥

भय से व्याकुल हो वानर-रीछ भागे, सबको युद्ध की इच्छा भूल गई। ऐसा कोई भी वानर रीछ रण में नहीं देखा गया, जिसको मेघनाद ने प्राण (अधमरा) न कर दिया हो।

दो०–दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बल धीर॥ ६४॥

दस-दस बाण हृदय में मारे जिससे वीर वानर पृथ्वी पर गिर पड़े, तब रणधीर मेघनाद सिंह के समान शब्द करके गरजा॥ ६४॥

देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला॥
महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा॥

हनुमानजी अपनी सेना को व्याकुल देखकर क्रोध करके ऐसे दौड़े मानो काल ने धावा किया और एक बड़ा पर्वत फुर्ती से उखाड़कर बड़े क्रोध से मेघनाद के ऊपर फेंका।

आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥

उस पर्वत को आते देखकर मेघनाद आकाश को कद गया। रथ, सारथी और घोड़े चकनाचूर हो गये। बार-बार हनुमान ने ललकारा कि सामने आ, परन्तु वह समीप नहीं आया, क्योंकि हनुमानजी का सारा भेद जानता था कि यह महाबली बड़ा बलवान है।

रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भांति करेसि दुर्बादा॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे॥

फिर रामजी के पास गया और अनेक भांति के वचन कहे। उसने अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाये परन्तु लीला से ही प्रभु ने काटकर डाल दिये।

देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करैं गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला॥

रामजी के प्रभाव को देखकर मूर्ख मेघनाद खिसिया गया, तब अनेक प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई गरुड़ से खेल करके उन्हें छोटे सांप के बच्चे को पकड़कर डरावे।

दो०—जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट॥ ६५॥

जिसकी प्रबल माया के अधीन शिव, ब्रह्मा और सब बड़े व छोटे जीव हैं, उस ईश्वर को खोटी बुद्धि वाला राक्षस मेघनाद अपनी माया दिखला रहा है॥ ६५॥

नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जलधारा॥
नाना भांति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥

आकाश में चढ़कर बहुत से अंगारे बरसाने लगा। पृथ्वी से जल की धारा प्रकट हुई। अनेक प्रकार के पिशाच और पिशाचनी मारो, काटो की ध्वनि से बोलते हुए नाचने लगे।

बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुं उपल बहु छाड़ा॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अंधिआरा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥

ऊपर से रुधिर, केश और हाड़ों की वर्षा की, कभी पत्थरों के बहुत से टीले बरसाने लगा फिर धूल बरसाकर ऐसा अन्धेरा कर दिया, जिससे अपना पसारा हाथ नहीं सूझता।

कपि अकुलाने माया देखें। सब कर मरन बना एहि लेखें॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने॥

वानर यह माया देखकर व्याकुल हो गये और जाना कि अब सबका मरण हुआ। यह तमाशा देख कर रामजी हँसे, जाना कि सब वानर बहुत ही डर गये हैं।

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके॥

एक ही बाण से सब राक्षसी माया ऐसे काट डाली, जैसे सूर्य सब अन्धकार को हर लेता है और कृपादष्टि से सब वानर और रीछों को देखा, तब वे ऐसे प्रबल हो गए कि रण में रोकने पर भी नहीं रुकते हैं।

दो०—आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ॥ ६६॥

तब रामचन्द्रजी से आज्ञा मांगी। अंगद आदि वानरों को साथ लेकर लक्ष्मणजी क्रोध से धनुष बाण हाथ में लेकर चले॥ ६६॥

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥
इहां दसानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए॥

कमल के समान नेत्र, विशाल वक्षस्थल, लम्बी भजायें, हिमालय के समान गोरा शरीर क्रोध के कारण कुछ लाल वर्ण हो गया। उधर रावण ने मेघनाद की सहायता को राक्षस योद्धा भेजे जो अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े।

भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी॥

इधर से भी पर्वत, नख और वृक्षों के हथियार धारण करने वाले वानर रामजी की जय बोलते हुए दौड़े। अपने-अपने समान योद्धा देखकर जोड़ी से जोड़ी सब भिड़ गये। इधर-उधर जीत की इच्छा थोड़ी नहीं।

मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥

घूंसा और लातों से मारते, दांतों से काटते हैं। इस प्रकार वानर शिला मारकर फिर डपटते हैं, मारो-२, पकड़कर मार डालो, फिर सिर तोड़ भुजा पकड़कर उखाड़ लो।

असि रव पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहं तहं रुंड प्रचंडा॥
देखहिं कौतुक नभ सुर बृंदा। कबहुंक बिसमय कबहुं अनंदा॥

ऐसा शब्द वहां आकाश मण्डल में भर गया। जहां तहां रुण्ड दौड़ने लगे। देवताओं के समूह आकाश में कौतुक देख रहे थे। कभी विस्मय और कभी आनन्द होता था।

दो०—रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु अंगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ॥ ६७॥

रुधिर भर-भर कर गड्ढों में जम गया और उन पर धूल ऐसे जम गई जैसे अंगारों की राशि पर मृतक धुआं छा रहा हो॥ ६७॥

घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा॥

घायल वीर कैसे शोभायमान हैं, जैसे फूले हुए टेसू के वृक्ष सुहाते हैं। लक्ष्मण, मेघनाद दोनों योद्धा परस्पर क्रोध से लड़ते हैं।

एकहि एक सकइ नहिं जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता॥

एक को एक नहीं जीत सकता, परन्तु मेघनाद छल-बल से अनीति करता है। तब लक्ष्मणजी क्रोधित हुए और रथ तथा सारथी को तुरन्त नष्ट कर दिया।

नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान अवसेषा॥
रावन सुत निज मन अनुमाना। संकठ भयउ हरिहि मम प्राना॥

फिर लक्ष्मणजी ने अनेक अस्त्र-शस्त्र मारकर देखा कि राक्षस अधमरा हो गया, तब रावण के पुत्र मेघनाद ने अपने मन में अनुमान किया कि अब संकट आया और यह मेरे प्राण हरेगा।

बीरघातिनी छाड़िसि सांगी। तेज पुंज लछिमन उर लागी॥
मुरुछा भई सक्ति के लागें। तब चलि गयउ निकट भय त्यागें॥

यह विचार कर वीरों का नाश करने वाली ब्रह्म-शक्ति मेघनाद ने छोड़ी। वह तेज की राशि लक्ष्मणजी की छाती में आकर लगी। शक्ति के लगने से मूर्छा आ गई, तब मेघनाद निर्भय होकर समीप चला गया।

दो०—मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ॥ ६८॥

मेघनाद के समान सौ कोटि वीर उठाने लगे, परन्तु जगदाधार शेष के अवतार लक्ष्मणजी नहीं उठे, तब वह लज्जित होकर चला गया॥ ६८॥

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारिदस आसू॥
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाही॥

शिवजी कहते हैं कि सुनो पार्वती! जिसकी क्रोधाग्नि चौदह भुवनों को शीघ्र जला सकती है। देवता, मनुष्य और चराचर जगत जिनकी सेवा करते हैं, उनको संग्राम में कौन जीत सकता है?

यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई॥
संधया भइ फिरि द्वौ बाहनी। लगे संभारन निज निज अनी॥

यह कौतुक वही जन जानेगा, जिस पर रामजी की कृपा होगी। सन्ध्या हुई, दोनों सेनायें लौटीं, सेनापति अपनी-अपनी सेना संभालने लगे।

ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमन कहां बूझ करुनाकर॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥

जो राम व्यापक ब्रह्म अजय जगदीश्वर करुणानिधान हैं, सो पूछने लगे कि लक्ष्मणजी कहां हैं? तब हनुमानजी ले आए। भाई को देखकर प्रभु ने बहुत दुःख माना।

जामवंत कह बैद सुषेना। लंकां रहइ को पठई लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥

तब जामवन्त ने कहा—लंका में सुषेन वैद्य रहता है किसी को लिवा लाने को भेजिये। छोटा रूप रखकर हनुमानजी गये और घर समेत तुरन्त वैद्य को उठा लाये।

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन॥ ६९॥

रघुनाथजी के चरण-कमलों में आकर सुषेन ने सिर नवाया और औषधि का नाम संजोवनी और द्रोणाचल पर्वत का नाम बतलाया, तब यह निश्चय कर कहा कि हनुमानजी तुम ही औषधि लेने जाओ ॥ ६९ ॥

राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी॥
उहां दूत एक मरमु जनावा। रावनु कालनेमि गृह आवा॥

रामजी के चरण-कमल हृदय में रखकर हनुमानजी अपना बल कहकर चले। वहां एक दूत ने भेद बतलाया, तब रावण कालनेमि के घर आया।

दसमुख कहा मरमु तेहिं सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥
देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा॥

रावण ने भेद कहा, सो उसने सुना और बारम्बार कालनेमि ने सिर धुना और बोला—तुम्हारे देखते ही जिसने लंका को जलाया, उसका पंथ कौन रोक सकता है ?

भजि रघुपति करु हित आपना। छांड़हु नाथ मृषा जलपना॥
नील कंज तनु सुंदर स्यामा। हृदयं राखु लोचनाभिरामा॥

रघुनाथजी का भजन कर अपना हित करो और हे नाथ ! अब व्यर्थ की बकवास को छोड़ दो। नील कमल के समान सुन्दर शरीर, मनोहर नेत्रों को लाभदायक है। सो मूर्ति को हृदय में धारण करो।

मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू॥
काल ब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुं समर कि जीतिअ सोई॥

अहंकार, मोह और अभिमान को त्याग दो, महा अज्ञान-रूपी रात में सोते से जागो। काल-रूपी सांप का जो भक्षक है, भला उसको क्या कोई सपने में भी समर में जीत सकता है।

दो०—सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर मरौं बरु यह खल रत मल भार॥ ७०॥

कालनेमि ने ऐसे समझाया, तो रावण उसका ज्ञान सुन बहुत क्रोधित हुआ। तब उसने मन में विचार किया कि रामजी के दूत के हाथ से मरना अच्छा। नहीं तो यह मुझे मार डालेगा॥ ७०॥

अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥
मारुतसुत देखा सुभ आश्रम। मुनिहि बूझि जल पियौं जाई श्रम॥

ऐसे मन में कह चला और मार्ग में माया रची। सुन्दर सरोवर, मन्दिर और बाग बनाया। हनुमानजी ने अच्छा आश्रय देखकर विचार किया कि मुनि से पूछकर जल पी लूं, तो थकावट दूर हो जायेगी।

राच्छस कपट बेष तहं सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥
जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा॥

वहां सुन्दर, कपट वेष वाला राक्षस मायापति प्रभु के दूत को मोहित करना चाहता था। वहां जो हनुमानजी ने कपट मुनि को मस्तक नवाया, तब वह रामजी के गुणों की कथा कहने लगा।

होत महा रन रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या महिं॥
इहां भएं मैं देखउं भाई। ग्यानदृष्टि बल मोहि अधिकाई॥

श्रीरामचन्द्रजी और रावण में बड़ा युद्ध हो रहा है। उसमें रामचन्द्रजी जीतेंगे इसमें सन्देह नहीं है। हे भाई! मैं यहीं बैठे देख रहा हूं, क्योंकि ज्ञान दृष्टि का बल मुझको बहुत है।

मागा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। कह कपि नहिं अघाउं थोरें जल॥
सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिच्छा देउं ग्यान जेहिं पावहु॥

तब हनुमानजी ने जल मांगा तो उसने कमण्डल दिया। तब हनुमानजी बोले, इतने थोड़े जल से नहीं अघाऊंगा, तब कपटी मुनि बोला—सरोवर में स्नान करके शीघ्र आओ, तो मैं दीक्षा दूं जिससे ज्ञान प्राप्त हो।

दो०—सर पैठत कपि पद गहा मकरीं तब अकुलान।
मारी सो धरि दिब्य तनु चली गगन चढ़ि जान॥ ७१॥

तब हनुमानजी सरोवर पर गये, उस सरोवर में पैठते ही एक मकड़ी ने चरण पकड़ लिया तब तो हनुमानजी बहुत घबराये और फिर चरण के फटकार से ही उसे मार डाला। तब वह दिव्य शरीर धारण कर विमान पर चढ़ आकाश को गई और चलते समय बोली॥ ७१॥

कपि तव दरस भइउं निष्पापा। मिटा तात मुनिबर कर सापा॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि मोरा॥

हे हनुमानजी! आज मैं तुम्हारे दर्शन से निष्पाप हुई हूं, हे प्यारे! मुनिवर का शाप मिट गया। यह मुनि नहीं है, घोर राक्षस है, हनुमान! मेरा वचन सत्य मानो।

अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू। पाछें हमहिं मंत्र तुम्ह देहू॥

ऐसे कहकर जिस समय अप्सरा गई, उसी समय हनुमानजी राक्षस के समीप गये। हनुमानजी ने कहा पहले दक्षिणा ले लो, फिर पीछे से तुम हमको मन्त्र देना।

सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना। सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना॥

यह कहकर राक्षस का सिर अपनी पूंछ में लपेटकर पछाड़ दिया। तब अपना शरीर उसने मरते समय प्रकट किया। राम-राम कहकर प्राण छोड़ दिया, यह सुनकर मन में प्रसन्न हो हनुमानजी चले।

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयउ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥

पर्वत पर देखा तो औषधि नहीं पहचानी, तब हनुमानजी ने पर्वत को उखाड़ लिया। पर्वत को लेकर रात को आकाश मार्ग से दौड़ते हुए हनुमानजी अयोध्यापुरी के ऊपर गये।

दो०—देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥ ७२॥

भरतजी ने आकाश में बहुत बड़ा शरीर देखा तो मन में राक्षस का अनुमान कर बिना फर का बाण धनुष पर चढ़ा, कानों तक खींच और तानकर मारा ॥ ७२ ॥

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक ॥
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए ॥

बाण लगते ही हनुमानजी हे राम ! हे राम ! हे रघुनाथजी ! इस प्रकार स्मरण कर मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। प्यारे वचन सुनकर भरतजी उठ दौड़े और बहुत जल्दी हनुमानजी के निकट आये ।

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भांति जगावा ॥
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी ॥

हनुमानजी को व्याकुल देख हृदय से लगाया और बहुत प्रकार जगाया तो भी नहीं जागे। मुख उदास हो गया, मन में दुःखी हुए और नेत्रों में आंसू भरकर यह वचन बोले—

जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा ॥
जौं मोरें मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया ॥

जिस विधाता ने मुझको राम से विमुख किया, उसी ने फिर यह दारुण दुःख दिया। जो मेरे मन, वचन और शरीर से रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में निष्कपट प्रीति हो ।

तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला ॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा ॥

तो यह वानर परिश्रम और व्यथा से रहित हो जाए, जो रघुनाथजी मुझ पर अनुकूल होवें। भरतजी के वचन सुनते ही जय रामचन्द्रजी की ! कहते हनुमानजी उठे ।

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदयं समाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक ॥ ८ ॥

तब हनुमानजी को हृदय से लगाया, शरीर पुलकायमान हुआ, नेत्रों में आंसू भर आये। रघुकुल तिलक रामचन्द्रजी का स्मरण करके प्रीति हृदय में नहीं समाती है, ऐसे भरतजी मग्न हो गए और हनुमानजी से पूछने लगे ॥ ८ ॥

तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी ॥
कपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुं पछिताने ॥

हे तात ! सुख निधान रामचन्द्रजी, लक्ष्मण और माता जानकी समेत कुशल कहो। हनुमानजी ने सब चरित्र संक्षेप से कह सुनाये, सो सुनकर भरतजी मन में पछताने लगे ।

अहह दैव मैं कत जग जायउं। प्रभु के एकहु काज न आयउं ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा ॥

हा देव ! क्यों इस जगत में मैं उत्पन्न हुआ जो स्वामी के एक भी काम में नहीं आया। कुसमय जान मन में धीरज रख बलवीर भरतजी फिर हनुमान से बोले—

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता ॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहं कृपा निकेता ॥

हे प्यारे ! तुमको जाते देर होगी और सवेरा होते ही काम बिगड़ जायेगा। मेरे बाण पर पर्वत सहित चढ़ो, तुमको भेज दूं, जहां कृपानिधान रामचन्द्रजी हैं।

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥

सुनकर हनुमानजी के मन में अभिमान हुआ कि मेरे बोझ से कैसे बाण चलेगा, फिर रामजी के प्रताप को विचारकर चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़ बोले।

तव प्रताप उर राखि गुसाईं। जैहौं नाथ बाण की नाईं॥
हर्षि भरत तब आयसु दीन्हा। पद शिर दाइ गमन कपि कीन्हा॥

हे गुसांई ! आपके प्रताप को हृदय में रखकर हे नाथ ! बाण की तरह जाऊँगा। तब प्रसन्न हो भरतजी ने आज्ञा दी तो हनुमानजी, भरतजी के चरणों में सिर झुकाकर चले।

दो०-भरत बाहुबल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुं जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥ ७३॥

भरतजी की भुजाओं का बल, शील, गुण, और प्रभु के चरणों में अपार प्रीति को मन ही मन में बार-बार सराहते हुए चले जाते हैं॥ ७३॥

उहां राम लछिमन निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥

यहां रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी को देखकर मनुष्यों के समान वचन बोले, आधी रात बीत गई हनुमानजी नहीं आये, यह कहकर रामजी ने लक्ष्मण को उठाकर छाती से लगा लिया।

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥

हे भाई तुम कभी मुझको दुःखित नहीं देख सके, सदा तुम्हारा कोमल स्वभाव रहा। मेरे सुख के निमित्त माता-पिता को छोड़ा, वन में जाड़ा, घाम और वायु को सहा।

सो अनुराग कहां अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनतेउं बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउं नहिं ओहू॥

हे भाई ! वह प्रेम अब कहां है ? मेरी विकल वाणी सुनकर क्यों नहीं उठते हो ? जो मैं जानता कि वन में भाई का बिछोह होगा तो पिता का यह वचन भी न मानता।

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियं जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥

पुत्र, धन, स्त्री, परिवार जगत में बारम्बार होते और जाते हैं, परन्तु सगा भाई संसार में नहीं मिलता, यह विचार कर हे प्यारे भाई जागो।

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥

दुःखी जैसे बिना पंख के पक्षी बहुत दीन होता है और मणि के बिना सांप और सूंड के बिना हाथी दीन होता है, वैसे ही मेरा जीवन है, हे बन्धु ! तेरे बिना जो जड़ देव मुझको जियावे तो मैं प्राण त्याग दूंगा।

जैहउं अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गंवाई ॥
बरु अपजस सहतेउं जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं ॥

अयोध्याजी में क्या मुख लेकर जाऊंगा, जो स्त्री के कारण प्यारे भाई को खो दिया। जगत में अपयश भले सह लेता, क्योंकि स्त्री हानि से विशेष हानि नहीं थी।

अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा ॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा ॥

अब सीता हरण-रूप अपयश और तुम्हारा शोक मेरा कठोर और निठुर मन सहता है। अपनी माता का एक ही ऐसा पुत्र हूं, सो हे प्यारे ! उनके तुम प्राण अधार हो।

सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी ॥
उतरु काह दैहउं तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई ॥

तुम्हारी माता ने मुझको तुम्हारा हाथ पकड़कर सौंप दिया था, मुझको सब प्रकार से सुख देने वाला परम हितकारी जाना था। उसको जाकर क्या उत्तर दूंगा। हे भाई ! उठ कर मुझको क्यों नहीं समझाते हो।

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन ॥
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई ॥

सोच को दूर करने वाले भगवान इस प्रकार बहुत भांति से सोच करते है और कमल समान नेत्रों से जल बहाते हैं। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! रघुनाथजी तो एक अखंड अर्थात अद्वितीय ब्रह्म हैं। दयालु भगवान ने यह नर लीला करके भक्ति दिखलाई है कि भक्त मुझे इस प्रकार प्यारे हैं।

सो०—प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महं बीर रस ॥ ६ ॥

प्रभु के विलाप (अर्थरहित बातचीत) को सुनकर वानर-गण व्याकुल हुए, उसी समय हनुमानजी आ गए, जैसे करुणा-रस में वीर-रस आ जाता है ॥ ६ ॥

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना ॥
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई ॥

रामजी प्रसन्न होकर हनुमानजी से मिले, प्रभु किये हुए उपकार को भली-भांति मानने वाले और बड़े चतुर हैं। सुषेन ने तुरन्त उपचार किया, और लक्ष्मणजी प्रसन्नता से उठ बैठे।

हृदयं लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता ॥

प्रभु रामचन्द्रजी भाई को छाती से लगाकर मिले, सब रीक्ष वानरों के समूह प्रसन्न हुए।

कपि पुनि बैद तहां पहुंचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा ॥
यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ ॥

फिर हनुमानजी ने वैद्य को वहां पहुंचाया, जिस प्रकार पहले उसको ले आये थे। यह हाल जब रावण ने सुना, तो बहुत दुःखी हुआ और बार-बार अपना सिर पीटा।

ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥
जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहुं कालु देह धरि बैसा॥

फिर व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत से उपाय करके उसको जगाया, कुम्भकर्ण जागा। ऐसा दिखाई पड़ता है, मानो साक्षात काल ही देह रखकर आ बैठा हो।

कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई॥

कुम्भकर्ण ने पूछा, हे भाई! कहो तुम्हारा मुख क्यों सूख रहा है।

कथा कही सब तेहिं अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे॥

तब उस अभिमाना रावण ने सब कथा कही कि जिस प्रकार सीताजी को हर लाया। हे तात! वानरों ने निशाचर नाश किए, बड़-बड़ योद्धा सब मार डाले।

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥

देवताओं के बैरो, मनुष्यों को खाने वाले बड़े-बड़े योद्धा, विशाल शरीर वाले अकंपन, दुर्मुख तथा महोदर आदिक वीर लड़ाई में धैर्य धारण करने वाले सब वीर मारे गए।

दो०—सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥ ७४॥

रावण के वचन सुनकर कुम्भकर्ण बहुत व्याकुल हुआ और मन में कहने लगा कि जगत की मात सीता को हर लाकर शठ अब अपना कल्याण चाहता है॥ ७४॥

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूं तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥

रे निशाचर! तुमने अच्छा नहीं किया, अब मुझको तुमने आकर क्यों जगाया है। हे तात! अभिमान छोड़कर रामजी का भजन करो तो तुम्हारा भला होगा।

हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई॥

हे रावण! रामचन्द्रजी क्या मनुष्य हैं? जिनके हनुमान सरीखे दूत हैं। हा भाई! तुमने खद खुटाई की कि पहले आकर मुझको नहीं जगाया।

कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउं तोहि समय निरबहा॥

हे प्रभु! तुमने उस देवता से विरोध की है कि जिसके शिव, ब्रह्मा और समस्त देवता सेवक हैं। नारद मुनि ने जो ज्ञान कहा था, मैं तुमसे कहता, परन्तु अब समय नहीं रहा।

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥

हे भाई ! अब गोद भर मुझसे मिल लो और मैं भी जाकर नेत्रों को सफल करूं। श्याम शरीर कमल-नयन तीनों तापों को हरने वाले रामचन्द्रजी को देखूं।

दो०—राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक ॥ ७५ ॥

कुम्भकर्ण श्री रामजी के रूप और गुणों को मन में सुमर एक क्षण मगन हुआ, फिर रावण से कोटि घड़ा मद और अनेक भैंसे मांगे ॥ ७५ ॥

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना ॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा ॥

भैंसे खाकर मदिरा पान करके वज्र गिरने के समान गर्जा। कुम्भकर्ण बड़ा अभिमानी रण के रँग में रँगा हुआ गढ़ छोड़कर अकेला चला गया, उसने अपने साथ कोई सेना नहीं ली।

देखि बिभीषनु आगें आयउ। परेउ चरन निज नाम सुनायउ ॥

उसको देख विभीषण आगे आया, फिर चरण छूकर अपना नाम सुनाया।

अनुज उठाइ हृदयं तेहि लायो। रघुपति भक्त जानि मन भायो ॥
तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा ॥

छोटे भाई विभीषण को उसने उठाकर छाती से लगाया और रघुनाथजी का भक्त जान मन को भाया। हे तात ! परम हितकारी सम्मति विचारकर कहते हुए रावण ने लात मारी।

तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउं। देखि दीन प्रभु के मन भायउं ॥
सुनु सुत भयउ काल बस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन ॥

उसी लाज से मैं रघुनाथजी के पास आया, दीन जानकर प्रभु के मन को मैं भाया। सुन पुत्र ! रावण काल के वश हुआ है, वह अच्छी शिक्षा कैसे मान सकता है।

धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन ॥
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर ॥

हे विभीषण ! तुम धन्य हो। हे तात ! तुम निशाचर वंश में आभूषण हुए हो। हे भाई ! तुमने वंश को उजागर किया, जो शोभा और सुख के समुद्र रामजी का भजन किया।

दो०—बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउं कालबस बीर ॥ ७६ ॥

हे तात ! मन कर्म और वचन से कपट छोड़ रामजी का भजन करो, हे वीर ! अब जाओ, मुझको अपना पराया नहीं सूझता, क्योंकि मैं भी कालवश हो गया हूं ॥ ७६ ॥

बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आयउ जहं त्रैलोक बिभूषन ॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा ॥

भाई के वचन सुनकर विभीषण लौटा और जहां त्रिलोकी के भूषण रामजी थे, वहां आया और बोला हे नाथ, पर्वत के आकार का शरीर वाला रणधीर कुम्भकरण आता है।

एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना ॥
लिए उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर ॥

इतना वचन जब वानरों ने कान से सुना तो किलकिला कर बलवान दौड़े। वृक्ष और पर्वत उखाड़ लिए, सो कटकटाकर उसके ऊपर डालने लगे।

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥
मुरयो न मनु तनु टरयो न टारयो। जिमि गज अर्क फलनि को मारयो॥

करोड़ों वानर कंगूरों का प्रहार रीछ-वानर एक साथ करने लगे। कुम्भकर्ण का न मन फिरे, न शरीर टालने से टले, जैसे आंक के फलों के मारने से हाथी नहीं टलता।

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। परयो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥

तब हनुमानजी ने उसको एक घूंसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर धुनने लगा, फिर उठकर हनुमानजी को मारा, जिससे वह तुरन्त ही मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहं तहं पटकि पटकि भट डारेसि॥
चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई॥

फिर नल-नील को पृथ्वी पर पछाड़ डाला, जहां-तहां वीरों को पटक-पटक कर मारने लगा सेना भागी और अत्यन्त भय के कारण ऐसी घबड़ाई कि उसके सामने कोई नहीं पड़ता था।

दो०–अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव।
कांख दाबि कपिराज कहुं चला अमित बल सींव॥ ७७॥

फिर सुग्रीव समेत अंगद आदि वानरों को मूर्छित कर सुग्रीव को बगल में दबाकर महाबलवान कुम्भकरण लंका को ले गया॥ ७७॥

उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती। रघुनाथजी तो नर लीला करते हैं, जैसे गरुड़ सांपों में मिलकर खेलता है। जो भृकुटी को टेढ़ा कर लें तो काल को भी खा जायें, उन्हें क्या ऐसी लड़ाई शोभा देती है।

जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥
मुरुछा गइ मारुतसुत जागा। सुग्रीवहि तब खोजन लागा॥

संसार को पवित्र करने वाले अपनी कीर्ति को फैलाते है, जिसको गाकर मनुष्य भवसागर से तर जाते हैं, जब हनुमानजी को मूर्छा आ गई और जागे, तब सुग्रीव को ढूंढने लगे।

सुग्रीवहु के मुरुछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती॥
काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना॥

जब सुग्रीव की मूर्छा टूटी, तब कुम्भकर्ण को अपने मरने का विश्वास कराकर बगल में से खिसक गए। दांतों से नाक कान काट और गर्जकर आकाश को चले, तब कुम्भकर्ण ने जाना।

गहेउ चरन गहि भूमि पछारा। अति लाघवं उठि पुनि तेहि मारा॥
पुनि आयउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना॥
नाक कान काटे जियं जानी। फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी॥

तब पैर पकड़कर पृथ्वी पर पछाड़ दिया, फिर सुग्रीव ने जल्दी से उठकर उसे मारा। फिर बलवान सुग्रीव प्रभु के पास आये और बोले, कृपानिधान की जय हो, जय हो!

सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा॥

फिर कुम्भकर्ण नाक-कान कटे जान लाज, मान क्रोध करके लौटा, एक तो स्वभाव से ही भयंकर फिर बिना नाक कान कुम्भकर्ण को देखते ही वानरों की सेना को भय उत्पन्न हुआ।

दो०—जय जय जय रघुबंस मनि धाए कपि दै हूह।
एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह॥ ७८॥

रघुवंशमणि रामचन्द्रजी की जय जय बोलते हुए वानर हू हू करके दौड़े और एक ही साथ कुम्भकर्ण के ऊपर पर्वतों के समूह डाले॥ ७८॥

कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहां समाई॥

रण के रंग से भयंकर कुम्भकर्ण सम्मुख चला, मानो काल क्रोध किए आ रहा हो। अनेकों वानरों को पकड़कर खा जाता है, जैसे टिड्डियां पर्वत की खोह में समा जाती है।

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा॥
मुख नासा श्रवनन्हि की बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा॥

बहुतेरे वानर पकड़कर शरीर में मल डाले, बहुतों को भींच कर गर्द में मिला दिया। मुख, नाक और कानों के रास्ते से निकलकर रीछ वानर ठट्ट के ठट्ट भाग जाते हैं।

रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा॥
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे॥

लड़ाई के अभिमान में मतवाले कुम्भकर्ण को ऐसा अभिमान था मानो जगत को खा जाने का संकल्प किया हो। सब योद्धा रण से फेरे नहीं फिरते हैं, नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ता, टेरे से सुनते नहीं।

कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी॥
देखि राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई॥

कुम्भकर्ण ने सब वानरी सेना तितर-बितर कर दी। यह सुनकर सब दौड़कर आये। रामजी ने अपनी सेना को विकल और शत्रु की अनेक प्रकार की सेना आई देखी।

दो०—सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज संभारेहु सैन।
मैं देखउं खल बल दलहि बोले राजिवनैन॥ ७९॥

तब कमल-नयन भगवान बोले, सुनो लक्ष्मण, विभीषण! सब सेना सम्भालो, अब मैं इस दुष्ट के बल और सेना को देखूंगा॥ ७९॥

कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा॥
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टंकोरा। रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा॥

हाथ में धनुष-बाण कमर में तर्कस और सिंह की चाल चलकर रघुनाथ जी चले। पहले प्रभु ने अपने धनुष की टंकार की, जिसके शब्द को सुनकर शत्रु दल बहरा हो गया।

सत्यसंध छांड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा॥
जहं तहं चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा॥

धनुष तानकर बाणों के लक्षों अर्थात बाणों के समूह छोड़े वे ऐसे चले मानो पंख सहित काल-रूपी सांप चलते हैं। प्रबल वेग से बाण समूह चले, जिससे बड़े भयँकर राक्षस योद्धा कटने लगे।

कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारी सुभट पुनि लरहीं॥

उन राम बाणों से राक्षसों के चरण, सिर हृदय और भुजदण्ड कटते हैं। बहुतेरे वीर राक्षसों के सौ टुकड़े हो जाते हैं। घूम-घूम घायल योद्धा पृथ्वी पर गिरते हैं और सँभलकर उठते और लड़ते हैं।

लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मोरु धुनि गावहिं॥

बाण लगते ही राक्षस मेघ की तरह गरजते हैं और बहुतेरे कठिन बाण को देखकर भागते हैं। बहुत से रुण्ड बिना मुण्ड के दौड़ते हैं और पकड़ो-पकड़ो मारो-मारो पुकार करते हैं।

दो०—छन महुं प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महुं प्रबिसे सब नाराच॥ ८० ॥

प्रभु रामजी के बाणों ने क्षण भर में भयंकर राक्षसों को काट डाला फिर रघुनाथजी के तरकस में आकर सब बाण प्रवेश कर गये॥ ८०॥

कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी॥
भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा। कियो मृगनायक नाद गंभीरा॥

तब कुम्भकर्ण ने मन में विचारा कि राम ने क्षण-भर में सब राक्षसों को मार डाला। यह विचार उस महाबली कुम्भकर्ण को बड़ा क्रोध हुआ और सिंह के समान गम्भीर शब्द कर गरजा।

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहं मर्कट भट भारी॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे॥

क्रोध से पर्वत को उखाड़ लिया और जहां वीर वानर थे, वहां फेंका। भारी पर्वत को आता देख कर प्रभु ने बाणों से काटकर धूलि के समान करके उसको उड़ा दिया।

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छांड़े अति कराल बहु सायक॥
तनु महुं प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जिमि दामिनि घन माझ समाहीं॥

फिर धनुष तान और क्रोध करके रघुनाथजी ने बड़े भयंकर बहुत से बाणों को छोड़ा। कुम्भकर्ण के शरीर में घुसकर बाण ऐसे निकल जाते हैं जैसे बिजली बादल में समा जाती है।

सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहंसा जबहिं निकट कपि आए॥

काले शरीर से रुधिर बहता ऐसा शोभा देता था, जसे कज्जल पर्वत पर गेरु के पनारे बहते हैं। उसको व्याकुल देख रीछ वानर दौड़े और जब समीप चले आये, तब उनको देख कुम्भकर्ण हंसा।

दो०—महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस॥ ८१ ॥

बड़े वेग से गरजता हुआ दौड़ा, अनेकानेक वानरों को पकड़कर गजराज सिंह के समान पृथ्वी पर पटकता हुआ रावण की दुहाई देने लगा ॥ ८१ ॥

भागे भालु बलीमुख जूथा। बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा ॥

रीछों और बन्दरों के समूह इस प्रकार भाग चले, जैसे भेड़िये को देखकर मेषों का समूह भागने लगता है।

चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी ॥
यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई ॥

शिवजी कहते हैं कि हे भवानी ! कुम्भकर्ण के विकट लड़ाई से वानर और रीछ भाग चले और विकल हो दुख की बाणी से ऐसे पुकारने लगे। यह राक्षस दुकाल के समान है जो वानर कुल-रूपी देश पर अब पड़ना चाहता है।

कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी ॥
सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना ॥
राम सेन निज पाछें घाली। चले सकोप महा बलसाली ॥

हे खरारी रामजी ! कृपा-रूपी मेघ से हे दीन दुःखहारी हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। ऐसे दया वाले वचन सुन भगवान अपना धनुष बाण सुधार कर चले। बड़े बलवान रामचन्द्रजी ने अपनी सेना को तो पीछे कर लिया और आप क्रोधित होकर चले।

खैंचि धनुष सर सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने ॥
लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा ॥

धनष तानकर सौ बाण छूटते ही शरीर में घुस गये। बाण लगते ही क्रोध में भरकर दौड़ने लगा, जिससे पहाड़ डगमगाने लगे और पृथ्वी हिलने लगी।

लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी। रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी ॥
धावा बाम बहु गिरि धामी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी ॥

तब उसने एक पर्वत की शिला उखाड़ ली, तब रामचन्द्रजी ने उस भुजा को काट डाला, फिर बाईं भुजा से पर्वत लेकर दौड़ा, तब प्रभ ने वह भुजा भी काटकर पृथ्वी पर डाल दी।

काटें भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदर गिरि जैसा ॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुं त्रैलोका ॥

भुजाओं के काट डालने से वह दुष्ट कैसे सुहाता है, जैसे पँखहीन मन्दराचल पर्वत है। आंखें फाड़ श्रीराम जी को ऐसे देखने लगा, मानो तीनों लोक को निगलना चाहता है।

दो०–करि चिक्कार घोर अति धावा बदनु पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि ॥ ८२ ॥

महाघोर शब्द से चिग्घारकर मुख फैला कर भागा, तब आकाश में सिद्ध और देवता भय से व्याकुल होकर हाहाकार कर पुकारने लगे ॥ ८२ ॥

सभय देव करुनानिधि जान्यो। श्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो ॥
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ ॥

करुणा के निधान रामजी ने देवताओं को भयभीत जानकर कानपर्यन्त धनुष को ताना, बाण-समूह से राक्षस का मुख भर दिया, तो महाबली कुम्भकर्ण पृथ्वी पर नहीं गिरा।

सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा। काल त्रोन सजीव जनु आवा ॥
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा ॥

बाणों से भरा मुख फैलाए सामने दौड़ा, मानो काल तरकस शरीर धारण कर आता हो, तब प्रभु ने क्रोध करके तीक्ष्ण बाण लिया और धड़ से उसका सिर अलग कर दिया।

सो सिर परेउ दसानन आगें। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें ॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा ॥

सो सिर रावण के आगे जाकर गिरा, उसको देख वह ऐसा व्याकुल हुआ, जैसे मणि के जाने से सांप व्याकुल हो जाता है। रुण्ड उठकर भागने लगा और पृथ्वी धसने लगी, तब रामचन्द्रजी ने उसे काटकर दो खण्ड कर दिए।

परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर ॥
तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना ॥

कुम्भकर्ण पृथ्वी पर ऐसे गिरा, मानो आकाश से पर्वत वानर रीछ निशाचरों को नीचे दबा कर गिरा हो, उसका तेज प्रभु के मुख में समाया, उसे देख देवता, मुनियों ने अचम्भा माना।

सुर दुंदुभीं बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं ॥
करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए ॥

देवता दुन्दुभी बजाने और प्रसन्न होने लगे तथा स्तुति करने और फूलों की वर्षा करने लगे। जब सब देवता विनती करके चले गए, तब उस समय नारद जी आए।

गगनोपरि हरि गुन गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु मन भाए ॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोभत भए ॥

आकाश के ऊपर अनेक हरिगुण गाने लगे, सुन्दर वीर-रस धारण किए, रामजी मन को अच्छे लगे इस दुष्ट को जल्दी मारो, ऐसा कह मुनि चले गए और रामजी रण में शोभित हुए।

छं०—संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी ॥
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने।
कह दास तुलसीदास कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने ॥ ३ ॥

अतुल बली, शोभा धनी श्रीरामजी संग्राम-भूमि में कैसे शोभित हैं कि जिनके मुख पर पसीने की बूंदें निकल रही है, कमल जैसे नेत्र हैं और सुन्दर शरीर पर लोहू की छींटें पड़ी हैं, दोनों भुजाओं से धनुष-बाण फिरा रहे हैं, और रीछ वानर चारों ओर खड़े हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि उस शोभा को शेषजी भी नहीं कह सकते, जिनके बहुत मुख हैं ॥ ३ ॥

दो०—निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम ॥ ८३ ॥

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! जो राक्षस महानीच मल से भरे शरीर वाला था, उसको अपना धाम दिया । वे मनुष्य मन्दबुद्धि हैं, जो ऐसे श्रीरामचन्द्रजी का भजन नहीं करते ।। ८३ ।।

दिन कें अंत फिरीं द्वौ अनी । समर भई सुभटन्ह श्रम घनी ।।
राम कृपां कपि दल बल बाढ़ा । जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा ।।

दिन के अन्त में दोनों सेना लौटीं और योद्धाओं से बड़ा युद्ध हुआ । रामजी की कृपा से वानरों की सेना का बल बढ़ गया, जसे तृण पाकर अग्नि की लपटें बढ़ती हैं ।

छीजहिं निसिचर दिन अरु राती । निज मुख कहें सुकृत जेहि भांती ।।

राक्षस दिन और रात ऐसे घटते हैं कि अपने मुख से कहने पर जैसे पुण्य क्षीण होते हैं ।

बहु बिलाप दसकंधर करई । बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई ।।
रोवहिं नारि हृदय हति पानी । तासु तेज बल बिपुल बखानी ।।

रावण बहुत विलाप कर रहा है, बार-बार भाई का सिर हृदय से लगा रहा है । स्त्रियां उसका तेज और बल बहुत बखान करती हुई रो रहीं हैं और हाथों से छाती पीट रही हैं ।

मेघनाद तेहि अवसर आयउ । कहि बहु कथा पिता समुझायउ ।।
देखेहु कालि मोरि मनुसाई । अबहिं बहुत का करौं बड़ाई ।।

उसी समय मेघनाद वहां आया और अनेक कथा कहकर पिता को समझाया । कल के दिन मेरा पराक्रम देखना, अभी बहुत बड़ाई क्या करूं ?

इष्टदेव सैं बल रथ पायउं । सो बल तात न तोहि देखायउं ।।
एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना । चहुं दुआर लागे कपि नाना ।।

हे पिता ! इष्टदेव से जो वर मैंने पाये, वह वर तुमको नहीं सुनाया । इसी प्रकार की बकवाद करते हुए सवेरा हो गया और अनेक रीछ-वानर चारों ओर फाटकों पर आ लगे ।

इत कपि भालु काल सम बीरा । उत रजनीचर अति रनधीरा ।।
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू । बरनि न जाइ समर खगकेतू ।।

इधर बलवान वानर काल समान वीर हैं, उधर राक्षस भी रणधीर हैं कागभुशुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुड़ ! दोनों ओर के योद्धा अपनी जीत के निमित्त युद्ध करने लगे । उस समय ऐसा युद्ध होने लगा, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

दो०—मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास ।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ।। ८४ ।।

मेघनाद ने ऐसी राक्षसी माया रची कि माया के अलक्ष्य रथ पर चढ़कर आकाश को गया और प्रलयकाल के मेघ के समान गरजा, जिससे वानर सेना को बहुत भय हुआ ।। ८४ ।।

सक्ति सूल तरवारि कृपाना । अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना ।।

बरछी, त्रिशूल, बाण, परिघ (दहमर्दा, मूशलाकार शस्त्र) खड्ग, अस्त्र, वज्र आदि अनेक हथियार चलाने लगा ।

डारइ परसु परिघ पाषाना । लागेउ बृष्टि करै बहु बाना ।।
दस दिसि रहे बान नभ छाई । मानहुं मघा मेघ झरि लाई ।।

फरसा और प्रचण्ड पत्थर फेंकने और अनेक प्रकार से वृष्टि करने लगा। दसों दिशा में बाण छा रहे, मानो मेघा ने मेघ की झड़ी लगाई है।

धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना॥
गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं। देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं॥

पकड़ो-पकड़ो, मारो-मारो की ध्वनि कानों से सुनाई दे रही है, परन्तु जो मारता है, उसको कोई नहीं जानता। पर्वत, वृक्ष लेकर वानर आकाश में दौड़ते हैं, जब उसको नहीं देखते तो दुःखित होकर लौट आते हैं।

अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर॥
जाहिं कहां ब्याकुल भए बंदर। सुरपति बंदि परे जनु मंदर॥

बुरे मार्ग और पहाड़ों की कन्दराओं को माया के बल से बाणों का पिंजरा बना दिया, वानर कहां जायें, ऐसे घबड़ाने लगे, मानो मन्दराचल इन्द्र की कैद में पड़ा हो।

मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला॥
पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन॥

हनुमान, अङ्गद, नल-नील आदि सब बलवानों को व्याकुल कर दिया, फिर लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण को भी बाणों से मारकर जर्जर शरीर कर दिया।

पुनि रघुपति सें जूझै लागा। सर छांड़इ होइ लागहिं नागा॥
ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनंत एक अबिकारी॥

फिर रामचन्द्रजी से युद्ध करने लगा, जो बाण छोड़ता है, सो सांप होकर लगते हैं। नाग फांस के वश में रामजी हो गये, जो राम अपने वश अनन्त, एकरस, विकार रहित रहते हैं।

नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना॥
रन सोभा लगि प्रभुहि बंधायो। नाग पास देवन्ह भय पायो॥

नट की भाँति अनेक कपट चरित करते हैं। राम भगवान सदा स्वतन्त्र हैं। युद्ध की शोभा के कारण अपने को बंधाया, यह दशा देखकर देवता डर गये।

दो०—गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक बिस्व निवास॥ ८५॥

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! जिसका नाम जपकर मनुष्य संसार रूपी फांसी को काटते हैं, सो प्रभु क्या बन्धन में आ सकते हैं, जो सर्वव्यापक और जगत का निवास है॥ ८५॥

चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी॥
अस बिचारी जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी॥

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजी के सगुण चरित मन, बुद्धि और वाणी से तर्क नहीं किये जा सकते जो परम वैरागी हैं, ऐसा विचार सब तर्कनाओं को छोड़कर श्रीरामजी को भजते हैं।

ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥

मेघनाद ने रामजी की सेना को व्याकुल करके फिर दुर्बचन कहता हुआ प्रकट हुआ, तब जामवन्त ने कहा—दुष्ट खड़ा रह ! सो सुनकर उसको बहुत क्रोध बढ़ा।

बूढ़ जानि सठ छांड़ेउं तोही। लागेसि अधम पचारै मोही॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलायो। जामवंत कर गहि सोइ धायो॥

और बोला—रे शठ ! तुझे बूढ़ा जानकर छोड़ दिया था। अरे नीच ! अब तू मुझको ललकारने लगा। ऐसे कहकर तीक्ष्ण त्रिशूल चलाया तब जामवन्त बीच में ही उसको हाथ से पकड़कर भागा।

मारिसि मेघनाद कैं छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो॥

मेघनाद की छाती में मारा, जिसके लगते ही वह देवघाती घूमकर पृथ्वी पर गिरा, फिर क्रोधित हो पैर पकड़ घुमाया और पृथ्वी पर पछाड़कर अपना बल दिखाया।

बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥
इहां देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो॥

वरदान के प्रसाद से वह मारे नहीं मरता, तब पैर पकड़कर लंका में फेंक दिया। यहां नारदजी ने गरुड़जी को भेजा, सो गरुड़जी रामजी के शीघ्र ही निकट आये।

दो०—खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ॥ ८६॥
गहिगिरि पादप उपल नख धाए कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर गढ़पर चढ़े पराइ॥ ८७॥

गरुड़ ने सर्पों के समूह को क्षण-भर में खाए, तब राक्षसी माया दूर हो गई और वानरों के समूह प्रसन्न हो गये॥ ८७॥ पर्वत, वृक्ष, शिला, नख लेकर क्रोध करके वानर दौड़े। राक्षस बहुत विकल होकर चल दिये और भागकर गढ़ पर चढ़ गये॥ ८७॥

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरिबर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा॥

जब मेघनाथ की मूर्छा गई, तो पिता को देखकर उसको बड़ी लाज लगी। वह तुरन्त ही पर्वत की एक सुन्दर गुफा में अजय यज्ञ करूंगा। वह यह मन में निश्चय कर गया।

इहां बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन॥

सो सुधि पाकर विभीषण ने रामजी से कहा, सुनो प्रभो ! ऐसा समाचार है कि दुष्ट मायावी और देवताओं को सताने वाला मेघनाद अपवित्र यज्ञ कर रहा है।

जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि॥
सो रघुपति अतिसय सुखमाना। बोले लिए अंगद हनुमाना॥

हे प्रभो ! जो वह सिद्ध होने पावेगा तो हे नाथ ! शत्रु जल्दी जीता न जा सकेगा। यह सुनकर रघुनाथजी ने बहुत सुख माना और अंगद और हनुमानजी को बुलाया।

लछमण संग जाहु सब भाई। करहु विध्वंस जग्य कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही॥

हे भाई ! लक्ष्मण के साथ तुम सब जाओ और जाकर यज्ञ का विध्वंस करो। हे लक्ष्मण ! तुम उसको रण में मारना, क्योंकि देवताओं को भयभीत देखकर मुझको बड़ा दुःख है।

मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहिं छीजै निसिचर सुनु भाई॥

हे भाई ! सुनो उसे बल, बुद्धि और उपाय द्वारा मारना जिससे राक्षसों की संख्या घटे।

जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनिउ जन॥
जब रघुबीर दीन्हि अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन॥

जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण तुम तीनों जने सेना के साथ रहो। जब रघुनाथजी ने आज्ञा दी तब लक्ष्मणजी कमर में तरकस कस और धनुष को साजकर।

प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गंभीरा॥
जौं तेहि आजु बधें बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं॥

प्रभु के प्रताप को हृदय में रख रणधीर लक्ष्मणजी मेघ के समान गम्भीर वाणी बोले, जो उसको मारे बिना आज आऊँगा, तो रघुनाथजी का सेवक नहीं कहाऊंगा।

जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउं रघुबीर दोहाई॥

जो सौ शंकर सहायता करे तो भी रामजी की दुहाई है, अवश्य मारूंगा।

दो०–रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत॥ ८८॥

ऐसे कहकर रामचन्द्रजी के दोनों चरण-कमलों में प्रणाम कर लक्ष्मणजी तुरन्त चले। अङ्गद, नील, मयन्द, नल, हनुमान ये सब योद्धा साथ हैं॥ ८८॥

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥

वानरों ने जाकर मेघनाद को वैसा ही देखा कि रुधिर और भैंसों की आहुति दे रहा है तब वानरों ने यज्ञ विध्वंस किया, पर जब नहीं उठा, तब उसको प्रशंसा करने लगे।

तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लै त्रिसूल धावा कपि भागे। आए जहं रामानुज आगे॥

तो भी न उठा तो बाल पकड़कर खींचे और लातों से मारकर भाग जाने लगे, तब त्रिशूल लेकर दौड़ा और वानर भागे। मेघनाद पीछे लगा और लक्ष्मणजी के आगे आया।

आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा॥
कोपि मरुतसुत अंगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए॥

आते ही क्रोध के मारे बारम्बार घोर शब्द करके गरजने लगा। क्रोध कर हनुमान और अङ्गदजी उस पर दौड़े, तब उनके हृदय में त्रिशूल मार पृथ्वी पर गिरा दिया।

प्रभु पर छाड़ेसि शूल प्रचराडा। शरहित कृत अनन्त युगखराडा॥
शिखर एक पुनि लै सो धावा। रामानुज सोउ काटि खसावा॥

प्रभु के ऊपर भी पैना त्रिशूल छोड़ा, सो लक्ष्मणजी ने बाण से काटकर दो खण्ड कर दिये, फिर एक शिखर लेकर भागा, तब लक्ष्मणजी ने वह भी काटकर गिरा दिया।

दो०—आयुध बिबिध प्रहार किय, रजसम कीन्ह अहीश।
हर्षवन्त कपि भालु सुर, किन्नर नाग मुनीश॥ ८९॥

मेघनाद ने अनेक अस्त्र-शस्त्र चलाए। लक्ष्मणजी ने सबको धूल के समान कर दिया। सब वानर रीछ, देवता, किन्नर, नाग और मुनीश्वर प्रसन्न हुए॥ ८९॥

उठि बहोर मारुत युवराजा। हनहिं कोपि तेहि घाव न बाजा॥
फिरै वीर रिपु मरे न मारा। तव धावा करि घोर चिकारा॥

फिर उठकर हनुमान और अङ्गद जी क्रोध करके मारते हैं परन्तु उसको घाव नहीं होता। सब वीर लौटे, शत्रु मारे नहीं मरता तब मेघनाद घोर चिग्घार करके दौड़ा।

आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला॥
देखेसि आवत पबि सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना॥

मानो काल क्रोध किए दौड़ा आता है, ऐसे मेघनाद को आते देखकर लक्ष्मणजी ने तीक्ष्ण बाण छोड़े। वज्र के समान बाणों को आते देखकर वह दुष्ट तुरन्त ही अन्तर्ध्यान हो गया।

बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुंक प्रगट कबहुं दुरि जाई॥
देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा॥

भांति-भांति के वेष रखकर लड़ाई करता, कभी प्रकट हो, कभी छिप जाय। अजय शत्रु को देख कर सब वानर डर गये, तब लक्ष्मणजी बड़े क्रोधित हुए।

लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥

लक्ष्मणजी ने मन में ऐसा मन्त्र दृढ़ाया कि इस पापी को मैंने बहुत खेलाया।

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥
छाड़ा बान माझ उर लागा। मरती बार कपट सब त्यागा॥

रामचन्द्रजी के प्रताप का स्मरण कर अभिमान से धनुष चढ़ाया। बाण छोड़ा जो उसके हृदय में लगा। मरते समय सब कपट उसने छोड़ दिया।

दो०—रामानुज कहं रामु कहं अस कहि छांड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान॥ ९०॥

लक्ष्मण कहां है, रामचन्द्र कहां है, ऐसे कहकर प्राण छोड़ दिया। तब अंगद और हनुमानजी ने कहा कि इन्द्रजीत तुम्हारी माया को धन्य है॥ ९०॥

बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लंका द्वार राखि पुनि आयो॥
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा। चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा॥

बिना परिश्रम हनुमान ने उसको उठा लिया और लंका के द्वार पर रखकर लौट आये। मेघनाद का मरण सुन देवता, गन्धर्व अपने विमानों पर चढ़कर आकाश में गए।

बरषि सुमन दुंदुभी बजावहिं। श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं॥
जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा॥

फूल बरसाकर दुन्दुभी बजाने लगे और रामचन्द्रजी का निर्मल यश गाने लगे। अनन्त जय जगदाधार हे प्रभु ! आपने हम सब देवताओं को बचा लिया।

अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए। लछमण कृपासिन्धु पहं आये॥
प्रभुहिं बिलोकि शीशपद नावा। हर्षित राम अनुज उर लावा॥

स्तुति करके देवता और सिद्ध चले गये। लक्ष्मणजी कृपासिन्धु रामजी के पास आए। प्रभु को देखकर चरणों में सिर नवाया, तब प्रसन्न होकर रामजी ने लक्ष्मणजी को हृदय से लगाया।

बाण बिधे तनु देखिय कैसा। कनक त्रोणि शर पूरित जैसा॥
कृपादृष्टि करि अनुजहिं हेरा। बिगत भयो श्रम जब कर फेरा॥

बाण से छिदा लक्ष्मण का शरीर कैसा शोभायमान है, जैसे सुवर्ण का तरकस बाणों से भरा है। कृपा वृष्टि से प्रभु ने भाई को देखा और जब हाथ फेरा तब लक्ष्मण का श्रम दूर हो गया।

दो०—करि श्रम मारेउ महारिपु, रामानुज रणधीर।
पुनि देवन बरषे सुमन, कहि जय गिरा गंभीर॥ ९१॥

रणधीर लक्ष्मण ने परिश्रम करके महाशत्रु मेघनाथ को मारा। देवता निर्भय हो जाने के कारण गम्भीर वाणी से जय शब्द उच्चारण करते हुए फिर फूल बरसाये॥ ९१॥

अथ क्षेपक सुलोजना कथा

धर तेहि शीश राम के आगे। वानर भालु बिलोकन लागे॥
प्रभु कौतुकी बिलोकेउ शीशा। राखन कहेउ कोशलाधीशा॥

उसने (वह मेघनाथ का) मस्तक भगवान के आगे रखा तो रीछ वानर देखने लगे। कौतुकी भगवान रामजी ने मस्तक को देखा और उसको रखने को कहा।

दो०—प्रभु आयसु सुनि कीशपति, राख्यो यतन कराइ।
कटक सहित रघुवंश मनि, शोभित दोनों भाइ॥ १॥

भगवान की आज्ञा सुन सुग्रीव ने यत्न से रखवा दिया और सेना समेत रघुकुलमणि दोनों भाई शोभित हुए॥ १॥

कृपा दृष्टि कपि भालु निहारे। भे श्रम रहित राम बैठारे॥
सुनहु उमा यहि दिधि रिपु मारे। सुर नर मुनि सब भये सुखारे॥

और दया की दृष्टि से रीछ-वानर देखे तो वे परिश्रम रहित हो गये और रामचन्द्रजी ने उन्हें पास बिठा लिया। महादेवजी कहते हैं, हे पार्वती ! सुनो भगवान ने इस भांति बैरी मारे। देवता, मनुष्य और मुनीश्वर सुखी हुए।

अब सो सुनहु बांह तिहि केरि। खग ज्यों लंक गई शर प्रेरी॥
मेघनाद आंगन महं परी। बान बिद्ध शोनित सो भरी॥

अब वह सुनो उसकी भुजा बाण की मारी हुई, पक्षी की भांति लंका को गई और बाण से बिधी लोहू भरी हुई मेघनाथ के आंगन में जा पड़ी।

राजति तहं सुलोचना कैसी। रति ते रुधिर रूप गुन जैसी॥
नागसुता दशकण्ठ पतोहू। वासव रिपु तिय छबिमय जोहू॥

वहां सुलोचना ऐसी शोभायमान बठी है, जो रति से भी सुन्दर स्वरूप और गुणवती है। वासुकी की बेटी रावण के बेटे की बहू, मेघनाद की स्त्री जो लावण्ययुक्त है।

हेम सिंहासन सोहत बाला। सेवहिं विद्या धरि तियमाला॥
पूजहिं बिबुध बिनय करि ताही। सुख प्रमोद को सकहिं सराही॥

नवोढ़ा सुवर्ण के सिंहासन पर शोभायमान है। बहुत सी विद्याधारियां जिसकी सेवा कर रही हैं, जिसे देवता भी नम्रता कर पूजते हैं, उसके सुख आनन्द की कौन सराहना कर सकता है?

तहं पति भुजा परी यहि भांती। मनहुं सकल सुख तरुकी कांती॥

वहां उसके पति की भजा इस प्रकार आ पड़ी, मानो सुख से वृक्ष की पूरी कान्ति है।

दो०—तिहि दिशि दासी देख कह, शोनितस्रव भुजदण्ड।
भयउ समर आश्चर्य मय, मनहुं अखण्डल खण्ड॥ २॥

उस ओर लोहू से भरो बांह को देखकर दासी ने कहा ओहो! ऐसा आश्चर्ययुक्त युद्ध हुआ कि अखंड का भी खंड हो गया॥ २॥

सुनिके सकल सखीमुख बयना। तजि सिंहासन उठी सुनयना॥
नारि सुभाव धुक धुकी धरकी। सूचक अशुभ दहिन भुज फरकी॥

सखी के मुख से सब वचन सुनकर सुलोचना सिंहासन को छोड़कर उठी। स्त्री के स्वभाव से छाती धड़की और अशुभ के जानने वाली दाहिनी भजा फड़की।

होत महा रन रावण रामहिं। वीर धुरीन मोरे प्रिय तामहिं॥
सकल सुरासुर सकहिं न जूझी। विधि की मतौ परै नहिं बूझी॥

फिर विचार किया कि रावण और रामचन्द्रजी में बड़ा युद्ध हो रहा है और वीरों में अग्रगामी मेरा पति भी उसी में है। यद्यपि सब देवता व राक्षस भी उससे युद्ध नहीं कर सकते तो भी ब्रह्मा की मति जानी नहीं जाती।

इतना कहित गई चलि आपू। पति भुजलखि करिकोटि बिलापू॥
कंकन मनि गन भूषण सोई। महा बिटप सम आन न होई॥

इतना कहती हुई आप चली गई और पति को भुजा देखकर करोड़ों विलाप करने लगी और मणि-जड़ित भूषण-युक्त वट-वृक्ष के समान मेरे पति की भुजा ही है और कुछ नहीं।

देखति मनहि न आवत तेही। तासु प्रभाव सुना पहलेही॥
नींद नारि भोजन परिहरई। बारह वर्ष तासु कर मरई॥

सो देखती है पर मन में भरोसा नहीं होता, उसका प्रभाव तो पहले ही सुन लिया था कि बारह वर्ष तक जो निद्रा, स्त्री और भोजन छोड़ दे, उसके हाथ से मेघनाद मरेगा।

दो०—करि बिचारि मन टेक दै, मैं पति दैवत नारि।
भुजलिखि मेटहु दुचितई, सुनि करि दीन्ह पसार॥ ३॥

सो विचार करके मन में प्रतिज्ञा की कि जो मैं पतिव्रता स्त्री हूं तो हे भुजा! तू लिखकर मेरे सन्देह को दूर कर यह सुनकर भुजा ने हाथ पसार दिया॥ ३॥

लखि रुख तासु सखी उठि धाई। तुरतहि खोज खरी लै आई॥
दीन्ह हाथ पर मणि अंगनाई। लिखति लखन कीरति रुचिराई॥

उसका रुख देखकर सखी उठी दौड़ी और शीघ्र ही ढूंढ़कर खड़िया ले आई। हाथ पर रख दी, तो वह मणियों के आंगन में लक्ष्मणजी के सुन्दर यश को लिखने लगा।

नींद नारि भोजन शत कोटी। तजै तासु महिमा यह छोटी॥
अजित सच्चिदानन्द अविनाशी। अतुल अमित घट घट के बासी॥

सौ करोड़ वर्ष नींद, नारी और भोजन छोड़ दे, तो भी लक्ष्मणजी से उसकी महिमा छोटी है। जो जीते न जायें, सच्चिदानन्द, नाशरहित, अतुल, असीम और घट-घट वासी हैं।

प्रगटहिं पालहिं पुनि जग हरहीं। त्रिगुण रूप मूरति धरहीं॥
जो कालहु कर काल भयंकर। वरनत सुयश शारदा शंकर॥

जो उत्पत्ति, स्थिति और नाश करते हैं, और जो तीनों गुणों से युक्त तीन शरीर धारण करते हैं, जो काल के भी काल भयंकर काल हैं, जिसके सुन्दर यश को सरस्वती और महादेवजी वर्णन करते हैं।

धरहिं विविध तनु सेवक हेतु। जासु नाम भवसागर सेतु॥
मुनि मन पुराडरीक जाके घर। वचन बिवेक विचार बुद्धिवर॥

जो भक्तों के लिए अनेक शरीर धारण करते हैं, जिनका नाम संसार-रूपी समुद्र का पुल है और मुनिवरों के हृदय-कमल में जिनका स्थान है और जो श्रेष्ठ बुद्धि, वचन और ज्ञान से विचार में आते हैं।

दो०—कोटि कल्प बनरत निगम, अगम जासु गुनगाथ।
तुम शरीर जड़ जीहे बिनु, किमि वरनै लिखि हाथ॥ ४॥

जिनके गुणों की कथा को शास्त्र करोड़ों कल्पों तक वर्णन करते हैं तो भी थाह नहीं पाते। उन्हीं के गुणों को मैं क्रोधी शरीर मरा हुआ, बिना जीभ के, हाथ से लिखकर कैसे वर्णन करूं।

मम शिर गयउ जहां रघुराई। तब वचननि लगि भुजा पठाई॥
यहिविधि लिखि सकल भुजबाता। परी भूमि तल अति विलपाता॥

मेरा सिर रामजी के पास गया और तुझसे बात करने के लिए भुजा भेजी है, इस भांति भुजा की लिखी हुई सब बातें देख सुलोचना पृथ्वी पर गिर पड़ी और बहुत भांति विलाप करती है।

बांचि सकलभुज लिखि जथारथ। लछिमन राम जानि परमारथ॥
नारि सुभाव तदपि बहुं भांती। विलपहि मिलि सखियन की पांती॥

भुजा के सब लिखे हुए को बांचकर और उसे सब ठीक जान लक्ष्मण-रामजी को ही परमारथ माना, तो भी स्त्रियों के स्वभाव से सखियों के साथ मिलकर बहुत भांति विलाप करती है।

गुन गन साहस सील नाहके। करि रोवहिं बल विजय बांहके॥
जिहि भुज लखि सुरनाथ विगोये। सो प्रभु आजु समर महं सोये॥

स्वामी के गुणों के समूह, शील और भुजाओं के बल और जीत को कह-कहकर रोती है। जिसने भुजाओं के बल से इन्द्र को भगाया, वह पति आज लड़ाई में मारा गया।

मनिगन भूषणबसन बिसारत। महि लोटति करतल सिरमारति ॥
मगन सोकसरि तनु सुधि नाहीं। दारुन बिपति कहौं किहिपाहीं ॥

मणियों के समूह और गहनों को फेंकती है और पृथ्वी पर लौटती हुई हाथों से सिर धुनती है, शोक-रूपी नदी में मग्न है, शरीर की सुधि नहीं है कि कठिन क्लेश किससे कहूं।

छिनक प्रबोध सखी कोउ करई। बहुरि शोक दावानल जरई ॥
छिनछिन उठति परति धरणीतल। पुनि रोवहि सराहि पति करबल ॥

एक क्षण भर कोई सखी समझाती भी है पर फिर वह शोक रूपी दावाग्नि में जलती है। क्षण-क्षण में उठकर पृथ्वी पर गिरती है और फिर पति के बल की सराहना करके रोती है।

दो०—तिन्ह महं सखी सयानि इक, कहि समुझाई बैन।
सोक छांड़ि पति देवता, सुमति करित जिय चैन ॥ ५ ॥

उनमें एक चतुर सखी थी, उसने यह बात कहकर समझाई कि हे पतिव्रता! शोक छोड़ और बुद्धि स्थिर करके चित्त को शान्त करना चाहिये ॥ ५ ॥

सुनि कह सहसानन तनु जाता। सत्य कहौं तुम सखी सुबाता ॥
विधि निर्मित मोकहं दुखलाहू। सुखपरि पूरि भुवन सब काहू ॥

यह सुनकर सुलोचन ने कहा सखी! तुमने अच्छी और ठीक बात कही। विधाता का रचा हुआ मुझको दुःख मिलना था सो मिला और लोक में सब किसी को सुख भर रहा है।

बिजय राम लछिमन कहं आयउ। सुजस सकल मर्कट कुल पायउ ॥
कुल कलंक बड़ लहेउ बिभीषन। कुल कुठार अस सुनेउ न दीषन ॥

रामचन्द्र लक्ष्मण जी की विजय हुई और सब वानरों के समूहों ने यश पाया। विभीषण ने कुल में ऐसा बड़ा कलंक पाया कि जैसे कुल कुठार रूप कोई देखा न सुना।

तेजवन्त पावक परिहरि दुख। बहहि समीर आजु अपने सुख ॥
सलिल गगन भू निर्मल आजू। सुक्त बसहिं सुरनायक राजू ॥

अग्नि दुःख को छोड़कर प्रज्वलित होगी और आज पवन अपने सुखपूर्वक चलेगा। आज, जल आकाश पृथ्वी निर्मल हो गये और इन्द्र (अपने) राज्य में आनन्द से बसेगा।

छूटि बन्द अब सुरगन केरी। निज निज पुरनि दुहाई फेरी ॥
मुनि पुलस्त्यकर भा कुलनासा। अबरबि ससि सुख करहिं प्रकासा ॥

अब देवताओं के समूह की कैद छूटी और उन्होंने अपने २ लोकों में दुहाई फेरी। पुलस्त्य मुनि के वंश का नाश हुआ अब सूर्य चन्द्रमा आनन्द से प्रकाश करेंगे।

दोहा—यम कुबेर दिकपाल सब, प्रमुदित सुर नर नाग।
खाय अघाय बिहाय दुख, पाय सुयज्ञ बिभाग ॥ ६ ॥

यम, कुबेर, सब दिकपाल, देवता, मनुष्य और सर्प सब यज्ञ का भाग पाकर और खा कर तृप्त होंगे, तथा दुःखों रहित हो प्रसन्न होंगे ॥ ६ ॥

इतना कहि मन्दिर महं आइ। देखति मनिगन धन बहुताई ॥
सुरपति भवन पाटतर ताई। ऋद्धि सिद्ध जहं सकल कमाई ॥

इतना कह कर महल में आई तो बहुत से मणियों के समूह और द्रव्य समूह देख। जो महल इन्द्र के समान है, जहां ऋद्धि-सिद्ध सब सजी हुई रक्खी हैं।

देखत बिभव न मन अनुरागेउ। पतिपद नेह निपुन मन लागेउ ॥
दीन्ह मनिगन भूषण चीरा। धेनु धरनि गज हाटक हीरा ॥

उस वैभव को देख भी उसमें मन नहीं लगा और उस चतुर सुलोचना के मन की प्रीति पति के चरणों में लगी। मणियों के समूह, गहने वस्त्र, गौ, पृथ्वी, हाथी स्वर्ण और हीरे दे दिये।

मनिमय सिबिका रचेउ बनाई। भुज चढ़ाइ पहिराव बनाई ॥
आपुन चढ़ति भई तहं आई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई ॥

मणि जड़ित पालकी रच कर बनाई और उसमें सुन्दर सजाकर भुजा चढ़ाई। देवताओं को भी कठिन ऐसे घर के सुख को छोड़कर आप भी वहां आकर चढ़ी।

वीतराग जिमि तजहिं विषय गन। सहस भांति पतिपद लागेउ मन ॥
सुक सारिका सुलोचन ज्याए। कनक पींजरन राखि पढ़ाए ॥

जैसा वैरागी विषयों के समूहों को छोड़ देते हैं। वैसे ही हजार प्रकार से पति के चरणों में मन लग गया। सुलोचना ने तोता मैना पालकर सुवर्ण के पिजरों में रख कर पढ़ाये थे।

व्याकुल कहते कहां सुलोचना। सुनि धीरज परिहरिय सुबयना ॥
भये बिकल खग मृगयहि भांती। अपर दशा कैसे कहि जाती ॥

वे व्याकुल हुए कहते हैं कि सुलोचना कहां है ? और उसके सुन्दर शब्दों को सुन सब धीरज छोड़ते हैं जब पक्षी और हिरण इस प्रकार व्याकुल हुए तो औरों की दशा कैसे कही जाय।

प्रजा लोक आतुर संग लागे। प्रेम उमंग लोचन चल पागे ॥

प्रजा के लोग उतावली के साथ संग लग गए और स्नेह में उमड़ कर नेत्रों में जल भर आया।

दोहा—बाजन लगे निशान गन, ढोल दुन्दुभी भेरि।
पुरजन परिजन संग सब, चले पालकी घेरि ॥ ७ ॥

ढोल, नगाड़े और मृदङ्ग आदि बाजों के समूह बजने लगे और नगर के मनुष्य कुटुम्ब लोग सब पालकी को घेर कर साथ चले ॥ ७ ॥

देखि भीर दशकन्धर द्वारे। सजग होउ सब बीर प्रचारे ॥
जाना कटक रिपुन्ह कर धाई। अस्त्र शस्त्र कर धरहु बनाई ॥

रावण के द्वार पर भीड़ देखकर सब योद्धा पुकारने लगे कि होशियार हो जाओ। जान पड़ता है कि बैरियों की सेना आ गई सो अस्त्र-शस्त्र सुधार कर हाथ में ले लो।

धनुष चढ़ाय तून कटि बाधहिं। गहि असि चर्म बीरबर साजहिं ॥
तोमर परसु प्रचण्डा गदा गहि। तीक्षण चीखे सूल शक्ति लहि ॥

श्रेष्ठ योद्धा धनष चढ़ाकर कमर में तर्कस बांधते और तलवार लेकर दल सजाते हैं। मुग्दर, फरसा और प्रचण्ड गदा को लेकर पैने त्रिशूल और अपनी शक्ति को लेकर।

मारु मारु धरु धरु कहि धावहिं। प्रगट दशानन बिजय सुनावहिं॥
गर्जि तर्जि कहि गिरा गंभीरा। समर भयंकर निशिचर बीरा॥

मारो २ पकड़ो २ कहकर दौड़ते हैं और प्रगट करके रावण को जीत सुनाते हैं। लड़ाई में भयंकर योद्धा राक्षस गर्ज कर गम्भीर वाणी कहते हैं।

निपटहिं निकट पालकी आई। चीन्हि सकल भट रहे लजाई॥
देखि जुहारि नागपति कन्या। सती शिरोमणि त्रिभुवन धन्या॥

जब बहुत ही पास पालकी आ गई तो पहचान कर सब योद्धा जल कर रह गए। देखकर सुलोचना को प्रणाम किया जो पतिव्रताओं में शिरोमणि और तीनों में धन्य थी।

दोहा—द्वारपाल दशकन्ध कह, खबर सुनायउ जाइ।
भई रजायसु बेगही, लेहु सुताहि बुलाइ॥ ८॥
तिहि अवसरहिं सुलोचना, गहे चरन शिर नाइ।
राखि भुजा घननाद को, करुना बचन सुनाइ॥ ९॥

द्वारपाल ने जाकर रावण को खबर सुनाई आज्ञा हुई कि उसे शीघ्र बुलाओ॥ ८॥
उस समय सुलोचना ने माथा नवाकर चरण पकड़े और मेघनाथ की भजा को आगे कर करुणा वचन सुनाया॥ ९॥

तुमहिं अछत असदसा हमारी। सुखतजि भयउ शोक अधिकारी॥
नभ मारग भुज मम यह परी। संसय जानि दीन्ह कर खरी॥

तुम्हारे जीते ही हमारा यह हाल है जो सुख को छोड़कर दुःख भोगना पड़ा। यह भुजा आकाश मार्ग से होकर मेरे घर में आ पड़ी और संदेह जानकर हाथ में खड़िया दे दी थी।

लिखी राम लछिमन महिमा इन्ह। क्रम सों सब बिधि कथा कही तिन्ह॥
ठगिसी रही बांचि गुनगाथा। जरहुं संग जो पाउं माथा॥

सो उसने रामचन्द्र लक्ष्मण की महिमा लिखी और कथा क्रम से सब भांति कही। सो उन गुणों की कथा बांचकर मैं ठगी सी रह गई और अब जो सिर पाऊं तो साथ ही जल जाऊं।

रन कबन्ध भुज मम गृह आई। सिर तहं जहं नरेश दोउ भाई॥
करियो जतन मिलै मोहिं सीसा। तुम सर्वज्ञ चराचर ईसा॥

रुन्ड तो लड़ाई में है, भुजा मेरे घर आई और सिर वहीं है जहां दोनों भाई हैं। आप सब जानने वाले और चराचर के स्वामी हो, सो वह उपाय कीजिये जिससे मुझे सिर मिले।

सुनत कुलिस सम गारि बधू की। जीवन आस दशानन मूकी॥
तदपि धीर धरि करन प्रबोधा। कहु जगमोहिं समान को जोधा॥

बहू की वाणी को वज्जर के समान सुनकर रावण ने जीने की आशा छोड़ दी। तो भी धीरज रख कर समझाने लगा कि कहो संसार में मेरे बराबर योद्धा कौन है?

दोहा—राम लषण सुग्रीव नल, नील द्विविद हनुमन्त।
साथ बिभीषण ऋषभ को, आनौं मारिं तुरन्त॥ १०॥

रामचन्द्र, लक्ष्मण, सुग्रीव, नल, नील, द्विविद, हनुमान विभीषण और जामवन्त को मारकर तुरन्त ही माथा लाऊंगा ॥ १० ॥

अब लगि रहा भरोसा भारी। कुम्भकरन घननाद सुरारी ॥
मैं हुं आजुलगि कीन्ह न जूझा। इन्ह सब कर पुरसारथ बूझा ॥

देवताओं के बैरी कुम्भकर्ण और मेघनाथ का अब तक बड़ा भरोसा था सो मैंने भी आज तक युद्ध नहीं किया इन सबके पराक्रम को देखता रहा।

मरे ते नर बानर के मारे। बात सुनत बड़ि लाज हमारे ॥
गनना कौन बीर महं तिन्ह की। अति दुर्दसा कीन्ह कपि जिन्हकी ॥

सो वे मनुष्य और बन्दरों से मारे गए, इस बात के सुनने से भी हमको बड़ी शरम होती है। उनकी किन वीरों में गिनती है जिनकी बन्दरों ने ऐसी भारी दुर्दशा की।

छांड़ि सोच कुलबधू पतोहू। जानेउ तिहि समान जनि मोहू ॥
पुत्रि बिलम्ब करहु घट चारी। देखहु मोरि भयंकर मारी ॥

हे कुलवधू ! हे पुत्रवधू ! शोच छोड़ दो और मुझे उसके समान मत जानियो हे पुत्री। चार घड़ी ठहर, मेरी भयँकर मार को देखियो।

आनि सीस सब शत्रुन्ह केरा। बिनु प्रयास नहिं लागहि बेरा ॥
भुगवहि जन्त पराकृत भोगा। नतु कत निशिचर बनचर योगा ॥

बिना ही परिश्रम के ही सब बैरयों का माथा लाऊंगा, देर नहीं लगेगी। जीव को पहले किए हुए भोगने पड़ते हैं, कहीं राक्षस बन्दरों के बराबर हो सकते हैं।

दोहा—मेरु उपारनहार जे, धरा धरहिं कर बीच।
ते भट खाए मसकसिसु, काल कुटिलता नीच ॥ ११ ॥

जो सुमेर पर्वत के उखाड़ने वाले और पृथ्वी को हाथ की मुट्ठी में रखते थे उन योद्धाओं को नीच काल की कुटिलता से मच्छर के बच्चों ने खा लिया ॥ ११ ॥

क्रोधावेश घोर रव बोलहिं। हृदय सोकतरु अचल न डोलहिं ॥
समाधान नहिं मानति सोई। सुनि प्रलाप परितोष न होई ॥

क्रोध से भरे हुए घोर शब्द बोलता है (इससे सुलोचना के) हृदय में शोकरूपी वृक्ष स्थिर हो गया चलायमान नहीं होता। वह समझाने से भी नहीं मानती और उस बकवाद को सुनकर सन्तोष नहीं होता।

नर बानर पुरसारथ देखत। बड़ो प्रपंच छोट करि लेखत ॥
कूदि सिन्धु लंका कपि जारी। लघु करि मानत ताहि सुरारी ॥

मन में सोचता है कि मनुष्य और बन्दरों के पराक्रम को देखते हैं और बड़े प्रपंच को झूठा ही जानते हैं। जिस बन्दर ने लंका जलाई और समुद्र में कूद पड़ा उसको देवताओं का वैरी रावण छोटा करके मानता है।

कुम्भकर्ण अतिकाय महोदर। मम पति गिरेउ समेत सहोदर ॥
तेहि रिपु चहहिं दशानन जीती। देखिय महा मोह की रीती ॥

कुम्भकर्ण, अतिकाय, महोदर और मेरे पति, भाई समेत जिस लड़ाई में मारे गए। उस बैरी को रावण जीतना चाहता है इस बड़े अज्ञान की रीति को देखिए।

उतर देउं तो पातक होई। करि बिवाद अब सर्वसु खोई॥
फिरेउ रोज तो मोहिं न काजू। बिनु प्रिय सकल नरक कर साजू॥

जो उत्तर देती हूं तो पाप होता है और विवाद करके तथा सर्वस्व का नाश करके राज्य लौट भी आवे तो मेरे काम का नहीं क्योंकि पति के बिना सब नरक का सामान है।

दो०—तुरतहि उठि सुलोचना, गई मयसुता जु पास।
पद गहि रोवति सब कही, प्रगट सोक उपहास॥ १२॥

सुलोचना शीघ्र ही उठ कर मन्दोदरी के पास गई और चरण पकड़ कर रोने लगी और कथा उन के सामने शोक और हंसी को कहने लगी॥ १२॥

आदि हिते सब कथा बखानी। सुनि सुनि रोवहिं रावन रानी॥
कही सो पतिभुज लिखित बहोरी। रामलषण महिमा नहिं थोरी॥

(सुलोचना) ने आरम्भ ही से सब कथा कही, जिसे सुन रावण की रानी रोती है फिर पति की भुजा की लिखी हुई रामचन्द्र लक्ष्मण की बहुत सी महिमा कही।

कहेउ बहुरि दशकन्धर क्रोधा। सहेउ विडंबन कीन्ह सो योधा॥
सुनि सो पुत्र बधू की बानी। बोली दुखित मंदोदरि रानी॥

फिर रावण का क्रोध कहा और जो उस योद्धा ने बकवाद की और (सुलोचना ने) सही तो कहा। पुत्र बधू की वाणी को सुनकर मन्दोदरी रानी दुःखी होकर बोली।

कहौं सो मानव सत्य सयानी। सुनि जो नारद मुख की बानी॥
पाछिल बात भउ सब सांची। अनुभव कीन्ह न एको बांची॥

हे चतुर! जो मैं कहूं सो ठीक मानियो, मैंने नारद के मुख की कही बातें सुनी हैं। उनमें से पिछली बात तो सत्य हुई, मैंने जांच कर लिया एक भी नहीं बची।

देख न होइ वृथा ऋषि भाषित। अपने महा मोह मन माखित॥
अगिली कथा समाज समेता। सुनहु पुत्रि ऋषि बरनेउ जेता॥

देवऋषि का कहा हुआ झूठ नहीं होता चाहे अपने मन में बड़े अज्ञान से क्रोधित भले ही हो। हे पुत्री! सहेलियों समेत आगे की कथा सुन, जो ऋषि ने वर्णन की थी कि।

बीर भाव दशकन्धर जूझहिं। प्रानहु गये नीति नहिं बूझहिं॥
बन्धु भेद लंका गढ़ टूटहिं। सुर नर नाग बन्दिते छूटहिं॥

जब सब शूरवीर मर जायेंगे तब रावण जूझेगा और प्राण जाने पर भी नीति को न मानेगा। भाई (विभीषण) के भेद से लंका गढ़ टूटेगा और देवता, मनुष्य और नाग जेलखाने से छूटेगा।

सिया सोक संकट ते छूटहिं। बानर भालु राजगृह लूटहिं॥
धन मनि भूषन बसन बिमाना। भोग करहिं मर्कट कुल नाना॥

सीताजी शोक और दुःख से छूटेंगी और रीछ बन्दर राजभवन को लूटेंगे। द्रव्य, मणि, गहने, वस्त्र और विमानों को अनेक बन्दरों के झुण्ड भोग करेंगे।

दो०–राज्य विभीषण पाइ हैं, अमर कल्प निर्वाह।
भावी बस सुख दुख जगत, उपदेसिय कहु काहि॥ १३॥

विभीषण राज्य पावेंगे और कल्प प्रयत्न अमर होकर उसे भोगेंगे, जो संसार का सुख दुःख होनहार के अधीन है कहिए किसे समझावें॥ १३॥

मुनि बचननि को मोह प्रतीती। अनुभव सदा हारि अरु जीती॥
तैं पुत्री परिपरि अब सोका। पति संग तुरन साध परलोका॥

मुझे मुनीश्वर के वचनों का भरोसा है हार और जीत का सदा ज्ञान रहता है। हे पुत्री! अब तू सब शोक को छोड़कर अपने पति के साथ शीघ्र ही परलोक की तैयारी कर।

जाहि रामहि पति सिरलागी। तजि संकोच आनहि सिर मांगी॥
होव न लाजु आजु को भूषन। समय हीन गुन गुनिया न दूषन॥

पति के सिर के लिए रामचन्द्रजी के पास जा और लाज छोड़कर सिर मांग लो। आज लाज मत कर। बुरे समय में गुण दोष को नहीं गिनते।

एक नारिब्रत रघुपति केरा। लखन सुजस तै सुना घनेरा॥
है पुनि ससुर विभीषण तोरा। बालि सुवन है बालक मोरा॥

रामचन्द्रजी के एक स्त्री का व्रत है और लक्ष्मणजी की सुन्दर कीर्ति तो तैंने बहुत सुनी ही है। फिर विभीषण तेरा ससुर है और बालि का पुत्र मेरा बालक ही है।

मन्त्री जामवन्त सुग्रीवा। दिविद मयंद पनस बलसीवा॥
जानहु ब्रह्मचर्य हनुमन्ता। शिव स्वरूप भवहार भगवन्ता॥

और जामवन्त, सुग्रीव, द्विवद, मयन्द और पनस जो बल की सीमा है वे मन्त्री आदि हैं। हनुमान को ऐसा जानो कि वे तो ब्रह्मचारी हैं, शिवस्वरूप और दुःख के नाश करने वाले भगवान हैं।

सदा नीतिरस राम नरेसू। तहां जात कहु कवन कलेसू॥

और राजा रामचन्द्रजी सदा नीति करने वाले हैं। वहां जाने में कहो क्या क्लेश है।

दो०–विदित तोहिं पति भुजलिखित, लछिमन राम प्रभाऊ।
महासुऋषि भाषित भयउ, अब बिलम्ब नहिं लाउ॥ १४॥

पति की भजा का लिखा हुआ, लक्ष्मण रामजी का प्रभाव तुमको मालूम ही है, सुन्दर महर्षि नारद का कथन जो था सो हुआ, अब देर मत कर॥ १४॥

सुनत सास मुख की हित बानी। जाउं राम पहं यह उर आनी॥
बार बार चरनन शिर नाई। चलीं जहां लछिमन रघुराई॥

सास के मुख से अपने भले की वाणी सुनते ही सुलोचना ने मन में निश्चय किया कि राम जी के पास जाऊं। सो बार-बार सास के चरणों को सिर नवा जहां रामचन्द्रजी थे वहां चली।

देखी कटक भालु कपि केरी। सिन्धु सुबेल महीधर घेरी॥
उमगेउ मनहु महोदधि दूसर। हरित पिंग कपि धूमिल धूसर॥

रीछ बन्दरों की सेना को देखा जो समुद्र और सुमेर पर्वत को घेरे हुए है। मानो हरे श्वेत धुंधले

लाल काले और खाकी रंग के बन्दरों का दूसरा बड़ा भारी समुद्र उमड़ा है।

स्वर्ग लाल भासत अनहेरी। मनहुं लपट बड़वानल केरी ॥
स्रवत रुधिर भुज सहस भयंकर। जहं तहं प्रगट होत जनु भूधर ॥

आकाश ऐसा लाल विदित होता है देखा नहीं जाता, मानो बड़वानल की लपटें हैं। लोहू बहती हुई भुजा साधारण में ऐसी डरावनी है मानो जहां-तहां बादल प्रकट हो रहे हैं।

लछिमन सेष सुअंक सीसधरि। कटक जलधि सोवत राघवहरि ॥
अक्षय बट तहं बैठ बिभीषन। अस सुकृती जग सुना न दीखन ॥

शेषावतार लक्ष्मणजी की सुन्दर गोद में मस्तक रखे सेना-रूपी समुद्र में मानो रामचन्द्रजी रूपी विष्णु सोते हैं, जहां विभीषण रूपी अक्षय-वट बैठा है जो कि संसार में देखा न सुना।

दो०—देखति हर्ष सुलोचना, धीरज धरित बहोरि।
महाराज रघुबीर कहं बिनय सुनावहु मोरि ॥ १५ ॥

सो देखते ही सुलोचना प्रसन्न हुई और फिर धीरज रखकर (मन में) बोली कि हे महाराज रामचन्द्रजी को मेरी प्रार्थना सुनाओ ॥ १५ ॥

बानर सकल उठे अस बोली। अरिपुरते आवत इक डोली ॥
इह जानिय रावन अब बूझा। भइ मति मेघनाद जब जूझा ॥

सब बन्दर ऐसे बोल उठे कि बैरी के नगर से एक डोली आती है। सो यह ज्ञात होता है कि रावण अब समझा और मेघनाथ जूझा तब ज्ञात हुआ।

हठ तजि सीतहिं दीन्ह पठाई। तजहु सोच अब मिटी लराई ॥
जेहि लगि प्रगट कीन्ह पुर आगी। बांधेउ सेतु हेतु जिहि लागी ॥

जो हठ छोड़कर सीताजी को भेज दिया सो सोच छोड़ दो, लड़ाई मिट गई। जिसके लिए नगर में आग लगाई और जिसके लिए पुल बांधा।

सो सीता अब बिनु श्रम पाई। जानहु बिधि अनुकूल अघाई ॥
बिजय राम सुग्रीवहिं आयउ। सुजस सकल बानर कुल पायउ ॥

वही सीताजी अब बिना परिश्रम के मिल गई सो ब्रह्मा को पूरा सहायक जानो। रामचन्द्र सुग्रीव को जय मिली और सब बानरों के कुल को सुन्दर यश मिला।

बिरह राम लछिमन कर छूटेउ। बिनुप्रयास लंकागढ़ टूटेउ ॥
जग जुग कीरति रहहिं हमारी। कत रनकत हम लघु बनचारी ॥

रामचन्द्र लक्ष्मणजी का वियोग छूटा और बिना ही परिश्रम के लंकागढ़ टूटा। हमारा यश युग-युग तक रहेगा, क्योंकि कहां तो लड़ाई और कहां हम छोटे-छोटे बनचर।

दो०—यहि विधि चारु बिचारी करि, कीन्ह ठीक मनमाहिं।
भयउ काज रघुराज कर, बात दूसरी नाहिं ॥ १६ ॥

इस प्रकार सुन्दर विचार करके मन में निश्चय किया कि रामचन्द्रजी का काम हो गया और कोई दूसरी बात नहीं है ॥ १६ ॥

पैठत कटक अतिहि सकुचाई । अनचिन्हारि जिमि घर पर जाई ॥
आगे जाइ देखि रघुबीरहिं । छबिमय श्यामलगौर सरीरहिं ॥

सेना में घुसते ही (सुलोचना) बहुत सकुचाई और जैसे बिना पहिचाने पराये घर जाय । आगे जा कर शोभायुक्त सांवले गोरे शरीर वाले राम लक्ष्मणजी को देखती हुई ।

मरकत कनक छबिहि जनु निंदक । सो जन धन्य उमा जे वंदक ॥
मत्त गयन्द सुराड भुजदराडा । धनुष बाण असि धरे प्रचराडा ॥

जो मानों नीलमणि और सुवर्ण की शोभा की निन्दा करने वाले हैं महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! जो मनुष्य उसको दण्डवत करते हैं, धन्य हैं मतवाले हाथी को संड़ के समान भुजदण्डों में धनुष बाण और प्रचण्ड तलवार धारण किए हैं ।

उर विसाल अति उन्नत कन्धर । कम्बु कराठ रेखावर त्रयधर ॥
मुख छवि की उपमा कवि जोहहिं । सति सरोज सम कहे न सोहहि ॥

चौड़ी छाती, बहुत ऊंचे कंधे, शंख से सुन्दर कंठ में तीन रेखा धारण किए हैं । कवीश्वर मुख की शोभा की उपमा को ढूंढ़ २ कर चन्द्रमा और कमल के समान कहने में शोभा न पाते हैं ।

दसनपांति की कांति कहै को । ललकत मन पटतरहि लहैको ॥
देखत अधरन की अरुनानई । बिंबा फल बंधूक लजाई ॥

दांतों की पंक्तियों की झलक को कौन कहे ! मन ललचाता है, उनकी बराबरी कौन कर सकता है ? होठों की ललाई को देख बिबाफल और दूपहरिया का फूल भी लज्जित होता है ।

सुकतुराडहि नासिका लजावहिं । थके सुकबि नहिं पटतर पावहिं ॥

उनकी नाक तोते की चोंच को लज्जित करती है, सुन्दर कवीश्वर थक गए उपमा नहीं मिलती ।

दो०—छबिमय गुनमय तेजमय, राम उदधि अवगाह ।
जहां न पावत पार सुर, को वरनै कबि थाह ॥ १७ ॥

शोभायुक्त, गुणवान और तेजमय रामचन्द्रजी गहरे समुद्र के समान हैं, सो जहां देवता भी पार नहीं पाते उसकी थाह कौन सा कवि वर्णन कर सकता है ॥ १७ ॥

भृकुटी बिकट कपोल सुहाये । सीस जटा के मुकुट बनाये ॥
भाल विसाल तिलक युत सोहै । ध्यान समय लखि मुनि मन मोहै ॥

टेढ़ी भौंहें, सुन्दर गाल और माथे पर जटाओं का मुकुट बना हुआ है, चौड़े मस्तक पर तिलक शोभायमान है, जो ध्यान के समय में देखते ही मुनीश्वरों के मन को मोहित करता है ।

बल्कल बसन तून कटि बांधे । कर सर सुभग सराहन कांधे ॥
बीरासन आसन मृगछाला । नवपल्लव प्रसून की माला ॥

छालों के वस्त्र और कमर में तरकस बंधा है हाथ में बाण और कन्धे पर सुन्दर धनुष है । वीरासन से मृगचर्म पर बैठे हुए हैं और नवीन कोमल फूलों की माला पहिने हुए हैं ।

चरन सरोज बरनि नहिं जाई । जहं मुनि मधुकर सदा लुभाई ॥
प्रकट भई जेहि थलते गंगा । श्रुति पुरान कहि कथा प्रसंगा ॥

कमल समान चरण वर्णन नहीं किये जा सकते हैं, जहां मुनीश्वर रूपी भौंरों के मन को सदा लुभाए रहते हैं, जिस स्थान से गंगाजी प्रकट हुईं और जिसकी कथा को वेद पुराण कहते हैं।

नवहिं महेश विरञ्चि जाहि कहं। लोचन गोचर होइ काहि कहं॥
भयभंजन जनरंजन जोहित। भवसागर तारन कहं वोहित॥

जिनको ब्रह्मा और महादेवजी नमस्कार करते हैं, वह किसके नेत्रों के सामने हो सकता है? जिसका हित भय का नाश करने, भक्तों को सुख देने वाला और संसार-रूपी समुद्र से पार करने को नाव है।

दो०–प्रनतपाल विरदावली, जिन्ह चरननि की बानि।
सोक हरन संसय दलन, सकल सुमंगल खानि॥ १८॥

जिन चरणों की यह बानि है कि दीनों का पालन करके सुन्दर यश प्राप्त करते हैं और वे शोक के दूर करने वाले, देहों के नाश करने वाले और सम्पूर्ण सुन्दर आनन्दों की खानि है॥ १८॥

करजारे अंगद हनुमाना। द्विविद मयंद कुमुद बलवाना॥
जामवन्त कपिपति बलसीला। ऋषभ सुषेण सहित नल नीला॥

जहां बलवान अंगद, हनुमान, द्विविद, मयन्द और कुमुद हाथ जोड़ रहे हैं। बलवान जामवन्त और सुग्रीव तथा ऋषय सुषेण समेत नल-नील।

महावीर बानर सब राजहिं। लखन बिभीषन दुहुंदिशि भ्राजहिं॥
मितभाषी सर्बज्ञ सुसेवक। चितवहिं रुख रघुनन्दन देवक॥

बड़े-बड़े योद्धा सब बन्दर शोभायमान हैं और लक्ष्मण, विभीषण दोनों ओर विराजते हैं। ये प्रभाव से बोलने वाले, चतुर सुन्दर सेवक रामचन्द्र देव के रुख को देखते रहते हैं।

सभा मध्य शोभित रघुनन्दन। कीन्हेसि सफल निरखिनिजअंगन॥
करति दण्डवत सिर धरि धरनी। तब सब कथा विभीषन बरनी॥

सभा के बीच में रामजी शोभित हैं, उनको देख सुलोचना ने अपने शरीर को सफल किया और पृथ्वी पर सिर रख दण्डवत करने लगी, तब विभीषण ने सब कथा वर्णन की।

पुत्रबधू दशकन्धर की है। पति देवता सुलोचना ती है॥
मेघनाद की नारि सुशीला। यह गति तव विरोध की लीला॥

हे भगवान! यह रावण के बेटे की बहू है, यह पतिव्रता है और इसका नाम सुलोचना है। यह मेघनाथ की स्त्री बड़ी सुशील है और यह गति तो आपसे विरोध करने से हुई है।

दो०–मुयेज्ञान पति भुजा लिखि सब समुझाउ मोहिं।
महाराज ताके सिरहिं जाचन आई तोहिं॥ १९॥

सुलोचना ने कहा हे महाराज! पति की भुजा ने मरने का ज्ञान लिखकर मुझे सब समझा दिया, सो मैं आपसे उनके सिर को मांगने आई हूं॥ १९॥

करि प्रनाम आदर नहि थोरे। करुना बचन कहत कर जोरे॥
अति अस्तुति कीन्ही बहु भांती। हृदय सोच चिन्ता दिन राती॥

बड़े आदर से प्रणाम करके हाथ जोड़कर करुणायुक्त बचन कहने लगी। बहुत प्रकार से स्तुति करी, मन में सोच और दिन-रात चिन्ता थी।

अस्तुति कीन्ह अहो प्रभु देवा। कृपा अनुग्रह अद्भुत सेवा॥
नित सुमिरौं मैं तुम्हैं गोसांई। जेहि बिधि मोहिं होउ सुखदाई॥

स्तुति करके कहा हे स्वामी ! हे देव ! आपकी दया, अनुग्रह और सेवा अद्भुत है। हे गोसांई ! मैं नित्य आपका स्मरण करती थी कि जिस प्रकार आप मुझे सुख दे सकते हो।

दया करहु देवन्ह के देवा। राम नाम हुइए एक खेवा॥
दीनदयाल अनुग्रह कारी। मोहिं पतित प्रभु लेहु उधारी॥

उस प्रकार हे देवों के देव ! दया करो जिससे राम नाम ही एक खेवा हो जाये। हे प्रभो ! आप दीनदयालु और कृपा करने वाले हो, मुझ नीच का उद्धार कर दीजिए।

पतितहुं महं जे पतित कहाई। ताहू गति दीन्हीं रघुराई॥
तहं त्रिभुवन पात सकल बिसामी। करौ दया प्रभु गरुड़ागामी॥

हे रामचन्द्रजी ! जो नीचों में नीच कहाते थे उन्हें भी गति दी। वैसे ही हे त्रिलोकीनाथ सच्चिदानन्द ! गरुण पर गमन करने वाले प्रभो ! मुझ पर दया करो।

दोहा–अस प्रभु दीनबन्धु हरि, कारन रहित कृपाल।
तुलसीदास सठ ताहि भुज, छांड़ि कपट जंजाल॥ २०॥

ऐसे प्रभु दीनबन्धु भगवान बिना कारण दया करने वाले हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि अरे मूर्ख ! कपट के जंजाल को छोड़कर उन्हीं भगवान को भजो॥ २०॥

तुम अन्तर्यामी भगवाना। प्रभुता आदि मध्य अवसाना॥
करुना बचन सुनत रघुबीरा। पुलक रोम भए सिथिल शरीरा॥

हे भगवान् ! तुम अन्तर्यामी और प्रभुता के आदि, मध्य और अन्त हो। रामचन्द्रजी करुणा युक्त वचन सुनते ही रोमांचित और शरीर से शिथिल हो गये और बोले कि –

देउं जिवाय तोर पति आजू। भोगहु लंक कल्पशत राजू॥
छांड़ि सोच मन अति हरषाई। तुरत भवन अपने फिर जाई॥

तेरे पति को अभी जिला दूं और तू सौ कल्प तक लंका का राज्य कर और सोच को छोड़ मन में अति प्रसन्न हो शीघ्र ही घर को लौट जा।

सुनि अस सत्य सिन्धु की बानी। मनमहं बानर चमू डरानी॥
कहि न सकै कछु प्रभु रुख देखी। कहा करिय करतार अलेखी॥

सत्य के समुद्र रामजी की ऐसी वाणी सुन बन्दरों की सेना मन में घबराई, पर भगवान के रुख को देखकर कुछ कह नहीं सकती कि न जाने अब अलख करतार क्या करेगा ?

सीय सोचकर फल नहिं होइहि। जो करि कृपा रामयहिं जोइहि॥
सब देवनकर शोच न जाई। जो अस कृपा करैं रघुराई॥

जो रामचन्द्रजी इसे दया करके देखेंगे तो सीताजी के सोच करने का फल नहीं होगा और जो रामचन्द्रजी ऐसी कृपा करेंगे तो सब देवताओं का सोच भी न जाएगा।

दोहा–राज्य विभीषन लंक कर, केहि विधि करिहहिं भाइ।
समुझि बैर घननाद जब, गहहिं सरासन जाइ॥ २१॥

हे भाई ! जब मेघनाद बैर समझकर और धनुष बाण लेकर दौड़ेगा तब विभीषण लंका का राज्य कसे करेंगे ॥ २१ ॥

मुखरुख लखि कपीस जब जाना। प्रनतपाल भगवान समाना ॥
देखि बहुत रघुपतिकर छोहू। विनय करत दशकन्ठ पतोहू ॥

भगवान् के मुख को देख सब बन्दरों ने जाना कि दीनों के पालन करने वाले भगवान् सबको समान हैं। रामजी की बहुत सी दया को देख रावण के बेटे की बहू प्रार्थना करने लगी।

आपु उदार देव सब लायक। करुनामय देखेउं रघुनायक ॥
मैंहुं विचार कीन्ह मनमाहीं। जीवनते अस मरन सराहीं ॥

हे देव ! आप उदार और सब योग्य हो सो हे रामचन्द्र ! मैंने आपको करुणामय देखा और मैंने भी मन में विचार कर लिया कि जीने से तो मरने ही में बड़ाई है।

भुजबल जीति लोकबस कीन्हे। चौदह भुवन भोग करि लीन्हे ॥
रथ तीरथ जाचक भल चीन्हेउं। प्रान सो धन लछिमन करदीन्हेउं ॥

भुजाओं के बल से जीत, लोकों को वश में कर लिया और चौदह भुवनों के भोग कर लिए। लड़ाई रूपी तीर्थ में याचकों को भली-भांति पहचान और प्राण रूपी धन को लक्ष्मण जी के हाथ दिया।

अब न उचित पति लेउं उभारा। धन्य धन्य भा दरश तुम्हारा ॥
जानिय मैंहुं मरब सतसाधी। मिलब तुमहिं जिमि मिलें समाधी ॥

अब पति को फिर जिवा लेना उचित नहीं है। मुझको धन्य है, जो आपका दर्शन हुआ। मैं तो सत्य साधकर मरूंगी और आपसे ऐसे मिलूंगी जैसे समाधि द्वारा आपसे मिलते हैं, यह जानो।

दोहा—निर्मलगति अवसर भयउ, सुनिय सत्य रघुबीर ॥
तुमहिं मिले नहिं होइ भव, यथा सिन्धुगत नीर ॥ २२ ॥

हे रामचन्द्रजी ! सत्य-सत्य सुनिये कि यह निर्मल गति का समय आ गया है क्योंकि आपके मिलने से फिर जन्म ऐसे नहीं होता जसे समुद्र में जाने से जल की दशा हो जाती है।

मनका जाननहार सुदेवा। भवसागर तारहु इहि खेवा ॥
लीन्हेउ ऋछप कपीस बुलाई। मेघनाद सिर दीन्ह मंगाई ॥

हे महाराज ! आप तो हृदय को जानते हैं। इसी खेवे में संसार रूपी समुद्र से पार करिये। (तब भगवान ने) जामवन्त और सुग्रीव को बुलाकर मेघनाद का सिर मंगवा दिया।

पाइ कृतारथ मानेउ आपू। मिटा बिरह संभव परितापू ॥
अंचल पोछत मुख की धूरी। कहि मम प्राण सजीवन मूरी ॥

उसे पाकर सुलोचना ने अपने को कृतार्थ माना और वियोग से उत्पन्न हुआ शोक मिट गया। हे मेरे प्राणों के संजीवन मूल ! यों कहकर अञ्चल से मुख की धूल पोंछने लगी।

देखि करत संसय सुग्रीवा। भुजमहि लिखा सो मोहिन सीवा ॥
हंसे बदन तौ तिय यह सांची। नाहिं तो निसिचर माया कांची ॥

यह देखकर सुग्रीव सन्देह करने लगा कि भुजा ने पृथ्वी पर लिखा हो, यह मुझे विश्वास नहीं होता। जो मुख हँसे तो यह स्त्री सच्ची है, नहीं तो राक्षसों की माया कच्ची है।

कहं यह ज्ञान मृतक भुज गावै। जो मुनिवर साधन ते पावै॥
प्रभु यह कहेउ हंसब यह सीसा। किये कुतर्क न उचित कपीसा॥

कहीं इस ज्ञान को मरी हुई भुजा कह सकती है कि जिसे श्रेष्ठ मुनि साधन से पाते हैं। भगवान ने कहा, हे सुग्रीव! यह सिर तो हँस जायेगा परन्तु सन्देह करना ठीक नहीं है।

दोहा—सिरसों कहति सुलोचना, हंसहु बेग मम नाथ।
नतरु प्रतीत न मान हैं, लिखा जो तुमरे हाथ॥ २३॥

सुलोचना ने सिर से कहा, हे मेरे स्वामी! शीघ्र ही हंसो, नहीं तो उसका विश्वास न करेंगे जो आपके हाथ ने लिखा था॥ २३॥

छिनक बिलम्ब कीन्ह नहिं बोला। मृतक सो मुखमुंदित नहिं खोला॥
पुनि पुनि कहत सो नागकुमारी। श्रमित भयउ रनमहं लरिभारी॥

वह मृतक एक क्षण भर तक नहीं बोला, मुख बन्द है खोलता नहीं। सुलोचना कहती है कि लड़ाई में बड़ा युद्ध करने से थकित हो गये हो।

लगे लखन सर छोभ बढ़ावहि। प्रभु समीप कत मोहिं लजावहि॥
जो मन वचन कर्म यह देही। पति देवता न आन सनेही॥

लक्ष्मणजी के लगे हुए बाण तो सन्तोष बढ़ाते होंगे, पर भगवान के सामने मुझे क्यों लजाते हो? जो मन, वचन, कर्म से यह देह पतिव्रता है और इसका दूसरे से प्रेम नहीं है।

तौ प्रभु सभा बीच सिर बोलहिं। रहि जाइहि जगसु जस अमोलहिं॥
जो जानति तव यह गति सांई। बोलि पठावति पितहि सहाई॥

तो हे स्वामी! सभा के बीच में सिर बोल उठे और संसार में अनमोल सुन्दर कीर्ति रह जाय। हे स्वामी! जो जानती कि तुम्हारी ऐसी दशा होगी तो सहायता के लिए पिता को बुला भेजती।

सुनि तिय वचन हंसेउ तब सीसा। चौंकि उठेउ सब भालु कपीसा॥
हंसे उठाइ बदन सब देखत। विस्मय भयउ सकल जन पेखत॥

जब स्त्री के वचन सुनकर सिर हँसा तो सब रीछ बन्दर चौंक उठे। सब हँसकर मुंह उठाकर देखने लगे और सब लोगों को देखते ही आश्चर्य हुआ।

कोटि मेघरव सुनि नहीं जाई। रहेउ सो बदन बहुरि अरुगाई॥
सकुच कपीसहु तोषेउ नारिहिं। बड़ आश्चर्य भयउ बन चारहिं॥

करोड़ों मेघों के समान जिसका शब्द हुआ जो सुना नहीं जाता और फिर वह मुख चुप हो गया। सुग्रीव ने सकुचकर सुलोचना को सन्तोष दिया तो वनचरों को बड़ा अचम्भा हुआ।

कह सुग्रीव चरन सिर नाई। कारन कवन हंसा सिरसांई॥
यह सुनि बिहंसि कहा रघुराई। सुनु सुग्रीव कुतर्क बिहाई॥

सुग्रीव ने भगवान् के चरणों में सिर झुकाकर कहा हे स्वामी ! क्या कारण है जो यह सिर हँसा। यह सुनकर रामचन्द्रजी ने हंसकर कहा हे सुग्रीव ! कुतर्क छोड़कर सुनो।

पतिब्रत तिय जिनके गृह माहीं। यह बड़िबात तिनहि कछु नाहीं॥
पुनि तब संसय भयउ कपीसा। तिहि कारनहिं हंसा यह सीसा॥

जिसके घर में पतिव्रता स्त्री है उसको यह कुछ बड़ी बात नहीं है। हे सुग्रीव ! फिर भी तुम्हें सन्देह हुआ, इसलिए यह माथा हंसा।

दो०—सीस पाइ प्रभु चरण गहि, बहुविधि बिनय सुनाय।
आजुक दिन रन परिहरहु, मम हित कोसलाराय॥ २४॥

सुलोचना ने अपने पति का माथा पाकर और भगवान के चरण छूकर तथा बहुत भांति से प्रार्थना करके कहा, हे अयोध्या नाथ ! आज के दिन मेरे कारण से युद्ध मत करो॥ २४॥

बहुरि बिभीषण पदहिं नमतिसो। रघुवर गुनगन हृदय भनतिसो॥
तुम पित सो दशकन्धर भाई। यहि कुलकी तोहिं लाज बड़ाई॥

फिर वह सुलोचना विभीषण के चरणों को दण्डवत् करती हुई और रामचन्द्रजी के अनेक गुणों को हृदय में स्मरण कर कहने लगी, हे रावण के भाई ! तुम मेरे पिता के समान हो, इस कुल की लाज और बड़ाई तुम्हीं से है।

मुनि पुलत्स्य परिवारके दीपक। पायउ फल रघुबीर समीपक॥
प्रथम मोह बस अनहित मानेउ। ज्ञान भयो तब गुन पहिचानेउ॥

तुम पुलस्त्य मुनि के कुटुम्ब में दीपक के समान हो और तुमने रामजी के पास रहने का फल पाया पहले अज्ञान के वश मैंने बुरा माना था, जब ज्ञान हुआ तो गुण को पहचाना।

जुग जुग करब अकंटक राजू। सहित सुकीरत सुकृत समाजू॥
सुमिरत तुमहिं सुजस जन पैहैं। रघुबर चरित संग करि गैहैं॥

तुम सुन्दर यश और धर्म के समाज सहित युगानुयुग अकंटक राज्य करो। मनुष्य तुमको स्मरण करते ही सुन्दर कीर्ति प्राप्त करेंगे और रामचन्द्रजी के चरित्र के साथ ही तुम्हारे यश को भी गावेंगे।

सुनत विभीषन करुना भारी। प्रगट न करत समय अनुहारी॥
काल कर्मगति कहि समुझाई। चली तुरति गुरु आयसु पाई॥

सुनते ही विभीषण को बहुत दया आई, परन्तु समय के अनुसार प्रकट नहीं करते। काल-कर्म की दशा कहकर समझाया और सुलोचना बड़ों की आज्ञा पाकर शीघ्र ही चलीं।

दो०—बाहर काह करि कपट ते, फिरे विभीषन आप।
बिसरेउ दसकन्धर बयर, निरखि होत सन्ताप॥ २५॥

विभीषण उसे बन्दरों की सेना से बाहर पहुंचाकर आप भी लौटे, उस समय रावण का बैर जाता रहा और देखकर दुःख होने लगा॥ २५॥

सिर चढ़ाइ पालकी चढ़ी सो। रघुपति कृपा प्रभाव पड़ी सो॥
हृदय राखि मूरति घन स्यामहिं। रसना रटति निरन्तर रामहिं॥

वह सिर को पालकी में रखकर आप भी चढ़ी और रामजी की दया से उसका प्रभाव बढ़ गया। हृदय में सांवले मेघ के समान मूर्ति को धारण कर निरन्तर राम-राम रटने लगी।

सारत सिंधु संगम जहं पावन। गइ सुधि पाइ गये तहं रावन॥
संग मन्दोदरि सब रनिवासू। मनहु सोक रबि कीन्ह प्रकासू॥

जहां नदी-समुद्र का पवित्र संगम था, वहां सुलोचना गई। यह समाचार पाकर रावण भी वहां गया। साथ में मन्दोदरी और सब रनिवास है, मानो शोक रूपी सूर्य ने प्रकाश किया।

पाइ रजायसु सेवक धाये। चन्दन अगर भार बहु ल्याये॥
रची दारुमय चिता बनाई। जनु सुर लोक नसैनी लाई॥

आज्ञा पाकर सेवक दौड़े और बहुत से चन्दन और अगर के भार ले आये। लकड़ी की चिता बना कर ऐसी बनाई, मानो स्वर्गलोक की नसेनी लगाई।

करि प्रनाम सब जन परितोषे। धीरज धरि सुमिरत सर चापे॥
सिर भुज धरि बैठी करि आसन। भइ जनु जोग सिद्धको बासन॥

सुलोचना ने प्रणाम कर सब मनुष्यों को संतुष्ट किया और धीरज रख सुन्दर सत्य को स्मरण करने लगी। पति के मस्तक और भुजा को रख आसन लगा, ऐसी बैठी मानो योग सिद्ध करती है।

दो०—दीन्ह अग्नि दसमौल तब, लपट गगनि लगि जाइ।
लखौ न काहू जात सो, सुरपुर पहुंची धाइ॥ २६॥

रावण ने अग्नि संस्कार किया तो लपटें आकाश से जा लगीं और उसे जाते हुए किसी ने न देखा, वह दौड़कर स्वर्ग में जा पहुंची॥ २६॥

इति क्षेपक सुलोचना सती समाप्त

सुतबध सुना दशानन जबहीं। संभ्रम मूर्छि परा महि तबहीं॥
दुखित हृदय लोचन भरिआवा। जनु निज मणि अहिराज गंवावा॥

जिस समय रावण ने पुत्र का मरना सुना, उस समय घबराहट से मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा, हृदय में बड़ा दुःख हुआ, नेत्रों में आंसू भर आये। मानो नागराज ने अपना मणि खो दिया।

हा सुत संतत आज्ञाकारी। करि बिलाप दशकन्ध पुकारी॥
सक्रादिक जीतेउ सब देवा। सुरमुनि बंदि करायहु सेवा॥

हा पुत्र! तू हमारा सदा आज्ञाकारी रहा, इस प्रकार विलाप करके रावण रोने लगा। इन्द्रादि सब देवताओं को जीता। देव-मुनियों को बन्धन में करके सेवा उनसे कराई।

दूसर रहा न भुजबल दापा। स्वर्ग भूमि तल तपेउ प्रतापा॥
इहिबिधि करि बिलाप लंकेशा। भयेउ तेजहत सुनु उरगेशा॥

ऐसा भुजबल का अहंकारी दूसरा नहीं था। स्वर्ग, भूमि और सातों तलों में मेरा प्रताप था। कागभुशुण्डिजी कहते हैं हे गरुड़! सुनो, इस भांति विलाप करता हुआ रावण तेज रहित हो गया।

मन्दोदरी रुदन करि भारी। उर ताड़ति बहुभांति पुकारी॥
नगर लोग सब व्याकुल शोचा। सकल कहहिं दशकन्धर पोचा॥

मन्दोदरी बहुत ही रोकर अनेक भांति से विलाप करती हुई छाती पीटने लगी। नगर के निवासी सब व्याकुल होकर सोचने लगे और सब कहने लगे कि रावण नीच है।

दो०—तब दसकंठ बिबिध बिधि समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयं बिचारि॥ ७७॥

तब रावण ने अनेक प्रकार से स्त्रियों को समझाया कि यह सब जगत नाशवान है, हृदय में विचार देखो और धीरज रखो।

तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ पावन॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

रावण ने उनको ज्ञान का उपदेश किया, अपने तो मूर्ख हैं कथा बहुत पवित्र है। दूसरों को उपदेश करने में बहुत लोग निपुण हैं और जो आचरण करते हैं, वे मनुष्य बिरले हैं।

तासु क्रिया करि निशिचर नाहा। भयउ शोचवश अति उर दाहा॥
सचिव आइ सब लगे बुझावन। बाद विषाद करिय जनि रावन॥

फिर उसकी क्रिया करके रावण बहुत सोच के वश हुआ, हृदय में जलन पड़ने लगी। सब मन्त्री आकर समझाने लगे कि हे रावण! व्यर्थ सोच मत कीजिये।

सुत बित नारि विविध सुख कैसे। उपजहिं घटा जाहिं उड़ि जैसे॥
तड़ित दमक देखिय घनमाहीं। रहै न थिर तहं तुरत छिपाहीं॥

पुत्र, धन, स्त्री अनेक भांति के सुख हैं, जैसे मेघों की घटा उठती है और फिर उड़ जाती हैं। बिजली प्रत्यक्ष देख पड़ती है कि बादल में चमकती है, परन्तु वहां स्थिर नहीं रहती, तुरन्त छिप जाती है।

यह जिय जानि सुनहु दश भाला। बचहि न कोउ जग आए काला॥
अब प्रभु यतन बिचारेहु सोई। रिपु कर नाश कवन बिधि होई॥

यह अपने मन में जानकर सुनो रावण! जगत में काल के आने से कोई भी नहीं बचता। हे प्रभु अब वही उपाय बिचारिए कि किस उपाय से शत्रु का नाश हो।

बचन सुनत तेहि कछु सुखमाना। काल बिबस जिमि तीरथज्ञाना॥

वचन सुनते ही उसने थोड़ा सुख ऐसा माना, जैसे काल के वश होने पर किसी को तीर्थ का ज्ञान प्राप्त हो जाय।

अथ क्षेपक अहिरावण की कथा

दो०—लागेउ करन बिचार पुनि, बहुप्रकार दशशीश।
समुझि हृदय अहिरावणहि, आयसु जहां गिरीश॥ १॥

रावण बहुत भांति विचार करने लगा, फिर हृदय में अहिरावण को समझाकर महादेव के पास आया॥ १॥

दण्ड चारि तब तहं निशि बीती। सन्ध्या बदक कीन्ह सप्रीती॥
लागेउ करन ध्यान दशशीशा। बहुरि हर्षि जोरेउ कर बीशा॥

उस समय वहां चार घड़ी रात बीत गई थी, बड़े प्रेम से संध्या वन्दन किया। रावण ध्यान करने लगा, फिर हर्षित होकर बीसों हाथ जोड़े।

शिव सेवक मनक्रम अनुरागी। सुनु खगेश तिहिते बड़भागी॥
मंत्राकर्षक जप दशभाला। अहिरावण चित डोल पताला॥

कागभुशुण्डिजी कहते हैं, हे गरुड़ ! सुनो, रावण जो महादेवजी का दास और मन-कर्म वचन से प्रीति करने वाला है। इससे बड़ा भागी है। रावण ने आकर्षण मन्त्र जपा तो पाताल में अहिरावण का चित्त चलायमान हुआ।

लगेउ करन सो मन अनुमाना। केहि कारण दशमुख अकुलाना॥
निशिचर नाह भुवन बश जाके। जीतन कहं न बीर कोउ ताके॥

सो वह मन में विचार करने लगा कि क्या कारण है, जो रावण अकुलाया है जो राक्षसों का राजा है और लोग जिसके वश में है और जिसके जीतने को कोई योद्धा नहीं।

मन क्रम बचन आन नहिं सेवी। धरेउ ध्यान उर कामद देवी॥
चलेउ बहुरि सो आयऊ तहवां। शिव मराडप दशमुख रहजहवां॥

जो मन-कर्म वचन से और का सेवक नहीं, ऐसे अहिरावण ने कामद देवी का ध्यान धरा, फिर वह चलकर वहां आया जहां महादेव के मण्डप में रावण था।

निशिचर पति कहं तेहि शिरनायउ। कर गहि निज आसन बैठायउ॥

उसने रावण को माथा झुकाया और रावण ने हाथ पकड़कर उसे अपने पास बिठाया।

दो०–अहिरावण तब रावणहिं, पूछेउ कुशल समीति।
प्रथम कही तेहि सो कथा, भगिनी कीन्ह अनीति॥ २॥

तब अहिरावण ने रावण से प्रेम सहित कुशल पूछी, तो पहले उसने वह कथा कही, जो बहिन ने अर्थात सूर्पणखा ने अनीति की थी॥ २॥

बध खरदूषन जिमि सुधि पाई। पुनि मारीच की कथा सुनाई॥
कहेसिं बहुरि सीता कर हरना। पवन तनय बल लंका दहना॥

फिर जैसे खरदूषण के मरने की खबर मिली थी, सो कही और फिर मारीच की भी कथा सुनाई, फिर सीता का हरण, हनुमान का बल और लंका दहन कहा।

सेतु बाधि जिमि प्रभु चल आयउ। बालि तनय संवाद सुनायउ॥
अवनि अकंपन अरु अतिकाया। परे समर महं सुनु अहिराया॥

जैसे सेतु बांधकर भगवान चले आये सो और अंगद का संवाद सुनाया। हे शेषलोक के राजा अहिरावण ! सुनो, अकम्पन और अतिकाय भी लड़ाई में मारे गये।

तात कुशल अब आइ सिरानी। कटक निशाचर सकल नसानी॥
कुम्भकर्ण घननादहु मारे। राम लखन ते मनुज बिचारे॥

हे प्यारे कुशल तो अब दूर गई, जो राक्षसों की सेना नाश हो गई। उन बिचारे मनुष्य राम-लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण और मेघनाद को भी मार डाला।

आनेउं बोलि तोहिं निज पासा। कहु साइ जतन होय रिपु नासा॥
सुनत बचन कह केतिक बाता। हरि लै जैहौं दोनों भ्राता॥

अब तुझे इस लिये पास बुलाया है कि कुछ ऐसा उपाय करो, जिससे बैरी का नाश हो। वचन सुनते ही अहिरावण ने कहा—यह कितनी सी बात है मैं दोनों भाइयों को हर ले आऊंगा।

लै पाताल देबिहिं बलि दैहौं। यश पूरण निशिचर कुल लैहौं॥
लै जाऊं जानउ तुम तबहीं। रबिसम तेज होय निशि जबहीं॥

और लेकर पाताल की देवी को भेंट दे दूंगा और राक्षसों के कुल का पूरा यश प्राप्त करूंगा जब मैं लाऊंगा, तुम तभी जान जाओगे, क्योंकि रात में सूर्य के समान प्रकाश हो जाएगा।

दो०—कहि अस बचन प्रबोध तिहि, शीश नाइ बल भाखि।
आयउ रघुपति कटक महं निज देवी उर राखि॥ ३॥

ऐसे वचन को कहकर उसे समझाया और सिर नवाकर बल कहकर और अपनी देवी को हृदय में धारण करके रामचन्द्रजी की सेना में आया॥ ३॥

सूझन पर निशि अति अंधियारी। मर्कट भट जागहिं तहं भारी॥
कहहिं जयति जय जयति कृपाला। अतिहि अगम गम नाहिं न काला॥

रात में कुछ नहीं सूझता है, अंधियारी झुक रही है, बड़े भारी वानर योद्धा वहां जाग रहे हैं। कृपालु रामजी की जय-जयकार बोलते हैं, बड़े कठिन हैं, वहां काल की भी पहुंच नहीं।

तहं मारुत सुत रचा उपाई। निज लंगूर की कोट बनाई॥
सो शोभा कछु बरणि न जाई। जनु भुजंग पति रह तहं छाई॥

वहां हनुमान ने एक उपाय रचा। अपनी पूंछ का परकोटा बनाया, सो वह शोभा कुछ वर्णन नहीं की जाती, ऐसा दीखता है मानो वहां शेष नाग छा रहे हैं।

अरु जिमि देखिय शैल समाना। द्वार बिराजत श्री हनुमाना॥
देखि हृदय अहिरावण हारा। जिमि रबि उदय न तिमिर प्रतापा॥

वह पहाड़ के समान दिखाई देता है और उसके द्वार पर हनुमान बठे हुए हैं, उन्हें देखकर अहिरावण हृदय में ऐसा हार गया, जैसे सूर्य उदय होने से अंधकार नहीं फैल सकता।

युक्ति एकहू मन न ठरानी। कपट वेष तिहि कीन्ह भवानी॥
वेष बिभीषण कर अनुहारी। पवन तनय पहं गो छलकारी॥

महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती, एक भी युक्ति मन में नहीं ठहरी, तब उसने कपट का वेष बनाया। बिभीषण के समान वेष बनाकर वह छलिया हनुमान के पास गया।

दो०—सहज प्रतापी पवन सुत, पुनि सुरपइि पति दास।
तिनहिं निदरि चल राम पहं, मूढ़ हृदय नहिं त्रास॥ ४॥

हनुमान प्रथम तो स्वभाव ही से प्रतापी, फिर भगवान के सेवक सो उनको निरादर करके रामचन्द्रजी के पास चला और मूर्ख के हृदय में भय नहीं हुआ॥ ४॥

मर्म न जानेउ कछु सुत पवना। भेष विभीषण व सो गवना॥
ठाढ़ होहु बोलेउ सुनु भ्राता। चलेउं जहां कृपाल जन भ्राता॥

हनुमान ने भेद नहीं जाना, वह विभीषण के वेष में चला हनुमानजी बोले, खड़े रहो। वह बोला। हे सुनो मैं जहां कृपानिधान भक्तों के रक्षक भगवान हैं, वहां जाता हूं।

मैं रघुपति सन याई आयसु पाई। सन्ध्या करन गयेउं सुनु भाई ॥
तेहिते तुरत चलेउं प्रभु पाहीं। भइ बिलम्ब जनि राम रिसाहीं ॥

हे भाई, सुनो मैं रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर सन्ध्या करने गया था। इसी से भगवान के पास शीघ्र जाता हूं कि देर हो गई तो रामजी क्रोधित न हों।

सत्य बचन कपि निज मन माना। सुनु खगेश भावी बलवाना ॥
कपट चतुर गति जानि न जाई। पर मन हरै हरै धन भाई ॥

कागभुशुण्डजी गरुड़जी से कहते हैं कि हे भाई। सुनो होनहार बलवान है। हनुमानजी ने अपने मन में उसका वचन सत्य मान लिया, चतुर कपट को गति जानी नहीं जाती। हे भाई, वह पराये मन और धन को हर लेती है।

आयसु पाइ गयउ सो तहंवां। फणि पति प्रभु दोनों रह जहंवां ॥
कपि पति जामवंत नल नीला। बालि तनय सुषेण बलशीला ॥

आज्ञा पाकर वहां गया, जहाँ भगवान और लक्ष्मण दोनों थे। बड़े बलवान सुग्रीव, जामवन्त, नल नील अङ्गद और सुषेण।

दो०—दिविद मयन्द कपीस गज,गव गवाक्ष कपि वीर।
सहित विभीषण अपर भट, सोये सब रण धीर ॥ ५ ॥

द्विविद, मयन्द, बन्दरों के समूह और गव, गवाक्ष, योद्धा बन्दर तथा विभीषण आदि अन्य रणधीर योद्धा सब सो गए ॥ ५ ॥

तिनहिं मध्य रावण शशिराहू। एक संग सोवत फणि नाहू ॥
दक्षिण दिशि सोवत रघुनाथा। अनुज बाम दिशि तिहि परहाथा ॥

उनके बीच में रावण-रूपी चन्द्रमा को राहु के समान ग्रसने वाले राम, लक्ष्मण समेत सो रहे हैं, दाहिनी ओर रामजी सोए हैं और लक्ष्मण बाईं तरफ, जिस पर रामजी का हाथ है।

प्रभु कर उर पर राजत कसे। जात रूप पर फणि पति जैसे ॥
कपि सब हैं जनु सागर क्षीरा। तहं सोये मानहुं दोउ बीरा ॥

भगवान का हाथ लक्ष्मण के हृदय पर कैसा शोभायमान लगता है, जैसे सुवर्ण पर सर्प सुहाता हो अथवा बानरों का समूह मानो क्षीर-समुद्र हो, वहां दोनों वीर सो रहे हैं।

सुभग बाण धनु धरे बनाई। लक्ष्मण सहित दियर रघुराई ॥
अहिरावण मन कीन्ह प्रणामा। देख राम घन सुन्दर श्यामा ॥

लक्ष्मण समेत रामचंद्रजी के पास सुन्दर धनुष बाण सजे हुए हैं मेघ के समान श्याम सुन्दर रामजी को देखकर अहिरावण ने मन-ही-मन में प्रणाम किया।

ब्रह्मादिक जेहि ध्यान न पावहिं। मुनि महेश पूजा मन लावहिं ॥
करहिं बिबिध जप योग बिरागी। रटहिं निरन्तर दिन निशि जागी ॥

ब्रह्मादिक जिनको ध्यान में भी नहीं पाते और मुनीश्वर तथा महादेव जिनकी पूजा में मन लगाते हैं, बैरागी अपने प्रकार से जप-योग करते और रात-दिन जिनको सदा रटते हैं।

सो प्रभु तिहि देखा भरि लोचन। कृपा सिन्धु सेवक भय मोचन॥
बहुरि हृदय तेहि कीन्ह बिचारा। रावण काज करौं अनुहारा॥

उन्हीं दया के समुद्र और भक्त भयहरण भगवान के दर्शन उसने नेत्र भर कर किए, फिर उसने मन में विचार किया कि रावण का काम कहे अनुसार सिद्ध करना चाहिए।

पुनि निज माया कृत गुण आई। कवनीं भांति जाई दोउ भाई॥

और अपनी माया के गुण से विचारा कि दोनों भाई किस प्रकार से जायं?

दो०—मोहन ते मोहे समहिं, मन्त्रन्ह ते मुख मूंदि।
भयउ अदृश्य उठाय करि, प्रभुहिं चलेउ लै कूदि॥ ६॥

मोहिनी मन्त्र से सबको मोहित कर मन्त्र से मुख बन्द कर दिया और भगवान को उठाकर और अदृश्य होकर कूद के ले चला॥ ६॥

यहि विधि प्रभुहिं गयो ले सोई। नभ मारग प्रकाश अति होई॥
सो प्रकाश जब रावण देखा। बचन प्रमाण तासु करि लेखा॥

इस भांति वह भगवान को आकाश मार्ग से ले गया, सो बड़ा प्रकाश होने लगा। वह प्रकाश जब रावण ने देखा तो उसके वचनों को सत्य जाना।

मनमहं हर्ष करै अति भारी। अहिरावण लै गा असुरारी॥
लै निजलोक गयो क्षणमाहीं। सोर भयो तब कपि दल माहीं॥

मन में बड़ा आनन्द मानता है, अहिरावण राक्षसों के वैरी रामजी को ले गया। जब वह क्षण-भर में अपने लोक को ले गया, तब वानरों की सेना में शोर हुआ।

जागे बानर श्रीहत भारी। देखिय जिमि सरिता बिनु वारी॥
अरु देखिय जिमि निशि बिनु इन्दू। तेजहीन बासर जिमि चन्दू॥

जागने पर वानर ऐसे छविहीन दिखाई देने लगे, जैसे बिना जल के नदी हो, अथवा ऐसे दिखाई देते हैं, जैसे बिना चन्द्रमा के रात, अथवा जैसे दिन में चन्द्रमा तेजहीन हो।

रबि बिनु दिवस जीव बिनु देहा। जिमि दीपक बिनु देखिय गेहा॥
एकहिं एक लाग तब पूछन। कहां गए त्रैलोक्य विभूषन॥

अथवा जैसे सूर्य के बिना दिन, जीव के बिना देह और दीपक के बिना घर दिखाई देता हो, तब एक-से-एक पूछने लगे कि त्रिलोकी के आभूषण रामचन्द्रजी कहां गये?

दो०—शोधा सब मिलि कटक तिन्ह, नहिं पाये दोउ बीर।
भे व्याकुल सब भालु कपि, जिमि जलचर बिनु नीर॥ ७॥

उन्होंने मिलकर सब सेना ढूंढी, परन्तु दोनों भाइयों का पता नहीं लगा, तब सब रीछ वानर ऐसे दुःखी हुए, जैसे जल बिना जल के जीव दुःखी होते हैं॥ ७॥

सकल कहहिं विधि का यह कीन्हा। रघुपति बिना प्राण चह लीन्हा॥
शोक ग्रसित धरि सकै न धीरा। कहां राम लक्ष्मण दोउ बीरा॥

सब कहते हैं विधाता ने यह क्या किया? जो रामचन्द्रजी से जुदा कर प्राण लिया चाहता है। शोक के मारे धीरज नहीं रख सकते, राम-लक्ष्मण दोनों भाई कहां हैं?

करुणा करैं कपीश अपारा। बनी बात बिधि कहा बिगारा॥
कटक निशाचर सकल संघारी। रहा एक रिपु रावण भारी॥

सुग्रीव बड़ी भारी दया विचारता है कि हे ब्रह्मा! तुमने बनी बात बिगाड़ी। राक्षसों की सब सेना मार डाली, एक बड़ा बैरी रावण ही रह गया था।

सोउ न रहत रामशर लागे। भाइहु हम सम कोउ न अभागे॥
कबहुं जो दशशिर अरि जीतहिं। उत्तर कवन देव हम सीतहिं॥

सो वह भी रामजी के बाण लगने से न रहता। हे भाई! हमारे समान अभागा कोई नहीं है। जो कभी हम वैरी रावण को जीत भी लें, तो जानकी जी को क्या उत्तर देंगे।

यह कहि बिकल मूर्च्छि महि परेऊ। आगे बज्र शैल जिमि गिरेऊ॥
कहि न विभीषण की गति जाई। बिगत बत्स जनु धेनु लवाई॥

यह कह दुःखी और मूर्छित हो, पृथ्वी पर ऐसे गिरे, जैसे वज्र के लगने से पर्वत गिरता है विभीषण की दशा कही नहीं जाती, मानो बछड़े के चले जाने से ब्याही गाय रँभाती हो।

दो०—सहित पवन सुत ऋक्ष पति, दुख मन भा बहु भांति।
खगपति सूझ न कतहुं कछु, तुम अगार तेहि राति॥ ८॥

हनुमान और जामवन्त के मन में भी बहुत प्रकार से दुःख हुआ। कागभुशुण्डजी कहते हैं हे गरुड़! कहीं कुछ नहीं दिखाई देता, उस रात को महाघोर अंधकार छा गया॥ ८॥

पवन तनय पुनि कह सब पाहीं। बिस्मय होइ एक मन माहीं॥
कोउ इक आव विभीषण भेखा। प्रभु के निकट जात मैं देखा॥

फिर हनुमान जी सबसे कहने लगे कि मेरे मन में एक संदेह होता है कि कोई एक नर विभीषण के वेष में आया था, उसे भगवान के पास जाते हुए मैंने देखा था।

पूछत बचन कहेसि अतीनिका। कपट न जानौं निशिचर जीका॥
बचन सुनत बोलेउ लंकेशा। अहिरावण लै गा अवधेशा॥

पूछने से तो उसने अच्छी बातें की, पर मैं राक्षसों के मन का छल नहीं जानता। यह वचन सुनते ही विभीषण बोला कि अहिरावण ही रामचन्द्रजी को हर ले गया।

पन्नगलोक बसुत है सोई। मम तनु वेष अपर नहिं कोई॥
महाबली जानैं बहु माया। निश्चय वही दशशीश पठाया॥

वह पाताल लोक में रहता है, मेरा वेष और कोई नहीं रख सकता। वह बड़ा बलवान है और बहुत सी माया को जानता है सो निश्चय करके उसी को रावण ने भेजा होगा।

जिहि बल होइ वहां सो जाई। ताहि जीति आनै दोउ भाई॥
कहहिं भाल पति सुनु हनुमाना। तव बल तात सकल जगजाना॥

जिसे बल हो वह जाकर उसे जीतकर दोनों भाइयों को ले आवे। जामवन्त कहने लगा। हे हनुमान! सुनो, तुम्हारे बल को सँसार जानता है।

बेग सो जतन बिचारहु ताता। कृपा सिन्धु आनहु दोउ भ्राता॥

हे प्यारे हनुमान ! वह उपाय अति शीघ्र ही विचार करो कि जिस प्रकार से दया के समुद्र दोनों भाई आ जावें।

दोहा—बिलखि कहेउ कपि पति बहुरि, मारुत सुत सुनु तात।
बिनु रघुपति धिक्‌धिक्‌ जनम, पलयुग सरिस बिहात॥ ९॥

फिर सुग्रीव ने दुखी होकर कहा—हे प्यारे हनुमान ! सुनो, रामचन्द्रजी के बिना जन्म को धिक्कार है, एक-एक पल युग के समान बीत रहा है॥ ९॥

तृषित होय बिन बारि दुखारी। तैसे हम सब बिना खरारी॥
रवि बिनु पंकज होइ मलाना। तैसे हम सब हैं हनुमाना॥

जैसे प्यासा जल के बिना दुःखी हो, ऐसे ही हम सब रामचन्द्रजी के बिना हो रहे हैं। हे हनुमान जैसे सूर्य के बिना कमल मलीन होता है, वैसे ही हम सब हो रहे हैं।

सीता सुधि जिमि औषध आनी। तहि प्रकार आनहु गुणखानी॥
यह सुनि बहुरि पवन सुत बोला। चित्त करहु थिर सेन न डोला॥

जिस प्रकार तुम सीताजी की खबर और औषधि लाये थे, उसी प्रकार गुणों की खानि रामजी को लाओ। यह सुनकर हनुमानजी बोले कि तुम सब अपने चित्त को स्थिर करो और सेना चलायमान न होने पावे।

भुबन चारिदश तीनहुं लोका। आनहुं प्रभुहिं तजहु तुम शोका॥
अब ते सजग रहेउ सब भाई। लरेहु काल सो जो चढ़ि आई॥

चौदहों भुवन और तीनों लोकों में से भगवान को लाऊंगा, तुम शोक को छोड़ दो। हे भाइयों ! अब तुम सावधान रहना, जो काल भी चढ़ आवे तो उससे भी लड़ना।

यह कहि गर्जि चलेउ हनुमाना। प्रलय काल के मेघ समाना॥
चले जात इक तरु तर गयऊ। गृद्धनि गृद्ध कहत अस भयऊ॥

यह कहकर हनुमानजी प्रलयकाल के बादल के समान गरज कर चले। चलते-चलते एक वृक्ष के नीचे गए, तो वहां गृद्ध-गृद्धिनी आपस में बातें कर रहे थे।

दोहा—गृद्ध नारि थी गर्भिणी, बोली पति सों बैन।
आनहु आमिष मनुज कर, खाउं होइ जिय चैन॥ १०॥

गृद्ध की स्त्री गर्भवती थी, सो अपने पति से कहने लगी, मनुष्य का मांस लाओ, जिसे खाकर मन में चैन पड़े॥ १०॥

तासु बचन सुनि खग अस कहेऊ। अहिरावण रामहिं लै गयऊ॥
देइहहिं बलि देवहिं सो जाई। बड़े भाग्य आमिष जो पाई॥

उसके वचन सुनकर गृद्ध ने कहा कि अहिरावण रामचन्द्र को ले गया है और वह जाकर देवी को बलिदान देगा, जो अगर वह मांस मिले तो बड़े भाग्य की बात है।

कवनिहु जतन देब मैं आनी। अस कहि गृद्ध नारि सन मानी॥
जबहिं पवन सुत यह सुधि पाई। चले हृदय सुमिरत रघुराई॥

हे प्यारी ! मैं किसी भी उपाय से लाऊंगा, ऐसे कहकर गृद्ध ने अपनी स्त्री का सत्कार किया, जब हनुमानजी ने यह सुना तो रामजी को हृदय में स्मरण कर चले।

तुरत पतालहिं तिह क्षण गयऊ। अहिरावण पुर प्रविशत भयऊ॥
द्वारपाल मकरध्वज कीशा। कपि सन डाटि कहत बहु रीशा॥

और शीघ्र उसी समय पाताल को गए और अहिरावण के नगर में घुसने लगे। वहां द्वारपाल मकरध्वज वानर था, जो हनुमानजी को डांटकर बड़े क्रोध से कहने लगा।

निदरहिं मोहिं तोहिं डर नाहीं। जिमि दीपक न पतंग डराहीं॥
मारुत सुत कर हौं मैं बालक। स्वामि भक्त भंजन मुख कालक॥

अरे ! तू मेरा निरादर करता है, तुझे डर नहीं लगता, जैसे दीपक पर जाने से पतङ्गा नहीं डरता मैं हनुमान का पुत्र हूं, स्वामी भक्त और काल का मुख तोड़ने वाला हूं।

सोरठा—सुनत बचन हनुमान, बिस्मय वश बोलत भये।
अरे मूढ़ अज्ञान, मोरे सुत सपने नहीं॥ १॥

हनुमानजी उसके वचन सुनते ही संदेह में पड़ कर कहने लगे कि अरे मूर्ख अज्ञान ! मेरे तो स्वप्न में भी पुत्र नहीं हुआ॥ १॥

कहत बचन शठ तोहि न खोरी। काम बिवश कब मति भै मोरी॥
मम सुत होसि मूढ़ केहि काजा। इतना कसत तोहिं नहिं लाजा॥

अरे मूर्ख ! तुझे ऐसी बात करने में डर नहीं लगता ? मेरी बुद्धि कब काम के वश हुई ? अरे मूर्ख ! मेरा किस कारण पुत्र हो सकता है ? तुझे कहने में लज्जा भी नहीं आती।

केहि प्रकार तैं मम सुत भइसी। निज उत्पति मोसन किन कहसी॥
सुनत कहहि मकरध्वज बचना। कीन्ह तात जब लंका दहना॥

तू किस भांति मेरा पुत्र हुआ ? अपनी उत्पत्ति मुझसे क्यों नहीं कहता ? सुनते ही मकरध्वज ऐसा वचन कहने लगा कि हे पिताजी ! जब तुमने लंका जलाई थी।

जब आयउ चलि उदधि समीपा। भयउ प्रस्वेद तुमहिं कपिदीसा॥
छूटि प्रस्वेद साभर महं गयऊ। सो झट पियेउ तहां मैं भयऊ॥

हे वानरों के दीपक समान ! जब समुद्र के पास चले गये थे, तो तुम्हें पसीना आया था, वह पसीना समुद्र में गया और वह मछली ने पिया, वहां मैं उत्पन्न हुआ।

इहि प्रकार मैं तव सुत ताता। गोपहुं नहिं निज पिता न माता॥
अहिरावण सेवा मैं करऊं। प्रभु आयसु इहि द्वारे रहेऊं॥

हे पिता ! मैं इस भांति तुम्हारा पुत्र हूं। अपने माता पिता को नहीं छिपाता। मैं अब अहिरावण की सेवा करता हूं और स्वामी की आज्ञा से इस द्वार पर रहता हूं।

दोहा—सत्य बचन हनुमान कहि, पुनि पूछेउ सब बात।
आनेउ लछमण राम कहं, कहा करत है तात॥ ११॥

हनुमानजी ने कहा तुम्हारा कहना ठीक है, फिर सब बात पूछी कि हे प्यारे ! लक्ष्मण रामचन्द्रजी को लाकर अहिरावण क्या करेगा॥ ११॥

कहहु तात तिहि थलको नाऊं। जान चहौं मैं निज प्रभु ठाऊं॥
यह बृत्तान्त न जानहुं ताता। अस मैं श्रवण सुनी कछु बाता॥

हे प्यारे! उस जगह का नाम बताओ, मैं अपने स्वामी के पास जाना चाहता हूं। हे पिता! मैं यह समाचार तो नहीं जानता, परन्तु मैंने कुछ ऐसी बात कानों से सुनी है।

सीता पति अरु फणिपति साथा। सो लै आयउ निशिचर नाथा॥
करत सो अहैं होम धौ आज। देवहिं बलि देइहि अहिराज॥

रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी को राक्षसों का स्वामी अहिरावण साथ में ले आया है। आज वह होम कर रहा है और उन्हें देवी को बलिदान देगा।

जो कुछ निज श्रवणन सुनि पायउं। तात सकल मैं तुमहिं सुनायउं॥
निज प्रभु काज लागि दुख सइउं। तुम सन सत्य मर्म मैं कहउं॥

हे पिताजी जो कुछ मैंने अपने कानों से सुना है, वह सब तुमको सुना दिया। काम के लिए दुःख सहता हूं, सो तुमसे ठीक भेद कह दिया।

जान कहौं पै जान न देऊं। प्रभु आज्ञा तजि अयश न लेऊं॥
सुनि अस पेलि चलेउ हनुमाना। भयउ क्रोध मकरध्वज जाना॥

पर तुम जो जाने को कहते हो, सो जाने न दूंगा, क्योंकि स्वामी की आज्ञा को छोड़ अपयश न लूंगा, ऐसे सुन हनुमान उसे धकेल कर चले तो मकरध्वज ने उन्हें क्रोधित जाना।

दोहा—कपि कहं हनेसि मुष्टिका, कपि पुनि मारा ताहि।
एकहिं एक हनेउ तब, बल युग सम घटि नाहिं॥ १२॥

और हनुमानजी को घूंसा मारा, फिर हनुमानजी ने उसे मारा तब एक-को-एक मारने लगे। दोनों में समान बल था, कम कोई नहीं था॥ १२॥

एकहिं एक सकै नहिं टारी। मारुत सुत दोऊ भट भारी॥
सुतहिं पूंछ ते बांधि भवानी। चलेउ बहोरि बिलम्ब बड़ जानी॥

एक-को-एक हटा नहीं सकता, हनुमानजी और मकरध्वज दोनों बड़े योद्धा थे, महादेवजी कहते हैं। हे पार्वती हनुमानजी ने पुत्र को पूंछ से बांध दिया और बहुत देर हुई जानकर चले।

धरि लघु रूप होम गृह देखा। जीव सजीव परै नहिं लेखा॥
तहं देवी कर मराडप रहई। शोणित घट बहु को कहि सकई॥

और छोटा सा रूप धारण कर हवन घर को देखा, तो जीते हुये जीव गिने नहीं जाते थे, वहां देवी का मण्डप और लोहू के बहुत घड़े रखे हैं कि जिन्हें कौन कह सकता है?

विविध भांति मेवा पकवाना। धरे अग्नि देवी अस्थाना॥
मालिन तहां सुमन लै आई। सुमन मध्य प्रविशे कपिराई॥

अनेक प्रकार का मेवा और पकवान लाकर देवी के स्थान में रखे, यहां मालिन फूल ले आई, सो फूल के बीच में हनुमानजी घुस गये।

सुमन हुते अति कृत सलुकाई। सो ले सुमन मराडपहि आई॥
सुमन सकल देवी पर चढ़ेऊ। बिकट रूप तब तहं कपि बढ़ऊ॥

हनुमानजी ने अपने को फूल से भी बहुत हलका किया। मालिन उन्हीं फूलों को ले मण्डप में आई और फल देवी पर चढ़ाया, तब वहां हनुमान विकट रूप धारण कर बढ़े।

दोहा—छुवत चरण देवी तबै, धरणी गई समाय।
मुख पसारि ठाढ़े भयउ, कपि छवि बरणि न जाय॥ १३॥

तब चरण छुते ही देवी तो पृथ्वी में समा गई और हनुमान मुख फैलाकर खड़े हुए सो वह शोभा वर्णन नहीं की जाती॥ १३॥

रूप देख भा आनन्द भारी। करह विचारिं निशाचर झारी॥
कहहिं कि देवि प्रगट भइ आजू। बड़ भागी भा निशिचर राजू॥

उस रूप को देखकर बड़ा आनन्द हुआ और सब राक्षस विचार करने लगे और कहने लगे कि आज देवी साक्षात प्रगट हुई और अहिरावण बड़ा भागी हुआ।

करि प्रणाम पुनि पूजा करहीं। जो कछु नावसो कपि मुख भरहीं॥
रही जो सकल वस्तु समुदाई। बची न एको सब कपि खाई॥

प्रणाम करके फिर पूजा करते हैं और जो कुछ आवे, वह हनुमान के मुख में भरते हैं, सब वस्तुओं का जो समूह था, उसमें एक भी वस्तु न बची, हनुमानजी ने सब खा लिया।

कपि खिलार कौतुक बिस्तारा। भाचह निशिचर कुल संघारा॥
अहिरावण उर भा सुख कैसे। चढ़े कांध पर बलिपशु जैसे॥

खिलाड़ो हनुमान ने खेल किया, क्योंकि राक्षसों के कुल का नाश हुआ चाहता है और अहिरावण के हृदय में ऐसा सुख हुआ, जैसे बलि के पशु को कांधे पर चढ़ने से।

जबहीं होम सिद्ध तिन जाना। लच्मण राम तुरत तहं आना॥
ठाढ़ कीन्ह तहं प्रभु कहं आनी। निशिचर बहु आयुध धरि पानी॥

जब उसने होम को सिद्ध हुआ जाना, तो शीघ्र ही राम-लक्ष्मण को वहां ले आया वहां भगवान को लाकर खड़ा किया और राक्षसों ने हाथों में बहुत से हथियार लिए।

धरे गदा कोउ अरु धनु बाणा। शक्ति शूल तलवारि कृपाना॥

कोई गदा और धनष-बाण धारण किए हैं, कोई शक्ति, त्रिशूल, तलवार और कृपाण धारण किए हुए हैं।

दोहा—तोमर मुद्गर परश अहि, पाशि फांसि अरु बेत।
करनि खड्ग धनु शर गहहि, देखत रहहिं न चेत॥ १४॥

तोमर, मुद्गर, फरसा, तलवार, फांसी, बेत, खड्ग, धनुष-बाण हाथों में लिये हुए हैं, जिन्हें देखते ही ज्ञान नहीं रहता॥ १४॥

माया बोलते सकल बिचच्छण। अति बिकराल मूर्ख दुरलच्छण॥
इहि बिधि सकल बीर तहं रहहीं। अहिरावण आज्ञा अनुसरहीं॥

वे सब माया के बल में बड़े चतुर, बड़े भयंकर, मूर्ख और कुलक्षणी थे। इस भांति सब योद्धा वहां रहते हुए अहिरावण की आज्ञा का पालन करते हैं।

आयसु पाइ खंग तिन्ह काढ़े। मारन कहं प्रभु पर भे ठाढ़े॥
कोउ कह राजनीति अनुसरहीं। तीन दंड बिलंब अब करहू॥

आज्ञा पाकर उन्होंने तलवार निकाली और भगवान पर मारने को खड़ हुए। कोई कहते हैं कि राजनीति के अनुसार तीन घड़ी की देर अभी और करो।

सुनि अस बचन मूढ़ इमि कहहीं। सुमिरो जो तुम्हरे कोउ अहहीं॥
नाहित काल आय नियराई। निशि स्वप्न समान दोऊ भाई॥

ऐसे वचन सुनकर मूर्ख यों कहने लगे कि तुम्हारे जो कोई भी हों, उसको स्मरण कर लो, नहीं तो काल पास आ गया है। दोनों भाई रात के स्वप्न के समान हो।

कहहि मूढ़ प्रभु कहं इमि बानी। कहत सकुच मोहिं अतिहि भवानी॥

महादेवजी कहते हैं, हे पार्वती! मूर्ख ऐसी-ऐसी वाणी भगवान् से कहते हैं कि मुझे तो कहने में बहुत ही शर्म आती है।

दोहा—फणि पति चितवति राम कहं, राम चितवन अहिराज।
प्रभु कर कौतुक कहिन किमि, सुनहु गरुड़ खग राज॥ १५॥

कागभुशुण्डिजी कहते हैं हे गरुड़जी! लक्ष्मण तो रामचन्द्रजी को देखते हैं और रामजी लक्ष्मण जी को देखते हैं, सो भगवान का कौतुक कैसे कहा जाय॥ १५॥

पुनि प्रभु मन कहं कीन्ह बिचारा। जपै सकल जग नाम हमारा॥
इमि अवसर सुमिरय हनुमाना। निकटहिं अहहि बीरबल वाना॥

फिर भगवान ने मन में विचार किया कि संसार तो हमारे नाम को जपता है, तो भी इस समय हनुमान का स्मरण करना चाहिए और वह बलवान् योद्धा जब चाहो पास ही है।

यहि बिचारि प्रभु सुमिरण कीन्हा। होइहि सो जो बिधि लिखि दीन्हा॥
तब मारन कहं उद्यत भयऊ। घन समान कपि गर्जत भयऊ॥

यह विचार कर भगवान ने स्मरण किया और विचारा कि होगा तो वही जो विधाता ने लिख दिया है। जब मारने को उपस्थित हुए, तब हनुमान बादल के समान गरजे।

निशिचर सकल त्रसित भे भारी। कहहिं बचन निज हृदय बिचारी॥
अहिरावण भल कीन्ह न काजू। आनेउ कपट वेष सुरराजू॥

सब राक्षस बहुत दुःखी हुए और अपने-अपने हृदय में विचारकर वचन कहने लगे कि अहिरावण ने अच्छा काम नहीं किया, जो कपट के वेष से भगवान् को ले आया।

तिहिते देवि क्रुद्ध भइ आजू। अब भा सबकर परम अकाजू॥
सभय भये तब निशिचर भारी। दुसरे कपि गर्जेउ अतिभारी॥

उसी से आज देवी क्रोधित हो गई और अब सबका बड़ा अकाज हुआ, तब राक्षस डर गये और हनुमान फिर दूसरी बार बड़े भारी गरजे।

दोहा—प्रकट रूप करि पवन सुत, अट्टहास गम्भीर।
अति भय त्रसित निशाचर, सुनहु उमा मतिधीर॥ १६॥

महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! सुनो, हनुमान अपना स्वरूप प्रकट करके गम्भीरता से खिल-खिलाकर हँसे कि जिससे राक्षस बड़े भय से दुःखित हो गए ॥ १६ ॥

डग मग भे निशिचर अभिमानी। मारुत बह जिमि सागर पानी ॥
तेहि क्षण कपि लीन्हे दोउ भाई। हते लागि निशिचार समुदाई ॥

अभिमानी राक्षस ऐसे चलायमान हुए, जैसे पर्वत से समुद्र का पानी बहने लगता है। उसी समय हनुमानजी दोनों भाइयों को लेकर राक्षसों के समूह को मारने लगे।

खडग छुड़ाइ लीन्ह हनुमाना। काटै लाग भुजा शिर नाना ॥
काहु हिंनाक श्रवण बिनु कीन्हा। धरि पद डारि अनल महं दीन्हा ॥

हनुमानजी ने तलवार छीन ली और उससे अनेक भुजा और मस्तकों को काटने लगे, किसी को नाक से, किसी को कान से रहित कर दिया और किसी को उसके पैर पकड़कर अग्नि में डाल दिया।

निज लंगूर की ओट बनाई। जिहिते काउ भागि नहिं जाई ॥
इहि बिधि सब निशिचर संहारे। अहिरावण तब बचन उचारे ॥

और अपनी पूंछ का परकोटा बनाया कि जिससे कोई भाग न जाय। इस प्रकार सब राक्षसों को मार डाला, तब अहिरावण ने वचन कहे।

रे कपि ढीठ त्रास नहिं तोहीं। अहिरावण मैं जान न मोहीं ॥
जंबुमालि कहं जिमि तुम मारा। अरु रावण सुत हतेउ बिचारा ॥

अरे ढीठ वानर ! तुझे कोई भय नहीं है, मैं अहिरावण हूं। तू मुझको नहीं जानता। तैंने जैसे जम्बु मालो को मारा और रावण के बिचारे पुत्रों को मारा।

दो०—काल नेमि सम मैं सम नहीं, सुनहु बचन हनुमान।
असि कहि खड्ग प्रहार किय, कपि तनु बज्र समान ॥ १७ ॥

सो हे हनुमान ! मेरी बात सुन। मैं कालनेमि के समान नहीं हूं। ऐसे कहकर हनुमान के वज्र के समान शरीर पर तलवार मारी ॥ १७ ॥

लै असि तोहि पवन सुत मारा। काटा शीश अनल महं डारा ॥
पूर्णाहुति करि तब सो शीशा। पुनि प्रभु कहं लै चलेउ कपीसा ॥

हनुमानजी ने तलवार लेकर उसे मारा और माथा काटकर अग्नि में डाल दिया, तब हनुमान उस मस्तक से पूर्णाहुति करके भगवान् को ले चले।

मकरध्वज तब बिनती कीन्हा। बंधन छोरि राज तेहि दीन्हा ॥
इहं कर राज करहु तुम ताता। भजहु सदा मम प्रभु दोउ भ्राता ॥

तब मकरध्वज ने प्रार्थना की, तो बन्धन खोलकर उसे राज्य दे दिया और कहा कि हे प्यारे ! तुम यहाँ राज्य करो और मेरे स्वामी दोनों भाइयों का सदा भजन करते रहो।

अस कहि कपि निज दल महं आवा। हर्षेउ कटक समर सुख पावा ॥
मृतक शरीर प्राण फिर आवै। गइ मणिफणिक मनहुं फिरि हावै ॥

यों कहकर हनुमानजी अपनी सेना में आये तो सेना प्रसन्न हुई और लड़ाई का ऐसा सुख पाया, जैसे मरे हुए शरीर में प्राण लौट आए अथवा सर्प की खोई मणि फिर मिल जाय।

बिछुरा मिलै बहुरि जिमि आई। तिमि सब भये निरखि दोउ भाई॥
मिलेउ कपीश चरण धरि माथा। पुनि पद धरेउ निशाचर नाथा॥

अथवा जैसे खोया हुआ फिर आकर मिल जावे, वैसे ही दोनों भाइयों को देखकर सब प्रसन्न हुए। सुग्रीव चरण में माथा रखकर मिले फिर विभीषण ने चरण छुए।

दोहा—जामवन्त अंगद सहित, मिले भालु अरु कीश।
सनमाने प्रिय बचन कहि, लखन कोशलाधीश॥ १८॥

जामवन्त और अङ्गद समेत रीछ और वानर मिले, तब राम-लक्ष्मणजी ने प्यारे वचन कहकर सबका सत्कार किया॥ १८॥

बहुरि सबन्हि भेंटे हनुमाना। कहहिं तात तुम राखेउ प्राना॥
देवन्हि सुमन वृष्टि तब कीन्हा। प्रमुदित हृदय दुन्दुभी दीन्हीं॥

फिर सब हनुमानजी से मिले और कहने लगे कि हे प्यारे! तुमने प्राण रखे, तब देवताओं ने फूलों की वर्षा कर, प्रसन्न मन से नगाड़े बजाये।

अनुज सहित हर्षे रघुवीरा। कहेउ वचन सुनु तनय समीरा॥
तुम समान न कोउ हितकारी। सुर मुनि सिद्ध न कोउ तन धारी॥

लक्ष्मणजी समेत रामचन्द्रजी ने प्रसन्न होकर ये वचन कहे कि हे पवन पुत्र! सुनो, तुम्हारे समान हितकारी देवता, मुनीश्वर, सिद्ध और कोई शरीरधारी नहीं है।

यश तुम्हार त्रिभुवन में भयऊ। सुनि अस बचन चरण कपि नयऊ॥
नाथ करौ तुम मैं केहि लेखे। तरणी चलैं अगम जल देखे॥

तुम्हारी कीर्ति तीनों लोकों में हुई, ऐसे वचन सुन हनुमान ने चरणों में सिर झुकाया। हे स्वामी! तुम ही सब करते हो मैं किस गिनती में हूं? देखिए जैसे नाव गहरे जल में चलती है।

तैसे सब प्रताप तव नाथा। सुनि असि कपिहिं मिले रघुनाथा॥
कटक सहित हर्षे दोउ भाई। तेहि अवसर सुख कहि किमि जाई॥

वैसे ही हे स्वामी! सब आपका प्रताप है। ऐसे वचन सुनकर रामचन्द्रजी हनुमानजी से मिले। सेना समेत दोनों भाई प्रसन्न हुए, उस समय का सुख कहा नहीं जा सकता।

वहां दशानन सब सुधि पाई। दूतन कही खरी सब जाई॥
अहिरावण कर बध सुनि काना। भयउ तेजहत अति दुखमाना॥

वहां रावण ने सब खबर पाई, जो दूतों ने सब ठीक-ठीक जाकर सुनाई थी, सो कानों से अहिरावण का मरना सुनकर वह कांतिहीन हो गया और बड़ा दुःख माना।

वचन बाण सम लागेउ ताहीं। संभ्रम मूर्छि परेउ महि माहीं॥
मुख सुखान लोचन जल बहई। बचन आव पुन पुन शिर धुनई॥

उसे वे वचन तीक्ष्ण बाणों के समान लगे, जिससे घबराकर और मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर

पड़ा। मुख सूख गया और नेत्रों से जल बहने लगा। मुख से वचन नहीं निकलते, बार-बार माथा कूटता है।

दोहा—मय तनया पुनि आइ करि, बहु प्रकार समझाय।
मानत मूढ़ न काल वश, परम क्रोध कहं पाय॥ १९॥

फिर मन्दोदरी ने भी आकर बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु वह मूर्ख रावण काल के वश नहीं मानता और बड़ा क्रोधित होता है॥ १९॥

कृपा सिन्धु सेवक भयहारी। तिहि बिरोध तुम चहत सुरारी॥

कृपासिन्धु भक्त भयहारी भगवान् से विरोध करके राक्षस सुख चाहता है।

॥ इति अहिरावण कथा क्षेपक समाप्त॥

अथ क्षेपक नारान्तक कथा

नारि बचन सुनि तेहि सिर बाढ़ी। उठि बैठउ धरि धीरज गाढ़ी॥
तेहि अवसर मन्त्री एक आवा। करि आदर दशमुख बैठावा॥

नारी का वचन सुनकर रावण बड़ा क्रोधित हुआ और धीरज रखकर उठ बैठा। उसी समय एक मन्त्री आया, उसे आदर करके रावण ने बैठाया।

सिन्धुरनाद नाम बलवाना। वृद्ध ज्ञान मय परम सुजाना॥
सदा विभीषन कर संग ठयऊ। कबहुं दशमुख सभा न गयऊ॥

मन्त्री का नाम सिन्धुरनाद था, जो बड़ा वृद्ध, ज्ञानी, परम चतुर था। सदा विभीषण के साथ रहता था और कभी रावण की सभा में नहीं गया था।

आव सो भल अवसर पाई। कहेसि नीति रावणहिं बुझाई॥
ज्ञान कथा दशमुख न सुहानी। तब बहिराइ बात कह आनी॥

सो अच्छा समय पाकर आया और रावण से नीति कहने लगा। रावण को ज्ञान की कथा अच्छी नहीं लगी, तब बहराकर दूसरी बात कहने लगा।

करि वरनाद हृदय अस गुनेऊ। प्रभु दुइ ताग हृदय पट बुनेऊ॥
अब यहि कहउं सो सहज उपाई। जेहि यह मूल समूल नसाई॥

सिन्धुरनाद ने हृदय में विचार किया कि प्रभु के हृदय में दोनों धागों से पट बुना गया है, सो अब इसको ऐसा उपाय बताऊं कि जो यह जड़ समेत नाश हो जाय।

दोहा—यह बिचारि बोले सचिव, सुनहु दनुज कुलराय।
धीर धरहु संसय विगत, कहहुं सो करिय उपाय॥ १॥

यह विचार कर मन्त्री बोला हे राक्षस कुल नृपति! जो मैं कहूं, सो उपाय करो और सन्देह का त्याग करो॥ १॥

अक्षादिक न सुनत बल दूना। कस सुरारि मन मानहुं ऊना॥
सचिव बचन सुनि दशमुख कहई। अब हमरे कुल को भट अहई॥

अभी तो तुम्हारे अक्षादिक पुत्रों से दूने बली पुत्र विद्यमान हैं, मन में ग्लानि क्यों मानते हो ? यह मन्त्री के वचन सुनकर रावण बोला— अब हमारे कुल में कौन योद्धा शेष है ?

अपने मने महं करहु बिचारा। है नारान्तक तनय तुम्हारा॥
मूल असुक्त माहिं भा जोई। दिया बहाय मरा नहिं सोई॥

मन्त्री बोला—अपने मन में विचार करो, तुम्हारा नारान्तक पुत्र विद्यमान है, जो मूलों की अभुक्त घड़ी में उत्पन्न हुआ था, जिसे तुमने बहा दिया था परन्तु वह मरा नहीं था।

शम्भु प्रसाद ताहि कछु भयऊ। पुर बिहबावल नृप ता दयऊ॥
कोटि बहत्तर एक प्रभाऊ। राजा प्रजा भेद नहिं काऊ॥

उनके ऊपर कुछ शिवजी की कृपा हुई, तो वह विहबावलपुर में राज्य करता है। वे बहत्तर करोड़ एक ही प्रभाव के हैं, राजा प्रजा किसी में कुछ भेद नहीं है।

दूत पठाइ बुलावहु ताहीं। जीतहि सो रिपु रणमहि माही॥
दनुज अधीश चतुर चर पठवौ। धरहु धीर चित चिन्ता घटवौ॥

दूत भेजकर उसे बुलाओ, वह निश्चत ही युद्ध में शत्रु को जीतेगा। हे रावण ! कोई चतुर दूत वहां भेजना चाहिए और धीरज रखो, चिन्ता मत करो।

दोहा—तासु मन्त्र सुनि दशवदन, हृदय प्रमोद महान।
धूमकेतु कहं बोलि ढिग, समुझायउ सनमान॥ २॥

उसके यह वचन सुनकर रावण हृदय में अति प्रसन्न हुआ और धूमकेतु दूत को बुला कर बड़े सम्मान से समझाता हुआ बोला॥ २॥

धूमकेतु तुम परम सयाना। लै मम पाती करहु पयाना॥
बसत जहां नारान्तक राजा। तहां न तात अवर कर काजा॥

हे धूमकेतु ! तू बड़ा चतुर है मेरा संदेश लेकर जा। जहां नारान्तक राजा रहता है, वहां और के जाने का काम नहीं।

अवसर पाइ हेतु समुझाई। सपदि ताहि लै आनउ भाई॥
आयसु पाइ चार तहं गवना। यह सुनि बिहंसि कह्यो अहि दवना॥

हे तात ! समय पाकर कारण समझाकर उसे शीघ्र ले आओ। आज्ञा पाकर दूत चला गया। यह कथा सुनकर गरुड़जी कागभुशुण्डिजी हंसकर कहने लगे।

काक नाथ यह गाथ सुहाई। मोसन तात कहहु समुझाई॥
नारान्तक उत्पत्ति यथाविधि। पुर बिहबावल गा कवनी बिधि॥

हे कागभुशुण्डिजी ! यह सुन्दर कथा मुझसे समझाकर कहो। नारान्तक की उत्पत्ति कैसे हुई और वह बिहबावलपुर में कैसे गया, सो यथाविधि से कहो।

सुमिरि काक पति उर अवधेशा। मन प्रसन्न कर कह काकेशा॥
अति सुन्दर शुचि यह सम्वादू। चित थिर करि सुनिये उरगादू॥

कागभुशुण्डिजी प्रसन्न मन होकर हृदय में रघुनाथजी को स्मरण कर कहने लगे। हे गरुड़ ! यह संवाद बहुत सुन्दर है, चित स्थिर करके सुनो।

दो०—नख चौगुन वसु ऊन तहं, सप्त अकाश मिलाइ ।
इतने निशिचर एक दिन, रावण के पुर आइ ॥ ३ ॥

नख बीस उन्हें चौगुना करके अस्सी हुए, इसमें से आठ घटाए बहत्तर रहे, उसमें सात शून्य मिलाए तो बहत्तर करोड़ हुए, इतने राक्षस रावण के यहां एक साथ पैदा हुए ॥ ३ ॥

पुर महं उपजे खल एक साथा । तब सुनि हर्षे निशिचर नाथा ॥
निज गुरु बोली चरण शिरनाई । बूझा मुदित सो कलश धराई ॥

लंकापुरी में वे सब दुष्ट राक्षसों के घर उत्पन्न हुए, यह सुन रावण बड़ा प्रसन्न हुआ । शुक्राचार्य को बुलाकर चरणों में सिर झुकाकर कलश धराकर उनकी घड़ी मुहूर्त पूछी ।

भृगुनन्दन तब तेहि सन कहेऊ । आजु बाल सब मूलन भयऊ ॥
सत्य कहत दशमुख तुम पाहीं । भये आज जे तव पुर माहीं ॥

तब शुक्राचार्य ने उससे कहा—आज तुम्हारे सभी बालक मूलों में पैदा हुए हैं । हे रावण मैं तुमसे सत्य कहता हूं, जितने आज तुम्हारे पुर में उत्पन्न हुए हैं ।

वे सुत सब निज निज पितु घाती । मुख देखत सुमु सुर आराती ॥
घर राखे धन सहित विनाशा । होइ अवसि नहिं उबरन आशा ॥

यह सभी बालक हे देव शत्रु रावण ! सुनिए, अपने-अपने पिता के नाशक हैं, जो इनका मुख देखेगा, वह मर जायेगा । जो इन्हें अपने घर पर रखेगा उसका धन सहित नाश हो जायेगा फिर वह कभी उभरेगा नहीं ।

शुक्र बचन सुनि डरे निशाचर । का करिये अतिबाद परस्पर ॥
निश्चय कीन्ह प्रसव शिशु आजू । सौंपिय सिन्धुहि अवर न काजू ॥

शुक्राचार्य के वचन सुन राक्षस डर गये, क्या करें, ऐसा सब कहने लगे । निश्चय हुआ कि आज जितने बालक उत्पन्न हुए हैं, वे सब समुद्र में डुबा दो, दूसरी बात न करो ।

दो०—सपदि करहु सब काज यह, लावहु बाल बटोरि ।
राखे होइहि हानि अति, कह दशबदन बहोरि ॥ ४ ॥

सब मिलकर यह काम शीघ्र करो, बालकों को इकट्ठा करके लाओ, रखने से बड़ी हानि होगी, यह रावण ने आज्ञा दी ॥ ४ ॥

सेवक दशमुख आयसु पाई । धाये तुरत चरण शिरनाई ॥
रावण आयसु नगर पुकारी । सुनहु सकल पुर नर अरु नारी ॥

सेवक रावण की यह आज्ञा पाकर, चरणों में सिर झुकाकर कार्य करने लगे । रावण की आज्ञा सारे नगर में फैला दी गई और कहा गया कि नगर के नर-नारी सब सुनो ।

आजु अभुक्त मूल भये बालक । डारहु सागर सब कुल घालक ॥
बोरे सबनि बाल इक ठाईं । भावी बश मधु माखी नाईं ॥

आज के बालक अभुक्त मूल में हुए है, इन सबको समुद्र में डाल दो । यह कुलनाशक हैं । होनहार के वश सबने बालकों को एक ही जगह मधुमक्खियों की तरह डाल दिये ।

पाय अधार वृक्ष वट बोरा। पीवन लगे क्षीर चहुं ओरा॥
पीवत क्षीर अब्द भर साती। पुष्ट भये खल निशिचर जाती॥

वे सब बालक बट के वृक्षों में चिपटकर चारों ओर से दूध पीने लगे। सात वर्ष तक दूध पीते रहे, तब वे निशाचर पुष्ट हो गए।

पुनि सब एक संग तहं जाई। सुर सरि संगम भा जेहि ठांई॥
तहं शिव मन्दिर परम सुहावा। सब निब लोकि मुदित शिरनावा॥

फिर सब एक संग गंगा में जाकर बैठ गये। वहां एक सुन्दर शिवजी का मन्दिर था, सबने देखकर प्रसन्न होकर सिर नवाया।

छं०—शिर नाइ मुदिइ बिलोकि शिव मन्दिर सुहावन पावन।
कछु दिन रहे तहं सकल पुनि उठि चले सुनि अहिदावन॥
रावण पुरी ते दिशा प्राची कोश शत रस चलि गये।
बैठे जलधि महं पाइ थल वर शम्भु चरननि चित दये॥

शिवजी का मन्दिर परम सुन्दर पवित्र देखकर बहुत प्रसन्न हुए। कुछ दिन वहां रहकर फिर वहां से उठकर चले। हे गरुड़जी रावण की पुरी से पूर्व की ओर छः सौ कोस चले गये। वहां सुन्दर स्थान पाकर सागर के तट में बैठ भूतभावन शिवजी महाराज के चरणों का स्मरण करने लगे।

दो०—जानत नहिं उत्पत्ति निज, मन महं करत बिचार।
गे तेहि ढिग जाकर विदित, रविते छठवीं बार॥ ५॥

अपनी उत्पत्ति नहीं जानते, मन में विचार करने लगे, तब उनके पास वे गये, जो सूर्य से छठे (शक्र) अर्थात् शुक्राचार्य उनके निकट गये॥ ५॥

हरि अरि गुरु निज शिष्यन चीन्हा। करत प्रणाम आशिषा दीन्हा॥
कहि निज नाम सबनि समुझावा। कुल गुरु जाना बिनय सुनावा॥

दैत्यों के गुरु ने अपने शिष्यों को पहिचाना और उनके प्रणाम करने पर आशीर्वाद दिया, तब सब को शुक्र ने समझाया, उन्होंने कुलगुरु जानकर विनय की।

निज उत्पत्ति बूझी शिरनाई। भृगुनन्दन सो सकल सुनाई॥
सुनु आपन बृतान्त लजाने। लखि रुख भृगु नायक सनमाने॥

सिर नवाकर अपनी उत्पत्ति पूछी, शुक्राचार्य ने तब सब बात सुनाई। अपना वृतान्त सुनते ही सब लजा गये, यह उनकी चेष्टा देखकर शुक्र ने बड़ा सम्मान किया।

करि परितोष मन्त्र गुरु दीन्हा। शिक्षा पाइ गमन तिन कीन्हा॥
ज्ञान लहेउ सब संशय त्यागी। भे विरंचि पद तब अनुरागी॥

गुरु ने उनको संतोषित कर मन्त्र दिया, उन्होंने शिक्षा को प्राप्त कर वहां से गमन किया। सब सन्देह को त्यागकर ज्ञान को प्राप्त हो, ब्रह्मा के चरण-कमल की आराधना करने लगे।

निराहर बैठे इक आसन। वर्ष सहस तप किय उरगासन॥
श्वास धार कृत वर्ष हजारा। रहे ऊर्ध्वमुख बिना अहारा॥

निराहार से एकासन बैठे रहे, इस प्रकार हे गरुड़जी ! उन्होंने हजार वर्ष तप किया, फिर एक हजार वर्ष तक बिना भोजन किये ऊर्ध्वमुख खड़े रहकर श्वांस धारण कर लया ।

दो०–एक पाद पुहुमी दये, अपर अंग अनयास।
सकल पुष्ट तनु मन हरष, सपनेहुं भूख न प्यास॥ ६ ॥

एक चरण पृथ्वी में धारण कर सब अङ्ग अधर कर सब कोई शरीर से पुष्ट, मन से प्रसन्न होकर परिश्रम रहित तप करने लगे । स्वप्न में भी भूख-प्यास नहीं थी ।। ६ ।।

तप अति उग्र विचारि बिधाता। तिन ढिग गमने मुख मुसकाता॥
हंसारूढ़ कमण्डलु हाथे। श्वेत मुकुट शुचि चारिउ माथे॥

ब्रह्माजी बड़ी तपस्या विचार कर मन में मुस्कराकर उनके निकट आये । हंस पर चढ़े कमण्डल हाथ में चारों सिरों के ऊपर सफेद मुकुट धारण किये ।

आनन चारि नयन वसुनीके। चारिउ भाल भस्स सम टीके॥
उपमा मन प्रभु सब जग ऐना। भाखेउ दया सदन बर बैना॥

ब्रह्माजी के चार मुख, सुन्दर आठ आंखें हैं, चारों मस्तक पर भस्म का टीका लगाये थे । जगत में निवास करने वाले प्रभु को क्या उपमा दें ? दया के सागर यह वचन बोले ।

मांगहुं बर जो सब मन भावा। सुनेउ सबनि बिधि पद शिरनावा॥
नाथ चहत हम यह बरदाना। हमहिं न कोउ जीतै मैदाना॥

जो मन भावे सो वर मांगो । यह सुनकर ब्रह्माजी के चरणों में सिर झुकाया । हे नाथ ! हम यह वरदान चाहते हैं कि हमको कोई संग्राम में न जीत सके ।

एवमस्तु विधि कहेउ बिचारी। आन पाणि नहिं मृत्यु तुम्हारी॥
हरि सुत है तुम्हार गुरु भाई। तेहि सन करहु न कबहुं लराई॥

ब्रह्माजी ने विचार कर कहा ऐसा ही होगा और किसी के हाथ मृत्यु न होगी । सुग्रीव का पुत्र तुम्हारा गुरु भाई है, उससे कभी मत लड़ना ।

दो०–जो तेहि सन करि हउ समर, करि हउ बचन प्रमान।
एकहि कहं बरदान यह, दै कह कृपा निधान॥ ७ ॥

जो उससे युद्ध करोगे तो मारे जाओगे, यह मेरा वचन मानो । एक नारान्तक को ही ब्रह्माजी ने यह वरदान दिया ।। ७ ।।

दियउ नारान्तक कहं बरदाना। रहे अपर जे धरि उर ध्याना॥
तिन सन वरं ब्रूहि बिधि कहेउ। सुनत प्रमोद सबनि उर लहेउ॥

यह तो नारान्तक को वरदान दिया, परन्तु और जो ध्यान कर रहे थे, उनसे ब्रह्माजी ने कहा, वर मांगो । वे सुनकर सब आनन्दित हुए ।

सुनि बिधि गिरा सबनि कह स्वामी। देहु एक बार अन्तर्यामी॥
देवा सुर संग्रामहिं माहा। जीतह हम यह बर सुरनाहा॥

ब्रह्माजी की वाणी सुनकर वे सब बोले कि हे स्वामी आप अन्तर्यामी हो, एक यह वर दो । देवा-सुर संग्राम में हमारी हो जीत हो, यही वर मांगते हैं ।

असि कहि रहे दनुज शिरनाई। तिन सन कहेउ बिरंचि बुझाई॥
तुम अजीत सब सन सब भांति। बानर भालु त्यागि दुइ जाती॥

यह कह वे राक्षस सिर नवाकर खड़े हो गये, उनसे ब्रह्माजी समझाकर बोले कि तुम सब प्रकार सबसे अजीत रहोगे, केवल रीछ-वानर दो जातियों को छोडकर।

यहि बिधि सब कहं दै बरदाना। ब्रह्मलोक गे ब्रह्म सुजाना॥
बिधि ते लहिबर तिन सुख बाढ़ा। लागे करन बहुरि तप गाढ़ा॥

इस प्रकार सबको वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। ब्रह्माजी से वर प्राप्त कर वे सब बड़े प्रसन्न हुए और फिर बड़ा तप करने लगे।

दो०—गिरा गिरीश समेत सब, जपहि निरन्तर नाम।
जोरि युगल कर एक पद, निशि दिन आठों याम॥ ८॥

सब कोई हाथ जोड़कर एक चरण से खड़े होकर निरन्तर शिवजी महाराज का पार्वती सहित स्मरण करने लगे॥ ८॥

बिनु प्रयास ठाढ़े सब भाई। क्षुधा तृषा निद्रा बिसराई॥
गुण सहस्र संवत सब ऐसे। गये बीत प्रथमहिं तप जैसे॥

सब भाई बिना प्रयास क्षुधा भूख-प्यास त्याग कर खड़े हो गये। तीन हजार वर्ष उन्हें तपस्या करते बीत गये।

सबनि शीश पुनि अवनी दीन्हा। भयउ चरण ऊरध कहं कीन्हा॥
जोरे कर निरोध कर श्वासा। जपहि मन्त्र शंकर वर आसा॥

तब फिर सबने नीचे को सिर, ऊपर को पैर करके हाथ जोड़ और श्वांस रोक शिवजी का वर पाने की आशा से स्मरण किया।

मुनि गन तिनकर साधन देखी। मन महं मानत सकुच विशेषी॥
हरि इच्छा बल हृदय बिचारी। निरखि चले मुनि जपत पुरारी॥

मुनिजन उनका साधन देखकर मन में सकुच मानने लगे, तब नारायण की इच्छा का विचार कर भगवान को हृदय में जपते चले गये।

आयुत अब्द बीते खगनायक। भे प्रसन्न शिव जय सुखदायक॥
चढ़े वरद हिमसुता समेता। आये तिन तट कृपा निकेता॥

कागभुशुण्डिजी बोले हे गुरुजी! जब दस सहस्र वर्ष बीते, तब जनों के सुख देने वाले शिवजी प्रसन्न हो गये, तब बैल पर चढ़कर पार्वती सहित शिवजी महाराज आये।

दो०—बोले तिनहिं प्रशंसि शिव, मांगहु वर मन भाव।
नारान्तक करि दण्डवत, बोला सुन सुरराव॥ ९॥

उनकी प्रशंसा करके शिवजी बोले—जो तुम्हारे मन भावे, वही वर मांगों, तब नारान्तक दण्डवत कर बोला कि हे देवताओं के स्वामी! सुनो॥ ९॥

मैं तप कियेउ दरश तब लागी। नाथ दीन चित जन अनुरागी॥
अब मांगत आवत मोहिं लाजा। ठाढ़ रहा कहि निशिचर राजा॥

मैंने तुम्हारे दर्शनों के निमित्त तप किया है। हे नाथ! आप भक्तवत्सल हो और अब मुझे लाज आती है। यह कहकर निशिचर राजा खड़ा रह गया।

माgu सकुच तजि अस हर कहऊ। नारान्तक तव मांगत भयऊ॥
मोहिं विभव अस देहु गुसांई। भूस प्रजा नहिं परहुं लखाई॥

शिवजी बोले - तुम संकोच को त्याग कर वर मांगो, तब नारान्तक मांगने लगा। हे सदा-शिवजी! मुझे ऐसा ऐश्वर्य दीजिए, जो राजा-प्रजा में भेद विदित न हो।

पुर अनवास वसहि मम नाथा। यह कहि रहा जोरि युग हाथा॥
एवमस्तु कहि हर सुर ईशा। गमने भवन सहित बागीशा॥

मेरा नगर बिना परिश्रम हो बस जाय। यह कहकर वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। यह सुनकर 'एवमस्तु' कहकर शिवजी पार्वती सहित चले गये।

शिव प्रसाद नारान्तक पावा। अंतरिक्ष पुर सपदि बसावा॥
पुर बिहबावल की रुचिराई। कहत कछू इम तुमसन गाई॥

शिवजी की प्रसन्नता से, नारान्तक ने अन्तरिक्ष में अपना पुर बसाया। बिहबावलपुर उसका नाम रखा, उसकी शोभा हमसे कहते हैं।

दो०—ऋतु रबि दूने कोटि सो, भवन बसे इक ठौर।
जात रूप मय नग जटित, अति शोभित चहुं ओर॥ १०॥

बहत्तर करोड़ घर, एक ही समय में बसे। सुवर्ण के बने चारों ओर शोभित हो रहे थे ऋतु ६ रवि बारह-बारह को छः से गुणा करने से बहत्तर हुए अथवा दूने पाठ होने से एक सौ चवालीस करोड़ घर हुए॥ १०॥

योजन ढाई शत चकलाई। चौसठ कोस उतंग सुताई॥
दुर्गम दुर्ग जलधि चहुंफेरा। विस्मय बिश्वकर्मा सन घेरा॥

ढाई सौ योजन का घेरा, चौसट कोस का ऊंचा बड़ा कठिन दुर्ग बना हुआ था, जिसके देखते विश्वकर्मा को आश्चर्य होता था।

चारि दुवारि कुलिश पट रूरे। गढ़ भीतर चौहट निधि पूरे॥
बणिक पदम धनु तुच्छ बखाना। वन उपवन सरिता सर नाना॥

चारों दरवाजों में वज्र के किवाड़ थे, गढ़ के भीतर चौक धन से पूर्ण थे। बनिए सब कुबेर के समान बैठे हैं। जिनके पास एक पद्म धन था। वह वैश्य तो तुच्छ था। वन, बगीचे, नदी, सरोवर अनेक प्रकार के थे।

बसत प्रजा पुर सघन अपारा। नारान्तक गढ़ मध्य संभारा॥
षोड़स कोस कोट चहुं ओरा। मणि माणिक लागे नहिं थोरा॥

पुर में धनी अपार प्रजा बसने लगा, नारान्तक गढ़ का मध्य अर्थात नायक हुआ। सोलह कोस तक किले के चारों ओर कोट था। मणि और माणिक बहुत लगी थी।

यह गजरथ खच्चर समुदाई। कहि न जाय खग मृग बिपुलाई॥
कोटि बहत्तर एकै साथा। विद्या पढ़न लगे खग नाथा॥

हाथी, घोड़े, रथ, खच्चरादि खग-मृगों की अधिकता कही नहीं जाती थी। हे गरुड़जी ! वे बहत्तर करोड़ एक साथ ही विद्या पढ़ने लगे।

दोहा—हरि प्रेरित तेहि काल महं, दधि बल पहुंचा आय।
पुर बिहबावल निरखि सो, कछु दिन रहा लुभाय ॥ ११ ॥

हरि इच्छा से उस समय वहां दधिवल वानर पहुंच गया और बिहबावलपुर की शोभा देखकर कुछ दिन वहां रहा ॥ ११ ॥

भावी बश निशिचर संग कीशा। वर्ष एक पढ़ सुनहु मुनीशा ॥
गुरु एक बार कहेउ रिसि आई। हति हसि तैं आपन गुरुभाई ॥

हे मुनिराज ! होनहार के अधीन यह कीश राक्षसों के साथ एक वर्ष तक पढ़ते रहे। एक दिन इनके गुरु ने क्रोध से कहा मूर्ख, तू ही अपने गुरु भाई का हंसी में मारने वाला होगा।

बिनु अघ सुनि दधि बल गुरुशापा। बिदा मांगि गमना करि दापा ॥
मारग मिले देव ऋषि तेही। रहे सुकंठ सुवन पग नेही ॥

बिना अपराध दधि बल गुरु का शाप सुन बिना मांग वहां से चला आया। मार्ग में नारदजी मिले तब दधि बल जो सुग्रीब का पुत्र है नारद जी के चरण पकड़ दण्डवत करने लगा।

लखि आशिष दै बूझा तेही। दधि बल कवन कागजे जेही ॥
तब नारान्तक पुर प्रभुताई। दधि बल नारद मुनिहि सुनाई ॥

नारद जी ने आशीर्वाद दे पूछा, दधि बलि इस समय किस काज को कहां गये थे। दधि बल ने नारान्तक के प्रभु की प्रभुताई नारद मुनि को सुनाई।

सुनि निशाचर संपति भारी। रहे ब्रह्म सुत हृदय बिचारी ॥
छणक देव ऋषि कीन्ह गुमाना। बार बार सुमिरे भगवाना ॥

राक्षस की अधिक संपत्ति श्रवण कर नारद जी हृदय में विचारने लगे। क्षण मात्र विचार कर बार-बार भगवान का स्मरण किया।

दो०—दधि बल ते नारद कहेउ, सुनहु तात चितलाइ।
तनु धरि जेहि भक्ति नहिं, जन्म बादि जग जाइ ॥ १२ ॥

दधि बल से नारदजी बोले पुत्र ! मन लगाकर सुनो जो शरीर पाकर नारायण के भक्त नहीं हुए उनका जन्म वृथा गया ॥ १२ ॥

यह विचारि भजु रामहिं ताता। उपजेउ सुनत ज्ञान मुनि बाता ॥
ऋषि पद परशि आशिषा पाई। कपि पति सुत गमनेउ हर्षाई ॥

हे तात ! यह विचार कर रघुनाथ जी का स्मरण करो, यह सुन दधि बल को ज्ञान हुआ। ऋषि के चरणों को स्पर्श कर आशीर्वाद पाकर दधिबल प्रसन्न हो गया।

सपदि कीश तब पहुंचा जहंवा। पय निधि मध्य रुचिर गिरि तहंवा ॥
धवला गिरि तेहि नाम सुहावा। सुभग देखि करि वर मन भावा ॥

तब दधिबल वहां आया, जहां सागर के बीच में धौलगिरि पर्वत हैं। धौलगिरि नाम का पर्वत देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ।

गौरि गिरीश सुमिर गणराई। कीन्ह निवास बैठ हर्षाई॥
नारद ताहि देइ उपदेशा। गये बिरंचि के धाम खगेशा॥

शिवजी पर्वती गणेशजी को स्मरण कर वहां निवास करने लगा और नारदजी उपदेश देकर ब्रह्मलोक को चले गये।

उत दश मुख सुत विद्या पाई। जहां तहां की बिबिध लराईं॥
बिंदु नाम इक निशिचर ग्राहा। सो खल रहा वितल थल माहा॥

उधर नारान्तक ने विद्या पढ़कर जहां-तहां अनेक लड़ाई लड़ी। बिन्दु नाम का एक राक्षस वितल में रहता था।

सो०—अति रणधीर जुझार, चढ़े चक्र पर बलि विपुल।
कीन्हेउ समर अपार, शब्द एक श्रुति सन्त कह॥ १॥

यह बड़ा रणधीर युद्ध करने वाला था। एक समय इन्द्र पर चढ़ गया था और एक वर्ष तक युद्ध करता रहा, ऐसा सन्त लोग कहते हैं॥ १॥

सप्त कोटि निशिचर संग ताके। आसत मेरु सम खल भट बांके॥
सुनासीर कोपेउ इक बारा। सब कहं समर मध्य संहारा॥

सात करोड़ राक्षस उसके साथ थे, काले पर्वत के समान अति बांके योद्धा थे। एक समय इन्द्र ने महाकोप कर सबका युद्ध में संहार कर दिया।

भाजि बिन्दु केवल गृहे गयऊ। तासु नारि निशचर सुख दयऊ॥
सब निशि भोग करा खल पापी। उपजे वहु बालक परतापी॥

बिन्दु भागकर अपने घर आया, उसकी स्त्री ने उस समय उसे सुख दिया। उस पापी ने सारी रात उसके साथ भोग किया, जिससे अनेक दुःखदायक बालक पैदा हुए।

सप्त कोटि सुत नाना नामा। सुन्दर वक्र सकल बल धामा॥
कोटि बहत्तर तनया जाके। लाजहिं मृग लोचनि लखि ताके॥

सात करोड़ पुत्र, अपने नाम से सुन्दर खल सब ही बलवान थे। बहत्तर करोड़ उसके कन्याएं थीं, जिन्हें देखकर मृगियों के नेत्र लज्जा जाते थे, यह सभी उसके राज्य के थे। सबको अपनी कन्यावत पालता था, इस कारण उसकी कन्या कहलाती थीं।

तिन महं बिंदुमती इक सुन्दर। नभ चारिणि रति रूप निरंतरि॥
निरखि बिंदु निज मन अनुमाना। नहिं नारान्तक सम कोउ आना॥

उनमें बिन्दुमती इसकी कन्या बड़ी सुन्दर थी, जिसका रूप देव बालाओं से अधिक सुन्दर था। उसने अपने मन में विचार किया कि नारान्तक के समान कोई बलवान नहीं है।

दो०—यह विचार चित बिंदु तब, नारन्ताकहि बुलाय।
बिंदुमती आदिक सुता, सुन्दर साज सजाय॥ १३॥

यह विचार कर तब बिन्दु ने नारान्तक को बुलाकर बिन्दुमती आदि सभी बालाओं को सजाकर दुलहिन बनाया ॥ १३ ॥

सकल सुता इक संग बिबाही। यथा योग्य जेहि कहं जस चाही ॥
नारान्तक सब सेन सभेता। करि विवाह फिर गयउ निकेता ॥

नारान्तक के सब साथियों को ये सभी कन्याएं ब्याह दीं, जो जिसके यथायोग्य थीं। नारान्तक सब सेना समेत ब्याह कर अपने घर चला आया।

पुर बिहबावल कीन्हे बसेरा। प्रजा सहित सुख करत घनेरा ॥
जो तिय चहिय विबुध गृह भाई। सो भावी बश निशिचर पाई ॥

बिहबावलपुर में आकर राज्य करने लगा, प्रजा समेत आनन्द करने लगा। जो स्त्रियां देवताओं के घर में जाना चाहती थीं, वह राक्षसों के यहां प्रारब्ध से आई।

नारि पतिव्रता जेहि घर माहीं। तेहि प्रताप नित अमर डराहीं ॥
बिन्दुमती विद्या सम ताता। बुधजन सभा चरित बिख्याता ॥

जिसके घर में पतिव्रता स्त्री होती हैं, उसके प्रताप से देवता डरते हैं। हे गरुड़जी! जिसमें बिन्दुमती तो सरस्वती के समान थी, बुद्धिमानों की सभा में उसके गुण की बड़ाई थी।

नारान्तक उत्पति मैं गावा। सुनु खगेश पुनि चरित सुहावा ॥
पुनि पुनि हरि हर पद शिरनाई। गुरु सन सुनेउ सो कहउं बुझाई ॥

हे गरुड़जी! यह नारान्तक की उत्पत्ति की कथा मैंने सुनाई, अब तुम आगे का चरित्र सुनो! भगवान को सिर झुकाकर गुरु से जैसा है, वही सुनाता हूं।

दो०—चारण दशमुख को तुरत, चलि पहुंच जाय।
ग्रामान्तर योजन युगल, ठाढ़ भयउ हरषाय ॥ १४ ॥

इधर रावण का दूत मार्ग से चलकर बिहबावलपुर में आ पहुंचा। आठ कोस जब नगर रहा, तब वहां प्रसन्न होकर खड़ा हुआ ॥ १४ ॥

तेहि मारुत दिशि कानन भारी। परण लेत देखेउ तहं बारी ॥
सकुचि समीप जाइ भा ठाढ़ा। पूछेसि ताहि धीर धरि गाढ़ा ॥

वहां वायव्य दिशा में एक भारी वन था, वहां एक बारी पत्तों को तोड़ रहा था, उसे इसने देखा, धूमकेतु उसके पास जाकर सकुचाकर खड़ा हुआ और बड़े धीरज से पूछने लगा।

कवन रीति यहि पुर महं माई। तरु पर चढ़त भूप सुत आई ॥
चार वचन सुनि सो मुसुकाना। कवन नगर तुम बसत अयाना ॥

इस पुर में यह क्या रीति है, जो राजकुमार होकर पेड़ों पर चढ़कर पत्ते तोड़ते हैं। दूत के वचन सुनकर वह वीर मुस्कराकर बोला अरे मूर्ख! तुम कौन से गांव में रहते हो?

नारान्तक नृप कर जो वारी। तेहि कर सेवक मैं लघु चारी ॥
धूम केतु तेहि उतर न दीन्हा। कछु डरि पुनि निज मारग लीन्हा ॥

जो यहां के राजा नारान्तक का बारी है, उसका मैं छोटा नौकर हूं। धूमकेतु ने जब यह वचन सुन उसे कुछ उत्तर न दिया और डरकर अपना मार्ग लिया।

लिये कनक घट सुषमा पूरी। बारि लेन आइ तिय रूरी॥
देखि भयउ तेहि संशय भारी। पूछय सत्य कहहु सुकुमारी॥

उस समय सोने का घड़ा कर में लिए एक स्त्री जल लेने को आई। धूमकेतु को बड़ा संदेह हुआ और उसके निकट आकर पूछा, हे कुमारी सत्य कहना।

दो०—तुम्हरे पुर कह चेरि नहिं रानी कहहु सुभाव।
आइउ तुम जल भरन कह, बोलेउ त्याग डराव॥ १५॥

रानीजी! क्या तुम्हारे पुर में कोई चेरी नहीं है, जो तुम अपने आप जल लेने आई हो, अथवा कोई और कारण है। भय त्याग कर अपना भेद कहो॥ १५॥

दूत वचन सुनि निशिचर चेरी। बोली हंसि कर एकहि बेरी॥
नारान्तक दासिन की दासी। हम ताकी दासी विश्वासी॥

दूत के वचन सुन हंसकर चेरी तत्काल ही बोली नारान्तक दासियों की दासी की मैं विश्वासी बासी हूं।

सदा भरउं यहि सागर पानी। इत आवहिं केहि कारण रानी॥
कहिहउ और काहु अस बाता। पैहहु मार मुष्टिका लाता॥

सदा इस सागर में जल भरने आती हूं। भला यहां रानी काहे को आवेंगी, जो और किसी से ऐसी बात कहोगे तो घूंसे और लातों की मार खाओगे।

अस काहि गमनी लै जल नारी। तिन संग धूम्र केतु पग धारी॥
गढ़ भीतर कीन्हेसि पैसारी। निरखे बिपुल कूप सर धारी॥

यह कहकर वह गागर लेकर चली, उसके पीछे-पीछे धूमकेतु भी चला। जब नगर के अन्दर गया तो अनेक कुएं और सरोवर देखे।

नाना राजरथ खच्चर घोरा। फिरत विलकात पुर चहुं ओरा॥
अन्तर गढ़ तेहि चार दुवारा। तहां न चर पावहिं पैसारा॥

अनेक रथ खच्चर, घोड़े फिर रहे हैं और नगर पुर वेखते फिर रहे हैं। राज-मार्ग के भीतर जाने के लिए भी चार द्वार हैं, वहां चर का प्रवेश नहीं हुआ।

छं०—पावत नहिं पैसार चर गति द्वार लगि फिर आयऊ।
यहि भांति रावन दूत घटिका युगल दिवस गंवायऊ॥
मन महं विसूरत ठढ़ चौहट मध्य सो जब रहि गयो।
निशिचर निकन्दन होन लागी विधि ताहियक अवसर दयो॥ २॥

द्वार पर जाकर फिर आता है, परन्तु प्रवेश नहीं पाता, इस प्रकार धूमकेतु ने दो घड़ी तक खड़े खड़े व्यतीत कर दी। चौक में खड़ा होकर विचार करने लगा, उसी खोटे समय में उसे दो राक्षसों के नाश होने निमित्त एक अवसर प्रारब्धवश होकर मिल गया॥ २॥

सो०—गमनेउ भूपति द्वार, नृत्य करन इक कौतुकी।
लीन्ह धार तेहि मार, गढ़ इमि कीन्ह प्रवेश चर॥ २॥

एक नट साज सामान से नारान्तक के यहां नृत्य करने को चला, उसी के साथ में दूत ने भी नट का वेष रखकर प्रस्थान किया ॥ २ ॥

बैठेउ सभा नारान्तक जाई। कोटि बहत्तर संयुत भाई ॥
ब्योम तीन रस गुण बहु एकां। अंक रीति लिखि गुणी विवेका ॥

सभा में नारान्तक बैठा। वे एक साथ जन्मे भाई विद्यमान भी थे, अर्थात सहायकारी थे। अठारह लाख छत्तीस हजार (१८३६९००) अंक की संख्या जितनी है।

बन्दी जन नट कौतुक करहीं। प्रति दिन कवि कोविद उच्चरहीं ॥
रावण दूत सजा में देखी। मन महं चकत भयो बिशेखी ॥

भाट विदूषक उसकी सभा में तमाशा करते, प्रतिदिन कवि, पण्डित उसका यश बखानते थे, यह अद्भुत व्यापार देखकर दशकंधर का दूत चकित हुआ।

तब चारण मन अस अनुमाना। कोटि बहत्तर रूप न आना ॥
भाषण बसन सुआसन जोहा। देखि सुखद चारण मन मोहा ॥

तब दूत ने अपने मन में विचार किया कि बहत्तर करोड़ एक ही समान हैं। वस्त्र, गहने, बातचीत, बैठक एक-सी हैं, यह देखकर दूत का मन मोहित हो गया।

याम दिवस गत अवसर पावा। नारान्तक कह शीश नवावा ॥
दीन्ह पत्रिका पद शिर नाई। कुशल तासु बूझी हर्षाई ॥

जब दोपहर दिन चढ़े समय पाया, तब नारान्तक को सिर झुकाया। चरणों में सिर झुकाकर रावण की पत्रिका दी और उसकी कुशल पूछी।

दो०—नारान्तक निज कुशल कहि, बूझी दशमुख हेतु।
समाचार गढ़ लङ्कर, बरणेउ दूत सचेतु ॥ १६ ॥

नारान्तक ने अपनी कुशल कहकर रावण की कुशल पूछी, तब दूत ने लंकापुरी के सब समाचार सुनाये ॥ १६ ॥

चर भाषित नारान्तक सुनेऊ। त्तणक माहिं निज कारण गुनेऊ ॥
पुनि पत्री निशिचर पति बांची। मानी चार बात सब सांची ॥

दूत की बात सुनकर नारान्तक ने क्षण-मात्र अपने मन में कारण को विचार किया। फिर पत्रिका खोलकर पढ़ा तो दूत की सारी बात सत्य जानी।

उठेउ सभाते हृदय रिसाई। गा निज भवन शोच सरसाई ॥
बिंदुमती कहं बांच सुनाई। पितु पर भीर पत्रिका आई ॥

हृदय में क्रोधकर सभा से उठा और सोचता हुआ अपने घर गया। सब बात बिन्दुमती को सुनाकर कहा कि पिता पर विपत्ति पड़ी है और मुझे सेना सहित बुलाया है।

समाचार सुन कहं तेइ नारी। तुम जनि करहु रामसन रारी ॥
गहहु चरण पिय अकसर जाई। रसन सफल करि विनय सुनाई ॥

सब समाचार सुनकर उसकी नारी बोली—तुम रघुनाथजी से लड़ाई मत करो। स्वामी जानकर उनके चरण पकड़कर और विनय सुनाकर अपनी जिह्वा सफल करो।

माागि भक्ति बर प्रेम दृढ़ाई। निर्भय राज्य करहु गृह आई॥
नारि बचन तेहि मनहिं न भावा। तब उठि कोटि द्वार खल आवा॥

रामजी से भक्ति वर मांगकर प्रेम दृढ़ करके अपने घर आकर निर्भय राज्य करो, पर स्त्री के वचन उसके मन में नहीं भाये और तब उठकर वह दुष्ट किले के द्वार पर आया।

दो०—कहेउ बजाव निशान घन, सजहु सेन चतुरंग।
जन्म भूमि जावा चहहु, पितु चारण के संग॥ १७॥

आज्ञा दी कि घन निशान बजाओ और चार प्रकार की सेना को सजाओ। मैं पिता के दूत के साथ जन्म-भूमि में जाना चाहता हूं॥ १७॥

आयसु दीन्ह नारान्तक राजा। लगे निशाचर सजन समाजा॥
आमत बाजि गज उष्टर नाना। रथ खच्चर खेचर बहु याना॥

नारान्तक राजा की आज्ञा पाकर राक्षस चलने का सामान सजाने लगे, अनेक घोड़े, ऊंट, रथ, खच्चर और आकाश विमान।

नाना अस्त्र शस्त्र गहि पानी। निशिचर अनी न जाइ बखानी॥
ते सब संयुत साज सजाई। बिबिध निशान हने हरषाई॥

अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण किये, राक्षसों की सेना बखानी नहीं जाती। इस प्रकार सब साज सजाकर प्रसन्न होकर निशान बजाये।

कन्त जात निश्चय जिय जानी। बिंदुमती निज चित अनुमानी॥
राम विरोध न यहि कल्पाना। महूं संग अब करहुं पयाना॥

स्वामी का जाना निश्चय जानकर बिन्दुमती ने विचारा कि रघुनाथजी से बैर करने से स्वामी का भला न होगा, मैं भी अब साथ चलूंगी।

भूषण बसन सुअंग बनाई। कंत चरंथ गहि बिनय सुनाई॥
सासु श्वसुर दर्शन हित नाथा। हमहूं चलब प्राण पति साथा॥

अनेक प्रकार के गहने, वस्त्र से अंग सजाकर स्वामी के चरण पकड़कर विनय करने लगी। हे स्वामी! सास-ससुर के दर्शन निमित्त मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

दो०—दशमुख सुत सुनि तिय बचन, हृदय परम सुख मानि।
कहेउ चलहु सब सखिन सह, प्रमुदित छांड़ि ग्लानि॥ १८॥

नारान्तक स्त्री के वचन सुनकर मन में बहुत सुख मानकर बोला कि सब संकोच को छोड़कर तुम सब सखियों के समेत हमारे साथ चलो॥ १८॥

सुनि पति बचन नारि हरषानी। चली संग लै सखी सयानी॥
लै दल नारान्तक पग धारा। अमित सेन को कहि सक पारा॥

पति के वचन सुनकर नारी प्रसन्न हुई और सखियों को साथ ले चली। सेना लेकर नारान्तक चला, अपार सेना थी, कौन उसका वर्णन कर सकता है।

बुधजन कहत सुनहु खग राजा। अयुत सतावन बाजत बाजा॥
धूम्रकेतु कह ढिग संग लीन्हें। अति आतुर गमना रिस कीन्हें॥

कागभुशुण्डिजी बोले—हे गरुड़जी ! सुनो, ऐसा कहते हैं कि उसकी सेना में पांच लाख सत्तर हजार बाजे बजते थे। धूमकेतु को साथ लिए क्रोध कर शीघ्रता से लंकापुरी को चला।

चलत सकुन खल ताहि न होई। गनइ न मृत्यु विवश शठ सोई॥
तासु पयान जानि दिगपाला। जिय महं संशय करत बिशाला॥

चलते समय अशकुन होते हैं, परन्तु मृत्यु के वशीभूत होकर कुछ नहीं गिनता था। दिग्पाल उसका पयान आनकर मन में बड़ा संदेह करने लगे।

कोल कूर्म अहिपति अति डरहीं। पुनि पुनि राम चरण चित धरहीं॥
समुझि राम बल संशय त्यागी। सुर विशेष प्रभु पद अनुरागी॥

वराह, कच्छप, शेषजी भय पाते हैं, बराबर रामजी के चरणों में चित्त रखते हैं, फिर देवता रघुनाथजी का बल समझ संशय त्याग और प्रभु के चरणों में प्रीति कर धीरज धारण करने लगे।

दो०—नारान्तक लंका तुरत, दल समेत नियराय।
दिग योजन दल रहेउ जब, सुनु मुनीश सज्ञान॥ १९॥

नारान्तक लंकापुरी के निकट दल समेत आया, जब चालीस कोस दल रह गया, तब मुनिराज ! जो कुछ हुआ सो सुनो॥ १९॥

इहां कृपालु रमेश खरारी। अति जलद तम सेन निहारी॥
प्रभु सर्वज्ञ नीति हित हेतू। सचिव बोलि कह रघुकुल केतू॥

यहां कृपासागर लक्ष्मीपति रामजी ने काले बादल के समान वह सेना निहारी। यद्यपि प्रभु सर्वज्ञ हैं, परन्तु नीति की मर्यादा पालने के निमित्त मन्त्रियों को बुलाकर पूछने लगे।

सखा बिलोकहु दक्षिण ओरा। गर्जत घन आवत नहिं थोरा॥
उमा राम सब अन्तर्यामी। चरित हेतु पूछेउ अस स्वामी॥

हे सखा ! दक्षिण ओर को देखो तो बादल गरजता आता है। शिवजी बोले हे पार्वती ! रघुनाथजी सबके अन्तर की जानते हैं, लेकिन यह वार्ता कौतुक के निमित्त स्वामी ने पूछी।

राम वचन सुनि दसमुख भ्राता। कह हंसि गहि प्रभुपद जल जाता॥
देव देव नहीं दल जल वाहा। अहहि नारान्तक निशिचर नाहा॥

रामजी के वचन सुनकर विभीषणजी हंसकर चरण-कमल पकड़कर बोले हे स्वामी ! यह बादलों का दल नहीं है। यह नारान्तक राक्षसों का राजा है।

बिहावलपुर बसत गुसांईं। पठवा तेहि दशकन्ध बुलाई॥
आवत धूम्रकेतु चर संगा। करत कुलाहल नाद उतंगा॥

यह भी रावण का एक पुत्र बिहबावलपुर में रहता है, इसे रावण ने बुला भेजा है। धूम्रकेतु दूत के साथ अनेक कोलाहल और उच्च शब्द करता आता है।

दो०–तेहि संग गुणी अनेक प्रभु, गावत हनत निशान।
सेन संगचतुरंग खल, डोलत विविध दिशान॥ २०॥

हे स्वामी ! उसके संग अनेक गुणी हैं, जो गाते और बजाते हैं। यह दुष्ट हाथी, घोड़े, पैदल सेना लिए हुए अनेक दिशाओं में फिरता है॥ २०॥

यह प्रभाव तेहि सुनि भगवाना। बिहंसे प्रभु बल बुद्धि निधाना॥
पाइ राम रुख पवन कुमारा। उठे हरषि हिय गरजि प्रचारा॥

यह उसका प्रभाव सुनकर बल, बुद्धिनिधान भगवान हंसे। पुन रघुनाथजी की आज्ञा पाकर हनुमानजी हृदय में गरज उठे।

सहित लखन प्रभुपद सिर नाई। धाये कहि जय जय रघुराई॥
बात जात निशिचर समुदाई। देखि सपदि ढिग पहुंचे जाई॥

लक्ष्मणजी सहित रघुनाथजी के चरणों में सिर झुकाकर रघुनाथजी की जय-जयकार कर महावीर दौड़े। महावीरजी राक्षसों के निकट बहुत शीघ्र जा पहुंचे।

कटकटाइ गरजे अति भारा। देखेउ तेहि आवत बनचारी॥
पूछेउ दूतहि निशिचर त्राता। यह आवत धावत को भ्राता॥

कटकटा कर बड़े वेग से उसके निकट गरजे, उसने महावीरजी को वेग से आते देखकर दूत से पूछा, हे तात ! यह कौन दौड़ा आता है।

स्वर्ण शैल बिकराल शरीरा। गर्जत प्रलय जलद सम बीरा॥
तब नारान्तक सन कह दूता। यहै पवन सुत बली अकूता॥

सोने के पर्वत के समान जिसका भयंकर शरीर प्रलयकाल के बादल के समान जो यह गरजता है, तब धुमकेतु ने नारान्तक से कहा कि यही महावीर बड़ा बली है।

दो०–सिन्धु लांघि लंकहि दहेसि, पुनि हति अक्षकुमार।
कालनेमि कहं मार मग, लावा मेरु उपार॥ २१॥

इसी ने सागर लांघकर लंकापुरी जलाई, इसी ने अक्षय कुमार को मारा। यही कालनेमि को मार्ग में मार द्रोणाचल उखाड़ लाया॥ २१॥

पुनि अहिरावण सह परिवारा। पैठि पताल सदल संहारा॥
ले आवा तापस दोउ भाई। आवत अब तव ढिग सोइ धाई॥

फिर इसी ने पाताल में जाकर अहिरावण के कुल का नाश किया। वहां से दोनों तपस्वी भाइयों को ले आया। अब तुम्हारे पास दौड़ा हुआ आ रहा है।

यहिकर भुजबल अहै अपारा। सुनि रिसान दशकंठ कुमारा॥
चाप चढ़ाइ सुधा रोष बाना। तजन न पाव गहेउ हनुमाना॥

इसकी भुजाओं का बल अपार है। यह सुनकर नारान्तक बड़ा क्रोधित हुआ। धनुष चढ़ाकर बाण चढ़ाया और छोड़ने नहीं पाया कि बीच में ही महावीरजी ने पकड़ लिया।

सो सर धनुष तोरि कपि डारा। पुनि रिसाय उर मुष्टिक मारा॥
परा दशानन सुत महि कैसें। मिश्र रसातल गे गिरि जैसे॥

महावीरजी ने वह धनुष बाण तोड़ डाला और फिर क्रोध कर हृदय में एक घूंसा मारा। नारान्तक उस घूंसे से ऐसे पृथ्वी में गिर पड़ा जैसे मिश्र नाम का पर्वत आकाश से गिरकर रसातल में चला गया था।

पवन पूत बल लूम पसारा। काठिन रथ गहि तापर डारा॥
रथ सारथी चूर्ण सम भयऊ। विधिवश तेहिकर प्राण न गयऊ॥

महावीरजी ने अपनी पूंछ बढ़ा लपेट कर कठिन रथ रखकर उसके ऊपर डाल दिया। रथ सारथी सभी चूर्ण हो गये पर वरदान के कारण उसके प्राण नहीं निकले।

दो०–एक दण्ड अति विकल खल, रह भूतल धुनि माथ।
पुनि शठ उठा संभारि तनु, धायउ धनु ध.र हाथ॥ २२॥

वह दुष्ट एक घड़ी तक माथा धुनता, पृथ्वी पर पड़ा रहा, फिर संभलकर उठा तो वह धनुष हाथ में लेकर दौड़ा।

छांड़ेसि अगणित सायक कोपी। क्षण एक कीश कटक गा तोपी॥
राम प्रताप प्रभंजन जाया। कर गहि अरि शर तोरि बहाया॥

अनगिनत बाण क्रोध करके छोड़े, जिसमें एक क्षण तो वानरों का कटक छिप गया। रघुनाथजी के प्रताप से महावीरजी ने शत्रु के सभी बाण तोड़ डाले।

देखि पवन सुत की प्रभुताई। वर्षय सुमन बिबुध झर लाई॥
जय जय पिंग अक्ष सुर भाखा। सुनि दशकन्ध तनय मन माखा॥

महावीरजी का प्रताप देख देवता फूलों की वर्षा करने लगे। हे पिंगाक्ष पीली आंख वाले! आपकी जय हो! यह देवताओं ने कहा, जिसे सुनकर नारान्तक को बड़ा क्रोध हुआ।

नारान्तक अति हृदय रिसाई। कपि तट पहुंचा आतुर धाई॥
यह भल कीश जो कछु बल धरहू। मोसन मल्ल युद्ध रण करहू॥

नारान्तक हृदय में बहुत क्रोध कर हनुमानजी के निकट शीघ्रता से पहुंचा और बोला –हे वानर! जो तुझमें कुछ बल है तो मुझसे मल्ल युद्ध कर।

गावहिं बिबुध तोर भुज जोरा। निज उर सह इक मुष्टिक मोरा॥
लागत ठाढ़ रहै जो वानर। तो जानहुं तब भुजबल आगर॥

देवता तेरी भुजाओं का बल गाते हैं, एक मेरा घूंसा अपनी छाती में सहे तो मैं जानूं।

सो०–हरि सुनि ताकर बात, रामदूत रिस रोकि उर।
अति सभीत मुसुकात, क्षणक ठाढ़ सम्मुख रहेउ॥ ३॥

महावीरजी उसकी बात सुनकर हृदय में क्रोध रोककर उसके निकट बहुत मुस्कराते हुए क्षण-मात्र सम्मुख खड़े रहे॥ ३॥

तब तेहि कपि कहं मुष्टिका मारा। भये तड़ित सम सब अपारा॥
टरा न तहं ते पग हनुमाना। हृदय न निशिचर नेकु लजाना॥

जिस समय उसने महावीरजी को घूंसा मारा, बिजली के समान शब्द हुआ, परन्तु महावीरजी का पग वहां से नहीं टला और वह राक्षस हृदय में तनिक भी नहीं लज्जाया।

दुइ मुष्टिक तेहि फेरि चलावा। तब मारुत सुत कोह बढ़ावा॥
किलकिलाय लंगूर लपेटा। डारि भूमि तिन दीन्ह चपेटा॥

उसने दो घूंसे और मारे, तब तो महावीरजी को क्रोध आ गया। बड़े किलकिलाहट शब्द कर उसे लंगूर में लपेट दिया, पृथ्वी में डालकर चपेटा दिया।

बिकल ताहि करि कपि अति गाजे। भै ब्याकुल निशिचर बहु भाजे॥
कोन्टि निशिचर कपि कर गहहीं। राम दूत कर कोतुक अहहीं॥

उसे व्याकुल कर हनुमानजी बहुत गरजे, राक्षस डर के मारे भागने लगे। हनुमानजी ने करोड़ों राक्षस पकड़-पकड़कर मार डाले, रघुनाथजी के दूत ने यह कौतुक किये।

मर्दि मर्दि बहु बारिधि डारे। देखि देव जय जयति पुकारे॥
एक दंड गत निशिचर जागा। बहु बिधि समर करन सो लागा॥

राक्षसों की हड्डी पसली तोड़ सागर में डाल दिया, सो देवता देखकर जय-जयकार करने लगे एक घड़ी के पीछे नारान्तक जागकर अनेक प्रकार से युद्ध करने लगा।

छं०—लागेउ करन पुनि समर बहु बिधि निज सुभट बहु फेरि कै।
खस कोटि कोटि प्रचण्ड सायक कपिहि रण महं घेरिकै॥
रण रंग रंजित वीर मारुत पूत पुनि पुनि गर्जहीं।
गहि गहि बिपुल दनुजन पछारत उर बिदारत तर्जहीं॥ ३॥

अनेक योद्धाओं को फेरकर अनेक प्रकार से युद्ध करने लगा और महावीरजी को घेर करोड़ों बाण बड़े तीक्ष्ण प्रहार करने लगा। लड़ाई के रंग में रंगे महावीर पवन कुमार बार-बार गरजते हैं। राक्षसों को पकड़-पकड़कर पछाड़ते और हृदय बिदारते हैं॥ ३॥

दो०—सघन वाहिनी जलद वन, जिमि करि कृत उतपात।
रिपुन हनत तिमि वायु सुत, बिनु श्रम प्रमुदित गात॥ २३॥

वह घनी सेना कमल-वन है, उसमें जैसे हाथी उत्पात करता, तद्वंत महावीरजी बिना थके प्रसन्न होकर शत्रुओं का संहार करते हैं॥ २३॥

करत समर आयउ तेहि ठामा। जहं नित होत रहा संग्रामा॥
लरत अकेला तहां हनुमाना। धायउ बालि तनय बलवाना॥

युद्ध करते-करते वहां आये, जहां नित्य संग्राम होता था। महावीरजी को अकेला युद्ध करते देख कर बलधाम अङ्गदजी भी दौड़े।

ता पाछे कपि चमू अपारा। चले कहत जय कृपा अगारा॥
लीन्हे गिरवर तरु पाषाना। जहं तहं करन लगे संग्रामा॥

उनके पीछे और भी वानरों की अपार सेना रघुनाथजी की जय-जय शब्द उच्चारता हुई चली, हाथ में पर्वत, वृक्ष, पत्थर आदि लिये हुए जहां-तहां मार-मारकर मैदान करने लगे।

अंगद आइ पवन सुत पाहा। कहि जय रघुबर नस द्विज नाहा॥
दोऊ भट एक संग करि हूहा। हतन लगे अरिसेन समूहा॥

हे महाराज ! उसी समय महावीरजी के पास आ करके अङ्गदजी जय रामजी की बोले और वो महायोद्धा एक संग हू-हू करके शत्रुओं को मारने लगे।

देखत भालु कीश कृत मारी। भागि चले निशिचर भय भारी॥
देखि अनी निज त्रसित बहूता। भा अति कुपित दशानन पूता॥

रीछ और वानरों के भयंकर कर्म देखकर राक्षस भय से भाग चले। तब अपनी सेना की व्याकुलता देखकर रावण-पुत्र बहुत क्रोधित हुआ और बोला क्यों भागते हो ?

छन्द—अति कुपित भा दशमुख सुवन निज भटन शपथ दिवाइकै।
फेरेउ सबनि कर कोप बोला जात कहां पराइकै॥
विधि दीन्ह बिबिध अहार कपि दल खात कसन अघाइकै।
बिनु भालु कपि महि करहु पुनि हठ धरहु तापस धाइकै॥ ४॥

तब नारान्तक ने महाक्रोध कर अपने योद्धाओं को सौगन्ध दिलाकर फेरा और महाक्रोध कर कहने लगा कि कहां भागे जाते हो। यह वानरों का तो विधाता ने हमको भोजन दिया है, सो पेट भरकर क्यों नहीं खाते हो। देखो ! तुम यह पृथ्वी रीछ वानरों से रहित कर दो और उन दोनों तपस्वियों को पकड़ लो॥ ४॥

दोहा—सुनि नारान्तक सरुष बच, रजनीचर समुदाय।
लागे करन सकोप सब, माया करट कुभाय॥ २४॥

यह नारान्तक के वचन सुनकर सब राक्षस महा क्रोध कर युद्ध करने लगे और अपनी माया विस्तार करने लगे।

माया तिमिर पसार अपारा। अस्त्र शस्त्र बहु भांति प्रहारा॥
शक्ति शूल वर त्रिशिष कराला। डारहिं रज तरु शैल विशाला॥

माया का अपार अन्धेरा कर दिया, उस समय अनेक अस्त्र प्रहार करने लगे। शक्ति, त्रिशूल, बहुत तीक्षण कराल और धुरि तथा बड़े-बड़े वृक्षों की वर्षा करने लगे।

गिरत ऋच्छ पति लागत सायक। उठहिं बहुरि कहि जय रघुनायक॥
निजदल बिकल बिलोकि खरारी। सत्य सिन्धु एक शर संचारी॥

बाण लगते ही रीछ और वानर गिरते हैं, परन्तु फिर उठकर रामजी की जय-जयकार करते हैं। सत्य सागर रामजी ने अपना दल व्याकुल देखकर एक बाण छोड़ा।

रिपु शर काटि तिमिर कर दूरी। प्रभु शर हते निशाचर भूरी॥
हरि निषंग महं पुनि सो तीरा। प्रविशे आइ सुनहु मति धीरा॥

जिसने शत्रुओं को मारा काटकर सब अन्धकार दूर कर दिया और अनेक राक्षसों का संहार कर दिया, फिर वह बाण रघुनाथजी के तरकस में आकर प्रवेश कर गया।

निरखि प्रकाश भालु अरु कीशा। गहिगिरि तरु कहि जय जगदीशा॥
निशिचर अनी मध्य गे जबहीं। दिये डारि गिरि रज तरु तबहीं॥

तब रीछ और वानर यह देखकर पर्वत वृक्ष उठा रघुनाथजी की जय-जय उच्चारण करके दौड़े, ज्योंही राक्षसों की सेना के बीच में पहुंचे, वह वृक्ष, शिला, धूल उन पर डालते थे।

दोहा—मरे तमीचर कोटि षट, जानि निशा परिवेश।
दल युत अंगद पवन सुत, चले जहां अवधेश ॥ २५ ॥

जब छ करोड़ राक्षस मर चुके, रात होने को आई, तब अङ्गदजी और महावीरजी सेना सहित रघुनाथजी के पास आये ॥ २५ ॥

अंगद हनुमदादि कपि भालू। आये जहं रघुबीर कृपालू ॥
प्रभुहिं बिलोकि चरण शिर धरे। भे श्रम रहित सकल सुख भरे ॥

अङ्गद हनुमानजी आदि रीछ-वानर कृपा सागर रामजी के पास आये। प्रभु को देख चरणों में सिर रखा और सब सुख से पूर्ण हो, दर्शन कर श्रमरहित हो गये।

अति आदर प्रभु किय सनमाना। सब कहं बैठन कह भगवाना ॥
पुनि रजाइ लै खलनि सिधाये। छबि बारिधि प्रभु पद शिरनाये ॥

रामजी ने अति आदर से सम्मान किया और सबको बैठने को कहा, फिर रामजी की आज्ञा से सब अपने स्थानों पर छवि-सागर रामजी के चरणों में सिर झुकाकर चले गये।

अंगद हनुमत निकट निवासी। राम चरण सुखमा गुण रासी ॥
दोउ भट कर पसरत प्रभु पाऊ। देखि सुरन मन भा अति चाऊ ॥

अङ्गद और हनुमानजी निकटवर्ती होने के कारण रघुनाथजी के अत्यन्त सुख और गुण खा चरण-कमल को ग्रहण कर दोनों योद्धा चरण दबाने लगे, जिसे देखकर देवताओं के मन में भी चरण दबाने का बड़ा चाव हुआ।

हमहु होत जग कीश स्वरूपा। पद गहिं नित्त रहत नर भूपा ॥
हरि न सिहाहिं सुमन झरि लाये। निज निज आश्रम अमर सिधाये ॥

मन में कहने लगे, जो हम भी जगत में वानर-रूप होते को महाराज के चरण दबाते, इस प्रकार वानरों की बड़ाई कर फूल बरसाकर देवता अपने-अपने धाम को चले गये।

दोहा—बन्धु सचिव सेना सहित, शोभित श्री भगवान।
तुलसिदास ते धन्य नर, जे यह ध्यानि लुभान ॥ २६ ॥

भाई लक्ष्मण, मन्त्री सुग्रीवादि और अपनी सेना सहित रघुनाथजी शोभित हैं, तुलसीदासजी कहते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं, जो इस ध्यान में मग्न रहते हैं ॥ २६ ॥

उत नारान्तक सेन समेता। गयउ जहां दशकन्ध निकेता ॥
सुतहि सुरारि मिला पुलकाई। कुशल बूझा बैठेउ हर्षाई ॥

उधर नारान्तक सेना सहित रावण के स्थान पर गया। रावण बहुत प्रसन्न हो अपने पुत्र से मिला और कुशल पूछी, बड़ी प्रसन्नता से बैठा।

देखि नारान्तक कर समुदाई। दशमुख शठ सब सोच दुराई ॥
जेहि बिधि हरि लावा जगमाता। ताहि आदि कृत कृत विख्याता ॥

नारान्तक का ऐश्वर्य और अधिक सेना देखकर मूर्ख रावण ने सब सोच भुला दिया। जिस प्रकार हसे जानकी को र लाया था, वह सब कथा आदि से अन्त तक सुनाई।

कुम्भकर्ण घननाद निहाता। कहि बिलखा अहिरावण घाता॥
पितु मन मतिन नरान्तक देखा। बोला खल उर गर्व बिशेखा॥

कुम्भकरण, मेघनाद और अहिरावण के वध कहते-कहते रावण व्याकुल हो गया, तब नारान्तक ने पिता का मुख मलीन देखकर बड़े अहंकारपूर्वक कहा।

तजहु सकल संशय बिबुधारी। करिहहुं प्रात समर अति भारी॥
चमू कीश बिनु छितिकर ताता। धरिहौं तापस होत प्रभाता॥

हे देव शत्रु! सब प्रकार से संदेह त्याग करो, प्रातकाल मैं बड़ा युद्ध करूंगा। हे पिताजी! सारी पृथ्वी वानर-रहित करके सवेरे ही दोनों तपस्वियों को पकड़ लाऊंगा।

छन्द—धरि आनि तापस भ्रात दोउ परभात बार न लाइहौं।
धरि धरि बिपुल कपि भालु दीन निशाचरन अघवाइहौं॥
भुज बल करहुं निज नहिं बहुत कहि रिपुन प्रगट दिखाइहौं॥
बिनु श्रमहिं तातन को बयर ले तब चरण शिर नाइहौं॥ ४॥

सवेरा होते ही दोनों तपस्वियों को पकड़कर लाऊंगा, देर नहीं लगाऊंगा और रीछ-वानरों को पकड़-पकड़कर दीन राक्षसों को भोजन कराऊंगा। मैं अपनी भुजाओं का बल कुछ बखान कर नहीं कहता हूं, शत्रुओं को प्रकट कर दिखाऊंगा। अपने बड़े भाइयों का वैर लेकर बिना श्रम तुम्हारे चरणों में सिर नवाऊंगा॥ ४॥

दोहा—सुनत बीस भुज सुत बचन, बार बार उर लाइ।
लाग करावन नृत्य जड़, गुणी समूच बुलाइ॥ २७॥

रावण ने पुत्र के वचन सुनकर उसे बार-बार हृदय से लगाया और गुणीजनों को बुलाकर नाच कराने लगा॥ २७॥

बिंदुमती आदिक रनवासू। सब चलि गईं मन्दोदरि पासू॥
सासुहि मिलि बैठीं सब नारी। मय तनया करि आदर भारी॥

बिन्दुमती आदि नारान्तक की सब नारियां मन्दोदरी के पास गईं। सास के चरण वन्दन करके सभी नारियां बैठ गईं, मन्दोदरी ने उनका बड़ा आदर किया।

बूझि परस्पर रावण धरणी। प्रभु यश ताहि सुनायउ बरणी॥
देइ पतोहुन बास सुहावन। आपु लगी सुमिरन जग पावन॥

परस्पर कुशल पूछकर मन्दोदरी ने प्रभु का यश वर्णन कर सुनाया, पुन पतोहुओं को सुन्दर स्थान देकर, आप रघुनाथजी का नाम स्मरण करने लगी।

शयन करहु कह सुतहिं निशाचर। उठा आपु मति मन्द अघाकर॥
गा तेहि भवन कुटिल दश ग्रीवा। जहं मय तनया सद्गुण सीवा॥

उधर रावण ने अपने पुत्र से कहा कि तुम भी जाकर शयन करो। यह कहकर आप उठा। यह कुटिल रावण वहां गया, जहां मन्दोदरी श्रेष्ठ गुणों वाली थी।

आयउ पिय मन्दोदरी जानी। पाइ सुअवसर गहि पदपानी॥
पिय सुनाय अति कोमल बयना। लगी कहन जल भरि युग नयना॥

मन्दोदरी स्वामी को आया हुआ देखकर समय पाकर पैर पकड़कर बड़े कोमल वचन प्रीतम को सुनाकर नेत्रों में जल भरकर कहने लगी।

दोहा—नाथ निगम आगम बिबुध, कहत प्रगट यह बात।
बुधजन सो जो आधहू, राखहिं सर्वस जात॥ २८॥

हे नाथ! वेद-शास्त्र पण्डित यह बात प्रकट कहते हैं कि वे चतुर जन हैं, जो सर्वस्व जाते हुए में से आधा रख लें। कहा है—"जो धन जाता जानिए, आधा दीजै बांट"॥ २८॥

तजहिं न हठ शठ सर्वस खोवै। यद्यपि अन्त शीश धुनि रोवै॥
सो बिचारि प्रभु परम सुजाना। मोर बचन सुनि कीजिय काना॥

परन्तु मूर्ख चाहे अपना सर्वस्व खो दे, लेकिन हठ नहीं छोड़ता, अन्त में सिर पकड़कर रोता है, सो विचार कर हे प्रभु! परम सुजान मेरे वचन को मानो।

अजहुं करहु हठ दूरि गुसाईं। अनुज भांति मिलिये प्रभु जाईं॥
प्रथमहिं सीतहिं देह पठाई। पुनि तुम गमनहु पुत्र लवाई॥

हे स्वामी! अब भी हठ दूर करके विभीषण की भांति आप भी जाकर मिलिये, पहले तो जानकी को भेज दो, फिर तुम पुत्र को भेजकर आप दर्शन करने को जाओ।

प्रभु पदगहि मांगहु बर एहू। पद पङ्कज रति बिमल सनेहू॥
प्रिया बचन तेहि बिषसम लागा। सो गृह तजि गा अनत अभागा॥

प्रभु के चरण पकड़ यही वर मांगो कि तुम्हारे चरण-कमल में निर्मल प्रीति हो। मन्दोदरी के यह वचन उसे विष के समान लगे, वह घर छोड़कर दूसरे घर में चला गया।

निज नारी कहि कटु अभिमानी। कीन्ह शयन निशि भइ बड़जानी॥
सो रजनी गत भयउ प्रभाता। जागे रघुबर त्रय जगत्राता॥

रावण ने अपनी नारी कटुभाषिणी कहकर बहुत रात गई जानकर शयन किया। रात्रि बीतने पर जब प्रातकाल हुआ और रघुनाथजी त्रिलोकी के रक्षक जागे।

दोहा—ऋक्ष कीश जगदीश पद, शीश नाइ रुख पाइ।
धरि गिरि तरु धावत भये, कहि जय जय रघुराइ॥ २९॥

रीछ वानर प्रभु के चरणों में सिर झुकाकर, आज्ञा पाकर शिला, वृक्ष को हाथों में ले रामजी की जय-जय उच्चारण करते चले॥ २९॥

कपि घेरा गढ़ यह सुनि काना। रावण सुत लखि निपट रिसाना॥
साजि विपुल दल हनन निशाना। गढ़ ते चला निकर बलवाना॥

वानरों ने लंका को घेर लिया, यह सुनकर नारान्तक बहुत क्रोधित हुआ। अपना दल सजाकर नगाड़े बजवाकर वह महाबली लंका से निकल कर चला।

चारि द्वारि करि कठिन लराई। बिशिख बरषि कपि दल बिचलाई॥
निकरे निशिचर गढ़ते कैसे। शलभ समूह शैल ते जैसे॥

चारों द्वारों पर कठिन लड़ाई कर बाणवर्षा करके वानरों की सेना विचलित कर दी। राक्षस इस प्रकार लंका से निकले, जैसे पर्वत से टिड्डियां निकलती हैं।

मारुत सुत देखा कपि भाजे। कटकटाइ मति विक्रम गाजे॥
कपि लंगूर चहुं ओर भंवाई। रोके खल निशिचर समुदाई॥

महावीरजी ने देखा कि वानर भाग रहे हैं, तब बड़े विक्रमपूर्वक गरजना करके चारों ओर अपनी पूंछ बढ़ाकर राक्षसों को बलपूर्वक निकलने से रोका।

पटकत महि निशिचर फल बेलू। केतिक देत विदिश दिशिमेलू॥
इक दिशि इमि हरिकृत संग्रामा। दिग दूजी अंगद बलधामा॥

बेल के समान राक्षसों को पृथ्वी पर पटकने लगे और कितनों को दिशा-विदिशाओं में फेंक दिया। एक ओर हनुमानजी घोर युद्ध करते थे और दूसरी ओर अङ्गदजी लड़ते थे।

दो०—निशिचर सेना उदधि सम, मन्दर इव दोउ कीश।
मथत देखि जय रतन लगि, हंसे बिबुध सुर ईश॥ ३०॥

राक्षसों की सेना सागर के समान और अंगद हनुमानजी मन्दराचल पर्वत के समान उस सेना सागर को जय रत्न के निमित्त मथते हैं, यह देखकर देवताओं के ईश रामजी हंसे॥ ३०॥

इमि निरखि पराक्रम करत कीश। भा क्रोध परम रजनी बरीश॥
करि प्रलय कन्दते घोर शोर। धर कुधर शस्त्र धाये कठोर॥

इस प्रकार वानरों को पराक्रम करते देखा, नारान्तक को बड़ा क्रोध आया। प्रलयकाल के समान बड़े क्रोध से शब्द किया और बड़े-बड़े राक्षस शिला और शस्त्र लेकर दौड़े।

इक बार मार कर सर समूह। किये बिकल अस्त्र निकीश जू॥
कोउ टेरत कपिपति चित उचोट। कोउ सूरत करत निजधाम ओट॥

एक ही बार अनेक बाण-समूह मारकर और शस्त्र प्रहार कर वानरों को व्याकुल कर दिया, कोई व्याकुल हो सुग्रीव को पुकारने लगा कोई अपने घर को याद करने लगा।

बहु चले कन्दरा शैल ताक। कोउ दुबकत इत उत पात झाक॥
कोउ देत दुहाई लखन राम। कोउ कहत बिधाता भयो बाम॥

कोई पर्वत की कन्दरा देखकर दौड़े, कोई इधर-उधर झांकर दुबकने की चेष्टा करने लगे। राम-लक्ष्मण की दुहाई देने लगे, कोई बोले कि विधाता ही वाम हो गया।

यहि बीच नारान्तक कर प्रधान। तेहि धाय गहेउ युबराज पान॥
बहु भट लपटाने अंग भंग। सब संग उड़ेउ अंगद उतंउ॥

इसी समय नारान्तक के मन्त्री ने अंगदजी का हाथ पकड़ा, उसके साथ ही और भी अनेक राक्षस लिपट गये। अंगदजी सबके साथ ही आकाश को उछल गये।

नभ कीश कीन्ह कौतुक अभूत। रवि मण्डल पहुंचेउ बालि पूत॥
अंगार जारे तपनि आंच। पनि आयउ जहं संग्राम रांच॥

आकाश में अंगदजी ने यह कौतुक किया कि सूर्य मण्डल के निकट चले, जिससे राक्षसों के अंग

चलने लगे, तब उन्होंने अंगदजी को तो छोड़ दिया, फिर वे सभी नीचे गिर पड़े, तब अंगदजी संग्राम में लौट आये।

यह निरखि अपर यूथप पिशाच। तुर आइ गयउ सेना समाच॥
लै विषम शूल मारेसि प्रचराड। उर लागि आनि अतिकठिन दराड॥

यह देखकर और राक्षसों के सेनापति पिशाच की तरह बढ़े और एक बड़ा तीक्ष्ण त्रिशूल अंगदजी के आते ही मारा, वह कठिन दण्ड उनकी छाती में आ लगा।

महि परेउ तनय तारा तुरन्त। लखि दौरि परे हनुमन्त सन्त॥
सोइ शूल खैंचि मारेउ प्रचराड। होइ गिरेउ यूथपति सहस खराड॥

जिसकी पीड़ा से अंगदजी मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, यह देखकर हनुमानजी दौड़े। वही शूल उठाकर हनुमानजी ने सेनापति की छाती में मारा, जिससे यूथपति हजार टुकड़े होकर गिर पड़ा।

तब चरित सुनेउ रविकुल दिनेश। कह जाहु बगि अहिरान शेश॥
चले नाइ माथे शंकर मनाइ। धनु बांधि बांधि विकराल लाइ॥

यह समाचार सुन रघुनाथजी बोले—हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्र ही जाओ। लक्ष्मणजी यह सुनते ही सिर झुकाकर शंकरजी को स्मरण कर धनुष तरकश कसकर चले।

उर अंगद कर धरि सुमिरि राम। श्रमबिगत भयउ बल अतुल धाम॥

लक्ष्मणजी ने अंगदजी के हृदय पर रघुनाथजी को स्मरण करके हाथ रखा, जिससे अंगदजी श्रम-रहित हो गये।

दो०—बिगत भयउ मूर्छा तुरत, बहुरि चलेउ युवराज।
लच्मण चाप टंकोर सुनि, फिरा कीश दल साज॥ ३१॥

जैसे ही मूर्छा टूटी कि अंगदजी युद्ध को चले और लक्ष्मणजी के धनुष के शब्द को सुनकर वानर फिर उत्साह से फिरे॥ ३१॥

सुनत कठोर शरासन निशिचर। बधिर भये नहिं सुनई शब्द वर॥
वर्षा विशिष कीन्ह अहिनाथा। काटे पाणि पांय बहु माथा॥

राक्षस धनुष की टंकार सुनते ही बहरे हो गये, शब्द भी सुनाई नहीं देता। लक्ष्मणजी ने जब बाणों की वर्षा की तो राक्षसों के हाथ-पांव कटने लगे।

उड़हिं अकाश सीस भुज कैसे। धुनकत तूल रोम गण जैसे॥
रुराड असीस फिरहिं रण धरणी। यथा अकाल क्षुधारत करणी॥

निशाचरों के सिर, बाहु आकाश में ऐसे उड़ते थे, जैसे धुने के यहां रूई उड़ती, या धुनी हुई रूई उड़ती है। बिना सिर के रुण्ड पृथ्वी पर फिरते हैं, जैसे अकाल में भूखे लोग फिरते हैं।

इह कपि भालु विजय अभिलाषे। उतहि निशाचर जय हित भाषे॥
मारुत सुत अंगद बलवीरा। समर बांकुरे अति रणधीरा॥

इधर तो रीछ वानर जीत की अभिलाषा में, उधर निशाचर अपनी जीत के निमित्त हो लड़ते हैं। अंगद और हनुमानजी युद्ध के बांके रण में धीरज रखने वाले हैं।

सिंहनाद कीन्हीं हरि दोऊ। भाजे कपि रण गाजे सोऊ॥
दोउ दल युद्ध परस्पर करहीं। प्रमुदित भट कायर हिय डरहीं॥

दोनों वीरों ने जिस समय सिंहनाद किया, उस समय भागे हुए वानर भी युद्ध करने को उद्यत हो गये, दोनों दल परस्पर युद्ध करते हैं, योद्धा प्रसन्न होते, कायर डरते हैं।

छं०—कायर डरहिं प्रमुदित सुभट सब लरत हारि न मानहीं।
जहं तहं गिरे पुनि उठि भिरे दुहूं ओर जयति बखानहीं॥
कौतुक बिलोकत बिबुधगण विस्मय हरष उर आनहीं।
रघुबीर सेना पर सुमन झरि लाय बिनती ठानहीं॥

कायर डरते हैं, योद्धा प्रसन्न होकर लड़ते हैं, हार नहीं मानते, जहां-तहां गिरते और फिर उठकर लड़ते लगते हैं। दोनों ओर से जय-जयकार का शब्द उच्चारण करते हैं और कभी प्रसन्न होते, कभी विस्मय होते। देवता यह कौतुक देख रहे हैं और रघुनाथजी की सेना पर फुल वर्षा कर विनय करते हैं।

दो०—अति अद्भुत करणी करहिं, ऋक्ष कीश बल भूरि।
कर पद बिनु करि रजनीचर, तिन मुख डारहिं धूरि॥ ३२॥

रीछ वानर यह अद्‌भुत करणी करते हैं कि निशाचरों के पांव तोड़कर उन्हीं के मुख में भर देते हैं॥ ३२॥

बहुतन के सिर तोर चलावहिं। निज भुज बल रावणहिं जनावहिं॥
गये याम युग दिवस भवानी। नारान्तक अधसेन सिरानी॥

बहुतों के सिर तोड़कर फेंक देते हैं, अपनी भुजबल रावण को दिखाते हैं। शिवजी बोले कि हे पार्वती! दोपहर होते-होते नारान्तक की आधी सेना मारी गई।

मरे निशाचर अमित निहारी। रावण सुवन कोप करि भारी॥
रथ समेत ऊपर नभ जाई। भयउ अदृश्य अस्त्र झरि लाई॥

बहुत से निशाचरों को मरा देखकर नारान्तक को बड़ा क्रोध हुआ, रथ समेत ऊपर आकाश में जाकर अदृश्य हो कर अस्त्रों की झड़ी लगा दी।

क्षण महं करि मूर्छित कपि सयना। पुनि शठ गा जहं राजिव नयना॥
गरजा मनहु मेघ समुदाई। कहन लाग कटु बचन रिसाई॥

क्षण मात्र में वानरों की सेना मूर्छित करके फिर वह मूर्ख रघुनाथजी के पास गया, और मेघ के समान गरजा, क्रोध कर कटु वचन कहने लगा।

होहि सजग निशिचर कुल द्रोहि। बन्धु बैर लगि मारहुं तोही॥
प्रभु कहं कटुक कहत सुनिकाना। कोपेउ जामवन्त बलवाना॥

हे राक्षस कुलद्रोही! सावधान हो, आज भाई के बैर करने के कारण मैं तुझे मार डालूंगा। रामजी को कटु वचन कहते सुनकर बलवान जामवन्त क्रोधित हुआ।

दो०—शूल एक तेहि छांड़ेउ, सो करगहि ऋक्षेश।
धाय तासु उर मारेऊ, भाषि जयति अवधेश॥ ३३॥

तब उसने एक त्रिशूल छोड़ा, सो जामवन्त ने बीच में ही पकड़ लिया और दौड़कर रघुवीरजी का जय उच्चारण कर उसके हृदय में मारा ॥ ३३ ॥

लगत शूल सो मूर्छित भयऊ। जामवन्त तब करगहि लयऊ ॥
बार अमित महि माहिं पछारा। बांधि गाड़ि बारू महं डारा ॥

शूल लगते ही वहीं मूर्छित हो गया, तब जामवन्त ने उसे पकड़ कर कई बार घुमाकर पछाड़ डाला, फिर बांधकर रेत में गाड़ दिया।

जागे सकल बली मुख ऋच्छा। लगे करन रण निज निज इच्छा ॥
जामवन्त यह हृदय बिचारा। मरे नहीं यह खल मम मारा ॥

इसी अन्तर में रीछ वानर उठे और युद्ध करने में अपनी-अपनी इच्छा प्रकट करने लगे, जामवन्त ने विचार किया कि दुष्ट मेरे मारने से नहीं मरता।

बिधि इच्छा पुन ताहि उखारी। मुष्टि चारि उरमाहीं प्रचारी ॥
गहि पद संचारा गढ़ माहा। सपदि परा जहं निशिचर नाहा ॥

हरि इच्छा से फिर उसे उखाड़ा और उसके हृदय में चार मुष्टिक मारी, फिर लंकापुरी में टांग पकड़कर फेंक दिया, जहां रावण था, जाकर गिरा।

दशउ बदन हा हा करि धावा। नारान्तक काह हृदय तब लावा ॥
निरखि निशाचर गण समुदाई। गढ़ कहं गे सब संभ्रम धाई ॥

रावण देखते ही हा-हाकार कर दौड़ा और नारान्तक को हृदय से लगा लिया। नारान्तक को देखकर सभी निशाचर लंका को चले गये।

दो०—कपिगण समय प्रदोस लखि, राम चरण धरि माथ।
ठाढ़ भयो सब तन चितय, दयादृष्टि रघुनाथ ॥ ३४ ॥

इधर वानर भी प्रदोष का समय देखकर रघुनाथजी के पास आये और उनके चरणों में सिर रख खड़े हुए, दया दृष्टि से रामजी ने सबको देखा ॥ ३४ ॥

बिनु श्रम कीन्हसबनि जगदीशा। गये सुवास भालु अरु कीशा ॥
रुचिरासन आसीन रमेशा। ढिग बीरासन उरग नरेशा ॥

रामजी ने सबको बिना श्रम कर दिया, रीछ वानर अपने स्थान को गये। रघुनाथजी सुन्दर आसन पर विराजमान हैं, निकट वीरासन से लक्ष्मणजी बैठे हैं।

अंगद मारुत सुत प्रभु चरणा। लाग पलोटन सुनहु अपरणा ॥
पुण्य पुञ्ज अरु भाग्य निधाना। जिन पर नित प्रसन्न भगवाना ॥

अंगद और महावीरजी प्रभु के चरण दबाने लगे, शिवजी बोले हे अपर्णा पार्वती ! वे बड़े पुण्यात्मा और भाग्य के निधान हैं, जिन पर भगवान नित्य प्रसन्न हैं।

उहां सुरारि सुतहिं पौढ़ाई। बिलखहि तासु नारि समुदाई ॥
होत प्रभात नारान्तक जागा। पितु बिलोकि लज्जा रस पागा ॥

वहां रावण ने पुत्र को सेज पर लिटा दिया, उसकी स्त्री व्याकुल होकर रोने लगी। पुनः प्रातकाल होते ही नारान्तक जागा और पिता को देखकर बड़ा लज्जित हुआ।

रथ चढ़ि तुरत इकाकी धावा। नभ पथ समर भूमि महं आवा॥
कीश कटक यह मर्म न जाना। होइ लोप कीन्हेसि झरि बाना॥

रथ पर चढ़ कर तुरन्त अकेला दौड़ा और आकाश मार्ग से होकर रण-भूमि में आया। वानरों के कटक ने तो यह भेद नहीं जाना, उसने लोप होकर बाणों की झड़ी लगा दी।

दो०—धावहिं व्योमहिं भालु कपि, ताहि न देखहिं नैन।
घायल होइ होइ गिरहिं महि, भाषहिं आरत बैन॥ ३५॥

रीछ वानर आकाश को जाते हैं, परन्तु उसे नेत्रों से नहीं देख सकते और घायल होकर पृथ्वी पर गिरकर दुख के वचन उच्चारण करते हैं॥ ३५॥

बाण एक सत तड़ित समाना। छांड़ेसि शठ जहं कृपानिधाना॥
लागत विपुल कीश मुरझाने। बहुतक कायर देखि पराने॥

सौ बाण बड़े तीक्ष्ण, जहां राम थे, वहां उस मूर्ख ने छोड़े। जिन बाणों के लगने से अनेक वानर मूर्छा गए, बहुतेरे कायर भाग गए।

भागि सेतु ढिग एक अयाना। टेरे फिरहिं न सुत हरियाना॥
मारुत सुत अंगद सुग्रीवा। कुमुद मयंद द्विविद बलसीवा॥

कागभुशुण्डजी बोले—हे गरुड़जी! कोई एक पुल के निकट भाग गए और पुकारने से भी नहीं फिरते हैं। हनुमानजी, अंगद, सुग्रीव, कुमुद, मयन्द बलवान द्विविद असीम बली।

ये सब वीर हांक दे धावहिं। नभ पथ ताहि न खोजत पावहिं॥
तब सब बीर एक मत ठाना। ले गिरि तरु किय लंक पयाना॥

यह सब वीर हांक देकर पुकारते हैं, परन्तु उसे वहां न देखकर फिर आते हैं, तब सब वीरों ने एक दम ठानकर पर्वत वृक्ष आदि लेकर लंका को प्रस्थान किया।

दसमुख भवन तासु कंगूरा। पैठे कपि पसारि लंगूरा॥
करते डारि देहिं पाषाना। बहुत दनुज भे चूर्ण समाना॥

रावण के घर कंगूरों में वानर अपने-अपने पूंछ फैलाकर बैठे। हाथ से पत्थर डाल देते हैं, जिससे बहुत से राक्षस चूर्ण हो गए।

छं०—भे चूर्ण निशिचर यूथ। गै निशिचरी भय यूथ।
मखवीन आरत दीन्ह। भइ भवन रावण लीन्ह॥

निशाचरों के यूथ चूर्ण हो गए, भय के मारे निशाचरियां भाग उईं, मुख से दुख के कारण शब्द उच्चारण करती हुईं रावण के महल में घुस गईं।

सुनि बोली भट दशभाल। कह खाहु कीश कराल।
करि यत्न भागे कीश। अस कहेउ बच दस शीश॥

वह दशा देखकर रावण ने योद्धाओं को बुलाकर कहा कि तुम वानरों को खा जाओ, यह यत्न करो कि वानर भाग जायं, वचन रावण ने कहे।

मम लहहु आयसु छोर। सोइ जानिहै रिपु मोर।
सो शूर मो कहं प्यार। जो खाय मर्कट धार॥

और जो मेरा आज्ञा उल्लंघन करेगा तो उसे जानूंगा कि यह मेरा शत्रु है और उस शूरमा को प्यार अथवा वह मुझे प्यारा होगा, जो अनेक वानरों को खा जाएगा।

दो०–एतु एतु गुण रजनीचर, एक एक भुज जोर।
रावन पान राखि सिर, धाये करि रव घोर॥ ३६॥

इस प्रकार के वचन सुन राक्षस जय-जयकार कर तथा हाथ जोड़कर रावण की आज्ञा सिर पर धारण कर आओ-आओ यह कह कर बड़े शब्द करके धाये॥ ३६॥

देखि लंगूर सकल हरषाने। मधु माखी सम सब लपटाने॥
कपि उर सुमिरि रमेश प्रतापा। डारे सबनि पटकि करि दापा॥

वानरों को देखकर सब बड़े प्रसन्न हुए और शहद की मक्खी के समान सब लिपट गए और वानरों ने रघुनाथ जी के प्रताप का स्मरण करके सब राक्षसों को पटक डाला।

काचे घट सम दनुज बिदारी। जयति राम सब लखन खरारी॥
सुभट छुहनि पुन फेरि लंगूरा। भूमिं खिरावहिं कोटि कंगूरा॥

कच्चे घड़े के समान राक्षसों को विदीर्ण करके जय राम-लक्ष्मण को पुकारते हैं, फिर जब राक्षस पूंछ को छने लगते हैं, सभी यह छहों योद्धा अपनी पूंछ फैलाकर कंगूरों में लपेट कर पृथ्वी में गिरा देते हैं।

अति बिशाल गहि कञ्चन खंभा। जिमि प्रयास बिनु करु आरंभा॥
लै ढाहत अपक्व घट जूहा। कपि तिमि तोरत दनुज समूहा॥

बिना परिश्रम के सोने के खंभ तोड़ने लगे, जिससें उन्हें कुछ परिश्रम नहीं होता था, जैसे कोई कच्चे घड़े को तोड़ता है, ऐसे ही बिना परिश्रम के राक्षसों का संहार करते हैं।

पुनि विचार करि हरि भट भाये। निशिचर निकर मध्य चलि आये॥
करि कोटिन बिनु नासा काना। कर पद हीन कीन्ह रिपु नाना॥

फिर विचार कर वानर दौड़े और निशाचरों की सेना में आए। आते ही अनेकों के नाक-कान काट डाले और अनेकों के हाथ पैर तोड़ डाले।

छं०–रिपु कीन कर पदहीन अगणित दीन बचन पुकारहीं।
गढ़ते निकर निशिचर अखिल खल बिपिन बाट सिधारहीं॥
पीपर परण सम धरणि लंका कंप षट कीशनि करा।
तोरे कपाट निपाटि अरितिय केश खैंचत गहि करा॥

अनेक निशाचरों के हाथ-पैर तोड़ डाले, वे दीन वचन पुकारने लगे। लंका से निकल कर अनेक राक्षस डर के मारे वन को भागते हैं। केवल छः वानरों ने ही लंकापुरी को पीपल के पत्ते के समान कंपित कर दिया, मन्दिर के किवाड़ तोड़ डाले और निशाचरों की स्त्रियों के बाल खींचकर घसीटने लगे।

दो०—भयउ कुलाहल लंक अति, नारान्तक सुनि कान।
नभतें स्पंदन सहित शठ, प्रगटि परम रिसियान॥ ३७॥

तब लंकापुरी में बहुत कोलाहल हुआ, नारान्तक यह सुनते ही आकाश से रथ सहित उतरा और बहुत क्रोध कर प्रगट हुआ॥ ३७॥

निरखि दशा निज नारिन करी। कहन लगि कटु गिरा घनेरी॥
शठ आयहु संग्राम बिहाई। लरत तियन संग लाज न आई॥

अपनी स्त्रियों की दशा देखकर वह बड़े कठिन शब्दों को प्रयोग करने लगा। अरे मूर्खो! संग्राम त्याग कर यहां चले आये, स्त्रियों के साथ यहां लड़ते हो, तुम्हें लाज नहीं आती।

अबलन पें बल भटन कराहीं। छांड़हु तिनय लरहु मम पाहीं॥
सुनि मरकटनि भयउ सुख भारी। तजी निशाचरि दीन पुकारी॥

योद्धा स्त्रियों पर बल नहीं करते हैं, इस कारण स्त्रियों को त्याग कर मुझसे युद्ध करो। यह सुन कर वानर अति प्रसन्न हुए, तब उन दीन पुकारती राक्षसियों को छोड़ दिया।

भाजि भवन भययुत गहि नारी। लीन्ह कपिन कर शिला उपारी॥
शिल प्रहार हय स्पन्दन भंजा। आयुध तोरि सारथी गंजा॥

तब वे स्त्रियां भय के मारे अपने घरों को भागीं, वानरों ने एक-एक शिला उखाड़ ली। शिला के प्रहार ने नारान्तक के घोड़े, रथ, आयुध तोड़कर सारथी को मार डाला।

धरि पछारि रावन दृग देखा। कौतुक कीशनि कीन्ह बिशेखा॥
लागे पदगहि खलन फिरावन। नाचहिं गाय राम यश पावन॥

रावण के देखते ही वानरों ने उसे पछाड़कर व्याकुल कर दिया और फिर चरण पकड़ कर फिराने लगे और रामजी का पवित्र यश गाते हैं। इस प्रकार कौतुक करते हैं।

दो०—तोरत तिन तनु पटकि महि, कतहु जयति रघुवीर।
करत युद्ध गत याम युग, कीश छहों रणधीर॥ ३८॥

राक्षसों को पृथ्वी पर पटक कर उसका शरीर तोड़ डालते हैं। रामजी का यश उच्चारण करते हैं। इस प्रकार छहों वानरों को युद्ध करते-करते दोपहर बीत गया॥ ३८॥

अस्ताचल रबि कीन्ह प्रवेशा। बन्देउ चरण जाइ अवधेशा॥
श्याम सरोरुह प्रभु तनु देखी। पद धरि शिर सुख लहेउ बिशेखी॥

इधर अस्ताचल पर्वत में सूर्य भगवान ने प्रवेश किया, तब वानरों ने रामजी के चरणों को पकड़ा प्रभु को श्याम कमल के समान शरीर देखकर चरणों में सिर रखकर सुख पाया।

राम सबनि सादर सनमाना। को दयालु रघुबीर समाना॥
कहु प्रभु होहु थलनि आसीना। आयसु पाइ भये श्रम हीना॥

रामजी ने सबका आदर से सम्मान किया, रामजी के समान कौन दयालु है। तब रामजी बोले—अपने-अपने स्थानों पर बैठो, आज्ञा पाकर अपने-अपने स्थानों पर बिराजते हैं।

भये बिगत श्रम बानर भालू। अनुज सहित मन मुदित कृपालू॥
सुनहु उमा ता निशि रघुनायक। गावत जन गुण सब गुण दायक॥

रीक्ष-वानर श्रम रहित हो गए, लक्ष्मणजी रघुनाथजी अति प्रसन्न हुए। शिवजी बोले हे पार्वती! उस समय रघुनाथजी भक्तों की बड़ाई करने लगे अथवा उनके जन उनके गुण गाने लगे।

याम तीन यामिनि गत जबही। उत नारान्तक जागेउ तबहीं॥
शोच बिबिश मीजत दोउ हाथा। लज्जित हृदय निशाचर नाथा॥

वहां जब तीन पहर रात्रि गई, तब नारान्तक की मूर्छा जागी। अपने दोनों हाथ सोच के मारे मलने लगा और महा लज्जित हुआ।

छं०—लाज कै रथै संभारि बाजि साजि रूष्ट पुष्ट।
शंक छांड़ि अस्त्र मांड़ि गाढ़बीर संग दुष्ट॥
भेरि दुन्दभी निशान गान काड़े कैत कर्त।
भीर बीर अग्र गैन गाजि गाजि शब्द भर्त॥

लजाकर रथ अपना रथ संभाल कर और हृष्ट-पुष्ट उसमें घोड़े जोतकर शंका त्याग कर शस्त्र बांध और बड़े बली वीरों को साथ लेकर वह दुष्ट सज्जित हुआ। ढोल, भेरी बजने लगे। कडखैत-कडखा गाने लगे और योद्धा आगे हो, महाधुनि से गरजते चले।

बाजि आश त्रास नाश बाजि मोह छंड छंड।
बक रशू शंक दूरता बीरता सप्पर चराड॥
बाजि नाग शोर घोद पूरिगे दशो निशान।
धूरि पूरि मेघ आघ शोव ना परो अपान॥

जीने की आशा और भय त्यागकर घोड़ों के स्वामी बड़े बांके योद्धा सब शंका और मोह त्याग वीरता में भरकर क्रोध से करजे। उस समय घोड़े और हाथियों के चिग्घाड़ने का शब्द दसों दिशाओं में भर गया। धूल से आकाश मेघ मण्डल के समान पूर्ण हो गया। मेघ के समान गरजने लगे, जिससे किसी अपने पराये का ज्ञान न रहा।

कूदि कूदि व्योम पन्थ जाय आइ जाइ भूमि।
अस्त्र शस्त्र काढ़ि काढ़ि क्रुद्ध क्रुद्ध भूमि भूमि॥

कूद-कूद कर आकाश में बार बार जाते और पृथ्वी में आते हैं। अस्त्र-शस्त्र निकालकर महा क्रोध करके भूमते हैं।

दो०—प्रलय मनहुं चाहत करन, अनी तमीचर चराड।
सुनु खगेश मर्कट विकट, जिमि धाये बर बराड॥ ३१॥

उस समय निशाचरों की सेना मानो प्रलय करना चाहती हो। कागभशुण्डि जी बोले—हे गरुड़ जी! बड़े योद्धा वानर भी क्रोध से जिस प्रकार दौड़े सो सुनो॥ ३९॥

छं०—निहारि हर्ष कीश ऋक्ष फूलि फूलि शैल भे।
बजाइ कटकटाइ हूह एक बार कै अभे॥
उपारि भूधरा अपार वृक्ष अश्म श्रृंगहू।
परे निशाचराभि रुराड भुराड मुराड भंगहू॥

रीछ-वानर निशाचरों को देखते ही प्रसन्नता से फूलकर पर्वत के समान हो गये, मुख से ही बाजे का शब्द कर कटकट हू-हू शब्द निर्भय होकर करने लगे। पर्वत, शिला, वृक्ष, अनेक उखाड़ कर राक्षसों को मारने लगे, जिससे अनेक राक्षसों के झुण्ड बिना सिर के हो गये। रुण्ड डोलने लगे, अर्थात शिलाओं की मार से उनके सिर चूर्ण हो गये।

छं०—रदी हरी मृगावती सवार ऊष्ट्र मंडहू।
मानौं विचित्र बाहिनी दई मनोज खंडहू॥
हलै धरा बलै बिचारि भार धारि को सकै।
सुनै पुकारि जयति राम शत्रु से नहीं धकै॥

जिस प्रकार मृगों को मारकर सिंह नष्ट कर देता है, ऐसे ही वानरों ने राक्षसी सेना को विध्वंस कर दिया और हाथी, घोड़े, सयार, ऊंट आदि से उस सेना की ऐसी शोभा हो रही थी, मानो कामदेव ने सब विचित्र सेना को खण्ड-खण्ड कर दिया। उनके बल को विचार पृथ्वी भार सहने में असमर्थ होकर कांपने लगी। वानरों जय हो रघुनाथजी की यही पुकार मच रही थी, राक्षसों का किंचित्त-मात्र नहीं।

लंगर शूल से अकाश भीत उच्च ओंचटयो।
गिरे पयोद पौनतै झपेट भेटते कटयो॥

वानरों की पूंछ, जो शूल के समान थे। ऊंचे-ऊंचे शरीर भीत से दिखाई देते हैं, उसके वेग के पवन से जो बादल गिरते हैं, उन्हें देखते ही वह झपट कर काटते हैं, अथवा उनसे आकाश भी भयभीत-सा नजर आता था। पवन थक जाने से मेघ लंगूरों के लगने से खण्ड-खण्ड पृथ्वी पर गिरने लगे।

सो०—शब्द कर अति घोर, इमि पहुंचेउ दल भालु कपि।
आयुध झरि अात जोर, परैं लागि घन प्रलय सम॥

इस प्रकार महा शब्द करता रीछ-वानरों का दल भी निशाचरों के सम्मुख हुआ और राक्षसों ने भी आयुधों की वर्षा कर दी। प्रलयकाल के बादलों की वारि धारा के समान अस्त्र-शस्त्र चलने लगे।

सजग होन कपि भालुन पाये। अति शय निकट तमीचर आये॥
असित निशाचर अति अंधियारी। तापर करैं शत्रु कै मारी॥

बहुत वानर अभी सावधान भी न होने पाये थे कि राक्षस बहुत समीप आ गये, अंधेरी रात्रि के समान वे काले राक्षस आते ही सब मारो-मारो करने लगे।

सूझहिं कपिन न हाथ पसारे। जहं तहं एकन एक पुकारे॥
सन्मुख कोउ न करत लराई। कपिन मारि रण भूरि सुवाई॥

अंधेरे के कारण वानरों को हाथ पसारा नहीं सूझता, जहां-तहां एक-को-एक पुकारने लगे और कोई सम्मुख हो, युद्ध नहीं करता, गुप्त होकर वानरों को मारकर रणभूमि में सुलाये।

गे अनेक भजि सिन्धु समीपा। सेन बिकल लखि रघुकुल दीपा॥
सजि शारग तजा एक बाना। भा प्रकाश दिग तरणि समाना॥

अनेक तो भागकर सागर के किनारे चले गये; रघुनाथजी ने अपनी सेना व्याकुल देखकर धनुष चढ़ाकर एक बाण छोड़ा, जिससे सब दिशाओं में सूर्य के समान प्रकाश फैल गया।

लखितम बिगत भालु कपि हर्षे। कट कटाइ धाये रिपु धरषे॥
भिरे एक सन एक प्रचारी। लागे करन कठिन हठ भारी॥

अंधकार दूर होते ही रीछ-वानर अति प्रसन्न हुए और कटकट शब्द कर शत्रु की सेना को मारने लगे। एक-एक से ललकार कर युद्ध करने लगे, उस समय महा भयंकर युद्ध होने लगा।

दो०—शीश शिला तरु करन धरि, आंखन भरि भरि धूरि।
गर्जें भालु बली बदन, धाय धाय नभ दूरि॥ ४०॥

सिर पर शिला, हाथ में वृक्ष, आंखों में धूल भर-भर कर रीछ और वानर आकाश में दूर जाकर महा शब्द करके गरजने लगे॥ ४०॥

डारहिं गिरि तरु निशिचर शीशा। दधि घट सम फोरहि भट कीशा॥
चढ़हिं अनेक कंध पर जाई। काटहिं कान दृगनि रज नाई॥

राक्षसों के सिर पर पर्वत और वृक्ष फेंकने लगे, वह सिर दही के मटकों के समान ही फूटने लगे। अनेक राक्षसों के कन्धों पर चढ़कर आंखों में धूल झोंक कान काट लेते हैं।

तोरहिं शूल चाप नाराचा। अरि दल अस्त्र न एकहु बाचा॥
शस्त्र हीन रिपु सेन पराई। देखि पवन सुत हंसेउ ठठाई॥

अनेक राक्षस के शूल, धनुष-बाण तोड़ते, शत्रुओं के दिल में किसी के पास कोई अस्त्र न रहा, तब आयुध रहित होकर राक्षसी सेना भागी, उस समय हनुमानजी ऊंचे स्वर से हंसे।

बैठ अवनि अति लूप फुलाई। अति उतंग दीरघ चौड़ाई॥
तर्कित खसे निशाचर कैसे। पक्ष हीन नभते खग जैसे॥

और अपनी पूछ बहुत लम्बी-चौड़ी करके पृथ्वी पर बैठ गये, अनेक निशाचर पूंछ के बीच में पड़ कर ऐसे गिरने लगे, जैसे पंख रहित पक्षी आकाश से गिरते हैं।

गिरत कीश गहि चरण फिरावहिं। पटकि भूमि गाड़हिं बिहंसावहिं॥
तुम्बरि सम अगणित भुज तोरत। अगणित रुण्ड सिन्धु महं बोरत॥

राक्षसों के गिरते ही वानर उनके चरण पकड़कर फिराते, फिर हंसकर पृथ्वी में पटक देते हैं। तूम्बी के समान अनेक रुण्ड सागर में बोलते हैं। (तूम्बरि कद्दू को कहते हैं)।

दो०—कोटि बयालिस तमीचर, नारान्तक कर घात।
राम कृपा बल हनि खलनि, कपिन बिताई रात॥ ४१॥

रघुनाथजी की कृपा से वानरी सेना ने नारान्तक के साथी बयालिस करोड़ राक्षसी सेना को मार-कर वह रात बिताई॥ ४१॥

प्रभु तुणीरमहं हरिशर जबहीं। प्रविशे कीन्ह उदय रवि तबहीं॥
देखि कटक निज परम बिहाला। नारान्तक भट कोटि कराला॥

जैसे सूर्य भगवान उदय हुए, उस समय वही प्रकाशवान बाण रघुनाथजी ने तूणीर में प्रवेशित हुआ। अपनी सेना की दुर्दशा देखकर नारान्तक ने अपने कठिन योद्धा साथ लिए।

करिबहु शपथ लिये संग बीरा। बषत शक्ति उपल गण तीरा॥
शर अस्तंभन बिपुल पनारे। भये अचल कपि टरहिं न टारे॥

नारान्तक वीरों सहित शपथ कर वानरों पर शक्ति, पत्थर, बाण बरसाने लगा, फिर अनेक स्तम्भन बाण फेंके, जिससे वानर जहां-तहां असमर्थ हो स्थिर हो गये, टलते नहीं हैं।

लै लै पास निशाचर धाई। बधिति जिमि चुंगलिशुक पाई॥
ब्याधि पींजरा सम बहु जाना। भरे जानप्रभाति आयुत प्रमाना॥

फिर तो निशाचर पाश लेकर वानरी सेना को बांधने लगे, जैसे तोतों को। जब नलकी को पकड़ कर झूलने लगते हैं, छोड़ नहीं सकते, वही तोतों को पकड़ने का यन्त्र है। व्याधे जाल से बांधते हैं। हजारों को बांधकर एक ऐसे स्थान में ले जाकर बन्द किया, जैसे व्याधे पशुओं को पिंजरे में पकड़ते हैं।

जे कपि लखे बिपुल बलबंका। ते मूर्छित फेकै गढ़ लंका॥
रावण देखि तनय की करणी। बंदि जन जिमि भुबबल धरणी॥

उनमें नारान्तक जिन वानरों को बलवान देखे, उसे मूर्छित करके लंका में फेंक दे, रावण पुत्र की करणी देख भाट समान अपने पुत्र के भुजबल का अनेक प्रकार से वर्णन करने लगा।

दो०—हरि इच्छा जाने न कस, सुतहि सराहत मूढ़।
काल बिबस मति संभ्रमित, सुनहु ऋषय बुद्धि गूढ़॥ ४२॥

हे याज्ञवल्क्य बुद्धिसागर! सुनो, यह मूर्ख रावण हरि इच्छा न जानकर अपने पुत्र की सराहना करता है, काल के वश होने से मति भ्रान्ति में पड़ गई॥ ४२॥

अंगद हनूमान जब जागे। नारान्तक सन जूझन लागे॥
क्षण एक कीश न पायउ लरई। पुनि सर हति मूर्छा बस करई॥

जब अंगद हनुमानजी जागे, तब फिर नारान्तक से युद्ध करने लगे। क्षण-भर भी वह युद्ध करने नहीं पाये कि फिर नारान्तक ने बाण मारकर उन्हें मूर्छित कर दिया।

याम युगल तेहि कर वरदाना। राखेउ तेहि कारण भगवाना॥
रिपुहिं खिलावत रघुकुल केतु। पालक बुध बाणी श्रुति सेतू॥

शत्रु के बलवान होने का वरदान दोपहर तक था, इसी कारण भगवान ने अब तक उसे रखा। रघुकुल ध्वजा रघुनाथजी के शत्रु के साथ भी खेल करते हैं, कारण कि ब्रह्मादिक के वरदान की वाणी का पालन कर वेद की मर्यादा रखते हैं।

सो युग याम गये जब बीती। तब रघुबीर सजी यह रीती॥
हांक देइ कपि भालु जगाये। भये बिगत मूर्छा सब धाये॥

सो जिस समय दोपहर बीत गया, तब रामजी ने यह कौतुक जय के निमित्त किया कि एक ही हांक देकर रीछ-वानरों को चैतन्य कर दिया, वे मूर्छा रहित होकर सब कोई युद्ध के उत्साही हुए।

हनूमान अंगद जब जागे। राम लखन चरणन अनुरागे॥
प्रभु पद सीस रहे धरि कीशा। तब हंसि बोले श्री जगदीसा॥

जब हनुमानजी और अंगद जागे, तब राम-लक्ष्मणजी के चरणों में प्रेमपूर्वक प्रणाम किया, बहुत समय तक प्रभु के चरणों में सिर रखे रहे, तब रघुनाथजी हंसकर बोले।

सो०—बिधि बाचा लगि आज, तात तुमहिं मूर्छा भई।
पुनि कह प्रभु रघुराज, अब श्रम सपनेहुं अनत नहिं॥ ५॥

हे तात! ब्रह्माजी के वरदान से आज तुम्हें मूर्छा हुई, परन्तु अब मन में धीरज रखो, अब श्रम स्वप्न में भी नहीं होगा।

तुमहिं सुमिरि अंगद हनुमाना। जिति हैं जगत मनुज रण नाना॥
अस बर जबहिं रमापति भाखा। सुनत गिरा हर्षे मृग शाखा॥

हे अंगद हनुमान! मनुष्य तुम्हें स्मरण करके संग्राम में जय प्राप्त करेंगे। यह वर जब रामजी ने दिया, तब वानर प्रसन्न होकर मग्न हो गये।

कहेउ बहोरि बचन रघुबीरा। सुनु अंगद हनुमत रणधीरा॥
तात तुरत तुम उभय सिधावहु। लंकागरे कपि तिनहिं छुड़ावहु॥

फिर रामजी कहने लगे, हे अंगद हनुमानजी! तुम बड़े रणधीर हो। तुम दोनों शीघ्र जाओ और जो वानर लंका में फंस रहे हैं, उन्हें छुड़ाकर लाओ।

सुनि दोउ भट गहि शैल विशाला। सुमिरि कोसलाधीस कृपाला॥
सपदि कीश गढ़ पर चढ़ि गये। देखि लंकमहं खर भर भये॥

यह सुनते ही दोनों योद्धा शिला ग्रहण कर रघुनाथजी का स्मरण कर शीघ्रता से लंकापुरी पर चढ़ गये, उन्हें देखकर लंका में खलबली मच गई।

सकल कपिन कै मूर्च्छा बीती। तोरि पास भजि राम सप्रीती॥
वायु सुत युवराज निहारी। हर्षे कहि जय जयति खरारी॥

इधर ज्योंही लंका में घिरे वानरों की मूर्छा बीती, सबने प्रेम से जय रामजी का उच्चारण कर बन्धन तोड़ डाले। महावीर और अंगद को देखकर जय-जयकार पुकारने लगे।

दो०—मेष बरूथहि पाइ जिमि, बृक गण करहिं संहार।
तिमि मर्दहिं दनुजन समुद, कीश भालु बरियार॥ ४३॥

जैसे भेड़िया भेड़ों को पाकर संहार करता है, इसी प्रकार छहों वानर बड़े वेग और हर्ष से राक्षसों का मर्दन करने लगे॥ ४३॥

याम एक बार अवशेखा। कह अंगद कीशन तन देखा॥
चाल तात अब जहं सुर भूपा। देखिय पद पाथोज अनूपा॥

जब एक पहर दिन शेष रहा, तब अंगदजी वानरों से कहने लगे, हे तात! अब रामजी के पास चलकर उनके चरण-रज का दर्शन कीजिए।

अंगद बचन पवन सुत भाये। सपदि सहित दल प्रभु पहं धाये॥
निशिचर कोटि नरान्तक संगा। करत रहे बहुविधि रण रंगा॥

अंगदजी के वचन हनुमानजी को भाये और शीघ्रता से रामजी के पास आये। एक करोड़ निशाचर नारान्तक के साथी अनेक प्रकार से युद्ध करने लगे।

माया करि निज गात बचावहिं। जहं तहं खल रावण यश गावहिं॥
अदितमंद लखि तिनकर माया। सभय भये जाना रघुराया॥

माया से अपने शरीर को बचाकर वे दुष्ट जहां-तहां रावण का यश गाते हैं, उनकी माया देखकर देवता डर गये, यह बात जानकर रघुनाथजी ने।

दीन्ह नाथ अनुजहि अनुशासन। उठे नमित गहि विशिख शरासन॥
अहिपति कहेउ तिष्ठ क्षण एका। ते कीन्हे रण खेल अनेका॥

लक्ष्मणजी को युद्ध में जाने की प्रभु ने आज्ञा दी, वे तुरन्त धनुष-बाण लेकर उठे। लक्ष्मणजी नारान्तक से बोले अरे दुष्ट! क्षण-भर मेरे सम्मुख स्थिर हो। तैंने अनेक रण खेल किए हैं।

छं०—तैं कीन्ह खल अनेक निधि अब तिष्ट खल रण स्थला।
इमि कहि अशीश चढ़ाइ धनु शर करन निशिचर दल मला॥
निज अनी निरखि निदान हरि अरि सुवन धावा रिसि भरा।
डारत अनेक नराच प्रभु पर शिला तरुवर भू धरा॥

अरे दुष्ट! तैंने अनेक खेल किए हैं, अब क्षण-मात्र रण-स्थल में स्थिर हो तो तुझे बताऊं, यह कह लक्ष्मणजी ने धनुष चढ़ा बाणों की वर्षा से राक्षसों का दल नाश कर दिया, अपनी सेना का नाश देखकर रावण का पुत्र बड़ा क्रोध करके दौड़ा और अनेक बाण शिला और वृक्ष पर्वत लक्ष्मणजी के ऊपर छोड़े।

छं०—रघुबीर अनुज प्रवीण खलदल दलन श्रुति यश गावहिं।
तरु उपल गिरि अति तीर उपरहिं बाण लखन चलावहिं॥
रिपु अस्त्र शस्त्र अनेक आयुध कनक करि करि डारहीं।
सुर गण प्रफुल्लित सुमन झरि करि जयति लखन पुकारहीं॥

रघुवीरजी के भाई लक्ष्मण राक्षसों के मारने में बड़े प्रवीण हैं। वह जिनका यश वेद गाते हैं, जब लक्ष्मणजी बाण चलाते हैं। राक्षसों के वृक्ष, पत्थर, पर्वत आदि सब चूर्ण हो जाते हैं, शत्रुओं के अस्त्र-शस्त्र अनेक आयुध लक्ष्मणजी ने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। देवता प्रसन्न होकर फूल बरसा कर जय-जयकार करने लगे।

दो०—मायापति के अनुज सन, माया करत अयान।
लगत न एको जान जिय, तब खल निकट तुलान॥ ४४॥

वही अज्ञानी मूर्ख मायापति के छोटे भाई से माया करने लगा, जब कोई छल-कपट न चला, तब वही दुष्ट बहुत निकट आया॥ ४४॥

हना लखन उर पविसम सायक। लगत गिरे रण महि अहिनायक॥
पुनि खल दल भा प्रबल अपारा। भक्षण लाग भालु कपि भारा॥

लक्ष्मणजी के हृदय में वज्र के समान बाण मारा, जिसके लगते ही लक्ष्मणजी रण में गिर पड़े, तब तो राक्षसों का दल बहुत प्रबल होकर रीछ-वानरों को खाने लगा।

चले पराय कीश भयभीता। अब न वचन करि काल प्रतीता॥
निशाचर धारि भालु कपि वेषा। लागे खान कपिन अस देखा॥

वानर डर के मारे भाग चले और विचार किया कि अब नहीं बचेंगे। हमारा काल आ गया। राक्षस रीछ-वानरों का वेष धारणकर रीछ और वानरों को खाने लगे।

कपि डर कीश भालु डर ऋच्छा। आपु आपु भय मिलन अनिच्छा॥
कोई न काहु निकट नियराई। जा जेहि पाव ताहि तेह खाई॥

वानर से वानर, रीछ से रीछ डरने लगे। एक-दूसरे से मिलने में अनिच्छा करने लगे, कोई किसी के निकट नहीं जाता, जो जिसे पाता है, उसे खा जाता है।

पुनि शठ साधि बिभीषण रूपा। गइ अंगद हनुमत कपि भूपा॥
काहु न यह माया कछु जानी। कपट मिलाय विभीषण ठानी॥

फिर वह नीच विभीषण का रूप धारण कर हनुमानजी, अंगद और सुग्रीव के पास गया। यह माया किसी ने नहीं जानी। कपट से विभीषण का वेष बनाकर उसने मिलने का निश्चय किया।

दो०—तेहि अवसर जागे लखन, देखा सेन विनाश।
अहिरावण छल पवन सुत, समुझत उड़ा अकाश॥ ४५॥

उस समय लक्ष्मणजी की मूर्छा टूटी, देखा तो सेना का विनाश हो रहा है। इधर महावीरजी अहिरावण के छल को स्मरण कर आकाश को उड़ गये॥ ४५॥

गर्जत जाय भयंकर भारी। फटेउ हृदय सुनि निशिचर जारी॥
माया कृत शर लखन पंवारा। उघरे कपट कपाट अपारा॥

ऊपर जाकर बड़ी गरजना की, जिसके कारण निशाचरों के हृदय फट गये। लक्ष्मण ने माया को हरने वाला बाण फेंका, जिससे तत्काल राक्षसों के कपट खुल गये।

नारान्तक कै माया बीती। गयउ यज्ञशाला अति प्रीती॥
खोजिसि सकल समग्री ताकी। कीन्ह आरम्भ विजय निजताकी॥

इधर नारान्तक की माया नष्ट हुई, तो वह बड़े प्रेम से यज्ञशाला को गया। विजय यज्ञ करने के निमित्त उसकी सामग्री ढूंढ़ने लगा।

यज्ञ आसुरी तेहि तब ठाना। पशु समूह बलि कारण आना॥
भये निशामुख श्रमवश सैना। फिरे सुमिरि सब राजिव नैना॥

फौरन असुरी यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया, बहुत से पशु बलिदान करने के निमित्त ले आया, तब संध्या होते समय सेना रामजी को स्मरण कर अपने स्थान पर आई।

तुरत अहीश राम पहं आये। सहित अना प्रभु पद शिर नाये॥
कृपा अयन निरखे मृग शाखा। प्रभुआश्रम छीनदीन अभिलाखा॥

फौरन सेना सहित लक्ष्मणजी ने आकर रामजी के चरणों में सिर नवाया। परिश्रम से हीन दीन वानरों को जैसे रामजी ने कृपा करके देखा कि वे विगत श्रम हो गये।

दो०—टिकहु थलनि सबसन कहा, सुख सागर रघुनाथ।
पाय सुआयसु भालु कपि, चले सुमिरि श्रीनाथ॥

तब सुख के सागर रामजी ने सबसे कहा तुम सब अपने-अपने आसन पर विराजो। आज्ञा पाकर नाम स्मरण कर सब कपि सेना अपने आसनों पर विराजे॥ ४६॥

तब रघुनाथ अनुज उर लावा। निज आसन समीप बैठावा॥
मघवासुत सुत अरु हनुमाना। इन सम भाग्यवन्त नहिं आना॥

तब रघुनाथजी ने लक्ष्मण को हृदय से लगाकर अपने निकट बठा लिया। अंगद और हनुमानजी के समान तो कोई भाग्यवान नहीं है।

अमलांबुज पद गहि निजपानी। दाबत चरण सनेह भवानी॥
जाम्बवन्त लंकेश हरीशा। प्रभु समीप सब मुदित मुनीशा॥

कोमल चरण-कमल अपने हाथ से ग्रहण कर स्नेह से दबाते थे। हे पार्वती! जामवन्त, विभीषण, सुग्रीव सब प्रसन्नता से रामजी के समीप बैठे हैं।

अनुज सखा नारान्तक करणी। युद्ध प्रबलता बहुबिधि बरणी॥
शिव प्रताप तेहि अमित प्रतापा। मरन न दीन्हे बहु संतापा॥

लक्ष्मणजी और विभीषण ने नारान्तक की करणी और युद्ध की प्रबलता बहुत प्रकार से वणन की, शिवजी के प्रताप से इसका प्रताप बहुत है, मरता नहीं, बड़े दुःख दिए हैं।

सुने बचन रघुपति मुसुकाने। अति सनेह हर चरित बखाने॥
सुनहु सकल हम शम्भुन आना। जिनहिं भेद ते वश अज्ञाना॥

यह वचन सुन रामजी मुस्कराते और बड़े प्रेम से शिवजी के चरित्र का वणन करने लगे। महात्माओं! तुम सब सुनो हम और शिवजी अलग नहीं है, जो भेद मानते हैं, वह अज्ञानी हैं।

दो०—जे सुमिरहिं शिव सह उमा, ते जानहु मम पिय।
शंकर भजहिं सो मोहिं भजहिं, मोहिं सो शम्भु अतीय॥ ४७॥

जो पार्वती सहित शिवजी को स्मरण करते हैं, वह मेरे बड़े प्यारे हैं, जो शिवजी का भजन करते हैं, वह मेरा भजन करते हैं, मुझको शिवजी अधिक प्यारे हैं॥ ४७॥

चारि पदारथ करतल ताके। बसहिं महेश उमा उर जाके॥
जो मम प्रण सिव सदा निबाहा। सो जय देव न संशय आहा॥

उसके साथ में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ हैं, जिसको शिव पार्वती प्राणों से प्यारे हैं। जिन शिवजी ने सदा मेरा प्रण निबाहा है, वह अब भी देंगे, इसमें संदेह नहीं है।

सुख कलभ जय विजय बिभूती। शंकर सुमिरत होय अकूती॥
भक्ति मोर शंकर आधाना। जलाधीन जिमि जीवन मीना॥

सुख, स्त्री, जीत, ऐश्वर्य यह सब शिवजी के स्मरण करने से प्राप्त हो जाते। बहुत क्या मेरी भक्ति भी शंकर के आधीन है, जैसे मछली का जीवन जल के अधीन है।

कह आश्चर्य नारान्तक एहा। मोपर गिरजा पति अति नेहा॥
सुमिरहु सदा विश्व इक नाथा। कपट त्यागि सब नावहु माथा॥

यह नारान्तक ऐसा हो गया, तो कुछ आश्चर्य नहीं। मुझ पर भी शिवजी का परम स्नेह है। सब कोई विश्वनाथ का स्मरण करो, कपट त्याग कर माथा नवाओ।

सोइहि बिजय धीर मन धरहू। बेगि उपाय पाव सुख करहू॥
शम्भु उपासन कर मम दासा। तात हृदय धरि दृढ़ विश्वासा॥

जीत होगी, मन में धीरज रखो। अभी उपाय हुआ जाता है, प्रसन्न रहो। शिवजी की उपासना करने वाले मेरे दास हैं। हे लक्ष्मण! यह मन में दृढ़ विश्वास रखो।

दो०–जो नर चाहत भक्ति मम, सो छल कपट दुराइ।
शिवा समेत गिरीश पद, निशि दिन रह मन लाइ॥ ४८॥

जो मनुष्य मेरी भक्ति चाहता हो, तो छल-कपट को छोड़कर पार्वती समेत शिवजी के चरणों का भजन करे॥ ४८॥

मन क्रम वचन शम्भु पद आसा। करहिं ताहि उर सब गुण बासा॥
निर्भय करि जो हर पद नेहू। ता उर रमासहित मन गेहू॥

जो मन-कर्म-वचन से शिवजी का स्मरण करते हैं, उनके हृदय में सब गुण बसते हैं, जो निर्भय शिवजी के चरणों में प्रेम करता है। मैं लक्ष्मी सहित उसके मन में बसता हूं।

भव वारिधि लांघहि बिनु खेवहिं। यह बिचारि बुधजन भव सेवहिं॥
भव भंजन यह हित उपदेशा। अनुजहिं सखहिं बुझाव रमेशा॥

बिना खेवे ही संसार सागर को लांघ जायेंगे। यही विचार कर चतुर नर शिवजी को भजते हैं। संसार का दुःख दूर करने वाला यह हितकारी उपदेश लक्ष्मण और और सुग्रीव को रघुनाथजी ने सुनाया।

बुध वाणी सुनि अति सुख पावा। अहि पति राम चरण सिर नावा॥
अंगद हनुमान नल लीला। कपि पति अरु ऋक्षेशा सुशीला॥

यह निश्चय वाणी सुनकर सबने बहुत सुख पाया। लक्ष्मणजी ने रघुनाथजी के चरणों में सिर झुकाया। अंगद, हनुमान, नल-नील, सुग्रीव और जामवन्त।

सहित बिभीषण राज न साता। सुन श्री मुख हर यश विख्याता॥
रामहिं शिवहि एक जे जाने। भय तजि नाम जपत हरषाने॥

विभीषण सहित यह सातों जन श्रीमुख से शिवजी का यश श्रवण कर रामजी और शिवजी को एक जानकर भय त्याग प्रसन्न होकर नाम जपने लगे।

दो०–कहत सुनत इतिहास सुचि, निशि बीती युग याम।
खग पति आये देव ऋषि, जित शोभित श्रीराम॥ ४९॥

यह पवित्र इतिहास कहते-सुनते दोपहर रात बीत गई। हे गरुड़जी! उस समय जहां रघुनाथजी बैठे थे, वहां नारदजी आये॥ ४९॥

राम लखण सुख शीव बिराजे। मार अपार निहारत लाजे॥
निरखि मानि मुनि हृदय सनाथा। उठे हर्षि प्रभु रघुकुल नाथा॥

इस प्रकार सुखनिधान राम-लक्ष्मण विराजे, जिनकी शोभा देखकर कामदेव भी अत्यन्त लज्जित हुए। मुनि को देखते ही रामजी उठ बैठे। मुनि ने अपने को सनाथ माना।

शीश नाइ प्रभु आसन दीन्हा। आशिष पाइ हर्षि कीन्हा॥
मुनि नीके हरि रूप बिलोका। यथा इन्दु लख सुख लह कोका॥

रामजी ने सिर झुका नारदजी को आसन दिया और आशीश पाकर बहुत प्रसन्न हुए। मुनिराज ने रामजी का रूप देखा, चन्द्रमा को देखकर जैसे चकोर प्रसन्न होता है ऐसे ही हुए।

पुलकि गात तब कह ऋषि राजा। सुनहुं नाथ आयहु जेहि काजा॥
चतुरानन पठवा मोहि स्वामी। तदपि कृपा निधि अन्तर्यामी॥

तब शरीर से पुलकित हो नारदजी बोले सुनिए, स्वामी! मैं जिस कारण आया हूं। हे स्वामी! यद्यपि आप अन्तर्यामी हैं, तथापि ब्रह्माजी ने मुझे भेजा है, सो सुनो।

सदा अनाथ नाथ भगवाना। बिनय बिरंचि करिय परिमाना॥
जब लगि होत प्रभात न पावहिं। तब लगि हरिहर सुत लै आवहिं॥

हे भगवान आप सदा अनाथों के नाथ हैं, सो कुछ ब्रह्माजी के विनययुक्त वचन मानिए कि जब तक प्रातःकाल न हो, तब तक महावीरजी जाकर सुग्रीव पुत्र दधिबल को ले आवें।

दो०—जपत निरन्तर नाम तव, सो जानहु भगवान।
विधि वर हित इत आनिये, तेहि कह कृपा निधान॥ ५०॥

हे भगवान् वह सदा आपके नाम को जपता है, सो जानिए, हे कृपानिधान! ब्रह्मा के वरदानुसार उसे बुलवाइये॥ ५०॥

नारान्तक बध है तेहि हाथा। दधि बल नाम भक्ति तव नाथा॥
नाथ बहुत यह खलहिं खिलावा। रण बिलोकि देवन दुख पावा॥

उसी के हाथ से नारान्तक वध होना है, वह दधिबल तुम्हारा ही भक्त है। हे स्वामी! आपने इस दुष्ट को बहुत खिलाया है। अब मार डालो। यह संग्राम देख देवता डर गये हैं।

अब रघुबीर करहु सोइ बाता। बिनु प्रयास रिपु मरै प्रभाता॥
तेहि सन तुमहि न साह लराई। दधि बल सन्मुख करहु बुलाई॥

हे रघुनाथजी! अब यह उपाय कीजिए, जो बिना ही प्रयास प्रातःकाल शत्रु मर जाये। उसके साथ युद्ध करना तुम्हें नहीं शोभा देता, इसके सामने बुलाकर दधिबल को करो।

सबिनय नाइ शीश वर भाखी। गवने मुनि प्रभु छबि उर राखी॥
नारद गये जबहिं बिधि लोका। वायु तनय तन राम बिलोका॥

अच्छे बोलने वाले नारदजी विनयपूर्वक सिर झुका रघुनाथजी की छवि हृदय में धारण कर गये। जब नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये, तब रामजी ने महावीरजी की ओर देखा।

तात तुरत तुम गवनहु तहंवां। वारिध महं धवला गिरि जहंवां॥
तहं दधिबल रह ध्यान लगाये। बहुत दिवस चलि गये सुभाये॥

हे तात ! तुम तुरन्त वहां जाओ, जहां समुद्र में धौलगिरि पर्वत है, वहां दधिबल ध्यान लगाये रहता है, तुम उसे शीघ्र लाओ । सहज ही बहुत दिन बीत गये ।

दो०—अहै तपोबल तेजस्वी, तात तासु ढिग जाइ ।
मन प्रसन्न करि चतुराई, आनहु बेगि बुलाइ ॥ ५१ ॥

हे महावीरजी ! वह बड़ा तपस्वी बलवान् तेजनिधान है । उसके निकट जाकर उसे प्रसन्न कर चतुरता से शीघ्र बुलाकर लाओ ॥ ५१ ॥

पवन कुमार पाइ अनुशासन । चलै बन्दि पद हर्षि उदासन ॥
वेग वन्त धावा कपि कैसे । बर नराच दधि सुत ते जैसे ॥

हनुमानजी आज्ञा पाते ही प्रभु के चरणों की वन्दना कर प्रसन्नता से चले, उदास नहीं हुए, कपि ऐसे वेग से धामवान हुए, जैसे बाण चलता है ।

लोक अर्द्ध घटिका तेहि ठामा । पहुचे वायु पुत्र बल धामा ॥
देखि तरणि सम तासु प्रकासा । ठाढ़ भयउ कपि मन्दिर पासा ॥

साढ़े तीन घड़ी में पर्वत पर जा पहुंचे, वायुपुत्र बड़ा बलधाम है । उस मन्दिर के अति निकट जाकर खड़े हुए, उस मन्दिर का सूर्य के समान प्रकाश है ।

दण्ड युगल कपि स्थित रहेऊ । हिय महं राम राम अस कहेऊ ॥
उत रण होई होत प्रभाता । इत इनकेर चित हरिपद राता ॥

दो घड़ी तक महावीरजी वहां खड़े रहे और अपने मन में राम-राम स्मरण करते रहे, कोई मन्दिर में बोला नहीं । उधर प्रातःकाल होते ही युद्ध होगा । इधर इनका चित्त हरि चरणों में मग्न हो गया ।

क्षण एक कपि मन कीन्ह बिचारा । प्रभु पहं चलिऐ कवन प्रकारा ॥
जौ गृहे सहित चलहुंलै पही । नहिं अस अयुत भक्त सनेही ॥

एक क्षण कपि ने मन में विचार किया, रामजी के यहां कैसे चलूं, जो अब इनको घर समेत उठा ले चलूं तो रघुनाथजी की आज्ञा नहीं है, क्योंकि भक्तों पर प्रेम करते हैं ।

दो०—बुध जन शीश शिरोरतन, अति लजात मुनिराय ।
ताहि जगावन हेत तब, कीन्हे अमित उपाय ॥ ५२ ॥

हे मुनीश ! पण्डितजनों के रत्न महावीरजी ने लज्जाते-लज्जाते उसके जगाने के अनेक प्रयत्न किये ॥ ५२ ॥

अचल ध्यान कपि तासु प्रमाना । तजि प्रवीणता भजि भगवाना ॥
राम चरण चित कपि बर दयऊ । दण्ड एक ओरो चलि गयऊ ॥

दधिबल का अचल ध्यान था, यही विचार प्रवीणता त्याग हनुमानजी भगवान् को स्मरण करने लगे । महावीरजी ने रामजी के चरणों में मन लगाया, इसमें एक घड़ी और बीत गई ।

बिधि प्रेरित दधिबल लघुशंका । करन उठेउ देखा भट बंका ॥
जय श्रीराम वायु सुत बोला । सुनि दधिबल लोचन तब खोला ॥

विधिवश उसी समय दधिबल पेशाब करने को उठा, तो बड़े योद्धा को खड़े देखा। जय श्रीराम की ! यह महावीरजी बोले, सुनते ही दधिबल ने अपने नेत्र खोले।

बूझि हरिहि कीशहि उर लाई। कही परस्पर दोउ कुशलाई॥
पुनि हनुमान कहेउ सुनु भ्राता। चलहु बिलोकन त्रिभुवन त्राता॥

दधिबल ने हृदय से लगा हनुमानजी की कुशल पूछी, दोनों ने परस्पर कुशल वर्णन की। फिर हनुमानजी बोले हे भ्राता ! त्रिलोकी की रक्षा करने वाले भगवान् के दर्शन को चलो।

सानुज राम सुखद पदकञ्जा। निज मकरन्द शिला अघ गंजा॥
जेहि लगि तप कीन्हेउ बड़ काला। सो तुम पर अनुकूल कृपाला॥

भाई सहित उनके सुखदायक चरणों के दर्शन करो, जिनके चरणों की धूरि ने शिला का भी उद्धार किया। जिनके निमित्त बहुत काल तक तप किया, सो इस समय तुम पर खुश हैं।

दो०–धूर जटी हृदय मानसर, बसत हंस इव जोइ।
सादर तुम कहं लेन लगि, पठवां मोहिं प्रभु सोइ॥ ५३॥

जो शिवजी के मन मानस में हंस के समान वास करते हैं। उन्होंने आदरपूर्वक मुझे तुम्हें बुलाने को भेजा है॥ ५३॥

सुनि शुभ बचन सुकराठ कुमारा। हरि पहं हरि संग तुरत सिधारा॥
आये नाथ निकट मृग शाखा। देखे पद जे हर हिय राखा॥

यह बचन सुनते ही सुग्रीव का पुत्र महावीरजी के संग भगवान के पास गया, दोनों स्वामी के निकट आये और शिवजी ने जिन चरणों को हृदय में धारण कर रखा है, उन्हें देखा।

रहेउ चरण गहि प्रीति समेता। दधिबल निरखेउ कृपा निकेता॥
सानुज हरहि मिले सुख पुञ्जा। तासु पाणिपहि निज कर कञ्जा॥

प्रीति समेत चरण पकड़ लिए और कृपासागर रघुनाथजी के दर्शन किये। रघुनाथजी प्रसन्न होकर भाई सहित मिले और उसका हाथ पकड़ लिया।

बैठे ताहि निकट बैठावा। तेहि अवसर सुकराठ तहं आवा॥
निरखि तनय कपि पति हरषाना। मिलत प्रेम नहिं जाय बखाना॥

बैठे और उसे भी बैठाया, उसी समय वहां सुग्रीव आया। अपने पुत्र को देखकर सुग्रीव बड़े प्रसन्न हुए और मिलते समय का प्रेम बखाना नहीं जाता।

गर मणि पन्नग जनु पुनि पाई। देही देह मीन जल पाइ॥
सुख सुग्रीव लहेउ प्रभु भेटे। अवगुण तीनि ताहि क्षण मेटे॥

जैसे सांप की मणि मिल गई हो अथवा देह में प्राण जाये अथवा मछली जल पावे ऐसे सुखी हुए, सुग्रीव ने बड़ा सुख माना, जब प्रभु उससे मिले उसी समय तीनों अवगुण मिट गये।

सो०–दधिबल बालि कुमार, मिले परस्पर हर्षि हिय।
भयउ आइ भिनुसार, न्हाइ सबनि प्रभु पद गहे॥ ६॥

दधिबल और अङ्गदजी मन में बड़े प्रसन्न होकर मिले और प्रातःकाल होने को हो गया, सब किसी ने स्नान कर प्रभु के चरणों का स्पर्श किया॥ ६॥

जहं तहं समर करन बनचारी। चले कहत जय लखन खरारी॥
उहां नरान्तक प्रात प्रधावा। रथ चढ़ि चलेउ भयंकर योधा॥

फिर जहां-तहां युद्ध करने के निमित्त जय राम-लक्ष्मण का उच्चारण कर वानर चले। उधर नारान्तक भी प्रातःकाल भयंकर वीर रथ पर चढ़कर चला।

निशिचर हठी सुभट संग ताके। आयुध अखिल भयानक बांके॥
महि संग्राम निशाचर ठाढ़े। अमित मेघसम अति रिस बाढ़े॥

साथ में उसके बड़े हठी बांके राक्षस हैं, सम्पूर्ण भयंकर आयुध लिये हैं। संग्राम-भूमि में राक्षस खड़े हुए काले मेघों के समान बड़े क्रोध में हुए।

करि माया तेहि गात छिपावा। भयउ प्रगट जब प्रभु ढिग आवा॥
दधिबल लखा सखा चलि आयउ। भुजा पसारि हर्षि उठि धायउ॥

नारान्तक माया से अपना शरीर छिपाये चला आया, जब रघुनाथजी के समीप आया, तब प्रगट हुआ। इधर दधिबल ने अपने गुरु भाई को आता हुआ देखा तो भुजा पसारकर मिलने को आया।

नारान्तकहु देखि गुरु भाई। मुदित मिलेउ उर भयउ अधाई॥
भेटि सप्रेम बूझि कुशलाता। निज निज दशा कीन्ह विख्याता॥

नारान्तक भी अपने गुरु भाई को आता हुआ देखकर बड़ा प्रसन्न होकर उससे मिला। प्रेम से मिलकर कुशल-क्षेम पूछी, तब सबने अपनी-अपनी दशा वर्णन की।

दो०—हरिपति पूत प्रवीण अति, सुनि तेहि मुख विख्यात।
लगे बुझावन मित्र कहं, सुनहु बीयपति बात॥ ५४॥

सुग्रीव पुत्र चतुर था, नारान्तक की वार्ता सुनकर तथा मित्र जानकर समझाने लगा। हे बीयपति गरुड़जी! यह बात सुनो॥ ५४॥

वंश सुभाव सत्य कवि कहहीं। फल पियूष विषबेलि न लहहीं॥
समुझहु तात बिचारि निदाना। किये अनीत न जग कल्याना॥

कविजनों ने वंश का प्रभाव सत्य कहा है कि विष की बेलि में अमृत का फल नहीं लगता। हे तात! इसका परिणाम का अन्त विचार करके देखो, अनीति करने से जगत में कल्याण नहीं होता।

पितु चरित्र समुझहु मनमाहीं। राम बिरोध कतहुं जय नाहीं॥
तुम प्रवीण भा मति भ्रम कैसे। कूपधसत विक चाट अनैसे॥

पिता के चरित्र मन में विचार कर देखो, रघुनाथजी से वैर करने में कहीं भी जय न होगी। तुम तो चतुर हो, तुम्हारी मति में भ्रम कैसे हुआ। जैसे मार्ग में चलते कुआं आ आये, तो उसमें भी घुसकर जैसे कोई स्थान पर पहुंचना चाहे।

तुमहु कीन्ह दिन चारि लड़ाई। जानेउ भालु कीश बल भाई॥
तजि कुमन्त्र संभव अज्ञान। कहहु पाहि रघुबर भगवाना॥

तुमने भी चार दिन युद्ध करके रीछ-वानरों का बल देख लिया। इस कारण अज्ञान से उत्पन्न हुए कुमन्त्र को त्याग कर रघुनाथजी की शरण में जाकर क्षमा मांगो।

सफल करहु भव प्रभु पद परसी। करहहिं अभय तोहिं समदरसी॥
मानहु सीख मोरि सुखकारी। प्रणतपाल रघुबीर खरारी॥

रामजी के चरण छूकर अपना जन्म सफल करो, वे समदर्शी तुमको अभय कर देंगे, मेरी सुखदायक शिक्षा मान लो। रामजी राक्षसों के मारने वाले हैं तो भी दीनों के पालनहार हैं।

दो०—सारंगी शर तरणि सम, दश मुख बपु खग लेष।
जरत राखु यहि समय तुव, करि बिज्ञान विशेष॥ ५५॥

रामचन्द्रजी के बाण सूर्य हैं, रावण का शरीर पक्षीवान् है, सो इस समय तुम अपने ज्ञान के बल से रावण को नाश से बचा लो॥ ५५॥

सुनत वचन गुरु भ्राता करा। नारान्तक भा क्रोध घनेरा॥
बहन लाग खल ताहि कुभांती। सहज सभीत कीश दिन राती॥

गुरु भाई के वचन सुनकर नारान्तक को बड़ा क्रोध आया। वह दुष्ट दधिबल को अति कुटिल बातें कहने लगा कि वानर स्वाभाविक डरपोक है।

बालिहि हतेउ जौन तपधारी। भा अंगद तिन आज्ञाकारी॥
दधिबल यह बानर कुल रीती। हमरे करहिं न अरिसन प्रीती॥

जिन तपस्वियों ने बालि को मारा अङ्गद उन्हीं का आज्ञाकारी हुआ। सो हे दधिबल यह वानर वंश की रीति है। हमारे यहां शत्रु से प्रीति नहीं करते।

यह कहि प्रभु सन्मुख सो धावा। दधिबल लूम लपेटि टिकावा॥
नारान्तक कह रे शठ बानर। तव तन नहीं मोर डर कादर॥

यह कहकर वह प्रभु के सम्मुख दौड़ा। दधिबल ने अपनी पूंछ में लपेट कर टिका लिया। तब नारान्तक बोला - रे मूर्ख वानर! तेरे मन में मेरा कुछ भय नहीं है।

छांडहुं मूढ़ समुझि गुरु भाई। केहि अस पेलि चला कठिनाई॥
तब सुकराठ क्रोधित भयऊ। सपदि जाय आगे गहि लयऊ॥

हे मूर्ख! गुरु भाई समझ कर मैं तुझे छोड़ता हूं। यों कहकर कठिन धक्का देकर चला, तो दधिबल भी क्रोधित हुआ और शीघ्रता से कूदकर आगे जाकर पकड़ा।

दो०—नारान्तक दधिबल भिरे, निरखि भालु अरु कीश।
लजे लरन संग निशिचरन, कहि जय श्रीजगदीश॥ ५६॥

उस समय नारान्तक और दधिबल युद्ध करने लगे, यह देखकर रीछ-वानर रामजी की जय-जयकार उच्चारण कर निशाचरों के संग युद्ध करने लगे॥ ५६॥

छं०—कपि शूर संहारे शिलन मारि। बहु मर्दि करे सिकता पहारि॥
भट बिहबावल बासी जितेक। कपि मारि गिराये बचन एक॥

कपियों ने शिला मार राक्षसों का संहार कर दिया, बहुतों को मल-मलकर मारा वे रेत के पर्वत लगते थे। बिहबावलपुर के जितने राक्षस थे, सभी को मार डाले, एक भी न बचा।

रह एकाकी मनुजाद बीर। किये द्वन्द्व युद्ध उरगाद धीर॥
दोउ लरतल हैं छबि एक भांति। गिरि कज्जल कञ्चन उभय गति॥

कागभुशुण्डि बोले कि हे गरुड़जी ! बस एक नारान्तक ही वीर राक्षस रहा। उससे दधिबल का द्वन्द युद्ध होने लगा। दोनों को युद्ध करते समय अनेक प्रकार की छबि दिखाई पड़ती थी, जैसे काला और सोने का पर्वत युद्ध कर रहा हो।

युग घटिका ऊपर एक याम। दोउ भिरे समर बल योग धाम॥
पुनि भा अलक्षो करत युद्ध। बलवंत उभय श्रमगत सक्रुद्ध॥

एक पहर और दो घड़ी तक दोनों बलवान् महायुद्ध करते रहे, युद्ध करते-करते नारान्तक अन्तर्धान हो गया, दोनों बली थे, किसी को कुछ श्रम न हुआ और भी बड़े क्रोधित हो गये।

कह षट प्रकार श्रुति युद्ध रीति। सुख मानेउ सर देखत सप्रीति॥
लखि पुत्रइकाकी पुलकि तात। कह बालि अनुज अति हर्ष बात॥

शास्त्र में छः प्रकार से युद्ध करने की रीति लिखी है, सो उसी प्रकार से युद्ध होता देख देवता अति प्रसन्न हुए। पुत्र को अकेला युद्ध करते देखकर पुलकित शरीर होकर सुग्रीव जामवन्त से प्रसन्न होकर बोले।

दो०—जामवन्त सन बचन मृदु, कहेउ सुकण्ठ पुकारि।
कहहु तात दधिबल कबहि, दनुजहिं डारिहि मारि॥ ५७॥

जामवन्त से सुग्रीव ने यह वचन कहे कि हे तात ! यह दधिबल इस निशाचर को कितनी देर में मार डालेगा॥ ५७॥

समर करत लागी अति बारा। यह सुनि बोलेउ ऋक्ष भुवारा॥
क्षणक हृदय धरि धरि कपीसा। दधि बल गुरुसन लही अशीशा॥

युद्ध करते-करते बड़ी देर हो गई। यह सुनकर ऋक्षपति जामवन्त बोले हे सुग्रीव ! क्षण मात्र हृदय में धीरज रखो। दधिबल को तो जीतने का गुरु ने आशीर्वाद ही दे दिया है।

सो अवसर अब आन तुलाना। एक पलक महं मरहि अयना॥
सुनी हरीश मनमहं अति हर्षे। तबहीं बिबुध सुमन बहु बर्षे॥

सो समय अब आ गया है, अब यह राक्षस एक पल में मरता है। यह सुनकर सुग्रीव मन में अति प्रसन्न हुए, तब देवताओं ने फूल बरसाए।

दधिबल धन्य भुजा बल तोरा। रण कौतूहल कीन्ह न थोरा॥
हरि स्तुति सुनि हरि अरि कोपा। कपिहि सहित खल भयउ अलोपा॥

कहने लगे, दधिबल ! तेरी भुजाओं को धन्य है, तैंने संग्राम में बहुत कौतुहल कर दिया। वानर की बड़ाई सुनकर वानर शत्रु नारान्तक दधिबल सहित अन्तर्धान हो गया।

योजन अयुत अष्ट नभ जाई। दधि बल सुमिरि हृदय रघुराई॥
गहि मनुजाद भूमि पर डारा। करि चिकार तेहि मरती बारा॥

अस्सी हजार योजन आकाश में चला गया, तब दधिबल ने हृदय में रामजी का स्मरण कर राक्षस को पकड़कर पृथ्वी पर पटका, तब नारान्तक ने मरते समय घोर चिक्कार मारी।

छं०—मरती समय अति शब्द करि दशमुख तनय हरि हरि कही।
तजि अधम तनु धरि सुभग बपु द्विजनाथ सुनि सो गति लही॥
जेहि हेतु सुर मुनि सिद्ध नाना भांति जप तप मख किये।
श्रीराम करुणा सिन्धु से फल सहज ही दनुजै दिये॥

मरते समय बड़ा शब्द करके रावण के पुत्र ने राम-राम का उच्चारण किया। यह नीच शरीर त्याग करके श्रेष्ठ दिव्य शरीर धारण कर परम पद पाया, अर्थात मुक्त हो गया। याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं कि हे द्विजनाथ! जिस मुक्ति के निमित्त देवता, मुनि, सिद्ध अनेक प्रकार के जप-तप-यज्ञ करते हैं। वह मुक्ति करुणा-सागर रघुनाथजी ने सहज ही में राक्षसों को दी है।

दो०—देखि तासु गति बिबुध गण, अभय भये खगराइ।
प्रमुदित बरषे पुहुप झरि, रामचरण चित लाइ॥ ५८॥

हे गरुड़! उसकी यह गति देखकर देवता निडर हो गये और रघुनाथजी के चरणों में मन लगा कर फूलों की झड़ी लगा दी॥ ५८॥

मरा नरान्तक दधि बल जानी। तोरि तासु शिर गहि निज पानी॥
रुण्ड तासु गहि लंक संचारी। आपु चले जहं नाथ खरारी॥

दधिबल ने यह देखकर कि नारान्तक मर गया, उसका सिर तोड़कर हाथ में मे लिया और रुण्ड लंका में फेंक दिया और आप रामचन्द्रजी के पास आया।

निशा प्रवेश भूत बैताला। चढ़ि चढ़ि बाहन वेष कराला॥
जाइ समर महि सुखद समेता। उदर अघाइ गये सुनिकेता॥

उस समय रात्रि होने को थी। भूत, वैताल तीक्ष्ण भयंकर वेष बनाये बाहनों पर चढ़े समर-स्थल में सुखपूर्वक जाकर पेट भरकर अपने-अपने स्थान को चले गये।

आयउ दधिबल प्रभु के पासा। देखि हर्षि उठे रमा निवासा॥
सानुज राम मिले अति प्रीती। परम प्रसाद नाथ नित रीती॥

दधिबल रामचन्द्रजी के पास आया, रामजी देखकर बहुत प्रसन्न हुए। लक्ष्मण सहित प्रेम से रामजा मिले, परम प्रसन्न होने की श्रीरामजी की नीति रही है।

बैठे रघुकुल मणि दोउ भाई। सखा सुतहि निज ढिग बैठाई॥
हनुमदादि मर्कट प्रभु पाहीं। नाय माथ मुदित मन माहीं॥

राम-लक्ष्मण रघुकुलमणि बैठे और मित्र के पुत्र दधिबल को बैठाया। हनुमान आदि वानर भी प्रभु के चरण-कमलों में सिर झुका अति प्रसन्न होकर बैठे।

दो०—राम रजायसु पाय पुनि, होइ विगत श्रम कीश।
तब दधि बल प्रभु चरण गहि, आगे धरि अरि शीश॥ ५९॥

फिर रामजा की आज्ञा पाकर कृपादृष्टि से वानर श्रमरहित होकर बैठे, उस समय नारान्तक का सिर दधिबल ने रामजी के आगे रखा॥ ५९॥

समुझि कौतुकी रिपु सुत शीशा। सुनहु सुकराठ कहेउ जगदीशा॥
नारान्तक कर शीश धरावहु। यतन समेत न सेत चलावहु॥

कौतूहलाकान्त हो रघुनाथजी ने नारान्तक का सिर देखकर सुग्रीव से कहा - नारान्तक का सिर संभालकर रखो, फेंक मत देना।

नाथ रजाय पाय कपिराई। राखेउ सो सिर यतन कराई॥
पुनि दधिबल हरि कीन्ह बड़ाई। श्रीपति श्रीमुख बहुबिधि गाई॥

रघुनाथजी की आज्ञा पाकर सुग्रीव ने सिर यत्नपूर्वक रखवा दिया, फिर भगवान् ने अपने मुख से दधिबल की बड़ाई अनेक प्रकार से की।

जासु बड़ाई किय बड़ ईशा। सखहिं सराहत सो जगदीशा॥
दधिबल प्रभु अनुकूल बिलोकी। सफल जन्म लखि भयउ बिसोकी॥

जिसकी बड़ाई करने से इन्द्रादिक बड़े हो गये हैं, सो जगदीश्वर अपने सखा की बड़ाई करते हैं। दधिबल ने प्रभु को प्रसन्न देख अपना जन्म सफल माना।

प्रेमवारि लोचन कर जोरी। बोलेउ गिरा भक्तिरस बोरी॥
जगदातमा तुम्हार यह बाना। संतत करहु दीन मनमाना॥

नेत्रों में जल भरकर दोनों हाथ जोड़ भक्ति रस से सनी वाणी बोला - हे जगदीश्वर! आपका यह स्वभाव है कि सदा तुम भक्तों की मनमानी करते हो।

दो०—बनचर पामर सहज जड़, बुद्धि विषम अज्ञान।
विरद स्वभाव कृपालु प्रभु, सेवक सुयश बखान॥ ६०॥

हम वनचर पामर, मूर्ख, अज्ञानी, विपरीत बुद्धि हैं। हे प्रभु! आप विरदावली को पालते हो, सेवकों की रक्षा करते हो, सदा दयालु रहते हो॥ ६०॥

तव यश बिमल विदित अवधेशा। कहत न पार पांव श्रुति शेषा॥
सो मैं प्रभु कहि सकहुं न कैसे। पर्ण वणिक गजमणि गुण जैसे॥

युम्हारा उज्जवल यश जगत में विख्यात हो रहा है, जिसके कहने से वेद और शेष भी पार नहीं पाते। सो हे प्रभु! सो मैं कैसे वर्णन कर सकता हूं, जैसे पत्ते बेचने वाला गजमुक्ता के गुणों को नहीं जान सकता।

अस कहि हरि हरिपद लपटाने। देखि प्रेम कपि बिबुध सिहाने॥
अन अभिमान तोहि प्रभु जाना। दीन दयालु बहुरि सनमाना॥

यों कहकर दधिबल रामजी के चरणों में लिपट गये। यह प्रेम देखकर देवता बड़ाई करने लगे। रघुनाथजी ने उसे अभिमान-रहित जान, अनेक प्रकार से उसका सम्मान किया।

मांग वत्स जो वर मन भावा। सुनि दधिबल करिविनय सुनावा॥
नाथ तुम्हार रूप गुण नामा। करहिं निरन्तर मम उरधामा॥

हे पुत्र! मनभाया वर मांगो। यह सुनकर दधिबल हाथ जोड़कर विनय करने लगा, हे रामजी! तुम्हारा रूप-गुण-नाम के रूप में, सदा मेरे हृदय स्थिर रहे।

हो मोहिं प्रिय पद पङ्कज कैसे। कामिहिं वाम सूम धन जैसे॥
एवमस्तु तुम कहं बर येहू। मम इच्छा कछु औरो लेहू॥

मुझे तुम्हारे चरण-कमल ऐसे प्यारे हों, जैसे कामी को स्त्री, सूम को धन प्यारा होता है। रामजी बोले तुमको यही वर दिया, परन्तु मेरी इच्छा कुछ और भी है, सो भी लो।

सो०—बिहबावलपुर राज, करहु तात तुम मुदित मन।
छांड़ि और सब काज, शिवा शम्भुपद भक्ति दृढ़॥ ७॥

हे तात! तुम प्रसन्न होकर बिहबावलपुर का राज्य करो और सब कुछ त्याग करके शिव पार्वती के चरणों में दृढ़ भक्ति करो॥ ७॥

यहै काज शुभ संतत चहई। जोइ सोइ प्राणी मम मन रहही॥
उमा रामकर यहै स्वभाऊ। जन पर प्रेम न कबहुं दुराऊ॥

जो यह शुभ कार्य करते हैं, वे प्राणी मेरे मन में वास करते हैं। शिवजी बोले—हे पार्वती! रामजी का यह स्वभाव है कि भक्तों के ऊपर प्रेम रखते हैं, कुछ दुराव नहीं करते हैं।

मोहि निज रूप रमापति जाने। ताते बारम्बार बखाने॥
जानेउ श्रीरघुबीर स्वभाव जिन। सब तजि प्रेम भक्ति मांगि तिन॥

रघुनाथजी मुझे अपना रूप जानते हैं, इस कारण बार-बार बखान करते हैं। जिसने रामजी का स्वभाव जान लिया, उसने सब कुछ छोड़कर प्रेम भक्ति मांग ली।

राम भक्ति वारीश जासु उर। महिमा तासु कहत श्रुति बुधबर॥
सर सरिता सब सुखद सुहाये। सहजहिं आवत बिनहि बुलाये॥

राम भक्ति रूपी सागर जिसके हृदय में है, उसकी महिमा वेद और पण्डित कहते हैं। ताल, नदी सब सुख के देने वाले सागर में बिना बुलाये ही आ जाते हैं। इसी प्रकार भक्तों पर सुख आता है।

ताहि शुद्ध शिप दे रघुराया। पुनि प्रभु कीन्ह तिलक निज हाथा॥
सारङ्गी रुख सबही दावा। अङ्गदादि ताकहं सिर नावा॥

उसे सही दिशा देकर रघुनाथजी ने अपने हाथ से उसका तिलक किया। रघुनाथजी का रुख पाकर अङ्गदादि वीरों ने उसे सिर झुकाया।

दो०—पाइ भक्ति वर राजवर, प्रभु चरणन सिर नाइ।
दधिबल पठयउ तुरत हठ, सुनहु ऋषय शुभ भाइ॥ ६१॥

भक्ति वर पाकर, राज्य पा, प्रभु के चरणों में सिर झुकाकर दधिबल बहुत कहने से बिहबावल-पुर विदा हो गया। हे भरद्वाजजी! अब आगे की कथा सुनो॥ ६१॥

तन मन राम चरण अनुरागे। दधिबल राज्य करत भय त्यागे॥
सैन सहित श्री राजिव नयना। राजत देखि बिबुध चित नयना॥

तन-मन से रघुनाथजी के चरणों में प्रेम किये, दधिबल भय त्याग राज्य करते हैं। यहां सेना सहित रघुनाथजी विराजते हैं, सो देखकर देवता मन में बड़े प्रसन्न हैं।

हनत दुन्दुभी बिबिध प्रकारा। पुहुप माल झरि करत अपारा॥
करि अस्तुति बर बिनय पुकारे। अदिति सुनु निज गेह सिधारे॥

अनेक प्रकार के नगाड़े बजाते हैं, फूलों की माला बरसाते हैं। स्तुति विनय सुनाकर देवता अपने स्थानों को चले गये।

उतरि जहां बैठ दशभाला। बिनु सिर बपु सो परा बिशाला ॥
देखि बिकल आपै उठि धावा। पहिचानत तेहि अति दुख पावा ॥

अब उधर की कथा सुनिए, जहां रावण बैठा था, वहीं सिरहीन नारान्तक का शरीर जाकर गिरा, देखते ही व्याकुल होकर उठ धाया, पहचानकर महादुःखी हुआ।

हा नारान्तक कहि खल परा। महा खंभार लंक गढ़ भरा ॥
मयतनया आदिक निशिचरी। शोक समाज विपदहिं भरी ॥

हा नारान्तक ! यह कहकर मूर्छित हो गया, शोक से लंका में महाखलबली मच गई। मन्दोदरी आदिक राक्षसियां शोक-विषाद में भर गई।

दो०—बिन्दुमती आदिक सकल, नारान्तक की नारि।
व्याकुल महिं लोटहिं परी, निज तनु दशा निहारि ॥ ६२ ॥

बिन्दुमती आदिक जितनी नारान्तक की स्त्रियां थीं, व्याकुल होकर पृथ्वी में लौटने लगीं, शरीर की दशा भूल गई ॥ ६२ ॥

करि बिलाप जिमि निशिचर नारी। सो न जात कहि सुनु नभचारी ॥
शोक जलधि लंका लघु तरणी। चढ़ी सकल निशिचर की घरणी ॥

हे गरुड़जी ! वे स्त्रियां जैसा विलाप करती थीं वह कहा नहीं जाता। शोक-सागर रूप में लंका छोटी सी नौका पड़ी है, उसमें राक्षसों की सब स्त्रियां चढ़ी हैं।

बढ़त जानि न कतहुं निबाहा। कहत मन्दोदरि तब सब पाहा ॥
बिन्दुमती करगहि बैठाई। नाग सुता की कथा सुनाई ॥

वह नौका डूबना चाहती है, कहीं निबाह होता न देखकर मन्दोदरी सबसे बोली। बिन्दुमती को हाथ पकड़ बैठाया और सुलोचना के सती होने की कथा सुनाई।

सुनत सुनयना की सुचि करणी। धारि धीर नारान्तक घरणी ॥
सवति बुझाय सासु पग लागी। तजि धन धाम स्वामि अनुरागी ॥

सुलोचना की पवित्र करणी श्रवण करके नारान्तक की स्त्री मन में धीरज रख विनयपूर्वक अपना भेद सौत को समझाकर सासु के चरणों में लगी, धन-धाम का मोह त्याग स्वामी की अनुगामिनी हुई।

मातु करहु सो यतन उताउल। मिलहुं जाइ जेहि पद निज राउल ॥
सुनु सुत बधू न आन उपाऊ। जाउ जहां राजत रघुराऊ ॥

और बोली माता अब वह उपाय सोचो, जिससे मैं अपने पति के लोक में पहुंच जाऊं। मन्दोदरी बोली—हे पुत्रवधू ! और तो कोई उपाय नहीं हैं। जहां रघुनाथजी हैं, वहीं जा।

दो०—जेहि विधि गइ सुलोचना, तेहि गति तुम भय त्यागि।
निरखहु रघुपति पदकमल, लावहु पति सिर मांगि ॥ ६३ ॥

जिस प्रकार से सुलोचना गई उसी प्रकार से तुम भी भय त्याग कर रघुनाथजी के चरण-कमल का दर्शन कर अपने पति का सिर मांग लो ॥ ६३ ॥

सासु बचन सुनि जानि प्रभाता। उठि निशिचर तिय पुलकित गाता॥
जात रूपमय यान मंगाई। निजकर गहि पति देह चढ़ाई॥

सास के वचन सुनते ही प्रातःकाल बिन्दुमती प्रसन्न होकर उठी। सोने की पालकी सजाकर अपने हाथ से उस पर अपने पति की देह रखी।

चली अकेली यान चढ़ि जबहीं। तासु सवति एक आई तबहीं॥
नाम चित्ररेखा अस तासू। गुण गण सुभग बसै तनु जासू॥

जब आप ही उसे विमान पर चढ़ाकर आने को चली, उसी समय उसकी एक सौत भी आई। उसका नाम चित्ररेखा था, जिसके शरीर में अनेक सतगुण वास करते थे।

सोकरि बिनय चढ़ी तेहि सङ्गा। कान्ह पयान रङ्गी सतरङ्गा॥
रथ अकेल आवत कपि देखा। कायर डरपे हृदय विशेखा॥

वह भी विनय करके उसके साथ चढ़ी और सत्त के रंग में रंगकर रामजी के पास को चलीं। वानरों ने देखा कि एक पालकी आ रही है, बहुतेरे तो अपने मन में ही डर गये।

आवत मानि सबल रिपु काऊ। नल अरु नील सुभट वर दोऊ॥
आये धाम सपदि सब आगे। युगल नारि तनु निरखन लागे॥

कोई बलवान् शत्रु आता हुआ विचार कर नल-नील दोनों योद्धा शीघ्रता से आगे बढ़े और उन दोनों स्त्रियों को देखने लगे।

दो०—समुझि बूझि वृतान्त दोउ, फिर आये प्रभु पास।
बन्दि कंजपद उभय कह, सुनियै रमा निवास॥ ६४॥

इन दोनों का वृतान्त समझ-बूझकर फिर रामजी के पास आये और चरण-कमल को दण्डवत करके दोनों बोले॥ ६४॥

नाथ नारान्तक की दो नारि। आवत शरण प्रणत भयहारी॥
सुनि रघुबीर हृदय मुसकाने। उतहिं टिकावहु सखा सयाने॥

हे नाथ! नारान्तक की दो स्त्रियां आपकी शरण आई हैं, आप दोनों के भय को दूर करने वाले हो। यह सुनकर रामजी मन में मुस्काकर बोले हे सखा, उन्हें वहीं टिका दो।

सुन प्रभु बचन बहुरि सो धाये। कटक बिगत रथ दूरि टिकाये॥
बिदुमती चितरेखा दूनो। बिनय हमार कीश अस सूनो॥

रामजी का वचन सुन वे दोनों शीघ्रता से चले और उन्हें वानरों के कटक से बाहर टिकाये, तब बिन्दुमती और चित्ररेखा दोनों बोलीं हे वानरों! हमारी कुछ तो विनय सुनो।

कहहु जाइ तुम प्रभुहिं बुझाई। कहि कारण हम दरश न पाई॥
हम अबला कपि बिनवैं तोही। बूझि नाथ सन कहिहहु मोहीं॥

तुम अपने स्वामी के पास जाकर यह वचन कहो कि हमें दर्शन क्यों नहीं होते? हे कपि हम स्त्री तुम्हारी विनती करती हैं, अपने स्वामी से पूछकर यह बात हमसे कह दो।

नारि विनय सुनि करि दोउ भले। नीति बिचारि राम पहं चले॥
बिनती नारि जाय नल बरणी। सुनि बिहंसे प्रभु तिनक करणी॥

दोनों भले वानर स्त्रियों की यह विनय सुन, धर्म विचारकर रामजी के पास गये। नल ने जाकर रामजी से उनकी विनय सुनाई, उनकी करणी सुनकर भगवान् स्वयं हंसे।

दो०—परम मृदुल रघुनाथ चित, कहत सन्त बुध वेद।
तिन कहं देत न दरश प्रभु, सुनु खगेश सो भेद ॥ ६५ ॥

रामजी का चित्त कोमल है, यह महात्मा, पण्डित और वेद कहते हैं, परन्तु जिस कारण से रामजी उनको दर्शन नहीं देते हैं, हे गरुड़जी ! यह भेद सुनिए ॥ ६५ ॥

प्रेम परीक्षा हित रघुनायक। कौतुक करत समर सुखदायक ॥
नाथ सखा सब बहुरि बुझाई। पुनि नल नारिन पास पठाई ॥

उनकी परीक्षा के निमित्त रामजी समर युद्ध के सुखदायक चरित्र करते हैं, फिर रामजी ने सखाओं को समझा-बुझाकर नल को नारियों के पास भेज दिया।

कह कपि सुनहु नरान्तक नारी। दरशन तुमहिं न देत खरारी ॥
तुम गृह जाहु बचन मम मानी। बोली सो तिय बचन सयानी ॥

तब नल जाकर कहने लगे— हे नारान्तक की नारियों ! सुनो तुम्हें श्रीरामजी दर्शन नहीं देंगे, तुम वचन मानकर अपने घर चली जाओ। यह सुनकर वह चतुर नारी बोली।

हम अबला दरशन हित आई। नयन सफल बिनु किमि गृह जाई ॥
यहि विधि विनय करत दोउ नारी। कीशन कटक कीन्ह पैसारी ॥

हम दोनों स्त्री दर्शन करने को आई हैं, सो नेत्र सफल किये बिना हम घर कैसे जायें, इस प्रकार दोनों नारियों ने विनय करते-करते वानरों के कटक में प्रवेश किया।

आवत निकट जानि रिपु रवनी। यद्यपि पतिव्रत हैं सुख भवनी ॥
तदपि नाथ तेहि दरश न देहीं। जाइ निकट बिनती की तेहीं ॥

शत्रुओं की नारियों को निकट आते जानकर, यद्यपि वे पतिव्रता हैं, परन्तु तो भी रामजी उनको दर्शन नहीं देते, तब उन्होंने बहुत निकट जाकर यह विनती की।

दो०—प्रभु सीता पति जगति पति, सुरन पति रघुनाथ।
देउ दरश करुणातनय, दीन बन्धु श्रुति माथ ॥ ६६ ॥

हे प्रभो ! सीतापति, जगत के पति, हे देवताओं के पति श्रीरामजी ! हे करुणा सागर, हे वेदों के मान-रक्षक ! हमारे ऊपर कृपा करो ॥ ६६ ॥

बोले राम न सो तिय बोली। बिमल ज्ञान पतिव्रत अनुडोली ॥
नाथ सत्य यह नीति बखानै। पुरुष न पतिय सपनेहुं जानै ॥

रामजी उनकी यह बात सुनकर न बोले, तब वह स्त्री फिर बोली—जो उज्जवल ज्ञान पतिव्रता में अडोल है। हे स्वामी, शास्त्र की यद्यपि यह नीति है कि महात्मा पुरुष पराई नारी को स्वप्न में भी नहीं देखते।

प्राकृत पुरुषन को यह रीती। जिनके हृदय कपट पर प्रीती ॥
समदरसी कछु दोष न स्वामी। सो विचार प्रभु अन्तर्यामी ॥

यह नीति तो साधारण निकृष्ट लोगों की है, जिनके हृदय में प्रतिक्षण कपट रहता हैं, आप तो समदर्शी हो, तुम्हें कुछ दोष नहीं। यह विचार कर हे प्रभु अन्तर्यामी।

आरत बंधु बिलम्ब न कीजै। करुणा कर वर दरशन दीजै॥
नहिं बोले प्रभु पुनि सो कहहीं। तब यश अस श्रुति गावत अहहीं॥

हे दुखियों के बन्धु, विलम्ब मत करो; दया करके हमें दर्शन दो, फिर रघुनाथजी नहीं बोले तो वह बोली वेद तुम्हारा यश इस प्रकार गाते हैं।

गौतम नारि नाथ तुम तारी। अधम जाति भिलनी निस्तारी॥
सुनि मम हृदय परी परतीती। अब प्रभु कस देखिय बिपरीति॥

हे नाथ! तुमने गौतम की नारी को तारा, नीच जात भिलनी शबरी को तार दिया। यही सुनकर मुझे विश्वास हुआ था। हे प्रभु, यह उसके विपरीत कैसा दिखाई देता है।

दो०—तारि तारि अधमनि अमित, बार बार श्रम जान।
तात करत अनाकनी, मोरि ओर भगवान॥ ६७॥

हे महाराज, क्या इस कारण आप दर्शन नहीं देते कि बार-बार पापियों के तारने में तुम्हें श्रम हो गया है, जिससे अब हे भगवान् आप मेरी ओर आनाकानी करते हो॥ ६७॥

प्रभु मुसकाहिं न उत्तर देहीं। ताकर प्रेम परीक्षा लेहीं॥
बिकल भयउ नारान्तक बाला। बार बार करि बिनय बिशाला॥

रामजी मुस्कराये तो परन्तु उत्तर नहीं देते। कारण यह है, उनकी प्रेम परीक्षा लेते हैं। नारान्तक की दोनों नारियां व्याकुल होकर बार-बार विनय करने लगीं।

धर्म धुरन्धर प्रभु अवतारा। केवल पतिव्रत धर्म हमारा॥
जो हम सत्य सत्य तुम स्वामी। द्रवहु बेगि उर अन्तर्यामी॥

हे प्रभु! आपका अवतार धर्म स्थापन के निमित्त हुआ है, हमारा धर्म केवल पतिव्रत ही है। जो हम सत्य पतिव्रता हैं और आप सत्य ईश्वर हो तो हे स्वामी! आप शीघ्र ही प्रसन्न होइए। अन्तर्यामी दया कीजिए।

बृथा करत कत प्रभु श्रुति भाषा। पूजत नाथ न मम अभिलाषा॥
लीन भयउ पति प्राण राम महं। अर्द्ध भाग हम कहहु जायं कहं॥

हे स्वामी! प्रणतपाल जो वेद ने आपका वर्णन किया है, उसे क्यों व्यर्थ करते हो? हमें दर्शन देकर हमारी अभिलाषा पूरी क्यों नहीं करते? हमारे पति का प्राण तो लीन हो गया, हम आधा भाग अब कहां ले जायें।

वृन्दा चरित नाथ सुधि करहू। विनय हमारि बेगि उर धरहू॥
बिनय प्रीति सत धर्म जनाई। परीं प्रेम बस महि अकुलाई॥

हे नाथ! बृन्दा के चतित्र को याद करके हमारी विनती सुनो। इस प्रकार वह स्त्री विनय प्रीति सतधर्म जानकर दोनों प्रेमवश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

दो०—पाहि पाहि रघुवंशमणि, तजहु न विरद प्रतीति।
प्रीतम प्रीति न करन डर, तुम कहं नाथ अनीती॥ ६८॥

रक्षा करो, रक्षा करो, रघुवंशमणि विरदावली की प्रीति प्रणत पालन मत त्यागो। हे प्रीतम! हमारी सच्ची प्राति का आप डर नहीं करते जो पति से हमने की है॥ ६८॥

सती निराश विनय सुनि बानी। पुलके दीन दयाल भवानी॥
दुहुं न लीन्ह निज निकट बुलाई। परीं युगल प्रभु पद तर आई॥

शिवजी बोले हे पार्वती! यह उन स्त्रियों की निराशता की वाणी सुन दीनदयालु पुलकित हुए। दोनों को अपने निकट बुला लिया, वे दोनों प्रभु के चरणों में जा पड़ीं।

तिन्हें उठाय राम बैठारा। जगदीश्वर मृद बचन सुनावा॥
बिदुमती ते परम सयानी। पहि पन रति दृढ़ हृदय भमानी॥

उन्हें उठाकर रामजी ने बैठाया और त्रिलोकीनाथ उनसे कोमल वचन बोले बिन्दुमती तू बड़ी चतुर है, तेरी पति के चरणों में प्रीति है, तेरे मन में पतिव्रत धर्म समा रहा है।

बहुत करहुं का तब गुण गाना। मांगु बेगि बर जो मन माना॥
सुनत बचन लोचन जल बाढ़ी। जोरि युगल कर दोउ ठाढ़ी॥

मैं तेरे बहुत गुण क्या कहूं, जो मन भावे सो वरदान मांग। सुनते ही दोनों के नेत्रों में जल भर आया, दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हुई।

प्रभु तुम दानि देव तरुवर से। पद जल जात देखि सुरस सिरसे॥
परम पवित्र भई हम दोऊ। हम सम धन्य नारि नहिं कोऊ॥

हे प्रभु! आप दान देने में कल्प वृक्ष से हो, आपके चरण-कमल गङ्गा के समान पवित्र करने वाले हैं, जिनके दर्शन से हम दोनों परम पवित्र हो गई, हमारे समान कोई स्त्री नहीं है।

छं०—को धन्य हम सम नारि जग महं सुनहु श्री रघुनायकं।
दै दरश कीन्हीं पतित पावन नाथ सुर अरिघायकं॥
हे कृपा सागर यश उजागर देहु बर सुर भावरं।
जेहि मिलैं पति कहं जाइ बिनु श्रम बढ़ै तव यश श्रीधर॥

हे रामजी! सुनिए, हमारे समान जगत् में कौन स्त्री धन्य है, आपने दर्शन देकर हमें पवित्र कर दिया, हे पतितपावन! आप देवताओं के शत्रुओं को मारने वाले हो। हे कृपा के समुद्र आपका यश चारों ओर फैल रहा है। हे देव शत्रुओं को मारने वाले! आप यह वर दीजिए जिससे हम बिना श्रम पतिलोक को प्राप्त हो जायें। हे लक्ष्मीपति! आपका यश बढ़ेगा।

सो०—यह कहि बिंदु कुमारि, सहित साति प्रभु पद परी।
तिन्हैं उठाइ खरारि, जग नाना रमि कहत पुनि॥ ८॥

बिन्दु की कन्या यह कहकर सौत समेत प्रभु के चरणों में पड़ी, रघुनाथजी उन्हें उठा कर यों कहने लगे॥ ८॥

धरहु धीर तुम जनि अब डरहू। निज पति लहु भवन सुख करहू॥
कहेउ देव हम कहं यह नीका। हमहूं कहत अब भावत जीका॥

धीरज रखो, तुम मन में अब मत डरो, अपने पति के घर में जाकर सुख करो। यह सुन वे बोली हे देव! आपने अपनी कृपा बहुत दिखाई परन्तु हम अपने मन की बात कहती हैं।

गिरजा सहित गिरीश बिरागी। नाम तुम्हार दरश अनुरागी॥
नारदादि सनकादिक जेते। जप तप करहिं बिबिध बिधि तेते॥

पार्वती सहित शिवजी वैरागी होकर भी हे नाथ! आपके दर्शन में अनुराग करते हैं। नारदादि सनकादि जितने हैं, जो अनेक प्रकार के जप-तप करते हैं।

तेउ न कबहुं हमारी नाईं। देखहिं पद जलजात अघाई॥
हार दरशन लवलेश प्रमाना। जग के सब सुख नाहिं समाना॥

उन्होंने भी तो हमारे समान कभी आपके चरण-कमल अघाकर नहीं देखे होंगे, जगत के सम्पूर्ण सुख आपके दर्शन के लवलेश के समान भी तो नहीं हैं।

अमिय अघाइ गरल को खाई। बिनय हमारि यहै सुरसांइ॥
देहु कन्त शिर सपदि मंगाई। दयाशील सागर रघुराई॥

अमृत से पेट भरकर विष कौन खायेगा। हे देवताओं के स्वामी! यही हमारी विनती है। आप हमारे स्वामी का सिर शीघ्र ही मंगा दीजिए। हे दया के सागर रघुनाथजी! यही हमारी इच्छा है।

दो० नारान्तक कर शीश तब, दीन्ह मंगाइ रमेश।
पाय स्वामि शिर मुदित भइं, बोलीं दोउ उरगेश॥ ६१॥

यह वार्ता सुनते ही रामजी ने नारान्तक का सिर मंगा दिया। हे गरुड़जी! अपने स्वामी का सिर पाकर दोनों प्रसन्न होकर बोली॥ ६१॥

नाथ बिनय हम औरो करहीं। दाह बिना हमकेहि बिधि जरहीं॥
सुख सागर सुनि बचन प्रमाना। हनुमत अङ्गदादि भट नाना॥

हे नाथ! हमारी इतनी विनय है कि ईंधन बिना हम किस प्रकार अपना शरीर दाह करेंगी। सुखसागर रामजी उनके वचन सुन हनुमान, अङ्गदादि योद्धाओं से बोले।

यह प्रभु सखा लंक में धावहु। चंदन अगर भार बहु लावहु॥
पाइ राम अनुशासन धाये। लंका गढ़ गृह गृह सचुपाये॥

रघुनाथजी बोले कि सखाओं! शीघ्र लंका में जाओ और चन्दन, अगर के बोझ लाओ। रघुनाथ जी की आज्ञा से वानर धाये और लंकापुरी में घर-घर चन्दन ढूंढा।

कपिन शोधि चन्दन बहु भारा। लाये जहं श्रीमान उदारा॥
कह रघुवीर सुनहु लंकेशा। तान यहै बड़हित उपदेशा॥

वे वानर अनेक भार चन्दन को ढूंढकर रघुनाथजी के पास ले आये, तब रघुनाथजी बोले—विभीषण सुनो, यही बड़ा हितकारी उपदेश है।

बिंदुमती जहं चाहत ठांऊ। दाह भारि संग तुम तहं जाऊ॥
दशकन्धर कर वैर बिहाई। चिता चारु शचि देहु बनाई॥

जहां बिन्दुमती स्थान चाहती है, वहां तुम यह जलाने का काष्ठ-भार पहुंचा दो। रावण का बैर छोड़कर चिता बना दो।

दो०—रघुबर आज्ञा धारि शिर, उठे दशानन भाइ।
अयुत भार चन्दन अगर, तेहि संग चले लिवाइ॥ ७० ॥

रघुनाथजी की आज्ञा सिर पर रखकर विभीषण उठे, बहुत से अगर और चन्दन के भार अपने साथ लिवा चले ॥ ७० ॥

जहं जरा मघवाजित नारी। तेहि गह्वर शुचि चिता संवारी॥
जहंवा अपर सौति मनु नारी। बिंदुमती मनभाव पियारी॥

जहां मेघनाद की नारी सती हुई थी, उसी स्थान में इन्होंने भी चिता बनवाई। बिन्दुमती की दूसरी सौत, जो बिन्दुमती को बहुत प्यारी थीं, वे भी सब वहां आईं।

मूर्छित परीं प्रथम सुधि नाहीं। चली सुनत गति दुख मनमाहीं॥
चली चतुर्दश निशिचर कैसे। निरखि दवास मृगी गण जैसे॥

मूर्छित होकर सब गिर पड़ीं, शरीर की सुधि नहीं रही, बिन्दुमती की गति सुनकर वे सब चलीं। चौदह राक्षसी ऐसे वेग से चलीं, जैसे आग देखकर मृगी भागती हो।

हा हा बिंदुमती पति पति प्यारी। कहां गई तुम हमहिं बिसारी॥
पहुंची सह विलाप कहं सोऊ। हरषीं हृदय विलोकत दोऊ॥

कहने लगी, हा-हा पति की प्यारी बिन्दुमती ! तू कहां है, हमें छोड़कर कहां गई, इस प्रकार वे विलाप करती हुई वहां पहुंची और उन दोनों को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई।

षोडस निशिचर भई सभागी। मन बचन क्रम पतिपद अनुरागी॥
सकल अन्हाइ मतक अन्हवाई। सुमिरत हृदय रामगति दाई॥

भाग्यवती सोलह राक्षसी मन-वचन-कर्म से पति की अनुगामिनी हुई। सबने स्नान कर मृतक को स्नान कराया और रघुनाथजी को स्मरण करने लगी।

दो०—उत दशकन्धर जगेउ शठ, सुनेउ श्रवण सब हेतु।
संग मंदोदरि आदि तिय, गमना लै खगकेतु॥ ७१ ॥

हे गरुड़जी ! उधर मूर्ख रावण जागा और सब कारण सुनकर संग में मन्दोदरी आदि स्त्रियों को लेकर चला और जहां बिन्दुमती ने चिता बनवाई था वहां गया ॥ ७१ ॥

बाजत ढोल कपिन सुनिकाना। अपने मन तिन अस अनुमाना॥
आव युद्ध हित उत कोउ बीरा। हम कहं ठाढ़ करत शहि तीरा॥

ढोल बजाते हुए वानरों ने सुनकर अपने मन में विचार किया कि कोई युद्ध करने के निमित्त आता है, हमें यहां खड़ा रहना उचित नहीं।

कीश अयुत तब प्रभु पहं आये। पूरण प्रेम चरण शिर नाये॥
नाथ उतहिं दशकन्धर जाता। कीश एक कह सुनु जग त्राता॥

तब दस हजार वानर रघुनाथजी के पास आये और प्रेम से प्रभु के चरणों में सिर नवाया। एक बोला—हे नाथ ! ऐसा विदित होता है कि रावण चिता के पास आना चाहता है। हे जनों के रक्षक ! क्या आज्ञा होती है ?

प्रभु कह कुमुद तुरत तुम धावहु। बेगि विभीषण कहं लै आवहु॥
राम रजाइ सुमिरि धरि धाये। सपदि बिभीषण पहं सो आये॥

रघुनाथजी बोले हे कुमुद, तुम शीघ्र जाकर विभीषण को बुला लाओ। कुमुद रामजी की आज्ञा पाकर चला और जल्दी से विभीषण के पास आया।

तात तुमहिं रघुराज बुलावा। सुनत लंकपति आतुर आवा॥
हेतु पतोहुन कहि समुझावा। कुमुद सहित रघुपति पहं आवा॥

कहने लगे हे विभीषण! तुम्हें श्रीराम बुलाते हैं, सुनते ही विभीषण जल्दी से चले। सब कारण से बहुओं को समझा कर कुमुद सहित रामजी के पास विभीषण आये।

दो०—मोहिं निशा कहं तरुणरवि, तिन चरणन शिरनाइ।
भागवन्त रावण अनुज, बैठेउ प्रभु रुख पाइ॥ ७२॥

मोह-रूपी रात्रि को जगाने को प्रचण्ड सूर्य रामजी के चरणों में सिर झुकाकर अति भाग्यवान् रावण का भाई श्रीरामजी की आज्ञा पाकर बैठ गया॥ ७२॥

दशमुख तिनय सहितगा तहवां। बिंदुमती चितरेखा जहंवा॥
देखत अति बिलखा विबुधारी। करुणा करत निशाचर भारी॥

रावण स्त्रियों समेत वहां गया, जहां बिन्दुमती और चित्ररेखा थी। देखते ही रावण बहुत व्याकुल हो रोने लगा और साथ की स्त्रियां भी बहुत रुदन करने लगीं।

सासु ससुर कहं देखि दुखारी। ज्ञान नवीन नारान्तक नारी॥
कदि शुचि गाथ सबनि समुझाई। स्वामि समेत चिता पर आई॥

सास-श्वसुर को दुःखी देखकर नवीन ज्ञान में भरी नारान्तक की स्त्री ने सबको ज्ञान युक्त कथा कहकर समझाया और अपने स्वामी सहित चिता पर आई।

यथा योग्य बैठी सब ऐसे। पति गृह रहत रहीं गृह जैसे॥
अग्नि हीन्ह ज्वाला अति धाई। पहुंभी सुरपुर सब निय जाई॥

वे सोलह राक्षसी इस प्रकार यथायोग्य जैसे स्वामी के गृह में रहा करती थीं, तब फिर अग्नि लगा दी, बड़ी तीक्ष्ण ज्वाला बढ़ी, क्षण-मात्र में सब स्त्रियां स्वर्गलोक में पहुंच गई।

देखि दशा तिनकी सुर रवनी। तिनहिं सरहि भवय् निज गवनी॥
रावण सहित युवति निज गेहा। गयउ भरी सासति संदेहा॥

देवताओं की स्त्रियां उनकी यह दशा देखकर उनकी सराहना कर अपने-अपने स्थान को गईं और रावण भी सब स्त्रियों को साथ लेकर दुःख और सन्देह में भरा अपने स्थल को गया।

छं०—सदेह सासत भरेउ रावण सहित दारनि गृह गयो।
इसि मथ सुनादिक निशिचरिनि लखि बिकलबल मूर्छित भयो॥
दशमाथ गति देखत विपुल बिलखैं निशाचर निशिचरी।
संताप शोक विलाप भव भ्रम कटक लंका महं परी॥

संदेह और दुःख में भरा हुआ स्त्रियों सहित रावण अपने घर को गया और मन्दोदरी आदि अनेक रानियों को व्याकुल देखकर आप भी मूर्छित हो गया। रावण की यह गति देखकर अनेक निशाचर-निशाचरियां व्याकुल होकर रोने लगी। सन्ताप, दुःख, विलाप, भय और सन्देह की सेना लंकापुरी में आ गई है।

दो०–राम विरोधहिं जस उचित, तस दिन पहुंचा आइ।
सो विचार करि करि लंकागढ़, उतरी बिपति बजाइ॥ ७३॥

जैसा कुछ रघुनाथजी के विरोध होने का फल मिलना चाहिए, वही दिन रावण को आकर प्राप्त हुआ। लंकापुरी में डंका बजाकर विपत्ति आकर उतरी॥ ७३॥

इहां देब देवायसु जाना। बर आसद शोभित भगवाना॥
यथा योग्य बैठे मृगशाखा। सब कीन्हे प्रभु पद अभिलाखा॥

यहां देवताओं के देवता रामजी सुन्दर आसन पर शोभायमान है। शाखामृग-वानर यथायोग्य स्थानों में बैठे हुए हैं और सब प्रभु के चरण-कमलों में अभिलाषा लगाये हैं।

रिपु बड़ मरेउ हर्ष सबके मन। पुनि पुनि हेरत सुभग श्यामगन॥
तिनकी रुचि लखि दीनदयाला। शिव यश गावहु गहेउ कृपाला॥

बड़ा भारी शत्रु मारा गया, इससे सबके मन में प्रसन्नता है, सब कोई बार-बार रामजी का श्याम शरीर अवलोकन करते हैं। उनकी प्रीति देखकर रघुनाथजी कहने लगे—हे भाई! तुम शिवजी का यश गाओ।

भरद्वाज प्रभु आज्ञा पाई। गावहि कपि कलकंठ लजाई॥
डमरू भृंगी शृंगि करतारी। घ्राण पाणि मुखते बनचारी॥

याज्ञवल्क्यजी बोले कि हे भरद्वाज! प्रभु की आज्ञा पाकर वानर ऐसे मधुर स्वरों से गाते हैं, जिसे सुनकर कोकिला भी लजाती है। डमरू, भृंगी, शृंगी, ताली यह सब नाक हाथ-मुख से ही बजाते हैं।

गोंडर ततु वेणु मंजीरा। शंख मृदंग नाद गंभीरा॥
नृत्यत काश भाम दिखरावत। शिवा सहित शिव कीरति गावत॥

गोंडर, तंतु, वेणु, बांसरी, शंख, मंजीरे, मृदंग, गम्भीर नाद मुख से ही बजाते और भाव दिखाकर वानर नाचते हैं। पार्वती सहित शिवजी की कीर्ति गाते हैं।

छं०–शिव शिवा कीरति विमल गावत भालु वानर सुख भरे।
अहिनाथ युत रघुनाथ छबि निरखत सकल चित पद धरे॥
प्रभु देखि कौतुक अनुज सहित सखन बखानत श्रीमुखम्।
तुलसी पगे यहि ध्यान जे जन पाइ हैं नित यश सुखम्॥

इस प्रकार रीछ-वानर आनन्द में भरे शिव-पार्वती की उज्जवल कीर्ति गाने लगे। लक्ष्मणजी सहित रघुवीरजी की छवि सब चरणों में मन लगाये देखते हैं, रघुनाथजी यह वानरों के गाने का कौतुक देख कर अपने मुख से उनका बखान करने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि जो कोई इस ध्यान में मग्न हैं, वेयश और सुख पावेंगे।

सो०—गत रजनी युत याम, तब कोशन करुणायतन।
करि परिपूरण काम, सबहि कहेउ राजहु थलन॥

जब इस प्रकार आनन्द में दोपहर रात बीत गई, तब करुणासागर रामजी ने सबका काम पूर्ण करके कहा अपने-अपने स्थानों पर विराजो॥ ६॥

बैठे निज निज थल रणधीरा। अनुज सहित राजत रघुबीरा॥
सुखमसींव सेन युत राजैं। जय जय धुनि कपि भालु समाजैं॥

सब रणवीर अपने-अपने स्थानों पर शोभित हुए, लक्ष्मण सहित रामजी विराजे। इस प्रकार आनन्द की मर्यादा सेना सहित विराजमान हुए, रीछ-वानर जय-जयकार करने लगे।

उमा चरित यह रुचिर सुहावा। नाथ कृपा मैं तुमहिं सुनावा॥
अपर चरित गिरिराज कुमारी। सुनहु कहत तव प्रीति निहारी॥

शिवजी बोले हे पार्वती! यह सुन्दर चरित्र रामजी की कृपा से मैंने सुनाया है। अब अगले चरित्र को सुनो, तुम्हारे मन की प्रीति विचार कर कहता हूं।

उहां मध्य निशि रावण जागा। कोउ कोउ सचिव सिखावन लागा॥
उग्र सिखावन कहि बुध थाके। थके न कछु मन माने ताके॥

वहां आधी रात के समय रावण जागा, कोई-कोई मन्त्री आकर समझाने लगे। बड़े पंडित रावण को सिखाकर थक गये, परन्तु उसके मन में एक भी बात न आई।

रावण मन और कछु लसई। मेटि को सकै जो विधि उर बसई॥
प्रभु बिरोध करि चह कल्याना। माह विवश सो सठ अज्ञाना॥

रावण के मन में कुछ और ही है, उसे कौन मिटा सकता है, जो विधाता के मन में है, जो स्वामी भगवान से विरोध करके अपना भला चाहे, वह मूर्ख मोह के वशीभूत अज्ञानी है।

दो०—उहां दशानन दूत मुख, सुनि नारान्तक नाश।
एका दिन निज सेन लखि, चढ़ा समर बिन त्रास॥ ७४॥

रावण इस प्रकार दूत के मुख नारान्तक की सेना का नाश सुनकर पड़वा के दिन अपनी सेना का निरीक्षण करके रामजी से स्वयं निडर होके लड़ने को चला॥ ७४॥

इति क्षेपक

निसा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुं द्वारा॥

रात बीत गई सवेरा हुआ। रीछ-वानर लंका के चारों द्वार पर आ लगे।

सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सन्मुख जा कर मन डोला॥
सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भएं न भलाई॥

योद्धाओं को बुलाकर रावण कहने लगा, लड़ाई में सामने होने पर जिसका मन डरता हो वह अभी भले ही भाग जाये, परन्तु लड़ाई में से भागना अच्छा नहीं है।

निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा। देहउं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥
अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा॥

अपनी भुजाओं के बल से मैंने वैर बढ़ाया है, जो शत्रु चढ़ आया तो उसको उत्तर मैं दूंगा। ऐसा कहकर पवन के समान वेग वाला रथ सजाया और युद्ध के बाजे बजने लगे।

चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आंधी चली॥
असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न भुज बल गर्ब बिसाला॥

सब अतुलित बल वाले वीर ऐसे चले, मानो काजल के पर्वत से आंधी आ रही है। उस समय अशकुन होने लगे, अपनी भुजाओं के बल से भारी घमण्ड के कारण कुछ नहीं सूझा।

छं०—अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते॥
गोमाय गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥ ४॥

मारे घमण्ड के शकुन-अशकुन नहीं गिनता, हाथ से हथियार छूटते हैं। रथ से योद्धा गिर पड़ते हैं। घोड़े हाथी भयंकर शब्द करते हुए साथ छोड़ भागते हैं। गीदड़, गीध और गधे भयानक शब्द करते हैं। बहुत से कुत्ते भौंकते हैं। उल्लू पक्षी बड़ी भयावनी बोली बोलते हैं, मानो काल के दूत हों॥ ४॥

दो०—ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुं मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥ ९३॥

उसको क्या सम्पत्ति, अच्छे शकुन और मन में आनन्द, स्वप्न में भी हो सकता है, जो प्राणियों से बैर करने वाला और अज्ञान के वश रामजी से विमुख और कामी है॥ ९३॥

चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥
बिबिधि भांति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥

राक्षसों की बड़ी भारी सेना चतुरंगिणी बड़ा गोल बनाकर चली। भांति-भांति के हाथी, घोड़े आदि वाहन और रथ आदि सवारी तथा बहुत सी रंग-बिरंगी अनेक पताकाएं और ध्वजाएं फहराती जाती हैं।

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया॥

मतवाले हाथियों के बहुत से झुण्ड ऐसे चले जा रहे हैं मानो बरसात के बादल पवन के झोंकों से उड़ते चले जा रहे हों। वर्ण-वर्ण के सुन्दर दैत्यों के समूह हैं। लड़ाई में शूर और बहुत माया जानते हैं।

अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी॥
चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं॥
उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई॥

अत्यन्त विचित्र सेना शोभायमान हुई, मानो वीरों ने बसन्त से अपनी सेना सुसज्जित की है। सेना के चलते ही दिग्गज बिचलने लगे, समुद्र उछलने और पर्वत डगमगाने लगे। धूल ऐसी उड़ी कि सूर्य छिप गया। पवन का चलना बन्द हो गया, पृथ्वी घबरा उठी।

पवन निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं॥
भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥

ढोल और बाजे बड़े घोर शब्द से बजने लगे, मानो महा प्रलय के बादल गरज रहे हों भेरी, नफीरी, शहनाई बजने लगी। योद्धाओं को सुख देने वाला मारू राग बजने लगा।

केहरि नाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं॥
कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मद्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥

सब वीर सिंहनाद करते हैं और अपने-अपने बल-पौरुष का उच्चारण करते हैं। रावण कहने लगा। सुनो योद्धाओं! रीछ और वानरों के समूह को मींच डालो।

हौं मारिहउं भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई॥
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाए करि रघुबीर दोहाई॥

मैं दोनों कुमारों को मारूंगा, ऐसे कहकर फौज सामने को चलायी। यह सुधि जब सब वानर पाये, तब रामचन्द्रजी की जय बोलते हुए दौड़े।

छं०—धाए बिसाल कराल मर्कट भालु काल समान ते।
मानहुं सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते॥
नख दसन सैल महाद्रु मायुध सबल संक न मानहीं॥
जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुजसु बखानहीं॥

बड़े-बड़े भयंकर वानर, रीछ काल के समान ऐसे दौड़े, मानो अनेक बाणों के लगने से पंखों सहित पर्वतों के समूह उड़े जाते हैं। नख, दांत, पर्वत और बड़े वृक्ष-रूपी आयुध लिए बलवान् योद्धा शंका नहीं मानते हैं। रावण-रूप मतवाले हाथी के लिए सिंह समान श्रीरामचन्द्र की जय बोलते हुए सुयश बखानते हैं॥ ५॥

दो०—दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि॥ ६४॥

दोनों ओर जय-जयकार कर अपनी-अपनी जोड़ी जानकर इधर रामचन्द्रजी, उधर रावण का सुयश बखानकर वीर योद्धा लड़ने लगे॥ ६४॥

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥

रावथ रथ पर और रामचन्द्रजी को पैदल देखकर विभीषण घबराये। अधिक प्रीति के कारण मन में प्रणाम कर स्नेह सहित कहने लगे।

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥

हे नाथ ! न रथ है, न चरण में खड़ाऊ है, रावण को किस प्रकार जीतियेगा, क्योंकि यह बड़ा वीर और बलवान् है। यह सुनकर दयानिधान रामचन्द्रजी ने कहा- सुनो सखा विभीषण ! जिससे जय होती है, वह दिव्य रथ और ही है।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥

शूरता और वीरता दोनों पहिए जिस के हैं, सत्य, शील, दृढ़, ध्वजा और पताका हैं बल, ज्ञान, दम और परोपकार ये चारों उस रथ के घोड़े हैं क्षमा दया समता इन तीन लड़ों की रस्सी से बंधे हैं।

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥

ईश्वर का भजन चतुर सारथी है वैराग्य ढाल और सन्तोष खंग है। दान फरसा, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति, उत्तम ज्ञान कठिन धनुष है।

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥

संयम नियम अनेक बाण हैं और निर्मल स्थिर मन तर्कश के समान है। ब्राह्मणों की पूजी न छिदने वाला कवच है इनके समान जीतने का दूसरा उपाय नहीं है।

सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहं न कतहुं रिपु ताकें ॥

हे मित्र ! ऐसा धर्ममय रथ जिनके समान जीतने को कोई कहीं भी नहीं है।

दो०—महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ॥ ९५ ॥
सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज ॥ ९६ ॥
उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन ॥ ९७ ॥

हे मतिधीर सखा ! सुनो इस बड़े अजय रूप संसार को वह धीर वीर जीत सकता है जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो ॥ ९५ ॥ प्रभु के वचन सुनते ही विभीषण ने प्रसन्न होकर चरण कमल पकड़ लिए और कहा हे रामजा ! आप दया और सुख के समूह हैं आपने मुझको इसी बहाने से उपदेश किया ॥ ९६ ॥ उधर रावण ने वीरों को ललकारा, इधर अङ्गद हनुमान ने रीछ-वानरों को ललकारा कि लड़ो दोनों ओर से वीर राक्षस, रीछ, वानर अपने स्वामी की जय और दुहाई बोलते हुए युद्ध करने लगे ॥ ९७ ॥

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना ॥
हमहू उमा रहे तेहिं संगा। देखत राम चरित रन रंगा ॥

ब्रह्म आदि देवता और अनेक सिद्ध मुनि विमानों पर चढ़ आकाश से युद्ध देखने लगे शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! उनके संग मैं भी रामचरित्र और युद्ध के रंग को देखता था।

सुभट समर रस दुहु दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते॥
एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं॥

दोनों ओर के योद्धा युद्ध के रस में मतवाले हो रहे थे, जय-शील वानर रामजी के बल से मत्त हो रहे थे। एक-एक से भिड़ते और ललकारते हैं। एक-को-एक से मर्दन कर पृथ्वी पर डाल देते हैं।

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं॥

मारते हैं, काटते हैं, पृथ्वी पर पछाड़ते हैं, एक का सिर तोड़ दूसरे के सिर से मारते हैं। पेट फाड़, भुजा उखाड़, योद्धाओं के पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटककर डाल देते हैं।

निसिचर भट महि गाड़हिं भालु। ऊपर ढारि देहिं बहु बालु॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥

वीर राक्षसों को रीछ पृथ्वी में गाड़ते हैं, ऊपर से बहुत सी बालू डालते हैं, वीर वानर युद्ध में जुटे हुए ऐसे दीख पड़ते हैं मानो बहुत से काल क्रोधित हुए शोभायमान हैं।

छं०—क्रुद्धे कृतांत समान कपि तन स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं॥
मारहिं चपेटन्हि डाटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहिं खल छीजहीं॥ ६॥

काल के समान क्रोधित वानरों के शरीर से रुधिर बहता हुआ शोभित है। निशाचरों की सेना के बलवान् योद्धाओं को मींचते हैं और मेघ के समान गरजते हैं। चपेट मारते हैं, दांतों से काटते हैं, पटक कर लातों से मींचते हैं और चिक्कार करते हैं, वानर और रीछ छल-बल करते हैं, जिससे दुष्ट राक्षस नाश होते हैं॥ ६॥

धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अंतावरि मेलहीं।
प्रहलादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही॥
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही॥ ७॥

पकड़कर गालों को फाड़ते हैं, छाती को चीरकर आंतें निकाल कर गले में पहनते हैं, मानो नृसिंह भगवान् अनेक शरीर धारण कर समरांगण में खेलते हैं और पकड़ो, मारो, काटो, पछाड़ दो। इस प्रकार भयंकर वाणी आकाश और पृथ्वी में भर रही है। उन प्रभु रामजी की जय हो, जो तृण से वज्र और वज्र से तृण कर सकते हैं॥ ७॥

दो०—निज दल बिचलित देखेसि बीस भुजां दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप॥ ९८॥

अपनी सेना को भागते देखकर रावण बीसों भुजाओं में दस धनुष लेकर क्रोध करके चला और घमण्ड से बोला—लौटो-लौटो॥ ९८॥

धायउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सन्मुख चले हूह दै बंदर॥
गहि कर पादप उपल पहारा। डारेन्हि ता पर एकहिं बारा॥

रावण बहुत क्रोध करके दौड़ा, तब वानर हू-हू करके उसके सामने चले। हाथों में वृक्ष, पत्थर और पहाड़ लेकर एक साथ ही उसके ऊपर डालने लगे।

लागहिं सैल बज्र तन तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू॥
चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी॥

उनके वज्र समान शरीर में वे पर्वत लगे और तुरन्त खण्ड-खण्ड होकर फूट जाते हैं। चला नहीं वहीं, रथ को रोककर युद्ध में मतवाला अति क्रोधित होकर अचल हो गया।

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दै लाग भयउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥

इधर-उधर झपट-दपटकर योद्धाओं को मींचने लगा और बड़ा क्रोधित हुआ। अनेक रीछ-वानर भाग चले और बोले– हे अङ्गद! हनुमान! रक्षा करो, रक्षा करो।

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं॥
तेहिं देखे कपि सकल पराने। दसहुं चाप सायक संधाने॥

हे स्वामी रघुनाथजी! रक्षा करो, रक्षा करो। यह दुष्ट काल की तरह खा जावेगा। उसने जब सब वानरों को भागते देखा तो दसों धनुष पर बाण चढ़ाये।

छंद–संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहं कपि भागहीं॥
भयो अति कोलाहल बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुना सिंधु आरत बंधु जन रच्छक हरे॥ ८॥

धनुष चढ़ाकर बाण-समूह छोड़े, वे रीछ-वानरों के शरीर में ऐसे लगते हैं, जैसे सांप उड़कर चिपटते हैं, पृथ्वी से आकाश तक बाण ही बाण छा गये। चारों ओर वानर भागने लगे, बड़ा कोलाहल हुआ, सेना व्याकुल हो गई, रीछ-वानर दुःखी होकर पुकारने लगे कि हे कृपासिन्धु दीनबन्धु भक्त-जनकर हरि भगवान रामचन्द्रजी! हमारी रक्षा कीजिए॥ ८॥

दो०–निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ॥ ६६॥

तब अपनी सेना को व्याकुल देखकर कमर में तरकस कसकर और हाथ में धनुष लेकर क्रोध सहित लक्ष्मणजी रामजी के चरणों में मस्तक झुकाकर चले॥ ६६॥

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥
खोजत रहेउं तोहि सुत घाती। आजु निपाति जुड़ावउं छाती॥

लक्ष्मणजी ने जाते ही ललकारा कि रे शठ राक्षस! तू क्या वानर और रीछ को मारता है, मुझको देख मैं तेरा काल आ पहुंचा। यह सुनकर रावण बोला अरे सुतघाती! पुत्र के मारने वाले तुमको मैं ढूंढता था, आज तुझे मारकर अपनी छाती ठण्डी करूंगा।

अस कहि छाड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥

ऐसे कहकर तीक्ष्ण बाण छोड़े, लक्ष्मणजी ने बाण मारकर सौ खण्ड कर दिये, फिर करोड़ों अस्त्र शस्त्र रावण ने चलाए और लक्ष्मणजी ने सबको तिल के समान काट डाला।

पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥

फिर अपने बाण से प्रहार किया, रावण का रथ तोड़ सारथी को मार डाला, फिर लक्ष्मणजी ने एक-एक मस्तक में सौ-सौ बाण मारे वे प्रवेश करने लगे, मानो पर्वत के शिखरों से सांप प्रवेश करते हैं।

पुनि सत सर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरुछा जागी। छाड़िसि ब्रह्म दीन्हि जो सांगी॥

फिर सौ बाण रावण की छाती में मारे, जिनके लगने से वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, कुछ सुधि न रही। मूर्छा जागी, तब फिर उठा और ब्रह्माजी की दी हुई शक्ति लक्ष्मणजी के ऊपर छोड़ी।

छं०—सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
परयो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥
ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी॥ ६॥

वह ब्रह्मा की दी हुई प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मणजी के हृदय में ठीक-ठीक लगी, जिसके लगने से वीर लक्ष्मणजी व्याकुल होकर गिर पड़े, रावण उठाने लगा पर लक्ष्मणजी के बल की महिमा अतुल थी, वे न उठे। जिस अनन्त भगवान के एक सिर पर रज-कण के समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बिराजते हैं। उन प्रभु को मूर्ख रावण उठाना चाहता है। यह नहीं जानता कि ये त्रिभुवन के धनी हैं॥ ६॥

दो०--देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर॥ १००॥

रावण को देखते ही हनुमानजी कठोर वचन बोलते हुए दौड़े, हनुमानजी के आते ही रावण ने बड़े जोर से उनकी छाती में एक घूंसा मारा॥ १००॥

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा संभारि बहुत रिस भरा॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥

हनुमानजी घुटने टेक गये, पृथ्वी पर गिरे नहीं, फिर संभलकर उठे और बड़े क्रोध में भरे हुए हनुमानजी ने रावण को एक घूंसा मारा, तब वह ऐसे गिरा जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत गिरता है।

मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही॥

मूर्छा गई तब वह जागा और हनुमानजी के पराक्रम की बहुत प्रशंसा करने लगा। हनुमान बोले बारम्बार मेरे पौरुष और मुझको धिक्कारता है। रे सुरद्रोही! जो तू जीता उठ गया।

अस कहि लछिमन कहुं कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
कह रघुबीर समुझु जियं भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता॥

ऐसे कहकर हनुमानजी लक्ष्मणजी को उठा लाये, उसे देखकर रावण को अचम्भा हो गया। लक्ष्मणजी को देखकर रामचन्द्रजी ने कहा- हे भाई! अपने मन में यह समझ कर उठो कि इस समय ब्रह्म शक्ति से व्यथा मानता नहीं, क्योंकि तुम यमराज के भक्षक और देवताओं के रक्षक हो।

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला॥
पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु सन्मुख अति आतुर आए॥

यह वचन सुनते ही कृपालु लक्ष्मणजी उठे, वह कराल शक्ति आकाश को चली गई। फिर धनुष बाण लेकर दौड़े और बहुत जल्दी से शत्रु रावण के सामने आये।

छं--आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो।
गिरयो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥ १०॥

जल्दी से फिर रथ को तोड़ उसके सारथी को व्याकुल कर दिया। रावण भी व्याकुल शरीर होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, क्योंकि सौ बाणों से उसका हृदय बेध दिया था, तब सारथी दूसरे रथ में डालकर उसको लंका में ले गया, रामचन्द्रजी के प्रतापी भाई लक्ष्मण ने आकर प्रभु के चरणों में प्रणाम किया॥ १०॥

दो०--उहां दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य।
राम बिरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य॥ १०१॥

वहां रावण मूर्छा से जागकर कुछ यज्ञ करने लगा, वह मूर्ख अज्ञानी रावण रामचन्द्रजी से विमुख होने के कारण काल के वश होकर भी अपनी जीत चाहता है॥ १०१॥

इहां बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएं नहिं मरिहि अभागा॥

यहां विभीषण ने सब सुधि पाई कि यज्ञ कर रहा है, तो तुरन्त जाकर रघुनाथजी को खबर सुनाई। हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है, यह सिद्ध होने से फिर वह अभागा नहीं मरेगा।

पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर॥
प्रात होत प्रभु सुभट पराए। हनुमदादि अंगद सब धाए॥

हे नाथ! शीघ्र वीर वानरों को भेजो, वे जाकर रावण के यज्ञ को विध्वंस करें। सवेरा होते ही प्रभु ने योद्धाओं को भेजा। अङ्गद हनुमानजी आदि सब सुभट दौड़े।

कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका॥
जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा॥

खेल-खेल में ही कूदकर वानर लंका पर चढ़ गये, रावण के महल में निर्भय होकर घुस गये। उसको यज्ञ करते देखा तो सब वानरों को बड़ा क्रोध हुआ और कहने लगे।

रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहां आइ बक ध्यान लगावा॥
अस कहि अंगद मारा लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥

अरे निर्लज्ज ! रण से भाग घर आया, यहां आकर बगुले की तरह ध्यान लगाता है, ऐसे अङ्गद ने लात मारी, मूर्ख रावण ने देखा भी नहीं क्योंकि उसका मन स्वार्थ में लगा हुआ है।

छं०—नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुं हारई॥ ११॥

जब उसने नहीं देखा तब वानर क्रोधकर दांतों से काटने और लातों से मारने लगे, फिर बाल पकड़कर स्त्रियों को बाहर निकाल लाये तो वे दीन होकर पुकारने लगीं, तब यमराज के समान क्रोध कर रावण उठा और पैर पकड़कर वानरों को पटकने लगा। इस प्रकार यज्ञ विध्वंस कर वानर कुछ भी मन में नहीं हारते थे॥ ११॥

दो०—जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥ १०२॥

यज्ञ विध्वंस कर सब वानर रघुनाथजी के पास आये, तब रावण क्रोध करके चला और जीने की आशा छोड़ दी॥ १०२॥

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥
भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥

चलते समय भयंकर अशकुन होने लगे, गिद्ध सिर पर बैठते और उड़ते हैं। कालवश हो गया, इस कारण भयंकर अशकुन को नहीं मानता और कहता कि युद्ध के बाजे बजवाओ।

चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें। सलभ समूह अनल कहं जैसें॥

निशाचरों की अपरम्पार सेना चली, जिसमें बहुत से हाथी, रथ, पैदल और सवार हैं। प्रभु के सम्मुख दुष्ट राक्षस कैसे दौड़े जैसे पतंगों का झुण्ड अग्नि की ओर दौड़ता है।

इहां देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहि एहिं दीन्ही॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही॥

यहां सब देवताओं ने विनती की कि इसने हमको बड़ा दुःख दिया है। हे नाथ ! अब इसको खेल मत खिलाओ, सीताजी बहुत ही दुःखी हो रही हैं।

देव वचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥
जटा जूट दृढ़ बांधे माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे॥

देवताओं के वचन सुन प्रभु हंसे कि अपना दुःख कहते नहीं, सीताजी को दुःखी कहते हैं, फिर

रामजी ने बाण को संभाला। जटा-जूट कसकर माथे पर बांधा, जिसके बीच-बीच गुथे हुए फूल शोभायमान हैं।

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा॥
कटितट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥

लाल नेत्र, मेघ के समान श्याम शरीर सम्पूर्ण लोगों के नेत्रों को आनन्द देने वाला है। कमर में फेंटा बांधे और तरकस कसे हुए हाथ में कठिन शारङ्ग धनुष-बाण धारण किये हैं।

छं०—सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥ १२॥

शारङ्ग धनुष हाथ में लिए सुन्दर तरकस कमर में कसे भुजदण्ड बड़े दृढ़, मनोहर और लम्बे हैं, चौड़ी छाती में भृगुलता का चिन्ह शोभायमान है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जब प्रभु रामचन्द्रजी धनुष बाण पर हाथ फेरने लगे, तब सारा ब्रह्माण्ड दिग्गज, कच्छप, शेष, नाग, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत ये सब कांपने लगे॥ १२॥

दो०—सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार॥ १०३॥

देवता लोग प्रभु की शोभा को देखकर प्रसन्न हुए। बहुत से फूल बरसाने लगे और प्रभु की जय-जयकार करने लगे। जो गुण, ज्ञान और बल के तथा पृथ्वी के भार को हरने वाले हैं, अर्थात हे प्रभु! आपकी जय हो॥ १०३॥

एहीं बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घन घट्टा॥

इसी अन्तर में राक्षसों की सेना बहुत घनी होने के कारण कसमसाती हुई आ गई। सेना को देख कर वानर योद्धा ऐसे सामने चले, मानो प्रलयकाल के मेघों के समूह हों।

बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दहं दिसि दामिनीं दमंकहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुं बलाहक घोरा॥

शक्ति, त्रिशूल और तलवार ऐसे चमकती है, मानो दसों दिशाओं में बिजली दमकती है। हाथी, रथ, घोड़े इनका कठोर शब्द मानो भयंकर मेघ गरजते हैं।

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुं इंद्रधनु उए सुहाए॥
उठइ धूरि मानहुं जलधारा। बान बुंद भै बृष्टि अपारा॥

वानरों के बहुत लंगूर आकाश में ऐसे छा रहे हैं मानो सुन्दर इन्द्र-धनुष उदय हुए हैं। धूल उठी, मानो जल की धारा है, बाण-रूपी बूंदों की मूसलाधार वर्षा होने लगी।

दुहुं दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई॥

दोनों ओर से योद्धा पर्वतों का प्रहार करते हैं, वही मानो बार-बार वज्रपात हो रहा है। रघुनाथजी ने क्रोध कर बाणों की झरी लगा दी, जिससे राक्षस समूह घायल हुए।

लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहं तहं महि परहीं॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥

बाण लगते ही राक्षस वीर चिल्लाते हैं और घूम-घूम अनगिनत निशाचर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। पर्वतों के झरने से मानो जल झर रहा है। ऐसी रुधिर की नदी कायरों को भय देने वाली बहने लगी।

छं०—कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी॥
जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥ १३॥

कायरों को भय देने वाली रुधिर का बड़ी अपवित्र नदी बढ़ी, दोनों सेना उसके दोनों किनारे हैं। टूटे रथ रेती हैं, पहिए भंवर हैं, इस प्रकार से भयावनी नदी बहती है, उसमें हाथी, घोड़े, रथ अनेक प्रकार के वाहन बहे जाते हैं, सो जल-जीव हैं, उनको कौन गिन सकता है और बाण बर्छा तोमर सर्प हैं, धनुष तरंग हैं, बहुत सी ढालें कछुए हैं॥ १३॥

दो०—बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डरहिं तहं सुभटन्ह के मन चेन॥ १०४॥

वीर जो पड़े हैं सो नदी तट के वृक्ष हैं, चर्बी है सो मानो फेन बहता है, जिसे देखते ही कायर मन में डर जाते हैं और वीरों के मन में उसको देखकर आनन्द होता है॥ १०४॥

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं॥

उस नदी में भूत, प्रेत, पिशाच आकर स्नान करते हैं, भयंकर योगिनी क्रीड़ा करती हैं। कौआ और गीध भुजा लेकर उड़ जाते हैं और एक-से-एक छीनकर खा जाते हैं।

एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥
कहंरत भट घायल तट गिरे। जहं तहं मनहुं अर्धजल परे॥

कोई एक प्रेत कहते हैं, ऐसे बहुतायत में भी मूर्ख तुम्हारा दरिद्र नहीं जाता। जहां-तहां अनेक वीर घायल पड़े कराहते हैं, वे ऐसे दीखते हैं मानों आधे जल में पड़े हैं।

खैंचहिं गीध आंत तट भए। जनु बंसी खेलत चित दए॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेल सरि माहीं॥

तट पर बैठे हुए गीध आंतों को ऐसे खींचते हैं, मानो मन लगाये बंशी खेलते हैं, बहुत से वीर बहे जाते हैं, उन पर पक्षी ऐसे चढ़े हैं, मानो नदी में नाव पर चढ़कर खेलते हैं।

जोगिनी भरि भरि खप्पर संचहिं। भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं॥
भट कपाल करतार बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं॥

योगिनियां खप्पर भर-भरकर सोचती हैं, भूत-पिशाच अनेक प्रकार से नाचते हैं, वीरों के खोपड़ी की करताल बजाते हैं, चामुण्डा नाना भांति से गाती है।

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं ॥

वहां सियारों का समूह कटकटाते हुए खाते और अघाते हैं तथा हुंआते हुए एक-दूसरे को दपटते हैं। करोड़ों रुण्ड बिना मुण्ड के चलते हैं, सिर पृथ्वी पर गिरे जय-जय बोलते हैं।

छं०--बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥
बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए ॥ १४ ॥

जो मुण्ड हैं सो जय बोलते हैं और प्रचण्ड सिर के बिना दौड़ते फिरते हैं। युद्ध का परिणाम प्रगट बोलते हैं कि जो रण में सम्मुख जूझते हैं, वे स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं, रीछ-वानर घमण्ड में भरे हुए निशाचरों के समूहों को मारकर गरजते हैं। रामचन्द्रजी के बाणों के समूहों से मारे हुए वीर संग्राम-भूमि में सोते हैं॥ १४॥

दो०--रावन हृदयं बिचारा भा निसिचर संघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करौं अपार ॥ १०५ ॥

तब रावण ने हृदय में विचार किया कि निशाचरों का संहार हुआ और मैं अकेला रह गया और वानर-रीछ बहुत हैं, अब मैं अपार माया करूं ॥१०५॥

देवन्ह प्रभुहिं पयादें देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेषा ॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा ॥

देवताओं ने प्रभु रामजी को पैदल देखा तो हृदय में बहुत ही घबराहट उत्पन्न हुई। इन्द्र ने अपना रथ तुरन्त भेजा, सो प्रसन्नता से मातलि सारथी रथ को ले आया।

तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा ॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी ॥

तेज का समूह दिव्य और अनुपम रथ देखा इस पर हंसकर श्रीरामचन्द्रजी चढ़े। उस रथ में चञ्चल और मनोहर चार घोड़े अजर अमर मनक समान चलने वाले जुते हुए थे।

रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी ॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी ॥

रथ पर सवार रघुनाथजी को देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े। वानरों की मार सही नहीं जाती, तब रावण ने राक्षसी माया फैलाई।

सो माया रघुबीरहि बांची। लछिमन कपिन्ह सो मानी सांची ॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी ॥

वह माया रामचन्द्रजी को छोड़कर शेष सब किसी ने सच्ची करके मानी। वानरों ने राक्षसों की सेना देखी उसमें लक्ष्मण समेत रामचन्द्रजी बहुत से देखे।

छं०—बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहं सो तहं चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हंसि सर चाप सजि कोसल धनी।
माया हरी हरि निमिष महुं हरषी सकल मर्कट अनी॥ १५॥

बहुत से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-रीछ मन में बहुत डर गये, मानो लक्ष्मणजी समेत चित्र लिखे से जहां के तहां सब खड़े होकर देखने लगे, तब अपनी सेना को आश्चर्ययुक्त देखकर धनुष खींच बाण चलाकर हरि भगवान रामचन्द्रजी ने सब राक्षसी माया पल-मात्र में हर ली। यह चरित्र देखकर वानरी सेना प्रसन्न हुई॥ १५॥

दो०—बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गंभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर॥ १०६॥

फिर तो रामचन्द्रजी सबकी ओर देखकर गम्भीर वचन बोले कि अब तुम सब लोग द्वन्द युद्ध एक ओर खड़े होकर देखो, क्योंकि तुम सब वीर थक गये हो॥ १०६॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सन्मुख धावा॥

ऐसे कहकर रघुनाथजी ने ब्राह्मणों के चरण-कमलों को सिर नवाकर रथ चलाया। तब रावण क्रोध करके दौड़ा और गरजता वह डपटता हुआ प्रभु के सामने आया।

जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना॥

हे तपस्वी! सुन, जो वीर तूने संग्राम में जीत लिए हैं मैं उनके समान नहीं हूं, मेरा नाम रावण है। मेरे यश को संसार जानता है कि लोकपाल भी जिसके बन्दीखाने में पड़े हैं।

खर दूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु॥

खरदूषण विराध को तूने मारा और ब्याध की तरह छिपकर बिचारे बालि को मारा और बहुत से राक्षस वीरों का संहार किया, कुम्भकर्ण और मेघनाद को भी मारा।

आजु बयरु सबु लेउं निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही॥
आजु करउं खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले॥

आज सबका वैर पूरा करूंगा, जो तू रण-भूमि से भाग न जायेगा। दुष्ट! आज काल के हवाले करूंगा। अब कठिन रावण के पाले आ पड़े हो।

सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहंसि बचन कह कृपानिधाना॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥

रावण के दुर्वचन सुनकर उसको काल के वश जाना और कृपानिधान रामचन्द्रजी ने हंसकर वचन कहा। तेरी सब प्रभुता सच्ची है, बकवाद मत कर तेरी बहादुरी देखूंगा।

छं०—जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महं पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥ १६॥

बकवाद मत कर, इससे सुन्दर यश का नाश हो जाता है। रे शठ! क्षमा कर नीति को सुन, संसार में पाटल (पुष्पराज), रसाल (आम), पनस (कटहल) के समान तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक केवल फूल ही देते हैं, जैसे गुलाब आदि, एक फूल और फल दोनों देते हैं, जैसे आम और एक में केवल फल ही लगते हैं, जैसे कटहल। तैसे ही एक कहते हैं करते नहीं। ये पाटल के समान और एक कहते हैं और करते भी हैं, वे आम के समान हुए तथा एक करते ही हैं, न कहते हैं और न ही डींग मारते हैं। वे कटहल के समान हुए॥ १६॥

दो०—राम बचन सुनि बिहंसा मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥ १०७॥

रामचन्द्रजी का वचन सुनकर रावण ने कहा मुझको ज्ञान सिखाते हो, तब तो वैर करते न डरे अब प्राण प्यारे लगते हैं॥ १०७॥

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छांड़े सर॥
नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए॥

इस प्रकार दुर्वचन कह और क्रोधित हो रावण वज्र के समान बाण छोड़ने लगा, अनेक प्रकार के आकार वाले बाण छूटे जो दिशा और विदिशा, आकाश व पृथ्वी पर छा गये।

पावक सर छांड़ेउ रघुबीरा। छन महुं जरे निसाचर तीरा॥
छाड़िसि तीव्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई॥

तब रामचन्द्रजी ने अग्नि बाण छोड़े जिससे क्षण-भर में रावण के बाण जल गये, फिर रावण ने खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी, उसको प्रभु ने बाण के साथ लौटाकर भेज दिया।

कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै॥
निफल होहिं रावन सर कैसें। खल के सकल मनोरथ जैसें॥

रावण ने करोड़ों चक्र, त्रिशूल चलाये, प्रभु ने उन सबको बिना परिश्रम काटकर डाल दिया, रावण के बाण ऐसे विफल हो जाते हैं जैसे दुष्ट के सब मनोरथ निष्फल होते हैं।

तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुं पावा॥

तब रावण ने सौ बाण सारथी मातलि को मारे, वह जय राम कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, रामजी ने कृपा कर मातलि को उठाया, तब प्रभु के हृदय में बहुत क्रोध आ गया।

छं०—भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥

मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हंसे ॥ १७ ॥

जब रामचन्द्रजी क्रोधित हुए और युद्ध में रुक गये, तब तो तरकस में बाण कसमसाने लगे। धनुष से अति प्रचण्ड शब्द निकला, जिसकी ध्वनि सुनकर राक्षस भय-रूपी वायु में ग्रसित हो गये। मन्दोदरी का हृदय कांपा, कच्छपजी कांप उठे, पृथ्वी और पर्वतों को व्याकुलता हुई दिग्गज दांतों से पृथ्वी पकड़-कर चिग्घाड़ने लगे। यह कौतुक देखकर देवता हंसे ॥ १७ ॥

दो०—तानेउ चाप श्रवन लगि छांड़े बिसिख कराल।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल ॥ १०८ ॥

कानों तक धनुष तानकर तीक्ष्ण बाण छोड़े, वे रामचन्द्रजी के बाण ऐसे चले, मानों लहलहाते हुए सांप चले जा रहे हों ॥ १०८ ॥

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा ॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका ॥

पंखों सहित सांप के समान बाणों ने पहले ही सारथी और घोड़े मार डाले। रथ को तोड़ ध्वजा पताकाओं को चूरकर बाण निषङ्ग में आ गये। तब रावण बहुत गरजा, परन्तु अन्तःकरण का बल थक गया।

तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छांड़ेसि बिधि नाना ॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के ॥

तब रावण खिसियाकर एक दूसरे रथ पर जाकर बैठा और अनेक प्रकार से अस्त्र-शस्त्र छोड़ने लगा। परन्तु उसके सब परिश्रम इस तरह निष्फल हो गये जैसे परद्रोहियों के कार्य सिद्ध नहीं होते।

तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा ॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छांड़े सायक ॥

तब रावण ने दस त्रिशूल चलाये और चारों घोड़ों को पृथ्वी पर गिरा दिया। घोड़ों को उठाकर रघुनाथजी ने क्रोध कर धनुष तान करके बाण छोड़े।

रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी ॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे ॥

श्रीरामचन्द्रजी के बाण रावण के सिर-रूपी कमलों के वन में भौरे के समान चले। दस-दस बाण रावण के दसों सिरों में मारे, जिससे रुधिर के पनार निकल चले।

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना ॥
तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्हि समेत सीस महि पारे ॥

रुधिर बहते ही बलवान् दौड़ा, तब श्रीरामजी ने फिर धनुष-बाण चढ़ाया। तीस बाण रामजी ने छोड़े, जिन्होंने बीसों भुजाओं सहित दसों सिर पृथ्वी पर डाल दिये।

काटतहीं पुनि भए नबीन। राम बहोरि भुजा सिर छीने ॥
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। कटत झटिति पुनि नूतन भए ॥

काटते ही फिर नए हो गये, तब फिर रामजी ने भुजा और सिर काट डाले। रामजी ने अनेकों बार भुजा और सिर काटे, काटते ही तत्काल फिर नये हो जाते।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुं अमित केतु अरु राहू॥

बार-बार प्रभु भुजा और सिर काटते हैं। अयोध्यानाथ श्रीरामचन्द्रजी बड़े खिलाड़ी हैं। आकाश में सिर और भुजा ऐसे छा रहे हैं, मानो अनगिनत केतु और राहु हैं।

छं०—जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहं तहं बिधुंतुद पोहहीं॥ १८॥

मानो बहुत से राहु और केतु आकाश मार्ग में रुधिर बहाते हुए दौड़ रहे हैं, रामजी के प्रचण्ड बाण उनमें लगते हैं। इस कारण वे भूमि पर गिरने नहीं पाते हैं। एक बाण में अनेक सिर छिदे आकाश में उड़ते हुए ऐसे शोभायमान लगते हैं, मानो कोप करके सूर्य नारायण ने अपनी किरणों में जहां-तहां बहुत से राहु पिरो लिए हों॥ १८॥

दो०—जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार॥ १०१॥

जैसे-जैसे प्रभु रामजी रावण के सिर काटते हैं, तैसे-तैसे बहुत बढ़ते जाते हैं। जैसे विषयों के सेवन करने के निमित्त नया काम बढ़ता ही जाता है॥ १०९॥

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी॥
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसहु सरासन तानी॥

रावण ने अपने सिरों की संख्या बढ़ती देखी तो उसका अपना मरना भूल गया और क्रोध बढ़ गया। महा अभिमानी मूर्ख रावण गरजा, बीसों भुजाओं में दसों धनुष बाण चढ़ाकर दौड़ा।

समर भूमि दसकंधर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो॥
दंड एक रथ देखि न परेऊ। जनु निहार महुं दिनकर दुरेऊ॥

समर-भूमि में रावण ने कोप किया, बाणों की वर्षा कर रघुनाथजी के रथ को ढक लिया, एक घड़ी तक रथ दिखाई नहीं पड़ा, मानो कुहार में सूर्य छिप गये हैं।

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे॥

देवताओं ने जब हाहाकार किया, तब प्रभु ने क्रोध करके धनुष हाथ में लिया। शत्रु के बाण काट कर उसके सिर काटे और दिशा विदिशा आकाश और पृथ्वी में भर दिये।

काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं॥
कहं लछिमन सुग्रीव कपीसा। कहं रघुबीर कोसलाधीसा॥

काटे हुए सिर आकाश मार्ग में दौड़ते हैं और जय-जय ध्वनि करके भय उत्पन्न करते हैं और यह कहते हैं कि कहां हैं लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव? कहां हैं अयोध्या के रामचन्द्र?

छं०—कहं रामु कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु रघुबंसमनि हंसि सरन्हि सिर बेधे भले॥
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुं संग्राम बट पूजन चलीं॥ १९॥

रामचन्द्र कहां हैं ? ऐसे कहकर सिर-समूह दौड़ते हैं, उनको देखकर वानर भाग चले तब रामचन्द्र जी ने हंसकर धनुष चढ़ाकर बाणों से उन सिरों को भली-भांति छेद दिया। उन सिरों की मालाओं को लेकर बहुत सी कलिका देवी झुण्ड की झुण्ड ऐसी आ मिलीं मानो रुधिर की नदी में स्नान कर संसार-रूपी वट वृक्ष का पूजन करने जाती हैं, जैसे स्त्रियां त्रिरात्रि व्रत कर वट वृक्ष का पूजन करने जाती हैं॥ १९॥

दो०—पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छांड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुं काल कर दंड॥ १२०॥

फिर रावण ने बहुत क्रोध कर प्रचण्ड शक्ति फेंकी, वह विभीषण के सामने ऐसी चली मानो काल का दण्ड हो॥ ११०॥

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥

प्रभु ने उस भारी शक्ति को आता देखकर भक्तों के दुःख दूर करने वाला बाना संभाला तुरन्त विभीषण को अपने पीछे किया और सामने रामजी ने उस शक्ति को सह लिया।

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई॥
देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥

शक्ति लगी तो कुछ मूर्छा हुई, प्रभु ने खेल किया परन्तु देवताओं को व्याकुलता हो गई। प्रभु ने क्लेश पाया, यह देखकर विभीषण गदा हाथ में लेकर क्रोध करके दौड़े।

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥
सादर सिव कहुं सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए॥

रे अभागे, शठ, नीच, कुबुद्धि तूने देवता, मनुष्य, मुनि, नाग इन सबसे बैर किया है। आदर से शिवजी को सिर काट-काटकर चढ़ाये, एक-एक के करोड़ों पाये।

तेहि कारन खल अब लगि बांच्यो। अब तव कालु सीस पर नाच्यो॥
राम बिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माझ उर गदा॥

इस कारण रे दुष्ट ! अब तक बचा, अब तेरा काल सिर पर नाच रहा है। रामजी से विरोध करके शठ ! सम्पत्ति चाहता है ऐसे कहकर छाती में गदा मारी।

छं०—उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परयो।
दस बदन सोनि स्रवत पुनि संभारि धायो रिस भरयो॥
द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ता कहुं गनै॥ २०॥

हृदय में घोर कठोर गदा की चोट लगते ही रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। दसों मुख से रुधिर बहता हुआ संभलकर फिर उठा और क्रोध में भरकर दौड़ा। बड़े बलवान दोनों भिड़कर मल्ल युद्ध करने लगे अर्थात कुश्ती लड़ने लगे। एक को देखकर एक मारने लगे। रामचन्द्रजी के बल से अहंकारयुक्त विभीषण उसकी मार को कुछ नहीं गिनता॥ २०॥

दो०—उमा बिभीषनु रावनहिं सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्रीरघुबीर प्रभाउ॥ १११॥

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! रावण के सामने विभीषण क्या कभी देख सकता था? सो अब काल के समान लड़ता है, यह भी श्रीरामचन्द्रजी का प्रभाव है॥ १११॥

देखा श्रमित बिभीषनु भारी। धायउ हनूमान गिरि धारी॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माझ तेहि मारेसि लाता॥

जब विभीषण को थका हुआ देखा, तब हनुमानजी पर्वत को लेकर दौड़े। रथ, घोड़े, सारथी का नाश किया और रावण के हृदय में लात मारी।

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता। गयउ बिभुषनु जहं जनत्राता॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूंछ पसारी॥

लात लगने से रावण खड़ा तो रहा, परन्तु शरीर बहुत कांपने लगा, तब विभीषणजी वहां गये, जहां भक्त रक्षक श्रीरामजी थे। फिर रावण ने उनको ललकार कर मारा, तब हनुमानजी पूंछ फैलाकर आकाश को चले।

गहिसि पूंछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एकु हनत करि क्रोधा॥

हनुमानजी की पूंछ पकड़ कर उसके साथ ही उड़ गया, फिर हनुमानजी आकाश में ही उससे जुट गये। आकाश में दोनों समान योद्धा लड़ते हैं, एक को एक क्रोध करके मारते हैं।

सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं॥
बुधि बल निसिचर परइ न परयो। तब मारुतसुत प्रभु संभारयो॥

आकाश में बहुत सा छल-बल करके ऐसे सुहाते हैं, मानो कज्जल और सुमेरु पर्वत लड़ते हों। बुद्धि, बल में राक्षस रावण के साथ युद्ध करते पार नहीं पाया। तब हनुमान जी ने प्रभु का स्मरण किया।

छं०—संभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुं जय जय भन्यो॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुज बल दलमले॥ २१॥

धीर रघुवीरजी का स्मरण कर हनुमानजी ने ललकार कर रावण को ऐसा मारा कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, फिर उठकर लड़ने लगा। देवताओं ने दोनों की जय-जय कहकर दोनों की बड़ाई की। हनुमानजी को संकट में देखकर वानर रीछ क्रोध करके दौड़े परन्तु रावण उस समय लड़ाई से मतवाला

हो रहा था। उसने योद्धाओं को अपनी प्रचण्ड भुजाओं के बल से दल-मल डाला ॥ २१ ॥

दो०—तब रघुबीर पचारे धाए कीस प्रचंड।
कपि बल प्रबल देखि तेहिं कीन्ह प्रगट पाहंड ॥ ११२ ॥

तब रघुनाथजी ने ललकारा फिर प्रचण्ड वानर दौड़े। वानरी सेना को प्रबल देखकर उसने पाखंड किया, राक्षसी माया चलाई ॥ ११२ ॥

अंतराधन भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघपति कटक भालु कपि जेते। जहं तहं प्रगट दसानन तेते ॥

एक क्षण-भर अन्तर्ध्यान हो गया फिर वह दुष्ट अनेक रूप से प्रकट हुआ। रामचन्द्रजी की सेना में जितने रीछ-वानर थे, उतने ही रावण जहां-तहां प्रकट हो गये।

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहं तहं भजे भालु अरु कीसा ॥
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा ॥

जब वानरों ने असंख्य रावण देखे, तब रीछ वानर योद्धा व्याकुल होकर भागने लगे। वानर भागते, धीरज नहीं रखते। हे लक्ष्मण ! हे रामजी ! रक्षा करो। ऐसे पुकारने लगे।

दहं दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन ॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई ॥

दसों दिशाओं से करोड़ों रावण दौड़ते हैं और महा-भयंकर व कठोर शब्द से गरजते हैं। सब देवता डर गये और भाग चले कि अब भाई जीतने की आशा छोड़ दो।

सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरि कंदर ॥
रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी ॥

एक रावण ने तो सब देवताओं को जीत लिया। अब बहुत रावण हो गये, पर्वतों की गुफा ढूंढ़ो, वहां छिप रहेंगे। ब्रह्मा, शिव और ज्ञानी मुनि स्थिर रहे जिन जिनने प्रभु की महिमा जान ली है।

छं०—जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे ॥
हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बांकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे ॥ २२ ॥

जो रामजी के प्रताप को जानते हैं, वे निर्भय रहे। वानरों ने शत्रु रावण सच्चे जाने, सब वानर-रीछ चल-विचल हो गये। डर के मारे पुकारने लगे। हे कृपालु भगवान ! रक्षा करो। हनुमान, अङ्गद, नील और जो बड़े बलवान लड़ाई में बड़े लड़ाके हैं, वे कपटी योद्धाओं के रूप में जो करोड़ों रावण थे उनको मर्दन कर डालते हैं ॥ २२ ॥

दो०—सुर बानर देखे बिकल हंस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस ॥ ११३ ॥

जब देवता और वानरों को व्याकुल देखा तो रामचन्द्रजी हँसे और अपने धनुष को चढ़ाकर एक ही बाण से पल मात्र में सब प्राणियों का नाश कर दिया ॥ ११३ ॥

प्रभु छन महुं माया सब काटी। जिमि रबि उएं जाहिं तम फाटी ॥
रावनु एकु देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे ॥

प्रभु ने क्षण-भर में सब माया ऐसे काट डाली, जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है। एक रावण को देखकर देवता प्रसन्न हुए और प्रभु पर बहुत से फूल बरसाये।

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे ॥
प्रभु बलु पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए ॥

भुजा उठाकर रामजी ने वानर लौटाये, जब एक को एक ने पुकारा। इस प्रकार सब लौट आये, प्रभु का बल पाकर रीछ-वानर दौड़े और बड़े वेग से तमककर समरभूमि में आये।

अस्तुति करत देवतन्हि देखें। भयउं एक मैं इन्ह के लेखें ॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल ॥

देवताओं को रामजी की स्तुति करते देखा तब रावण ने कहा कि इन देवताओं की समझ में मैं एक हो गया हूं। इसी से राम की प्रशंसा कर रहे हैं। अरे मूर्खो ! तुम सदा मेरा मरण मनाते हो। ऐसे कहकर और क्रोध करके आकाश मार्ग को दौड़ा।

हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहं मोरें आगे ॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ॥

तब हाहाकार करते हुए देवता भाग चले तो रावण ने ललकारा कि दुष्ट ! मेरे आगे से कहां जाओगे ? देवताओं को व्याकुल देखकर अङ्गदजी ने कूदकर चरण पकड़ कर उसको पृथ्वी पर गिरा दिया।

छं०—गहि भूमि पारयो लात मारयो बालिसुत प्रभु पहिं गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो ॥
करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई ॥ २३ ॥

रावण को पकड़ कर पृथ्वी पर गिरा दिया और लात मारकर बालि पुत्र अंगद प्रभु के पास गया। सँभल कर रावण उठा और घोर कठोर शब्द कर गरजने लगा, फिर घमण्ड कर दसों धनुष चढ़ा कर बहुत से बाण बरसाने लगा। सब योद्धाओं को घायल और भय से व्याकुल कर दिया और अपने बल को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ २३ ॥

दो०—तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ॥ ९६ ॥ ११४ ॥

तब रघुनाथजी ने रावण के सिर, भुजा, बाण और धनुष काट डाले परन्तु वे फिर नवीन हो गए जैसे तीर्थ पर किए पाप बढ़ते ही जाते हैं ॥ ११४ ॥

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी ॥
मरत न मूढ़ कटेहुं भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा।

शत्रु के सिर और भुजाओं को बढ़ता देखकर रीछ-वानरों को बड़ा क्रोध हुआ कि मूढ़, भुजा और सिर काटने पर भी नहीं मरता। यह विचार कर रीछ-वानर कोप कर दौड़े।

बालितनय मारुति नल नाला। बानरराज दुबिद बलसीला॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा॥

अंगद, हनुमान, नल-नील, महाबली द्विविध और मयन्द वृक्ष और पर्वतों का प्रहार करते हैं। वही पर्वत और वृक्ष पकड़कर वह वानरों को मारता है।

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारा। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी॥
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ॥

कोई नखों से रावण के शरीर को विदीर्ण करते हैं, कोई लात मारकर भाग जाते हैं। तब नल-नील सिर पर चढ़ गए और नखों से मस्तक विदीर्ण करने लगे।

रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहि धरन कहुं भुजा पसारी॥
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं॥

रुधिर देखकर रावण बहुत क्रोधित हुआ और उनको पकड़ने को भुजा फैलाई। वह पकड़े नहीं जाते हैं हाथों पर फिरते हैं मानो दो भौंरे कमल-वन में घूम रहे हैं।

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे॥

फिर रावण ने क्रोध कर कूद-फांदकर दोनों को पकड़ा, पर पृथ्वी पर पटकते समय वे भुजा मरोड़ कर भाग गये फिर क्रोध करके दस धनुष हाथ में लेकर और बाणों से मार कर वानरों को घायल किया।

हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धायउ रनधीरा॥

हनुमान आदि वानरों को मूर्छित कर रात्रि का समय पाकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। बानर वीरों को मूर्छित देखकर रणधीर जामवन्त दौड़ा।

संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी॥
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना। गहि पद महि पटकइ भट नाना॥

संग में पर्वत वृक्षधारी रीछ ललकार कर मारने लगे। तब बलवान रावण अति क्रोधित हुआ और अनेक योद्धाओं के पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटकने लगा।

देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता॥

जामवंत ने अपने दल का नाश देखकर क्रोध करके रावण की छाती में लात मारी।

छं०—उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहि भालु बीसहुं कर मनहुं कमलन्हि बसे निसि मधुकरा॥
मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो।
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो॥ २४॥

छाती में लात की भारी चोट लगते ही व्याकुल हो रावण रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा और पटकने के लिए बीसों हाथों से जिन रीछों को पकड़ा था, वे हाथ ऐसे लगते थे मानो रात में कमल मूंद जाने से भौंरों ने वास किया है, फिर रावण को मूर्छित देखकर एक लात और मारी। जामवंत प्रभु के पास चले गये तब रात जानकर सारथी रावण को रथ में डालकर लंका में लाकर मूर्छा दूर करने का उपाय करने लगा ॥ २४ ॥

दो०–मुरुछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास ॥ ११५ ॥

मूर्छा दूर हो जाने पर रीछ-वानर सब प्रभु के पास आए और वहां लंका में सब राक्षस बहुत डरे हुए हैं। इस कारण सबने जाकर रावण को घेर लिया ॥ ११५ ॥

तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई ॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी ॥

उसी रात में सीताजी के पास जाकर त्रिजटा ने सब युद्ध की कथा कह सुनाई। शत्रु के सिर और भुजाओं का बढ़ना सुनकर सीताजी के हृदय में बड़ा भय हुआ।

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता ॥
होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व सुखदाता ॥

मुख मलीन हो गया, मन में चिन्ता उत्पन्न हुई तब सीताजी त्रिजटा से बोली हे माता! क्या होगा कहती क्यों नहीं हो? यह जगत को दुःख देने वाला रावण किस तरह मरेगा?

रघुपति सर सिर कटेहुं न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई ॥
मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही ॥

रघुनाथजी के बाणों से सिर कटने से भी नहीं मरता विधाता उल्टा चरित्र करता है मेरा अभाग्य उसे जिलाता है जिससे मुझको हरि के चरण-कमलों से बिछोह कराया है।

जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुं सो दैव मोहि पर रूठा ॥
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुं कटु बचन कहाए ॥

जिसने सोने का झूठा कपट मृग बनाया, वही दैव अब भी मुझ पर रूठा है। जिस विधाता ने मुझको कठिन दुःख सहाया और लक्ष्मण को कटु वचन कहाये।

रघुपति बिरह सबिष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी ॥
ऐसेहुं दुख जो राख मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना ॥

रामजी के वियोग रूपी बड़े कठिन बाणों से तक तककर बार-बार मुझको मारा है, ऐसे दुःख में भी जिसने मेरे प्राणों को रखा, वही विधाता उसे जिलाता है कोई और नहीं।

बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की ॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी ॥

जानकीजी अनेक भांति से कृपानिधान रामजी की स्तुति करके विलाप करती है। यह देख त्रिजटा ने कहा– हे राजकुमारी सीता! रावण तो हृदय में बाण लगने से ही मरेगा।

प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयं बसति बैदेही ॥

प्रभु रामजी इस कारण उसके हृदय में बाण नहीं मारते हैं कि उसके हृदय में सीताजी निवास करती हैं।

छं०—एहि के हृदयं बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बन सब कर नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटां कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा॥ २५॥

इसके हृदय में जानकी रहती है और जानकी के हृदय में मेरा वास है। मेंरे हृदय में अनेक ब्रह्माण्ड हैं। बाण लगते ही सबका नाश। इस प्रकार सुनते ही आनन्द हुआ परन्तु दुःख बहुत हुआ। यह देखकर फिर त्रिजटा कहने लगी, हे सुन्दरी ! अब शत्रु इस प्रकार मरेगा। सो सुनो और तुम्हारे मन में बड़ा सन्देह हो गया सो उसको छोड़ दो॥ २५॥

दो०—काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुं मरिहहिं रामु सुजान॥ ११६॥

जब बार-बार सिर काटने से व्याकुल हो जायेगा और तुम्हारा ध्यान छट जायेगा, तब रावण के हृदय में कृपानिधान रामचन्द्रजी बाण मारेंगे॥ ११६॥

अस कहि बहुत भांति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥

ऐसे कहकर बहुत प्रकार से समझाया, फिर त्रिजटा अपने घर चली गई। रामजी के स्वभाव को स्मरण कर जानकीजी के हृदय में बड़ी विरह व्यथा उपजी।

निसिहि ससिहि निंदति बहु भांती। जुग सम भई सिराति न राती॥
करति बिलाप मनहिं मन भारी। राम बिरहं जानकी दुखारी॥

रात्रि और चन्द्रमा को अनेक दोष देने लगी। युग के समान रात्रि हो गई, बीतती नहीं। मन-ही-मन बहुत विलाप करती हैं। रामजी के वियोग में जानकीजी दुःखी हैं।

जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥

जब प्रभु के वियोग से हृदय में बड़ी जलन हुई, तब बायीं आंख और बायीं बांह फड़की। बाई नेत्र और बांह फड़कने से शकुन समझ कर मन में धीरज धारण किया कि अब दयालु रामचन्द्र जी मिलेंगे।

इहां अर्धनिसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा॥
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥

यहां आधी रात के समय रावण जब मूर्छा से जागा और अपने सारथी से झुंझलाने लगा। अरे शठ ! तूने मुझको रणभूमि से छड़ाया। रे नीच मन्दबुद्धि ! तुमको बार-बार धिक्कार है।

तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोरु भएं रथ चढ़ि पुनि धावा॥
सुनि आगवनु दसानन केरा। कपि दल खरभर भयउ घनेरा॥

तब उसने पैरों में गिरकर बहुत भांति सूत धर्म समझाया, फिर सवेरा होने पर रावण रथ पर चढ़कर युद्ध करने फिर आया। रावण का आना सुनकर वानरों की सेना में खलबली मच गई।

जहं तहं भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥

जहां-तहां पर्वत और वृक्ष उखाड़कर योद्धा कटकटा कर दौड़े।

छं०–धाए जो मर्कट बिकल भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा॥
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो।
चहुं दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तनु ब्याकुल कियो॥ २६॥

जो विकट वानर और भयंकर रीछ हाथों में पर्वत लेकर दौड़े और कोप में प्रहार करने लगे। उनके मारते ही राक्षस भाग चले। इस प्रकार बलवान वानरों ने राक्षसी सेना को भगा कर फिर रावण को घेर लिया और दोनों ओर से चपेटों से मारकर और नखों से फाड़कर उसको व्याकुल कर दिया॥ २६॥

दो०–देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महुं कृत माया बिस्तार॥ ११७॥

वानरों को महा-प्रबल देखकर रावण ने अपने मन में विचार किया और अन्तर्ध्यान होकर पल मात्र में राक्षसी माया का विस्तार किया॥ ११७॥

छन्द तोमर

छं०–जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच॥

जब उसने पाखण्ड किया, तब प्रचण्ड जीव उत्पन्न हो गये। बैताल, भूत, पिशाच हाथ में धनुष बाण धारण किए प्रकट हो गये।

जोगिनि गहें करबाल। एक हाथ मनुज कपाल॥
करि सद्य सोनित पान। नाचहिं करहिं बहु गान॥

योगिनी एक हाथ में खड्ग और एक हाथ में मनुष्य की खोपड़ी लिए हुए तुरन्त रुधिर पान करके नाचने और बहुत गान करने लगीं।

धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुं ओर॥
मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान॥

पकड़ियो, मारियो! यह भयंकर शब्द हो रहा था। यही ध्वनि चारों ओर फैल रही थी, कुत्ते मुख पसार कर भागने लगे, तब वानर भी भागने लगे।

जहं जाहिं मर्कट भागि। तहं बरत देखाई आगि॥
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरषै बालु॥

वानर जहां भागकर जाते हैं, वहां आग जलती देखते हैं, वानर-रीछ व्याकुल हो गये फिर बालू बरसाने लगे।

जहं तहं थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस॥
लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत॥

जहां-तहां वानरों को थकित करके फिर रावण गरजा, लक्ष्मण और सुग्रीव सहित सब वीर मूर्छित हो गये।

हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ॥
एहि बिधि सकल बल तोरि। तेहिं कीन्ह कपट बहोरि॥

हा राम! हा रघुनाथ! कहकर योद्धा हाथ मींचने लगे। इस भांति सबका बल खण्डन करके फिर उसने कपट किया।

प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहे पाषान॥
तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुं दिसि बरूथ बनाइ॥

बहुत से हनुमान प्रकट हो गये, जो पत्थर लिए दौड़े और उन्होंने चारों ओर से झुण्ड बनाकर रामचन्द्रजी को जाकर घेर लिया।

मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूंछ उठाइ॥
दहं दिसि लंगूर बिराज। तेहिं मध्य कोसलराज॥

मारो, पकड़ो, जाने न पावे यह कह पूंछ उठाकर कटकटाने लगे। दसों दिसाओं में पूंछ फैल रही थी, उनके बीच में श्रीरामचन्द्र जी विराजमान हैं।

छं०—तेहिं मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुं माया हरी॥ २७॥

उनके बीच में भी रामचन्द्रजी सुन्दर श्याम शरीर ने ऐसी शोभा पाई, मानो अनेक इन्द्र धनुषों की सुन्दर बारी ऊंचे तमाल वृक्ष के चारों ओर बनाई गई है। प्रभु को देखकर हृदय में हर्ष और विषाद युक्त देवता जय-जय शब्द उच्चारण करने लगे। रामचन्द्रजी ने क्रोध करके एक ही बाण से पल-भर में रावण की सब माया हर ली॥ २७॥

माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाड़े राम रावन बहु सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥ २८॥

माया दूर हो जाने से वानर प्रसन्न हुए और वृक्ष, पर्वत लेकर सब लौटे, रामजी ने अनेकों बाण फेंके, जिससे रावण की भुजायें और सिर पृथ्वी पर गिरे और फिर पैदा हो गये। श्रीरामजी और रावण का युद्ध-चरित जो अनेक कल्प पर्यन्त सैकड़ों शेष, सरस्वती, वेद और बहुत से कविजन गान करें तो भी पार नहीं पावें ॥ २८ ॥

दो०-ताके गुन गन कछु कहे जड़मति तुलसीदास।
जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास ॥ ११८ ॥
काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस ॥ ११६ ॥

उस प्रभु के गुण-समूह जड़, बुद्धि तुलसीदासजी ने कुछ वर्णन किये, सो इस प्रकार जैसे अपने पराक्रम के अनुसार मछली आकाश में उड़ती हैं ॥ ११८ ॥ रावण के सिर और भुजा बहुत बार काटे तो भी योद्धा नहीं मरता। प्रभु तो खेल कर रहे हैं, परन्तु मुनि, सिद्ध और देवता लोग इस क्लेश को देखकर व्याकुल हैं ॥ ११६ ॥

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा ॥

काटने से रावण के सिर समूह ऐसे बढ़ते हैं, जैसे लाभ पर लाभ होने से लोभ की अधिकता होती है। शत्रु नहीं मरता परिश्रम बहुत हुआ, तब रामजी ने विभीषण की ओर देखा।

उमा काल मर जाकीं ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा ॥
सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक ॥

हे पार्वती ! जिसकी इच्छा से काल भी मर जाय, वे ही प्रभु जन की परीक्षा ले रहे हैं। सुनो सर्वज्ञ ! आप चराचर जगत के स्वामी हो। भक्तों के पालक हो। देवता और मुनियों के सुखदायक कहो।

नाभिकुंड पियुष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें ॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला ॥

इसके नाभि कुण्ड में अमृत रहता है। हे नाथ ! उसी कुण्ड के बल से रावण जीता है। विभीषण का वचन सुनते ही कृपालु प्रभु ने प्रसन्न होकर कठिन बाण लिए।

असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना ॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहं तहं केतू ॥

उस समय अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगे। गधे, गीदड़ और बहुत से कुत्ते रोने लगे। पक्षी बहुत दुःख के कारण बोलने लगे, आकाश में जहां-तहां केतु उदय हो गये।

दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा ॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी ॥

तब दसों दिशाओं में दाह होने लगा। बिना अमावस के सूर्य ग्रहण के ऐसा हो गया। मन्दोदरी का हृदय बहुत कांपने लगा, प्रतिमायें नेत्र के मार्ग से जल बहाने लगीं।

छं०—प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥ २१ ॥

प्रतिमा पसीजने लगी, आकाश से वज्रपात होने लगे, प्रचण्ड पर्वत चलने लगे, पृथ्वी कांपने लगी, मेघ, रुधिर, केस, धूल बरसाने लगे। इस प्रकार बहुत से अशुभ को कौन कह सकता है? आकाश से देवता अनेक उत्पात देखकर व्याकुल हो श्रीरामचन्द्रजी की जय-जय बोलने लगे, देवताओं को भयभीत जान कृपालु रघुनाथजी ने धनुष बाण चढ़ाये॥ २६॥

दो०—खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस॥
रघुनायक सायक चले मानहुं काल फनीस॥ १२०॥

कान तक धनुष को तानकर एकतीस बाण छोड़े। रघुनाथजी के बाण मानो काल रूप सांप हैं॥ १२०॥

सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुजहीन रुंड महि नाचा॥

एक बाण ने तो नाभि का अमृत-कुण्ड सोख लिया अन्य बाण क्रोध करके सिर और भुजाओं में लगे। वे बाण सिर और बीसों भुजाओं को ले चले सिरों और भुजाओं से हीन धड़ पृथ्वी पर नाचने लगा।

गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहां रामु रन हतौं पचारी॥
घरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा॥

मरते समय भी रावण महाघोर शब्द करके गरजा कि कहां है राम! उसको ललकार कर रण में मारूंगा। यहां रावण ने राम का नाम किस युक्ति से लिया। उसका प्रचण्ड रुण्ड जो दौड़ रहा था, उससे पृथ्वी धंसने लगी। तब प्रभु ने बाण मारकर दो खण्ड कर दिये।

डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥

रावण के गिरते ही पृथ्वी डोल गई। समुद्र, सरोवर, दिग्गज, पर्वत क्षुभित हो गये।

धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई॥
मंदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहां जगदीसा॥

वीर रावण अपने शरीर के दोनों खण्डों को बढ़ाकर और रीछ-वानरों के समूह को दाबकर गिर पड़ा। मन्दोदरी के आगे रावण की बीसों भुजायें और दसों सिरों को रखकर बाण चले जहां जगदीश्वर रामचन्द्रजी थे।

प्रबिसे सब निषंग महुं जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई॥
तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥

सब आकर तरकस में प्रवेश कर गये यह देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाये। उस रावण का तेज प्रभु के मुख में प्रवेश कर गया। यह देखकर शिव और ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए।

जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा॥
बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥

सारे ब्रह्माण्ड में जय-जय की ध्वनि पूर्ण हो गई कि श्रीरामजी के प्रबल भुजदण्ड की जय हो! देवता और मुनिगण फूल बरसाने लगे और जय कृपालु जय-जय मुकुन्द उच्चारण करने लगे।

छं०—जय कृपा कंद मुकंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खल दल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो॥
सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदभि गहगही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥ ३०॥

जय कृपाकन्द! जय मुकुन्द! जय दुःखहरण! शरणागत सुखदायक प्रभो! जय दुष्ट गणों के नाशक! परम कारण रूप! सदैव दया करने वाले सर्वज्ञ स्वामिन्! आपकी जय हो। इस प्रकार कहते हुए देवता फूल बरसा रहे थे। गहगहे नगाड़े बजा रहे थे। समर में आंगन में रामजी के सभी अंग अनेकों कामदेव के समान बड़ी शोभा को प्राप्त हुए॥ ३०॥

सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥ ३१॥

प्रभु के सिर पर जटाओं का मुकुट और उसके बीच-बीच में फूल ऐसे अति मनोहर शोभा से युक्त हैं, मानो नील पर्वत पर बिजलियों की चमक समेत तारागण शोभायमान हैं। हाथ धनुष-बाण पर फेरते हैं। रुधिर के कण शरीर पर ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो राज-मुनि तमाल वृक्ष पर सब अपने सुख से बैठे हैं॥ ३१॥

दो०—कृपादृष्टि करि दृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।
भालु कीस सब हरषे जय सुखधाम मुकुंद॥ १२१॥

प्रभु ने कृपादृष्टि करके देवताओं के समूह को निर्भय कर दिया, वानर-रीछ सब प्रसन्न हुए और बोले कि सुख के धाम मुकुन्द भगवान् रामचन्द्रजी! आपकी जय हो॥ १२१॥

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी॥
जुबति बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं॥

पति की भुजा और सिर को देखकर मन्दोदरी व्याकुलता से मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। बहुत सी स्त्रियां रोती हुईं उठ भागीं और उसको उठाकर रावण के पास ले आईं।

पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष संभारा॥
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना॥

पति की दशा देख पुकार करती हुई कहने लगी, बाल खुल गये, देह की संभाल न रही। अनेक प्रकार से हृदय को ताड़ना करने लगी, रोते-रोते प्रताप बखान करने लगी।

तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक ससि तरनी॥
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा॥

हे नाथ! तुम्हारे बल से नित्य पृथ्वी कांपती थी। अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य तेजहीन हो गये थे। शेष, कच्छप तुम्हारा बोझ नहीं सह सके, सो तुम्हारा शरीर आज पृथ्वी पर धूल में पड़ा लोटता है।

बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहुं न धीरा॥
भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं॥

वरुण, कुबेर, इन्द्र, पवन इत्यादि ने कभी तुम्हारे समान धीरता धारण नहीं की। हे स्वामी! अपनी भुजाओं के बल से काल, यम को जीत लिया। वे ही आप अनाथ की तरह पृथ्वी में पड़े हो।

जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई॥
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥

तुम्हारी प्रभुता जगत में प्रसिद्ध है और पुत्र व परिवार का बल वर्णन नहीं किया जा सकता था। रामजी से विमुख होने के कारण तुम्हारा ऐसा हाल हुआ कि कुल में कोई रोने वाला न रहा।

तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम बिमुख यह अनुचित नाहीं॥

हे स्वामी! विधाता का प्रपञ्च सब तुम्हारे वश में था, डर के मारे सब दिशिपति नित्य शीश झुकाते थे। अब तुम्हारे सिर और भुजा को गीदड़ खाते हैं, सो रामचन्द्रजी से विमुख होने पर यह अनुचित नहीं है।

काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना॥

काल के वश तुमने कहा नहीं माना। जगत के स्वामी को मनुष्य करके जाना।

छं०—जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥ ३२॥

श्रीरामचन्द्रजी को मनुष्य करके जाना, जो रावण-रूपी वन को जलाने के लिए अग्नि के समान साक्षात् हरि भगवान् हैं, हे प्यारे पति! जिस प्रभु को शिव, ब्रह्मा आदि देवता प्रणाम करते हैं, उस दयामय का भजन नहीं किया, जन्म से लेकर पराये बैर में ही लगे रहे। इस कारण यह तुम्हारा शरीर पाप-समूहों से युक्त है, फिर भी तुमको श्रीरामचन्द्रजी ने अपना धाम दिया। उन रोग-रहित ब्रह्म-स्वरूप रामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करती हूं॥ ३२॥

दो०—अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥ १२२॥

अहह नाथ! रघुनाथजी के समान कृपासिन्धु दूसरा कौन है कि जो परम गति मुनियों को भी दुर्लभ है, सो तुमको भगवान ने दी॥ १२२॥

मंदोदरी बचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥
अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथबादी॥

मन्दोदरी के वचनों को सुनकर देवता, मुनि, सिद्ध सबने सुख माना। ब्रह्मा, शिव, नारद, सनक आदि मुनिवर जो परमार्थ के कहने वाले हैं।

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम मगन सब भए सुखारी॥
रुदन करत देखीं सब नारी। गयउ बिभीषनु मन दुख भारी॥

नेत्रों को भर रघुनाथजी को देखकर प्रेम में मग्न होकर सब सुखी हुए। सब स्त्रियों को रोते देखा तो विभीषण मन में महादुःखी होकर उनके पास गये।

बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा॥
लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो॥

भाई की दशा देखते ही बहुत दुःखी हुआ तब प्रभु ने लक्ष्मणजी को आज्ञा दी। लक्ष्मणजी ने जाकर विभीषण को बहुत भांति से समझाया और विभीषण सहित प्रभु के पास गये।

कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका॥
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी। बिधिवत देस काल जियं जानी॥

कृपा दृष्टि से प्रभु ने उसको देखा और कहा कि सब शोक त्यागकर रावण की क्रिया कर्म करो। प्रभु की आज्ञा मान देश और समय को मन में जान विधि के अनुसार क्रिया की।

दो०—मंदोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि॥ १२३॥

मन्दोदरी आदि सब स्त्रियां उसको तिलाञ्जली देकर रामचन्द्रजी के गुण-समूह को वर्णन करती हुई घर को चलीं॥ १२३॥

आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो। कृपासिंधु तब अनुज बोलायो॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नयसीला॥

विभीषण ने जाकर फिर सिर झुकाया तब कृपासिन्धु ने लक्ष्मण को बुलाया और कहा—हे लक्ष्मण! तुम सुग्रीव, अङ्गद, जामवन्त और निपुण हनुमान।

सब मलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥
पिता बचन मैं नगर न आवउं। आपु सरिस कपि अनुज पठावउं॥

सब मिलकर विभीषण के साथ जाओ, राज्य तिलक करो। यह रघुनाथजी ने कहा - पिता के वचनानुसार मैं नगर में नहीं जा सकता, अपने समान प्यारे भाई लक्ष्मण को भेजता हूं।

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक की रचना॥
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी॥

तुरन्त सब प्रभु के वचन सुन चले और जाकर राज्य-तिलक की रचना की। आदर से विभीषण को सिंहासन पर बिठाया और स्तुति के अनुसार राज्य तिलक किया और यथा-योग्य विनती की।

जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥

हाथ जोड़कर सबने सिर झुकाया, फिर विभीषण समेत रामजी के पास आये तब रामचन्द्रजी ने सब वानरों को बुला लिया और प्यारे वचन कहकर सबको सुखी किया।

छं०—किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो।
पायो बिभीषन राज तिहुं पुर जसु तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥ ३३॥

अमृत समान वचन कहकर सुखी किया कि हमने तुम्हारे बल से शत्रु को मारा, विभीषण ने राज्य पाया और तीनों लोकों में तुम्हारा यश नित्य रहेगा। मेरे समेत तुम्हारी कीर्ति को जो बहुत प्रेम से गावेंगे वे अपार संसार सागर से बिना परिश्रम के ही पार पावेंगे अर्थात भवसागर पार हो जायेंगे॥ ३३॥

दो०—प्रभु के बचन श्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पद कंज॥ १२४॥

रामचन्द्रजी के कोमल वचन सुनते ही वानर-गण प्रसन्न होते हैं, बार-बार सिर को झुकाते और सबके सब चरण-कमलों को पकड़ते हैं॥ १२४॥

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥

फिर भगवान ने हनुमानजी को बुला लिया और कहा कि लंका को जाओ जानकी को समाचार सुनाओ और उनकी कुशल लेकर चले आओ।

तब हनुमंत नगर महुं आए। सुनि निसिचरी निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही॥

तब हनुमानजी नगर में आये, उनका आगमन कहकर राक्षस-राक्षसियां दौड़ीं। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमानजी की पूजा की और फिर जानकीजी को दिखा दिया।

दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकी चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥

दूर से ही हनुमानजी ने प्रणाम किया। रामजी के दूत हनुमानजी को सीताजी ने पहचान लिया। हे तात! कहो कृपानिधान, भाई और वानर सेना समेत कुशल से तो हैं?

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥
अबिचल राजु बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥

हनुमानजी बोले अयोध्यानाथ की सब प्रकार कुशल है। हे माता! युद्ध में रावण को जीत लिया है, विभीषण ने निश्चल राज्य पाया, हनुमानजी के वचन सुनकर जानकीजी के हृदय में आनन्द छा गया।

छं०—अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउं तोहि त्रैलोक महुं कपि किमपि नहिं बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं॥
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥ ३४॥

अति प्रसन्न मन, पुलकित शरीर नेत्रों में जल भर बार-बार जानकीजी ने कहा कि हे कपि! मैं तुमको क्या दूं? त्रिलोकी में इस वाणी के समान और कुछ भी तो नहीं है। तब हनुमानजी ने कहा—हे माता! सुनो मैंने आज सम्पूर्ण जगत का राज्य पा लिया इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। युद्ध में शत्रु को सेना सहित जीतकर भाई सहित रोग रहित रामजी को मैं देखता हूं, यही मुझको सब कुछ है। ॥ ३४॥

दो०—सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयं बसहुं हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुं समेत अनंत॥ १२५॥

जानकीजी आशीर्वाद देती हैं हे पुत्र हनुमान! सब उत्तम गुण तुम्हारे हृदय में बसें। रघुवंश-मणि रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी सहित तुम्हारे अनुकूल रहें॥ १२५॥

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥
तब हनुमान राम पहिं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाइ॥

हे तात! अब तुम वही यत्न करो जिससे श्याम कोमल शरीर आंखों से देखूं। रामजी का दर्शन करूं। तब हनुमानजी ने रामजी के पास जा सीताजी की कुशल सुनाई।

सुनि संदेसु भानुकुलभूषन। बोलि लिए जुबराज बिभीषन॥
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु॥

हनुमानजी की वाणी सुनकर सूर्यकुल भूषण श्रीरामजी ने अंगद और विभीषण को बुलाया और कहा कि साथ जाओ और आदर सहित जानकीजी को ले आओ।

तुरतहिं सकल गए जहं सीता। सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता॥
बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो॥

सुनते ही तुरन्त सब गये, जहां सीताजी की सब राक्षसियां सेवा कर रही थीं। यह देखकर विभी-षण ने उनको सिखाया तब आदर से उन्होंने सीताजी को स्नान कराया।

बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए॥
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही॥

दिव्य वस्त्र और गहने पहिनाये, फिर सुन्दर पालकी सजाकर ले आये। उस पालकी पर प्रसन्न होकर सीताजी सुख के स्थान स्नेही राम का स्मरण करके चढ़ीं।

बेतपानि रच्छक चहु पासा। चले सकल मन परम हुलासा॥
देखन भालु कीस सब आए। रच्छक कोपि निवारन धाए॥

चारों ओर रक्षक बेत हाथ में लिए मन में बड़ी प्रसन्नता से चले। देखने के लिए सब वानर और रीछ आये, पर रक्षक क्रोध कर उनको निवारण करते रहे।

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादें आनहु॥
देखहुं कपि जननी की नाईं। बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा, मेरा कहा मानो हे सखा! विभीषण सीता को प्यादे पांव ले आओ। माता की नाईं सब वानर देखेंगे, रामजी ने हँसकर कहा।

सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे॥
सीता प्रथम अनल महुं राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी॥

रामजी के वचन को सुनकर रीछ-वानर अति प्रसन्न हुए और आकाश से देवताओं ने बहुत से फूल बरसाये। सीताजी को पहले अग्नि में रखा था। अन्तःकरण के साक्षी ईश्वर अब सबको शुद्ध जानने के लिए अग्नि से प्रकट करना चाहते हैं।

दो०—तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सब लागीं करै बिषाद॥ १२६॥

इस कारण दयानिधान रामजी ने कुछ दुर्वचन कहा—जिसे सुनते ही राक्षसियां सोच करने लगीं। ॥ १२६॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥

प्रभु के वचन मस्तक पर धारण कर सीताजी मन में कर्म से पवित्र वचन बोलीं कि हे लक्ष्मण! तुम धर्म के नेगी होकर शीघ्र अग्नि को प्रकट करो।

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥

लक्ष्मणजी ने सीता की विरह, ज्ञान, धर्म और नीति से भरी वाणी सुनकर नेत्रों में जल भरकर दोनों हाथ जोड़कर डर से कुछ नहीं कह सके।

देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयं हरष नहिं भय कछु तेही॥

जब रामचन्द्रजी का रुख देखा तब लक्ष्मणजी दौड़े और बहुत-सा काष्ठ लगाकर अग्नि प्रकट की, प्रचण्ड अग्नि को देखकर सीताजी मन में अति प्रसन्न हुयीं और उनको कुछ भी भय नहीं हुआ।

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुं होउ श्रीखंड समाना॥

सीताजी बोलीं—जो मन, वचन, कर्म, वाणी से मेरे हृदय में प्रभु को छोड़ दूसरा कोई नहीं है तो हे अग्निदेव! सबकी गति जानते हो, मुझको चन्दन के समान हो जाओ।

छं०—श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली॥
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुं जरे।
प्रभु चरित काहुं न लखे नभसुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥ ३५॥

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुं कनक पंकज की कली॥ ३६॥

चन्दन समान अग्नि में प्रभु के पद को स्मरण कर सीताजी ने प्रवेश किया और बोलीं कि अयोध्या नाथजी की जय हो! जिनके चरणों में अति निर्मल रज को महादेवजी प्रणाम करते हैं। माया-रूपी छाया और लौकिक कलंक ये दोनों प्रचण्ड अग्नि में जलाते प्रभु का चरित्र किसी ने न देखा। आकाश में देवता, सिद्ध और मुनि खड़े देखते ही रहे। तब अग्निदेव ने ब्राह्मण का रूप धारण कर जो वेदों में साक्षात के नाम से प्रसिद्ध हैं, उनका कन्या की तरह हाथ पकड़कर श्रीरामजी को इस प्रकार लाकर समर्पण की कि जिस प्रकार क्षीर सागर ने लक्ष्मी विष्णु भगवान को समर्पण की थी। वही सीताजी रामचन्द्रजी की बायीं ओर विराज रही हैं, जिनके मनोहर शरीर की शोभा बहुत ही सुन्दर है मानो नवीन नील कमल के समान सुवर्ण के कमल की कली है ॥३५-३६॥

दो०—बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान॥ १२७॥
जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार॥ १२८॥

देवता प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे, आकाश में नगाड़े बजने लगे, किन्नर गाने लगे। विमानों पर चढ़ी हुई देव वधू नाचने लगीं ॥ १२७॥ श्रीजानकी सहित रामजी की बहुत अधिक शोभा को देखकर रीछ-बानर अति प्रसन्न हुए और बोले हे सुख के सागर रघुनाथजी! आपकी जय हो॥ १२८॥

तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई॥
आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी॥

रघुनाथजी की आज्ञा पाकर मातलि सारथि चरणों में सिर झुकाकर चला गया फिर देवता आए जो सदा के स्वार्थी हैं, वे ऐसे वचन कहने लगे मानो परमार्थी हों।

दीन बंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी॥

हे दीनबन्धु! हे दयालु रामजी! हे देव! आपने देवताओं पर बड़ी दया की है। जगत भर का विरोध करने वाला यह दुष्ट, कामी और कुमार्गगामी रावण अपने पापों से मारा गया।

तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥

तुम सर्वत्र ब्रह्म हो, अविनाशी हो, एक रस रहते हो, स्वभाव से उदासीन हो, आप सकल गुणों से परे अजन्मा, पापरहित, रोगहीन, अजित, सफल शक्तिवान और दयायुक्त हो।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तेन्हइं नसायो॥

मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम रूप आपने धारण किये। हे नाथ, जब-जब देवों ने दुःख पाये, तब-तब अनेक शरीर धारण करके तुमने ही हमारे दुःख नाश किये।

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही॥
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरें मन बिसमय आवा॥

रावण पाप की जड़, देव-शत्रु, काम, क्रोध, अहंकार में प्रीति रखने वाला, महाक्रोधी था। बहुत नीच रावण भी आपके धाम अर्थात बैकुण्ठ को गया, यह हमारे मन में आश्चर्य हुआ।

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी॥
भव प्रबाहं संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥

हम सभी देवता बैकुंठ-लोक के परम अधिकारी हैं, परन्तु स्वार्थ में प्रीति के कारण आपकी भक्ति को भुला दिया। हम संसार-रूपी प्रवाह में पड़े हैं, अब हे प्रभो! हमारी रक्षा करो, हम सभी आपके शरणागत हैं।

दो०—करि बिनती सुर सिद्ध सब रहे जहं तहं कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि॥ १२१॥

इस प्रकार बिनती करके देवता, सिद्ध सब जहां-तहां हाथ जोड़कर खड़े हो गये तब फिर प्रेम से ब्रह्माजी श्रीरामजी की स्तुति करने लगे॥ १२१॥

छं०—जय राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे॥
भव बारन दारन सिंह प्रभो। गुन सागर नागर नाथ बिभो॥

हे राम! आप सदा सुख के धाम हैं। हे हरि भगवान! धनुष-बाण को धारण करने वाले रघुनाथजी आपकी जय हो! हे प्रभो! संसार रूपी हाथी को नाश करने के लिए तुम सिंह हो। हे नाथ! आप गुणों के समुद्र और समर्थ हो।

तन काम अनेक अनूप छबी। गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी॥
जसु पावन रावन नाग महा। खगनाथ जथा करि कोप गहा॥

आपका शरीर अनेकों कामदेव के समान अनुपम शोभा वाला है। सिद्ध, मुनिराज और कविजन आपके गुण गाते हैं। आपका यश पवित्र है, आपने रावण-रूपी बड़े सांप को गरुड़ की भांति क्रोध करके पकड़ लिया।

जन रंजन भंजन सोक भयं। गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं॥
अवतार उदार अपार गुनं। महि भार बिभंजन ग्यानघनं॥

आप भक्तों को आनन्द देने वाले शोक और भय को दूर करने वाले हो। हे प्रभु आप क्रोध रहित और सदा विज्ञान युक्त हो अथवा अवतार उदार हैं, आप में अपार गुण हैं। भूमि का भार उतारने वाले तथा ज्ञान-समूह हो।

अज ब्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा॥
रघुबंस बिभूषन दूषन हा। कृत भूप बिभीषन दीन रहा॥

आप अजन्मा हो, सर्वव्यापक हो, सनातन हो, दया की खान हो। हे रामजी, आपको प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करता हूं। आप रघुवंश के आभूषण हो, दोषों को दूर करने वाले हो। आपने विभीषण को राजा बनाया जो अति दीन और दुःखी था।

गुन ग्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि बिभुं बिरजं॥
भुजदंड प्रचंड प्रतापबलं। खल बृंद निकंद महा कुसलं॥

आप गुण और ज्ञान-निधान हो, मान रहित हो, अजन्मा हो, ऐसे राम को नित्य प्रति नमस्कार करता हूं। आप सर्वव्यापी हो, रजोगुण (सात्विक) हो। आपके भुजदण्डों का प्रचंड प्रताप है, जो दुष्टों के समूह को नाश करने में बड़े कुशल हैं।

बिनु कारन दीन दयाल हितं। छबि धाम नमामि रमा सहितं॥
भव तारन कारन काज परं। मन संभव दारुन दोष हरं॥

आप बिना कारण ही दीनों पर दया और हित करने वाले हो, शोभा के स्थान सीता सहित आप को नमस्कार करता हूं। आप संसार से तारने वाले हो, कारण और कार्य से परे हो और मन से उत्पन्न महापापों को हरण करने वाले हो।

सर चाप मनोहर त्रोन धरं। जलजारुन लोचन भूपबरं॥
सुख मंदिर सुंदर श्रीमनं। मद मार मुधा ममता समनं॥

आप मनोहर बाण और धनुष व तरकस को धारण करने वाले हो। कमल के समान लाल नेत्र वाले हो, राजाओं में श्रेष्ठ हो, सुख के स्थान हो, अति सुन्दर हो, लक्ष्मीजी से विहार करने वाले हो। अहंकार, काम और मोह को शान्त करने वाले हो।

अनवद्य अखंड न गोचर गो। सबरूप सदा सब होइ न गो॥
इति बेद बदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा॥

आप दोष रहित अखण्ड इन्द्रियों से परे, सदा सब पर रूपों में व्याप्त हो और सबसे भिन्न हो अर्थात सबसे परे हो, ऐसा वेद कहते हैं। दन्त कथा नहीं है। सूर्योदय से धूप भिन्न-अभिन्न भी है, अर्थात अलग है और अलग भी नहीं है।

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए॥
धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे॥

हे विभो! ये सब वानर पूर्णकाम हैं जो आदर से आपका मुख देखते हैं। हे हरि! देवताओं के जीवन शरीर को धिक्कार है जो आपकी भक्ति के बिना भूलकर संसार के बन्धन में पड़े हुए हैं।

अब दीन दयाल दया करिऐ। मति मोरि बिभेदकरी हरिऐ॥
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिऐ। दुख सो सुख मानि सुखी चरिऐ॥

हे दीनदयालु! दया कीजिए और भेद करने वाली मेरी बुद्धि हर लीजिए और उससे हम विपरीत अर्थात उल्टी क्रिया करते हैं तथा जो दुःख रूप हैं, उसको जिसके द्वारा सुख मानकर विचरते रहते हैं।

खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा॥
नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं॥

आप दुष्टों को नाश करने वाले हो, पृथ्वी के सुन्दर आभूषण हो, आपके चरण-कमलों को शिव पार्वती सदा सेवन करते हैं। हे राजाओं के अधीश्वर ! यह वरदान दीजिये कि आपके कल्याणदायक चरणारविन्दों में सदा प्रेम बना रहे।

दो०—बिनय कीन्हि चतुरानन प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात ॥ १३० ॥

इस प्रकार प्रेम से पुलकित शरीर हो चार मुख वाले ब्रह्माजी ने रामचन्द्रजी की विनय प्रार्थना की। अपार शोभा को देखते नेत्र तृप्त नहीं होते ॥ १३० ॥

तेहि अवसर दसरथ तहं आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए ॥
अनुज सहित प्रभु बदन कीन्हा। आसिरबाद पितां तब दीन्हा ॥

उसी अवसर पर दशरथजी वहां आये और पुत्र को देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया, लक्ष्मण समेत प्रभु ने प्रणाम किया तब पिता ने उनको आशीर्वाद दिया।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यों अजय निसाचर राऊ ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी ॥

हे पिताजी ! आपके सब पुन्य प्रताप से मैंने अजय अर्थात न जीतने योग्य राक्षस-राज को जीता, पुत्र के वचन सुनकर बहुत प्रीति बढ़ी। नेत्रों में जल भर आया रोमावली खड़ी हुई।

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना ॥
ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो ॥

रघुनाथजी ने पिता को प्रेमवश जाना तब उनकी ओर देखकर पहले दृढ़ ज्ञान दिया। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! दशरथजी ने इसी से मोक्ष नहीं पाया कि भेद-भक्ति से परमेश्वर में मन लगाया था।

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुं राम भगति निज देहीं ॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा ॥

सगुण-रूप के उपासक मोक्ष नहीं लेते हैं, उनको रामजी अपनी भक्ति देते हैं। बार-बार प्रभु को प्रणाम कर दशरथजी प्रसन्न होकर स्वर्ग लोक को चले गये।

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस ॥ १३१ ॥

लक्ष्मण और जानकी सहित प्रभु अयोध्यानाथ रामजी की शोभा को कुशलपूर्वक और उनकी शोभा को देख मन में आनन्दित हो, देवराज इन्द्र की स्तुति करने लगे ॥ १३१ ॥

छं०—जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम ॥
धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप ॥
जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि ॥
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल सनाथ ॥ ३७ ॥

हे राम, शोभा के धाम ! आपकी जय हो ! आप दीनजनों को विश्राम देने वाले हो, सुन्दर कवच

और धनुष बाण धारण करने वाले हो। आपके भुजदण्डों का प्रताप प्रबल है। आप खर-दूषण के मारने वाले, सब राक्षसों के नाश करने वाले आपकी जय हो। हे नाथ! यह दुष्ट आपने मारा, हम सब देवता सनाथ हुए ॥ ३७ ॥

जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार ॥
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल ॥
लंकेस अति बल गर्ब। किए बस्य सुर गंधर्ब ॥
मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पंथ सब कें लाग ॥ ३८ ॥

पृथ्वी का भार दूर करने वाले, उदार और अपार महिमा वाले आपकी जय हो। हे कृपालु! आप रावण के मारने वाले हो आपकी जय हो। आपने निशाचरों को व्याकुल कर दिया। रावण को अपने बल का बड़ा अभिमान था। देवता, गन्धर्व सबको अपने वश में कर लिया था और मुनिगण, मनुष्य, पक्षी, नाग इन सबके मार्ग में हठ से लगा रहता था अर्थात सबको सताता था ॥ ३८ ॥

परद्रोस रत अति दुष्ट। पायो सो फलु पापिष्ट ॥
अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिसाल ॥
मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहि समान ॥
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुख पुंज ॥ ३९ ॥

दूसरों से बैर करने में तत्पर, बड़ा दुष्ट था। वैसा ही फल पापी ने पाया। हे दीनदयालु! कमल समान विशाल नेत्र वाले सुनिए, मूर्ख को बड़ा अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं। अब प्रभु के चरण कमल को देखकर अनेक दुःखों को देने वाला अभिमान जाता रहा ॥ ३९ ॥

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहि श्रुति गाव ॥
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप ॥
बैदेहि अनुज समेत। मम हृदय करहुं निकेत ॥
मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमानिवास ॥ ४० ॥

कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं जिसे वेद अप्रकट कहते हैं मुझे तो अयोध्या के राजा सगुण स्वरूप श्रीराम अच्छे लगते हैं। सीता लक्ष्मण सहित आप मेरे हृदय में वास कीजिये और मुझको भक्ति देकर हे रमानिवास! आप अपना दास जानिए ॥ ४० ॥

छं०—दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायकं ॥
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं ॥
सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन मनुज तनु अतुलितबलं।
ब्रह्मादि संकर सेब्य राम नमामि करुना कोमलं ॥ ४१ ॥

हे रमानिवास! आप भय के हरने वाले और शरणागतों को सुख देने वाले हैं और मुझे भक्ति देकर कृतार्थ कीजिये। हे सुख के धाम रामजी मैं आपको नमस्कार करता हूं। हे रामजी! अनेकों कामदेव के समान आपकी शोभा है, आप देवों को आनन्द देने वाले और दुःखों को नाश करने वाले हो। आपका मनुष्य शरीर अतुल बलशाली है। ब्रह्मा, देवता और शिव से सेवनीय। हे रामजी! दया से कोमल स्वभाव वाले मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ ४१ ॥

दो०—अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल।
काहे करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल॥ १३२॥

हे कृपालु ! अब कृपा करके मुझको देखकर कुछ आज्ञा दीजिये कि आपका क्या कार्य करूं ? इन्द्र के प्यारे वचन को सुनकर दीनदयालु रामजी बोले ॥१३२॥

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना॥

सुनो इन्द्र ! हमारे वानर-रीछ पृथ्वी पर पड़े हैं, जिनको राक्षसों ने मारा है। मेरे लिये इन्होंने अपने प्राण छोड़े हैं सो हे चतुर इन्द्र ! तुम सबको जिला दो।

सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु सक त्रिभुअन मारि जिआई। केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई॥

कागभुशुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुड़ ! प्रभु की यह वाणी बड़ी गम्भीर है इसको ज्ञानी मुनि ही जानते हैं। प्रभु रामजी त्रिलोकी को मार जिला सकते हैं यह तो केवल इन्द्र को बड़ाई दी है।

सुधा बरषि कपि भालु जिआए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए॥
सुधा बृष्टि भै दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर॥

इन्द्र ने अमृत की वर्षा कर वानर-रीछ जिला दिये, सब प्रसन्न हो उठे और प्रभु के पास आये। अमृत की वर्षा दोनों दलों के ऊपर हुई परन्तु रीछ और वानर जीवित हो गये पर राक्षस नहीं जिये।

रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बंधन॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति की ईछा॥

उनके मन तो रामाकार हो गये थे जिससे वे भव-बन्धन से छूट मुक्त हो गये। सब वानर-रीछ देवताओं के अंश थे इस कारण रघुनाथजी की इच्छा से जीवित हो गये।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी॥
खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिबर पावन॥

प्रभु के समान ऐसा हितकारी और कौन है, जिन्होंने सब रासक्षों को संसार बन्धन से मुक्त कर दिया। खल और पापों का धाम कामी रावण ने वह गति पाई जो श्रेष्ठ मुनि भी नहीं पाते हैं।

दो०—सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान॥ १३३॥
परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिरां बिनय करत त्रिपुरारि॥ १३४॥

फूल वर्षा कर सब देवता सुन्दर विमानों पर चढ़कर चले गए तब सुन्दर समय देखकर रामचन्द्र जी के पास शम्भु सुजान आए॥ १३३॥ यहां शिवजी को चतुर इस कारण कहा कि एकान्त में महादेवजी से रामजी मिलने आये। बड़ी प्रीति से हाथ जोड़ और कमल समान नेत्रों में जल भर पुलकित शरीर हो गद्गद् वाणी से महादेवजी स्तुति करने लगे॥ १३४॥

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक ॥
मोह महा घन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन ॥

हे रघुवंश के स्वामी रामचन्द्रजी ! हमारी रक्षा करो आप सुन्दर हाथ में श्रेष्ठ धनुष धारण किए हो महा आज्ञा रूपी मेघ पटल के लिए वायु हो और सन्देह रूपी वन जलाने को अग्नि हो।

अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर ॥
काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन ॥

निर्गुण, सगुण और गुणों के सुन्दर मन्दिर हो, भ्रमरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए प्रबल प्रताप वाले सूर्य नारायण हो। काम, क्रोध और हाथियों के भगाने को आप सिंह हो, भक्तों के मन रूपी वन में आप सदा वास करते हो।

बिषय मनोरथ पुंज कंज बन। प्रबल तुषार उदार पार मन ॥
भव बारिधि मंदर परमं दर। बारय तारय संसृति दुस्तर ॥

विषयों के कामनाओं का समूह कमलवन है उसको नाश करने को आप प्रबल तुषार हो, उदार और मन से परे हो। संसार समुद्र मथने को मन्दराचल हो, परम धाम हो, संसार के भय से हमको छुड़ाओ, भय दूर करो और दुस्तर संसार से हमको तारो।

स्याम गात राजीव बिलोचन। दीन बंधु प्रनतारति मोचन ॥
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर ॥

श्याम शरीर कमल नयन दीनबन्धु और दीनों के दुःख को हरने वाले हो। लक्ष्मण जानकी समेत राजा रामचन्द्र मेरे हृदय में वास करो।

मुनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन ॥

आप मुनिजनों को आनन्द देने वाले और पृथ्वी मण्डल के आभूषण हो, तुलसीदासजी कहते हैं कि हे प्रभु ! आप भय को दूर करते हो।

दो०—नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार ॥ १३५ ॥

हे नाथ ! जिस समय अयोध्यापुरी में आपका राज्य तिलक होगा, सुनो प्रभो ! तब मैं भी आपका सुन्दर चरित्र देखने आऊंगा ॥१३५॥

करि बिनती जब संभु सिधाए। तब प्रभु निकट बिभीषनु आए ॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारंगपानी ॥

जब स्तुति करके शिवजी चले गए, तब प्रभु के पास विभीषणजी आए। चरणों में सिर झुकाकर मीठी वाणी से कहा हे शारङ्ग धनुषधारी प्रभो ! आप मेरी प्रार्थना सुनिए।

सकुल सदल प्रभु रावन मारयो। पावन जस त्रिभुवन बिस्तारयो ॥
दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भांती ॥

प्रभु ने कुल और सेना सहित रावण को मारा और पवित्र यश त्रिलोक में फैला दिया। मैं दीन मलीन, बुद्धिहीन और जातिहीन हूं। मुझ पर सब भांति से आपने कृपा की है।

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जनु करिअ समर श्रम छीजे॥
देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहुं मुदा॥

हे प्रभु! आप सेवक का घर पवित्र कीजिये और स्नान कीजिये जिससे युद्ध की थकावट दूर हो जाय। हे कृपालु! खजाना, घर और सम्पत्ति को देख प्रसन्नता से वानरों को दीजिए।

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ॥
सुनत बचन मृदु दीनदयाल। सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥

हे नाथ! सब प्रकार से मुझको अपना सेवक बनाइये फिर मुझ समेत अयोध्यापुरी को जाइये। बिभीषण के कोमल वचन सुनकर दीनदयालु रामचन्द्रजी के दोनों विशाल नेत्रों में जल भर आया।

दो०—तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥ १३६॥

श्रीरामजी बोले—हे विभीषण! सुनो, तुम्हारा खजाना, घर सब मेरा ही है। यह वचन सत्य है, परन्तु मुझको भरत का स्मरण करके एक पलक कल्प के समान जाता है॥१३६॥

तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउं तोहि॥ १३७॥

तपस्वी का वेष है, दुबला शरीर है। ऐसे भरतजी सदा मुझको जपते हैं। उनको शीघ्र देखूं, सो उपाय जल्दी करो। हे सखा! तुम्हारा निहोरा करता हूं, तुम्हारा अहसान मानूंगा॥१३७॥

बीतें अवधि जाउं जो जिअत न पावउं बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥ १३८॥

जो अवधि बीत जाने पर जाऊंगा, तो भाई भरत को जीता न पाऊंगा। भरत की प्रीति को समझ प्रभुजी बार-बार पुलकित शरीर होते हैं॥१३८॥

करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु जहां संत सब जाहिं॥ १३९॥

हे विभीषण! तुम कल्प भर राज्य करो, मुझको मन में स्मरण करते रहना फिर मेरे धाम को जाओगे, जहां सब सन्त जाते हैं॥ १३९॥

सुनत बिभीषन बचन राम के। हरषि गहे पद कृपाधाम के॥
बानर भालु सकल हरषाने। गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने॥

विभीषण ने रामचन्द्रजी का वचन सुनते ही प्रसन्न होकर कृपानिधान के चरण छुए और प्रभु की आज्ञा मानी। वानर-रीछ सब प्रसन्न हुए और चरण छूकर प्रभु के निर्मल गुण वर्णन करने लगे।

बहुरि बिभीषन भवन सिधायो। मनि गन बसन बिमान भरायो॥
लै पुष्पक प्रभु आगें राखा। हंसि करि कृपासिंधु तब भाषा॥

फिर विभीषण घर को गए और मणियों के समूह, वस्त्र, पुष्पक विमान में भरवाये। पुष्पक विमान लाकर रामजी के पास रखा, तब हंसकर कृपासिन्धु रामजी ने यों कहा—

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही॥

हे सखा विभीषण! सुनो, विमान पर चढ़ आकाश में जाकर वस्त्र और आभूषणों को बरसाओ। आकाश में जाकर विभीषण ने उसी समय सब मणि और वस्त्र वर्षा दिये।

जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥
हंसे रामु श्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता॥

जो जिनके मन को अच्छा लगता है सो लेते हैं और मणि को मुख में डालकर वानर फेंक देते हैं। रामचन्द्रजी सीता लक्ष्मण समेत हंसते हैं, कृपानिकेता रामजी बड़े कौतुकी हैं।

दो०—मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद॥ १४०॥
उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥ १४१॥

जिस प्रभु को मुनिजन ध्यान में भी नहीं पाते और वेद जिसको नेति-नेति कहते हैं, वही कृपासिंधु रामजी वानरों से अनेक किलोल करते हैं॥१४०॥ शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! योग, जप, दान, तप, अनेक व्रत, यज्ञ नेम करने से रामजी ऐसी कृपा नहीं करते जैसी कि निष्कपट प्रेम करने से करते हैं॥१४१॥

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए॥
नाना जिनस देखि सब कीसा। पुनि पुनि हंसत कोसलाधीसा॥

रीछ-वानरों ने वस्त्र आभूषण पाए और सब पहनकर प्रभु के पास आये। अनेकों प्रकार की वस्तुओं से विभूषित सब बन्दरों और रीछों को देखकर कौशलाधीश श्रीरामजी बार-बार हँसते हैं।

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया॥

रामचन्द्रजी ने कृपादृष्टि से देखकर सब पर दया की और मधुर वचन बोले।

तुम्हरे बल मैं रावनु मारयो। तिलक बिभीषन कहं पुनि सारयो॥
निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू॥

तुम्हारे बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीषण को राज्य तिलक किया। अब तुम सब अपने-अपने घर को जाओ। मुझको स्मरण करना और किसी से नहीं डरना।

सुनत बचन प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर॥
प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरें होत बचन सुनि मोहा॥

रामजी के वचन सुनते ही वानर प्रेम से व्याकुल हो हाथ जोड़ सब आदर से बोले—हे प्रभो! जो कुछ कहो आपको सब सुहाता है, परन्तु हमको आपका वचन सुन मोह होता है।

दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥
देखि राम रुख बानर रीछा। प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा॥

दीन जानकर आपने वानरों को सनाथ किया। हे रघुनाथजी, आप त्रिलोकी के ईश्वर हो, रामजी का रुख देख वानर-रीछ प्रेम में मग्न हो गए। घर जाने की इच्छा नहीं है।

दो०—प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि॥ १४२॥

प्रभु की आज्ञा से वानर-रीछ रामजी के रूप को हृदय में रखकर आनन्द और सोच रहित विनय पूर्वक बहुत कुछ कह सुनकर सब अपने-२ स्थान को चले॥१४२॥

कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥ १४३॥
कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥ १४४॥

जामवन्त, सुग्रीव, नल, अंगद आदि योद्धा हनुमान और विभीषण समेत जो और बड़े बलवान सेनापति हैं॥१४३॥ सो प्रेम के वश कुछ कह नहीं सकते हैं। नेत्रों में जल भरकर रामचन्द्रजी की ओर नेत्रों के पलकों को रोककर देखते हैं॥१४४॥

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥
मन महुं बिप्र चरन सिरु नायो। उत्तर दिसिहि बिमान चलायो॥

उन सबकी बहुत ही प्रीति देखकर रघुनाथजी ने सबको विमान पर चढ़ा लिया। मन में ब्राह्मणों को सिर झुकाया और उत्तर की दिशा को अपना विमान चलाया।

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई॥
सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे ता पर॥

विमान चलते ही बड़ा शब्द हुआ, रामचन्द्रजी की जय सब कोई बोलने लगे, विमान में जो सिंहासन बहुत ऊंचा मनोहर था, उस पर सीताजी समेत रामचन्द्रजी विराजे।

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु सृंग जनु घन दामिनी॥
रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥

रामचन्द्रजी समेत सीताजी श्याम गौर वर्ण दोनों ऐसे शोभायमान हैं, जैसे सुमेरु पर्वत के शिखर पर मेघ सहित बिजली चमकती है। जब सुन्दर विमान अति शीघ्रता से चला तो देवता प्रसन्न हुए और फूलों की वर्षा की।

परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहिं सुंदर चहुं पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥

परम सुख देने वाली तीन प्रकार की वायु बहने लगी। समुद्र, नदी और सरोवरों के जल निर्मल हो गये। सुन्दर शकुन चारों ओर होने लगे। सबके मन प्रसन्न हो गये। आकाश और दिशायें निर्मल हो गयीं।

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहां हत्यो इंद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे॥

रामचन्द्रजी कहने लगे हे सीता! देखो वह रणभूमि है, यहां लक्ष्मण ने मेघनाद को मारा था, अंगद और हनुमान के मारे बहुत से राक्षस रण में पड़े हैं।

कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहां हते सुर मुनि दुखदाई॥

कुम्भकर्ण, रावण दोनों भाइयों को यहां मैंने मारा जो देव, मुनियों को दुःख देने वाले हैं।

दो०–इहां सेतु बांध्यों अरु थापेउं सिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम॥ १४५॥
जहं जहं कृपासिंधु बन कीन्ह बास बिश्राम।
सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम॥ १४६॥

यह देखो सुन्दर पुल है, जहां मैंने सुख के धाम शिवजी की स्थापना की। यह कहकर सीताजी और लक्ष्मण समेत प्रभु ने शिवजी को प्रणाम किया।।१४५।। दयासिंध रामजी ने जहां-तहां वासकर विश्राम किया था, उन सभी स्थानों के नाम को कहकर रामजी ने जानकीजी को दिखाये।।१४६।।

तुरत बिमान तहां चलि आवा। दंडक बन जहं परम सुहावा॥
कुंभजादि मुनिनायक नाना। गए रामु सब कें अस्थाना॥

–शीघ्रता से चलकर पुष्पक विमान वहां आ गया, जहां बहुत सुन्दर दण्डक वन है, तब अगस्त्य आदि जो अनेक मुनीश्वर थे, उन सबके आश्रमों में रामचन्द्रजी गये।

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आए जगदीसा॥
तहं करि मुनिन्ह केर संतोषा। चला बिमानु तहां ते चोखा॥

सब ऋषियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर रामजी चित्रकूट पर्वत पर आये। वहां मुनियों को सन्तोष करके वहां से सुन्दर विमान शीघ्रतापूर्वक चला।

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलि मल हरनि सुहाई॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता॥

फिर रामजी ने जानकीजी को कलियुग के पापों को हरने वाली यमुनाजी का दर्शन कराया, फिर पवित्र गंगाजी के दर्शन किये। रामजी ने कहा सीता, यह गंगाजी है। इनको प्रणाम करो।

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसनी॥

फिर तीर्थराज प्रयाग को देखा, जिसके दर्शन करते ही सब पाप भाग जाते हैं फिर बहुत पवित्र त्रिवेणी का दर्शन किया जो शोक हरने वाली और देवलोक की सीढ़ी है।

पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि॥

फिर अति पवित्र अयोध्या देखी जो तीन प्रकार के तापों और संसार के रोगों का नाश करने वाली है।

दो०—सीता सहित अवध कहुं कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ॥ १४७ ॥
पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी हरषित मज्जनु कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुं दान बिबिध बिधि दीन्ह ॥ १४८ ॥

रामजी ने जानकीजी सहित अयोध्या को प्रणाम किया। नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो बार-२ रामजी प्रसन्न होते हैं ।।१४७।। फिर प्रभु ने त्रिवेणी पर आकर वानरों सहित प्रसन्नता पूर्वक स्नान किया और तीर्थवासी ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये ।।१४८।।

प्रभु हनुमंत कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई ॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥

प्रभु ने हनुमानजी से समझाकर कहा कि ब्रह्मचारी का स्वरूप धरकर अयोध्यापुरी को जाओ। भरत को हमारी कुशल सुनाओ और उनका समाचार लेकर बहुत शीघ्र आओ।

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ ॥
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही ॥

तुरन्त आज्ञा पाते ही हनुमानजी चल दिये, तब रामजी भरद्वाज मुनि के पास गये। अनेक प्रकार से मुनि ने पूजा की और विनती करके फिर आशीष दी।

मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी ॥
इहां निषाद सुना प्रभु आए। नाव नाव कहं लोग बोलाए ॥

मुनि ने चरणों में दोनों हाथ जोड़ प्रणाम किया, फिर विमान पर चढ़ रामजी वहां से चले, जब निषाद ने सुना कि रामजी आये हैं नाव लाओ। यह कहकर लोगों को बुलाया।

सुरसरि नाघि जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो ॥

जब गंगाजी को लांघकर विमान शृंगबेरपुर में आ गया तब रामजी की आज्ञा पाकर गंगाजी के तट पर उतरा।

तब सीतां पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी ॥
दीन्ह असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा ॥

तब सीताजी ने गंगाजी की बहुत प्रकार से पूजा की और उनके चरणों में प्रणाम किया। गँगाजी ने प्रसन्न मन से आशीर्वाद दिया कि हे सुन्दरी ! तुम्हारा सुहाग सदा अचल रहे।

सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम सुख संकुल ॥

सुनते ही गुह प्रेम में मग्न हो जाने के कारण घबड़ाकर अति वेग से दौड़ा और परम सुख से परिपूर्ण होकर श्रीरामजी के पास आया।

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही ॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई ॥

जानकी सहित प्रभु को देख पृथ्वी पर गिर पड़ा और अपने शरीर की सुधि न रही। उसकी परम प्रीति देखकर रघुनाथजी ने प्रसन्नता से उठाकर उसको हृदय से लगा लिया।

छं०—लियो हृदयं लाइ कृपा निधान सुजान रायँ रमापती।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती॥
अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेब्य जे।
सुख धाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते॥ ४२॥

कृपानिधान सुजान लक्ष्मी के पति रामजी ने गुह को हृदय से लगा लिया और बहुत समीप बिठा कर कुशल पूछी। तब वह विनती करके कहने लगा कि आपके चरण कमल देखकर अब कुशल हुई, जो चरण कमल ब्रह्माजी और शिवजी करके सेवनीय हैं। हे सुखधाम पूर्णकाम रामचन्द्रजी! मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूं॥४२॥

सब भांति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो॥
यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा।
कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥ ४३॥

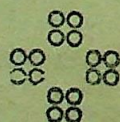
सब प्रकार से जो निषाद नीच था, उसको प्रभु ने भरत की तरह हृदय से लगा लिया। तुलसी दास जी अपने को कहते हैं कि हे मतिमन्द! ऐसे प्रभु को अज्ञानवश भुला दिया। यह रावणारि श्रीराम जी का पवित्र चरित्र श्रीरामजी के चरणों में प्रीति का देने वाला, काम आदि विकारों को हरने वाला और परम ज्ञान को देने वाला है, देवता, सिद्ध, मुनि प्रसन्नता से इस चरित्र को गाते हैं॥४३॥

दो०—समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥ १४९॥
यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥ १५०॥

युद्ध में विजय देने वाले रघुनाथजी के चरित्र को जो चतुर जन सुनाते हैं, उनको भगवान विजय, ज्ञान और ऐश्वर्य सदैव देते हैं॥१४९॥ यह कलिकाल पाप का घर है, मन से विचार कर देखो, इसमें रघुनाथजी के नाम को छोड़कर और कुछ सहारा नहीं है॥१५०॥

इति श्री रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसनेविमलविज्ञानवैराग्यसंतोषसम्पादनो नाम षष्ठः सोपानः लंकाकाण्डे सम्पूर्णः।

॥ इति लंकाकाण्ड समाप्त॥



श्री गणेशाय नमः
श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरित-मानस

सप्तम सोपान

उत्तरकाण्ड

मंगलाचरण

श्लोक

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिन्हं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥

मोर कण्ठ की कान्ति के समान नीलवर्ण, देवों में श्रेष्ठ, ब्राह्मण के चरण-कमल के चिन्ह से शोभित शोभा के परिपूर्ण पीताम्बर धारण किये, कमल नेत्र, सदा प्रसन्न बदन हाथों में बाण और धनुष धारण किये वानर समूह समेत भाई लक्ष्मण से सेवित, ऐसे जानकीजी के पति, रघुकुल में श्रेष्ठ, पुष्पक विमान पर विराजित श्रीरामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूं ।

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥

ब्रह्मा और महादेवजी से वन्दित, कोमल और जानकीजी के कर-कमलों से दुलरे हुए कोशलाधीश श्रीरामचन्द्रजी के सुन्दर चरण-कमलों में ध्यान करने वाले भक्तजनों के मनरूपी भौंरे बसते हैं ।

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम् ।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम् ॥

कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख के समान सुन्दर गोरे शरीर वाले, इच्छा के अनुसार सिद्धि के दाता, दयालु, सुन्दर, कमल-नयन, कामदेव को भस्म करने वाले, ऐसे पार्वतीजी के पति श्रीशंकरजी को मैं नमस्कार करता हूं ।

दो०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहं तहं सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग॥ १॥

श्रीरामजी के बनवास की अवधि का एक दिन रह गया है। नगर निवासी बहुत ही आतुर हैं, श्रीरामजी के वियोग में जहां-तहां बैठे हुए सोच रहे हैं॥ १॥

सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुं फेर॥ २॥

सब सुन्दर-सुन्दर शकुन हुए, सबके मन प्रसन्न हुए और नगर चारों ओर से सुहावना हो गया, मानो यह तीनों बातें प्रभु के आगमन की सूचना दे रही हों॥ २॥

कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ॥ ३॥

कौशल्या आदि सब माताओं का मन ऐसा आनन्दित हुआ कि सीता और लक्ष्मण समेत रामजी आ रहे हैं, ऐसा समाचार कोई कहना चाहता है॥ ३॥

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥ ४॥

भरतजी की दाहिनी आंख और दाहिनी भुजा फड़कने लगी, शुभ-शकुन जानकर भरतजी बहुत प्रसन्न होकर विचार करने लगे॥ ४॥

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥

अवधि का एक दिन रह गया है। यह समझते ही भरतजी को बड़ा दुःख हुआ। किस कारण रघुनाथजी नहीं आए? क्या मुझे कुटिल जानकर प्रभु ने मेरी सुधि भुला दी?

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥

अहा! वे लक्ष्मण कितने धन्य हैं, जो श्रीरामजी के चरणारविन्दों के प्रेमी हैं। प्रभु ने मुझे कपटी और खोटा समझा, इसी से स्वामी ने साथ नहीं लिया।

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

जो स्वामी मेरी करतूत को समझें तो करोड़ों कल्पों तक मेरा निस्तार नहीं हो सकेगा। परन्तु प्रभु अपने सेवक का दोष नहीं मानते, वे दीनबन्धु भगवान बड़े कोमल स्वभाव के हैं।

मोरे जियं भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

मेरे मन में पक्का भरोसा है कि श्रीरामजी अवश्य मिलेंगे शकुन अच्छे हो रहे हैं। जो अवधि बीतने पर प्राण रह जाये, तो जगत में मेरे समान नीच और कौन होगा?

दो०—राम बिरह सागर महं भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥ ५॥

श्रीरामजी के वियोग-रूपी समुद्र में भरतजी का मन डूबा जा रहा था कि इतने में पवन-पुत्र हनुमानजी ब्राह्मण का रूप धारण कर ऐसे आ गये, जैसे जल में डूबते हुए को नाव मिल जाय॥ ५॥

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥ ६॥

हनुमानजी ने देखा कि कुशा के आसन पर भरतजी बैठे हैं और जटाओं का मुकुट सिर पर है, शरीर दुबला हो रहा है। 'राम-राम रघुनाथ' जप रहे हैं और कमल के समान नेत्रों से जल बहा रहे हैं।

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥
मन महं बहुत भांति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी॥

देखते ही हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुए। देह के रोम खड़े हो गये, नेत्रों से जल बहने लगा। मन में बहुत भांति से सुख मानकर कानों को अमृत के समान वाणी बोले।

जासु बिरहं सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पांती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

जिन प्रभु के वियोग में सोचते हुए दिन रात दुःखी रहते हो और जिनके गुण-गणों के समूहों को सदैव रटते हो। रघुकुल-तिलक, सज्जनों को सुख देने वाले, देवताओं और मुनियों के रक्षक श्रीरामजी कुशल पूर्वक आ रहे हैं।

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा॥

जिनके सुन्दर यश को देवता गाते हैं, वे प्रभु शत्रु को जीतकर सीता और लक्ष्मण आ रहे हैं। हनुमानजी के वचन सुनते ही भरतजी के सब दुःख दूर हो गये, मानो प्यासे को अमृत मिल गया हो।

को तुम्ह तात कहां ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥

हे तात! तुम कौन हो? कहां से आये हो? जो मुझे बहुत ही प्रिय वचन सुनाये। हनुमान ने कहा—हे कृपानिधान! सुनिए, मैं पवन का पुत्र, वानर जाति हूं, मेरा नाम हनुमान है।

दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥
मिलत प्रेम नहिं हृदयं समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥

मैं दीनबन्धु श्रीरघुनाथजी का दास हूं। यह सुनकर भरतजी उठकर प्रेम से मिले, मिलते समय प्रेम मन में नहीं समाता, उनकी आंखों से आंसू आने लगे, शरीर पुलकित हो गया।

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥
बार बार बूझी कुसलता। तो कहुं देउं काह सुनु भ्राता॥

हे हनुमानजी ! तुम्हारे दर्शन से सब दुःख दूर हो गये, मानो आज मुझे प्रिय श्रीरामजी मिल गये, फिर बार-बार कुशल पूछी । भरतजी बोले हे भाई ! इस समय मैं आपको क्या दे सकता हूं ।

एहि संदेस सरिस जग माहीं । करि बिचार देखेउं कछु नाहीं ॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही । अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥

संसार में इस सन्देश के बराबर कुछ भी अच्छा नहीं है, यह मैंने विचार कर देखा है । हे तात ! मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता । अब मुझे प्रभु श्रीरामजी का चरित्र सुनाओ ।

तब हनुमंत नाइ पद माथा । कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥
कहु कपि कबहुं कृपाल गोसाईं । सुमिरहिं मोहि दास की नाईं ॥

तब भरतजी के चरणों में मस्तक झुकाकर हनुमानजी ने रघुनाथजी के सम्पूर्ण गुणों की गाथा कही । भरतजी ने पूछा—हे हनुमानजी ! कहो, दयालु श्रीरामजी क्या कभी मुझे अपने दास की तरह स्मरण करते हैं ?

छं०—निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुं मम सुमिरन करयो ।
सुनि भरत बचन बिनीत अति करि पुलकि तन चरनन्हि परयो ॥
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो ।
काहे न होइ बिनीत परम पुनत सद्‌गुन सिंधु सो ॥

रघुवंश भूषण श्रीरामजी ने क्या कभी मुझे अपने दास के समान समझ कर स्मरण किया । भरतजी के ऐसे बहुत दीन वचन सुनकर हनुमानजी रोमांचित होकर चरणों में गिर पड़े और विचार करने लगे कि जो श्रीरामजी चराचर के स्वामी हैं, वे जिनके गुणगान स्वयं अपने श्रीमुख से वर्णन करते हैं । वे भरत ऐसे विनययुक्त बहुत ही पवित्र और सद्‌गुण समुद्र क्यों न हो ?

दो०—राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयं समात ॥ ७ ॥

हनुमानजी बोले हे नाथ ! श्रीरघुनाथजी को तुम प्राणों के समान प्रिय हो, हे तात ! मेरा यह वचन सत्य है । यह सुनकर भरतजी को मिलते हुए हर्ष मन में नहीं समाता ॥ ७ ॥

सो०—भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं ।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि ॥ १ ॥

फिर भरतजी के चरणों में सिर झुकाकर हनुमानजी तुरन्त श्रीरामजी के पास गये और सब कुशल कही, तब प्रसन्न होकर प्रभु विमान पर चढ़कर चले ।

हरषि भरत कोसलपुर आए । समाचार सब गुरहि सुनाए ॥
पुनि मंदिर महं बात जनाई । आवत नगर कुसल रघुराई ॥

भरतजी प्रसन्न होकर अयोध्यापुरी में आये और सब समाचार गुरुदेव को सुनाये, फिर राज-महल में खबर कराई कि रघुनाथजी कुशलपूर्वक नगर में आ रहे हैं ।

सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥

समाचार के सुनते ही सब माताएं दौड़ी, तब भरतजी ने प्रभु की कुशल कहकर सबको समझाया। अयोध्या वासियों ने जब श्रीरघुनाथजी के आगमन का समाचार सुना, तब सब नर-नारी अति प्रसन्न होकर दौड़े।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला ॥
भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी ॥

दूध, दही, गोरोचन, फल-फूल और मङ्गल की जड़ नवीन तुलसी-दल आदि सोने के थालों में भर-भरकर गज-गामिनी स्त्रियां गीत गाती हुई चलीं।

जे जैसेहि तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहं संग न लावहिं ॥
एक एकन्ह कहं बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥

जो जैसे बैठे थे, वैसे ही उठकर दौड़े, बालक और बूढ़ों को कोई साथ नहीं लेते और एक दूसरे से पूछते हैं कि तुमने दयालु श्रीरामजी को देखा है।

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी ॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा ॥

अवधपुरी प्रभु को आते हुए जानकर शोभाओं को खान हो गई। सरयू का जल बहुत निर्मल हो गया और तीनों प्रकार की सुहावनी पवन चलने लगी।

दो०—हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत ॥ ८ ॥

गुरु वशिष्ठजी, कुटुम्बी, शत्रुघ्न और ब्राह्मण-मण्डली के साथ भरतजी अत्यन्त प्रेम भरे मन से कृपानिधान श्रीरामजी के पास चले ॥ ८ ॥

बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ॥ ९ ॥

बहुत सी स्त्रियां अटारियों पर चढ़ी हुई आकाश में विमान को देखती हैं और उसे देखकर, प्रसन्न होकर, मीठे स्वर से सुन्दर मंगल गीत गाती हैं ॥ ९ ॥

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ॥ १० ॥

श्रीरामजी रूपी पूर्णचन्द्र को देखकर, मानो अयोध्या-रूपी समुद्र हर्षित होकर कोलाहल करते हुए उमड़ चला, स्त्रियां मानो उसकी तरंगे हैं ॥ १० ॥

इहां भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥

इधर सूर्यवंश-रूपी कमल के सूर्य श्रीरामजी वानरों को नगर दिखलाने लगे, श्रीराम कहने लगे कि हे सुग्रीव, अंगद और विभीषण! सुनो, यह पवित्र पुरी और सुन्दर स्थान है।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

यद्यपि सब बैकुण्ठ की बड़ाई करते हैं और वेद-पुराणों में प्रसिद्ध है और सारा संसार जानता है, लेकिन वह भी मुझे अयोध्या के समान प्रिय नहीं है। इस बात को कोई-कोई ही जानते हैं।

जन्मभूमि मम पुरि सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥

यह सुन्दर पुरी ही मेरी जन्म-भूमि है, इसके उत्तर में निर्मल और पवित्र सरयू बह रही है, जिसमें स्नान करने से बिना परिश्रम ही लोग मेरे समीप वास पाते हैं।

अति प्रिय मोहि इहां के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी॥

यहां के निवासी मुझे बहुत प्रिय हैं, अयोध्यापुरी मेरे धाम को पहुंचाने वाली और सुखों की राशि है। प्रभु की वाणी सुनकर सब वानर अति प्रसन्न हुए। अवधपुरी जिसकी बड़ाई स्वयं श्रीरामजी ने अपने श्रीमुख से की है, वह धन्य है।

दो०—आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान॥ ११॥

कृपासिन्धु भगवान श्रीरामजी ने जब सब लोगों को आते देखा, तब नगर के निकट प्रभु की प्रेरणा से पुष्पक विमान उतरा॥ ११॥

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु॥ १२॥

प्रभु ने पुष्पक विमान से उतरकर कहा कि तुम कुबेर के पास जाओ। श्रीरामचन्द्रजी की प्रेरणा से वह चला, तब उसे स्वामी के पास जाने का हर्ष तथा प्रभु से बिलग होने का अत्यन्त दुःख था॥१२॥

आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा॥
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥

भरतजी के साथ में सब लोग आये, श्रीरामजी के वियोग से उन सबके शरीर दुर्बल हो गये हैं। प्रभु ने मुनियों में श्रेष्ठ कामदेव तथा वशिष्ठजी को देखा, तब धनुष बाण पृथ्वी पर रख दिये।

धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया॥

लक्ष्मणजी सहित दौड़कर गुरु के चरण-कमल पकड़ लिए, दोनों के शरीर के रोमांच खड़े हो गये। मुनि ने मिलकर कुशल पूछी, तब श्रीरघुनाथजी ने कहा कि आप ही की दया से हम लोग कुशल हैं।

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज॥

फिर धर्म धुरन्धर रघुकुलनाथ श्रीरामजी ने सब ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें मस्तक झुकाया, फिर भरतजी ने प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरण-कमल पकड़ लिये। जिन चरणारविन्दों को देवता, मुनि, शंकरजी और ब्रह्माजी नमस्कार करते हैं।

परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥

भरतजी साष्टांग दण्डवत करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े रहे, उठाने से भी नहीं उठते, तब कृपा-सिन्धु श्रीरामजी ने बलपूर्वक उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। उनके सांवले शरीर में रोम खड़े हो गए, नवीन कमल के समान नेत्रों से आंसू बहने लगे।

छं०—राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयं लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोइ मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही॥

कमल के समान नेत्रों में आंसू बह रहे हैं, सुन्दर शरीर में रोम खड़े हो गये हैं। त्रिलोकी नाथ बड़े स्नेह से भाई भरत को हृदय से लगाकर मिले। प्रभु भाई से मिलते समय ऐसे शोभायमान हुए कि उसकी उपमा मुझसे कही नहीं जाती, मानो प्रेम और सिंगार-रस शरीर धारण कर परस्पर मिलते हुए विशेष शोभा को प्राप्त हुए हों।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥

कृपानिधान श्रीरामजी भरतजी से कुशल पूछते हैं, परन्तु भरतजी के मुख से जल्दी वचन नहीं निकलते। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! सुनो, वह सुख, वचन और मन से अलग है, उसे वही जानता है जो जानता है। भरतजी बोले हे कौशलनाथ! आपने दुःखी जानकर दास को दर्शन दिये, तो अब सब कुशल है। कृपानिधान! आपने मुझे वियोग-रूपी समुद्र में डूबते हुए हाथ पकड़कर बचा लिया।

दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयं लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ॥ १३॥

फिर प्रभु प्रसन्नतापूर्वक शत्रुघ्नजी को छाती से लगाकर मिले, तत्पश्चात भरतजी और लक्ष्मणजी से प्रेम पूर्वक मिले॥ १३॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥

फिर शत्रुघ्नजी लक्ष्मणजी से मिले और कठिन वियोग से उत्पन्न दुःख को मिटाया फिर शत्रुघ्नजी समेत भरतजी ने सीताजी के चरणों में मस्तक नवाकर बहुत सुख पाया।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥

प्रभु के दर्शन से सब प्रसन्न हुए और वियोग उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गये, सब लोगों को स्नेह से व्याकुल देखकर कृपालु प्रभु ने यह कौतुक किया कि -

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपा दृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥

उस समय कृपालु रामजी ने असंख्य रूप प्रकट किए और यथायोग्य सबसे मिले, दया की दृष्टि से रघुनाथजी ने सब नर-नारियों की ओर देखकर उन्हें शोक रहित कर दिया।

छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुं न जाना॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगें चले सील गुन धामा॥
कोसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥

क्षण भर में भगवान सबसे मिल लिये। परन्तु - हे पार्वती! यह भेद किसी ने नहीं जाना। इस प्रकार शील और गुणों के धाम श्रीरामजी आगे चले। तब सब मातायें ऐसे दौड़ीं जैसे हाल की ब्याई गायें बछड़े को चाहती हैं।

छं०—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहं चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिहति बियोगभव तिन्हे हरष सुख अगनित लहे॥

मानो गायें अपने छोटे बछड़ों को घर में छोड़ परबस वन में चरने गई हों और दिन के अन्त में नगर की ओर थलों में दूध चुचाती और हुंकार करती हुई दौड़ी आ रही हों। प्रभु बड़े स्नेह के साथ सब माताओं से मिले और बहुत भांति से मधुर वचन कहे। जिससे वियोग से उत्पन्न हुई सब कठिन विपत्ति दूर हो गई और उन्होंने प्रसन्न होकर बहुत सुख पाया।

दो०—भेटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयं बहुत सकुचानि॥ १४॥

श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेमी जानकर पुत्र लक्ष्मणजी से माता सुमित्राजी मिलीं। श्रीरामचन्द्रजी से मिलती हुई कैकई हृदय में बहुत लज्जित हुई॥ १४॥

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहं पुनि पुनि मिले मन कर छोभु जाइ॥ १५॥

लक्ष्मणजी सब माताओं से मिले और आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुए, फिर कैकेयी से बारम्बार मिले परन्तु उनके मन का क्षोभ नहीं जाता था॥ १५॥

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥

सीताजी सब सासुओं से मिलीं और चरण लगकर बहुत ही आनन्द हुआ। सब सासुयें कुशल पूछकर आशीर्वाद देती हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं॥

सब मातायें श्रीरघुनाथजी के मुखारविन्द को देख रही हैं तथा मङ्गलमय जानकर नेत्रों के जल को रोकती हैं। सोने के थाल से आरती उतारी और बारम्बार प्रभु के अङ्गों को निहारती हैं।

नाना भांति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं॥
कोसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि॥

वे नाना प्रकार से न्योछावर करती हैं और हृदय को आनन्द से परिपूर्ण करती हैं। कौशल्याजी दया के समुद्र, रणधीर रघुनाथजी को बार-बार देखती हैं।

हृदयं बिचारति बारहिं बारा। कवन भांति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥

और बार-बार अपने हृदय में विचार करने लगीं कि इन्होंने लंकापति रावण को कैसे मारा होगा? यह मेरे दोनों बहुत ही सुकुमार हैं और रावण तो अच्छे योद्धा और बहुत भारी बलवान था।

दो०—लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु॥ १६॥

लक्ष्मण और सीता सहित प्रभु श्रीरामजी को देखकर माताओं के मन परमानन्द में मग्न हैं और उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे हैं॥ १६॥

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला॥
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥

लंकापति विभीषण, सुग्रीव, नल-नील, जामवंत, अंगद और हनुमानजी आदि उत्तम स्वभाव वाले सब वीर बानर मनोहर मनुष्य-रूप धारण किये हैं।

भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा॥
देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती॥

सब आदर सहित बड़े प्रेम से भरतजी के शील, स्नेह तथा व्रत का वर्णन करने लगे। नगर निवासियों की रीति और प्रभु से उनका अत्यन्त प्रेम देखकर उनकी बड़ाई करने लगे।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए॥
गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपां दनुज रन मारे॥

फिर श्रीरामजी ने सखाओं को बुलाकर सिखाया कि मुनि के चरणों को छुओ। ये हमारे पूज्य कुलगुरु वशिष्ठजी हैं, इन्हीं की कृपा से राक्षस रण में मारे गये हैं।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहं बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिष निमिष उपजत सुख नए॥

वशिष्ठजी से बोले हे मुनिनाथ! ये सब मेरे सखा हैं, जो युद्ध-रूपी समुद्र में मुझे जहाज के समान हुए हैं, मेरे हित के लिए यह अपने जन्म हार गये हैं। मुझे ये भरतजी से भी अधिक प्यारे हैं। प्रभु के यह वचन सुनकर सब प्रेम में मग्न हो गये। पल-पल में उन्हें नये सुखों का अनुभव होता है।

दो०—कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥ १७॥

फिर उन सखाओं ने कौशल्याजी के चरणों में मस्तक झुकाया, तब कौशल्याजी ने अति प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया और कहा—तुम मुझे रघुनाथ के समान प्यारे हो॥ १७॥

सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद॥ १८॥

आनन्द-कन्द श्रीरामजी महल को चले, तब पुष्प वृष्टि से आकाश भर गया। नगर के स्त्री-पुरुषों के झुण्ड अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शन करते हैं॥ १८॥

कंचन कलस बिचित्र संवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे॥
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू॥

सोने के कलश बहुत भांति-भांति से सजाकर सबने अपने-अपने द्वारों पर रखे। सभी ने मंगल के लिए बार-बार ध्वजा और पताका लगा दी।

बीथीं सकल सुगंध सिंचाईं। गजमनि रचि बहु चौक पुराइ॥
नाना भांति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे॥

सब गलियां सुगन्धित जल से छिड़कवाई गयीं और गज मुक्ताओं से रचकर बहुत सी चौकें पुराई गयीं, नाना प्रकार के सुन्दर साज सजाये गये और प्रसन्नतापूर्वक नगर में बहुत से आनन्द के बाजे बजाये गये।

जहं तहं नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं॥
कंचन थार आरतीं नाना। जुबतीं सजें करहिं सुभ गाना॥

जहां-तहां स्त्रियां न्यौछावर कर रही हैं और हृदय में आनन्दित होकर आशीर्वाद दे रही हैं। सोने के अनेक थालों में आरती सजाकर स्त्रियां मनोहर गीत गा रही हैं।

करहिं आरती आरतिहर कें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें॥
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना॥
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं॥

वे रघुवंश-रूपी कमल-वन के सूर्य तथा दुःख को हरने वाले श्रीरामजी की आरती कर रही हैं। अयोध्यापुरी की शोभा, सम्पत्ति और आनन्द को वेद, शेष और सरस्वती वर्णन करते हैं परन्तु यह चरित्र को देखकर वह भी ठगे से रह जाते हैं। हे पार्वती! तब उनके गुण मनुष्य कैसे कह सकते हैं?

दो०—नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएं बिगसत भइ निरखि राम राकेस॥ १९॥

स्त्रियां-रूपी कुमुदनी अयोध्या रूपी सरोवर में श्रीरामचन्द्रजी के वियोग-रूपी सूर्य के अस्त हो जाने से श्रीरामजी-रूपी चन्द्रमा को देखकर खिल उठीं॥ १९॥

होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान॥ २०॥

नाना प्रकार के शुभ शकुन होने लगे, आकाश में नगाड़े बजने लगे, नगर के सब पुरुष और स्त्रियों को सनाथ करके भगवान् रामजी राज-भवन को चले॥ २०॥

प्रभु जानि कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
ताहि प्रबोध बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा॥

महादेवजी कहते हैं—हे पार्वती! प्रभु ने जाना कि माता कैकेयी लज्जित हैं तो पहले उन्हीं के महल में गये और उन्हें समझाकर बहुत सुख दिया, तब प्रभु अपने महल में गए।

कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥
गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई॥

कृपासिन्धु भगवान श्रीरामचन्द्रजी जब अपने भवन में गए, तब नगर के सब नर-नारी सुखी हुए। गुरु वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों को बुलवा लिया और कहा—आज शुभ घड़ी और सुख देने वाला सुन्दर दिन है।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन॥
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए॥

आप सब ब्राह्मण आनन्दपूर्वक आज्ञा दीजिए कि श्रीरामजी सिंहासन पर विराजमान हों। मुनि के वचन सुनते ही ब्राह्मणों को बहुत अच्छे लगे।

कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥
अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहं तिलक करीजै॥

अनेक ब्राह्मण मधुर वचनों से बोले—श्रीरामजी का अभिषेक संसार को आनन्द देने वाला है। हे मुनीश्वर! आप विलम्ब न कीजिए। महाराज को राज-तिलक कर दीजिए।

दो०—तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत संवारे जाइ॥ २१॥

तब मुनि ने सुमन्त से कहा तो वे सुनते ही हर्षित होकर चले। उन्होंने अनेक रथ, हाथी और घोड़े तुरन्त सजवाए॥ २१॥

जहं तहं धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मंगाइ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ॥ २२॥

फिर जहां-तहां दूतों को भेजकर मंगल द्रव्य मंगाकर फिर आनन्द पूर्वक आकर वशिष्ठजी के चरणों में सिर झुकाया॥ २२॥



अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई॥
राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥

अयोध्यापुरी को बहुत सुन्दर सजाया गया। देवताओं ने फूलों की वर्षा की झड़ी लगा दी। श्रीरामचन्द्र जी ने सेवकों को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम जाकर पहले हमारे सखाओं को स्नान कराओ।

सुनत बचन जहं तहं जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए॥
पुनि करुनानिधि भरतु हंकारे। निज कर राम जटा निरुआरे॥

यह सुनते ही सब जहां-तहां दौड़े और तुरन्त ही सुग्रीव आदि सखाओं को स्नान कराया फिर दयालु श्रीरामजी ने भरतजी को बुलाया और अपने हाथों से उनकी जटाओं को सुलझाया।

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई॥

फिर भक्त वत्सल कृपालु श्रीरघुनाथजी ने तीनों भाइयों को स्नान कराया। भरतजी के भाग्य और प्रभु की कोमलता का वर्णन सौ करोड़ शेषजी भी नहीं कर सकते।

पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन मागि नहाए॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे॥

फिर श्रीरामजी ने अपनी जटायें खोलीं और गुरुदेव की आज्ञा पाकर स्नान किया। स्नान करने के पश्चात प्रभु ने आभूषण धारण किए, उन अंगों की शोभा देखकर सैकड़ों कामदेव लजा गए।

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अंग अंग सजे बनाइ॥ २३॥

सासुओं ने आनन्दपूर्वक जानकीजी को तुरन्त ही स्नान कराया और उत्तम वस्त्र तथा दिव्य गहनों से अंग-प्रत्यंग सजा दिए॥ २३॥

राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि॥ २४॥

श्रीरामजी के वाम-भाग में लक्ष्मी रूप, गुणों की खान जानकीजी शोभायमान हैं। उन्हें देखकर सब माताएँ अपना जन्म सफल जानकर प्रसन्न हुयीं ॥ २४ ॥

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद ॥ २५ ॥

कागभुशुण्डिजी बोले हे गरुड़ जी ! उस समय ब्रह्मा, शिव और मुनिगण तथा सब देवता विमानों पर चढ़कर आनन्द कन्द प्रभु के दर्शन करने के लिए आए ॥ २५ ॥

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा ॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ॥

प्रभु को देखकर मुनि के मन में प्रेम भर आया। उन्होंने उसी समय सुन्दर सिंहासन मंगवाया, जिसका तेज सूर्य के समान था और जो वर्णन नहीं किया जा सकता। रामजी द्विजों को प्रणाम करके बैठे।

जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई ॥
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ॥

श्रीजानकी सहित श्रीरामचन्द्रजी को सिंहासन पर विराजमान देखकर मुनिगण बहुत ही आनंदित हुए, उस समय ब्राह्मणों ने वेद मन्त्र उच्चारण किए, आकाश में देवता और मुनि जय-जयकार करने लगे।

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी ॥

पहले वशिष्ठजी ने तिलक किया, फिर सब ब्राह्मणों को तिलक करने की आज्ञा दी। पुत्र को राज-सिंहासन पर विराजमान देखकर सब मातायें बहुत प्रसन्न हुयीं और उन्होंने बार-बार आरती उतारी।

बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे ॥
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं ॥

ब्राह्मणों को अनेक प्रकार से दान दिए और याचकों को सन्तुष्ट कर दिया। त्रिलोकीनाथ को सिंहासन पर देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए।

छं०—नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किंनर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं ॥
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते ॥

आकाश में बहुत प्रकार से नगाड़े बजने लगे, गन्धर्व और किन्नर गाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं। देवता और मुनि परम आनन्द को प्राप्त करते हुए भरत आदि छोटे भाई, विभीषण, अंगद, हनुमान आदि सब छत्र, चंवर, पंखा, तलवार ढाल और शक्ति आदि लिए सुशोभित हैं।

श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोज नयन बिसा उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥

श्रीसीताजी सहित सूर्यवंश के भूषण श्रीरामजी अनेक कामदेवों की शोभा से शोभित हैं। नवीन मेघ के समान सुन्दर सांवले शरीर पर पीताम्बर मुनियों का मन मोहित कर रहा है। मुकुट, भुजबन्द और विचित्र आभूषण अंग अंग में सजे हुए हैं। कमल के समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती, लम्बी भुजाएं हैं, जो दर्शन करते हैं, वे धन्य हैं।

दो०–वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस॥ २६॥

हे पक्षीराज! वह शोभा, वह समाज और वह सुख कहते नहीं बनता। सरस्वती, शेष और वेद निरन्तर उनका वर्णन करते हैं, उनका रस शिवजी ही जानते हैं॥ २६॥

भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहं श्रीराम॥ २७॥

सब देवता अलग अलग स्तुति करके अपने अपने स्थान को चले गए। तब भाटों का बेष रखकर चारों वेद आए, जहां श्रीरामजी थे॥ २७॥

प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूं मरम कछु लगे करन गुन गान॥ २८॥

कृपानिधान सर्वज्ञ प्रभु ने उनका आदर किया। यह भेद किसी ने नहीं समझ पाया। वेद गुण गान करने लगे॥ २८॥

छं०–जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे॥

हे सगुण और निर्गुण रूप, अनुपम सौन्दर्ययुक्त राज शिरोमणि श्रीरामजी! आपकी जय हो! आपने रावण आदि प्रचन्ड बलवान् और दुष्ट निशाचर आदि को अपनी भुजाओं के बल से मारा है। आपने मनुष्य अवतार लेकर संसार का भार दूर कर, सबके कठिन दुःख दूर कर दिए। हे शरणागत पालक प्रभो! आपकी जय हो। हम शक्ति रहित आपको नमस्कार करते हैं।

तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुं रच्छ राम नमामहे॥

हे हरि ! आपकी कठिन माया के वश में होने के कारण देवता, असुर, नाग और मनुष्य, जड़, चेतन सभी संसार मार्ग (आवागमन) में कर्म और गुणों से भरे हुए दिन रात भटक रहे हैं। उनमें से हे नाथ ! जिन्हें आपने दयादृष्टि से देख लिया है, वे ही तीनों दुःखों से छुट गए हैं। हे संसार सम्बन्धी दुःख दूर करने में समर्थ श्रीरामजी ! आप हमारी रक्षा करें, हम आपको नमस्कार करते हैं।

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥

हे हरि भगवान् ! जो प्राणी अपने ज्ञान के अभिमान से मतवाले होकर संसार से छुड़ाने वाली आपकी भक्ति का आदर नहीं करते। वे देव दुर्लभ पद पाकर भी नीचे गिर जाते हैं। जो आपका विश्वास करके सब आशाओं को छोड़कर आपके दास होकर रहते हैं, वे आपके नाम को जपकर बिना परिश्रम के ही संसार से तर जाते हैं। हे नाथ ! हम आपको नमस्कार करते हैं।

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावन सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥

जो चरण शिवजी और ब्रह्माजी द्वारा पूज्य हैं, जिन चरणों की रज को छूते ही गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या तर गई, जिन चरणों की नख से मुनियों से वन्दित और तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गंगाजी निकली हैं और जो ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल इन चिन्हों से युक्त हैं, जिन चरणों में वन में फिरते समय कांटों के गड्ढे पड़ गए हैं। हे मुकुन्द ! हे राम ! हे रमापति ! उन्हीं दोनों चरणारविन्दों का भजन करते हैं।

अव्यक्तमूलमनादि तरु त्वचा चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥

वेद शास्त्रों ने कहा है कि जिनकी जड़ अदृश्य माया है, जो अनादि हैं, जिनके छः तने और पच्चीस शाखाएँ अनेक पत्ते और बहुत से फूल हैं, जिनके दो प्रकार के कड़वे और मीठे फल हैं, जिस पर उसी के आश्रित बेलि है और जिनके नित्य नये पत्ते और फूल निकलते रहते हैं, ऐसे संसार रूपी वृक्ष आपको नमस्कार करते हैं।

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुं जानहुं नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥

जो पुरुष ब्रह्म को अजन्मा, अद्वैत, अनुभव से जानने योग्य और मन से परे जानकर भी उसका ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें, पर हे नाथ ! हम तो आपका सगुण यश ही गाते हैं। हे कृपानिधान ! हे उत्तम गुणों के स्थान प्रभो हे देव ! हम यह मांगते हैं कि मन-कर्म-वचन से विकारों को छोड़कर आपके चरणों में हमारा प्रेम हो।

दो०—सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार ॥ २९ ॥

सब लोगों को देखते हुए वेदों ने श्रीरामजी की यह श्रेष्ठ स्तुति की, फिर वे अन्तर्ध्यान होकर ब्रह्मलोक को चले गये ॥ २९ ॥

बैनतेय सुनु संभु तब आए जहं रघुबीर।
बिनय करत गद गद गिरा पूरित पुलक सरीर ॥ ३० ॥

सुनो गरुड़जी ! तब शिवजी यहां आये, जहां रामजी थे और पुलकित शरीर होकर गद्गद् वाणी से स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥

छं०—जय राम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं ॥
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो ॥
दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महा महि भूरि रुजा ॥
रजनीचर बृंद पतंग रहे। सर पावक तेज प्रचंड दहे ॥

हे रमारमण रामजी ! आपकी जय हो ! आप संसार के पापों को दूर करने वाले और भय से व्याकुल जीवों के रक्षक हैं। हे अवधपति ! हे देवाधिपति ! हे लक्ष्मीनाथ ! समर्थ प्रभो ! मैं शरणागत यह मांगता हूं कि मेरी रक्षा कीजिए। आपने दशशीश और बीस भुजा वाले रावण को मारकर पृथ्वी के भारी रोग को दूर कर दिया। राक्षस रूपी भुनगे आपकी वाणी रूपी प्रचण्ड अग्नि के तेज से जलकर भस्म हो गए।

महि मंडल मंडन चारुतरं। धृत सायक चाप निषंग बरं ॥
मद मोह महा ममता रजनी। तम पुंज दिवाकर तेज अनी ॥
मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग सरेन हिए ॥
हति नाथ अनाथनि पाहि हरे। बिषया बन पावंर भूलि परे ॥

आप भूमण्डल के अत्यन्त सुन्दर आभूषण हैं। उत्तम धनुष-बाण और तरकस धारण किए हैं। मद, मोह, ममता-रूपी भारी अंधेरी रात के अंधकार समूह को दूर करने के लिए आप महा प्रकाशमय सूर्य हैं। कामदेव-रूपी बहेलिया ने मनुष्य-रूपी मृगों के हृदय में कुभोग रूपी बाण मारकर उनको गिरा दिया है। हे नाथ आप उसे नष्ट कर उन अनाथों की रक्षा कीजिए, जो विषय रूपी वन में भूले पड़े हैं।

बहु रोग बियोगन्हि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ए ॥
भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन्ह कें पद पंकज प्रीति नहीं ॥
अवलंब भवत कथा जिन्ह कें। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें ॥

लोग बहुत से रोगों और वियोगों के मारे हुए हैं। ये आपके चरण-कमल का निरादर का फल है और जो लोग आपके चरणारविन्दों में प्रेम नहीं करते, वे अगाध संसार में पड़े हैं, वे लोग नित्य ही अत्यन्त दीन, मलिन और दुःखी रहते हैं, जो आपके चरणारविन्दों में प्रीति नहीं करते। जिनको आपकी कथा का ही आश्चर्य है, उनको संत तथा भगवान सदा प्यार करते हैं।

नहिं राग न लोभ न मान मदा। तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा॥
एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥
करि प्रेम निरंतर नेम लिएं। पद पंकज सेवत सुद्ध हिएं॥
सम मानि निरादर आदरही। सब संत सुखी बिचरंति मही॥

उनको न रोग है, न लोभ है, न घमण्ड है और न मद है। ऐश्वर्य अथवा विपत्ति एक समान है। इसी से मुनिजन सदा योग का भरोसा छोड़ देते हैं और प्रसन्नतापूर्वक आपके सेवक हो जाते हैं। जो निरन्तर नियम पूर्वक प्रेम करके शुद्ध हृदय से आपके चरणाविंदों की सेवा करते तथा आदर और निरादर को समान मानते हैं, ऐसे सब सन्त सुखी होकर पृथ्वी पर विचरते हैं।

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे॥
तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महागद मान अरी॥
गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं॥
रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं। महिपाल बिलोकय दीन जनं॥

ऐसे मुनियों मन-रूपी कमलों के भौंरा! हे महा रणधीर और अजेय रघुवीरजी! मैं आपका नाम जपता हूं और नमस्कार करता हूं। आप संसार-रूपी रोग की महा औषधि और अभिमान के शत्रु हैं। आप गुण, शील और कृपा के स्थान हैं। हे रमारमण! मैं आपको सदा नमस्कार करता हूं। हे रघुनन्दन! घोर द्वन्द का नाश कीजिए। हे महिपाल मुझ दीनजन की ओर देखिए।

दो०—बार बार बर मागउं हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥

हे श्रीरङ्ग! बारम्बार मैं यही वर मांगता हूं, सो प्रसन्न होकर दीजिए कि आपके चरणारविन्द में अटल भक्ति और सत्संग मुझे सदैव प्राप्त हो।

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास॥ ३२॥

शिवजी श्रीरामजी के गुण वर्णन करके आनन्दपूर्वक कैलाश पर्वत को गये, तब प्रभु ने वानरों को सब प्रकार से सुख देने वाले डेरे दिलवाए।

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी॥
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका॥

हे गरुड़जी ! सुनिए, यह कथा पवित्र करने वाली और तीनों पाप को तथा भव-भय का नाश करने वाली है। महाराज श्रीरामजी के मंगलदायक राज्यभिषेक की कथा सुनते ही मनुष्य वैराग्य और ज्ञान को प्राप्त होंगे।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति पुर जाहीं॥

जो मनुष्य कुछ इच्छा रखकर इसे सुनेंगे और गावेंगे, वे अनेक प्रकार के सुख और सम्पत्ति पावेंगे। वे संसार में देव दुर्लभ सुखों को भोगकर अन्त समय बैकुण्ठ को पधारेंगे।

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नई॥
खगपति राम कथा मैं बरनी। स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी॥

जो जीवन्मुक्त, ज्ञानी और विषयी सुनेंगे, वे भी क्रमशः भक्ति, मोक्ष और सम्पत्ति को पायेंगे। हे गरुड़जी, यह कथा अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन की है, जो भय तथा दुःख को दूर करने वाली है।

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहं सुंदर तरनी॥
नित नव मंगल कौसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी॥

वैराग्य, ज्ञान और भक्ति को दृढ़ करने वाली यह कथा मोह-रूपी नदी को पार करने के लिए सुन्दर नौका है। नित्य नये-नये मंगल अयोध्यापुरी में होते हैं, सब जाति के लोग आनन्द से रहते हैं।

नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सब कें जिन्हहि नमत सिव मुनि अज॥
मंगन बहु प्रकार पहिराए। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए॥

रामजी के चरणों में नित्य नई प्रीति है, जिन चरणों की सेवा शिवजी, देवता, मुनि और ब्रह्माजी भी करते हैं। भिक्षकों को बहुत प्रकार से वस्त्र पहिनाये गये और ब्राह्मणों ने अनेक दान पाए।

दो०—ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति॥ ३३॥

सब वानर परम आनन्द में मग्न हैं। प्रभु के चरणों में सबकी प्रीति है। दिन-रात जाते किसी ने नहीं जाने। छः महीने बीत गये।

बिसरे गृह सपनेहुं सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥

सब अपने-अपने घरों को भूल गये, स्वप्न में भी किसी को घर की याद नहीं आई, जैसे सन्तों के मन में दूसरों से द्रोह करने का विचार नहीं आता। तब रामजी ने सब सखाओं को बुलाया और सबने आकर सिर झुकाया।

परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥

तब रामजी ने प्रेम से सबको अपने पास बैठाया और भक्तों को सुख देने वाले कोमल वचन कहे कि तुम सबने मेरी बड़ी सेवा की हैं। मुंह पर किस प्रकार बड़ाई करूं।

तातें मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥

तुमने मेरे काम के लिए घर तथा सुख छोड़ दिए। इस कारण तुम सब मुझे बहुत प्यारे लगे हो। छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, जानकी, देह, घर, परिवार और मित्र।

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउं मोर यह बाना॥
सब कें प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती॥

ये सब भी मुझे तुम्हारे समान प्रिय हैं। मैं झूठ नहीं कहता, यह मेरी आन है, यद्यपि सेवक सभी के प्यारे होते हैं यह नीति है, तथापि मुझे तो दास पर विशेष प्रीति है।

दो०—अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम॥ ३४॥

हे सखाओ, अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ। वहां दृढ़ नियम से मेरा भजन करना और मुझे सदा सब व्यापक, सर्व हितकारी समझकर अधिक स्नेह करना

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहां बिसरि तन गए॥
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे॥

प्रभु के वचन सुनकर सब प्रेम में मग्न हो गये। हम कौन हैं, कहां हैं, देह की सुध भी भूल गए। हाथ जोड़कर सामने टकटकी लगाए देखते रह गये, अत्यन्त स्नेह के कारण कुछ कह न सके।

परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा॥
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं॥

प्रभु ने उनका अत्यन्त प्रेम देखा तब नाना प्रकार से विशेष ज्ञान का उपदेश दिया। प्रभु के सामने कुछ कह नहीं सके, वे बारम्बार चरणों की ओर देखते हैं।

तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥

तब प्रभु ने रंग-बिरंगे अनोखे सुन्दर आभूषण और वस्त्र मंगाये। पहले सुग्रीव को भरतजी के हाथ से वस्त्र आभूषण पहिनाये।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥

प्रभु की आज्ञा से लक्ष्मणजी ने विभीषण को वस्त्र आभूषण पहिनाये जो रघुनाथजी के मन को प्रिय लगे। अंगद बैठे रहे, अपने स्थान से नहीं उठे। उनकी प्रीति देखकर प्रभु ने उन्हें नहीं बुलाया।

दो०—जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियं धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ॥ ३५॥

जामवन्त और नील आदि सबको रघुनाथजी ने वस्त्र आभूषण पहिनाये। वे सब रामजी के स्वरूप को अपने हृदय में धारण करके चरण कमलों में मस्तक नवाकर चले।

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुं प्रेम रस बोरि॥ ३६॥

तब अंगद उठे और सिर नवाकर आंखों में आंसू भर हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्र तथा मानो प्रेम रस में डुबोते हुए वचन बोले --

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली॥

हे सर्वज्ञ! वे दया और सुख के समुद्र दोनों पर दया करने वाले शरणत रक्षक, हे नाथ, सुनिये, मरते समय मेरे पिता बालि मुझे आप ही की गोद में डाल गये थे।

असरन सरन बिरदु सभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउं कहां तजि पद जलजाता॥

आप अपना अशरण शरण यश विचार कर, हे भक्त हितकारी मुझे न छोड़िये। मेरे तो गुरु, पिता और माता सब आप ही हैं। आपके चरण कमलों को छोड़कर मैं कहां जाऊंगा?

तुम्हहि बिचारि कहहु नर नाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥

हे महाराज आप ही विचार कर कहिए कि प्रभु को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है? मैं बालक, बुद्धि, ज्ञान और बल से हीन हूं, मुझे दीन जानकर अपनी शरण में रखिये।

नीचि टहल गृह कै सब करिहउं। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउं॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥

मैं घर की सब छोटी-छोटी सेवायें करूंगा और आपके चरणों के दर्शन कर भवसागर से तर जाऊंगा। ऐसे कहकर अंगदजी प्रभु के चरणों में गिर पड़े और बोले हे नाथ, अब ऐसा न कहिएगा।

दो०--अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥ ३७॥

अंगद के विनम्र वचन सुनकर करुणा की सीमा भगवान ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और उनके नेत्रों में जल भर आया।

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥ ३८॥

तब भगवान ने अपने गले की माला, वस्त्र और आभूषण अंगदजी को पहिनाकर बहुत प्रकार से समझाया और उनको विदा किया।

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥
अंगद हृदयं प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा॥

भक्त की करनी को याद करके भरतजी शत्रुघ्नजी तथा लक्ष्मणजी सहित उनको पहुंचाने चले। अंगदजी के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं है, वे फिर-फिर कर प्रभु की ओर देखने लगते हैं।

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हंसि मिलनी॥

और बार-बार दण्ड प्रणाम करते हैं, मन में यह विचार है कि श्रीरामजी मुझे रहने को कहें। वे श्रीरामजी की चितवन, बोल-चाल और हंसकर मिलने को याद करके सोचते हैं।

प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी। चलेउ हृदयं पद पंकज राखी॥
अति आदर सब कपि पहुंचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए॥

किन्तु प्रभु का रुख देखकर बहुत विनम्र वचन कहकर अपने हृदय में भगवान् के चरण-कमलों को रखकर वे चले। बड़े आदर से सभी वानरों को पहुंचाकर भाइयों सहित भरतजी लौट आए।

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भांति बिनय कीन्हे हनुमाना॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउं देवा॥

तब हनुमानजी ने सुग्रीव के चरण पकड़कर अनेक भांति से विनय की और बोले – हे देव, दस दिन श्रीरघुनाथजी की चरण-सेवा करके फिर आपके चरणों के दर्शन करूंगा।

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा॥
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता॥

हे पवन पुत्र! तुम पुण्यों की राशि हो। जाकर कृपानिधान श्रीरामजी की सेवा करो, ऐसे कहकर सुग्रीव तुरन्त चल दिए, तब अंगद ने कहा हे हनुमानजी, सुनो –

दो०–कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउं कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि॥ ३९॥

मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूं कि प्रभु से मेरी दण्डवत कहना और श्रीरघुनाथजी को बार-बार मेरी याद दिलाते रहना।

अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत॥ ४०

ऐसे कहकर अंगदजी चले, हनुमानजी लौट आये और आकर अंगदजी की प्रीति प्रभु से कही। उसे सुनकर भगवान प्रेम में मग्न हो गये।

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥ ४१॥

हे गरुड़जी! श्रीरामजी का हृदय वज्र से भी कठोर और फूल से भी अधिक कोमल है। तब कहो, वह किसकी समझ में आ सकता है?

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा ॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू ॥

फिर कृपालु श्रीरामजी ने निषादराज को बुला लिया और प्रसाद में आभूषण तथा वस्त्र दिये और बोले- अब तुम घर जाओ, परन्तु मेरा स्मरण करते रहना और मन-कर्म-वाणी से धर्म के अनुसार बर्ताव करना।

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी ॥

तुम मेरे सखा हो और भरत के समान भाई हो। अयोध्या में सदैव आते-जाते रहना, यह बचन सुनते ही निषादराज बहुत सुखी हुआ, वह आंखों में जल भरकर चरणों में गिर पड़ा।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजननि्ह सुनावा ॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी ॥

फिर प्रभु के चरण-कमलों को हृदय में धारण कर घर आया और प्रभु का स्वभाव अपने कुटुम्बियों को सुनाया, श्रीरामजी के यह चरित्र देखकर अयोध्यावासी बारम्बार कहते हैं कि सुखों की राशि श्रीरामजी धन्य हैं।

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई ॥

श्रीरामजी के राज-सिंहासन पर बैठते ही तीनों लोक प्रसन्न हो गये और उनके सब दुःख दूर हो गये। कोई किसी से वैर नहीं करता। श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप से सबके मन की बिषमता दूर हो गई।

दो०–बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥ ४२ ॥

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल, धर्म में तत्पर, वेद मार्ग पर चलते हैं और सदा सुख पाते हैं। किसी को भय, शोक और रोग नहीं है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥

राम-राज्य में किसी को दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं व्यापता। सब लोग आपस में प्रेम करते और वेद रीति से अपने धर्म में मन लगाकर चलते हैं।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी ॥

संसार में धर्म के चारों चरण पूर्ण रीति से विद्यमान हैं। पाप तो स्वप्न में भी नहीं है। सब नर-नारी श्रीरामजी की भक्ति मन से करते हैं और सभी मुक्ति के अधिकारी हैं।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥

न तो अकाल मृत्यु ही होती है और न कोई पीड़ा ही होती है। सब लोग सुन्दर और अरोग्य शरीर वाले हैं। न कोई दरिद्री है, न कोई दीन दुःखी हैं, न कोई अज्ञानी है और न शुभ लक्षणों से हीन ही है।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

सब पाखण्ड रहित, धर्म में रत व पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और सुकर्मी हैं। सभी गुणी, पण्डित ज्ञानी तथा कृतज्ञ हैं। कपट और धूर्तता किसी में नहीं है।

दो०—राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥ ४३॥

हे गरुड़जी! सुनो, संसार भर में राम राज्य काल, कर्म, स्वभाव तथा गुणों से उत्पन्न दुःख कभी किसी को नहीं होता।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥
भुअन नेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥

सात समुद्रों की मेखला वाली पृथ्वी पर अयोध्या के महाराज श्रीरामजी एक राजा हैं, जिनके एक-एक रोम में अनेक लोक हैं, उनकी यह प्रभुता कुछ बहुत नहीं है।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥
सो महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहिं चरित तिन्हहुं रति मानी॥

बल्कि प्रभु की महिमा को जानकर इनके वर्णन में बड़ी दीनता है। हे गरुड़जी! जिन्होंने यह महिमा जानी है, वे भी इस चरित्र को बड़ी प्रीति से मानते हैं।

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहि मही मुनिबर दमसीला॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥

अपनी इन्द्रियों को वश में करने वाले महा मुनिजन कहते हैं कि इस रामचरित मानस में प्रीति होना ही उसके जानने का फल है। राम राज्य के सुख और सम्पत्ति को शेषजी और सरस्वती भी नहीं कह सकते।

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

सब उदार और परोपकारी हैं, सब नर नारी ब्राह्मणों के सेवक हैं। सब पुरुष और नारी व्रती हैं। स्त्रियां भी मन वचन कर्म से अपने पतियों का हित करने वाली हैं।

दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जह नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज॥ ४४॥

श्रीरामचन्द्रजी के राज्य में दण्ड केवल सन्यासियों के हाथ में है और भेद, नृत्य समाज में रह गया है। 'जी' शब्द तो केवल मन को जीतने के लिए है, ऐसा राम राज्य में सुनाई देता है॥ ४४॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परसपर प्रीति बढ़ाई ॥

वन में वृक्ष सदा फूलते फलते हैं। हाथी और सिंह एक साथ रहते हैं। पशु पक्षी स्वाभाविक वैर भूल गये और सभी ने आपस में प्रीति बढ़ा ली है।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ॥

अनेक भांति के पशु पक्षियों के झुण्ड शब्द करते हैं और वन में निर्भय घूमते हुए विहार करते हैं। शीतल सुगन्धित पवन चला करती है, भौंरे फूलों का रस लेकर गुञ्जारते हैं।

लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेतां भइ कृतजुग कै करनी ॥

लता और वृक्ष मांगने पर मधु टपका देते हैं, गाएं मनचाहा दूध देती हैं। पृथ्वी सदैव खेती से हरी भरी रहती है। उस समय सतयुग की बातें त्रेता में हो गई।

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥

जगत के आत्मा भगवान को संसार का राजा समझ कर पर्वतों में अनेक प्रकार की मणियों की खानें प्रकट हो गई। सब नदियों में शीतल, निर्मल, मीठा, स्वादिष्ट और सुखप्रद जल बहने लगा।

सागर निज मरजादां रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ॥

समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं, वे अपने किनारों पर रत्न डाल देते हैं। उन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से भरे हैं, दसों दिशाओं के विभाग बहुत ही प्रसन्न हैं।

दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज ॥ ४५ ॥

श्रीरामजी के राज्य में चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से पृथ्वी को पूर्ण रखता है। सूर्य उतना ही तपता है, जितने से काम बनता है तथा मेघ मांगने पर जल बरसा देते हैं।

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहं दीन्हे ॥
श्रुतिपथ पालक धर्म धुरंदर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥

प्रभु श्रीरामजी ने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये व ब्राह्मणों को असंख्य दान दिये, रामजी वेद की मर्यादा के पालक, धर्म धुरन्धर, गुणों से परे और भोगों में इन्द्र के समान थे।

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता ॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई ॥

शोभा की खान, सुशील, विनम्र सीताजी सदा अपने पति के अनुकूल हैं। कृपासिन्धु श्रीराम की प्रभुता को जानती हुई सीताजी मन लगाकर उनके चरणारविन्दों की सेवा करती हैं।

जद्यपि गृहं सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी॥
निज कर गृह परिचरचा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥

यद्यपि महलों में बहुत-से दास और दासियां हैं और वे सेवा करने में चतुर हैं, फिर भी सीताजी अपने हाथों से घर की टहल करती हैं और श्रीरामजी की आज्ञानुसार चलती हैं।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततममिंदिता॥

कृपासिन्धु श्रीरामचन्द्रजी जिस प्रकार से सुख मानें, सीताजी वही करती हैं, क्योंकि वे सेवा की विधि को जानती हैं। वे कौशल्यादि सासुओं की सेवा करती हैं, मान और मद उनमें नहीं है। हे पार्वती, जगदम्बा सीताजी ब्रह्मा आदि देवताओं से वन्दित और सदा आनन्दित हैं।

दो०—जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥ ४६॥

जिसके कृपा कटाक्ष को देवता चाहते हैं, परन्तु जो उनकी ओर देखती भी नहीं। वही श्रीसीताजी अपने स्वभाव को छोड़कर श्रीरामजी के चरणों में प्रेम करती हैं॥ ४६॥

सेवहिं सानकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुं कृपाल हमहि कछु कहहीं॥

सब भाई अनुकूल रहकर सेवा करते हैं। उनका श्रीरामजी के चरणों में बहुत प्रेम है, वे प्रभु के मुख-कमल की ओर निहारते हैं कि कृपालु कभी हमको कुछ आज्ञा दें।

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भांति सिखावहिं नीती॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥

श्रीरामजी भी भाइयों पर प्रेम करते हैं और अनेक प्रकार से नीति सिखाते हैं। नगर के लोग प्रसन्न होकर रहते हैं और वेद दुर्लभ सुख भोगते हैं।

अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं॥
दुइ सुत सुंदर सीतां जाए। लव कुसबेद पुरानन्ह गाए॥

वे दिन-रात विधाता को मनाते रहते हैं और श्रीरामजी के चरणों में प्रीति चाहते हैं, सीताजी के दो सुन्दर पुत्र लव और कुश उत्पन्न हुए, जिनकी कीर्ति वेद-पुराणों ने गाई है।

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुं अति सुंदर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे॥

वे दोनों ही विजयी, विनम्र व गुणों के स्थान हैं और बहुत सुन्दर हैं। मानो श्रीहरि के ही हों। दो-दो पुत्र सब भाइयों के भी हुए, वे सब रूपवान और बड़े शीलवान हुए।

दो०—ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानं घन कर नर चरित उदार॥ ४७॥

जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे है और मन, माया व गुणों से परे है, वे ही सच्चिदानन्द उदार प्रभु मनुष्य लीला कर रहे हैं ।।४७।।

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभां संग द्विज सज्जन ।।
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ।।

श्रीरामजी प्रातःकाल सरयू में स्नान करके सभा में ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ ही विराजमान होते हैं। मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजी वेद तथा पुराणों की कथा कहते हैं और रामजी प्रेम से सुनते हैं, यद्यपि वे सब कुछ जानते हैं।

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं ।।
भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई ।।

वे भाइयों के साथ ही भोजन करते हैं, तब उन्हें देखकर सब माताएं आनन्द में भर जाती हैं। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई हनुमानजी के साथ बगीचे में जाकर—

बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा ।।
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं ।।

वहां बैठकर श्रीरामजी के गुणों की कथा पूछते हैं और हनुमानजी अपनी सुन्दर बुद्धि को उसमें गोता लगाकर कहते हैं वे उन निर्मल गुणों को सुनाते हुए बहुत सुख पाते हैं और बार-बार प्रार्थना करके कहलवाते हैं।

सब कें गृह गृह होहिं पुराना। राम चरित पावन बिधि नाना ।।
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं ।।

सबके घरों में पुराणों और पवित्र राम-चरित्र की कथायें अनेक भांति से होती हैं। स्त्री-पुरुष श्रीरामजी का गुण-गान करते हैं, जिससे दिन-रात जाते हुए मालूम नहीं होते।

दो०–अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहं नृप राम बिराज ।। ४८ ।।

जहां श्रीरामचन्द्रजी स्वयं विराजमान हैं। उस अवधपुरी में निवास करने वालों के सुख, सम्पत्ति के समुदाय को हजारों शेषजी भी वर्णन नहीं कर सकते।

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा ।।
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं ।।

नारद और सनकादि मुनिश्वर कौशलाधीश श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन के लिए प्रतिदिन अयोध्यापुरी में आते हैं और नगर को देखकर वैराग्य भुला देते हैं।

जातरूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं ।।
पुर चहुं पास कोट अति सुंदर। रचे कंगूरा रंग रंग बर ।।

स्वर्ण और मणियों की बनी हुई अटारियां हैं। उनमें अनेक रङ्गों की ढालदार सुन्दर फर्श बिछी है। पुरी के चारों ओर सुन्दर घेरा बना है, जिसमें सुन्दर रंग-बिरंगे कंगूरे बने हैं।

नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरा अमरावति आई ।।
महि बहु रंग रचित गच कांचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा ।।

मानो नव-ग्रहों ने सेना बनाकर अमरावती-को आकर घेर लिया हो। पृथ्वी पर अनेक भांति के रंग-बिरंगे कांच अर्थात रत्नों के फर्श बिछे हुए हैं, जिन्हें देखकर श्रेष्ठ मुनियों के मन भी नाच उठते हैं।

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुं रबि ससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥

स्वच्छ महल ऊपर आकाश को चूम रहे हैं, उनके कलश मानो चन्द्रमा और सूर्य की कान्ति की निन्दा करते हैं। बहुत सी मणियों से जड़ी हुई खिड़कियां सुशोभित हैं और घर-घर में मणियों के दीपक शोभायमान हैं।

छं०—मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे॥

महलों में मणियों के दीपक सुशोभित हो रहे हैं, मूंगों की बनी हुई देहलियां चमक रही हैं और मणियों के जड़े हुए खम्बे हैं। मर्कत-मणि से जड़ी हुई सोने की दीवारें मानो ब्रह्माजी ने बनाई हैं। सुन्दर मन्दिर लम्बे-चौड़े व मनोहर हैं। उनके आंगन स्फटिक मणियों के बने हैं और द्वार-द्वार पर सोने के किबाड़ हैं, जिनमें बहुत से हीरे जड़े हैं।

दो०—चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ॥ ४१॥

मनोहर चित्रशालायें घर-घर में हैं, जिनमें श्रीरामजी के चरित्र बड़ी सुन्दरता से अंकित हैं, देखते ही मुनियों के मन को हर लेते हैं॥४१॥

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भांति करि जतन बनाईं॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं॥

सभी ने फूलों की बगीचियां अनेक प्रकार से यत्न करके बनाई हैं, जिनमें बहुत भांति की सुन्दर सुहावनी बेलें सदैव बसन्त-ऋतु की भांति फूलती हैं।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर॥
नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए॥

जिस पर भौंरे मधुर गुञ्जार करते हैं, तीनों प्रकार की सुन्दर वायु सदैव बहती है। अनेक प्रकार के पक्षी जो बालकों ने पाले हैं, वे मीठी बोली बोलते और उड़ते हुए सुन्दर लगते हैं।

मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत॥
जहं तहं देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥

मोर, हंस, सारस और कबूतर महलों में बैठे हुए शोभा पाते हैं। जहां-तहां अपनी परछांई देखकर बहुत-सी बोली बोलते और नाचते हैं।

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जन पालक॥
राज दुआर सकल बिधि चारू। बीथीं चौहट रुचिर बजारू॥

बालक, तोता और मैंना को पढ़ाते हैं कि कहो राम ! रघुनाथ भक्त-जन पालक, राज द्वार सब ही प्रकार से सुन्दर हैं । गलियां, चौराहे और बाजार सब सुन्दर हैं ।

छं०—बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए ।
जहं भूप रमानिवास तहं की संपदा किमि गाइए ।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुं कुबेर ते ।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे ।।

बाजार की सुन्दरता कही नहीं जाती । यहां पर बिना मोल लिए वस्तुएं मिलती हैं । वहां स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहां की सम्पत्ति कैसे कही जा सकती है ? अनेक बजाज, सर्राफ आदि बणिक ऐसे बैठे हुए हैं, मानो साक्षात ही कुबेर हों, स्त्री-पुरुष, बालक, वृद्ध, सदाचारी सुखी तथा सुन्दर थे ।

दो०—उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर ।
बांधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर ।। ५० ।।

पुरी के उत्तर में निर्मल जल वाली गहरी नदी सरयू बह रही है । मनोहर घाट बने हैं । किनारे पर कीचड़ तनिक भी नहीं है ।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा । जहं जल पिअहिं बाजि गज ठाटा ।।
पनिघट परम मनोहर नाना । तहां न पुरुष करहिं अस्नाना ।।

कुछ दूर पर सुन्दर घाट है, जहां घोड़े और हाथियों के झुण्ड पानी पीते हैं, जल भरने के लिए बहुत ही मनोहर घाट बने हैं, वहां पुरुष स्नान नहीं करते ।

राजघाट सब बिधि सुंदर बर । मज्जहिं तहां बरन चारिउ नर ।।
तीर तीर देवन्ह के मंदिर । चहुं दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर ।।

राजघाट सभी भांति से सुन्दर तथा श्रेष्ठ है । जहां चारों वर्णों के मनुष्य स्नान करते हैं । सब घाटों के तट पर देवताओं के मन्दिर हैं, जिनके चारों ओर सुन्दर बगीचे हैं ।

कहुं कहुं सरिता तीर उदासी । बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी ।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई । बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ।।

कहीं-कहीं नदी किनारे विरक्त, ज्ञानी मुनि तथा सन्यासी निवास करते हैं । जहां-तहां उन सभी मुनियों के लगाये हुए बहुत प्रकार के अति सुहावने तुलसी के वृक्ष-समूह शोभायमान हो रहे हैं ।

पुर सोभा कछु बरनि न जाई । बाहेर नगर परम रुचिराई ।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा । बन उपबन बापिका तड़ागा ।।

पुरी की शोभा कुछ वर्णन नहीं की जा सलती है, नगर के बाहर भी बहुत शोभा है । अयोध्यापुरी के दर्शन करते ही सभी पाप भाग जाते हैं । वहां वन, उपवन, बावलियां और तालाब शोभायमान हैं ।

छं०—बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं ।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं ।।

बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं ॥

बहुत सुन्दर और विशाल बावली, तालाब, कुएँ शोभा दे रहे हैं, उनकी सुन्दर सीढ़ियां और निर्मल जल देखकर देवता और मुनि भी मोहित हो जाते हैं। तालाबों में अनेक रङ्ग के कमल खिल रहे हैं, भांति-भांति के पक्षी गूंज रहे हैं और भौंरे गुन्जार रहे हैं। सुन्दर बगीचों में कोयल आदि पक्षी मानो पथिकों को बुला रहे हों।

दो०—रमानाथ जहं राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ ॥ ५१ ॥

जहां लक्ष्मीपति भगवान राजा हों, क्या उस नगर का वर्णन किया जा सकता है? मणिमाणिक सिद्धियां और सुख सम्पत्ति पुरी में छा रही हैं।

जहं तहं नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं ॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि ॥

जहां-तहां मनुष्य बैठे हुए श्रीरामजी के गुण गा रहे हैं और परस्पर यही सिखला रहे थे कि शरणागत रक्षक व शोभा, शील, रूप और गुणों के धाम श्रीरामजी का भजन करो।

जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि ॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रनधीरहि ॥

कमल-नेत्र और श्याम शरीर वाले को भजो। नेत्र के पलक के समान अपने भक्त की रक्षा करने वाले प्रभु को भजो। सुन्दर धनुष-बाण और तरकश धारण करने वाले, सन्त रूपी कमल-वन के सूर्य रणधीर श्रीरामजी को भजो।

काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि ॥
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन सुखदातहि ॥

काल-रूपी भयंकर सूर्य के लिए गरुड़ के समान श्रीरामजी को सब कामना और ममता को त्याग कर नमस्कार करो। लोभ और मोह-रूपी मृगों के समूह के लिए किरात-रूप एवं कामदेव-रूपी हाथी के लिए सिंह के समान भक्त-सुखदाता श्रीरामजी को भजो।

संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि ॥
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि ॥

सन्देह और दुखरूपी अन्धकार के लिए सूर्य के समान और राक्षसी घने वन को भस्म करने के लिए अग्नि के समान श्रीरामजी को भजो। जानकीजी सहित श्रीरघुनाथजी का जो भव-भव को दूर करने वाले हैं, भजन क्यों नहीं करते?

बहु बासना मसक हिम रासिहि। सदा एक रस अज अबिनासिहि ॥
मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि ॥

अनेक प्रकार की चाहना रूपी मच्छरों के लिए तुषार की राशि के समान और सदा एक रस, अजन्मा, अविनाशी श्रीरामजी को भजो तथा मुनिजनों को आनन्द देने वाले और भूमि का भार उतारने वाले, तुलसीदास के स्वामी—उदार श्रीरामजी को भजो।

दो०—एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान ॥ ५२ ॥

इस प्रकार अयोध्यापुरी के स्त्री-पुरुष श्रीरामजी के गुनगान करते रहते हैं और कृपानिधान श्रीरामजी सब पर दया-भाव रखते हैं।

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा ॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुं लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका ॥

कागभुशुण्डिजी कहते हैं हे गरुड़जी ! जबसे श्रीराम के प्रताप-रूपी अति प्रबल सूर्य का उदय हुआ है, तब से तीनों लोकों में प्रकाश छा रहा हैं, परन्तु इससे बहुतों को सुख और बहुतों को शोक हुआ।

जिन्हहि सोक ते कहउं बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी ॥
अघ उलूक जहं तहां लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥

जिन्हें दुःख हुआ, उन्हें मैं वर्णन करता हूं। पहले तो अविद्या-रूपी रात्रि नष्ट हो गई, फिर पाप रूपी उल्लू जहां-तहां छिप गये और काम, क्रोध रूपी कुमुद मुरझा गये।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुं ओरा ॥

अनेक कर्म, गुण, काल और स्वभाव ये चकोर हैं, जो कभी सुख नहीं पाते। डाह, अभिमान, मोह और मद रूपी जो चोर हैं, उनका हुनर किसी ओर नहीं चलता।

धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना ॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका ॥

धर्म रूपी तालाब में ज्ञान विज्ञान रूपी अनेक तरह के कमल खिल उठे तथा सुख, सन्तोष, वैराग्य और ज्ञान इस चकवों का शोक दूर हो गया।

दो०—यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥ ५३ ॥

यह राम प्रताप रूपी सूर्य जिनके हृदय में जब प्रकाश करता है, तो पिछले वर्णित गुण बढ़ते हैं और पहले वर्णित दोष नाश को प्राप्त होते हैं ॥५३॥

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥
सुंदर उपबंन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए ॥

एक बार श्रीरामजी भाइयों सहित परम प्रिय हनुमानजी को साथ लेकर सुन्दर बगीचे देखने गये, वहां सब वृक्ष फल और नये पत्तों से युक्त थे।

जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए ॥
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना ॥

शुभ समय जानकर वहां सनकादिक मुनि आये, जो बड़े तेजस्वी, गुणवान्, शीलवान् तथा ब्रह्मानन्द में सदा लवलीन रहते हैं। देखने में तो बालक हैं, परन्तु हैं अति प्राचीन।

रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥
आसा बसन ब्यासन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहं सुनहीं ॥

मानो चारों वेद ही शरीर धारण किए हों। वे समदर्शी और भेद रहित हैं, दिशाएं ही उनके वस्त्र हैं। उनको एक ही व्यसन हैं कि जहां श्रीराम चरित की कथा होती है—वहां जाकर वे उसे सुनते हैं।

तहां रहे सनकादि भवानी। जहं घटसंभव मुनिबर ग्यानी ॥
राम कथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी ॥

हे भवानी! जहां ज्ञानी मुनिवर अगस्त्यजी थे, सनकादिक मुनि वहां गये थे। श्रेष्ठ मुनि ने वहां बहुत सी श्रीराम कथायें वर्णन की थीं, जो ज्ञान उत्पन्न करने में वैसे ही समर्थ हैं, जैसे अग्नि को उत्पन्न करने के लिए अरणी।

दो०—देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूंछि पीत पट प्रभु बैठन कहं दीन्ह ॥ ५४ ॥

सनकादिक मुनियों को आते देखकर श्रीरामजी ने प्रसन्न होकर दण्डवत की और कुशल पूछकर प्रभु ने बैठने के लिए अपना पीताम्बर बिछा दिया।

कीन्ह दंडवत तीनिउ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी ॥

फिर तीनों भाइयों ने हनुमानजी सहित दण्डवत की, तो सब बहुत प्रसन्न हुए, रामजी की अतुलित शोभा को देखकर मुनि उसी में मग्न हो गये और वे मन को न रोक सके।

स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन ॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं ॥

वे श्याम शरीर, कमल के समान नेत्र, सुन्दरता के स्थान तथा संसार के बन्धन के छुड़ाने वाले रूप को एकटक होकर देख रहे हैं, पलक नहीं लगाते और प्रभु दोनों हाथ जोड़े मस्तक झुका रहे हैं।

तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा ॥
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे ॥

श्रीरामजी ने उसकी यह दशा देखी कि नेत्रों से जल बह रहा है और शरीर पुलकित है, तब प्रभु ने हाथ पकड़कर मुनियों को बैठाया और अत्यन्त मनोहर वचन बोले

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा ॥
बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा ॥

हे मुनिश्वरो! सुनिए आज मैं धन्य हूं। आपके दर्शन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। सत्सङ्ग तो बड़े ही भाग्य से मिलता है, जिससे बिना परिश्रम ही संसार अर्थात जन्म-मृत्यु के चक्र नष्ट हो जाते हैं।

दो०—संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥ ५५ ॥

सतसङ्ग मोक्ष का और कामी का संग आवागमन का मार्ग है ऐसा सन्त, कवि, पंडित, वेद-पुराण और सद्ग्रन्थ कहते हैं।

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी ॥
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय ॥

प्रभु के वचन सुनकर चारों मुनि प्रसन्न होकर रोमांचित शरीर से स्तुति करने लगे हे भगवान् ! आप अनन्त और विकार रहित हैं। आपकी जय हो ! आप निर्दोष, अनेक रूप, एक अद्वितीय तथा दया से पूर्ण है।

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर ॥
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर ॥

हे निर्गुण ! आपकी जय हो ! हे गुणों के समुद्र, सुख के मन्दिर, सुन्दर तथा परम चतुर ! आपकी जय हो। हे लक्ष्मीपति ! आपकी जय हो। हे भूमि को धारण करने वाले अनुपम, अजन्मा, अनादि और शोभा की खान आपकी जय हो।

ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद ॥
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन ॥

आप ज्ञान-विज्ञान, मान रहित और प्रतिष्ठा देने वाले हैं। आपके पवित्र यश को पुराण और वेद वर्णन करते हैं। आप तत्व के जानने वाले, कृतज्ञ और अज्ञान को दूर करने वाले हैं। आपके नाम अनेक हैं, तो भी आपका नाम और माया से रहित है।

सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुं परिपालय ॥
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय ॥

आप सर्वरूप, सब में व्याप्त और सबके हृदय में वास करते हैं, अतः आप सदा हमारा पालन कीजिए। आप द्वन्द्व, विपत्ति और संसार के बन्धन को काटिए। हे रामजी ! आप हमारे हृदय में बस-कर काम और मद को दूर कर दीजिए।

दो०—परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ॥ ५६ ॥

हे परमानन्द ! हे कृपा के नाथ ! हे मन की कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्रीराम ! आप हमको अविचल प्रेम-भक्ति दीजिए ॥५६॥

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि ॥
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु ॥

हे श्रीरघुवीरजी ! आप हमको अपनी अति पवित्र, तीनों प्रकार के तापों को और संसार के क्लेशों को नाश करने वाली भक्ति दीजिये। हे शरणागतों की कामना पूर्ण करने को कामधेनु और कल्पवृक्ष रूप प्रभु ! आप प्रसन्न होकर यही वरदान दीजिये।

भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुखदायक ॥
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय ॥

हे रघुनायक ! आप संसार रूपी समुद्र को सुखाने के लिए अगस्त्य ऋषि के समान हैं।

आप सेवा से सुलभ और सुखदायक हैं, अतः मानस-जन्म के दुःखों को दूर कीजिए। हे दीनबन्धु! हमें सम-दृष्टि दीजिए।

आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक॥
भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी॥

आप आशा, भय और ईर्शा आदि से छुड़ाने वाले तथा विनय, विचार और वैराग्य फैलाने वाले हैं। हे राजशिरोमणि! व पृथ्वी के भूषण! संसार रूपी नदी के लिए नौका रूप अपनी भक्ति दीजिए।

मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज संकर॥
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक॥
तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन॥

हे मुनियों के मनरूपी मान सरोवर के हंस! ब्रह्माजी और महादेवजी आपके चरण-कमलों की वन्दना करते हैं। आप रघुवंश की ध्वजा, वेद की मर्यादा के रक्षक तथा काल, कर्म, स्वभाव और गुण के रक्षक हैं। आप तरन तारन और सब दोषों को हरने वाले हैं। तीनों लोकों के भूषण आप ही तुलसीदास के प्रभु हैं।

दो०—बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ॥ ५७॥

प्रेम सहित सिर नवाकर बारम्बार स्तुति करके और अत्यन्त मनचाहा वरदान पाकर सनकादिक मुनि ब्रह्मलोक को गये।

सनकादिक बिधि लोक सिधाए। भ्रातन्ह राम चरन सिरु नाए॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं॥

सनकादिक मुनि ब्रह्मलोक को चले गये। तब तीनों भाइयों ने श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाये। वे प्रभु से पूछते हुए सकुचाते हैं इस कारण सब हनुमानजी की ओर देख रहे हैं।

सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी॥
अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना॥

वे प्रभु के श्रीमुख की वाणी सुनना चाहते हैं, जिसके सुनने से सब भ्रम दूर हो जाते हैं। अन्तर्यामी प्रभु से सब बात जान ली और बोले- कहो, हनुमानजी! क्या बात है?

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता॥
नाथ भरत कछु पूंछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं॥

तब हनुमानजी ने हाथ जोड़कर कहा हे दीनदयालु भगवान! सुनिये, हे स्वामी! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करते हुए सकुचाते हैं।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारित हरना॥

प्रभु बोले हे हनुमान! तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो भरत के और मेरे बीच में कभी अन्तर नहीं है। प्रभु के ऐसे वचन सुनकर भरतजी ने चरण पकड़ लिए और कहा हे नाथ शरणागतों के दुःख हरने वाले! सुनिये।

दो०–नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुं सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह ॥ ५८ ॥

हे स्वामी ! मुझे स्वप्न में कुछ सन्देश, दुःख और मोह नहीं है। हे कृपा और आनन्द के समूह प्रभो ! यह केवल आप की ही कृपा है।

करउं कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ॥
संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई ॥

हे दयानिधान ! मैं सेवक हूं और आप सेवक सुख दाता हैं। इस कारण मैं एक ढिठाई करता हूं। हे रघुनाथजी ! सन्तों की महिमा बहुत से वेद और पुराणों ने गाई है।

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ॥
सुना चहउं प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन ॥

और आपने भी अपने मुखारविंद से उसकी बड़ाई की है तथा उन पर आपकी प्रीति भी बहुत है। हे स्वामी ! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूं दयासिंधु ! आप गुण-ज्ञान में निपुण हैं।

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ॥

हे शरणागत पालक, सन्त और असन्त दोनों के भेद अलग-अलग समझाकर मुझसे कहो। श्रीरामजी बोले सुनो भाई, सन्तों के लक्षण असंख्य हैं जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं।

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटत परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥

सन्त और असन्तों की ऐसी करनी है जैसे चन्दन व कुल्हाड़ी की होती है। हे भाई सुनो, कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है, तो चन्दन उसे अपना गुण देकर सुगन्धित कर देता है।

दो०–ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड ॥ ५१ ॥

इसी से चन्दन देवताओं के मस्तक पर चढ़ता है और जगत को प्यारा है और कुल्हाड़ी का मुख अग्नि में गरम करके घन से पीटा जाता है, उसे यह दण्ड मिलता है ॥ ५६ ॥

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी ॥

सन्त जन विषयों से दूर और शील तथा गुणों की खान होते हैं। वे पराये दुख से दुखी और पराये सुख को देख सुखी होते हैं। समतर रहते हैं इसी से उनका कोई शत्रु नहीं होता, वे घमण्ड रहित विरक्त होते हैं तथा लालच, आनन्द और भय को त्याग देते हैं।

कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥

उनका चित्त कोमल होता है, वे दीनों पर दया करते हैं व मन, बचन, कर्म से भक्त होते हैं। वे सबको मान देते हैं और स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत, वे मुझे प्राण के तुल्य प्रिय हैं।

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री॥

वे कामनाओं से रहित मेरा नाम जपते हैं वे शान्ति, वैराग्य नम्रता तथा प्रसन्नता के घर होते हैं। उनमें शीतलता, सरलता, मित्रता और ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम होता है जो धर्म को उत्पन्न करने वाला है।

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहुं नहिं बोलहिं॥

हे भाई, ये सब लक्षण जिनके हृदय में बसते हैं, उनको सदैव सच्चा संत जानना। जो सम, दम, नियम और नीति से चलायमान नहीं होते हैं और मुख से कभी कड़वे वचन नहीं बोलते हैं।

दो०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज॥ ६०॥

जिनको निन्दा और स्तुति दोनों समान हैं मेरे चरण कमलों में जिनका प्रेम है, वे गुणों के मन्दिर और सुख के समूह सन्त मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं॥ ६०॥

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुं संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥

अब असन्तोष का स्वभाव सुनो, उनकी सङ्गति कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिए उनकी सङ्गति सदा दुःख देने वाली है, जैसे कपिला गाय को हरहाई गाय संगति से नष्ट कर डालती है।

खलन्ह हृदयं अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहं कहुं निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुं परी निधि पाई॥

दुष्ट मनुष्यों के मन में बड़ी जलन होती हैं, वे सदैव पराई सम्पदा से जला करते हैं। वे जहां कहीं दूसरों की निन्दा सुनते हैं, वहां ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानो पड़ी सम्पत्ति पाई हो।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥

वे काम, क्रोध, मद व लोभ में लिप्त तथा निर्दयी, कपटी खोटे और मन में मैल होते हैं। बिना कारण ही सबसे वैर करते हैं, जो भलाई करता है वे उसके साथ भी बुराई करते हैं।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥

उनका झूठा ही लेना झूठा ही देना खाना और झूठा ही चबेना होता है ऊपर से तो वे ऐसे मीठे वचन बोलते हैं, जैसे मोर मीठे स्वर से कुहकता है परन्तु उनका हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह अत्यन्त विषैले सांप को खा जाता है।

दो०—पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पांवर पापमय देह धरें मनुजाद॥ ६१॥

जो दूसरों से द्रोह करते हैं व पराई स्त्री, पराये धन और पराई निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे नीच, पापी देह धारण किये हुए राक्षस ही हैं।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥

लालच ही उनका ओढ़ना और बिछौना है, वे मैथुन और उदर-पूर्ति की चिन्ता में ही लगे रहते हैं, उनको यमपुरी का भय नहीं होता। यदि वे किसी की प्रशंसा सुन पाते हैं तो ऐसे श्वांस लेते हैं, मानो जूड़ी आ गई हो।

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुं जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥

वे जब किसी पर विपत्ति देखते हैं, तो ऐसे सुखी होते हैं कि मानो जगत के राजा हो गये हों, वे अपने स्वार्थ में लीन, कुटुम्ब-विरोधी, ठग कामी, लोभी और क्रोधी होते हैं।

मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा॥

माता-पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हैं ही, दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोह के वश दूसरों से द्रोह करते हैं। सन्त-जनों की संगति और भगवान की कथा उन्हें अच्छी नहीं लगती।

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियं धरें सुबेषा॥

वे अवगुणों के समुद्र, मन्द-बुद्धि, कामी, वेदों के निन्दक और पराये धन के स्वामी बन जाते हैं। वे विशेष करके ब्राह्मणों और देवताओं से द्वेष करने वाले, पाखण्ड और कपट हृदय में भरे हुए और ऊपर से अच्छा वेष बनाये हुए रहते हैं।

दो०—ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेतां नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥ ६२॥

ऐसे नीच और खोटे मनुष्य सतयुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़े से होंगे और कलियुग में बहुत होंगे॥ ६२॥

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउं तात जानहिं कोबिद नर॥

हे भाई दूसरे के उपकार के बराबर धर्म नहीं है, दूसरों को कष्ट देने के बराबर नीचता नहीं है। हे तात! सब पुराण और वेदों का यह निर्णय मैंने तुमसे कहा है। सन्त लोग इसको जानते हैं।

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥

मनुष्य देह धारण कर दूसरों को क्लेश देते हैं, वे जगत में आकर बड़े कष्ट भोगते हैं जो मनुष्य स्वार्थ में लीन और मोह के अधीन होकर अनेकों पाप करते रहते हैं, उनका परलोक नष्ट हो जाता है।

कालरूप तिन्ह कहं मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहिसंसृत दुख जाने॥

हे भाई! उन दुष्टों के लिए मैं काल-रूप हूं और उनके कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे कर्मों का फल देने वाला हूं। ऐसा समझकर जो परम चतुर हैं, वे संसार को दुःखमय समझकर मेरा भजन करते हैं।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहिं सुर नर मुनि नायक॥
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥

शुभ और अशुभ फल देने वाले कर्मों को त्याग कर वह देवता, मनुष्य और मुनियों के स्वामी मुझको भजते हैं। यह सन्त-असन्तों के लक्षण मैंने कहे, इसको जिन्होंने समझ रखा है, वह संसार-रूपी बन्धन में नहीं फंसते।

दो०—सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥ ६३॥

हे भाई! सुनो, माया के बनाये हुए गुण और दोष बहुत हैं। गुण इसी में है कि दोनों ही न देखे जायें, उनको देखना ही अज्ञान है।

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदयं समाई॥
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हियं हरष अपारा॥

प्रभु के श्रीमुख से यह वचन सुनते ही भरतजी आदि सभी भाई प्रसन्न हो गये। प्रेम उनके हृदय में नहीं समाता है। वह बार-बार बहुत ही विनती करते हैं, तब हनुमानजी के हृदय में भी अति हर्ष हुआ।

पुनि रघुपति निज मंदिर गए। एहि बिधि चरित करत नित नए॥
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं॥

फिर वहां से श्रीरामजी अपने महल में गये। इस तरह वह नित्य नये चरित्र करते हैं। नारदजी बारंबार आते हैं और श्रीरामजी के पवित्र चरित्र गाते हैं।

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गावहिं॥

मुनि नित्य नये चरित्र देख जाते हैं और सब कथा ब्रह्मलोक में जाकर कहते हैं। उसे सुनकर ब्रह्माजी बहुत सुख पाते हैं। हे तात, बारंबार राम गुण-गान करो।

सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी॥

सनकादि मुनि यद्यपि ब्रह्म-ज्ञानी हैं, लेकिन वे भी नारदजी की सराहना करते रहते हैं और गुण-गान सुनकर समाधि को भुला देते हैं और उसे आदर से सुनते हैं, वही श्रेष्ठ अधिकारी हैं।

दो०—जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथां न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान॥ ६४॥

जीवन-मुक्त और ब्रह्म-परायण सनकादि जैसे मुनि भी ब्रह्म ध्यान छोड़कर श्रीरामजी के चरित्र सुनते हैं। ऐसी श्रीहरि-कथा में जो प्रीति नहीं करते, उनके हृदय पत्थर के तुल्य हैं।

एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए॥
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन॥

एक बार श्रीरघुनाथजी ने गुरु, ब्राह्मण व नगरवासियों को बुलाया, वे सब सभा में आये, जब गुरु, ब्राह्मण, मुनि, सज्जन सब बैठ गये, तब भक्तों के भय को दूर करने वाले प्रभु बोले –

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउं न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥

हे नगरवासियों, मेरी बात सुनो। मैं हृदय में कुछ ममता लाकर यह नहीं कहता। इसमें न अनीति है, न कुछ प्रभुता ही है। मेरी बात सुन लो, फिर जो तुम्हें अच्छा लगे, सो करना।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

वही मेरा सेवक है और वही मेरा प्रिय है, जो मेरी आज्ञा माने। यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूं, तो हे भाई, भय छोड़कर मुझे रोक देना।

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक संवारा॥

बड़े भाग्य से मनुष्य शरीर मिलता है। यह देवताओं को भी दुर्लभ है सब ग्रन्थों ने भी ऐसा कहा है। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक नहीं सुधारा –

दो०–सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥ ६५॥

वह परलोक में दुःख पाता है और काल, कर्म और ईश्वर को झूठा दोष लगाकर सिर पीट-पीट कर पछताता है।

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयं मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

हे भाई, इस शरीर का फल विषय-भोग नहीं है। स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्त में दुःखदायी है। मनुष्य शरीर पाकर जो विषयों में मन लगाते हैं, वे मूर्ख अमृत के बदले विष लेते हैं।

ताहि कबहुं भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परम मनि खोई॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥

उसे कोई भी भला नहीं कहता, जो पारस-मणि को त्यागकर बदले में घुंघची से ले लेता है। अविनाशी जीव चार खानों और चौरासी लाख योनियों में घूमता है।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुंक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

और सदा मायावश, काल, स्वभाव व गुणों से घिरा हुआ घूमा करता है। कभी कृपा करके बिना ही हेतु स्नेह करने वाला परमात्मा उसे मनुष्य देह दे देता है।

नर तनु भव बारिधि कहुं बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

इस संसार-सागर में मनुष्य शरीर जहाज के तुल्य है और मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है सदगुरु इस दृढ़ नाव का केवट है। इस प्रकार यह जीव दुर्लभ साधन सहज ही पा गया है।

दो०—जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥ ६६॥

ऐसे साधन को पाकर भी जो मनुष्य भवसागर के पार नहीं जाता, वह मन्द-बुद्धि, कृतघ्न, आत्म-हत्या करने वाले की गति को पाता है।

जौं परलोक इहां सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयं दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥

यदि परलोक व इस लोक में सुख चाहते हो तो मेरे वचन सुनकर हृदय में दृढ़ता से रखो। हे भाइयों! पुराण और वेदों में मेरी भक्ति को सहज और सुखदायक मार्ग कहा गया है।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुं टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥

ज्ञान अगम है, उसकी प्राप्ति में अनेक विघ्न हैं। उसका साधन भी कठिन है, क्योंकि उसमें मन के लिए कोई आधार नहीं है। यदि बहुत कष्ट उठाकर कोई उसे पा भी लेता है, तो बिना भक्ति के वह भी मुझे प्रिय नहीं लगता।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंगति न पावहिं पानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुखों की खान है, परन्तु बिना सत्संग के प्राणी उसे पा नहीं सकते हैं और सन्तजन बहुत से पुण्यों के बिना नहीं मिल सकते। सत्संग ही आवागमन का अन्त करता है।

पुन्य एक जग महुं नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥

ससार में पुण्य एक ही है दूसरा नहीं, वह है कि मन, कर्म और बचन से ब्राह्मणों की पूजा करना। उस पर मुनि और देवता सदैव प्रसन्न रहते हैं, जो कपट त्याग कर ब्राह्मणों के सेवक हैं।

दो०—औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउं कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥ ६७॥

और भी एक गुप्त मत है, उसे हाथ जोड़कर आपको सुनाता हूं कि शिवजी के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पा सकता।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥

कहिए भक्ति-मार्ग में कौन सा परिश्रम है न इसमें योग है, न यज्ञ है, न जप है, न तप है और न व्रत है। सरल स्वभाव रखे, मन में कुटिलता न रखे और जो कुछ मिल जाय, उसी में सदैव सन्तोष रखे।

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउं का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥

जो मनुष्य मेरा भक्त होकर दूसरों की आशा करे तो फिर उसका विश्वास ही क्या हुआ। अधिक बात बढ़ाकर क्या कहूं? हे भाइयों! मैं तो उसी आचरण के वश में हूं।

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥

किसी का किसी से वैर, झगड़ा, आशा और डर नहीं है, उसके लिए सदैव सब दिशायें सुखमयी हैं, जो कोई फल की इच्छा से काम नहीं करता, जिसके डर, मान तथा क्रोध नहीं है, जो चतुर और ज्ञानवान हैं।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥

जो सत्संग से सदा प्रीति रखता है, जो सांसारिक सुख और स्वर्ग व मोक्ष को भी तृण के समान समझता है, जो भक्ति-पक्ष में हठ करता है और मूर्खता नहीं करता, सब कुतरकों को जिसने दूर भगा दिया है।

दो०—मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥ ६८॥

जो मेरे गुण-समूह और नाम में रत हैं और जो ममता, मद और अज्ञान से रहित हैं, उसके सुख को वही जानता है, जो परमानन्द में मग्न है।

सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबनि पद कृपाधाम के॥
जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे॥

श्रीरामजी के अमृत-तुल्य वचन को सुनते ही सबने कृपानिधान के चरण कमल पकड़ लिए और कहा हे दयानिधान! आप हमारे माता पिता, गुरु और बन्धु के समान हैं तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी॥
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥

हे रामजी! हमारे शरीर, धन, घर और सब प्रकार के हित करने वाले आप ही हैं। आप शरणागतों के दुःख हरने वाले हैं, आपके सिवा हमको ऐसी सीख कोई नहीं दे सकता, माता पिता भी स्वार्थी हैं।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुं प्रभु परमारथ नाहीं॥

हे असुरों के शत्रु ! आप और आपके सेवक बिना प्रयोजन के ही संसार का उपकार करते हैं। जगत में सभी स्वार्थ के मित्र हैं। हे प्रभो ! परमार्थ स्वप्न में भी कहीं है।

सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयं हरषाने॥
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरतन प्रभु बतकही सुहाई॥

सबके प्रेम-रस में भरे वचन सुनकर श्रीरामजी हर्षित हुए। सब आज्ञा पाकर प्रभु के सुहावने उपदेश वर्णन करते हुए अपने-अपने घरों को चले।

दो०—उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहं भूप॥ ६९॥

शिवजी बोले हे उमा ! अवधवासी सब स्त्री-पुरुष पुण्य-रूप हैं, जहां स्वयं ब्रह्म-स्वरूप सच्चिदानन्द श्रीरामजी राजा हों।

एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहां राम सुखधाम सुहाए॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा॥

एक दिन सुख के धाम श्रीरामजी जहां थे, वहां मुनि वशिष्ठजी पधारे। श्रीरामजी ने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर चरणामृत लिया।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोहे मम हृदयं अपारा॥

मुनि हाथ जोड़कर बोले—हे दयासागर श्रीरामजी ! मेरी कुछ प्रार्थना सुनिये। आपके आचरण को देखकर मेरे मन में अपार मोह होता है।

महिमा अमिति बेद नहिं जाना। मैं केहि भांति कहउं भगवाना॥
उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा॥

हे भगवन् ! आपकी महिमा अपार है, उसको वेद भी नहीं समझ सकते तो मैं किस प्रकार से उसको कह सकता हूं ? पुरोहित कर्म तो बहुत ही नीच है। वेद, पुराण तथा स्मृतियों ने भी इसकी निन्दा की है।

जब न लेउं मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा॥

इसे जब मैं लेना चाहता था, तब ब्रह्माजी ने मुझसे कहा था—हे पुत्र ! आगे तुमको इस कार्य से लाभ होगा। स्वयं परम-पिता परमात्मा मनुष्य-रूप धारण कर रघुकुल के भूषण महाराज होंगे।

दो०—तब मैं हृदयं बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुं करिअ सो पैहउं धर्म न एहि सम आन॥ ७०॥

उस समय मैंने अपने मन में सोचा कि जिसके निमित्त योग्य जप और दान किये जाते हैं, उसे मैं पाऊँगा । तब तो इसके बराबर कोई धर्म नहीं है ।

जप तप नियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुख कर्मा ॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन । जहं लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ॥

जप, तप, नियम, योग, व्रत, स्वधर्म, वेदों से उत्पन्न बहुत भांति के कर्म, ज्ञान, दया, संयम, तीर्थ स्नान आदि जिन धर्मों को वेद और सज्जनों ने जहां तक रहा है ।

आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ॥

अनेक शास्त्र और वेद-पुराणों के पढ़ने और सुनने का । हे स्वामिन ! फल यही एक है कि आपके चरणारविन्दों में सदा प्रेम रहे और सम्पूर्ण साधनों का यही उत्तम फल है ।

छूटइ मल कि मलहि के धोएं । घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएं ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभिअंतर मल कबहुं न जाई ॥

क्या मैल से धोने पर मैल छटता है और पानी को मथकर क्या कोई घी निकाल सकता है ? हे रामजी ! स्नेह पूर्ण भक्ति-रूपी जल के बिना हृदय का मैल कभी नहीं जा सकता है ।

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित । सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित ॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाकें पद सरोज रति होई ॥

वही सर्वज्ञ हैं, वही तत्व ज्ञानी है, वही गुणवान और वही पूर्ण विज्ञानवान है, वही प्रवीण और लक्षण सम्पन्न है, जिसका आपके चरण-कमलों में प्रेम हो ।

दो०—नाथ एक बर मागउं राम कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुं घटै जनि नेहु ॥ ७१ ॥

हे प्रभु श्रीरामजी ! मैं एक वरदान मांगता हूं, कृपा करके देखिए । प्रभु के चरण-कमलों में जन्मान्तर मेरा स्नेह कभी कम न हो ।

अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आए । कृपासिंधु के मन अति भाए ॥
हनूमान भरतादिक भ्राता । संग लिए सेवक सुखदाता ॥

ऐसे वचन कहकर मुनि वशिष्ठजी अपने घर को चले गये । वे दया के सागर रामजी मन को अच्छे लगे, फिर सेवकों को सुख देने वाले श्रीरामजी ने हनुमानजी और भरतजी आदि भाइयों को साथ लिया ।

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए । गज रथ तुरग मगावत भए ॥
देखि कृपा करि सकल सराहे । दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे ॥

फिर कृपालु रामजी पुर के बाहर गये । वहां पहुंचकर हाथी, रथ, घोड़े मंगवाये । उन्हें देखकर दया करके प्रभु ने सबकी बड़ाई की फिर उचित रीति से जो-जो चाहा, उसे वही दिया गया ।

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहां सीतल अवंराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥

संसार के सम्पूर्ण श्रम को हरने वाले प्रभु श्रीरामजी श्रम पाकर वहां गये, जहां शीतल अमरावती थी। भरतजी ने वहां अपना वस्त्र बिछा दिया। प्रभु उस पर बैठ गये, तब सब उनकी सेवा करने लगे।

मारुत सुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥
हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

तब हनुमानजी पुलकित देह से आंखों में जल भरकर हवा करने लगे। हनुमानजी के बराबर न तो कोई बड़भागी है और न श्रीरामजी के चरणों का प्रेमी ही है। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! उनकी प्रीति और सेवा बार-बार प्रभु ने मुख से सराही है।

दो०—तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन॥ ७२॥

उस समय वीणा हाथ में लिए नारद मुनि आये। वे श्रीरामजी की सुन्दर और नित्य नूतन सुकीर्ति गाने लगे।

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदयं कंज मकरंद मधुप हरि॥

कृपादृष्टि से शोक को छड़ाने वाले हे कमल नयन! मेरी ओर निहारिये। हे हरि! आप नील-कमल के समान श्याम वरण व कामदेव के शिवजी के हृदय कमल के मकरन्द को पान करने वाले भ्रमर हैं।

जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन ग्राहक॥

आप राक्षस सेना के वंश का नाश करने वाले, मुनि और सज्जनों को आनन्द देने वाले तथा पापों को नष्ट करने वाले ब्राह्मण-रूपी खेती के लिए आप मेघ समूह हैं और अशरण को शरण, दीनजनों को ग्रहण करने वाले हैं।

भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित॥
रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर॥

अपने बाहुबल से पृथ्वी का भार उतारने वाले खरदूषण और त्रिशरा को मारने में प्रवीण, रावण के शत्रु, सुख रूप, राजाओं में श्रेष्ठ तथा दशरथ कुलरूपी कुमुदनी के चन्द्रमा श्रीरामजी आपकी जय हो।

सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम॥
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन॥
कलि मल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन॥

आपका सुन्दर यश पुराणों और वेद शास्त्रों में प्रसिद्ध है। देवता, मुनि और सज्जन उसे गाते हैं। आप करुणानिधान, झूठे अभिमान को दूर करने वाले, सब प्रकार से कुशल और अयोध्या के भूषण हैं। आपका नाम कलियुग के पापों को मथने वाला और ममता को मारने वाला है। तुलसीदास के प्रभु मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये।

दो०—प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयं धरि गए जहां बिधि धाम॥ ७३॥

नारद जी प्रेम सहित श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का वर्णन करके तथा शोभा के सागर को हृदय में रखकर जहां ब्रह्मलोक है, वहां चले गये।

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा॥
राम चरित सत कोठि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा॥

हे पार्वती! सुनो, यह मनोहर राम कथा जैसी मेरी बुद्धि थी, वैसी मैंने पूरी कही। श्रीरामजी के सौ करोड़ अपार चरित्र हैं जिन्हें वेद और सरस्वती जी भी कहकर पार नहीं पा सकते।

राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नमानी॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं॥

श्रीराम जी अनन्त हैं, उनके गुण अनन्त हैं, जन्म-कर्म और नाम अनन्त हैं। जल की बूंदें और पृथ्वी की रेणु चाहे गिनी जा सकती हैं परन्तु रामजी के चरित्र वर्णन करने से समाप्त नहीं होते हैं।

बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी॥
उमा कहिउं सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥

यह पवित्र राम कथा हरिपद देने वाली है, इसे सुनकर अविचल भक्ति प्राप्त होती है। हे उमा! मैंने यह सुन्दर कथा कही, जो कागभुशुण्डि ने गरुड़जी को सुनाई थी।

कछुक राम गुन कहेउं बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी॥
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउं राम गुन भव भय हारी॥

मैंने थोड़े रामगुण बखान कर कहे हैं, अब हे भवानी! क्या सुनाऊं सो कहो? पार्वतीजी पवित्र राम कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुयीं और बहुत विनम्र और कोमल वाणी बोलीं हे शिवजी! बारम्बार मैं धन्य हूं, जो संसार के भय को दूर करने वाले श्रीरामचन्द्रजी के गुण मैंने सुने।

दो०—तुम्हरी कृपां कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउं राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह॥ ७४॥

हे कृपानिधान! मैं आपकी दया से कृतकृत्य हो गई। मेरा मोह जाता रहा और हे प्रभु! सच्चिदानन्द घन श्रीरामजी का प्रताप मैंने जान लिया।

नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर॥ ७५॥

हे नाथ ! हे धीर बुद्धि ! आपका मुख-रूपी चन्द्रमा राम कथा-रूपी अमृत टपकाता है। कर्णपुटी से उसे पान करके भी मेरा मन नहीं अघाता।

राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥

श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र सुनकर जो अघा जाते हैं उन्होंने राम कथा का विशेष रस जाना ही नहीं। जो जीवन्मुक्त महामुनि हैं, वे ही सदैव मन लगाकर भगवान के गुण सुनते हैं।

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहं दृढ़ नावा॥
बिषइन्ह कहं पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥

जो प्राणी भवसागर से पार जाना चाहे तो उसके लिए राम कथा दृढ़ नौका है। विषयी लोगों को भी यह राम गुण समूह कानों को सुख देने वाला और मन को विश्राम देने वाला है।

श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं॥
ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती॥

ऐसे कान वाले कौन हैं जिन्हें रामचन्द्रजी के चरित्र अच्छे नहीं लगते ? वे प्राणी जड़ हैं और अपनी आत्मा के घातक हैं जिन्हें रामचन्द्रजी की कथा नहीं सुहाती है।

हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा॥
तुम्ह जो कही यह कथा सुनाई। कागभसुंडि गरुड़ प्रति गाई॥

आपने रामचरितमानस का गान किया, उसे सुनकर हे नाथ ! मैंने बहुत ही सुख पाया। यह जो आपने कहा कि यह मनोहर कथा कागभुशुण्डिजी ने गरुड़ से कही थी।

दो०—बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह॥ ७६॥

जो बैराग्य और ज्ञान-विज्ञान में दृढ़ हैं और रामजी के चरणों में जिनका अत्यन्त स्नेह है ऐसे कागभुशुण्डिजी कौए का शरीर है और रामजी की भक्ति भी उन्हें प्राप्त है। यह मुझे बड़ा सन्देह है।

नर सहस्र महुं सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी॥
धर्मसील कोटिक महं कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥

हे शिवजी ! सुनिये, हजारों पुरुषों में कोई एक ही धर्म व्रत धारण करने वाला होता है और हजारों धर्मशीलों में से विषय त्यागी और बैरागी कोई एक ही होता है।

कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥
ग्यानवंत कोटिक महं कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥

वेदों में कहा है कि करोड़ों विरक्तों में पूर्ण ज्ञान कोई एक ही पाता है और करोड़ों ज्ञानवानों में कोई एक ही जीवन्मुक्त होता है, जगत में कोई विरला ही ऐसा होगा।

तिन्ह सहस्र महुं सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥

हजारों जीवन्मुक्त में सुख की खान, ब्रह्म में लीन, ज्ञानी पुरुष और भी दुर्बल है। धर्मशील, विरक्त, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन ये सब एक से एक बढ़कर हैं।

सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥
सो हरि भगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई॥

हे देवोत्तम, जो मद और माया से रहित होकर राम भक्ति में प्रीति करता है, वह इन सबसे दुर्लभ है। ऐसो हरि भक्ति कागभुशुण्डिजी ने कैसे पाई ? हे विश्वनाथ, सो मुझे समझाकर कहिए।

दो०–राम परायन ग्यान रत गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर॥ ७७॥

हे नाथ, श्रीराम के भक्त, ज्ञान के भण्डार, गुण निधान, स्थिर बुद्धि प्राणी ने कौए की देह किस कारण से पाई सो कहिए।

यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहं पावा॥
तुम्ह केहि भांति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी॥

प्रभु रामजी का यह पवित्र सुन्दर चरित्र कौए ने कैसे पाया ? हे कृपालु, यह मुझसे कहिए और हे कामदेव शत्रु, आपने किस भांति से सुना सो कहिये। यह मुझे बड़ा अचम्भा सा है।

गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी॥
तेहिं केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई॥

गरुड़जी तो महा ज्ञानी, गुणवान, हरि के सेवक और बहुत ही समीप रहने वाले हैं फिर किस कारण से उन्होंने मुनियों को छोड़कर कौए से जाकर कथा सुनी।

कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरि भगत काग उरगादा॥
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई॥

कागभुशुण्डिजी और गरुड़ इन दोनों भक्तों का संवाद किस विधि से हुआ सो कहिये। पार्वतीजी की सीधी और सुहावनी वाणी सुनकर शिवजी प्रसन्न होकर आदर सहित बोले –

धन्य सती पावन मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा॥
उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा॥

हे पार्वती, तुम धन्य हो, तुम्हारी बुद्धि निर्मल है। श्रीरामजी के चरणों में भी तुम्हारी बहुत प्रीति है अब यह अति पवित्र इतिहास सुनो जिसे सुनकर सब सन्देह दूर हो जाता है रामजी के चरणों में विश्वास होता है और बिना प्रयास के ही मनुष्य संसार सागर से पार हो जाता है।

दो०—ऐसिअ प्रसन्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउं सुनहु उमा मन लाइ॥ ७८॥

ऐसे ही कागभुशुण्डिजी से गरुड़जी ने जाकर पूछा था। वह सब आदर पूर्वक कहता हूं। हे पार्वती, मन लगाकर सुनो।

मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि॥
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा॥

हे सुमुखी, हे सुलोचनी ! संसार से छड़ाने वाली कथा जिस तरह से मैंने सुनी, वह प्रसंग सुनो। पहले दक्ष के घर तुम्हारा नाम सती था।

दच्छ जग्य तव भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा॥

दक्ष-यज्ञ में जब तुम्हारा अपमान हुआ तब बहुत क्रोध करके तुमने प्राण त्याग दिये थे और मेरे गणों ने यज्ञ विध्वंस कर डाला था। वह सब प्रसंग तुम जानती ही हो।

तब अति सोच भयउ मन मोरें। दुखी भयउं बियोग प्रिय तोरें॥
सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउं बेरागा॥

उस समय मेरे जी में अत्यन्त शोक हुआ हे प्रिय ! तुम्हारे बिछोह से मैं दुःखी हो गया। मैं विरक्त होकर सुन्दर वन, पर्वत, नदी, तालाबों के कौतुक देखता फिरता था।

गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी॥
तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरें मन भाए॥

सुमेरु पर्वत के उत्तर में दूर अति मनोहर एक नील पर्वत है। चार सुन्दर स्वर्णमय शिखर हैं। वे मेरे मन को बहुत अच्छे लगे।

तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला॥
सैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा॥

उन शिखरों पर एक-एक वृक्ष बड़, पीपल, पाकर व आम के हैं। पर्वत के ऊपर एक मनोहर तालाब सुशोभित है, सीढ़ियों में मणि जड़ी देखकर मेरा मन मोहित हो गया।

दो —सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग॥ ७९॥

उसका ठण्डा, निर्मल, मीठा जल था उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले थे। हँस मधुर शब्द कर रहे थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे।

तेहिं गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कल्पांत न होई॥
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका॥

उस पर्वत पर वह पक्षी बसता है। इसका नाश कल्पान्त में भी नहीं होता। माया कृत अनेक गुण, दोष और मोह व काम आदि कुविचार।

रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुं नहिं जाहीं ॥
तहं बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा ॥

जो संसार में फैल रहे हैं, ये उस पर्वत के निकट भी नहीं जाते। वहां रहकर वह काग जैसे श्रीहरि को भजता है सो हे उमा! प्रेम से सुनो।

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई ॥
आंब छांह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा ॥

वह पीपल के नीचे ध्यान लगाता है, पाकर के नीचे यज्ञ करता है, आम की छाया में मानसिक पूजा करता है। हरि भजन को छोड़कर उसको दूसरा कोई काम नहीं।

बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा ॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना ॥

बरगद के नीचे श्रीहरि की कथा का प्रसंग कहता है। अनेक पक्षी वहां आते और कथा सुनते हैं। श्रीराम-चरित्र के विविध साधनों को बस प्रेम पूर्वक आदर सहित गान करता है।

सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहिं ताला ॥
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा ॥

निर्मल बुद्धि वाले सब हंस, जो सदैव उस तालाब पर बसते हैं, उसे सुनते हैं, जब वहां पहुंचकर मैंने यह कौतुक देखा तो मेरे हृदय में विशेष आनन्द हुआ।

दो०—तब कछु काल मराल तनु धरि तहं कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउं कैलास ॥ ८० ॥

तब मैंने हंस की देह धरकर कुछ समय वहां वास किया और आदर पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र सुनकर कैलाश को लौट आया।

गिरिजा कहेउं सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउं खग पासा ॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग पहिं खग कुल केतू ॥

हे पार्वती, जिस समय मैं उस पक्षी के पास गया, सो सब कथा तो मैंने कही। अब जिस कारण गरुड़जी कागभुशुण्डि के समीप गये सो कथा सुनो।

जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा। समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा ॥
इंद्रजीत कर आपु बंधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो ॥

जिस समय रामचन्द्रजी ने यह युद्ध लीला की, जिस लीला को स्मरण करते हुए मुझे लाज लगती है कि मेघनाद के द्वारा नाग पाश में आप बंध गये, तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा।

बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदयं प्रचंड बिषादा।
प्रभु बंधन समुझत बहु भांती। करत बिचार उरग आराती ॥

नागपाश का बन्धन काटकर जब गरुड़जी घर लौट गये तब हृदय में बड़ा विषाद हुआ। प्रभु के बन्धन को स्मरण कर गरुड़जी मन में बहुत भांति से विचार करने लगे।

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा॥
सो अवतार सुनेउं जग माहीं। देखेउं सो प्रभाव कछु नाहीं॥

जो सर्वव्यापक, विकार रहित, वाणी के स्वामी, माया मोह से परे परमेश्वर हैं उनका जगत में अवतार मैंने सुना था सो कुछ प्रभाव नहीं देखा।

दो०–भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बांधेउ नागपास सोइ राम॥ ८१॥

जिसका नाम जपकर मनुष्य संसार बन्धन से छुट जाते हैं, उन श्रीरामजी को तुच्छ राक्षस ने नागपास में बांध लिया।

नाना भांति मनहि समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयं भ्रम छावा॥
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहिं नाईं॥

नाना प्रकार से गरुड़जी ने अपने मन को समझाया परन्तु बोध नहीं हुआ। हृदय में और भी भ्रम छा गया। उस खेद से मन में दुःखी हो, तर्क बढ़ाकर गरुड़जी तुम्हारी ही भांति मोह के वश हो गये।

ब्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं॥
सुनि नारदहि लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया॥

तब व्याकुल होकर वे नारदजी के समीप गये और जो सन्देह अपने मन में था सो उनसे कहा। उस नारद मुनि को बड़ी दया लगी। वे बोले सुनो गरुड़जी! रामजी की माया बड़ी प्रबल है।

जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई॥
जेहिं बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही॥

जो ज्ञानवानों के चित्त को भी हर लेती है और जबरदस्ती विशेष मोह के वश में कर देती है, जिसने मुझे अनेकों बार नचाया है, हे गरुड़! वही माया तुम्हें व्याप गई है।

महामोह उपजा उर तोरें। मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें॥
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा॥

तुम्हारे हृदय में बड़ा भारी मोह प्रकट हो गया। हे गरुड़जी! मेरे कहने से यह शीघ्र नहीं मिटेगा। इस कारण हे पक्षिराज! ब्रह्मा के पास जाओ, ब्रह्माजी की आज्ञा हो वही करना।

दो०–अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान॥ ८२॥

इस प्रकार कह चतुर देवर्षि नारद रामचन्द्रजी के गुणगान करते हुए और हरि माया का बल बारम्बार वर्णन करते हुए चले।

तब खगपति बिरंचि पहिं गयऊ। निज संदेह सुनावत भयऊ॥
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा॥

तब गरुड़जी ब्रह्माजी के समीप गये और अपना संदेह उन्हें कह सुनाया। उसे सुन ब्रह्माजी ने श्रीरामचन्द्रजी को सिर नवाया और उनके प्रताप को समझकर उनके हृदय में प्रेम छा गया।

मन महुं करइ बिचार बिधाता। माया बस कबि कोबिद ग्याता॥
हरि माया कर अमिति प्रभावा। बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा॥

अपने मन में ब्रह्माजी विचार करने लगे कि कवि, पण्डित और ज्ञानी सब ही माया के आधीन हैं। श्रीहरि की माया का बड़ा प्रभाव है, जिसने मुझे भी अनेकों बार चक्कर में डाला है।

अग जगमय जग मम उपराजा। नहिं आचरज मोह खगराजा॥
तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस राम प्रभुताई॥

यह चराचर जगत मेरा ही रचा हुआ है मैं ही जब माया से मोहित हो जाता हूं तो पक्षिराज को मोह होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तब ब्रह्माजी सुन्दर वाणी बोले श्रीरामजी की प्रभुता को तो महादेवजी जानते हैं।

बैनतेय संकर पहिं जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू॥
तहं होइहि तव संसय हानी। चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी॥

हे गरुड़जी! तुम शंकरजी के पास जाओ। तात! और कहीं किसी से मत पूछना। वहीं तुम्हारा सन्देह दूर होगा। ब्रह्माजी की वाणी सुनते ही गरुड़जी शिवजी के पास चले।

दो०—परमतुर बिहंगपति आयउ तब मो पास।
जात रहेउं कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास॥ ८३॥

तब गरुड़जी आदर पूर्वक मेरे पास आये मैं उस समय कुबेर के घर जा रहा था। हे पार्वती! तब तुम कैलाश पर ही थीं।

तेहिं मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा॥
सुनि ता करि बिनती मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउं भवानी॥

गरुड़ ने आदर पूर्वक मेरे चरणों में सिर नवाया फिर अपना सन्देह सुनाया। गरुड़जी की विनम्र और मधुर वाणी सुनकर हे भवानी! मैंने प्रेम सहित यह कहा—

मिलेहु गरुड़ मारग महं मोही। कवन भांति समुझावौं तोही॥
तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥

हे गरुड़ तुम मुझे रास्ते में मिले हो। तुम्हें किस तरह समझाऊँ? तभी तुम्हारा संशय दूर होगा जब बहुत काल पर्यन्त सत्संग किया जाय।

सुनिअ तहां हरि कथा सुहाई। नाना भांति मुनिन्ह जो गाई॥
जेहि महुं आदि मध्य अवसाना। प्रभु पतिपाद्य राम भगवाना॥

और वहां सुन्दर हरि कथा सुनी जाय जो अनेक प्रकार से मुनियों ने गाई है और जिनके आदि मध्य और अन्त में रामजी का ही निरूपण हो।

नित हरि कथा होत जहं भाई। पठवउं तहां सुनहु तुम्ह जाई॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहि अति नेहा॥

हे भाई! जहां नित्य हरि कथा होती है वहीं मैं तुम्हें भेजता हूं। तुम जाकर सुनो। कथा सुनते संशय दूर हो जाएगा और श्रीरामजी के चरणों में प्रेम दृढ़ हो जायेगा।

दो०—बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएं बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥ ८४॥

सत्सङ्ग के बिना हरि कथा नहीं मिलती, बिना कथा के मोह नहीं भागता और मोह के दूर हुए बिना रामजी के चरणों में स्नेह नहीं होता।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएं जोग तप ग्यान बिरागा॥
उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहं रह काकभुसुंडि सुसीला॥

बिना प्रेम के योग, जप, ज्ञान और वैराग्य करने पर भी श्रीरामचन्द्रजी नहीं मिलते। उत्तर दिशा में एक सुन्दर नील पर्वत है। वहां परम सुशील कागभुशुण्डि रहते हैं।

राम भगति पथ परम प्रबीना। ग्यानी गुन गृह बहु कालीना॥
राम कथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहंगबर॥

वे राम भक्त के मार्ग में बड़े चतुर हैं, गुणनिधान हैं और बहुत ही प्राचीन हैं। वे राम कथा सदैव कहा करते हैं, जिसे अनेकों प्रकार के श्रेष्ठ पक्षी आदर के साथ सुनते हैं।

जाइ सुनहु तहं हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी॥
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई॥

वहां जाकर श्रीहरि के गुणसमूहों को सुनो, जिससे मोह से उत्पन्न हुआ तुम्हारा दुःख दूर हो जायेगा इस प्रकार जब मैंने गरुड़जी से सब हाल समझाकर कहा, तब वे प्रसन्न हो मेरे चरणों में प्रणाम करके चले गये।

ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपां मरमु मैं पावा॥
होइहि कीन्ह कबहुं अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥

हे पार्वती मैंने इस कारण गरुड़ को नहीं समझाया कि रघुनाथजी की कृपा से मैंने सब भेद जान लिया था। उसने कभी अभिमान किया होगा जिसको कृपानिधान दूर करना चाहते हैं।

कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खगही कै भाषा॥
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी॥

फिर कुछ इस कारण मैंने उसको नहीं रोका कि पक्षी-पक्षी की ही भाषा समझते हैं। हे पार्वती प्रभु की माया बड़ी बलवती है। ऐसा ज्ञानवान कौन है जिसे वह मोहित नहीं करती है।

दो०–ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पावंर करहिं गुमान॥ ८५॥

जो ज्ञानी भक्तों में श्रेष्ठ हैं और त्रिलोकनाथ के वाहन हैं उन गरुड़जी को भी माया ने मोह लिया तब भी नीच मनुष्य अभिमान करते हैं।

सिव बिरंचि कहुं मोहइ को है बपुरा आन।
अस जियं जानि भजहिं मुनि माया पति भगवान॥ ८६॥

जब माया शिवजी और ब्रह्माजी को ही मोहित कर देती है तब भला और कोई बेचारा किस गिनती में है? ऐसा अपने जी में समझकर मुनि माया के स्वामी का भजन करते हैं।

गयउ गरुड़ जहं बसइ भुसुंडा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ॥

जहां निर्बोध बुद्धि तथा पूर्ण भक्त कागभुशुण्डिजी रहते थे, वहां गरुड़जी गये। उस पर्वत को देखकर गरुड़जी का चित्त प्रसन्न हो गया और माया मोह से उत्पन्न हुआ सब दुःख दूर हो गया।

करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदयं हरषाना॥
बृद्ध बृद्ध बिहंग तहं आए। सुनै राम के चरित सुहाए॥

तालाब में स्नान और जलपान करके मन में प्रसन्न हो वे वट वृक्ष के नीचे गये बड़े-बूढ़े पक्षी वहां रामजी के सुहावने चरित्र को सुनने के लिए आये थे।

कथा अरंभ करै सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा॥
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा॥

वे कथा आरम्भ करना ही चाहते थे कि उसी समय गरुड़जी आ पहुंचे। गरुड़जी को देखकर कागभुशुण्डिजी समाज समेत प्रसन्न हुए।

अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा॥
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा॥

उन्होंने गरुड़जी का बहुत आदर किया और कुशल पूछकर उत्तम आसन दिया। फिर स्नेह से पूजा करके कागभुशुण्डि मधुर वचन बोले।

दो०–नाथ कृतारथ भयउं मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज॥ ८७॥

हे पक्षिराज! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ। अब जो आप आज्ञा दें वही मैं करूं। हे प्रभो! आप किस कार्य के निमित्त यहां आये हैं?

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस॥ ८८॥

गरुड़जी कोमल वाणी से वचन बोले आप तो सदैव ही कृतार्थ रूप हैं। शिवजी ने आदर समेत अपने श्रीमुख से जिनकी बड़ाई की है।

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तव पावउँ॥
देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥

हे तात! सुनिए, जिस कारण से मैं यहां आया हूं, वह सब आपके दर्शन पाते ही पूरा हो गया। आपके इस अत्यन्त पवित्र आश्रम को देखकर मेरा मोह, संशय और अनेकों भ्रम जाते रहे।

अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुख पुंज नसावनि॥
सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवउँ प्रभु तोही॥

अब श्रीरामचन्द्रजी की अत्यन्त पवित्र, सदा सुख देने वाली और दुःख के समूह के नाश करने वाली कथा, हे तात! मुझे आदर सहित सुनाइये। हे प्रभो! मैं आपसे बार-बार यही विनती करता हूं।

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता॥
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा॥

गरुड़जी की विनम्र, सीधी, प्रेम भरी, सुखदायिनी और अत्यन्त पवित्र वाणी सुनते ही कागभुशुण्डिजी के मन में परम उत्साह हुआ और वे श्रीरामचन्द्रजी के गुणों की कथा कहने लगे।

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई॥

हे भवानी! उन्होंने पहले तो बड़े प्रेम से रामचरितमानस का रूपक कहा। फिर नारदजी का अपार मोह और फिर रावण का अवतार कहा। फिर प्रभु के अवतार की कथा कही। तदनन्तर मन लगाकर श्रीरामजी के बल चरित्र कहे।

दो०—बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महं परम उछाहे।
रिषि आगवन कहेसि पुनि श्रीरघुबीर बिबाह॥ ८१॥

अनेक बाल चरित कहकर मन में बहुत आनन्द हुआ। फिर विश्वामित्र का आगमन कहकर रामचन्द्रजी का विवाह वर्णन किया।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा॥
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा॥

तदनन्तर रामचन्द्रजी के राजतिलक का हाल, फिर राजा दशरथजी के वचनों से राजतिलक का न होना, नगरवासियों का विरह दुःख तथा श्रीराम लक्ष्मण का सम्वाद सुनाया।

बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥
बालमीक प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना॥

श्रीरामजी का वन-गमन, केवट की प्रीति, गंगाजी से पार उपकार प्रयाग में निवास बाल्मीकिजी से प्रभु का मिलाप और जैसे भगवान चित्रकूट में बसे, वह सब कहा।

सचिवागवन नगर नृप मरना। भरतागवन प्रेम बहु बरना॥
करि नृप क्रिया संग पुरबासी। भरत गए जहं प्रभु सुख रासी॥

मंत्री का पुरी में लौटना, राजा का मरण, भरतजी का लौटना और उनका अत्यन्त स्नेह वर्णन किया। फिर राजा की क्रिया करके नगर निवासियों के साथ भरतजी जहां सुख निधान प्रभु थे, वहां गये।

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी॥

फिर रामजी ने उनको भांति से समझाया, जिससे वे खड़ाऊं लेकर अयोध्यापुरी लौट आये फिर भरतजी के निवास की विधि, इन्द्र के पुत्र जयन्त की नीच करनी और व अत्रिजी की भेंट।

दो०—कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सतसंग॥ १०॥

विराध का बध और जैसे शरभंग ने देह छोड़ी थी, कथा कही। फिर सुतीक्ष्णजी का प्रेम तथा प्रभु और अगस्त्य का वर्णन किया।

कहि दंडक बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहिं गाई॥
पुनि प्रभु पंचबटीं कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा॥

दण्डकवन का पवित्र करना कहकर गीधराज की मित्रता कही फिर प्रभु ने पंचवटी में वास किया और सब मुनियों के भय को दूर किया।

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा॥
खर दूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सब मरमु दसानन जाना॥

फिर जैसे लक्ष्मणजी को अनुपम उपदेश किया और सूर्पणखा को कुरूप किया यह सब कहा। फिर खरदूषण का बध और जिस प्रकार रावण ने यह समाचार जाना, वह सब बखान कर कहा।

दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तहिं कही॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना॥

फिर जिस प्रकार रावण और मारीच में बातचीत हुई सो उन्होंने कही। तदनन्तर माया की सीताजी का हरण और रामजी के विरह को कुछ कहा।

पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्हीं। बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही॥
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर तीरा॥

फिर जैसे जटायु की क्रिया प्रभु ने की और कबन्ध का बध करके शबरी को गति दी और राम विरह का दुःख करते हुए जिस भांति से पम्पा सरोवर के किनारे गये, सो सब कहा।

दो०-प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग॥ ११॥

प्रभ और नारदजी का सम्वाद कहकर हनुमानजी से मिलने का प्रसंग कहा। फिर सुग्रीव की मित्रता कहकर बालि का मरण कह सुनाया।

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रवरषन बास।
बरनन बरषा सरद अरु राम रोष कपि त्रास॥ १२॥

सुग्रीव को राजतिलक करके प्रभु ने प्रवर्षण पर्वत पर वास किया और वहां वर्षा व शरद ऋतु का वर्णन, श्रीरामजी का क्रोध और सुग्रीव आदि का भय प्रसंग कहे।

जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिसि धाए॥
बिबर प्रवेस कीन्ह जेहि भांती। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती॥

फिर जिस प्रकार सुग्रीव ने सब वानरों को भेजा, वे सीताजी की खोज में सब ओर गये, जिस भांति वानरों ने गुफा में प्रवेश किया और उन्हें सम्पाती मिला, वह सब कथा कही।

सुनि सब कथा समीर कुमारा। नाघत भयउ पयोधि अपारा।
लंका कपि प्रबेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा।

सम्पाती से सब कथा सुनकर हनुमानजी अपार समुद्र को लांघ गये और लंका में हनुमानजी ने जिस तरह प्रवेश किया, फिर जैसे सीताजी को धैर्य दिया, सो सब कहा।

बन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी॥
आए कपि सब जहं रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई॥

फिर अशोक वाटिका को उजाड़ कर रावण को समझाकर, लंका दहन करके, फिर समुद्र को लांघकर आना कहा फिर सब वहां आये, जहां रामजी थे उन्हें सीताजी के कुशल समाचार सुनाये।

सेन समेति जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि तीरा॥
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई॥

फिर जिस प्रकार रामजी सेना समेत समुद्र के किनारे उतरे, जिस भांति विभीषण मिले वह और समुद्र के बांधने की कथा सुनाई।

दो०-सेतु बांधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार॥ १३॥

पुल बांधकर जिस प्रकार सेना पार उतारी और जिस तरह बालि-पुत्र वीर श्रेष्ठ अङ्गद दूत बन कर लंका में गये, वह कहा।

निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिधि प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार॥ १४॥

राक्षस और वानरों की लड़ाई विविध भांति से वर्णन की। फिर कुम्भकर्ण और मेघनाद का बल, और संहार वर्णन किया।

निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना॥
रावन बध मंदोदरि सोका। राज बिभीषन देव असोका॥

फिर अनेक राक्षसों के समूह का मरण और राम-रावण युद्ध वर्णन किया। रावण वध, मन्दोदरी का शोक, विभीषण का राजतिलक और देवताओं का दुःख से छट जाना वर्णन किया।

सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता॥

फिर सीता-राम का मिलन कहा। जिस प्रकार देवताओं ने हाथ जोड़कर स्तुति की और तब पुष्पक विमान पर सीता सहित चढ़कर दयासागर प्रभु अयोध्या को चले, यह कहा।

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृपनीति अनेका॥

जिस भांति रामचन्द्रजी अपने नगर में आये वे सब चरित्र कागभुशुण्डिजी ने विस्तार से कहे फिर श्रीरामजी का राज्याभिषेक कहा अयोध्यापुरी का वर्णन कर अनेक भांति की राजनीति कही।

कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी॥
सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥

हे भवानी! जो कथा मैंने तुमसे कही है वही कागभुशुण्डिजी ने कही। गरुड़जी सारी राम कथा सुनकर मन में बहुत आनन्दित होकर यह बोले।

सो०–गयउ मोर संदेह सुनेउं सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥ १॥

हे कागभुशुण्डिजी! सम्पूर्ण श्रीरामचरित्र मैंने सुना, जिससे मेरा सन्देह जाता रहा। आपकी कृपा से श्रीरामजी के चरणों में प्रेम हो गया।

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुं निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥ २॥

रणक्षेत्र में प्रभु को नागपास में बंधा देखकर मुझे बहुत ही मोह हुआ था कि सच्चिदानन्द रामचन्द्रजी विकल हुए इसका क्या कारण है?

देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदयं मम संसय भारी॥
सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना॥

अत्यन्त साधारण मनुष्यों के चरित्र देखकर मेरे मन में अत्यन्त सन्देह हो गया था, उसी भ्रम को अब मैंने अपना हितकारी समझा है क्योंकि इसी बहाने दयानिधान भगवान ने मुझ पर कृपा की है।

जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई॥
जौं नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउं तात कवन बिधि तोही॥

जो प्राणी धूप से व्याकुल होता है वही वृक्ष की छाया के सुख को जानता है। जो मुझे मोह न होता तो तात ! मैं आपसे किस प्रकार मिलता ?

सुनतेउं किमि हरि कथा सुहाई। अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई॥
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा॥

और कैसे यह सुहावनी हरि कथा सुनाता, जिसको बहुत विधि से आपने गाया है ? शास्त्र, वेद व पुराणों का यह मत है और यही सिद्ध व मुनिराज भी कहते हैं, कुछ भी संदेह नहीं है।

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥
राम कृपां तव दरसन भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥

निर्मल सन्त उसी को मिलते हैं, जिसे श्रीरामजी कृपा दृष्टि से देखते हैं। श्रीरामजी की दया से ही आपके दर्शन हुए और आपकी कृपा से मेरा सब सन्देह जाता रहा।

दो०—सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग।
पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग॥ १५॥

पक्षीराज गरुड़जी की विनय और प्रीति युक्त वाणी सुन कागभुशुण्डिजी बहुत प्रसन्न हुए, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जल भर आया।

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
हाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥ १६॥

हे पार्वती ! अच्छी बुद्धि वाले, सुशील पवित्र, कथा प्रेमी और हरि-भक्त श्रोता को पाकर सज्जन अत्यन्त गोपनीय रहस्य को भी प्रगट कर देते हैं।

बोलेउ काकभुसुंड बहोरी। नभग नाथ पर प्रीति न थोरी॥
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे। कृपापात्र रघुनायक केरे॥

फिर कागभुशुण्डिजी जिनको गरुड़जी पर विशेष प्रीति थी, बोले—हे नाथ ! आप सब तरह से मेरे पूज्य हैं और श्रीराम के कृपा पात्र हैं।

तुम्हहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया॥
पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही॥

आपको सन्देह, मोह व माया कुछ नहीं है। हे नाथ ! मुझ पर आपने दया की है। हे पक्षिराज ! मोह के बहाने से आपको भेजकर श्रीरामजी ने मुझे बढ़ाई दी है।

तुम्ह निज मोह कही खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं॥
नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमबादी॥

हे पक्षियों के स्वामी ! आपने जो अपना मोह कहा, सो हे स्वामी ! वह कुछ आश्चर्य नहीं है नारदजी, महादेवजी, ब्रह्माजी और सनकादि मुनीश्वर जो आत्मज्ञान का वर्णन करते रहते हैं।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही ॥
तृन्नां केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥

इनमें से किस किस को मोह ने अन्धा नहीं किया। संसार में ऐसा कौन है जिसे कामदेव ने नहीं नचाया। तृष्णा ने किसे मतवाला नहीं बनाया और क्रोध ने किसे नहीं जलाया।

दो०–ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार ॥ १७ ॥

इस संसार में कितने तपस्वी, शूर, कवि, पण्डित और गुणनिधान हैं जिसकी लोभ ने बिडम्बना नहीं की।

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥ १८ ॥

लक्ष्मी के मद ने किसे टेढ़ा और प्रभुता ने किसे बहरा नहीं कर दिया। ऐसा कौन है जिसे मृग-नयनी के बाण नहीं लगे ?

गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बहकावा। ममता केहि कर जस न नसावा ॥

गुणों का किया सन्निपात किसे नहीं हुआ ? ऐसा कौन है जिसे मान और मद नहीं यौवन के ज्वर ने किसे नहीं बहकाया तथा ममता ने किसके यश का नाश नहीं किया।

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा ॥
चिंता सांपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया ॥

मत्सर ने किसे कलंक नहीं लगाया। शोक रूपी वायु ने किसे डांवाडोल नहीं किया। चिंता रूपी नागिन ने किसे नहीं डसा ? संसार में ऐसा कौन है, जिसे माया ने अपने वश में नहीं किया।

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥

ऐसा धैर्यवान कौन है, जिसके शरीर रूपी काठ में मनोरथ रूपी कीड़ा न लगा हो ? पुत्र, धन और स्त्री की वासनाओं ने किसकी बुद्धि को मलिन नहीं किया ?

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनै पारा ॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं ॥

यह माया का पारवार बड़ा प्रबल है। यह अपार है, इसे कौन वर्णन कर सकता है ? महादेव और ब्रह्माजी भी जिससे डरते हैं। तो दूसरे जीव किस लेखे में हैं ?

दो०–ब्यापि रहेउ संसार महुं माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ॥ १९ ॥

माया रूपी प्रबल सेना संसार में फैली हुई है। उसके सेनापति काम आदि हैं और योद्धा दम्भ कपट और पाखण्ड हैं।

सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउं पद रोपि॥ १०० ॥

वह श्रीरामजी की चेरी है—यद्यपि विचारने पर यह मिथ्या ही है, तो भी हे नाथ! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि राम कृपा के बिना यह नहीं छुटती।

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुं न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥

जिस माया ने सब जगत को नचाया है, व जिसका चरित्र कोई नहीं जान पाया, हे गरुड़! वही माया प्रभु भ्रकूटि विलास से अपने समाज समेत नटी के समान नाचती है।

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्याना रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥

भगवान सर्वव्याप्य, पूर्ण, अनन्त, सम्पूर्ण, शक्तिमय, सच्चिदानन्दघन, प्राकृत विज्ञान स्वरूप और गुणनिधान हैं।

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥

वे निर्गुण महान, वाणी और इन्द्रियों से परे, समदर्शी, अनित्य, अजेय, निर्मल, निराकार, मोह रहित, नित्य, माया रहित और सुख की राशि हैं।

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥
इहां मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुं कि जाहीं॥

प्रभु प्रकृति से परे, अन्तर्यामी, ब्रह्म, इच्छारहित, निर्विकार व अविनाशी हैं। यहां मोह का कारण ही नहीं है, अन्धकार क्या सूर्य के सामने जा सकता है?

दो०—भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥ १०१ ॥

भगवान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने अपने भक्तों के निमित्त राजा का शरीर धारण कर मनुष्यों के से बहुत ही पवित्र चरित्र किए हैं।

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥ १०२ ॥

जैसे कोई नट अनेकों वेष धरकर नृत्य करता है, फिर वही भाव दिखलाता है, पर स्वयं वही नहीं हो जाता।

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥
जे मति मलिन बिषयबस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी॥

हे गरुड़! श्रीराम-लीला राक्षस मोहक और भक्त सुखकारा है। हे स्वामी! जो मलिन बुद्धि, विषयी तथा कामी हैं, वे प्रभु पर आरोप करते हैं।

नयन दोष जा कहं जब होई। पीत बरन ससि कहुं कह सोई॥
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कहे पच्छिम उयउ दिनेसा॥

हे गरुड़! जब जिसे नेत्र रोग और दिशा भ्रम हो जाता है तो वह क्रमशः चन्द्रमा को पीले रंग का और सूर्य को पश्चिम में उदय हुआ कहता है।

नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्याबादी॥

नौकारूढ़ जगत को चलता देखकर मोहवश अपने को अचल समझता है। बालक घूमते हैं घर आदि नहीं। पर वे आपस में झूठ कहते हैं।

हरि बिषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहुं नहिं अग्यान प्रसंगा॥
मायाबस मतिमंद अभागी। हृदयं जमनिका बहुबिधि लागी॥
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥

हे गरुड़! हरि के विषय में ऐसा ही मोह है। भगवान में अज्ञान तो स्वप्न में भी नहीं है, किन्तु जो मायावश, मन्दबुद्धि, अभागे हैं व जिनके हृदय पर अनेक परदे पड़े हैं, वे मूर्ख हठ के वश सन्देह करते हैं और अज्ञान श्रीरामजी पर घटित करते हैं।

दो०—काम क्रोध मद लोभ रत गृहसक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥ १०३॥

जो काम, क्रोध, मद व लोभ में फंसे हैं और दुःख रूपी घर में आसक्त हैं, वे श्रीरामजी को कैसे जान सकते हैं? वे मूर्ख अन्धकार रूपी कूप में पड़े हैं।

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥ १०४॥

निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ है, पर सगुण को कोई नहीं जानता है। सुगम और अगम अनेक चरित्रों को सुनकर मुनियों के मन में भी भ्रम हो जाता है।

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउं जथामति कथा सुहाई॥
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सो सब कथा सुनावउं तोही॥

हे पक्षिराज! सुनिये श्रीरामजी की प्रभुता की मनोहर कथा मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं। हे प्रभो! जिस तरह मोह हुआ वह सब कथा भी आपको सुनाता हूं।

राम कृपा भाजन तुम्ह ताता। हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता॥
ताते नहिं कछु तुम्हहिं दुरावउं। परम रहस्य मनोहर गावउं॥

हे तात, आप श्रीरामजी के कृपा पात्र हैं। श्रीहरि के गुणानुवाद में आपकी प्रीति है, जो मुझे सुखदाई है इसलिए मैं आपसे कुछ छिपाता नहीं हूं। बहुत ही गूढ़ और मनोहर चरित्र कहता हूं।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥

सुनिये, रामजी का सहज स्वभाव है कि वे अपने भक्तों के घमण्ड को कभी नहीं रखते। अभिमान ससार में जन्म मरण का कारण और नाना प्रकार के कष्टों को देने वाला है।

ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥

इसलिए दयानिधान उसे दूर कर देते हैं क्योंकि उनका भक्तों पर बहुत ही प्रेम है। हे स्वामि जैसे बालक के हृदय में फोड़ा हो जाता है, तो माता कड़ा हृदय करके उसे चिरवा देती है।

दो०—जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर॥ १०५॥

यद्यपि बालक पहिले दुःख पाता है और अधीर होकर रोने लगता है, तो भी व्याधि दूर होने के लिए माता बालक की पीड़ा को नहीं गिनती।

तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि॥ १०६॥

ऐसे ही रामजी अपने भक्त के लिए उसके घमन्ड को हर लेते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं भ्रम छोड़कर ऐसे स्वामी को क्यों नहीं भजते?

राम कृपा आपनि जड़ताई। कहउं खगेस सुनहु मन लाई॥
जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥

हे पक्षिराज, मन लगाकर सुनिये, मैं श्रीरामजी की कृपा और अपनी मूर्खता की बात कहता हूं। श्रीरामजी जब-जब मनुष्य देह धारण करते हैं और भक्तों के लिए अनेक चरित्र करते हैं।

तब तब अवधपुरी मैं जाऊं। बालचरित बिलोकि हरषाऊं॥
जन्म महोत्सव देखउं जाई। बरष पांच तहं रहउं लोभाई॥

तब-तब मैं अयोध्या जाता हूं और लीला देखकर प्रसन्न होता हूं। जन्मोत्सव देखता हूं और लुभा कर पांच वर्ष वहीं रहता हूं।

इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटि सत कामा॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउं उरगारी॥
लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउं बालचरित बहुरंगा॥

बालक रूप श्रीरामजी मेरे इष्टदेव हैं, जिनमें अरबों कामदेवों की शोभा है। हे गरुड़जी, अपने प्रभु का मुख निरख कर मैं आंखों को सफल करता हूं मैं छोटे कौवे का रूप धरकर भगवान के साथ बाल लीलायें देखा करता हूं।

दो०–लरिकाईं जहं जहं फिरहिं तहं तहं संग उड़ाउं।
जूठनि परइ अजिर महं सो उठाइ करि खाउं॥ १०७॥

लड़कपन में वे जहां-जहां घूमते हैं वहां-वहां मैं उनके साथ उड़ता हूं और आंगन में जो जूठन पड़ती है वही उठाकर खाता हूं।

एक बार अतिसय सब चरित किए रघबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर॥ १०८॥

एक बार प्रभु ने सब बाल लीलायें अत्यधिक कीं। उन लीलाओं को स्मरण करने से भुशुण्डिजी का शरीर पुलकित हो गया।

कहइ भसुंड सुनहु खगनायक। राम चरित सेवक सुखदायक॥
नृप मंदिर सुंदर सब भांती। खचित कनक मनि नाना जाती॥

हे पक्षिराज, श्रीरामजी के भक्त सुखकारी चरित्र सुनिये। राज मन्दिर सब भांति से सुन्दर है, वहां अनेक मणियां सोने से जड़ी हुई हैं।

बरनि न जाइ रुचिर अंगनाई। जहं खेलहिं नित चारिउ भाई॥
बालबिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥

सुन्दर आंगन का वर्णन नहीं किया जाता, वहां चारों भाई नित्य खेलते हैं। रामजी माताओं को सुख देने वाली लीला करते हुए वहां विचरते हैं।

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥

मरकत मणियों के तुल्य सांवला मनोहर शरीर है अङ्ग-अङ्ग में अनेक कामदेवों की शोभा है। नये लाल कमल के तुल्य कोमल चरण, अंगुलियां बहुत सुन्दर व चन्द्रमा की कान्ति को हरने वाली हैं।

ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥

वज्रादिक के सुन्दर चार चिन्ह हैं, सुन्दर मधुर ध्वनि से बजने वाले नूपुर हैं। सुन्दर मणियों से जड़ी सोने की करधनी की सुरीली ध्वनि सुहावनी लगती है।

दो०–रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिधि बाल बिभूषन चीर॥ १०९॥

सुन्दर उदर पर तीन रेखायें हैं, नाभि मनोहर और गहरी है, विशाल वक्षस्थल पर बच्चों के अनेक आभूषण और वस्त्र शोभित हैं।

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा॥

उनकी लाल हथेलियां, अंगुलियां और नख मनोहर हैं। लम्बी भुजाओं पर सुन्दर आभूषण हैं। बाल सिंह के समान कन्धे व शंख के तुल्य गर्दन है। मनोहर ठोड़ी और मुख तो मानो शोभा की सीमा हीं है।

कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥

तोतले वचन, लाल-लाल सुन्दर होठ, छोटे-छोटे उज्जवल दो दांत हैं। सुन्दर गाल, मनोहर नासिका और चन्द्रमा की किरणों के समान सबको सुख देने वाली मुस्कान है।

नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
बिकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए॥

नील कमल के समान नेत्र भव-भय से छुड़ाने वाले हैं, गोरोचन का तिलक मस्तक पर शोभायमान है। भौंहे टेढ़ी हैं और कान सुन्दर और सम हैं, बहुत काले घूंघर वाले बाल शोभा दे रहे हैं।

पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही॥
रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥

पीले रंग की बारीक झंगुली शरीर पर शोभा दे रही है। उनकी किलकारी और चितवन मुझे बड़ी प्रिय है। राजा दशरथजी के आंगन में बिहार करने वाले रूप की राशि भगवान अपनी परछाहीं देखकर नाचते हैं।

मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउं भागि तब पूप देखावहिं॥

मेरे साथ अनेक प्रकार के ऐसे खेल करते हैं जिन चरित्रों को वर्णन करते मुझे लज्जा आती है। किलकारते हुए वे मुझे पकड़ने को दौड़ते और मैं भाग जाता तब वे मुझे पूआ दिखाते हैं।

दो०—आवत निकट हंसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।
जाउं समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं॥ ११०॥

मेरे निकट आने पर हंसते हैं व भागने पर रोते हैं। जब मैं पांव छूने पास जाता हूं तो फिर-फिर कर मेरी ओर देखकर भाग जाते हैं।

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥ १११॥

साधारण बालक के समान चरित्र देखकर मुझे मोह हुआ कि सच्चिदानन्द भगवान यह क्या लीला कर रहे हैं?

एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाहीं॥

हे गरुड़जी! इतनी शंका मन में लाते ही रामजी द्वारा प्रेरित माया मुझे व्याप गई। पर वह माया मुझे न तो दुखदायी हुई और न अन्य जीवों के समान उसने मुझे संसार के चक्कर में डाला।

नाथ इहां कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना॥
ग्यान अखंड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर॥

हे स्वामी! यहां कुछ दूसरा ही कारण है। उसे सावधान होकर सुनिये। एक सीता पति रामचन्द्रजी पूर्ण ज्ञान वान हैं और सब चराचर जीव माया के वश में हैं।

जौं सब कें रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी॥

जो सबको एक ही सा ज्ञान हो तो कहो ईश्वर और जीव में भेद ही कैसा? अभिमान जीव माया के वश के हैं और वह तीनों गुणों की खान माया ईश्वर के आधीन है।

परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥

जीव पराधीन है, ईश्वर स्वाधीन है। जीव अनेक हैं, ईश्वर एक है। यह भेद यद्यपि माया के लिए हुए हैं। तो भी ईश्वर की कृपा के बिना करोड़ों उपाय करने पर भी वह नहीं मिटते।

दो०—रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूंछ बिषान॥ ११२॥

जो रामचन्द्रजी के भजन बिना मोक्ष पद चाहे वह मनुष्य बहुत ज्ञान वान होने पर भी बिना सींग और पूंछ का पशु है।

राकापति षोड़स उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ॥ ११३॥

चाहे सब तारों के साथ चन्द्रका सोलह कलाओं से उदय हो तथा सब पर्वतों में आग लगा दी जाय परन्तु सूर्य के उदय हुए बिना रात नहीं जाती।

ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥
हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या॥

हे गरुड़जी! ऐसे ही बिना हरि भजन के जीवों का क्लेश नहीं मिटता। हरि भक्त को अविद्या नहीं व्यापी। प्रभु की प्रेरणा से विद्या व्यापती है।

ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर॥
भ्रम तें चकित राम मोहि देखा। बिहंसे सो सुनु चरित बिसेषा॥

इसी से दास का नाश नहीं होता और हे पक्षिश्रेष्ठ! भेद भक्ति बढ़ती है। जब रामजी ने मुझे भ्रम से चकित देखा तब वे हंसे। वह विशेष चरित्र सुनिये।

तेहि कौतुक कर मरमु न काहूं। जाना अनुज न तातु पिताहूं॥
जानु पानि धाए मोहि धरना। स्यामल गात अरुन कर चरना॥

उस खेल का भेद किसी ने नहीं जान पाया भाइयों और माता-पिता आदि ने भी नहीं जाना। श्याम शरीर और लाल-लाल हाथ-पांव वाले प्रभु घुटनों और हाथों से चलकर मुझे पकड़ने दौड़े।

तब मैं भागि चलेउं उरगारी। राम गहन कहं भुजा पसारी॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउं अकासा। तहं भुज हरि देखउं निज पासा॥

गरुड़जी! तब मैं उड़ चला। श्रीरामचन्द्रजी ने पकड़ने को भुजा फैलाई। ज्यों-ज्यों मैं आकाश में उड़कर दूर होता था, त्यों-त्यों हरि की भुजा को अपने पास देखता था।

दो०—ब्रह्मलोक लगि गयउं मैं चितयउं पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात॥ ११४॥

मैं पीछे को देखता और उड़ता हुआ ब्रह्मलोक तक गया, परन्तु हे भाई! श्रीरामचन्द्रजी की भुजा और मुझमें दो अंगुल का अन्तर रहा।

सप्ताबरन भेद करि जहां लगें गति मोरि।
गयउं तहां प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउं बहोरि॥ ११५॥

सातों आवरणों को भेदकर जहां तक मेरी गति थी वहां तक मैं गया, पर वहां भी प्रभु की भुजा को देखकर मैं घबड़ा गया।

मूदेउं नयन त्रसित जब भयऊं। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊं॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहंसत तुरत गयउं मुख माहीं॥

जब मैं घबड़ा गया तब मैंने आंखें बन्द कर लीं। फिर आंखें खोलकर देखा कि मैं अयोध्या में पहुंच गया हूं, मुझे देखकर रामजी मुसकाने लगे और उनके हंसते ही मैं उनके मुख में चला गया।

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउं बहु ब्रह्मांड निकाया॥
अति बिचित्र तहं लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥

सुनो गरुड़! उनके पेट में मैंने बहुत से ब्रह्माण्डों के समूह देखे। वहां अनेकों विभिन्न लोक थे। उनकी रचना एक से एक बढ़कर थी।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥

करोड़ों ब्रह्मा और शिवजी, अगणित नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा, लोकपाल और काल पर्वत व भूमि।

सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भांति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥

अनेक समुद्र, नदी, वन और सृष्टि का विस्तार देखा। देव, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर और चारों प्रकार के जड़-चेतन जीव देखे।

दो०—जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूं न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउं बरनि कवनि बिधि जाइ॥ ११६॥

जो न कभी देखा था न सुना था और मन में भी नहीं समाता था। वह सब आश्चर्य मैंने देखा। तब किस भांति से उसका वर्णन किया जाय ?

एक एक ब्रह्मांड महुं रहइं बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरउं मैं अंड कटाह अनेक॥ ११७॥

मैं एक-एक सौ वर्ष एक-एक ब्रह्माण्ड में रहा, इस भांति मैं अनेक ब्रह्माण्ड देखता फिरा।

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता॥
नर गंधर्ब भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला॥

प्रत्येक लोक भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, हरि, शिव, मनु और दिकपाल, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वेताल, दैत्य, किन्नर, पशु-पक्षी और नाग थे।

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहं आनहि भांती॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहं आनइ आना॥

अनेक जाति के देवता और दैत्य थे। सब जीव वहां और ही प्रकार के थे। भूमि, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत और सृष्टि वहां दूसरी प्रकार की ही थी।

अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउं जिनस अनेक अनूपा॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥

हर एक ब्रह्माण्ड में मैंने अपना रूप देखा और बहुत सी अनोखी वस्तुयें देखीं और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अवधपुरी और सरयू नदी तथा भिन्न-भिन्न स्त्री-पुरुष देखे।

दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउं बालबिनोद अपारा॥

दशरथजी कौशल्याजी तथा भरत आदि भिन्न-भिन्न रूप के थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामावतार और सुन्दर बाल विचित्र देखा।

दो०—भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउं प्रभु राम न देखेउं आन॥ ११८॥

हे हरिवाहन! मैंने सभी को भिन्न-भिन्न तथा अत्यन्त विचित्र देखा। मैं अगणित ब्रह्माण्डों में फिरा, परन्तु प्रभु रामजी को दूसरे रूप में नहीं देखा।

सोइ सिसुपन सोई सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउं प्रेरित मोह समीर॥ ११९॥

मोहरूपी पवन की प्रेरणा से मैं वही बाल-लीला, वही शोभा और उन्हीं दयालु रामजी को लोक में देखता फिरता था।

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुं कल्प सत एका॥
फिरत फिरत निज आश्रम आयउं। तहं पुनि रहि कछु काल गवांयउं॥

अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते-घूमते मानो मुझे सौ कल्प बीत गये। फिरते-फिरते मैं अपने आश्रम में लौट आया। फिर वहां रहकर कुछ समय बिताया।

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउं। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउं॥
देखउं जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई॥

जब अपने स्वामी का जन्म अवधपुरी में सुन पाया, तब मैं प्रेम में मग्न हो सानन्द उठ दौड़ा, जाकर जन्मोत्सव देखा, जैसे कि मैं पहले गा चुका हूं।

राम उदर देखेउं जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना॥
तहं पुनि देखेउं राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना॥

रामजी के पेट में मैंने बहुत से जगत देखे, वे देखते ही बनते। फिर वहां माया के स्वामी दयालु भगवान रामजी को देखा।

करउं बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी॥
उभय घरी महं मैं सब देखा। भयउं भ्रमित मन मोह बिसेषा॥

मैं बार-बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोह की कीचड़ से व्याप्त थी। यह सब मैंने दो घड़ी में देखा। मन में अधिक मोह से थक गया।

दो०—देखि कृपाल बिकल मोहि बिहंसे तब रघुबीर।
बिहंसतहीं मुख बाहेर आयउं सुनु मतिधीर॥ १२०॥

जब कृपालु रामचन्द्रजी ने मुझे व्याकुल देखा, तो वे हंस दिये। हे धीर बुद्धि गरुड़जी! उनके हंसते ही मैं मुख से बाहर आ गया।

सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।
कोटि भांति समुझावउं मनु न लहइ बिश्राम॥ १२१॥

श्रीरामजी मेरे साथ वही लीला करते मैं करोड़ों भांति से अपने मन को समझाता था परन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली।

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउं मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥

यह चरित्र देखकर और उस महिमा को समझते ही मुझे देह की सुधि भूल गई। मैं, हे दीन भक्तों के रक्षक! मेरी रक्षा कीजिये यह कहता हुआ धरती पर गिर पड़ा। मुख से बात नहीं निकलती थी।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥

तब प्रभु ने प्रेम विह्वल देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोक लिया और अपना कमल मेरे सिर पर रखकर दीन दयालु ने मेरा सब दुःख दूर कर दिया।

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महुं होइ हरष अति भारी॥

सेवकों को सुख देने वाले, कृपा के समूह श्रीरामचन्द्रजी ने मुझको मोह रहित कर दिया। तब जो महिमा पहले देखी थी, उसे विचार कर मेरे मन में बड़ा भारी आनन्द हुआ।

भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेषी॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी॥

प्रभु की भक्त वत्सलता देखकर मेरे मन में अत्यन्त प्रीति प्रगट हुई। सजल नयन पुलकित शरीरों होकर हाथ जोड़कर मैंने बहुत विनती की।

दो०—सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास॥ १२२॥

प्रेम सहित मेरी वाणी सुनकर और अपने भक्त को दीन देखकर लक्ष्मी निवास श्रीरामजी सुखदायक, गम्भीर और मधुर वाणी बोले—

काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥ १२३॥

हे कागभुशुण्डि! मुझे अति प्रसन्न जानकर अणिमा और आठों सिद्धि, नवों निधि तथा सब सुख की खान मोक्ष आदि वर मांग लो।

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना॥
आजु देउँ सब संसय नाहीं। मागु जो तोहि भाव मन माहीं॥

ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान और वे अनेक गुण जो संसार में मुनियों को दुर्लभ हैं आज वह सब तुम्हें दूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। तुम्हारे मन में जो अच्छा लगे सो मांग लो।

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥

स्वामी के वचन सुनकर मैं अत्यन्त प्रेम में मग्न हो गया तब अपने मन में विचारने लगा कि प्रभु ने मुझे सम्पूर्ण सुख देने को कहे। यह सत्य है परन्तु अपनी भक्ति देने के लिए नहीं कहा।

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा॥

बिना भक्ति के सब गुण और सुख कैसे हैं? जैसे नमक के बिना बहुत से भोजन पदार्थ। हे पक्षीराज! बिना भक्ति के सुख किस काम के? इस प्रकार मन में विचार करके मैं बोला—

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू॥
मन भावत बर मागउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी॥

हे प्रभु! जो आप मुझ पर प्रसन्न होकर वर देते हैं और मुझ पर दया और स्नेह करते हैं तो हे स्वामी! मैं अपना मन चाहा वर मांगता हूं। आप उदार हैं और सबके हृदय को जानते हैं।

दो०—अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥ १२४॥

आपकी जिस अटल और पवित्र भक्ति को वेद और पुराणों ने गाया है, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और आपकी कृपा से कोई कोई पाते हैं।

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥ १२५॥

हे भक्तों के कल्पवृक्ष! हे दीन हितकारी! हे दया के समुद्र और सुख के स्थान श्रीरामजी! दया करके अपनी भक्ति मुझे दीजिए।

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक। बोले बचन परम सुखदायक॥
सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न मागसि अस बरदाना॥

रघुवंश के स्वामी 'एवमस्तु' कहकर अति सुखदायक वचन बोले—हे काग! सुनो. तुम सहज ही चतुर हो। ऐसा वरदान क्यों नहीं मांगते?

सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥
जो मुनि कोटि जतन नहि लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं॥

तुमने सब सुखों की खान भक्ति मांग ली, संसार में तुम्हारे समान बड़भागी कोई नहीं है। वे मुनि जो शरीर को जप और योग की अग्नि से सुखा डालते हैं, करोड़ों उपायों से भी जिनको नहीं पाते।

रीझेउं देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें॥

तुम्हारी चतुराई देखकर मैं रीझ गया। तुमने भक्ति मांगी, सो मुझे बहुत ही अच्छी लगी। हे पक्षी! सुनो, अब मेरे प्रसाद से तुम्हारे हृदय में सब अच्छे गुण बसेंगे।

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, चरित्रों और उनके रहस्य के भेदों को तुम जानोगे। मेरी कृपा से तुम्हें साधन का कष्ट नहीं होगा।

दो०—माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि॥ १२६॥

अब तुम्हें माया से उत्पन्न भ्रम नहीं सतावेंगे। मुझे ब्रह्म अनादि, अजन्मा, निर्गुण और गुणों की खान जानना।

मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग।
कायं बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग॥ १२७॥

सुनो काग ! मुझे अपने भक्त सदैव प्यारे लगते हैं। ऐसा समझकर शरीर, वचन और मन से चरणों में निश्चल प्रेम करना।

अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥
निज सिद्धांत सुनावउं तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥

अब मेरी सत्य, सहज, वेदादि में वर्णित परम वाणी सुनो, मैं "निज सिद्धान्त" सुनाता हूं उसे मन में रक्खो व सब छोड़कर मुझको भजो।

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥

संसार मेरी माया से उत्पन्न है। भांति-भांति के जो चराचर जीव हैं, सभी मेरे उत्पन्न किये हुए हैं, किन्तु मनुष्य मुझको सबसे अधिक प्यारे हैं।

तिन्ह महं द्विज द्विज महं श्रुतिधारी। तिन्ह महुं निगम धरम अनुसारी॥
तिन्ह महं प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी॥

उन मनुष्यों में भी ब्राह्मण, ब्राह्मणों में वेदज्ञाता, उनमें वेदोक्त आचरण वाले, उनमें भी विरक्त मुझे प्रिय हैं। विरक्तों में फिर ज्ञानी और ज्ञानी से भी अधिक प्रिय विज्ञानी हैं।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउं तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥

विज्ञानियों से भी अपना दास मुझे प्यारा है जिसे मेरी ही गति है कोई दूसरी आशा नहीं। मैं बारम्बार तुमसे सच कहता हूं कि मुझको भक्त के समान प्यारा दूसरा नहीं है।

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहिं सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

भक्तिहीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, मुझे सब जीवों के समान ही प्यारा है। परन्तु भक्तवान अति नीच भी मुझको प्राणों के समान प्यारा है ऐसी मेरी घोषणा है।

दो०—सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग॥ १२८॥

पवित्र, सुशील और बुद्धिमान सेवक कहो किसे प्यारा नहीं लगता ? वेद पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं। हे काग ! मन लगाकर सुनो।

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥

एक पिता के अनेक पुत्र अलग-अलग गुण, शील और आचरण वाले होते हैं, कोई विद्वान, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, धनी कोई योद्धा व कोई दानी होता है।

कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुं जान न दूसर धर्मा॥

कोई सर्वज्ञ व कोई धर्मात्मा होता है पिता की सब पर एक समान प्रीति होती है, परन्तु उनमें जो कोई मन, कर्म, वचन से पिता का भक्त हो, स्वप्न में भी दूसरा धर्म न जानता हो।

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भांति अयाना॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥

वह पुत्र पिता को प्राण प्यारा होता है, चाहे वह सब प्रकार से मूर्ख ही हो। ऐसे ही तिर्यक, देव, मनुष्य व असुरों समेत जितने भी जड़ और चेतन जीव हैं।

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महं जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥

यह समस्त विश्व मेरा ही पैदा किया हुआ, मेरी दया सब पर बराबर है। इनमें जो मद और माया को छोड़कर मन, वाणी, देह से मुझे भजते हैं।

दो०—पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥ १२१॥

पुरुष, नपुंसक, स्त्री अथवा चराचर जीव कोई हो, सब प्रकार से छल छोड़कर जो मेरा भजन करे, वही मुझको बहुत प्यारा है।

सो०—सत्य कहउं खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब॥ ३॥

हे पक्षिराज! मैं तुमसे सत्य कहता हूं कि सच्चा भक्त मुझे प्राण प्रिय है ऐसा समझकर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझको भजो।

कबहूं काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाउं। तनु पुलकित मन अति हरषाउं॥

तुम्हें कभी काल नहीं ब्यापेगा निरन्तर मेरा ध्यान और भजन करते रहना। प्रभु के वचनामृत सुन कर मैं तृप्त नहीं होता था। पुलकित शरीर से मन में बहुत ही प्रसन्न था।

सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥
प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयना॥

वह सुख मन और कान ही जानते हैं। जीभ से कहा भी नहीं जाता। प्रभु की सुन्दरता नेत्र ही जानते हैं। वे उसे कैसे कह सकते हैं, उनके जीभ तो है नहीं।

बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु कौतुक तेई॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति भूखा॥

बहुत भांति से मुझे समझाकर सुख देकर प्रभु फिर वही बाल-लीला करने लगे। सजल नेत्रों से मुंह रूखा करके माता की ओर देखने लगे कि भूख लगी है।

देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदु बचन लिए उर लाई ॥
गोद राखि कराव पय पाना। रघुपति चरित ललित कर गाना ॥

यह देखकर माता तुरन्त उठ दौड़ी और मधुर वचन कहकर छाती से लगा लिया। वे गोद में लेकर रघुनाथजी का चरित्र गाती हुई दूध पिलाने लगी।

सो०—जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुं संतत मगन ॥ ४ ॥

जिस सुख के लिए सुखदाता पुरारि शिवजी ने अमङ्गल वेष धारण किया है, अवधपुरी के नर-नारी उसी सुख में सदैव मग्न रहते हैं।

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुं लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति ॥ ५ ॥

हे गरुड़जी! उस सुख का कुछ अंश स्वप्न में भी जिन्होंने पा लिया है, वे उत्तम बुद्धि वाले सत्पुरुष ब्रह्मानन्द को भी कुछ नहीं समझते।

मैं पुनि अवध रहेउं कछु काला। देखेउं बालबिनोद रसाला ॥
राम प्रसाद भगति बर पायउं। प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउं ॥

मैं अवधपुरी में कुछ दिन फिरता रहा और मनोहर बाल-लीला देखता रहा। श्रीराम की कृपा भक्ति का वर पाकर प्रभु के चरण-कमलों में प्रणाम कर मैं अपने आश्रम को लौट आया।

तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया ॥
यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि माया जिमि मोहि नचावा ॥

जब से श्रीरामजी ने मुझे अपनाया तब से मुझे माया नहीं व्यापी। हरि की माया ने मुझे जैसे नचाया वह सब गुप्त कथा मैंने कही।

निज अनुभव अब कहउं खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥

हे पक्षिराज! अब अपना स्वभाव कहता हूं कि बिना भगवत् भजन किये क्लेश दूर नहीं होते। सुनिये गरुड़जी! श्रीरामजी की कृपा बिना श्रीरामचन्द्रजी की महिमा जानी नहीं जाती है।

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ न प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥

बिना महिमा जाने विश्वास के प्रीति नहीं होती, बिना विश्वास के प्रीति नहीं होती, बिना प्रीति के भक्ति नहीं होती जैसे जल की चिकनाई नहीं ठहरती।

सो०—बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥ ६ ॥

गुरु के बिना क्या ज्ञान और ज्ञान के बिना क्या वैराग्य हो सकता है ? वेद और पुराण कहते हैं कि श्रीहरि-भक्ति के बिना सुख मिलता है ?

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिश्र॥ ७॥

हे तात ! स्वाभाविक सन्तोष के बिना क्या कोई विश्राम पा सकता है ? करोड़ों उपाय करके पच-पच मरिये, परन्तु फिर भी क्या बिना जल के नाव चल सकती है ?

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुं नाहीं॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुं कि जामा॥

सन्तोष के बिना कामना नष्ट नहीं होती और कामनाओं के रहते स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता। श्रीरामजी के भजन बिना क्या कामनायें मिट सकती हैं ? क्या पृथ्वी के बिना वृक्ष कभी जमा है ?

बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥

विशेष विज्ञान के बिना क्या समभाव आता है ? आकाश के बिना क्या कोई अवकाश (पोल) पा सकता है ? श्रद्धा के बिना धर्म कार्य नहीं हो सकते। क्या पृथ्वी तत्व के बिना कोई गन्ध पा सकता है ?

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं॥

बिना तप के क्या तेज फैल सकता है ? बिना जल के संसार में क्या रस हो सकता है ? बुद्धिमान की सेवा बिना क्या शील मिल सकता है ? हे स्वामी ! जैसे तेज के बिना रूप नहीं मिलता है।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥

आत्म-सुख के बिना क्या मन स्थिर रह सकता है ? वायु के बिना क्या स्पर्श हो सकता है ? विश्वास के बिना क्या कोई सिद्धि मिल सकती है ? हरि भजन के बिना संसार रूपी भय का नाश नहीं हो सकता है।

दो०—बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुं जीव न लह बिश्रामु॥ १३०॥

विश्वास के बिना भक्ति नहीं होती, भक्ति के बिना रामजी दया नहीं करते। श्रीरामजी की कृपा बिना जीव स्वप्न में भी विश्राम नहीं पाता।

सो०—अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥ ८॥

हे धीर बुद्धि ! विचार कर सब कुतर्क और सन्देहों को छोड़कर करुणानिधान और सुन्दर सुख देने वाले श्रीरामजी का भजन करो।

निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई॥
कहेउं न कछु करि जुगुति बिसेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी॥

हे स्वामी! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रभु के प्रताप की महिमा गाई है। मैंने इनमें कुछ बात युक्तियों से बढ़कर नहीं कही। यह सब मैंने अपनी आंखों से देखी कही है।

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥
निजनिज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं॥

श्रीरघुनाथजी की महिमा, नाम, रूप व गुणों की कथा अगणित और अनन्त है। मुनिजन अपनी बुद्धि के अनुसार हरि गुण गाते हैं। वेद, शेष और महादेवजी भी उनका पार नहीं पाते।

तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुं कोउ पाव कि थाहा॥

आपसे लेकर मच्छर पर्यन्त-आकाश में उड़ते हैं पर उनका अन्त नहीं पाते। हे तात! इसी प्रकार श्रीरामजी की महिमा अपरम्पार है। उसकी थाह क्या कभी कोई पा सकता है?

रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा॥

श्रीरामचन्द्रजी अरबों कामदेवों के समान सुन्दर देह वाले हैं और अनन्त कोटि दुर्गाओं के समान शत्रु नाशक हैं। अरबों इन्द्रों के समान उनका ऐश्वर्य है और अरबों आकाशों के समान वे अवकाश विस्तार वाले हैं।

दो०—मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास॥ १३१॥

वे अरबों पवनों से भी बढ़कर बलवान हैं, सूर्य के समान प्रकाशवान हैं। अरबों चन्द्रमाओं के समान शीतल व संसार के दुःखों का नाश करने वाले हैं।

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग तुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत॥ १३२॥

वे अरबों कालों के समान अति कठिन, दुरन्त व दुर्गम हैं। वे अरबों धूम्रकेतुओं के समान प्रबल हैं।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन॥

अरबों पातालों के समान अथाह हैं और अरबों यमों के समान भयंकर हैं. करोड़ों तीर्थों के समान वे पवित्र करने वाले हैं। भगवान का नाम समस्त पातकों के समूह को नाश करने वाला है।

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना॥

करोड़ों हिमालय के समान श्री रघुनाथजी स्थिर हैं और अरबों समुद्रों के समान गहरे भगवान अरबों कामधेनुओं के समान सब कामनाओं के देने वाले हैं।

सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥

उनमें करोड़ों तपस्वी स्त्रियों के समान चतुराई है व अरबों ब्रह्माओं के समान सृष्टि रचने की निपुणता है। अरबों विष्णुओं के समान पालनकर्ता और अरबों रुद्रों के समान संसार कर्त्ता हैं।

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥

वे अरबों कुबेरों के समान धनवान् और करोड़ों मायाओं के समान प्रपंच रचने वाले हैं। भार उठाने में अरबों शेषनागों के समान हैं। सीमा और उपमा से रहित प्रभु रामजी जगदीश्वर हैं।

छं०—निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भांति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेस सुनि सुख मानहीं॥

श्रीरामजी उपमा रहित हैं, उनकी उपमा नहीं है। वेद कहते हैं कि श्रीरामजी के समान श्रीराम जी ही हैं, अरबों जुगनुओं को सूर्य के बराबर कहने में बहुत ही छोटापन लगता है। इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार मुनिश्वर श्रीहरि का गान करते हैं। प्रभु तो भाव मात्र के ग्राहक और दयालु हैं। प्रेम से सुनकर सुख मानते हैं।

दो०—रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउं तुम्हहि सुनायउं सोइ॥ १२२॥

श्रीरामचन्द्रजी अपार गुणों के समुद्र हैं क्या उनकी थाह पा सकता है। मैंने सन्तजनों से जैसे कुछ सुना था वैसा ही आपको सुनाया।

सो०—भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन॥ १॥

सुखनिधान करुणानिधान भगवान भाव के वश में हैं, इसलिए ममता, मद और मान को छोड़कर सदैव श्री सीतापति का भजन करना उचित है।

सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए॥
नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना॥

कागभुशुण्डिजी के मनोहर वचन सुनकर गरुड़जी ने प्रसन्न होकर अपने पंख फैला दिये, उन्होंने रामजी का प्रताप हृदय में धारण किया। उनकी आंखों में जल आ गया और मन बहुत प्रसन्न हुआ।

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना॥
पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा॥

पिछले मोह को स्मरण करके गरुड़जी बहुत पछिताये कि मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य करके माना गरुड़जी ने भुशुण्डिजी के चरणों में मस्तक नवाया और राम के समान जानकर स्नेह बढ़ाया।

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥

बिना गुरु के कोई भवसागर से तर नहीं सकता, चाहे वह ब्रह्मा और शिवजी के समान ही क्यों न हो। वे बोले—हे तात ! मुझे संशय-रूपी सर्प ने डस लिया था। वहां कुतर्क रूपी बहुत-सी दुःख देने वाली लहरें आ रही थीं।

तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जिआयउ जन सुखदायक॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥

भक्तों को सुख देने वाले रघुनाथजी की कृपा से आपका स्वरूप मुझे गारुड़ी हुआ। आपके द्वारा प्रभु ने मुझे जिला लिया। आपकी कृपा से मेरा मोह जाता रहा और मैंने रामजी का अनुपम गूढ़ रहस्य जान लिया!

दो०—ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि॥ १३४॥

उनकी विविध प्रकार से प्रशंसा करके मस्तक नवाकर और हाथ जोड़कर प्रेम पूर्वक विनती भरे वचन से गरुड़जी बोले—

प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउं स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि॥ १३५॥

हे प्रभु ! हे स्वामी ! अपने अज्ञान के वश मैं आपसे पूछता हूं, हे दयासिन्धु ! मुझे दास जानकर आदर पूर्वक मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिये।

तुम्ह सर्बग्य तग्य तम पारा। सुमति सुसील सरल आचारा॥
ग्यान बिरति बिग्यान निवासा। रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा॥

आप सब कुछ जानने वाले, तत्वज्ञानी, मोह से परे, बुद्धिमान, सुशील, सरल आचरण वाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के स्थान हैं। आप श्रीरामचन्द्रजी के प्यारे भक्त हैं।

कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥
राम चरित सर सुंदर स्वामी। पायहु कहां कहहु नभगामी॥

आपने यह कौए की देह किस कारण से पाई है ? हे तात ! सब बात मुझे समझाकर कहिये। हे स्वामी ! यह सुन्दर रामचरितमानस आपने कहां से पाया ? हे आकाशगामी ! सो कहिये।

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुं नास तव नाहीं॥
मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरें मन संसय अहई॥

हे स्वामी ! शिवजी से मैंने ऐसा सुना है कि महा प्रलय में भी आपका नाश नहीं होता । शंकरजी असत्य वचन नहीं कहते । यह मेरे मन में संशय है ।

अग जग जीव नाग नर देवा । नाथ सकल जगु काल कलेवा ॥
अंड कटाह अमित लय कारी । कालु सदा दुरतिक्रम भारी ॥

हे नाथ ! चराचर जीव, नाग, मनुष्य और देवता आदि सबही इस संसार में काल के कलेवा हैं । असंख्य ब्रह्माण्डों का नाश अनिवार्य है ।

सो०—तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन ।
मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल ॥ १० ॥

यह भयंकर काल जिस कारण आपको नहीं व्यापता । हे कृपालु ! मुझसे कहिये, यह ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल है ?

दो०—प्रभु तव आश्रम आएं मोर मोह भ्रम भाग ।
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग ॥ १२६ ॥

हे प्रभो ! आपके आश्रम में आते ही मेरा मोह भ्रम भाग गया । हे नाथ ! इसका क्या कारण है ? यह स्नेह सहित कहिये ।

गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा । बोलेउ उमा परम अनुरागा ॥
धन्य धन्य तव मति उरगारी । प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी ॥

हे उमा ! गरुड़जी की वाणी सुनकर भुशुण्डिजी प्रसन्न हुए और सप्रेम बोले—हे गरुड़जी ! आपकी बुद्धि बड़ी धन्य है । आपके प्रश्न मुझे बहुत प्यारे लगे ।

सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई । बहुत जनम कै सुधि मोहि आई ॥
सब निज कथा कहउं मैं गाई । तात सुनहु सादर मन लाई ॥

तुम्हारे प्रेम भरे सुन्दर प्रश्न सुनकर मुझे अनेक जन्मों की सुधि आ गई । हे तात ! मैं अपनी कथा वर्णन करता हूं, मन लगाकर सुनो ।

जप तप मख सम दम ब्रत दाना । बिरति बिबेक जोग बिग्याना ॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा । तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ॥

जप, तप, यज्ञ, संयम, दान, व्रत, वैराग्य, योग विज्ञान आदि इन सबका फल श्रीरामजी के चरणों में प्रेम होना है । इसके बिना कोई कल्याण नहीं पाता ।

एहिं तन राम भगति मैं पाई । ताते मोहि ममता अधिकाई ॥
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई । तेहि पर ममता कर सब कोई ॥

इस शरीर से मैंने श्रीरामजी की भक्ति पाई है । अतः इस देह पर मुझे अधिक प्रेम है, जिससे अपना कुछ स्वार्थ हो उस पर सब ही लोग प्रेम करते हैं ।

सो०—पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं ।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ॥ ११ ॥

हे सर्पों के शत्रु गरुड़ ! वेद मन से सत्पुरुष ऐसी नीति कहते हैं कि अपना परम हित जानकर महा नीच से प्रीति करनी चाहिए ।

पाप कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर ।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ॥ १२ ॥

रेशम कीड़े से होता है, उससे रेशमी कपड़े बनते हैं । इसी से उस पवित्र कीड़े को भी सब लोग अपने प्राणों की नाईं पालते हैं ।

स्वारथ सांच जीव कहुं एहा । मन क्रम बचन राम पद नेहा ॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ॥

जीवन का सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, कर्म और वाणी से श्रीरामजी के चरणों में स्नेह हो । वह शरीर पवित्र है और सुन्दर है कि जिस शरीर को पाकर रामजी का भजन किया जाय ।

राम बिमुख लहि बिधि सम देही । कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही ॥
राम भगति एहिं तन उर जामी । तातें मोहि परम प्रिय स्वामी ॥

जो रामजी से विमुख है वह चाहे ब्रह्मा के समान देह पा जाये तो भी चतुर विद्वान उसकी बड़ाई नहीं करते । स्वामी इस शरीर से रामजी की भक्ति मेरे हृदय में उत्पन्न हुई, इसी से यह शरीर मुझे परम प्रिय है ।

तजउं न तन निज इच्छा मरना । तन बिनु बेद भजन नहिं बरना ॥
प्रथम मोहं मोहि बहुत बिगोवा । राम बिमुख सुख कबहुं न सोवा ॥

अपनी इच्छा से मरण होने पर भी मैं इस शरीर को नहीं छोड़ता, क्योंकि वेदों में कहा है कि बिना शरीर के भजन नहीं होता । पहले मुझे भी मोह ने बहुत सताया था । रामजी से विमुख होकर मैं सुख से कभी नहीं सोया ।

नाना जनम कर्म पुनि नाना । किए जोग जप तप मख दाना ॥
कवन जोनि जनमेउं जहं नाहीं । मैं खगेस भ्रमि जग माहीं ॥

अनेकों जन्म लेकर नाना प्रकार के कर्म, योग, जप, तप, यज्ञ, दान आदि किए । हे पक्षिराज ! संसार में ऐसी कौन सी योनि है, जिसमें घूम-घूमकर मैं नहीं जन्मा ।

दो०–प्रथम जन्म के चरित अब कहउं सुनहु बिहगेस ।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस ॥ १३७ ॥

हे पक्षिराज ! सुनिये, अब मैं अपने पूर्व जन्म के चरित्र कहता हूं । उन्हें सुनकर प्रभु के चरणों में स्नेह उत्पन्न होगा जिससे क्लेश मिट जायेंगे ।

पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल ।
नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल ॥ १३८ ॥

हे प्रभु ! पहले कल्प में पहिला कलियुग पाप को जड़ था । पुरुष और स्त्री सभी अधर्मी और वेद के विरोधी थे ।

तेहिं कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई॥
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी॥

उसी कलियुग में अवधपुरी में जाकर शूद्र का शरीर पाकर जन्मा। मैं मन, कर्म और वचन से शिवजी का भक्त था परन्तु अन्य देवताओं का निन्दक और घमण्डी था।

धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥

धन के घमण्ड में मस्त रहता हुआ कि मैं बड़ा बकवादी था। मेरी बुद्धि तीव्र थी और मैं बड़ा पाखंडी था। यद्यपि मैं रामजी की राजधानी में रहता था तो भी मैंने तब उनकी महिमा कुछ नहीं जानी।

अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥
कवनेहुं जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥

अयोध्या पुरी का प्रभाव अब मैंने समझा। वेद, शास्त्र और पुराणों ने ऐसा कहा है कि कोई किसी जन्म में भी अवधपुरी में वास करे तो वह अन्त समय अवश्य रामचन्द्रजी का भक्त हो जायेगा।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं रामु धनुपानी॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥

अयोध्यापुरी के प्रभाव को प्राणी तभी जानता है, जब रामचन्द्रजी धनुष हाथों में लेकर उसके हृदय में वास करें। हे गरुड़जी! वह कलियुग बड़ा कठिन था क्योंकि सब नर-नारी पाप में लिप्त थे।

दो०—कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कलपि करि प्रगट किए बहु पंथ॥ १३९॥

कलिकाल में पापों ने सब धर्मों को दबा लिया, सदग्रन्थ लुप्त हो गये। पाखंडियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना करके अनेक ग्रन्थ प्रकट कर दिये।

भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥ १४०॥

सब लोग मोह के वश हो गये, लोभ ने शुभ कर्मों को ग्रस लिया। हे ज्ञानवान गरुड़जी! अब कलियुग के कुछ धर्म कहता हूं सुनिये।

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥

कलियुग में वर्ण, धर्म और चारों आश्रम नहीं रहते हैं। सब नर वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेदों के बेचने वाला, राजा प्रजा को खा जाने वाले होते हैं। वेद की आज्ञा कोई नहीं मानता।

मारग सोइ जा कहुं जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुं संत कहइ सब कोई॥

जिसको जो अच्छा लगे वही मार्ग है और वही पण्डित है जो डींग मारता है, जो झूठे ही बातें करता है और पाखंड में लगा है, उसी को सब लोग सन्त कहते हैं।

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचरन॥
जो कह झूंठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥

जो पराया धन हर लेता है वही होशियार है। जो बहुत बड़ा पाखण्ड फैलाता है वही बड़ा आचारी है। जो झूठ बोलना और हंसी करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान कहलाता है॥

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

जो आचार भ्रष्ट और वेद मार्ग को त्यागे हुए है, वही कलियुग में ज्ञानी और वैरागी है जिसके बड़े-बड़े नख और लम्बी जटायें हैं, कलियुग में वही प्रसिद्ध तपस्वी है।

दो०—असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥ १४१॥

जो अमंगल वेष, अमंगल भूषण धारण किये हैं और भक्ष्य-अभक्ष्य सब खा लेते हैं, कलियुग में वही योगी, सिद्ध और वही पूज्य है।

सो०—जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुं॥ १३॥

जो पराया अहित करते हैं उन्हीं को गौरव मिलता है, वे ही धन्य हैं। जो मन, कर्म और वचन से लबार हैं, वे ही कलियुग में वक्ता कहलाते हैं।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥

हे स्वामी! सब मनुष्य स्त्री के वश में हैं और नट के बन्दर की तरह नाचते हैं ब्राह्मणों को शूद्र ज्ञानोपदेश करते हैं और यज्ञोपवीत गले में डाल कर कुदान लेते हैं।

सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी॥
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥

सब लोग काम, लोभ और क्रोध में रत हैं देवता, ब्राह्मण वेद और सन्त जनों से विरोध करते हैं। गुणवान सुन्दर पति को छोड़ कर अभागिनी स्त्रियां पर पुरुष से प्रीति करती हैं।

सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥

सुहागिन स्त्रियां तो आभूषणों से रहित रहती हैं और विधवाओं के नित्य नये शृंगार होते हैं गुरु और शिष्य का अन्धे और बहिरे का सा बर्ताव होता है, एक (शिष्य) सुनता नहीं और एक (गुरु) देखता नहीं।

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुं परई॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥

जो गुरु शिष्य का धन तो हरे परन्तु उसका अज्ञान दूर नहीं करे तो वह गुरु घोर नरक में गिरता है। माता-पिता अपने बालक को जिससे पेट भरे वही धर्म सिखाते हैं।

दो०—ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥ १४२॥

स्त्री पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवाय दूसरी बात नहीं करते, परन्तु वे लोभ के वश थोड़े से ही धन के लिए ब्राह्मण और गुरु को मार डालते हैं।

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आंखि देखावहिं डाटि॥ १४३॥

शूद्र ब्राह्मणों के वाद-विवाद करते हैं कि हम तुमसे क्या कम हैं? ब्रह्म को जो जाने वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। ऐसे डपट कर आंख दिखाते हैं।

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर॥

जो पराई स्त्री में आसक्त, ठगने में चतुर और मोह, द्वेष और ममता में फंसे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेदवादी (अद्वैतवादी) ज्ञानी कहलाते हैं। मैंने कलियुग के ऐसे चरित्र देखे।

आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुं सत मारग प्रतिपालहिं॥
कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका॥

स्वयं तो नष्ट होते ही हैं और जो कोई अच्छे मार्ग पर चलते हैं, उनको भी नष्ट कर देते हैं। जो तर्क करके वेद को दोष लगाते हैं, वे कल्प-कल्प भर तक नरक में पड़े रहते हैं।

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥

तेली, कुम्हार, चांडाल, किरात, कोल, कलवार आदि जो नीच हैं, वे स्त्री के मरने पर तथा घर की सम्पदा नष्ट होने पर सिर घुटाकर सन्यासी बन जाते हैं।

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥

वे अपने पांव ब्राह्मणों से पुजाते हैं और अपने हाथों अपने दोनों लोक बिगाड़ लेते हैं। ब्राह्मण, मूर्ख, लोभी, कामी, अचार रहित, मूर्ख और नीच जाति की स्त्री के स्वामी होते हैं।

दो०—भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ॥ १४४ ॥

सब लोग कलियुग से वर्ण शंकर और मर्यादा से च्युत हो गये। वे पाप करके दुःख भय, रोग, शोक और वियोग पाते हैं।

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥ १४५ ॥

वेद सम्मत तथा वैराग्य और ज्ञान से युक्त श्रीहरि भक्ति का मार्ग है उस पर तो लोग चलते नहीं और अज्ञान के वश अनेक नये पन्थों की कल्पना कर लेते हैं।

बहु दाम संवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥

सन्यासी बहुत सा धन लगाकर घर सजाते हैं। बैराग्य उनमें नहीं रहा उसे विषयों ने हर लिया तपस्वी धनवान और ग्रहस्थ दरिद्री हैं। तात ! कलियुग का कौतुक कुछ कहा नहीं जाता।

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं ॥

पुरुष कुलवन्त और पतिव्रता स्त्री को घर से निकाल देते हैं और अच्छी चाल छोड़कर दासी को घर में रखते हैं। लड़के माता पिता को तब ही तक मानते हैं जब तक स्त्री का मुंह नहीं देखते।

ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें ॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं ॥

जब से ससुराल प्यारी लगने लगी तब से कुटुम्बी बैरी हो गये। राजा पाप में लग गये, उनमें धर्म नहीं रहा। वे नित्य ही प्रजा को दण्ड देकर सताते हैं।

धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी ॥
नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो ॥

नीच जाति का होने पर भी धनवान कुलीन कहलाता है। जनेऊ मात्र ही द्विजों का चिन्ह हो गया है और नंगे शरीर रहना ही तपस्वी का। जो पुराण और वेदों को नहीं जानते, कलियुग में वे ही हरिभक्त और साधू कहलाते हैं।

कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी ॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥

कवि तो बहुत हैं, ससार में कोई उदार पुरुष सुनने में नहीं आते। गुणों में दोष लगने वाले हैं, पर गुणी कोई नहीं है। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ता है। सब लोग अन्न के बिना दुःखी हो मरते हैं।

दो०–सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥ १४६॥

हे पक्षिराज गरुड़जी सुनो, कलियुग में छल, हठ, दंभ, ईर्ष्या, पाखण्ड, काम, क्रोध, लोभ और अहंकार ससार भर में फैल रहे हैं।

तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान॥ १४७॥

मनुष्य, जप, व्रत और दान तामसी भाव से करते हैं। देवता पृथ्वी पर वर्षा नहीं करते और बोया अन्न उगता नहीं।

अबला कच भूषन भरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥

स्त्रियों के बाल ही भूषण हैं उनको भूख बहुत लगती है। धनहीन और अधिक ममता होने के कारण वे दुःखी रहती हैं। कलियुग में वे मूर्ख सुख तो चाहती हैं पर धर्म में प्रीति नहीं करतीं। उनकी बुद्धि थोड़ी और कठोर है, उनमें कोमलता नहीं होती है।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं॥
लघु जीवन संबतु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा॥

रोग से मनुष्य पीड़ित है, सुख नहीं मिलता। बिना कारण ही लोग अभिमान और विरोध करते हैं। दस पांच वर्ष की थोड़ी आयु होने पर भी ऐसा घमण्ड है कि मानो कल्पोत कभी नाश न होगा।

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत कौ अनुजा तनुजा॥
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता॥

कलियुग ने मनुष्य को बेहाल कर डाला। कोई बहिन बेटी को भी नहीं मानता। न सन्तोष है, न विचार है, न शान्ति है, सब जाति कुजाति मंगता बन गये हैं।

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए॥

डाह, कठोरता, छल लालच हो रहे हैं, समता जाती रही। सब लोग वियोग व अधिक दुःख से भरे पड़े हैं। वर्णाश्रम, धर्म व विचार जाता रहा है।

दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे॥

इन्द्रियों को जीतना, दान, दया और समझदारी किसी के नहीं। मूर्खता और ठगाई बहुत बढ़ गई है। सब स्त्री-पुरुष अपने शरीर को पुष्ट करने वाले हैं। पराये निन्दक संसार में बहुत फैल गये हैं।

दो०–सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार॥ १४८॥

हे गरुड़जी ! सुनिए, कलियुग यद्यपि पाप और दोषों का भण्डार है, तो भी इस में एक गुण है कि इसमें बिना परिश्रम ही उद्धार हो जाता है।

कृतजुग त्रेतां द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥ १४९॥

सतयुग, त्रेता और द्वापर में पूजा, यज्ञ और योग से जो गति मिलती है वही गति कलियुग में लोग केवल भगवान के नाम से पा जाते हैं।

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेतां बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं॥

सतयुग में सब योगी और ज्ञानी होकर हरि का ध्यान धरते हैं और भव सागर से तर जाते हैं, त्रेता युग में लोग अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और सब कर्मों को भगवान को अर्पण कर संसार से पार होते हैं।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥

द्वापर में रामजी के चरणों की पूजा करके मनुष्य संसार से तरते हैं दूसरा उपाय नहीं है। कलि-युग में मनुष्य हरि के गुण गाकर ही भवसागर की थाह पर जाते हैं।

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥

कलियुग में योग यज्ञ और ज्ञान नहीं है, केवल राम गुण गान ही अधार है। जो सब भरोसों को छोड़कर श्रीरामजी का भजन करते हैं और प्रेमपूर्वक उनके गुण समूहों को गाते हैं।

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥

वे ही ससार सागर से तरते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं। कलियुग में नाम का प्रताप प्रत्यक्ष है। कलियुग का एक और पवित्र प्रताप है कि मन से किया पुण्य तो होता है, पर पाप नहीं होता।

दो०–कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥ १५०॥

कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है। जो मनुष्य भरोसा रखकर श्रीरामजी के चरित्रों का गान करे तो बिना प्रयास ही संसार से तर जावे।

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुं एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥ १५१॥

धर्म के चार चरण प्रसिद्ध हैं। उनमें से कलियुग में एक दान ही मुख्य है। किसी भी विधि से दिया जाय, दान कल्याण ही करता है।

नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयं राम माया के प्रेरे॥
सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥

युगों के धर्म सबके हृदय में श्री रामजी की प्रेरणा से नित्य हुआ करते हैं। शुभ सत्वगुण, समता, विज्ञान, और मन का प्रसन्न होना सतयुग का प्रभाव जानो।

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥

सत्वगुण अधिक हो, कुछ रजोगुण हो, कर्मों में प्रीति हो सब प्रकार से सुख हो यह त्रेता का धर्म है। रजोगुण अधिक हो, सत्वगुण बहुत थोड़ा हो, कुछ तमोगुण भी हो, मन में आनन्द और भय हो यह द्वापर का धर्म है।

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुं ओरा॥
बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥

तमोगुण अधिक हो रजोगुण कम हो, चारों ओर विरोध हो, यह कलियुग का प्रभाव है। बुधजन युगों के धर्म जानकर अधर्म छोड़कर धर्म में प्रीति करते हैं।

काल धर्म नहिं ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया॥

श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में जिनकी प्रीति है, उसे काल धर्म नहीं व्यापते। हे गरुड़जी जैसे नट का किया हुआ विकट और उसकी माया, नट के सेवक को नहीं व्यापते।

दो०—हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥ १५२॥

श्रीहरि की माया के किये दोष, गुण भगवान के बिना नहीं जाते। मन में ऐसा विचार कर सब कामनाओं को त्यागकर श्रीरामजी का भजन करना चाहिए।

तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउं अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउं बिदेस॥ १५३॥

हे पक्षिराज उस कलियुग में बहुत वर्षों तक अवध में रहा। एक बार वहां अकाल पड़ा तब विपत्ति के कारण मैं परदेश चला गया।

गयउं उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी॥
गएं काल कछु संपति पाई। तहं पुनि करउं संभु सेवकाई॥

हे गरुड़जी! दीन, मलिन, दरिद्री और दुखी होकर उज्जैन गया। कुछ समय बीतने पर थोड़ा धन पाकर मैंने यहां शिवजी का पूजन किया।

बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥

वहां एक वेदज्ञाता ब्राह्मण सदैव शिव पूजन किया करता था। उसे कोई दूसरा काम नहीं था। वह परम साधु परमार्थ को जानने वाला शिवजी का उपासक था, पर श्रीहरि का निन्दक न था।

तेहि सेवउं मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। विप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं॥

मैं उसकी सेवा कपट से करता था बड़ा दयालु और नीतिवान था। हे स्वामी! ऊपर से नम्र देख कर ब्राह्मण ने मुझे पुत्र के समान पढ़ाया।

संभु मंत्र मोहि द्विजवर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा॥
जपउं मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदयं दंभ अहमिति अधिकाई॥

फिर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे शिवजी का मन्त्र दिया और अनेक प्रकार का उपदेश दिया मैं शिबालय में जाकर शिव मन्त्र जपता था मेरे हृदय में पाखण्ड और अहंकार बस गया।

दो०—मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह।
हरिजन द्विज देखें जरउं करउं बिष्नु कर द्रोह॥ १५४॥

मैं दुष्टों, मलिन बुद्धि, नीच जाती का मोह वश ब्राह्मण और भक्तों को देखते ही जल जाता था और श्रीहरि से विद्रोह करता था।

सो०—गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई॥ १४॥

गुरुदेव नित्य मुझे समझाते और आचरणों को देख दुःखी होते थे, पर मुझे बहुत क्रोध आता था। दम्भी को क्या नीति भली लगती है?

एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भांति सिखाई॥
सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥

एक दिन गुरुजी ने बुलाकर बहुत प्रकार से नीति की शिक्षा दी कि हे पुत्र! शिवजी की पूजा का यह फल है कि श्रीरामजी के चरणों में भक्ति हो।

रामहि भजहिं तात सिव धाता। नर पावंर कै केतिक बाता॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहं सुख चहसि अभागी॥

हे तात! महादेवजी और ब्रह्माजी भी रामचन्द्रजी का भजन करते हैं तुच्छ मनुष्य की तो बात ही कितनी है? शिवजी और ब्रह्माजी जिनके चरणों में प्रीति करते हैं, उनमें द्रोह करके रे भाग्य हीन! तू सुख चाहता है?

हर कहुं हरि सेवक गुर कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ॥
अधम जाति मैं बिद्या पाएं। भयउं जथा अहि दूध पिआएं॥
मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुर कर द्रोह करउं दिन राती॥

गुरुजी ने शिवजी को हरि सेवक कहा, यह सुनकर हे गरुड़जी! मेरा हृदय जल उठा। मैं अधम

जाति की विद्या पाकर ऐसा हो गया जैसे दूध पिलाने से सांप । अत्यन्त मानी, टेढ़ा भाग्यहीन और जात का नीच मैं गरुड़जी से रात-दिन द्रोह करने लगा ।

अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा । पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा ॥
जेहि ते नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा ॥

गुरु बड़े दयालु थे वे क्रोध नहीं करते थे । बारम्बार अच्छे ज्ञान की शिक्षा देते थे । मैं दुष्ट था हृदय में कपट और कुटिलता थी । गुरुदेव ने मेरी भलाई की बात कही मुझे अच्छी न लगी ।

दो०—एक बार हर मंदिर जपत रहेउं सिव नाम ।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम ॥ १५५ ॥

एक बार मैं शिवालय में शिवजी का नाम जप रहा था । उसी समय वहां गुरुजी आए मैंने घमण्ड के मारे उन्हें प्रणाम नहीं किया ।

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस ।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस ॥ १५६ ॥

गुरुजी तो दयालु थे । उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, उनके जी में कुछ क्रोध नहीं था । पर गुरुजी के अपमान से महापाप हुआ, अतः शिवजी उसे न सह सके ।

मंदिर माझ भई नभबानी । रे हतभाग्य अग्य अभिमानी ॥
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा । अति कृपाल चित सम्यक बोधा ॥

मन्दिर में आकाशवाणी हुई कि रे अभागे ! अग्यानी ! यद्यपि तेरे गुरु के हृदय में क्रोध नहीं है । वे बड़े दयालु हैं, उनके हृदय में पूर्ण ज्ञान है ।

तदपि साप सठ दैहउं तोही । नीति बिरोध सोहाइ न मोही ॥
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा ॥

तो भी, रे दुष्ट ! मैं तुझे श्राप दूंगा । नीति का विरोध मुझे नहीं भाता । अरे नीच ! यदि तुझे मैं दण्ड न दूंगा तो मेरी मर्यादा नष्ट हो जायेगी ।

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं ॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा । अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा ॥

जो मूर्ख गुरु से बैर करते हैं वे करोड़ों युगों तक रौरब नरक में पड़े रहते हैं । फिर तिर्यक योनि में जन्म पाकर दस हजार जन्मों तक दुःख पाते हैं ।

बैठ रहेसि अजगर इव पापी । सर्प होहि खल मल मति ब्यापी ॥
महा बिटप कोटर महुं जाई । रहु अधमाधम अधगति पाई ॥

रे पापी नीच ! अपने गुरु को देख तू अजगर की भांति बैठा रहा । तुझे पाप बुद्धि ने घेर लिया है तू सांप हो जा । रे नीच तू अधम गति को पाकर बड़े वृक्ष के खोखले में जाकर रह ।

दो०-हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप॥ १५७॥

महादेवजी का श्राप सुनकर गुरुदेव ने हाहाकार किया। मुझे कांपते देख उनको बहुत दुःख हुआ।

करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गद गद स्वर समुझि घोर गति मोरि॥ १५८॥

तब मेरी भयंकर गति समझकर वे ब्राह्मण प्रेम सहित शिवजी के सामने हाथ जोड़कर दंडवत कर गद्गद् वाणी से स्तुति करने लगे।

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥

हे ईशान दिशा के ईश्वर, मोक्ष, स्वरूप, बिभु, व्यापक ब्रह्म और स्वरूप! मैं आपको नमस्कार करता हूं। स्वतन्त्र, निर्गुण एक रस, इच्छा रहित, सूक्ष्म और स्थूल आकाश में वास करने वाले आपका मैं भजन करता हूं।

निरकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशंगिरीशं॥
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं॥

निराकार, ओंकार की जड़, समाधि पूर्ण, वाणी और इन्द्रियों से परे कैलाशपति, महाकाल के भी काल दयालु गुणों के भण्डार संसार से परे मैं आपको नमस्कार करता हूं।

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारुगंगा। लसम्दालबालेन्दु कंठे भुजंगा॥

जो हिमालय के समान गौर वर्ण और गम्भीर हैं, करोड़ों कामदेवों के से कांतिमय शरीर वाले हैं, जिनके सिर पर सुन्दर नदी गंगा विराजमान हैं, जिनके माथे पर दोज का चन्द्रमा तथा कण्ठ में सर्प शोभायमान हैं।

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥

जिनके कानों में चंचल कुंडल हैं, सुन्दर भ्रकुटी और विशाल नेत्र हैं, जो प्रसन्न मुख नीलकंठ व दयालु हैं, बाघम्बर धारण किए हैं, जो मुण्डमाला धारी हैं, उन सबके स्वामी शिवजी को मैं भजता हूं।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं॥
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥

तेज पूर्ण श्रेष्ठ, सामर्थ्यवान परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मा करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान, तीनों प्रकार के दुःखों को दूर करने वाले, हाथ में त्रिशूल लिए हुए, भाव से प्राप्त होने वाले पार्वतीजी के पति को मैं भजता हूं।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी॥
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥

कला से परे, कल्याण दाता, कल्प का अन्त करने वाले, सज्जनों को सदा आनन्द देने वाले, सच्चिदानन्द घन, अज्ञान को हरने वाले, कामदेव के शत्रु हे प्रभु ! प्रसन्न हूजिये, प्रसन्न हूजिये ।

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं । भजंतीह लोके परे वा नराणां ॥
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ॥

हे उमानाथ ! जब तक मनुष्य आपके चरणरारविन्दों को नहीं भजते तब तक उन्हें इस लोक में अथवा परलोक में सुख शान्ति नहीं मिलती और न दुखों का नाश होता है । अतः हे सब जीवों में वास करने वाले प्रभ ! प्रसन्न हुजिये ।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ॥
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ॥

हे शम्भु ! मैं न तो योग जानता हूं, न जप और न पूजा ही । मैं तो सदैव आपको ही प्रणाम करता हूं । हे प्रभो ! बुढ़ापा और जन्म के दुःखों से क्लेशित मुझ दुखी की दुख से रक्षा कीजिये । हे ईश्वर ! मैं आपको नमस्कार करता हूं ।

श्लोक—रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥ ९ ॥

यह रुद्राष्टक ब्राह्मण द्वारा शिवजी की प्रसन्नता के लिए कहा गया है । इसको जो भक्ति पूर्वक पढ़ते हैं उन पर भगवान शंकरजी प्रसन्न होते हैं ।

दो०—सुनि बिनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु ।
पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु ॥ १५९ ॥

सर्वज्ञ शिवजी ने विनती और ब्राह्मण का प्रेम देखा, तब मन्दिर में आकाशवाणी हुई कि ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वर मांगो ।

जौं प्रसन्न प्रभु मो पर नाथ दीन पर नेहु ।
निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहु ॥ १६० ॥

ब्राह्मण बोले—हे प्रभो ! हे नाथ ! जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझ पर स्नेह है, तो अपने चरणों की भक्ति देकर फिर दूसरा वर दीजिए ।

तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान ।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान ॥ १६१ ॥

आपकी माया के वश यह जड़ जीव निरन्तर भूला फिरता है । हे कृपा के समुद्र भगवान इस पर क्रोध कीजिये ।

संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल ।
साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल ॥ १६२ ॥

हे दीनदयालु शंकरजी ! अब इस पर दयालु हो जाइये, जिससे हे नाथ ! थोड़े ही समय में आपके श्राप से इसका छुटकारा हो जाये ।

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभ बानी॥

हे कृपानिधान ! अब वही कीजिए जिससे इसका परम कल्याण हो। ब्राह्मण की पराये हित से भरी वाणी सुनकर यह आकाशवाणी हुई—एवमस्तु !

जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेषी॥

यद्यपि इसने घोर पाप किया और मैंने भी क्रोध करके श्राप दिया है, तो भी तुम्हारी सज्जनता देखकर इस पर मैं विशेष कृपा करूँगा।

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय यथा खरारी॥
मोर श्राप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जन्म सहस अवस्य यह पाइहि॥

हे द्विज ! जो क्षमावान् और परोपकारी हैं, वे मुझे ऐसे प्यारे हैं जैसे श्रीरामजी, मेरा श्राप व्यर्थ नहीं जायेगा। यह हजार जन्म अवश्य पावेगा।

जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई॥
कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना॥

परन्तु जन्मने और मरने में कठिन दुःख होता है वह दुःख इसे कुछ नहीं व्यापेगा और किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नष्ट नहीं होगा। हे शूद्र ! मेरा प्रामाणिक वचन सुन।

रघुपति पुरि जन्म तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवां मन दयऊ॥
पुरि प्रभाव अनुग्रह मोरें। राम भगति उपजिहि उर तोरें॥

श्रीरामजी की पुरी में तेरा जन्म हुआ। फिर मेरी सेवा में तूने मन लगाया। अब पुरी के प्रभाव से और मेरी दया से तेरे हृदय में राम—भक्ति उत्पन्न होगी।

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना॥

हे भाई ! अब मेरी तू बहुत सत्य बात सुन, ब्राह्मण की सेवा ही भगवान को प्रसन्न करने वाला व्रत है। अब कभी ब्राह्मण का अपमान मत करना और सन्तों को भगवान के समान ही जानना।

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला॥
जो इन्ह कर मारा अहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई॥

इन्द्र के वज्र, मेरे विशाल त्रिशूल, काल के दण्ड व श्रीहरि के कठिन चक्र का मारा भी मरता वह ब्राह्मण द्रोह-रूपी अग्नि से भस्म हो जाता है।

अस बिबेक राखेहु मन माहीं। तुम्ह कहं जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
औरउ एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी॥

ऐसा विवेक मन में रखना। फिर तुम्हें संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि तुम्हारी सर्वत्र गति होगी।

दो०—सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि।
मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि॥ १६३॥

महादेवजी के वचन सुनकर गरुड़जी प्रसन्न हुए और 'एवमस्तु' कहकर मुझे समझाकर व शिवजी के चरणों को हृदय में रखकर घर गये।

प्रेरित काल बिंधि गिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल॥ १६४॥

समय की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल में जाकर सर्प हुआ। फिर वह शरीर कुछ समय बीतने पर बिना कष्ट के ही छोड़ दिया।

जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान॥ १६५॥

हे गरुड़जी ! मैं जो शरीर धारण करता, उसे बिना परिश्रम के ही छोड़ देता था जैसे मनुष्य नये वस्त्र पहनकर पुराने वस्त्रों को छोड़ देता है।

सिवँ राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेस।
एहि बिधि धरेउँ बिबिधि तनु ग्यान न गयउ खगेस॥ १६६॥

हे गरुड़जी ! शिवजी ने वेद की मर्यादा रखी और मैंने भी क्लेश नहीं पाया। मैंने अनेक शरीर धारण किये पर मेरा ज्ञान नहीं गया।

त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुर कर कोमल सील सुभाऊ॥

पशु, पक्षी, देवता या मनुष्य जो भी शरीर धारण करता वहां श्रीरामजी का भजन जारी रखता परन्तु एक दुःख मुझे बना रहा, गुरुजी का कोमल शील स्वभाव मुझे कभी नहीं भूला।

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई॥
खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला॥

मैंने अन्त में ब्राह्मण का शरीर पाया, जो देवताओं को भी दुर्लभ है ऐसा पुराण और वेदों में कहा है, वहां मैं बालकों में मिलकर खेलता और सदैव श्रीरामचन्द्रजी की लीलायें किया करता।

प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा॥
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥

बड़े होने पर पिता ने मुझे पढ़ाया। मैंने समझा, सुना, विचार किया, पर पढ़ना मुझे अच्छा नहीं लगा। मन से सब इच्छायें दूर हो गयीं केवल श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में लगन लग गई।

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥

हे गरुड़जी ! कहिए कौन ऐसा, भाग्यहीन होगा जो कामधेनु को छोड़कर गधी की सेवा करेगा ? प्रेम में मग्न होने के कारण मुझे कुछ नहीं सुहाता था। पिता पढ़ा-पढ़ा कर हार गये।

भए कालबस जब पितु माता। मैं बन गयउं भजन जनत्राता॥
जहं जहं बिपिन मुनिस्वर पावउं। आश्रम जाइ जाइ सिरु नावउं॥

जब माता-पिता मर गये, तब मैं जनत्राता भगवान का भजन करने के लिए वन को चला गया वन में जहां-तहां मैं मुनिश्वरों को पाता था, वहां-वहां उनके आश्रमों में जाकर सिर नवाता था।

बूझउं तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनउं हरषित खगनाहा॥
सुनत फिरउं हरि गुन अनुबादा। अब्याहत गति संभु प्रसादा॥

उनसे रामजी के गुणों की कथायें पूछता और वे कहते। गरुड़जी ! गरुड़जी ! मैं प्रसन्न होकर सुनता। इसी प्रकार मैं हरि का गुणानुवाद सुनता फिरता था शिवजी की कृपा से मेरी सब जगह अबाध गति थी।

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥

मेरी तीनों प्रकार (धन, पुत्र, मान) की प्रबल इच्छायें जाती रहीं। हृदय में यही एक अभिलाषा अत्यन्त बढ़ी कि श्रीरामचन्द्रजी के चरणाविन्दों के दर्शन करूं तब अपना जन्म सफल समझूं।

जेहि पूंछउं सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्ब भूतमय अहई॥
निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥

जिन मुनि से पूछता वह यह कहते कि ईश्वर सर्व भूतमय है। यह निर्गुण मत मुझे नहीं सुहाता था। सगुण ब्रह्म में मेरी प्रीति बढ़ रही थी।

दो०–गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरउं छन छन नव अनुराग॥ १६७॥

गुरु बचनों की सुधि करके मेरा मन रामजी के चरणों में लग गया। मैं क्षण-क्षण में नये प्रेम से श्रीरामचन्द्रजी का गाता फिरता था।

मेरु सिखर बट छायां मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरु नायउं बचन कहेउं अति दीन॥ १६८

सुमेरु पर्वत की चोटी पर वट की छाया में लोमश ऋषि बैठे थे। उन्हें देखकर मैंने उनके चरणों में शीश नवाया और बहुत ही दीन वचन कहे।

सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूंछत भए द्विज आयहु केहि काज॥ १६६॥

हे गरुड़जी! मेरे नम्रतायुक्त मधुर वचन सुनकर दयालु मुनि मुझ से आदर के साथ पूछने लगे – हे प्रिय! आप किस कार्य से आये हैं।

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान॥ १७०॥

तब मैंने कहा—हे दयानिधान आप सर्वज्ञ हैं और परम चतुर हैं। हे भगवान! सगुण ब्रह्म की आराधना आप मुझसे कहिये।

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥

हे गरुड़जी! तब ऋषि ने रामजी के गुणों की कुछ कथायें आदर के साथ कहीं। फिर वे ब्रह्म ज्ञान में लीन मुनि मुझे उत्तम अधिकारी जानकर।

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥

ब्रह्म का उपदेश करने लगे कि ब्रह्म अजन्मा है, निर्गुण है और हृदय का स्वामी है। वह कलाओं से परे, इच्छा रहित वास रहित, रूप रहित, अनुभव से जानने योग्य, अखंड और उपमारहित है।

मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥

वह मन और इन्द्रियों से परे, निर्दोष, नाश रहित, निर्विकार, निस्सीम तथा सुखों की राशि है वह ब्रह्म तू है तरंग की भांति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है ऐसा वेद कहते हैं।

बिबिधि भांति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयं न आवा॥
पुनि मैं कहेउं नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥

मुनि ने मुझे बहुत भांति से समझाया पर निर्गुण मत मेरे मन में नहीं बैठा। मैंने फिर मुनि के चरणों सिर नवाकर कहा—हे मुनिश्वर! मुझे सगुण ब्रह्म की उपासना बतलाइये।

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥

राम-भक्ति रूपी जल से मेरा मन मछली हो रहा है। हे मुनिश्वर! वह उससे अलग कैसे रह सकता है? आप दया करके मुझे वही उपदेश दीजिए कि मैं नेत्रों से रघुनाथजी का दर्शन करूं।

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउं निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥

श्री अवधपति को नेत्रों भर से देखने के बाद निर्गुण का उपदेश मैं सुनूंगा। मुनि ने बारम्बार अनुपम कथा कहकर सगुण मत का खण्डन कर निर्गुण का निरूपण किया।

तब मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरूपउं करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥

तब मैं निर्गुण मत का खण्डन करके बड़े हठ से सगुण का निरूपण करने लगा मैंने वाद विवाद किया तो मुनि के हृदय में क्रोध प्रकट हुआ।

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएं। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएं॥
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥

हे प्रभो ? सुनिए, बहुत अपमान किए जाने से ज्ञानी के हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है। कोई चन्दन की लकड़ी को बहुत रगड़े तो उससे भी अग्नि प्रगट हो जाएगी।

दो०—बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन गयान।
मैं अपने मन बैठ तब करउं बिबिधि अनुमान॥ १७१॥

ऋषि क्रोध सहित बारम्बार ज्ञान का निरूपण करने लगे। तब मैं बैठा-बैठा मन में अनेक प्रकार के विचार करने लगा।

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान॥ १७२॥

दैत्य बुद्धि के बिना क्रोध कैसा, दैत्य बुद्धि क्या बिना अज्ञान के हो सकती है ? माया के बश में रहने वाला परिछिन्न जड़-जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है ?

कबहुं कि दुख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें॥
परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका॥

जो सब का हितकारी है, उसे क्या कभी दुःख हो सकता है ? जिसके पास पारसमणि है उसके पास क्या दरिद्रता रह सकती है ? परद्रोही क्या निर्भय हो सकता है ? कामी क्या कलंक से बच सकता है ?

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म कि होहि स्वरूपहि चीन्हें॥
काहू सुमति कि खल संग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी॥

ब्राह्मण के साथ बुराई करने पर क्या वंश रह सकता है ? स्वरूप की पहचान होने पर क्या कर्म हो सकता है ? संगति से क्या किसी की सुबुद्धि उपजती है ? परस्त्री गामी क्या कभी अच्छी गति पा सकता है ?

भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुं हरि निंदक॥
राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखाने॥

परमात्मा के जानने वाले क्या संसार चक्र में पड़ सकते हैं ? परि निन्दक क्या सुखी हो सकते हैं ? नीति के जाने बिना क्या राज्य रह सकता है ? हरि गुण गान करने से क्या पाप रह सकते हैं ?

पावन जस कि पुन्य बिनु होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥
लाभ कि किछु हरि भगति समाना । जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥

बिना पुण्य के क्या पवित्र यश मिल सकता है और क्या पाप किए बिना कोई अपयश पा सकता है ? हरि-भक्ति के समान क्या दूसरा लाभ भी है जिसकी महिमा वेद सन्त और पुराण गाते हैं ।

हानि कि जग एहि सम किछु भाई । भजिअ न रामहि नर तनु पाई ॥
अघ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥

हे भाई ! संसार में क्या इसके बराबर कोई और हानि है कि मनुष्य देह पाकर भी श्रीराम जी का भजन न किया जाय ? चुगली के बराबर क्या कोई दूसरा पाप है ! और हे गरुड़जी ! दया के समान क्या कोई दूसरा धर्म है ।

एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनऊं । मुनि उपदेस न सादर सुनऊं ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा । तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा ॥

इस प्रकार मैं अनेकों युक्तियां मन में सोचता और मुनि का उपदेश सादर नहीं सुनता था । जब बारम्बार मैंने सगुण का समर्थन किया तब मुनि क्रोध भरे वचन बोले—

मूढ़ परम सिख देउं न मानसि । उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि ॥
सत्य बचन बिस्वास न करही । बायस इव सबही ते डरही ॥

हे मूढ़ ! मैं तुझे उत्तम शिक्षा देता हूं, उसे तू नहीं मानता और बहुत से उत्तम प्रत्युत्तर करता है । सत्य वचन का विश्वास नहीं करता, कौए की भांति सभी से डरता है ।

सठ स्वपच्छ तव हृदयं बिसाला । सपदि होहि पच्छी चंडाला ॥
लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई । नहिं कछु भय न दीनता आई ॥

रे शठ ! तेरे हृदय में बहुत पक्षपात है । अतः तू इसी समय चांडल पक्षी हो जा । मुनि का शाप मैंने सिर पर चढ़ा लिया, मुझे न डर लगा ! न दीनता आई ।

दो०—तुरत भयउं मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउं उड़ाइ ॥ १७३ ॥

मैं तुरन्त कौआ हो गया । तब मुनि के चरणों में सिर नवाकर और रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र का स्मरण करके आनन्दपूर्वक उड़ चला ।

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ॥ १७४ ॥

(शिवजी बोले) हे पार्वती, जो श्रीरामजी के चरणों के प्रेमी हैं वे काम, मद और क्रोध से रहित होकर सब संसार को अपने स्वामी के रूप में देखते हैं । फिर वे किसी से विरोध करें ।

सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन । उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन ॥
कृपासिंधु मुदि मति करि भोरी । लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी ॥

(कागभुशुण्डिजी कहते हैं) —हे गरुड़जी, ऋषि का इसमें कुछ दोष नहीं था। सबके हृदय में प्रेरणा करने वाले रघुकुल शिरोमणि श्रीरामजी हैं। कृपासिन्धु से मुनि की बुद्धि को भली करके मेरे प्रेम की परीक्षा ली।

मन बच क्रम मोहि निज जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना॥
रिषि मम महत सीलता देखी। राम चरन बिस्वास बिसेषी॥

मन, कर्म और वाणी से मुझको अपना दास जानकर भगवान ने फिर मुनि की बुद्धि पलट दी। ऋषि ने मेरी सहनशीलता देखी और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में विश्वास देखा।

अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोरि लीन्ह बोलाई॥
मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा॥

तब मुनि ने बड़े आश्चर्य के साथ बारम्बार पछता करके मुझे आदरपूर्वक बुला लिया। उन्होंने अनेक भांति से मेरा सन्तोष किया। फिर प्रसन्न होकर मुझको राम मन्त्र दिया।

बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥
सुंदर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा॥

कृपानिधान मुनि ने मुझको बाल स्वरूप रामचन्द्रजी का ध्यान बतलाया। सुन्दर सुख देने वाला ध्यान मुझको बहुत ही अच्छा लगा। वह मैं आपको पहले ही सुना चुका हूं।

मुनि मोहि कछुक काल तहं राखा। रामचरितमानस तब भाषा॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई॥

मुनि ने मुझको कुछ समय तक वहां रक्खा। तब रामचरितमानस वर्णन किया। आदरपूर्वक मुझको यह कथा सुनाकर मुनि सुन्दर वाणी बोले—

रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥
तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउं बखानी॥

हे तात, यह गूढ़ और सुन्दर रामचरितमानस मैंने शिवजी की कृपा से पाया था। तुम्हें श्रीरामचन्द्र जी का निज भक्त जाना, इसी से मैंने सब चरित्र तुमसे कहा।

राम भगति जिन्ह के उर नाहीं। कबहुं न तात कहिअ तिन्ह पाहीं॥
मुनि मोहि बिबिधि भांति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा॥

हे तात जिनके हृदय में रामचन्द्रजी की भक्ति न हो, उनके आगे वह कथा कभी नहीं कहनी चाहिए। तब मुनि ने मुझे बहुत भांति से समझाया। तब प्रेम से मुनि के चरणों में सिर नवाया।

निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा॥
राम भगति अबिरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें॥

मुनिश्वर ने कर कमलों से मेरा शीश स्पर्श करके आनन्दपूर्वक आशीर्वाद दिया कि अब मेरे प्रसाद से तुम्हारे हृदय में अटल राम-भक्ति बसेगी।

दो०–सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥ १७५॥

तुम सदैव श्रीरामजी के प्रिय, उत्तम गुणों के स्थल, अहंकार रहित, कामरूप इच्छा से मृत्यु के अधीन और बैराग्य के निधान होओ।

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहं न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥ १७६॥

फिर जिस आश्रम में श्रीभगवान का स्मरण करते हुए बसोगे, वहां एक योजन तक अविद्या (माया) नहीं व्यापेगी।

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ॥
राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥

काल, कर्म, गुण, दोष स्वभाव आदि से उत्पन्न दुःख तुम्हें कभी नहीं व्यापेगा। श्रीरामजी की गुप्त और प्रगट जितनी सुन्दर कथायें, जो इतिहास और पुराणों में गाई हैं।

बिनु श्रम तुम्ह जानब सब कोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ॥
जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

वे सब तुम बिना परिश्रम ही जान जाओगे। श्रीरामजी के चरणों में तुम्हारा अनुराग नित्य नया होगा। तुम मन से जो कुछ करोगे, वह भगवान की कृपा से कुछ दुर्लभ नहीं होगा।

सुनि मुनि आसिष सुनु मति धीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गंभीरा॥
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी॥

हे धीरबुद्धि गरुड़जी, सुनिए, मुनि का आशीर्वाद सुनकर आकाश से गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई कि हे ज्ञानी मुनि, तुम्हारा वचन ऐसा ही हो। यह कर्म, मन और वाणी से मेरा भक्त है।

सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई॥

आकाश वाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैं प्रेम में मग्न हो गया और सब सन्देह जाता रहा। तब विनती करके मुनि की आज्ञा पाकर उनके चरणों में बारम्बार सिर नवाकर।

हरष सहित एहिं आश्रम आयउं। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउं॥
इहां बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥

मैं हर्षपूर्वक इस आश्रम में आया। प्रभु के प्रसाद से मैंने दुर्लभ वर पाया था। हे पक्षिराज! सुनो, यहां बसते हुए मुझे कल्प बीत गये।

करउं सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना॥
जब जब अवधपुरीं रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥

मैं यहां सदा रामगुन-गान किया करता हूं। चतुर पक्षिराज उसे आदर से सुनते हैं। श्रीरामजी जब-जब भक्तों के हित के लिए अयोध्या में शरीर धारण करते हैं।

तब तब जाइ राम पुर रहऊं। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊं॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आश्रम आवउं खग भूपा॥

तब-तब मैं अयोध्या में रहता हूं और बाललीला देखकर सुख पाता हूं। फिर हे गरुड़जी! श्रीराम जी का बाल स्वरूप अपने हृदय में रखकर आश्रम में आ जाता हूं।

कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देह जेहिं कारन पाई॥
कहिउं तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी॥

जिस कारण मैंने कौए की देह पाई वह सब कथा मैंने आपको सुनाई। हे तात! मैंने आपके प्रश्नों का उत्तर दिया। अहा! श्रीराम भक्ति की बड़ी भारी महिमा है।

दो०—ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउं गए सकल संदेह॥ १७७॥

यह काग शरीर मुझे इसी से प्रिय है कि इससे श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम हुआ, प्रभु के दर्शन पाए और सब सन्देह दूर हो गया।

भगति पच्छ हठ करि रहेउं दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउं देखहु भजन प्रताप॥ १७८॥

मैं भक्ति पक्ष पर हठ करके अड़ा रहा, जिससे महर्षि ने मुझे श्राप दिया। भजन का प्रताप तो देखिये कि फिर मैंने दुर्लभ वर पाया।

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृहं त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥

ऐसी भक्ति को जो जान बूझकर छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान के लिए परिश्रम करते हैं, वे मूर्ख अपने घर की कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए अकौए के वृक्ष खोजते फिरते हैं।

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥

हे पक्षिराज! सुनिये, जो लोग भगवान की भक्ति को छोड़कर दूसरे उपाय से सुख चाहते हैं, वे शठ महासागर को बिना नौका के ही अपनी जड़ करनी पर तैरकर पार करना चाहते हैं।

सुनि भसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं॥

(शिवजी बोले -) हे भवानी! भुशुण्डिजी के वचन सुनकर गरुड़जी आनन्दित होकर मधुर वाणी से बोले—हे प्रभो! आपकी कृपा से हृदय में संशय, दुःख, मोह और भ्रम नहीं रहा।

सुनेउं पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपां लहेउं बिश्रामा॥
एक बात प्रभु पूंछउं तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही॥

मैंने अपनी कृपा से पवित्र चरित्र सुने और शान्ति पाई। हे प्रभो मैं आपसे एक बात पूछता हूं। समझाकर मुझे बताइये।

कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं॥

सन्त, मुनि, वेद और पुराणों का कथन है कि ज्ञान के बराबर कुछ दुर्लभ नहीं है, वह ज्ञान आपसे लोमेश ऋषि ने कहा। हे गोसांई! परन्तु आपसे भक्ति के बराबर उसका आदर नहीं किया।

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना॥

हे दयानिधि प्रभु, ज्ञान और भक्ति में कितना अन्तर है? सो सब मुझसे कहिये। गरुड़जी के वचन सुन सुख मानकर सुजान भुशुण्डिजी बोले—

भगतिहि ग्यानहि ननिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव सम्भव खेदा॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर॥

ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं है। दोनों ही संसार जनित दुःखों को हर लेते हैं। हे तात! इसमें मुनिश्वर कुछ अन्तर बतलाते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ, उसे सावधान होकर सुनिये।

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भांती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥

सुनिये गरुड़जी! ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान ये सब पुरुष हैं। पुरुषों का प्रताप सब तरह से प्रबल होना है और स्त्रियां स्वभाव से बलहीन और जड़ प्रकृति की होती हैं।

दो०—पुरुष त्यागी सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर॥ १७१॥

जो पुरुष विरक्त और धीर बुद्धि हैं, वे स्त्री को छोड़ सकते हैं, न कि वे जो कामी विषयों में फंसे हुए श्रीरामचन्द्रजी के चरणों से विमुख हैं।

सो०—सोउ मुनि ग्यान निधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट॥ १५॥

ज्ञान निरधन मुनि भी मृगनयनी स्त्री के चन्द्रमुख को देखकर विवश हो जाते हैं। हे गरुड़जी! श्रीहरि की माया ही स्त्री रूप से प्रकट है।

इहां न पच्छपात कछु राखऊं। बेद पुरान संत मत भाषउं॥
मोह न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥

मैं यहां कुछ पक्षपात नहीं रखता। वे पुराण और सन्तों का मत ही कहता हूं। हे गरुड़जी! स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नहीं होती, यह विलक्षण रीति है।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥

सुनिये, माया और भक्ति ये दोनों स्त्री जाति हैं, यह सब कोई जानते हैं। फिर भक्ति तो श्रीरघुनाथजी को प्यारी है और माया बेचारी तो निश्चय ही नाचने वाली है।

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥

श्रीरामचन्द्रजी भक्ति के विशेष अनुकूल हैं इस कारण भक्ति से माया बहुत डरती है। उपमा रहित और उपाधि रहित राम भक्ति जिसके हृदय में सदैव बिना बाधा के वास करती है।

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी॥

उसे देखकर माया लज्जित होती है। अपनी प्रभुता उस पर कुछ नहीं करती। ऐसा विचार कर ही जो ज्ञानी मुनि हैं, वे सब गुणों की खान भक्ति ही को मांगते हैं।

दो०—यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा सपनेहुं मोह न होइ॥ १८०॥

रघुनाथजी के इस गूढ़ मर्म को कोई नहीं जान पाता। श्रीरघुनाथजी की कृपा से इसे जान पाता है, उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता।

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन॥ १८१॥

हे चतुर गरुड़जी! ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनिये, जिसे सुनकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में सदा अविच्छिन्न प्रेम हो जाता है।

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

हे तात! यह अकथनीय कथा सुनिये। यह समझने में आती है, कही नहीं जा सकती। जीव ईश्वर का अंश है। अविनाशी, चेतन, निर्बल और स्वभाव से ही सुख की राशि (आनन्दमय) है।

सो मायाबस भयउ गोसाईं। बंध्यो कीर मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥

हे स्वामी, यह माया के वश होकर तोते और बन्दर की भांति फंस गया है, ऐसे जड़ (माया) और चेतन (जीव) में गांठ पड़ गई है। यद्यपि वह मिथ्या है तथापि उसके छटने में कठिनाई है।

तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥

तभी से यह जीव संसार हो गया है। न तो गांठ छुटती है और न यह सुलझती है। वेद और पुराणों ने बहुत उपाय कहे हैं, परन्तु वह गांठ नहीं छुटती, अधिकाधिक उलझती ही जाती है।

जीव हृदयं तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी॥
अस संजोग ईस जब करई। तबहुं कदाचित सो निरुअरई॥

जीव के हृदय में अज्ञानरूपी अन्धकार विशेष रूप से छा रहा है इससे यह गांठ दीख नहीं पड़ती, फिर छुटे तो कैसे ? बस कभी ईश्वर ऐसा संयोग करे, तब भी कदाचित वह हो छुट पाती है।

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपां हृदयं बस आई॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥

ईश्वर की कृपा से सात्विक श्रद्धारूपी कामधेनु यदि जीव के हृदय में आकर बसे और जप, तप, व्रत, यम नियम आदि उत्तम धर्म और आचरण जो वेदों में कहे हैं।

तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥

उस (धर्माचाररूपी) घास को गाय चरे और शुभ भावरूपी बछड़े को पाकर पन्हाए। निवृत्ति (विषयों से हटना) रस्सी है, विश्वास करते हैं। वे स्वयं अपने वश में रहने वाला शुद्ध मन अहीर है।

परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमां जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै॥

हे भाई, ऐसे धर्मरूपी दूध को दुहे, फिर निष्काम भावना रूपी अग्नि में औटावे, तब सन्तोष और क्षमारूपी वायु से ठण्डा करे और संयम तथा धर्मरूप जामन देकर उसे जमावे।

मुदितां मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

फिर प्रसन्नता रूपी मटकी में विचार रूपी मथनों को दम्भरूपी खम्भे में अटका कर सत्य और मीठी वाणी रूपी डोरी लगाकर उसे मथे और निर्मल और अत्यन्त पवित्र वैराग्य ही मक्खन उसमें से निकाल ले।

दो०—जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥ १८२॥

फिर योग रूपी अग्नि प्रकट करके अच्छे बुरे कर्म रूपी ईंधन लगा दे। ममतारूपी मैल जल जाय तो शुद्ध जल से शीतल करे—

तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥ १८३॥

तब विज्ञान का निरूपण करने वालो रूपी घी को पाकर चित्तरूपी दीपक में भरकर, समदृष्टि रूपी ममता की दीवट बनाकर उस पर धरे।

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय संवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥ ११८॥

फिर तीनों अवस्थायें (जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति और तीनों गुण सत्य, रज, तम) रूपी कपास से तुरीयावस्था रूपी रुई को निकाल कर भली-भांति संभालकर उसकी कड़ी बत्ती बनावे।

सो०—एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥ १६॥

इस भांति तेज पुंज विज्ञानमय दीपक को जलावे, जिसके पास जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जायें।

सोहमस्सि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

'मोहमस्मि' (वह ब्रह्म मैं हूं) यह जो आपके अखण्ड विचार हैं, वही उस दीपक की बड़ी तीक्ष्ण लौ है। जब आत्मानुभव के सुख का अन्दर प्रकाश फैलता है, तो संसार के कारण रूप भेद भ्रम का नाश हो जाता है।

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उंजिआरा। उर गृहं बैठि ग्रंथि निरुआरा॥

और महाबली अविद्या के परिवार मोह आदि का घोर अन्धकार दूर हो जाता है। तब वही विज्ञान को निरूपण करने वाली बुद्धि उजाला पाकर हृदय रूपी घर में बैठकर उस जड़-चेतन की गांठ को खोलती है।

छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया॥

यह बुद्धि उस गांठ को खोल सके, तब यह जीव कृतार्थ हो। पक्षिराज! गांठ खोलते हुए जानकर माया अनेकों बाधायें करती है।

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥

हे भाई! वह बहुत सी ऋषि सिद्धियां भजते हैं, जो आकर बुद्धि को लालच दिखाती हैं। वे दाव पेंच और छल-बल करके दीपक के पास पहुंचकर अंचल की वायु से उसे बुझा देती है।

होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥

यह बुद्धि बहुत ही चतुर हुई, तो उनको शत्रु जानकर उनकी ओर नहीं देखती। यदि विघ्नों में बुद्धि न फंसे तो फिर देवता बाधा करते हैं।

इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहं तहं सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

इन्द्रियों के द्वारा अनेकों झरोखे हैं। प्रत्येक द्वार पर देवता अड्डा जमाये बैठे हैं। जब वे विषय रूपी वायु को देखते हैं, तब हठ करके किवाड़ खोल देते हैं।

जब सो प्रभंजन उर गृहं जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥

ज्यों ही विषयरूपी वायु हृदयरूपी घर में पहुंचती है तो विज्ञान का दीपक बुझा देती है। गांठ भी न छुटी और उजाला मिट गया। विषयरूपी वायु से बुद्धि व्याकुल हो गई।

इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥

इन्द्रियों और देवताओं को ज्ञान नहीं सुहाता, क्योंकि उनकी प्रीति विषय भोगों पर सदा ही रहती है। जब विषय रूपी पवन ने बुद्धि को भुला दिया तो फिर उसी विधि से दीपक को कौन जलावे?

दो०—तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति कलेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥ १८५॥

तब जीव अनेक प्रकार के संसृति के क्लेश पाता है। हे पक्षिराज! प्रभु की माया बहुत दुस्तर है, वह सहज में ही तरी नहीं जाती।

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥ ११८।

विवेक कहने में कठिन, समझने में कठिन व साधन में भी कठिन है। जो संयोगवश सिद्ध भी हो जाय तो फिर अनेक विघ्न हैं।

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥

हे पक्षिराज! ज्ञान का पन्थ कृपाण की धार है इससे गिरते देर नहीं लगती। ज्ञानी बिना बाधाओं के इस मार्ग को निवाह ले जाता है, वही कैवल्यरूपी परम (मोक्ष) पाता है।

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

सन्त, पुराण वेद और शास्त्र कहते हैं कि कैवल्यरूपी परम पद बहुत ही दुर्लभ है, किन्तु हे गोसांई वही मुक्ति श्रीरामचन्द्रजी के भजन से बिना इच्छा किए ही जबरदस्ती आ जाती है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भांति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥

जैसे बिना भूमि के जल नहीं रह सकता चाहे कोई करोड़ों उपाय करे, वैसे ही हे गरुड़ जी! हरि-भक्ति को छोड़कर मोक्ष नहीं रह सकता।

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥

ऐसा समझकर बुद्धिमान हरि भक्ति पर लुभा जाते हैं। भक्ति करने से बिना उपाय और परिश्रम किए ही संसार की मूल अविद्या का नाश वैसे ही हो जाता है।

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ॥

जैसे तृप्ति के लिए भोजन किया जाता है, परन्तु उस भोजन को जठराग्नि अपने आप पचा देती है। जिसे ऐसी सुगम और सुख देने वाली हरि-भक्ति न सुहाये ऐसा मूर्ख कौन होगा ?

दो०–सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥ १८७ ॥

हे गरुडजी ! सेवक सेव्य भाव के बिना संसार से तर नहीं सकते। ऐसा सिद्धांत समझकर जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं।

जो चेतन कहं जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥ १८८ ॥

जो चेतन को जड़ कर देते हैं और जड़ चेतन कर देते हैं, ऐसे समर्थ श्रीरामचन्दजी को जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं।

कहेउं ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ॥
राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ॥

मैंने ज्ञान का सिद्धांत समझकर कहा है। मणिरूपो भक्ति की प्रभुता सुनिए। हे गरुड़जी जिसके हृदय में यह बसती है --

परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥

वह दिन रात अत्यन्त प्रकाशित रहता है। उसे दिया, घी, बत्ती कुछ भी नहीं चाहिए। मोहरूपी दरिद्र उसके पास आता और लोभरूपी वायु उसे बुझा नहीं सकती।

प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं ॥

अविद्या रूपी अन्धकार मिट जाता है। मदादि पतङ्गों के समूह हार जाते हैं। काम आदि दुष्ट उसके पास नहीं जाते, जिसके हृदय में भक्ति बसती है।

गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥

उसके लिए विष अमृत के समान और शत्रु मित्र हो जाते हैं। उस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता। जिनके वश होकर सब दुःखी रहते हैं, वे बड़े-बड़े मानस रोग उसको नहीं व्यापते।

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुं ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

राम-भक्त रूपी मणि जिसके हृदय में बसती है। उसे स्वप्न में भी दुःख नहीं होता। संसार में वे ही लोग अच्छे चतुर हैं, जो भक्ति रूपी मणि के लिए उत्तम उपाय करते हैं।

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥

यद्यपि यह मणि जगत प्रत्यक्ष है, तथापि श्रीरामजी की कृपा के बिना कोई उसे नहीं पाता। उसके पाने के उपाय सहज हैं, पर अभागे मनुष्य उसे ठुकरा देते हैं।

पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥

वेद पुराण पवित्र हैं श्रीराम कथायें उनमें सुन्दर खाने हैं, सन्त मर्मी हैं, सुन्दर बुद्धि कुदाल है, ज्ञान वैराग्य दो नेत्र हैं।

भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥
मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥

जो सप्रेम खोजते हैं, वह सब सुखों की खान भक्ति रूपी मणि को पाता है। हे प्रभो, मेरे मन में ऐसा विश्वास है कि राम-भक्ति रामजी से बढ़कर है।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूं पाई॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥

श्रीरामजी समुद्र हैं तो धीर सज्जन मेघ हैं। श्रीहरि चन्दन के वृक्ष हैं, तो सन्त वायु हैं सबका फल सुन्दर हरि भक्ति है। उसे सन्तों के बिना किसी ने नहीं पाया। हे गरुड़जी! ऐसा विचार कर जो सत्सङ्ग करता है उसे श्रीराम-भक्ति सुलभ हो जाती है।

दो०—ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥ १८९॥

ब्रह्म समुद्र है, ज्ञान मन्दराचल है और सन्त देवता हैं जो उस समुद्र को मथकर कथा रूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्ति रूपी मधरता बसती है।

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥ १९०॥

हे गरुड़जी, विचार कर देखिये वैराग्यरूपी ढाल और ज्ञानरूपी तलवार से जो लोभ, मोहरूपी शत्रुओं को मारकर विजय पाती है, वही भक्ति है।

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥

फिर पक्षिराज सप्रेम बोले—हे कृपालु, जो आपका मुझ पर प्रेम है, तो मुझे सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों का बखान कर कहिये।

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी॥

हे धीर बुद्धि! हे नाथ! पहले यह बतलाइए कि सबसे दुर्लभ शरीर कौन सा है? सबसे बड़ा दुःख और सब में बड़ा सुख कौन सा है? सो थोड़े ही में विचार कर कहिये।

संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥

सन्त और असन्तों का भेद आप जानते हैं उनका सहज स्वभाव कहिए। हे कृपालु! वेदों में प्रसिद्ध महान पुण्य और घोर पाप कौन सा है? सो कहिए।

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउं यह नीती॥

फिर मानस रोगों को समझाकर कहिए। आप सर्वज्ञ हैं, मुझ पर आपकी कृपा भी बहुत है। (भुशुण्डिजी बोले—) हे तात! अति आदर और प्रेम के साथ सुनिए। मैं यह नीति संक्षेप में कहता हूं।

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्याद बिराग भगति सुभ देनी॥

मनुष्य देह के बराबर कोई देह नहीं है, चर अचर सभी जीव जिसकी चाह करते हैं वह मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मुक्ति की सीढ़ी है और ज्ञान, वैराग्य, भक्ति व सुख देने वाली है।

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर॥
कांच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं॥

ऐसा शरीर पाकर भी जो हरि का भजन नहीं करते और विषयों में प्रीति करते हैं, वे मूर्ख से भी बढ़कर मूर्ख हैं। वे हाथ से पारस मणि को फेंक देते और कांच का टुकड़ा उसके बदले में लेते हैं।

नहि दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥

जगत में दरिद्रता के समान दुःख नहीं है और सन्त मिलने के बराबर जगत में सुख नहीं है। हे गरुड़जी! वचन, मन और शरीर से परोपकार करना सन्तों का सहज स्वभाव है।

संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥
भूर्ज तरु सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला॥

दूसरे की भलाई के लिए सन्त दुःख सहते हैं और अभागे दूसरों को दुःख देने के लिए। दयालु सन्त भोज के वृक्ष के समान पराए हित के लिए भारी विपत्ति सहते हैं।

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥

किन्तु दुष्टजन सन के समान दूसरों को बांधते हैं, अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मरते हैं। सुनिये गरुड़जी ! दुष्ट अकारण ही दूसरों को हानि पहुंचाते हैं जैसे सांप और चूहे।

पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं॥
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥

वे पराई सम्पदा को नष्ट करके आप भी मिट जाते हैं जैसे खेतों को नष्ट करके ओले पिघल जाते हैं। दुर्जनों का उदय प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु की भांति जगत् को नष्ट करने के लिए होता है।

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा॥

सन्तों का उदय सदैव सुखकर होता है जैसे चन्द्रमा और सूर्य का उदय संसार भर को सुखदायी है। अहिंसा वेदों ने श्रेष्ठ धर्म माना है और पर निन्दा के बराबर भारी पाप कोई नहीं है।

हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥

शंकरजी और गुरु की निन्दा करने वाला मेंढ़क होता है और हजार जन्म तक यही शरीर पाता है। ब्राह्मण निन्दक बहुत से नरक भोग कर भी कौए का शरीर धारण कर जन्म लेता है।

सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥
सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥

जो घमण्डी वेदों के निन्दक हैं वे रौरव नरक में पड़ते हैं। सन्त निन्दक उल्लू होते हैं। उन्हें ज्ञान रूपी सूर्य अस्त होने पर मोहरूपी रात प्यारी होती है। सर्व निन्दक चमगादड़ होकर जन्मते हैं।

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

हे तात ! अब मानस रोग सुनिये, जिससे सब लोग दुःख पाते हैं। सब रोगों की जड़ मोह है। उससे फिर बहुत से दुःख उत्पन्न होते हैं।

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

काम वायु है, अत्यन्त लोभ कफ है और अति क्रोध पित्त है, जो छाती जलाता है। यदि ये तीनों भाई प्रीति कर लें तो दुःख देने वाला सन्निपात रोग उत्पन्न हो जाता है।

बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम क जानो॥
ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥

विषयों के मनोरथ अनेक मूल हैं, उनके नाम कौन जानता है ? ममता दाद है, ईर्षा खाज है और शोक गलगण्ड रोगों की अधिकता है।

पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥

पराये सुख को देखकर हृदय में दाह होना ही क्षय है, दुष्टता और मन का खोटापन ही कोढ़ है, अहंकार महा दुखदाई गांठ का रोग है। पाखंड कपट, मद और मान ये नहरुआ रोग हैं।

तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहं लगि कहौं कुरोग अनेका॥

तृष्णा बड़ा भारी जलोदर रोग है, तीन प्रकार की इच्छा (स्त्री, पुरुष, धन) बलवती तिजारी है मत्सर व अविवेक दो ज्वर हैं। अनेक बुरे रोग हैं, कहां तक कहूं ?

दो०-एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुं सो किमि लहै समाधि॥ १११॥

एक ही रोग के वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, ये तो बहुत से असाध्य रोग हैं। ये जीव जो सदैव क्लेश देते हैं फिर वह शान्ति कैसे पाये ?

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥ ११२॥

हे गरुड़जी ! नियम, धर्म, आचार, तपस्या, ज्ञान, जप, तप और दान आदि करोड़ों औषधियां हैं परन्तु इनसे ये रोग नहीं जाते।

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए॥

इस भांति जगत में सब रोगी हैं, जो दुःख, भय, प्रीति और वियोग से दुःखी हैं। थोड़े से मानस रोग मैंने कहे हैं, ये होते तो सबको हैं, पर थोड़े ही लोगों ने इन्हें जान पाया है।

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयं का नर बापुरे॥

जानने से ये पाप कुछ कम हो जाते हैं, पर वे मनुष्यों को क्लेश देने वाले नष्ट नहीं होते। विषयी कुपथ्य पाकर ये मुनियों के हृदय में भी हो जाते हैं, बिचारे मनुष्य किस गिनती में हैं ?

राम कृपां नासहिं सब रोगा। जौं एहि भांति बनै संयोगा॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥

श्रीराम कृपा से सब रोग नष्ट हो जायें यदि संयोगवश सदगुरुरूपी वैद्यों के वचनों पर विश्वास हो और विषयों की आशा न करे यही संयम है।

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

राम-भक्ति संजीव जड़ी है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान है। इस भांति से भले ही बुरे रोग नष्ट हो जायें नहीं तो करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते।

जानिअ तब मन बिरुज गोसांई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥

हे गोसांई! तब ही मन निरोग समझना चाहिये, जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जावे सुबुद्धि रूपी भूख दिनों दिन बढ़ती रहे और विषयों की आशा रूपी दुर्बलता जाती रहे।

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥

जब शुद्ध ज्ञान रूपी जल से मनुष्य स्नान करेगा तब मन में राम-भक्ति छा जायेगी। महादेवजी, ब्रह्माजी, शुकदेवजी जो सनकादिक, नारदादि और ब्रह्मज्ञान में जो चतुर मुनि हैं, हे गरुड़जी! उनका मत यही है कि रघुनाथजी के चरण-कमलों में प्रीति करनी चाहिए।

श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा॥

वेद पुराण और सब ग्रन्थों में कहा है कि श्रीराम-भक्ति के बिना सुख नहीं है। कछवे की पीठ पर भले ही बाल उग आवें और बांझ का पुत्र भले ही किसी को मार डाले।

फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥

आकाश में भले ही भांति-भांति के फूल फूलने लगें परन्तु श्रीहरि के विरोधी को सुख नहीं मिलता। मृग तृष्णा का जल पीने से भले ही प्यास जाती रहे, खरगोश के सिर पर भले ही सींग हो जायें।

अंधकारु बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥

अन्धेरा चाहे सूर्य का नाश कर दे और भले ही अग्नि प्रकट हो जाय, पर श्रीरामजी से विमुख हो कोई सुख नहीं पा सकता।

दो०—बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥ ११३॥

पानी को मथने से घी और बालू से तेल भले ही निकल आवे परन्तु श्रीरामजी के भजन बिना भवसागर से नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धांत अटल है।

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहिं भजहिं प्रबीन॥ ११४॥

प्रभु मच्छर को ब्रह्मा और ब्रह्मा को मच्छर से भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा समझकर सन्देह त्याग कर चतुर लोग श्रीरामजी को ही भजते हैं।

श्लोक–विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुरतरं तरन्ति ते॥

मैं आपसे निश्चय की हुई बात कहता हूं - मेरा कहना झूठ नहीं है जो मनुष्य हरि का भजन करते हैं, वे इस अपार संसार से तर जाते हैं।

कहेउं नाथ हरि चरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा॥
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥

हे नाथ! मैंने हरि के अनेकों चरित्र अपनी मति के अनुसार कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप से कहे गरुड़जी! वेदों का सिद्धान्त है कि सब काम को भुलाकर रामजी को ही भजना चाहिये।

प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही॥
तुम्ह बिग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा॥

प्रभु रघुनाथजी को छोड़कर किस की आराधना की जाये, मुझ सरीखे मूर्ख पर जिनका अनुराग है। नाथ! आप विज्ञानवान हैं। आपको मोह नहीं है, आपने तो मुझ पर बड़ी कृपा की है।

पूंछिहु राम कथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि॥
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥

आपने मुझसे अति पवित्र राम कथा पूछी, जो शुकदेवजी सनकादि और महादेव जी के मन को प्रिय है। संसार में पल भर अथवा घड़ी भर का एक बार सत्संग भी दुर्लभ है।

देखु गरुड़ निज हृदयं बिचारि। मैं रघुबीर भजन अधिकारी॥
सकुनाधम सब भांति अपावन। प्रभु मोहि कीन्हि बिदित जग पावन॥

हे गरुड़जी! अपने मन में विचार कर देखिये क्या मैं भी श्रीरघुनाथजी के भजन का अधिकारी हूं? पक्षियों में अधम और सब प्रकार से अपवित्र हूं। परन्तु प्रभु ने मुझे भी संसार को पवित्र करने वाला कर दिया।

दो०–आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन॥ ११५॥

यद्यपि मैं सब प्रकार से नीच हूं, तथापि आज मैं धन्य हूं जो श्रीरामजी ने मुझे अपना दास जान कर सन्त समागम दिया।

नाथ जथामति भाषेउं राखेउं नहिं कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ॥ ११६॥

हे नाथ! अपनी मति के अनुसार मैंने कहा, कुछ छिपा नहीं रक्खा। रामजी के चरित्र रूपी समुद्र की थाह क्या कोई पा सकता है?

सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥

श्रीरामजी के अनेक गुण गणों को स्मरण करके कागभुशुण्डिजी बारम्बार आनन्दित हुए जिसकी महिमा, अतुलित बल, प्रताप और प्रभुता वेदों ने नेति-नेति कहकर गाई।

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥
अस सुभाउ कहुं सुनउं न देखउं। केहि खगेस रघुपति सम लेखउं॥

महादेवजी और ब्रह्माजी जिन रघुनाथजी की चरण सेवा करते हैं मुझ पर कृपा होना उनकी परम सौभाग्य है। ऐसा स्वभाव किसी का न सुनता हूं और न देखता हूं। तो हे गरुड़जी! रामजी के समान किसे समझूं?

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी॥

साधक, सिद्ध, जीवन्मुक्त, उदासीन, कवि, विद्वान, तत्व-ज्ञाता, सन्यासी, योगी, तपसी, ज्ञानी, धर्मात्मा, पण्डित और विज्ञानी।

तरहिं न बिनु सेएं मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥
सरन गएं मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी॥

ये मेरे स्वामी रामजी की सेवा किये बिना नहीं तर सकते। ऐसे रामजी को बारम्बार नमस्कार करता हूं जिसकी शरण जाने से मुझसे पापी भी शुद्ध हो जाते हैं उनको नमस्कार करता हूं।

दो०—जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥ ११७॥

जिनका नाम संसार सेवा की औषधि है और तीनों पापों को हरने वाला है, वे कृपालु प्रभु मेरे और आपके ऊपर सदैव प्रसन्न रहें।

सुनि भुसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ बिगत संदेह॥ १२४॥

भुशुण्डिजी के सुन्दर वचन सुनकर और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में उनका प्रेम देखकर सन्देह रहित होकर गरुड़जी प्रेम पूर्वक बोले—

मैं कृतकृत्य भयउं तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी॥
राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई॥

राम भक्ति के रस से सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। श्रीरामजी के चरणों में मेरी नतन प्रीति हुई और माया से उत्पन्न विपत्ति चली गई।

मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहं नाथ बिबिध सुख दए॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउं तव पद बारहिं बारा॥

मोहरूपी समुद्र में डूबते हुए मेरे लिए आप नाव हुए। हे नाथ ! आपने मुझे अति सुख दिया। मुझसे आपका प्रत्युपकार नहीं होगा। मैं तो बारम्बार आपके चरणों की वन्दना करता हूं।

पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी॥
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥

हे तात ! आप पूर्णकाम हैं, रामजी के प्रेमी हैं और आपके बराबर बड़भागी कोई नहीं है। सन्त, वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी इन सबकी करनी दूसरों की भलाई के लिए होती है।

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

सन्त का हृदय मक्खन के समान कवियों ने कहा है, परन्तु उनसे कहते नहीं बना, क्योंकि मक्खन तो स्वयं को ताप पाकर पिघलता है और सन्त पराये दुःख को देखकर ही पिघल जाते हैं।

जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ॥
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर॥

मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया और आपकी कृपा से सब सन्देह चला गया। शिवजी बोले हे पार्वती ! पक्षी श्रेष्ठ गरुड़जी बारम्बार कह रहे हैं कि मुझे सदैव अपना सेवक जानियेगा।

दो०—तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयं राखि रघुबीर॥ १९९॥

तब कागभुशुण्डिजी चरणों में प्रीति पूर्वक मस्तक नवाकर धीर बुद्धि गरुड़जी रामजी को हृदय में रखकर बैकुण्ठ को चले गये।

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥ २००॥

हे पार्वती ! सन्त समागम के समान कोई दूसरा लाभ नहीं है परन्तु यह लाभ श्रीहरि की कृपा बिना नहीं होता, यह वेद पुराण कहते हैं।

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा॥
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा॥

मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, इसको कानों से सुनते ही संसार के बन्धन छूट जाते हैं और दीन भक्तों को कल्पवृक्ष के समान दया के मूल रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम उत्पन्न होता है।

मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई॥
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥

नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥

अनेक कर्म, धर्म, व्रत, दान और अनेक संयम, नियम, यज्ञ, जप जीवों पर दया ब्राह्मण और गुरु विद्या, विनय, बड़प्पन।

जहं लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपां काहूं एक पाई॥

हे भवानी! वेदों में जितने साधन कहे हैं उन सबका फल श्रीहरि भक्ति ही है। वह राम-भक्ति जो वेदों में गाई है, श्रीरामजी की कृपा से किसी विरले ने ही पाई है।

दो०–मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास॥ २०१॥

जो लोग इस कथा को विश्वास मानकर सदैव सुनते हैं, वे बिना परिश्रम श्रीहरि भक्ति को पा जाते हैं, जो मुनियों को दुर्लभ है।

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता॥

वही सर्वज्ञ, गुण, ज्ञानी पृथ्वी का भूषण, पण्डित, दाता, धर्मात्मा और कुल का रक्षक है जिसका मन रामजी के चरणों में लगा है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥

वह नीतिज्ञ, परम चतुर, वेद सिद्धान्तों का ज्ञाता, कवि, पण्डित और रणधीर है जो कपट छोड़ कर श्रीरघुनाथजी को भजता है।

धन्य देस सो जहं सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी॥
धन्य सो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥

वही देश धन्य है जहां गंगाजी हैं, वह स्त्री धन्य है जो पतिव्रता धर्म का पालन करती है। वह राजा धन्य है जो नीति के अनुसार चलता है, वह ब्राह्मण धन्य है, जो अपने धर्म से नहीं डिगता।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥

वह धन धन्य है जिसकी प्रथम गति (दान) हो, वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्य में रत हो। वही घड़ी धन्य है, जब सत्संग हो और वही जन्म धन्य है, जिससे अखंड ब्राह्मण भक्ति हो।

दो०–सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥ २०२॥

हे उमा! सुनो, वह वंश धन्य है जगत पूज्य तथा परम पवित्र है जिसमें श्रीरघुवीर परायण विनती पुरुष उत्पन्न हो।

मति अनुरूपा कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी॥
तब मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई॥

अपनी मति के अनुसार यह कथा मैंने कही यद्यपि पहले इसे छिपाकर रक्खा था। जब मैंने तुम्हारे मन में अधिक प्रेम देखा तब यह कथा सुनाई।

यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि॥
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो अ भजइ सचराचर स्वामिहि॥

यह उसे नहीं सुनानी चाहिए जो शठ व हठी हो, जो हरि चरित्रों को मन लगाकर सुनता न हो। लोभी, क्रोधी व कामी ने, जो चराचर के स्वामी रामजी को नहीं भजते यह कथा नहीं कहनी चाहिए।

द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूं। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूं॥
राम कथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी॥

ब्राह्मण द्रोही को यह कथा कभी नहीं सुनानी चाहिए चाहे वह इन्द्र के समान राजा क्यों न हो राम कथा सुनने के अधिकारी वे ही पुरुष हैं जिनको सज्जनों की संगति अत्यन्त प्रिय लगती हो।

गुर पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई॥
ता कहं यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई॥

गुरु के चरणों में जिनकी प्रीति है, जो प्रीति परायण हैं ब्राह्मणों के सेवक हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं। उसी को यह रामकथा सुख देने वाली है जिसको श्रीरघुनाथजी प्राणप्रिय हैं।

दो०—राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥ २०३॥

जो रामजी के चरणों में प्रेम चाहे अथवा मोक्ष चाहे वह इस कथा रूपी अमृत को प्रेम सहित कान रूपी दोने से पोवे।

राम कथा गिरिजा मैं बरनी। कलि मल समनि मनोमल हरनी॥
संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी॥

हे पार्वती! मैंने रामकथा वर्णन की जो कलियुग के पास और मनकी मलिनता को हरने वाली है। यह राम कथा संसाररूपी रोग के लिए संजीवनी है, वेद और पण्डित ऐसे कहते हैं।

एहि महं रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥
अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउं देइ एहिं मारग सोई॥

इसमें सात सोपान हैं। वे ही श्रीराम-भक्ति के मार्ग हैं। जिस पर हरि की अत्यन्त कृपा होगी वही इस मार्ग में पांव धरेगा।

मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपाद इव भवनिधि तरहीं॥

जो कपट छोड़कर यह कथा गावेगा वह अपनी मनोकामनाओं की सिद्धि पावेगा। जो इस कथा को कहते सुनते व अनुमान करते हैं वे संसार सागर को गोपद की भांति पार कर जाते हैं।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई॥
नाथ कृपां मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा॥

सब कथा सुनकर पार्वतीजी के हृदय को बहुत प्रिय लगी। तब वे सुहावनी वाणी बोलीं—हे स्वामी! आपकी कृपा से मेरा सन्देह जाता रहा और रामचन्द्रजी के चरणों में नया अनुराग उत्पन्न हुआ।

दो०—मैं कृतकृत्य भइउं अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस॥ २०४॥

हे ईश्वर! मैं आपकी कृपा से कृतार्थ हुई। मन में श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति दृढ़ हो गई और सब क्लेश दूर हो गये।

यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥

शम्भु, उमा का यह सम्वाद सुख को उत्पन्न और दुःख को दूर करने वाला है। आवागमन से छुड़ाने वाला, सन्देहों को मिटाने वाला और सज्जनों को प्रिय है।

राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं॥
रघुपति कृपां जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा॥

संसार में जो रामोपासक हैं उनको इनके समान कुछ भी प्यारा नहीं है। राम कृपा से यह सुन्दर पवित्र चरित्र मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है।

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

इस कलियुग में कोई दूसरा साधन, योग, जप, व्रत, पूजा आदि नहीं है। अतः रामजी का ही स्मरण करना, रामजी के गुण गाना व रामजी के ही गुणगानों को निरन्तर सुनना चाहिये।

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥

पतित उद्धार करना ही जिनका महान बाना (प्रण) है, कवि, वेद, सन्त व पुराण ऐसा कहते हैं। रे मन! खोटाई त्याग कर उन्हीं प्रभु को भज। श्रीरामजी को भजने से किसने मुक्ति नहीं पाई?

छं०—पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥ १॥

रे मूर्ख ! श्रीरामजी को भजकर किसने गति नहीं पाई ? वेश्या, अजामिल, व्याधि, गीध, गजेन्द्र आदि बहुत से पापो उन्होंने तार दिए। अहोर, यवन, किरात, खर्स, चाण्डाल आदि महापापी भी एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो गये उनको मैं नमस्कार करता हूं।

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै॥ २॥

रघुवंश-भूषण श्रीरामचन्दजी का यह चरित्र जो मनुष्य कहेंगे, सुनेंगे, वे बिना परिश्रम के ही कलियुग पाप और मन के दोष रूपी मल को धोकर रामजी के धाम को चले जावेंगे। जो मनुष्य पांच-सात चौपाइयों को मनोहर जानकर हृदय में धारण करेंगे, उनकी भी पांचों इन्द्रियों से उत्पन्न अविद्या को श्रीरामजी हर लेते हैं।

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बान प्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूं।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूं॥ ३॥

जो सुन्दर, चतुर, कृपानिधान, अनाथों पर स्नेह करने वाले हैं, ऐसे एक श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। बिना कारण हित करने वाले श्रीरामजी के समान मोक्ष देने वाला कौन है ? जिनकी थोड़ी ही कृपा से मुझे मतिमन्द तुलसीदास ने भी परम विश्राम पाया, ऐसे श्रीरामजी के समान प्रभु कहीं नहीं।

दो०—मो सम दीन न दीन हित तुम्हे समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥ २०५॥

हे रघुवीर ! मेरे समान दीन और आपके समान दीनबन्धु और कौन है ? ऐसा विचार कर हे रघुवंशमणि ! संसार की विषम पीड़ा को हर लीजिये।

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिम दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥ २०६॥

कामी को स्त्री और लोभी को धन जैसे प्यारा लगता है वैसे ही हे रघुनाथजी ! हे रामजी ! आप मुझे सदा प्यारे लगें।

श्लोक—यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

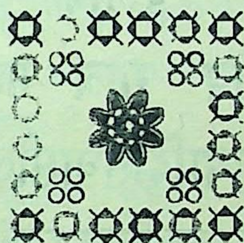
पहले जिस दुर्गम रामायण को श्रेष्ठ कवि भगवान शंकरजी ने रामजी के चरण-कमलों में निरंतर भक्ति प्राप्त होने के लिए रचा था उसी मानस रामायण को रामजी के नाम में लीन तुलसीदासजी ने अपने हृदय के अन्धकार को दूर करने के लिए इसे मानस के रूप में भाषा बद्ध किया है।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥

यह रामचरितमानस पुण्यरूप, पापहारी, सदैव मंगलकारी, विज्ञान और भक्तिदायक, माया, मोह, क्लेश नाश करने वाला, परम निर्मल प्रेमरूपी जल से पूर्ण तथा मङ्गलमय है। जो लोग इस मानस सरोवर में भक्ति पूर्वक स्नान करते हैं वे संसाररूपी प्रचण्ड सूर्य की उग्र किरणों से सन्तप्त नहीं होते।

॥ मास परायण—तीसवां विश्राम । नवान्ह परायण—नवां विश्राम ॥

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानस से सकल कलिकलुष विध्वंसमें सप्तमः सोपानः समाप्तः ॥
कलियुग के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले श्रीरामचरितमानस का
यह सातवां सोपान समाप्त हुआ।



।। श्रीगणेशायनमः ।।

श्री जानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरित-मानस

अष्टम सोपान

लवकुश-काण्ड

अथ मंगलाचरणम्

मङ्गलाचरण

श्लोक

शौर्यं प्रसिद्धं कमनीय गात्रं महानुभावं रघुवंश केतुम् ।

स्यवं प्रभुःसन् विनयादिसिंधासीतासुबामप्रणामामि रामम् ॥

वीरता में प्रसिद्ध कोमल शरीर वाले परम उदार रघुवंश की ध्वजा रूप स्वयं प्रभु विनय आदि के समुद्र और बायें भाग में सीताजी सहित सुशोभित रामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूं ।

प्रफुल्लनीलोत्पललोलोचनं विधुप्रतिद्वेषमुखांबुजद्युतिम् ।

शिराषपुष्य प्रभु कोमलच्छविनमामिरामम हयमेधकृत्परम् ॥

जिनके प्रफुल्लित नील कमल के समान सुन्दर नेत्र हैं, चन्द्रमा जिनके मुखारबिन्द की कान्ति से द्वेष मानता है जिनके कोमल अंगों की छवि शिरस के फूल के समान है तथा जो अश्वमेघ करने वालों में श्रेष्ठ है ऐसे श्रीरामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूं ।

दो०—रघुपति कथा पुनित अति, मुनिपुलके हरियान ।

बोले दोउ कर जोरि पुनि, सुनिये कृपानिधान ॥ १ ॥

अति पवित्र श्रीराम कथा सुनकर गरुड़जी प्रफुल्लित हो गये फिर दोनों हाथ जोड़कर बोले—हे कृपानिधान सुनिये ।

सुरसरि सम पावन भयो, नाथ हृदय अब मोर ।

जन्म-जन्म छूट नहीं, नाथ पद्माबुज तोर ॥ २ ॥

हे नाथ ! अब मेरा हृदय देव नदी के समान पवित्र हो गया । आपके चरण-कमलों में प्रेम मुझसे जन्म-जन्मान्तर न छटे ।

सुनेउ सकल गुण गण प्रभु केरे। पूरे नाथ मनोहर मेरे ॥
तब प्रसाद बायस कुल नाथा। हृदय बसी अब प्रभु गुन गाथा ॥

प्रभु के सम्पूर्ण गुणसमूह सुनकर मेरे मनोरथ पूरे हो गये। हे काग श्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मेरे हृदय में अब प्रभु के गुणों की कथा बसी है।

मन संतोष न हृदय अघाहीं। यथा उदधि सरिता सब जाहीं ॥
पशु पक्षी जड़ जंगम जाती। सचराचर बरनत बहु भांतीं ॥

मेरे मन में सन्तोष है पर हृदय नहीं अघाता, जैसे नदियों के मिलने से भी समुद्र नहीं भरता। पशु, पक्षी, स्थावर, जंगम और चर-अचर जीव जिनका वर्णन नहीं हो सकता।

जे जन अवध बसहिं सुखधामा। लिये संगम सादर श्रीरामा ॥
तजि निज अवधि गये सह देहा। यह सुन नाथ परम संदेहा ॥

और जो सुखधाम अयोध्या में वास करते थे उनको श्रीरामजी सादर साथ लेकर अयोध्या को छोड़कर सदेह स्वर्गलोक को गये। सो हे नाथ ! यह मुझे बड़ा भारी सन्देह है।

अब प्रभु मोहि कहो समुझाई। जान पिता मैं करौ ढिठाई ॥
यह इतिहास पुनीत कृपाला। जिमि मख कीन्ह राम महिपाला ॥

हे नाथ ! आपको पितृवत समझकर ढिठाई करके कहता हूं कि आप मुझे सब समझाकर कहिये कि किस तरह रामजी ने अश्वमेघ यज्ञ किया ?

दो०—अधि कहि गद् गद् कण्ठ मृदु, पुलकावली शरीर।
सुनिसप्रेम हर्षे बिहंग गायसि मति अति धीर ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर गरुड़जी का कंठ गद्‌गद् और शरीर पुलकित हो गया। यह सुनकर धैर्यवान काग-भुशुण्डिजी प्रसन्न होकर बोले—

राम कृपा तुम्हारे मन माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं ॥
धन्य धन्य धनि तुम्ह खगराया। मिटहि अमंगल कोठि अमासा ॥

हे गरुड़जी ! रामजी की कृपा से आपके हृदय में संशय, शोक, मोह, भ्रम कुछ भी नहीं है। आप बारम्बार धन्य हैं। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की।

अति प्रिय वचन रसज्ञ तुम्हारे। लागत नाथ मोहि अति प्यारे ॥
तब तनु प्रीति देख खगराया। कीन्हीं अमित मोहि पर दाया ॥

हे नाथ ! आपके रसीले व मीठे वचन मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। आपके हृदय की प्रीति देखकर बहुत से अमंगल नाश हो जाते हैं।

सुनु अब राम रहस्य अनूपा। चरित अनूप अवधपुर भूपा ॥
अज अद्वैत अमल अविनासी। रहित सकल कलिमल भवफांसी ॥

अब आप अवध नरेश रामजी के गूढ़ एवं अनुपम चरित्र सुनिये। वे अजन्मा, अद्वैत, अविनाशी हैं और कलियुग के पाप व भव-बन्धन से रहित हैं।

रुद्र सहस्त्र वर्ष सम ईसा। कीन्ह चरित रति रहि जगदीसा॥
सो सब बिसद कथा बिस्तारी। कहौं सुनौं जग हित उरगारी॥

हे गरुड़जी ! रामजी ने ग्यारह हजार वर्ष रहकर चरित्र किये हैं। यह सब संसार के उपकार के हेतु विस्तार पूर्वक कहता हूं सो सुनिये।

दो०–बिधि बर बचन संभारि उर, राजत करुनाऐन।
जुगल जोरि शोभा निरखि, लजित कोटि सतनैन॥ ४॥

ब्रह्माजी के वचनों को मानकर करुणासागर प्रभु विराजमान रहे। युगल जोड़ी की शोभा देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित होते हैं।

अनुज सचिव प्रभु प्रजा बुलाए। गुरु गृहसादर मुनि संग आए॥
मकर मास रवि सर्व सुहावा। विदा मांगि गुरुपद सिरु नावा॥

श्रीरामजी एक समय छोटे भाई, मन्त्री, प्रजा को बुलाकर बड़े आदर से गुरुजी के घर आए। मकर में सूर्य पर्व जानकर सबने गुरुजी से विदा मांगकर चरणों में शीश नवाया।

काशी क्षेत्र धर्ममय जाना। चले सकल सजि वाहन नाना॥
चतुरंगिनी अनी सब साथा। एहि बिधि गवन कीन्ह रघुनाथा॥

काशी क्षेत्र को धार्मिक जानकर सब अनेक सवारी सजाकर चले। चतुरंगिनी सेना सजाकर रघुनाथजी ने गमन किया।

बीच वास करि शिवपुर आए। सादर पुरहि सीस सब नाए॥
आइ अरसरिहि कीन्ह प्रनामा। अभय अनन्त पाइ बिश्रामा॥

बीच में ठहरकर काशी आये। सबने पुरी को सादर प्रणाम किया। आकर गंगाजी को प्रणाम किया और अत्यन्त सुख पाकर प्रसन्न हुए।

महिसुर दरिड यति सन्यासी। पूजे कृपासिन्धु सुखरासी॥
दीन दान कछु बरनि न जाई। धनद कुबेर सुरेस लजाई॥

कृपासिन्धु सुख की राशि प्रभु ने ब्राह्मणों, दंडियों, यतियों और सन्यासियों का पूजन किया इतना दान दिया जिसका वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर कुबेर और इन्द्र भी लज्जित हो गये।

दो०–तहां रहे प्रभु अमित दिन, सुखी किये मुनिबृन्द।
आए पुनि निज नगर महं, हरषित करुना कन्द॥ ५॥

इस प्रकार प्रभु ने वहां बहुत बिन रहकर मुनियों को सुखी किया। करुणासागर सहर्ष अपने नगर में आये।

प्रतिदिन अवध आनन्द उछाहू। जान देहिं प्रति दिन नरनाहू॥
दुख परपंच सोक नाहिं काहू। कुबचन कबहूं न सुन खगनाहू॥

अयोध्या में नित्य नये आनन्द होते हैं और महाराज नित्य दान देते हैं। हे गरुड़जी! वहां प्रपंच, दुःख आदि किसी को नहीं है और कुवचन कभी सुनाई नहीं पड़ते।

सुनहिं जहां तहं वेद पुराना। दूसर धर्म न काहू जाना॥
दिन दिन प्रीति देख भगवाना। अति आनन्द सकलपुर जाना॥

लोग जहां-तहां वेद पुराण सुनते हैं, कोई दूसरा धर्म नहीं जानते। लोग प्रभु की कृपा देखकर बड़े ही प्रसन्न हैं।

सिब सम्बत परमान हमारा। भए सोच बस राम उदारा॥
अश्वमेघ मख करौं सोहाई। गाय तरहिं नर भव समुदाई॥

फिर उदार रामजी ऐसा विचार करके संकोचवश हो गये कि मुझे यहां केवल ११० वर्ष ही रहना है अतः एक अश्वमेघ यज्ञ करूँ जिसे गाकर सांसारिक मनुष्य भवसागर से पार हो जाए।

पुनि तुरन्त निज धाम सिधावौं। बिधि बर बचन न चूक लगावौं॥
प्रात जाइ गुरु भवन सप्रीती। हौं करौं सब सुन्दर रीति॥

फिर तुरन्त अपने धाम को जाऊं और ब्राह्मण के वचन में कोई चूक न करूँ। प्रातःकाल ही गुरु जी के भवन में जाकर उनकी आज्ञा से नीति सहित सुन्दर यज्ञ करूंगा।

दो०—अस विचार उर राखिकर, कृपासिन्धु मतिधीर।
किये चरित नानाअमित, हरन सोक भवभीर॥ ६॥

कृपासिन्धु मतिधीर प्रभु ने हृदय में ऐसा विचार करके अनेकों अनोखे चरित्र किए जो शोक और भव भय को दूर करने वाले हैं।

रघुवर राज बिराज अति, सकल अवनि अघ भाग।
बिचरहिं मुनि कानन विपुल, गसहिं सहित अनुराग॥ ७॥

रामराज्य के होने से पृथ्वी का सब पाप दूर हो गया। मुनिजन प्रीति और स्नेह के साथ जंगल में निर्भय विचरने लगे।

अवनि सुहाविन कानन चारु। खगनृप इक इक संग करहिं बिहारू॥
बैर न सुनिअ राम के राजा। रहैं बर बिनु सब खगराजा॥

हे गरुड़जी! पृथ्वी और वन शोभायमान थे। पशु एक साथ विहार करते थे। रामराज्य में बैर सुनाई भी नहीं पड़ता, सब प्रेम से रहते थे।

नाना ग्रन्थ स्मृति समुदाई। गाय न सकहि राम प्रभुताई॥
सादर चतुरानन गौरीसा। कोटि कोटि अगनित अहि ईसा॥

अनेक ग्रन्थ व स्मृतियों के समुदाय भी श्रीरामजी की प्रभुता गा नहीं सकते। सरस्वती, ब्रह्मा, महादेव तथा करोड़ों शेषनाग भी—

कबि कोबिद जहं लगि जगमाहीं। रामराज गुन नाहिं सक गाहीं॥
असित आदि करजलगिरि भूरी। पयनिधि पात्र सरिता रूरी॥

और संसार में जहां तक कवि पंडित हैं वह सब मिलकर भी रामराज्य का वर्णन नहीं कर सकते कज्जल पर्वत की स्याही बनाई जाय और समुद्र की दवात बनाई जाय।

करहिं लेखनी सुरतरु डारी। सप्तदीप महिपत्र बिचारी॥
बाणी हरि हर बिधि समुदाई। सहस सल्पसत लिखहिं बनाई॥

कल्पवृक्ष की कलम बनाकर सातों द्वीपों का कागज बनाया जाय और सरस्वती, ब्रह्मा, हरि महेश आदि हजार कल्पों तक लिखें।

सो०—तदपि न पावांहपार, राम राज कौतुक अमित।
सुनु अब चरित अपार, जस खगपति आगे भयउ॥ १॥

तो भी रामराज्य की लीलाओं का पार नहीं पा सकते। हे गरुड़जी ! अब जैसे आगे अपार चरित्र हुए उन्हें सुनिये।

राजत राम सभा सब भ्राता। तहं आया इक द्विज बिलखाता॥
कटुक कहत मुख करत पुकारा। हंस बन्श बूड़ो संसारा॥

सब भाई राम-सभा में विराजमान थे वहां एक ब्राह्मण बिलखता हुआ आया। वह मुख से यह कटु वचन पुकार कर कहता था कि संसार में सूर्यबंश के रहते संसार डूब गया।

रघु दिलीप शिब सागर नरेशा। अमित प्रभाव भए अवधेशा॥
पितु जीवत सुत त्यागेउ प्राना। प्रभु अन्तर्यामी सुनि काना॥

रघु, दलीप, शिव, सगर आदि बड़े प्रतापी अयोध्या के राजा हुए परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ कि पिता के रहते पुत्र प्राण त्याग दे। अन्तर्यामी प्रभु यह बातें कानों से सुनकर—

नर लीला करि राम कृपाला। लगे बिचार करन तत्काला॥
कारन कवन मृतक सुत भयउ। द्विज दुख देखि तिलक प्रभु भयऊ॥

नर-लीला के हेतु कृपालु रामजी विचार करने लगे कि किस कारण से ब्राह्मण का पुत्र मर गया। ब्राह्मण को देख प्रभु व्याकुल हुए।

प्रभुचित देखि गगन भइ बानी। शूद्र तपे सुनु सारङ्ग पानी॥
बिन्ध्याचल गढ़कर बन माही। द्विज सुत हेतु मरन नरनाही॥

प्रभ को विचार में देख आकाशवाणी हुई कि हे शार्ङ्गधारी ! आपके राज्य में विन्ध्याचल पर्वत तक गम्भीर वन में शूद्र तप कर रहा है इसके कारण इस ब्राह्मण का पुत्र मर गया है।

छं०—एहिभांति द्विजसुतमृतकसुनिरथसाजिप्रभु आतुरचले।
द्वै परम सैल बिलोकि पावन मुदित चित सन्मुख चले॥
पुनि क्रोध संयुत बिशिख छांड़े माथ ल सुरपुर गयो।
बर भक्ति आरति जान तेहिंदै आपुतीरथ बरत कियो॥

इस भांति ब्राह्मण पुत्र का मरना सुनकर प्रभु शीघ्रता से रथ सजाकर चले और सामने दो सुन्दर पर्वतों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। फिर क्रोध करके प्रभु ने बाण मारा जो उस शूद्र के मस्तक को ले सुरपुर को चला गया। प्रभु ने उसे दुःखी देखकर उसे सुन्दर भक्ति दी और स्वयं वहां तीर्थ व्रत किया।

दो०—द्विजबर बालक मृतक जो, उठि बैठेउ हरषाय।
आए रघुपति भगत भय भंज सुखदाय॥ ८॥

उसी समय ब्राह्मण का मरा हुआ पुत्र प्रसन्न होकर उठ बैठा। भक्तों के भयहारी सुखदायक रामजी नगर में आये।

उठि मध्यान्ह कीन्ह रघुनन्दन। पूजि पुरारि भक्ति उर चन्दन॥
भोजन सयन जगतपति कीन्हा। निज निज धाम सब पगदीन्हा॥

श्रीरामचन्द्रजी ने उठकर सन्ध्यावादन किया और भक्तों को सुख देने वाले शिवजी का पूजन किया। तब महाराज ने भोजन करने के पश्चात शयन किया। सब लोग अपने-अपने स्थानों को चले गये।

रहा दिवस जब घटिका चारी। जुरी सभा तब आय खरारी॥
सुनि पुराण प्रभु अनुज समेत। दिए दान शुभ दाया निकेता॥

जब चार घड़ी दिन रह गया तो रामचन्द्रजी की सभा जुड़ी। प्रभु ने सब भाइयों समेत पुराण सुने। दयानिधान ने शुभ दान दिये।

सबही सन्धा बन्दन कीन्हा। भवन चले प्रभु आयसु दीन्हा॥
नित्य कोटि चर अवध सिधावहिं। सांझ समय सब खबर सुनावहिं॥
पृथक पृथक सुनि चरचर बाना। बोल न एक सुनहु भवानी॥

फिर सन्ध्यावन्दन आदि करके प्रभु से आज्ञा पाकर सब अपने-अपने घर को चले। नित्य अनेकों दूत अयोध्या में जाते और संध्या समय आकर प्रभु को सब समाचार सुनाते हैं। पृथक-पृथक दूतों की वाणी प्रभु ने सुनी। हे पार्वती उनमें से एक दूत नहीं बोला।

छं०—कछु कही नहि सो पूछि सादर बचन बेगि न आवई।
एक रजक पत्निहि कहत डाटत व्यङ्ग बचन सुनावई।
सुनि सकल कृपानिधान चर के मध्य उर राखे हरी।
निशि स्वप्न देखत जगतपति पुनि जानि दारुणदुखकरी॥

उस दूत ने कुछ न कहा तो रामजी ने उससे आदर के साथ पूछा। उससे शीघ्र कहते न बना बोला—एक धोबी अपनी स्त्री को डाटकर व्यंग वचन कह रहा था। दूत के सब वचन सुनकर कृपा-निधान हरि ने मन में रख लिया। रात में स्वप्न में भी ऐसा ही देखा तो जाकर बड़े दुःखी हुए।

दो०—बीती अवधि प्रणाम युत, कीन्ह विचार कृपाल।
एक सहस्त्र पितु राज को भोगों में यहि काल॥ ९॥

जब एक युग राज्य करते बीत गया तब कृपालु ने विचार किया कि अभी एक हजार वर्ष तक पिता का राज्य मैं और भोगूं।

त्यागौं जनकसुता बन माही। राखौं श्रुति पथ धर्म न जाही॥
दै मन ठीक सिया पहं आए। सादर बोले बचन सुहाए॥

सीताजी को वन में भेज दूं जिससे वेद मार्ग रहे और धर्म न जाय। मन में निश्चय करके सीता जी के पास आये और सादर वचन बोले—

निज छाया महि राखि बिनीता। रहौ जाय निज धाम पुनीता॥
प्रभु पद बन्दि गई नभ सोई। जीव चराचर लखी न कोई॥

हे सीते! तुम अपना प्रतिबिम्ब पृथ्वी पर छोड़कर अपने पवित्र धाम में जाकर रहो। प्रभु के चरणों की वन्दना करके सीताजी आकाश को चली गयीं। इसे किसी चराचर प्राणी ने नहीं जाना।

तासन प्रभु अस कहा बुझाई। मन भावत मांगहु बर जाई॥
नाथ साथ मुनि धाम सुहाई। आई तजि गृह मन सकुचाई॥

तब उस छाया से प्रभु ने समझाकर कहा—जो मन को भावे वर मांगो। सीताजी ने कहा—हे नाथ! आपके साथ मुनिजनों के सुन्दर स्थान छोड़कर मैं घर आई हूं। इससे मन में बड़ा संकोच है।

मुनितिय भू न सकल सुहाए। पहिराए प्रभु जो मन भाए॥
हंसि कहि कृपानिकेत सकारे। पूजहि मन अभिलाष तुम्हारे॥

तब प्रभु ने मुनियों की स्त्रियों के भूषण वस्त्र उनकी रुचि के अनुसार पहिनाये। कृपानिधान ने कहा—प्रातःकाल तुम्हारे मन की इच्छा पूर्ण होगी।

दो०—होत प्रात जब जगतपति, जागे रमा निवास।
जातक गावत मुदित, लखि मुख कंज प्रकास॥ १०॥

प्रातःकाल जगत्पति लक्ष्मी निवास श्रीरामजी जागे तो याचक उनके कमल के समान प्रकाशमान मुख को देखकर हर्षित होकर गाने लगे।

भरत शेष रिपुदमन समेता। आए जहं प्रभु कृपानिकेता॥
कीन्ह प्रनाम माथ महि लाई। बोले नाहिं कछु श्रीरघुराई॥

भरतजी, लक्ष्मण और शत्रुघ्न जहां कृपानिधान प्रभु थे वहां आए। पृथ्वी पर शीश नवाकर प्रणाम किया। परन्तु श्रीरामजी कुछ नहीं बोले।

बदन विलोक ससङ्कित अङ्गा। श्रीहत देखि वपुषकर रङ्गा॥
थर थर कांपत तीनों भाई। जानि न जाई चरित रघुराई॥

कान्तिहीन शंकित शरीर और मलिन रंग देखकर तीनों भाई थर-थर कांपने लगे। श्रीरघुवीर का चरित्र जाना नहीं जाता।

लइ स्वांस अरु कुसमय जानी। बोले गूढ़ मनोहर बानी॥
वचन मोर उर राखहु भ्राता। लै बन जाहु जानकी माता॥

सांस लेकर और कुसमय जानकर रामजी मनोहर गूढ़ वाणी बोले—हे तात! मेरे वचन हृदय में रखकर जानकी को वन में ले जाओ।

सूखि सहम सुनि बचन कराला। जरे गात उर उपजी ज्वाला॥
हंसत कि सत्य कहत रघुराया। असमञ्जस उर मुनि सगराया॥

ऐसे कठोर वचन सुनकर सब सहमकर सूख गए। शरीर जलने लगे और हृदय में दाह उत्पन्न हुआ। सब इस दुविधा में पड़ गये कि प्रभु यह सत्य कह रहे हैं अथवा हंसी कर रहे हैं?

दो०-भरत आदि ब्याकुल अनुज, नहिं आवत कहि बैन।
जोरि जुगलि कर शत्रुहन, कहत नीर भरि नैन॥ ११॥

भरत आदि सब भाई व्याकुल थे किसी के मुख से वचन नहीं निकलते। तब दोनों हाथ जोड़कर शत्रुघ्नजी ने नेत्रों में जल भरकर कहा –

सुनि प्रभु बचन हृदय बिलखाना। जगत बननि सिय सब जग जाना॥
जगत पिता प्रभु सब उर बासा। सत चेतन धन आनन्द रासी॥

प्रभो! आपके वचन सुनकर हृदय में बड़ी व्याकुलता हो रही है। सीताजी जगत की माता हैं। इसे सारा संसार जानता है और आप जगत के पिता, अन्तर्यामी और सच्चिदानन्द की राशि है।

कारन कवन जानकी त्यागी। मन क्रम बच तव पद अनुरागी॥
सुनि सर्वज्ञा सगर्भिणी जानी। रिस परिहास कि सीय सुबानी॥

किस कारण से आपने जानकी का त्याग किया? वे तो मन, वाणी और कर्म से आपके चरणों की प्रेमिका हैं। हे सर्वज्ञ! वे गर्भिणी सुनी हैं। आपने यह वचन क्रोध में, हंसी में या सत्य कहे हैं?

पंकज नयन नीर भरि आये। कहि प्रिय बचन अनुज समझाये॥
आयसु मोर टरहिं जो ताता। रहहि न प्रान तात मम गाता॥

यह सुनकर रामजी के कमल नेत्रों में आंसू भर आये। उन्होंने प्रिय वचन कहकर भाइयों को समझाया—हे तात! यदि मेरी आज्ञा टलेगी तो मेरे प्राण शरीर में न रहेंगे।

हरि इच्छा भावी बलवाना। तुम कह तात सदा कल्याना॥
यह मम वचन पालि लघुभाई। तात जानकिहि जाहु लिवाई॥

ईश्वर की इच्छा और होनहार बलवान है। हे तात! तुम्हारे लिए सर्वदा कल्याण है। हे छोटे भाई! मेरे इन वचनों को मानो और जानकीजी को वन में लिवा ले जाओ।

सो०-सुनि प्रभु बचन कठोर, भरत कहेउ जुग जोरिकर।
नाथ हमहि मति थोरि, सुनु विनती सर्वज्ञ प्रभु॥ २॥

प्रभु के कठोर वचन सुनकर भरतजी ने हाथ जोड़कर कहा—नाथ! मेरी मति तो थोड़ी है और आप तो सर्वज्ञ हैं। मेरी विनय सुनिये।

हंस बंस जग में विख्याता। दशरथ पितु कौसल्या माता॥
त्रिभुवन पति प्रभु सब जग जाना। गावहि यह श्रुति वेद पुराना॥

सूर्यवंश संसार में प्रसिद्ध है। दशरथजी हमारे पिता और कौशल्याजी माता हैं। तीनों लोकों के स्वामी आपको संसार जानता है, जिनका यश वेद और पुराण गाते हैं।

सत्य शक्ति तव प्रगट गुसांई। बरनि न सकहिं वेद अहिराई॥
शोभा खान जानकी माता। रहित अमङ्गल मङ्गल दाता॥

वे आपकी शक्ति प्रत्यक्ष हैं जिनका वेद और शेषजी भी वर्णन नहीं कर सकते। वे जानकीजी शोभा की खान व मङ्गल को देने वाली हैं।

छाया जिमि तिय पति व्रत धरहीं। ते नारी भव कूप न परहीं॥
जल बिनु मीन कि जिय कृपाला। कृषी की रह बिनु बारिद माला॥

उनकी छाया के भी अनुसार पतिव्रता रखने से स्त्रियां संसार के भय से बच जाती हैं। हे कृपालु मछली क्या बिना पानी के जी सकती है? खेती क्या बिना मेघ के हो सकती है?

अस तुम बिनु छिन जियै कि सीता। ज्ञानवन्ति अति निपुण विनाता॥
सुनि करुणामय बचन सप्रीती। कही भरत तुम सुन्दर नीति॥

इसी प्रकार बिना आपके क्या ज्ञानवान चतुर सीताजी क्षणमात्र भी जी सकती हैं? करुणानिधान प्रेम से भरतजी के वचन सुनकर बोले—हे भरत तुमने सुन्दर नीति कही है।

दो०—तदपि नृपहि चहिये सदा, राजनीति धन कर्म।
वसुधा पालहि सोचतजि, बचन नीति शुभ कर्म॥ १२॥

तो भी राजा को सदा नीति, धन और धर्म की रक्षा और सोच छोड़कर नीति युक्त वाणी और पवित्र कर्मों से पृथ्वी का पालन करना चाहिये।

दूत चरित जस सुन्यो सो कहेऊ। कुल कलंक यह दारुण भयऊ॥
तरणि वंश नृप भये अनेका। एक एक तें निपुण विवेका॥

दूत से जो चरित्र सुना था सो कह सुनाया और बोले कुल में यह भारी कलंक लगा। सूर्य वंश में अनेक राजा एक से एक ज्ञानी हुए हैं।

रघु दिलीप स्यायम्भुव जाना। सगर भागीरथ वेद बखाना॥
दशरथ विदित जान जग नीके। बचन न टारेउ लालच जी के॥

राजा रघु, दिलीप, स्वायम्भुवमनु, सगर, भागीरथ आदि जिनका यश वेदों ने भी गाया है। महाराज दशरथ तो संसार में भली-भांति विदित हैं जिन्होंने प्राणों के मोह से भी वचन न छोड़ा।

तेहि कुल रचक सुनिये कलंकू। रहै जीय जग अधम असंकू॥
सुनु सर्वज्ञ सकल भय हारी। रहित कलंक बिदेह कुमारी॥

उसी कुल में थोड़ा भी कलंक सुनने पर यदि प्राण रहे तो वे बड़े अधम हैं। भरतजी बोले—हे सम्पूर्ण भय का नाश करने वाले! सुनिये, सीताजी कलंक रहित हैं।

विधि हरि हर दिव देखि सुहाई। पावक अविटि कनक सम भाई॥
जे सुर नर मुनि सपनेहुं नाहीं। यह चरित्र जग लखि अनखाहीं॥

ब्रह्मा, हरि, शिव आदि देवताओं ने सीताजी को आग में तपाये हुए शुद्ध स्वर्ण के समान कहकर प्रशंसा की है। सुर, नर, मुनि कोई ऐसा नहीं है जो इस चरित्र को देख स्वप्न में अनखता हो।

दो०—ते शठ रौरव नरक महं, कोटि कलप करि बास।
रहहिं कोटि सत रोगबस, भोगहिं नरक निवास॥ १३॥

वे मूर्ख अवश्य करोड़ों रौरव नरक में निवास करेंगे और रोग के वश रहकर नरक भोगेंगे (जो सीताजी को कलंकी कहेंगे)।

रिस रुख देखि नयन करि तीछे। आए भरत लषन के पीछे ॥
सुनु सौमित्र छांड़ि हट सोचू। जग भल कहै कहौ किस पोचू ॥

श्रीरामजी के क्रोधित रुख और तिरछे नेत्र देखकर भरतजी लक्ष्मणजी के पीछे चले गये। श्रीराम जी ने कहा हे सौमित्र! हठ और सोच छोड़कर सुनो, संसार चाहे भला कहे या बुरा?

तजि आज्ञा प्रत्युत्तर करिहौ। मोहि बिनु सोच जन्म भर मरिहौ ॥
जनकसुतहि रथ तुरत चढ़ाई। गङ्ग समीप फिरहु पहुंचाई ॥

यदि तुम मेरी आज्ञा को टालकर उत्तर दोगे तो मेरे बिना शोक में जन्म भर पछताओगे। अतः जानकी को तुरन्त रथ पर चढ़ाकर गङ्गाजी के समीप पहुंचाकर लौट आओ।

अति गव्हर बन जहां न कोई। छांड़हु तात यतन कर सोई ॥
फेरेहु तुम मति बचन उदासा। मरण ठान करि चले निरासा ॥

अत्यन्त गम्भीर वन में जहां कोई न हो, हे तात! वहीं सीता को छोड़ आना उदास होकर मेरे वचनों को मत फेरो। लक्ष्मणजी अपना मरण मन में जानकर चले।

सुभग विमान सीय बैठाई। पद भूषन भरि धरे बनाई ॥
अति अनन्द मन चली जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की ॥

सुन्दर विमान में सीताजी को बैठाकर, वस्त्र और भोजन रक्खे। रामजी की प्रियतमा सीताजी मन में रख प्रसन्न होकर चलीं।

दो०—बिवरण लषणनिहारि सिय चकितविकलभईबाल।
हृदय बिचार नहिंकहि सकत, मणिबिनुव्याकुलव्याल ॥ १४ ॥

सीताजी लक्ष्मणजी को व्याकुल देखकर विस्मय हो ऐसी घबराई जैसे मणि के बिना सांप। वे हृदय के विचार कह नहीं सकतीं।

उतारि देवसरि यान सोहावा। अति उद्यान देखि भय पावा ॥
कारण अपर जानि भयभीता। बोली बचन मनोहर सीता ॥

गंगा के किनारे विमान से उतरकर घना जंगल देखकर वे डरीं। कुछ रहस्य जानकर भयभीत सीताजी मनोहर वचन बोलीं—

दिखियत नहीं मुनिन के धामा। जात कहां प्रिय अनुज सकामा ॥
खग मृग जीव विविध भरि व्याला। करि केहरि बृक बाघ श्रृगाला ॥

हे देवर! यहां मुनियों के आश्रम दिखाई नहीं पड़ते। तुम कहां जा रहे हो? यहां पक्षी, हिरन, सिंह, सांप, हाथी, बाघ, भेड़िया, सियार भरे हैं।

कोउ मुनि मिलत न आवत आजा। निकसत प्राण तात मम गाता ॥
सिय विकल लखि मनहि अहीसा। कहन लगे कहा कीन्ह बिधीसा ॥

कोई मुनि आते जाते भी नहीं मिलते। मेरे शरीर से प्राण निकले जाते हैं। सीताजी को व्याकुल देखकर लक्ष्मणजी कहने लगे कि ब्रह्मा ने यह क्या किया?

मूर्छित रथ ते भे बिकारारा। भूमि गिरत तब आप संभारा ॥
सिय बिलोकि मन धीरज आना। जीवन बिनु अब निकसत प्राना ॥

सीताजी रथ ही में मूर्छित हो गयीं परन्तु पृथ्वी पर गिरते हुए लक्ष्मण ने सम्भाल लीं। सीताजी को व्याकुल देख मन में कहने लगे कि अब बिना जीवन के प्राण निकले जाते हैं।

दो०—धरणिसुता व्याकुल निरख, प्राण कण्ठगत जान।
तजन चहत तनु सेष तब, धिकाधिक जीवन प्रान॥ १५॥

जानकीजी की व्याकुलता देख और उनके प्राण कण्ठगत जानकर वे भी अपने जीवन को धिक्कारते हुए शरीर छोड़ने को उद्यत हो गये।

प्राण बिना लक्ष्मण कहं देखी। गगन गिरा तब भई बिसेषी॥
सुनु सौमित्र जाहु सिय त्यागी। जनक पुत्रिका जियहि सुभागी॥

लक्ष्मणजी को निष्प्राण देखकर आकाशवाणी हुई— हे लक्ष्मण! तुम सीता को त्याग कर चले जाओ। सौभाग्यवती सीता जीती रहेंगी।

गगन गिरा सुनि धीरज कीन्हा। हाथ जोड़ परदक्षिण दीन्हा॥
लै रथ चरण बन्दि सिय केरे। चले अवध उर त्रास घनेरे॥

आकाशवाणी सुन लक्ष्मण को धैर्य हुआ और हाथ जोड़कर परिक्रमा की। रथ लेकर सीताजी के चरणों की वन्दना करके वे पुरी को लौट गये।

जागी सीय सकल दिसि देखा। नहिं रथ अश्व नहीं तहं शेषा॥
सहि दुख प्रथम रहे हैं प्राना। पुनि सोइ चहत न करन पयाना॥

जानकीजी ने मूर्छा से जागकर चारों ओर देखा परन्तु उनको कहीं रथ, घोड़े और लक्ष्मणजी न दीख पड़े। वे बोलीं—मेरे प्राणों ने पहले भी दुख सहा है अतः ये अब भी नहीं निकलना चाहते।

करुणा करत बिपिन अति भारी। बाल्मीक आए बनचारी॥
सीता बालमीकी मुनि जाना। वन आवन निज चरित बखाना॥

सीताजी मन में अत्यन्त विलाप कर रही थीं इतने ही में बाल्मीकि मुनि घूमते हुए उधर आ निकले। सीताजी ने बाल्मीकि मुनि को पहिचान कर अपना वन आने का सब समाचार वर्णन किया।

दो०—मुनि पुत्री मैं जनक की, राम प्रिया जग जान।
त्यागनहेतु न जान कछु, बिधिगतिअतिबलवान॥ १६॥

हे मुनि! मैं राजा जनक की पुत्री और श्रीरामजी की स्त्री हूं। मैं अपने त्यागे जाने का कारण कुछ नहीं जानती। ब्रह्मा की गति बड़ी प्रबल है।

देवर लषण गए पहुंचाई। हेतु न कछु जानौं मुनिराई॥
सुनु कन्या मिथिलापति मोरा। मरम शिष्य सब बिधि पितु तोरा॥

देवर लक्ष्मण मुझे यहां पहुंचा गये हैं परन्तु हे मुनिवर! मैं इसका कारण कुछ भी नहीं जानती, तब बाल्मीकिजी बोले - हे पुत्री सुनो, तुम्हारे पिता मिथिलापति जनक मेरे परम शिष्य हैं।

चिन्ता अब जनि करु सुकुमारी। मिलि हैं तोहि शेष हितकारी॥
सादर पर्णकुटी सिय आनी। करि मज्जन पुनि सब गति जानी॥

हे सुकुमारी ! अब तुम चिन्ता न करो। अन्त में तुम्हें हितकारी रामजी फिर मिलेंगे। आदर सहित सीताजी को पर्णकुटी में लाये और स्वयं स्नान करके सब स्थिति सुनी।

बिविध भांति मुनि धीरज दीन्हा। सिय तब सुरसरि मज्जन कीन्हा॥
सुमिरि राम मूरति उर राखी। दीन्हे फल मुनि आशिष भाखी॥

मुनि ने बहुत भांति से धीरज दिया। तब सीताजी ने गंगाजी में स्नान किया। फिर श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण कर उनकी मूर्ति हृदय में धारण की मुनि ने आशीर्वाद कहकर फल दिये।

मुनिबर कथा अनेक प्रसंगा। कहहिं सुनहि सिय सङ्ग बिहङ्गा॥
ज्ञान अनेक प्रकार बढ़ाये। लक्ष्मण अवध सुनौ तब आये॥

मुनि अनेक कथायें कहते हैं। सीताजी के साथ पक्षीगण सुनते हैं बहुत से मन में ज्ञान धारण करते लक्ष्मण जी अयोध्या में आये।

छं०—आएजोलछिमनत्यागीसीतहि बिकलनिज आश्रमगए।
बहु भांति रोदन मातु सन कहि सीय दारुन दुख दए॥
सुनि सहमिमूर्छित मातुवाणीबिकलजिमिफणिमणिगए।
रोवति वदतिकेहि भांतिको कहविपतिदारुन दुख भए॥

लक्ष्मणजी सीता को त्यागकर आये और व्याकुल होकर अपने महलों में गये। वे माता से सीता जी को दारुण दुःख देने का हाल रोकर कहने लगे। सुनकर माता मूर्छित हो गई जैसे मणि के बिना सांप व्याकुल हो जाता है। सब रोती हुई कहती हैं कि इस दुःख को कौन कह सकता ?

सुनि शोर राउर सहित लछिमन निज मन्दिर गए।
निजज्ञान दै समुझायुतेहि तब खुले पट अन्तर नए॥
बरचह्योसोइ सोइलह्योमागत मागतदीन करुणावर तवै।
तनु शोचि कर शुभ योगअगनी जाति भइ सादर सवै॥

शोक सुनकर रामजी लक्ष्मण सहित अपने महल में गये और अपने ज्ञान से माताओं को समझाया। तब उनके हृदय-पट खुल गए। जो वरदान माताओं ने चाहे वही करुणा सागर ने उनको दिये। तब उन्होंने योगाग्नि से शुद्ध करके अपने-अपने शरीरों को त्याग दिया।

दो०—योग अग्नि तनुभस्म करि, सकलगई पतिधाम।
भरत सत्रुसूदन लषण, शोर मगन भे राम॥ १६॥

योगाग्नि से शरीरों को भस्म कर सब पतिधाम को गईं। श्रीरामजी, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी शोक में मग्न हो गये।

बिधिबत किये कर्मश्रुति गाये। प्रभु ते गुरु सादर करवाये॥
दीन्ह दान पुनि कोटि प्रकारा। को अस कबि जो बरणों पारा॥

श्रीरामजी से विधि पूर्वक वेद के अनुकूल कर्म गुरु ने आदर से करवाये। अनेक भांति से दान दिया, ऐसा कवि जगत में कौन है जो वर्णन करके पार पा सके।

एक बार गुरु गृह सुखदाई। ले संग अनुज सचिव रघुराई॥
कीन्ह दण्डवत मति सिर नाई। बैठे प्रभु बर आसिष पाई॥

एक बार सुखदाई रामजी गुरु के घर मन्त्री और छोटे भाइयों के साथ गये। पृथ्वी पर मस्तक टेककर प्रणाम किया और श्रेष्ठ आशीर्वाद पाकर बैठ गये।

तव प्रसाद जप यज्ञ अनेका। कीन्हे अमित एक ते एका॥
नाथ सकल पुराजन मन माहीं। देखा अश्वमेघ प्रभु चाहीं॥

वे बोले –आपकी कृपा से मैंने एक से एक उत्तम यज्ञ किये हैं। हे प्रभु! सारे पुरवासियों के हृदय में एक अश्वमेघ यज्ञ देखने की इच्छा है।

जस कछु आयसु दीजै नाथा। सो मैं करब नाय पद माथा॥
सुनि पुलके मुनि बचन सप्रीति। कस न कहौ तुम सुंदर नीति॥

हे नाथ! आप जो आज्ञा दें तो उसे चरणों में मस्तक नवाकर करूँ। ऐसे प्रीतियुक्त वचन सुन कर मुनि बड़े प्रसन्न हुए और बोले– आह ऐसे नीति से भरे हुए वचन क्यों न कहेंगे?

पूजहि मन अभिलाषा तम्हारी। उठहु भरत अब करहु तैयारी॥
सुनि मुनि बचन भरत रिपदवनू। हरषि सचिब लछिमन गृहगवनू॥

ब्रह्माजी आपका मनोरथ पूरा करें। हे भरत! उठो और उचित प्रबन्ध करो। मुनि के वचन सुनकर भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणजी प्रसन्न होकर घर गये।

दो०–सेवक पुरजन सचिव सब, सादर तुरत बुलाय।
हाट बाट पुर द्वार गृह, रचहु बितान बनाय॥ १८॥

सेवक, प्रजा और मन्त्रियों को आदर से बुलाकर कहा– बाजार, गली, नगर, घर और द्वारों का मंडप बनाकर सजाओ।

गुरु समेत प्रभु अवधहिं आये। देखि बनाव बहुत सुख पाए॥
मिथिला पुर चर तुरत सिधाए। देश देश के नृपति बुलाए॥

गुरुजी के साथ प्रभु अयोध्या में आये और सजावट देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त ही जनकपुर को दूत भेजे तथा अनेक राजा बुलाये।

जामवन्त सुग्रीव बिभीषण। अरु नल नील द्विविद कुल भूषण॥
आये सब जहां राम कृपाला। बरुण कुबेर इन्द्र यम काला॥

जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण, नील, द्विविद आदि अपने कुल में उत्तम व्यक्तियों को बुलाया। वरुण, कुबेर, यम, काल आदि सब वहां आये जहां पर कृपालु श्रीरामचन्द्रजी थे।

चढ़ि विमान सुरत्रिया सुहाई। करत गान कलकण्ठ लजाई॥
आवहि मुनिगण यूथ घनेरे। देहि कृपानिधि सुन्दर डेरे॥

विमानों पर चढ़कर सुन्दर देवांगनायें कोयल के कण्ठ को भी लज्जित करती हुई गा रही हैं। मुनियों के अनेक समूह आते हैं जिन्हें कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर डेरे देते हैं।

शशि रवि हरि हर बिधि सनकादि। आये सुर जे परम अनादी॥
विश्वामित्र सङ्ग मुनि भारी। सहस सात ऋषि इच्छा चारी॥

चन्द्रमा, सूर्य, हरि, महादेव, ब्रह्मा, सनकादिक मुनि आदि परम अनादि देवता भी आये। विश्वामित्र के साथ सात हजार अपनी इच्छानुसार विचरने वाले मुनिगण आये।

दो०—पराशर भृगु अङ्गिरा, नारद व्यास अगस्त्य।
आए यूथप सकल मुनि, देवल सहित पुलस्त्य॥ १९॥

फिर पाराशर, भृगु, अङ्गिरा, नारद, व्यास, अगस्त्य और देवल सहित पुलस्त्यजी आदि सब मुनियों के झुण्ड आये।

मख स्थल अति दीख सुहावा। नाना भांति देख सुख पावा॥
मिथिलापुर जो दूत सिधाये। देखि नगर वासीन्ह सुख पाये॥

आगन्तुकों ने यज्ञ का सुन्दर और नाना प्रकार के सुशोभित स्थान देखकर सुख पाया। जो दूत जनकपुर गये थे उन्हें देखकर जनकपुरवासियों को बड़ा सुख हुआ।

द्वारपाल सन खबर सुनाई। अवध नगर ते पत्री आई॥
सुनि बिदेह सहसा उठि धाए। तन मन पुलकि नयन जल छाये॥

दूतों ने द्वारपाल द्वारा यह समाचार भेजा कि अयोध्या से पत्री आई है। अचानक यह सुन जनकजी उठ दौड़े। उनका मन और शरीर पुलकित था और नेत्रों में जल छाया हुआ था।

भयो भूप मन आनन्द जेता। कहि न सकै सादर अहि तेता॥
शिथिल अंग नृप द्वारे आये। देखि दूत अतिसय सुख पाए॥
कहहु कुसल रघुपति सब भाई। गद् गद कण्ठ न कछु कहि जाई॥

राजा के मन में जितना आनन्द हुआ उसको सरस्वती और शेषनागजी भी वर्णन नहीं कर सकते। शिथिल अंगों से महाराज द्वार पर आये और दूतों को देखकर बड़े सुखी हुए। वे बोले श्रीरामचन्द्रजी और सब भाइयों की कुशल कहो। गद्‌गद् कण्ठ से उनसे कुछ कहा नहीं जाता।

दो०—भूपप्रेम तेहिसमय जस, कहि न सकहिं मतिधीर।
तुलसी भयउ उछाह बस, जय जय शब्द गंभीर॥ २१॥

उस समय राजा का जैसा प्रेम था, उसे कोई धैर्यवान भी नहीं कह सकता। तुलसीदासजी कहते हैं उस समय मारे आनन्द के गम्भीर जयकार हुआ।

दो०—पूजे बिबिध प्रकार नृप, सादर दूत हंकार।
गुरु गृह गवने मुकुटमणि, पाय पदारथ चारि॥ २२॥

राजा ने आदर सहित दूतों को बुलाकर सम्मान किया। तब राजा मानो पदार्थ पाकर गुरु के घर गये।

सकल कथा महिपाल सुनाई। शतानन्द आनन्द अधिकाई॥
चलहुं नृपति मख देखिअ जाई। साजुल जाय सकल कटिकाई॥

राजा जनक ने सारी कथा सुनाई। शतानन्दजी के मन में बड़ा भारी आनन्द हुआ। वे कहने लगे--हे राजा! चलें, जाकर यज्ञ देखें। अपनी सारी सेना को जाकर सजाओ।

करि विनती नृप मन्दिर जाये। सादर सेवक सकल बुलाये॥
साजु सेन चतुरंग सोहाई। भवन गए सबही समुझाई॥

विनती करके राजा राजमहल में आए सेवकों को आदर से बुलवाया और कहा--चतुरंगिनी सेना सजाओ। सबको समझाकर वे घर गए।

पत्री सहित नारि गृह आए। बांचि नृपति पुनि सकल सुनाए॥
आनन्द सब रनिवास बुलाई। दिए दान महि देवन आई॥

वे पत्रिका के साथ अन्तःपुर में आए और उसे पढ़कर सबको सुनाया। मारे आनन्द के सारे रनिवास ने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत-सा दान दिया।

बांचत प्रेम न हृदय समाता। चरवर बोलि कहि हंसि बाता॥
नगर गांव पुर मंगल साजहु। अमित अपार बाजने बाजहु॥

पत्री पढ़ते समय स्नेह हृदय में नहीं समाता। अपने दूतों को बुलाकर वे हंसकर बोले--नगर, ग्राम और घरों में मंगल सजाओ नाना प्रकार के बाजे बजाओ।

दो०–चलेउराउमुनिगणसहित, बिपुलबजाइनिशान।
प्रात तीसरे पहर सोई, अवध नगर निअरान॥ २३॥

इस प्रकार राजा जनक मुनि सहित बहुत से बाजे बजाकर चले। दूसरे दिन तीसरे पहर को अयोध्यापुरी के निकट पहुंचे।

पुर बाहर सरयु सुचि तीरा। बास दीन्ह हर्षित रघुवीरा॥
सौंपि अनुज कहं राज समाजू। आए प्रभु जहं नृपमनि राजू॥

श्रीरामजी ने प्रसन्न होकर नगर के बाहर पवित्र सरयू के किनारे उन्हें ठहराया। फिर छोटे भाइयों को राज-समाज सौंपकर प्रभु वहां आये जहां भूपश्रेष्ठ महाराज जनकजी थे।

मिलि पुनि नृपति निकट बैठारे। गद्गद् व्है मृदु बचन उचारे॥
बदन मयंक निरखि सब गाता। आनन्द मगन न हृदय समाता॥

तब राजा ने मिलकर उन्हें निकट बैठाया। फिर गद्गद् होकर मीठे वचन कहे। चन्द्रमुख व शरीर देखकर राजा के हृदय में प्रेम नहीं समाता।

प्रभु बिनती करि सब सेवकाई। सचिव भरत पुनि लिए बुलाई॥
नृप सेवा सब भरत संभारी। सुनु खगपति आनन्द उर भारी॥

श्रीरामचन्द्रजी ने विनय संयुक्त सब सेवा करके भरत और मंत्री को बुला लिया। राजा जनकजी की सारी सेवा का भार भरतजी ने संभाला। हे पक्षीराज उनके हृदय में बड़ा ही आनन्द था।

आइ गुरुहि सादर सिरु नाई। मन भावति बर आसिष पाई॥
पुनि प्रभु सकल देव गुरु बन्दे। अभिमत आसिष पाई अनन्दे॥

फिर गुरुजी को सादर सिर नवाया और मनचाहा आशीर्वाद पाया। फिर प्रभ ने सारे देवता और गुरुजनों को प्रणाम किया। मनोवांछित आशीष पाकर प्रसन्न हुए।

दो०–दस सहस्र मुनिबर सहित, आए प्रभु मख धाम।
बोले बचन विनीत गुरु, मन्त्र सुनहु मम राम॥ २४॥

दस हजार श्रेष्ठ मुनियों सहित श्रीरामजी यज्ञशाला में आये। तब वशिष्ठ ने विनम्र वचन कहे--हे राम! मेरा विचार सुनो।

धर्म सकल जेहि वेद बखाने। सन्त पुराण लोक सब जाने॥
बिन प्रिय सफल न होय खरारी। अब चहिये मिथलेश कुमारी॥

सब धर्म जिनका वेदों ने बखान किया है और जो संत, पुराण और संसार को विदित है, वे बिना स्त्री के सफल नहीं होते। इसलिए हे खरारि! अब मिथिलेशकुमारी जानकी चाहिये।

सुनि मुनि वचन मौन गहि रहेऊ। सत्य असत्य न एकौ कहेऊ॥
मम प्रण बिरद जान मुनिराया। रहै सुकृत जेहि करहु सो दाया॥

मुनि के वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी चुप रह गए सत्य-असत्य कुछ न बोले। फिर कहने लगे हे मुनिराज! मेरे प्राणों के यश को समझकर दया करके वही करिये जिससे सुकृत (पुण्य) रहे।

दोउ गुरु मिलि नारद सनकादी। बचन कहेउ सुनु परम अनादी॥
कनक जटित मणि सुन्दर बाला। रचि सिय रूप सुसील बिसाला॥

दोनों ओर के गुरु नारद और सनकादिक मुनियों ने यह वचन कहा--हे अनादि पुरुष! सुनिये, सोने की सुन्दर मणियों से जड़ित, परम शीलवान सीताजी के रूप की एक सुन्दर स्त्री प्रतिमा बनवाइये।

अंग अंग सब भूषण साजे। तासु रूप लखि रतिपति लाजे॥
सहसा लखि न सकहिं नर नारी। सिय देखहिं सब अब अचरज भारी॥

उसके अङ्ग-२ में सब भूषण सजाये गए। उसके रूप को देखकर कामदेव भी लज्जित होता था। स्त्री-पुरुष उसे अचानक पहिचान नहीं सके। सीताजी को देखकर सब आश्चर्य में आ गए।

दो०--तेहि अवसर शोभा अमित, को कवि बरनै पार।
जगदाधार कृपाल प्रभु, कीन्हे चरित अपार॥ २५॥

उस समय की अपार शोभा का वर्णन करके कौन पार पा सकता है? जगत के आधार कृपालु प्रभु ने अपार चरित्र किया।

युग सहस्र जे प्रियवर, सुंदर परम प्रवीन।
जानहिंश्रुतिकर मतिसकल, रहिमखसंग आधीन॥ २६॥

दो हजार श्रेष्ठ और चतुर ब्राह्मण जो वेद मत को भली-भांति जानते थे, उस यज्ञ के आधीन (निमित्त) नियुक्त किये गए।

मकर मास ऋतु शिशिर सुहाई। मख मण्डल बैठे रघुराई॥
तब बोले गुरु बचन सुहाये। आनहु बाजि जो वेद बताये॥

माघ की सुन्दर शिशिर ऋतु में श्रीरामजी यज्ञशाला में बैठे। तब गुरुजी बोले--जैसे वेद में कहा है, घोड़ा लाओ।

लछिमन सुनि गुरु बचन अनन्दे। बार बार पद पंकज बन्दे॥
हयशाला सादर चलि आये। बिबिध बिभूषण तेहि पहिराये॥

लक्ष्मणजी गुरु के ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न हुए। वे बार-बार उनके चरण कमलों की वन्दना कर के बड़े आदर से घुड़साल में आए और उस घोड़े को अनेक भांति के आभूषण पहिनाये।

श्वेतबर्ण सुंदर श्रुति कारे। रवि हय लजित मनोज संवारे॥
जीन जड़ाउ न जाई बखाना। रवि हय चढ़ि आवत जग जाना॥
माथे मोर पंख मणि लागे। सोउ नभ नयन देखि अनुरागे॥

उस घोड़े का श्वेत वर्ण था, कान काले थे, जो सूर्यदेव के घोड़ों को भी लज्जित करता था मानो कामदेव ने अपने हाथ से ही बनाया हो। उसके ऊपर जड़ाऊ जीन रक्खी थी, ऐसा ज्ञात होता था मानो सूर्य ही चले आ रहे हों। माथे पर मोर पंख और मणि लगी थी, मानो आकाश में तारे खिले हों।

दो०–षष्ठि सहस दस वीर वर, रामानुज रणधीर।
मध्य ताहि आनेहु तहां, जहां राम रघुवीर॥ २७॥

उसके संग में साठ हजार श्रेष्ठ वीरों को लिए लक्ष्मणजी उसे बीच में लाए जहां श्रीरामचन्द्रजी थे।

पूजेउ प्रभु हय जग जय हेतू। जस कछु कहा गाधिकुलकेतू॥
दीन्ह विविध विधिदान अनेका। लखहि पत्र सोइ करि अभिषेका॥

श्रीरामचन्द्रजी ने संसार विजय के निमित्त घोड़े का पूजन किया व जैसा कुछ विश्वामित्रजी ने कहा वैसा किया। अनेक विधियों से बहुत सा दान दिया तथा उनका अभिषेक करके एक पत्र लिखा।

एक बीर कौसलपुर माहीं। अरि दल दमन सुरेश सकाहीं॥
जेहि बल हो। गयो सोइ बाजी। दण्ड देहु बन जाहु की भाजी॥

कौशलपुर में एक वीर शत्रु दल का नाश करने वाला है, जिससे इन्द्र भी डरते हैं। जिसको बल हो वह घोड़े को बांधे और दण्ड दे अथवा अपने प्राण लेकर वन को भाग जाए।

लिखि बांध्यो हय सीस संवारी। यह सुनि चरित आब मुनि चारी॥
भार्गव आदि सकल मुनि संगा। आये जहं रघुबंस पतंगा॥

ऐसा लिखकर घोड़े के सिर पर उसे सम्भाल कर बांध दिया। यह सुनकर बहुत से मुनि वहां पर आए। भृगु आदि सब मुनि वहां आए जहां रघुकुल के सूर्य श्रीरामचन्द्रजी थे।

कथा सकल लवणासुर केरि। मुनिन त्रास जिन दीन्ह घनेरी॥
सुनि मुनि बचन नयन जल छाये। बहुरि राम निज त्रोण मंगाये॥

तब मुनियों ने लवणासुर की सब कथा कही, जिसने मुनियों को भारी दुःख दिया था। ऋषियों के ऐसे वचन सुनकर रामजी के नेत्रों में पानी भर आया फिर उन्होंने अपना तरकस मंगाया।

दो०–दीन्हे रिपुसूदनहि सो बाण अमोघ कराल।
मन्त्र मारि पढ़ि ताहि हित, जीतहुसकलभुआल॥ २८॥

एक कराल और अमोघ बाण निकाल कर शत्रुघ्नजी को दिया और कहा—मेरा मन्त्र पढ़कर इसको मारकर सब राजाओं को जीतो।

बहुरि विभीषण राम बुलाये। सादर आय माथ तिन नाये॥
लवणासुर के चरित्र अपारा। पूछे दिनमणि वन्श उदारा॥

फिर रामजी ने विभीषण को बुलाया। उन्होंने आकर सादर प्रणाम किया रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजी ने लवणासुर के अपार चरित्र पूछे।

कर युग जोरि निसाचर नाहा। सत्य कहौं अब सुनु अवगाहा॥
भगिनि विमात्र नाथ सो मोरी। कुम्भनसी तेहि नाम बहोरी॥

विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा--हे प्रभो! सुनिए, मैं सत्य कहता हूं। मेरी एक सौतेली बहन थी जिसका नाम कुम्भनसी था।

मधु दानव कहं रावण दीन्ही। बहु बिनती करि तब तेहि लीन्ही॥
तनय तासु लवणासुर भयऊ। शिव सेवा सादर निज कियऊ॥
अगम तासु तप शंकर जाना। दीन्ह सूल सुनु कृपा निधाना॥

उसे रावण ने मधुदैत्य को दिया था। उसने बहुत विनय से उसे ले लिया उसी का पुत्र लवणासुर हुआ जिसने सादर शिवजी की सेवा की। हे कृपानिधान! उसका कठिन तप जानकर शंकरजी ने उसे एक त्रिशूल दिया।

दो०—तेहिबल प्रभु सोहिनगनइ, अमर दनुज नरनाग।
जीति सकल निजवश किये, पथ सबही के लाग॥ २१॥

हे प्रभु! वह उसी के बल से देवता, मनुष्य, नाग किसी को नहीं गिनता, सबको जीतकर वश में कर लिया है और सबके पीछे पड़ा रहता है।

तासु चरित्र सुनि मन मुसकाने। रिपु सतहि बलदै सनमाने॥
सेन संग चतुरंग बनाई। लिये साथ दोऊ तनय सोहाई॥

उसका हाल सुनकर रामचन्द्रजी मन में हँसे और शत्रुघ्नजी को अपना बल देकर सम्मान किया। उन्होंने सेना और पुत्रों को साथ लिया।

सुनि प्रभु बचन निशान अपारा। तीन सहस्र हने इक वारा॥
धसकैं बसुधा कुञ्जर गाजै। दस सहसरथ रवि रथ लाजै॥

प्रभु के वचन सुनते ही तीन हजार नगाड़े एक साथ बजे। हाथियों के गरजने से पृथ्वी धंसने लगी। दस हजार रथ सूर्य के रथ को लज्जित करते हैं।

पूरयो शंख चले दल साजी। अमित अखण्ड दुन्दुभी बाजी॥
चमू चपल अति सुभट्ट जुझारा। घेरयो नगर वीर वरियारा॥

शंख बजाते हुए सेना सजकर चली। आकाश में अनेक दुन्दुभियां बजीं। जुझाऊ योद्धाओं की चपल सेना ने लवणासुर का नगर घेर लिया।

विपुल निसान हते तेहि काला। सुनि निसिचर पति गर्व विशाला॥
सुभट प्रचारत गर्जत आवा। देखि कटक निज अति सुखपावा॥

उस समय अनेक नगाड़े बजे जिन्हें सुनकर लवणासुर को बड़ा अभिमान हुआ। वह योद्धाओं को ललकारता हुआ आया और अपनी सेना को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ।

मारु शब्द सुनहिं भट गाजहिं। विपुल बाजने दोउ दिसि बाजहिं॥
निज प्रभु करि जय जोरी जानी। हर्षि भिरे भट हट मन ठानी॥

मारू का शब्द सुनकर वीर प्रसन्न होने लगे। दोनों ओर अनेकों बाजे बजने लगे। अपने स्वामी की जय बोलकर और अपनी जोड़ी जानकर हठ ठानकर योद्धा प्रसन्नता से भिड़ गए।

दो०–विचलित अनीविलोकिनिज, लवणासुर बरबराड।
संग तनय मातंगभट, दूसर केतु अखराड॥ ३०॥

बरवण्ड लवणासुर अपनी सेना को विचलित हुए देख अपने दोनों पुत्रों मातंग और केतु को लेकर आगे बढ़ा।

प्रभु सुत ज्येष्ठ सुबाहु विशाला। भिरयो मतंगहि जनु दुइकाला॥
यूपकेतु अरु केतु प्रचारी। लरहिं सुखेन न मानहिं हारी॥

शत्रुघ्नजी के बड़े लड़के महान बलशाली सुबाहु मातंग के साथ भिड़ गए मानो दो काल हों। यूपकेतु भी केतु की ललकार सुन सुखपूर्वक भिड़ गए, दोनों लड़ते हैं परन्तु हार नहीं मानते।

यूपकेतु करि कोप अपारा। हरि रिपुकेतु खरिड महि डारा॥
उहां सुबाहु मतंगहि मारी। कर पद कीटि अवनि महं डारी॥

यूपकेतु ने क्रोधपूर्वक केतु मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। उधर सुबाहु ने मातंग को मार उसके हाथ-पैर काटकर पृथ्वी पर डाल दिया।

करि छल प्रगटेसि बिबिध बरूथा। अस्त्र-शस्त्र गहि सब सुरयूथा॥
धरु मारु सुर करहिं। लरहिं न भट विस्मय व्हे रहही॥

लवणासुर ने माया करके अनेक देवताओं के झुण्ड पैदा कर दिए जो हाथ में अस्त्र-शस्त्र लिए थे। वे पकड़ो-पकड़ो, मारो मारो कह रहे थे यह माया देख शत्रुघ्नजी के योद्धा विस्मत होकर लड़ते नहीं थे।

रिपुसूदन प्रभु विशिख संभारी। जोरउ धनुष सुमिरि त्रिपुरारी॥
जिमि तम अच तरणि गा सोई। समर अमर नहिं दीखे कोई॥

शत्रुघ्नजी ने प्रभु श्रीरामचन्द्रजी का बाण शिवजी का स्मरण करके संभाल कर धनुष पर रक्खा। जैसे सूर्य अपने पास गए अन्धकार का नाश कर देता है, वैसे ही कोई देवता लड़ाई में न देख पड़े।

सुर समाज कतहुं नहिं देखा। चल्यो सुबाहु काल जनु भेषा॥
खल संभारु गहु सूल विचारी। अस कहि गदा कोप उर मारी॥

देवताओं के झुण्ड कहीं न देखकर सुबाहु काल के समान भेष से चले सन्मुख जाकर लवणासुर से बोले--रे दुष्ट! अब अपना त्रिशूल सम्भाल कर ले ऐसा कह बड़े क्रोध से उसके हृदय में गदा मारी।

सहि न सक्यो तेज अपारा। मूर्छित अवनि परयो बिकरारा॥
कैटभ नाम वीर बलवाना। मूर्छित लवणासुर मन जाना॥
तब खिसियान सूल लैधावा। यूपकेतु के सन्मुख आवा॥

वह राक्षस उस अपार तेज को सह न सका, मूर्छित और व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कैटभ नामक एक बलवान दैत्य ने जब लवणासुर को मन में मूर्छित जाना, तो वह दैत्य खिसियाकर त्रिशूल लेकर दौड़ा और यूपकेतु के सामने आया।

सो०—मारेसि हृदय संभारि गिरे जपत करुणा अयन।
मूर्छित बेर पुकारि, रामचन्द्र दिनमणि तिलक॥ ३॥

और यूपकेतु के हृदय में तक कर मारा। वे करुणासागर को जपते हुए गिर पड़े। मूर्छित होते समय वे पुकारे कि 'हे रघुकुल में श्रेष्ठ रामजी!'

मूर्छित बन्धु सुबाहु बिलोकी। भइ रिस अमित रहत नहिं रोकी॥
कठिन बाण करि क्रोध अपारा। छांड़ेउ तीन कोटि एक बारा॥

सुबाहु ने भाई को मूर्छित देखा। उन्हें अत्यन्त क्रोध हुआ। वे रोकने से न रुके। उन्होंने क्रोध करके तीन करोड़ कराल बाण छोड़े।

ताहि बिकल करि अनुज समीपा। आतुर आयो रघुकुल दीपा॥
लागे बाण तासु तन माहीं। परयो अवनि तसु सुधि कछु नाहीं॥

उस राक्षस को व्याकुल करके रघुकुलदीप सुबाहु शीघ्र ही भाई के निकट आए। यूपकेतु के शरीर में बाण लगे थे। उन्हें कुछ होश न था और वे व्याकुल हुए पृथ्वी पर पड़े थे।

एंचि सांस तनु बाहर कीन्हा। राम नाम वर औषधि दीन्हा॥
उठ सुचि अंग अनुज के संगा। लीन्ह बिहसि धनुषबाण निषंगा॥

सुबाहु ने सांस को शरीर से खींचकर बाहर कर दिया और राम नाम की श्रेष्ठ औषधि उन्हें दी। उसे सुनते ही वे भाई के साथ उठे और उनका अंग सुन्दर हो गया। तब यूपकेतु ने हंकर फिर धनुष बाण लिया।

जाग्यो निश्चर देखि लराई। चल्यो कुमुक लै संग निज भाई॥
सुर बैरी तेहि काल सकाई। हार समर यहं सुनु खगराई॥

कैटभ राक्षस मूर्छा से जागा और उसने लड़ाई होती देखी। वह अपने भाई जाम्यक से सहायता लेकर आया। हे गरुड़ जी! सुनो, उस देवों के बैरी से काल भी डरता था। वह भी लड़ाई में हार गया।

नायेउ माथ आनि कर जोरी। तात समर रुचिर पूजी मोरी॥
रावण रिपु लघु भ्राता जानू। तनय तासु बल शील निधानू॥

उसने आकर मस्तक नवाया और कहा—तात! आज युद्ध में मेरी इच्छा पूरी हुई है। रावण के शत्रु रामजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी के पुत्र बल और शील के निधान है।

कोटिन सर सूर हम मारे। बालक नृपति निरखि हिय हारे॥
रिपु बल सुनिकर हृदय कलापू। पयासि मोहि जानि निज आपू॥

रवि तनया गहि सेना डारौं। तनय समेत अनुज रिपु मारौं ॥

करोड़ों योद्धा युद्ध में हमने मार डाले हैं परन्तु राजपुत्रों को देखकर हम हृदय में हार गये हैं। स्वामी ने बैरी का बल सुन हृदय में दुःख मानकर हमें भेजा है। (लवणासुर बोले) मैं सब सेना को यमुना में डुबा दूंगा और पुत्रों समेत शत्रुघ्नजी को मारूंगा।

दो०–भिरे समर सारेष अति, फिरे सामने क्रूर।
लागे लोहे हठि रहे, समर बीर बलपूर ॥ ३१ ॥

योद्धा रण में क्रोधित हो भिड़ गए और कायर जी चुराकर भागे, लोहा बजने लगा। रण में बली और वीर योद्धा हठ करके रह गये।

साजि बाजिगन बाहिनी, गहिगहिहने निशान।
आया समर सकोप अति, लवणासुर बलवान ॥ ३२ ॥

घोड़े हाथी की सेना सजाकर व नगाड़े बजाता हुआ क्रोध के साथ लवणासुर रण में आया।

सुमिरि अवधपति चरण युग, छांढ़ेउ तीव्र नराच।
परयोधरनितल भिन्नव्है, व्याकुल निपट पिशाच ॥ ३३ ॥

शत्रुघ्नजी ने श्रीरामजी के चरणों का स्मरण कर कराल बाण छोड़ा, जिसके लगते ही वह कटकर पथ्वी पर व्याकुल होकर अचेत गिर पड़ा।

तासु मरण सुनि सब सुरयूथा। चढ़ि विमान नभ देव बरूथा ॥
बाजहि दुन्दुभि बर्षहिं फूला। आज नाथ बीते सब सूला ॥

निशाचर का मरना सुनकर सब देवता आकाश में विमानों पर चढ़कर आये और दुन्दुभी बजाकर फूल बरसाने लगे और बोले--हे नाथ! आज सब दुःख दूर हो गया।

तहं युग नगर रचे अति रूरे। राखे तनय युगल बल पूरे ॥
मथुरा नाम जगत यश जाना। दूसरे विदित जु वेद बखाना ॥

शत्रुघ्नजी ने दो सुन्दर नगर रचकर दोनों पुत्रों को वहां का राज दे दिया। मथुरा नगर का नाम और यश संसार जानता है और दूसरे 'विदित' की महिमा वेदों ने गाई है।

ज्येष्ठ तनय बल बुद्धि बिशाला। नाम सुबाह विदित महिपाला ॥
राख्य यमुना तट बल भूरी। बिदित नगर पश्चिम बहु दूरी ॥

बल-बुद्धि में महान बड़े पुत्र सुबाहु को यमुना के किनारे मथुरा का राजा बनाया और दूसरे पुत्र यूपकेतु को विदित नगर का राजा बनाया जो पश्चिम में बहुत दूर था।

चिरञ्जीव कहि हने निशाना। दक्षिण अश्व चला जब जाना ॥
सचिव तनय राखे सुत गंगा। उतरे सब दल यमुन तरंगा ॥

पुत्रों को आशीर्वाद देकर नगाड़ा बजाया। शत्रुघ्नजी ने जब घोड़े को दक्षिणी दिशा को चला हुआ जाना तो मन्त्री के पुत्रों को अपने कुमारों के निकट रखकर सब सेना साथ ले जमुना जल में उतरे।

दो०–रबि तनय पद बन्दि कें, चलीसेन हय संग।
हर्षहिं सुर बर्षहिं सुमन, निरखि सेन चतुरंग ॥ ३४ ॥

यमुना जी के चरणों की वन्दना करके सब सेना घोड़े के साथ चली। देवता चतुरंगिणी सेना को देखकर प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे।

बालमीकि थल बाजि समेता। कानन सघन मुनीश निकेता॥
सिय सुत युगल वीर बरबराडा। भुजवल विपुल दिनेश प्रचराडा॥

सब सेना घोड़े सहित वहां पहुंचो जहां सघन वन में वालमीकि जी का आश्रम था वहां सीताजी के दोनों बलवान पुत्र रहते थे जिनकी भुजाओं का प्रताप सूर्य के समान प्रचण्ड था।

वीर बली हय देखब आई। बांध्यो बांचि सुपुत्र बनाई॥
सूर सहस्र सहायक साथा। आइ गए जहं रघुकुल नाथा॥

उन बलवानों ने आकर उस घोड़े को देखा और पत्र को पढ़कर घोड़े को बांध लिया। एक हजार सहायक वीर उस स्थान पर गये जहां दोनों राजकुमार बैठे थे।

तरुवर बांध्यौ बाजि बिलोकि। बालक जानि सकल रिस रोकी॥
देहु तुरत घर जाहु सुहाए। धन्य मातुपितु जिन्ह तुम्ह जाए॥
मांगहु भीक समर चढ़ि भाई। छत्री कुलहिं कलंक लगाई॥

घोड़े को पेड़ के तले बंधा देखकर, बालक जानकर सबने क्रोध रोक लिया। वे बोले हे बालकों! तुम घोड़े को हमें देकर घर जाओ। तुम्हारे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने तुम्हें पैदा किया है। (वे बोले—) हे भाई! युद्ध में जाकर क्षत्री कुल में कलंक लगाकर भीख मांगते हो।

छं०—जनि छवि कूलहि कलंक लावहु समर सूर सुहाने।
बलहीन तुरग प्रवीन छांड़ों जाहु न तु गृह आपने॥
सुन बचन कठिन कठोर बालक जानि भट धावत भये।
सर तानि एकहिं बान लव हंसि हने तनु जर्जर किये॥

क्षत्रिय कुल में कलंक न लगाओ, वीर युद्ध में ही सुन्दर लगते हैं। यदि तुम बलहीन हो तो घोड़े को छोड़ दो और अपने घर लौट जाओ ऐसे तीव्र वचन सुनकर योद्धा उन्हें बालक जानकर भी दौड़े। तब लव ने एक बाण छोड़कर उन सबके शरीर जर्जर कर दिये।

सो०—सुनि मुनि बालमराल, देहु अश्व निज कोपतजि॥
पूज तुमहितत्काल, करहिं जन्मनिज सफलप्रभु॥ ३४॥

तब शत्रुघ्नजी बोले—हे हंस के समान मुनि बालकों! अपना क्रोध त्यागकर घोड़ा लौटा दो तो प्रभु तुम्हारी पूजा करके अपना जन्म सफल करेंगे।

कौन नाम नृप केहि पुरबासू। फिरहु बिपिन निज सेन प्रकासू॥
छांड़हु बाजि हेतु केहि ताता। लिख्यो पत्र बांध्यो यह गाथा॥

यह सुन दोनों ने कहा—हे राजन् आपका क्या नाम है? किस नगर में रहते हो? अपनी सेना लिए जंगल में क्यों फिरते हो? हे तात! आपने घोड़ा क्यों छोड़ा है और यह पत्र क्यों लिखा है?

नहिं तब तनु बल पौरुष भाई। छांड़हु पत्र बाजि गृह जाई॥
मुनि रिपुहन कटु गिरालजाने। गहहु अस्त्र अस कहि मुसकाने॥

हे भाई ! यदि आपके शरीर में बल नहीं है तो इस पत्र और घोड़े को छोड़कर घर जाओ। ऐसी तीखी वाणी सुनकर शत्रुघ्न लज्जित हुए और 'अस्त्र पकड़ो' ऐसा कहकर मुस्कराये।

हमहिं प्रचारत नृप बल भारी। डरिपहि सिंह बजाये तारी॥
असकहि धनुष बान कर लीन्हे। मुनिबर चरन बिनय चित दीन्हे॥
मारयो रथ सारथी तुरंगा। कोटिन बान हने सब अंगा॥

लव बोले, बलवान राजा हमें ललकार रहे हैं। क्या ताली बजाने से सिंह जाता है ! ऐसा कहकर हाथ में धनुष बाण लेकर मुनि के चरणों में चित्त लगाया। फिर रथ, सारथी व घोड़े मार डाले और सब अंगों में करोड़ों बाण मारे।

दो०-एकहिं एक प्रचार करि, हने सकल रन सूर।
आए सब रघुवीर पहं, कायर करनी कूर॥ ३५॥

दोनों कुमारों ने एक-एक शूर को रण में ललकार कर मार डाला, जो क्रूर करनी वाले कायर थे वे सब भागकर रामचन्द्रजी के पास आये।

पूछऊ सकल भानुकूल नाथा। रिपु के सकल कहे गुन गाथा॥
लछिमन संग जाहु सब भाई। मुनि बालक बांधेउ बरिआई॥

सबने श्रीरामजी से पूछा तो उन्होंने शत्रु के सारे गुणों की कथा वर्णन की। वे बोले तुम सब लक्ष्मण के साथ जाओ और मुनि बालकों को बांध लो।

मारेउ जनि आनेउ पुर माहीं। रिषि सुत बधव उचित फल नाहीं॥
चली सेष संग सेन अपारा। आए तुरत समर जहं भारा॥

उन्हें मारना मत, नगर में ले आना क्योंकि ऋषि बालकों को मारना उचित नहीं होता। लक्ष्मण के साथ अपार सेना चली। शीघ्र ही सब उस स्थान पर आये जहां भारी युद्ध हुआ था।

लै घर जीव जाहु मुनि बालक। दिनकर बस देव द्विज पालक॥
आंखिन ओट होहु तुम्ह ताता। आवत क्रोध चढ़त मम गाथा॥

लक्ष्मणजी बोले हे मुनि बालकों ! अपने प्राण लेकर घर जाओ, सूर्यवंश देवता और ब्राह्मणों का रक्षक है। तुम आंखों की ओट में हो जाओ क्योंकि मेरे शरीर में क्रोध बढ़ रहा है।

दो०-मुनि लछिमन के बचन वर, बिहंसे बालक बीर।
अनुज बिलोकत जाहु घर, सुनहु महारनधीर॥ ३६॥

लक्ष्मणजी के श्रेष्ठ वचन सुनकर दोनों वीर हंसे और कहने लगे हे रणधीर ! आप अपने छोटे भाई की दशा देखते हुए घर जाइये।

निज सहाब सठ आनि बुलाई। केवल तोहि न हतै भलाई॥
सुनि कुश कठिन बाण सन्धाना। कांपि पुहुमि सेष अकुलाना॥

लक्ष्मणजी ने कहा--हे मूर्ख ! अपने सहायकों को बुला ला केवल तुझे मारने से कुछ भलाई नहीं है। ऐसा वचन सुनकर कुश ने बड़ा कराल बाण ताना। पृथ्वी कांपने लगी और शेषजजी घबड़ा गये।

काटहिं विशिख सन जाई। कौतुक करहिं बिबिध खगराई ॥
मल्ल युद्ध दोउ भिरे प्रचारी। लरहि सुखेन न मानहि हारी ॥

हे गरुड़जी ! बाणों को बाण काटते हैं और अनेक कौतुक होते हैं। दोनों वीर योद्धा युद्ध करते हैं और प्रसन्नता से लड़ते हैं, हार नहीं मानते।

मुष्ठिक एक बज्र सम मारी। बिकल लषण मन मानहि हारी ॥
सुमिरि कोसलाधीश खरारी। मारयो बाण बिकल लव डारी ॥

तब लव ने बज्र के समान एक घूंसा लक्ष्मणजी को मारा, उन्होंने व्याकुल होकर मन में हार मान ली फिर लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी का स्मरण करके बाण से लव को व्याकुल करके गिरा दिया।

सुमिर सिया मन चरण सुहाये। गत मूर्छा लव आतुर आये ॥
शक्रजीत अरि जे शर मारे। ते सब बाल काटि महि डारे ॥

सीताजी और मुनि के चरणों को स्मरण कर लव मूर्छा से जागकर जल्दी दौड़े। जिन बाणों ने मेघनाथ आदि शत्रुओं को मारा था, उन सबको बालकों ने काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

दो०—रामानुज विस्मय विकिल देखि सबल आरति।
सिया त्यागि उर सोकबड़ प्राण देहु केहि भांति ॥ ३७ ॥

लक्ष्मणजी बलवान शत्रु को देखकर बड़े व्याकुल और विस्मय हुए। हृदय में सीताजी के त्याग का शोक है। वे सोचते हैं कि किस भांति प्राण त्यागूं ?

कुशकरि क्रोध विशिख सोलीन्हा। मन्त्र प्रेरि मुनिवर जो दीन्हा ॥
नाक रसातल भूतल माही। तह शर छुटै बचै कोउ नाही ॥

तब लव ने क्रोध करके उस बाण को लिया जो मुनि बाल्मीकिजी ने मन्त्र पढ़कर दिया था। पृथ्वी, आकाश और पाताल में कोई जीव उस बाण के छुटने से नहीं बच सकता था।

मारयो ताकि शेष उर माहीं। परयो धरणि तल सुधि कछु नाहीं ॥
चली भाजि सब अनी अपारा। कोसलपुर मह परी पुकारा ॥

कुश ने बाण को तानकर लक्ष्मणजी के हृदय में मारा। वे मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े उन्हें कुछ सुधि नहीं रही। तब सारी सेना भाग चली और अयोध्या में जाकर पुकार की।

बरनी सकल युद्ध कै करनी। लछिमन बीर परे जिमि धरनी ॥
जे बिधि सकल कटक संहारा। निज लोचन हम नाथ निहारा ॥

उन्होंने लड़ाई की सारी कथा वर्णन की, जिस प्रकार से वीर लक्ष्मणजी भूमि पर गिरे थे और बोले हे नाथ ! जिस प्रकार से उन्होंने सारी सेना संहार की उसको हमने अपनी आंखों से देखा है।

दो०—भरत जोरि कर कहेउ तब बचन अमित बिलखाइ।
सत्य त्यागि फल दीन्ह बिधि तब बोले रघुराइ॥ ३८॥

तब भरतजी ने हाथ जोड़कर अत्यन्त दुःखी होकर कहा कि यह सीताजी के त्यागने का फल ब्रह्मा ने दिया है। तब श्रीरामजी बोले–

अनुज समर वहं तुम हिय हारे। साजहु हय गज रथ मतवारे॥
रहउ जग्य रिपु देखहुं जाई। बालक रावण सम दुखदाई॥

हे भाई ! क्या तुम्हारा हृदय युद्ध से हार गया ? मस्त हाथी, घोड़े और रथ आदि सजाओ। तुम यज्ञ के समीप रहो, मैं जाकर देखता हूं। ये बालक रावण के समान दुखदाई हैं।

तीव्र बचन सुनि भरत लजाने। बहुत भांति रघुपति सनमाने॥
प्रथम सखा सब लेहु बुलाई। हनुमदादि अंगद समुदाई॥

ऐसे तीखे वचन सुनकर भरतजी लज्जित हो गए तब श्रीरामजी ने बहुत भांति से उनका सम्मान किया और कहा पहले सब सखा हनुमान, अङ्गद आदि को बुलाओ।

जामवन्त कपिराज विभीषण। द्विविद मयन्द नील कुल भूषण॥
रिपुहि मारि कै समर भगाई। तात अनुज दोउ, आनहु जाई॥

जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण, द्विविद, मयन्द और नील जो कुल के आभूषण हैं उन्हें साथ लेकर शत्रुओं को मारकर अथवा रण से भगाकर हे तात ! तुम दोनों भाइयों को साथ ले आओ।

दो०—समर सीयसुत बीर दोउ, आइ गये बलवान।
देखि डरे सब भालुकपि, तब आयउ हनुमान॥ ३९॥

उसी समय सीता के दोनों बलवान पुत्र आ गये जिन्हें देखकर सारे रीछ तथा वानर डर गये। तब हनुमानजी वहां आये।

विषम युद्ध दोउ बन्धु करि, जीते कपि संग्राम।
आये पुनि तहं नृप भरत, सुमिर बिधाता बाम॥ ४०॥

दोनों भाइयों ने कठिन युद्ध करके बन्दरों को युद्ध में जीत लिया। फिर भरतजी ब्रह्मा को विपरीत जानकर संग्राम भूमि में आये।

व्याकुल भालु कही सब आवहिं। बाण त्रास अति दुख पावहिं॥
जामवन्त कपिराज बुलाई। अंगद हनुमान सुखदाई॥

सब भालू-बन्दर व्याकुल हैं, बाणों से दुःख पा रहे हैं। उन्होंने जामवन्त, सुग्रीव, अँगद, हनुमान आदि सहायक वानरों को बुलाया।

सब मिलि सहित निसाचर राजा। धरि आनहु दोउ बाल समाजा॥
जाइ जुरें कपि भालु भवानी। तिन कछु प्रभु महिमानहि जानी॥

और कहा तुम सब मिलकर विभीषण के साथ जाओ। उन दोनों बालकों को पकड़ लाओ। हे पार्वती! रीछ और वानर आकर इकट्ठे हो गये, उन्होंने श्रीरामजी की महिमा को नहीं जाना था।

बोले कुश सुनु बालि कुमारा। तब बल बिदित जान संसारा॥
पितहि मराय मातु पर हेली। सकल लाज आए तुम पेली॥

कुश बोले--हे अंगद! सुनो, तुम्हारा बल संसार को विदित है। पिता का बध कराकर माता को दूसरे के घर रखकर लज्जा को दूर करके तुम आये।

सो फल लेहु समर महं आजू। त्यागहु सकल कलंग समाजू॥
सुनत क्रोध अंगद उर छावा। गहि गिरि एक ताहि पर धावा॥

उसका फल युद्ध में लो और सारे कलंक को दूर करो यह सुनकर अंगद के हृदय में बड़ा क्रोध छा गया। वे एक पहाड़ लेकर दौड़े।

दो०--आवत सैल विसाल लखि, तिल सकसरहतिकीन्ह।
अंगदगर्ब अपारअति, तस फल रघुपति दीन्ह॥ ४१॥

विशाल पर्वत को आता देख कुश ने उसे बाण से काटकर तिल के समान कर दिया। जैसा अंगद को अपार अभिमान था वैसा ही प्रभु ने फल दिया।

तमकि ताहि कुश बाण चलावा। अंगद नील अकाश उड़ावा॥
आवत जानि बुहुमि अति भारी। मारा बाण प्रचारि प्रचारी॥

क्रोध में भरकर तककर कुश ने बाण मारा और अंगद व नील को आकाश में उड़ा दिया जब उन्हें पृथ्वी पर गिरते देखा तो बार-बार ललकार कर बाण मारे।

छिन अकाश छिन भूतल माहीं। बोले शरण शरण प्रभु पाहीं॥
रहेउ गर्व हम कहं भगवाना। अग जग नाथ न हम पहिचाना॥

वे कभी आकाश में और कभी धरती में गिरते हैं। वे बोले--हे प्रभु! हम आपकी शरण हैं, हमें अपने बल का बड़ा अभिमान था। हे संसार के स्वामी! हमने आपको नहीं पहिचाना।

पांच बांण बेधे कपि दोऊ। दीन जानि त्यागेउ हंसि सोऊ॥
जामवन्त हनुमान कपीसा। धावत गिरि तरु लै बहु कीसा॥

तब कुश ने पांच बाणों से दोनों बन्दरों को बेध दीन समझकर हंसकर छोड़ दिया। जामवन्त, हनुमान आदि बानरगण वृक्ष व पर्वत लेकर दौड़े।

खैंचि धनुष गुण छांड़ेउ सायक। कपि पति आदि हने कपिनायक॥
देखि भरत सब सेन निपाती। कोपि बाण मारेउ लव छाती॥

धनुष खींचकर बाण छोड़े, उनसे सुग्रीव आदि सेनापति मार गिराये। भरतजी ने सारी सेना का नाश देख क्रोधित हो लव की छाती में बाण मारा।

परयो मूर्छित कुश देख रिसाना। चढ़ाब चाप बाण सन्धाना॥
श्रवण प्रयन्त खैंचि धनु बीरा। भरत हृदय मारेउ सत तीरा॥

लव मूर्छित होकर गिर पड़े। यह देख कुश बहुत क्रोधित हुए और धनुष बाण चढ़ा लिया। कान तक धनुष खींचकर उस वीर ने भरतजी के हृदय में सौ तीर मारे।

दो०--समर भूमि सोये भरत, लवहिं लीन्ह उर लाइ।
सुमिरि मातु चरण युग, रहे समर जय पाइ॥ ४२॥

भरतजी मूर्छित होकर युद्ध में गिर पड़े। कुश ने लव को हृदय से लगा लिया। गुरु व माता चरणों का स्मरण करके दोनों जीत रहे हैं।

आये खबर लेन चर चारी। भरत सैन तिन सकल निहारी॥
शोणित सरिता देखि डराने। हय गज बहे जात रथ जाने॥

चार दूत खबर लेने आये, उन्होंने भरतजी की सेना देखी। वे खून की नदी देखकर डरे जिस हाथी और रथ बह रहे हैं।

फिरे दूत कोसलपुर आये। समाचार सब बरनि सुनाये॥
चरवर बचन सुनत दुख पावा। त्यागेउ मख निज कटक बनावा॥

दूत लौटकर अयोध्या में आए और सब समाचार वर्णन किया। दूतों के वचन सुनकर श्रीरामजी ने दुःख पाया और यज्ञ छोड़कर सेना एकत्र की।

चले सकोप कृपालु उदारा। आये जहां कटक संहारा॥
मुनि बालक वर देखि सुहाये। सिर नवाय प्रभु निकट बुलाये॥

उदार श्रीरामजी कोप करके चले। जहां सेना मरी पड़ी थी, वहां आये। सुन्दर मुनि बालकों को सिर नवाकर उन्हें पास बुलाया।

दो०--पूछेउ बाल बुलाय दोउ, कहहु मातु पितु नाम।
देश ग्राम सब कहो सब, बड़ जीते संग्राम॥ ४३॥

और दोनों से पूछा--तुम अपने माता-पिता का नाम कहो। अपने देश और ग्राम का नाम कहो। तुमने भारी संग्राम जीता है।

गहहु अस्त्र जनि कहहु कहानी। पूछहु स्वर्ग लोक अस जानी॥
वंश नाम बिनु पूछें ताता। हतौं न बाण मनोहर गाता॥

वे बोले--अस्त्र पकड़ो, बहुत कहानी न कहो। स्वर्ग में जाकर यह जान लेना। तब रामचन्द्रजी बोले--बिना नाम और वंश जाने हुए मैं आपके मनोहर शरीर में बाण नहीं मारूँगा।

माता सीय जनक की जाता। बालमीकि मुनि पाल्यो ताता॥
पिता वंश नाहिं जानहिं आजू। लव कुश नाम सुनहु रघुराजू॥

तब कुमार कहने लगे हमारी माता का नाम सीता है और वे जनकजी की पुत्री हैं और हे तात! हमें बाल्मीकि ने पाला है। हम पिता का वंश नहीं जानते। हे रामजी! नाम लव-कुश है।

सुनि सब कथा राखि मन माहीं। बाल बिलोक बधव भल नाहीं॥
आवत सुभट समूह समारे। लरिहहि तुम सन समर सुखारे॥
अस कहि अंगद नील पठावा। जमावन्त कपि पहिहि बुलावा॥

यह सुन मन में विचार कर रामचन्द्रजी ने कहा--इन्हें मारना उचित नहीं है वे बोले हमारी सेना के योद्धा आते हैं। वे ही तुमसे सुखपूर्वक युद्ध करेंगे। ऐसा कहकर रामचन्द्रजी ने अंगद, नील, जामवन्त और सुग्रीव आदि सेनापतियों को आकर बुलाया।

दो०—सावधान धनु बाण लै, धायउ लव बलवान।
सनमुख आइ विभीषन, बोलेउ बहुरि रिसान॥ ४४॥

तब बलवान लव सावधान हो, धनुष-बाण लेकर दौड़े और विभीषण के सामने आकर क्रोधित होकर बोले—

सुन सठ बन्धहि समर जुझाई। शत्रुहि मिल्यो परम कदराई॥
पिता समान बन्धु बड़ तोरा। त्रिया तासु ले घर वरजोरा॥

सुन मूर्ख! तू भाई को रण में लड़ाकर अत्यन्त डरकर शत्रु से जा मिला। तेरा बड़ा भाई पिता पूज्य था, उसकी स्त्री को बरजोरी अपने घर रख लिया।

पापी मातु कहीं कै बारा। सो पत्नी तह धर्म तुम्हारा॥
बूड़ि मरहु सागर महं जाई। मरु गर काटि अधम अन्याई॥

हे पापी! उसे तूने कितनी बार माता कहकर पुकारा होगा, उसी को तूने स्त्री बनाया यही तेरा धर्म है! रे अधम अन्यायी! समुद्र में जाकर डूब मर या गला काटकर मर जा।

समर भूमि मम सन्मुख आवा। लाज होत नहिं गाल बजावा॥
आंखिन आगे ते टरि जाई। नाहित मृत्यु निकट खल आई॥

रण भूमि में मेरे सामने आकर तुझे गाल बजाते हुए लज्जा नहीं आती। आंखों के सामने से हट जा, नहीं तो तेरी मौत निकट आ जायेगी।

सुनि खिसियान गदा कर लीनी। शर हति खंड खंड लव कीन्ही॥
गिरत कोप करि सूल चलावा। लव तनु तड़ित समान समावा॥

यह सुनकर विभीषण ने लज्जित होकर हाथ में गदा ली, लव ने उसे बाण से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डाला, विभीषण ने गिरते समय क्रोध करके त्रिशूल फेंका जो लव के शरीर में बिजली सा घुस गया।

दो०—दूर शूल करि बन्धु सर मारेउ पुनि दाप।
जामवंत कपिराज नल, अंगद करहिं बिलाप॥ ४५॥

दोनों भाईयों ने त्रिशूल निकाल कर फिर दमक कर बाण मारे जिससे जामवन्त, सुग्रीव नल, अंगद आदि विलाप करने लगे।

जो गिरि तरु कपि डारहिं जाई। रज सम करि तेहि देहिं उड़ाई॥
निज बाणन कपि घायल कीन्हे। जोजस उचितसो तस फल दीन्हे॥

जो वृक्ष व पहाड़ वानर लाकर डालते हैं वे बाण से धूल के समान उड़ा देते हैं। उन्होंने अपने बाणों से बन्दरों को कायर कर दिया और जैसा जिसको उचित था वैसा ही फल दिया।

हृदय ताकि लव मार्यो सायक। योजन सात गयो कपि नायक॥
धाये भालु कपि कोप बढ़ाई। मल्लयुद्ध कुश कीन्ह बनाई॥
निज बल भालुहि अवनि पछारा। दोउ कर चरण बांध विकराला॥

लव ने हृदय में कसकर बाण मारा तो सुग्रीव सात योजन पर जा गिरे। तब जामवन्त क्रोध बढ़ा कर दौड़े। कुश ने मल्ल युद्ध किया। तब कुश ने अपने बल से जामवन्त को पछाड़ दिया और दोनों हाथ पैर बांध लिये।

हनुमन्तहिं बांध्यो पुनि जाई। राख्यो निकट अश्वथल आई॥
रखबारी लव छांड़यो बोरा। आपु चले रघुनायक तीरा॥

फिर जाकर हनुमान को बांध लिया और घोड़े के निकट रक्खा। तब लव को रखवारी के लिए छोड़ श्रीरामजी के पास चले।

देखे रथ पर श्रीपति सोये। फिरेउ बीर निज लाज बिगोये॥
सुभट अस्त्र पट भूषण नाना। चले अश्व धरि लै हनुमाना॥

और देखा कि श्रीरामजी रथ पर सो रहे हैं। कुछ लज्जित होकर लौट आए। वे सुन्दर अस्त्र और वस्त्र-आभूषण घोड़े पर रखकर हनुमान को लेकर चले।

छं०–शुभ वस्त्र भूषण भालु कपिसंग अश्व लै सादर चले।
सिय निकट नायौ माथ दोउ सुत भेंट भूषण जे भले॥
पहिचानि कपिदोउनिरखिभूषणसहमिसुनि सिय अतिडरी।
एहि बीच मुनिवर सहमि आये सया उठि बिनती करी॥

हनुमान और जामवन्त के साथ सुंदर वस्त्र-आभूषण व घोड़े को लेकर चले। सीताजी के पास आकर मस्तक नवाया। दोनों पुत्रों ने भेंट भली-भांति आगे रक्खी। दोनों वानरों को पहचान कर आभूषणों को देखकर सीताजी सहमकर बहुत डरी। इसी समय बाल्मीकि जी घबड़ा कर आ गए। सीताजी ने उठकर उनकी विनती की।

हनुमान भालुहि छोरी बन्धन त्यागि बहु समझायउ।
रिपुदवन लछिमन सहित भरतहिं राम रण पौढ़ायउ॥
सुत कीन्ह कम कलंक कुल मंह माहि बिधि बिधवा करी।
तजि सोक चन्द अगर आनहु जाहुं पिय संग अवजरी॥

हनुमान और जामवन्त के बन्धन खोलकर उन्हें बहुत प्रकार से समझाया और कहा श्रीरामजी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन सबको रण में सुला दिया। हे पुत्र! तुमने कुल में कलंक का काम किया और हाय! मुझे तो ब्रह्मा ने विधवा ही कर डाला। अब शोक त्याग कर चन्दन और अगर लाओ। मैं अपने पति के साथ जल जाऊंगी।

मुनि धीर दीन्हो तनय लीन्हो संग लै सादर चले।
रण देखि बालक चरित आनन्द बिहंस मुनिबर अतिभले॥
रथ देखि यह पहिचान प्रभु के जाय मुनि चरनन परे।
उठि बैठि कोसलनाथ आरत तनय तब आगे खरे॥

मुनि ने जानकीजी को धीरज और पुत्रों को साथ लेकर आदर के साथ चले। युद्ध में बालकों के चरित्र देखकर मुनि प्रसन्न हुए। श्रीरामजी का रथ देख घोड़ों को पहिचान कर प्रभु के चरणों पर आ गिरे और बोले हे कौशलानाथ! उठ बैठिये। आपके दुःखी पुत्र आगे खड़े हैं।

सो०–पुनि सुनि मुनिबर बैन, जागे रघुपति भय करन।
बिहंसि ऊधारे नैन, लीन्हे हृदय लगाय मुनि॥ ५॥

फिर मुनि की कोमल वाणी सुनकर भयहारी रामजी जागे। उन्होंने हंसकर नेत्र खोले और मुनि को हृदय से लगा लिया।

जेहि विधि सेष सीय वन आनी। मुनिवर सो सब कथा बखानी॥
लवकुश कथा सकल मुनि भाषी। शिब विरंचि सूरज करि साखी॥

जिस प्रकार लक्ष्मणजी सीताजी को वन में लाये थे, मुनि ने वह सब कथा वर्णन की फिर बाल्मीकिजी ने महादेवजी, ब्रह्मा और सूर्य को साक्षी करके लव-कुश की सारी कथा वर्णन की।

मिले तनय दोउं हृदय लगाई। सुधा बरषि सुर सैन्य जिआई॥
भरत आदि जागे सब भ्राता। लछिमन चले जहां सिय माता॥

तथा श्रीरामजी दोनों पुत्रों को हृदय से लगाकर मिले। देवताओं ने अमृत बरसाकर सब सेना जिला दी। भरत आदि सब भाई जागे। लक्ष्मणजी माता सीताजी के पास चले।

बहुरि राम लछिमनहिं बुलाई। सुनहु तात अस बचन सुहाई॥
तात बचन मम मानहु भाई। सिय सन दिव्य लेहु तुम जाई॥

फिर श्रीरामजी ने लक्ष्मण को बुलाया और कहा—हे तात! तुम मेरा सुंदर वचन सुनो हे भाई! मेरे वचनों को मानकर तुम सीताजी से जाकर शपथ लो।

लछिमन जाइ सीस पद नावा। कुशल कही बहु विधि समुझावा॥
हरि इच्छा सिय मन अस आवा। शेष सहस फनि आनि देखावा॥

लक्ष्मणजी ने जाकर सीता के चरणों में शीश नवाकर कुशल कही और उन्हें बहुत समझाया। भगवान की इच्छा से सीताजी के मन में भी ऐसा ध्यान आ गया। तब शेषनाग जी ने आकर सहस्र फन दिखाये।

दो०—जटिल मणितसिंहासन, सादर सीय चढ़ाय।
भयो अलोप पताल महं, महिमाकिमिकहिजाय॥ ४६॥

मणि जटित सिंहासन पर बड़े आदर से सीताजी को बैठाकर वे (शेषनाग) पाताल में लुप्त हो गये। यह महिमा किस प्रकार कही जाय।

लछिमन चरित दीख सब ठांढ़े। नबन प्रवाह चले अति गाढ़े॥
सकल चरित सुनि कृपानिधाना। चलन हमार सिय मम जाना॥

लक्ष्मणजी ने खड़े-खड़े सब चरित्र देखे उन्हीं आंखों से आसुओं की धारा बह चली। श्रीरामजी ने यह सुनकर मन में विचार किया कि सीताजी ने हमारा चलना जान लिया।

तनय सहित प्रभु निज पुर आये। बिदा किये मुनि बृन्द बुलाये॥
जनकहि पूजि बिदा प्रभु कीन्हा। दोउ गुरु पूजि पदोदक लीन्हा॥

पुत्रों सहित प्रभु अयोध्या में आये और बुलाये मुनि बृन्दों को विदा किया। जानकी जी का पूजन करके उन्हें विदा किया और दोनों गुरुओं का पूजन करके चरणोदक लिया।

एहि विधि बिपुल काल पुनिगयऊ। निजपुर गमन सुअवसर भयऊ॥
बीती अवधि ब्रह्म जब जानी। नारद मुनि सन कहा बखानी॥

इस भांति बहुत समय व्यतीत हो गया, और अपने धाम पधारने का सुंदर अवसर आया। जब ब्रह्माजी ने जाना कि अब अवधि पूर्ण हो गई है तो नारद मुनि से समझाकर कहा।

निज पुर आवत चहत खरारी। धर्मराज को कहेउ हंकारी॥
बिनती बहु बिरञ्चि तब भाखी। गयेउ धर्म रघुपति उर राखी॥

श्रीरघुनाथजी अपने धाम को आना चाहते हैं। धर्मराज को बुलाकर कहो। धर्मराज के आने पर ब्रह्माजी ने बहुत विनती की। तब वे श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में धारण करके चले।

दो०—आये यम रघुवीर पुर, मुनिवर वेष बनाय।
तेज पुंज सुन्दर तरुण, कटि मृग चर्म सुहाय॥ ४७॥

यमराज सुन्दर, तेजवान और तरुण मुनि का रूप बनाकर अयोध्या पुरी में आये। उनकी कमर में सुंदर मृगछाला शोभायमान थी।

तुरत शेष को खबर जनाई। सुनत बचन आये रघुराई॥
मुनहि निरखि प्रभु कीन्ह प्रनामा। सादर उचित कहेउ विश्रामा॥

लक्ष्मणजी ने शीघ्र ही उनके आने का समाचार प्रभु से कहा। सुनते ही रामचन्द्रजी द्वार पर आये। मुनि को देखकर श्रीरामजी ने प्रणाम किया और बड़े आदर से बैठने को उचित आसन दिया।

अर्घ्य दीन्ह आसन बैठारी। मुनि सादर पुनि गिरा उचारी॥
सुनु सर्वज्ञ कृपालु दिनेसा। आवउं मैं मुनिवर के वेषा॥

फिर अर्घ्य देकर सुन्दर आसन पर बैठाया। तब मुनि ने आदर से कहा हे सर्वज्ञ, कृपालु, सूर्य कुल के स्वामी! सुनिये, मैं यहां मुनि के वेष में आया हूं।

मैं तुम्ह रहउं और नहि कोई। तिसरें सुनत नाश तेहि होई॥
सुनिहि बचन तेही देहउं शापू। शिव विधिहरि जो आवहि आपू॥

इस स्थान पर मैं और आप दोनों ही रह जावें, तीसरे के सुनते ही उसका नाश हो जायेगा। यदि स्वयँ महादेव, ब्रह्मा, और हरि भी मेरी बात सुनेंगे तो मैं उन्हें श्राप दे दूँगा।

सुनहु लषन बैठहु चल द्वारे। नहि कोउ आव न गिरा उचारे॥
इतने पर आवइ पुनि कोई। मरिहहि सत्य मृषा नहिं होई॥

तब रामजी ने कहा हे लक्ष्मण! तुम चलकर द्वारे पर बैठो। न तो कोई आवे और न बात चीत करे। इतने पर भी जो आवेगा निश्चय ही मरेगा, यह अन्यथा नहीं है।

दो०—बोलेउ तापस वचन मृदु, पाहिं पाहि रघुनाथ
कहेउ सकल इतिहास मुनि, कहि पुनि नायउमाथ॥ ४८॥

तब वह तपस्वी मीठे वचन बोले हे रघुनाथजी! रक्षा करो! रक्षा करो! फिर परधाम चलने का सारा इतिहास कहकर मस्तक नवाया।

प्रभु इच्छा भावी बलवाना। दुर्वासा मुनि आय तुलाना॥
मुनिहि देखि लछिमन चल आगे। गये निकट विनती अनुरागे॥

ईश्वर की इच्छा और होनहार बलवान है उस समय दुर्वासा मुनि आये। मुनि को देख लक्ष्मणजी आगे जाकर मिले और प्रेम से विनय की।

पूछत मुनि कहं रघुकुल ईसा। तहां जाव मैं सुनहु अहीसा॥
जो प्रति उत्तर करिहो आजू। भस्म करउं तव घर पुर राजू॥

मुनि ने पूछा—श्रीरामजी कहां हैं ? हे लक्ष्मण ! मैं उनके पास जाना चाहता हूं। यदि तुम आज प्रत्युत्तर दोगे तो मैं तुम्हारे घर, नगर और राज्य को भस्म कर दूँगा।

कांपे लषन सुनत मुनि बानी। निज बध जानेसु चले भवानी॥
दोउ कर जोरि कहा प्रभु पाहीं। दुर्वासा मुनि आवत चाहीं॥

लक्ष्मणजी मुनि वचन सुनकर कांप उठे। हे पार्वती ! वे अपना मरण जानकर चले दोनों हाथ जोड़कर प्रभु से कहा—हे महाराज ! मुनि आना चाहते हैं।

तात कीन्ह अति अवगुन भारी। काल कर्म गति टरई न टारी॥
कहेउ बचन दिनकर कुल केतू। सुनु खग अपर कथा कर हेतू॥

हे तात तुमने भारी दोष किया है काल और कर्म की गति टाले नहीं टलती इस भांति रघुनाथजी ने कहा ? अब आगे की कथा प्रसंग सुनो।

दो०—तुरत कहेउ मुनि आनहु, सादर कृपानिधान।
चलहु बेगि मुनि बोले अब, कहा राम भगवान॥ ४१॥

कृपानिधान ने कहा - मुनि को शीघ्र ही ले आओ। (लक्ष्मणजी ने जाकर कहा-) हे मुनि ? आप शीघ्र पधारे, श्रीरघुनाथजी ने बुलाया है।

छं०—अति तेजपुंजविलोक जावत उचित उठि आसन दिये।
जलि आनि सादर चरण धोये सुभग पादोदक लिये॥
जन जानि मुनिवह देहु आयुस बेगि मैं सादर करौं।
बहुकाल छुधित कृपायतन विन असन दिन मनि मैं मरौं॥

श्रीरामजी बड़े तेजवान मुनि को आते देखकर उठे और उचित आसन दिया। जल लाकर आदर से चरण धोये और चरणामृत लिया। वे बोले हे मुनि श्रेष्ठ ! सेवक जानकर आज्ञा दीजिये जिसे मैं आदर सहित करूँ। तब मुनि ने कहा—हे दया सागर ! मैं बहुत समय से (व्रत के कारण) भूख से मर रहा हूं।

मन भाव भोजन दीन्ह रघुपति बहुत विधि बिनती करी।
सन्तोष पाय मुनीश स्तुति विनय करि आसिष भरी॥
करि बिदा मुनिवर देखि लछिमन हृदय दारुन दुख भए।
भरतादि अनुज समेत पुरजन ताहि छिन देखन गए॥

श्रीरामचन्द्रजी ने मुनि को मन भावने भोजन कराकर बहुत भांति से विनय की संतोष से मुनि ने आशीर्वाद देकर स्तुति की। फिर मुनि को विदा कर लक्ष्मणजी की ओर देखकर श्रीरामजी को भारी दुःख हुआ। उस समय भरत आदि भाई पुरवासियों के सहित उन्हें देखने गये।

पद बंदि ठाड़े जोरि कर दोउ बदनलखि अति कांपहीं।
भरि नैन पकञ्ज नीर आरत भरत सों प्रभु भाषहीं॥
अब गुहि आनहु बेगि सादर दुखित अति आतुर चले।
सब कथा गुरुहि सुनाय आरत यान चढ़ि आवत भले॥

सब चरणों को वन्दना करके दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये और भगवान का मुख देखकर भय से कांपने लगे। कमल रूपी नेत्रों में आंसू भरकर दुःखी भरतजी से प्रभु बोले आदर सहित गुरुजी को शीघ्र बुलाओ। भरतजी दुखी मन से शीघ्र चले और गुरुजी को सब समाचार सुनाया जिसे सुनकर गुरुजी विमान पर चढ़कर चले।

आये वशिष्ठ बिलोकि रघुपति सकल उठि चरनन्हि परे।
सम्वाद सुनि मुनि समय जान्यौ त्यागि हैं अब तनु हरे॥
सुनि वचन सेष बिचारि निजि उर राम बिन धिक जीवनो।
गहि चरन सरजू तीर आये दखि जल शुभ पावनो॥

गुरु वशिष्ठ को आया देखकर रामचन्द्रजी तथा और सब उठ करके चरणों पर गिरे। सारी कथा सुनकर मुनि ने जान लिया कि अब श्री हरि शरीर त्यागेंगे। लक्ष्मणजी ने ऐसा वचन सुन अपने हृदय में विचार किया कि रामचन्द्रजी के बिना जीवन वृथा है। वे चरण छूकर सरयू के किनारे आये और कल्याणकारी पवित्र जल को देखा।

दो०—कटि प्रयन्त जल मध्य में, कीन्हो ध्यान अखराड।
योग यज्ञ करि राम जहं, फोरयो निज ब्रह्माराड॥ ५०॥

फिर कमर तक जल में खड़े होकर अखण्ड ध्यान लगाया। योग क्रिया से श्रीरामजी का ध्यान करके अपना ब्रह्माण्ड फोड़ लिया।

दो०—राम धाम पहुंचे लषण, तुरत चतुर्थम भाग।
सुनि व्याकुल रघुपति भरत, मिटे सकल अनुराग॥ ५१॥

श्रीरामजी के चतुर्थांश लक्ष्मणजी शीघ्र ही श्रीरामजी के धाम को पधारे। यह सुनकर भरत और रामजा बहुत व्याकुल हुए और उनकी सारी प्रसन्नता मिट गई।

मैं नहिं तजा मोहि ताता। करु सो यतन जो देखौं भ्राता॥
केरहु भरत पुर राज्य सुखारी। सुनत गिरे महि व्याकुल भारी॥

(प्रभु दुःखी होकर बोले-) मैंने भाई को नहीं त्यागा था परन्तु भाई ने मुझे त्याग दिया। अब ऐसा यत्न करो जिससे मैं भाई को देखूं। हे भरत! तुम सुख पूर्वक राज्य करो सुनते ही भरत व्याकुल होकर गिर पड़े।

चहत चलन अब प्राण गुसाई। छण लच्मण बिन रहिन सकाई॥
तात चलेहु कहि तनय बुलाए। कीन्ह तिलक बहु नीति सिखाए॥

(फिर बोले-) हे नाथ! अब प्राण निकलना चाहते हैं, क्योंकि वे बिना लक्ष्मण के क्षण भर भी नहीं रह सकते। 'हे तात! चलो' ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने पुत्रों को बुलाकर राजतिलक करके उन्हें नीति सिखाई।

सब कहं सब विधि धीरज दीन्हा। आपु गमन सरयू तट कीन्हा॥
दक्षिण भरत वाम रिपुदवनू। पुरवासी सब निज कुल तरनू॥

सब को इस प्रकार धैर्य देकर आप सरयू के किनारे चले। दाहिनी ओर भरत और बाई ओर शत्रुघ्नजी थे। पीछे नगरवासी व कुटुम्बी चले।

चढ़ि विमान प्रभु धाम सिधाए। सकल अमरपति कहं सकुचाए॥
सुमन वृष्टि नभ होइ अपारा। होइ नाद बिधि बेद उचारा॥

विमानों पर चढ़कर सब श्रीरामजी के धाम को जाने लगे तो सबने अपने ऐश्वर्य से इन्द्र को लज्जित कर दिया। आकाश से अपार पुष्पवृष्टि होने लगी और विधि वेद ध्वनि होने लगी।

छं०—उच्चारत वेद प्रसन्न भरत कृपालु हंसि सादर लयो।
जल परसि कर रिपुदवन सादर पदम बन राजत भयो॥
कपि आदि यूथप सखा प्रभु के सकल निज लोकन गये॥
सुग्रीव प्रभु पद बन्दि बारहिं बार रवि मण्डल गये॥

वेद का उच्चारण करते हुए आनँदित हो भरत जी को श्रीरामजी ने हंसकर अपने स्वरूप में मिला लिया शत्रुघ्नजी जल स्पर्श करके पद्मरूप से सुशोभित हुए। वानर आदि प्रभु के सब सखा भी अपने लोकों को गये। सुग्रीव बार-बार भगवान के चरणों की वन्दना करके सूर्यलोक को गये।

सुर सहित दिनकर वस भूषण आनि जल आश्रित रहे।
तेहि समय बोलि अनादि प्रभुजू बचन पावन मय कहे।
इक मास रहि सरि तीर तुम मम पुरी जीव जे आवहीं।
तेहि सुभग देहु विमान पद निर्वाण सो मम पावहीं॥

फिर देवताओं सहित सूर्य कुल भूषण श्रीरामजी ने जल में खड़े होकर ब्रह्माजी को बुलाकर पवित्र वचन कहे-तुम एक महीने तक सरयू के किनारे निवास करो। मेरी पुरी में जो जीव आवे उन्हें सुंदर विमान देकर भेज दो ताकि वे निर्वाण पद पाकर मुझे प्राप्त करें।

कह बचन अन्तर्ध्यान प्रभु ज्यों दामिनी घनसों लयो।
नभ जयति जय जयकार जयप्रभु जयति जय२ सुर कियो॥
एहि भांति रघुपति जग चराचर सकल लै निज धाम को।
सो कह्यो उमहि कृपाय तन हृदय राखि सादर राम को॥

ऐसे वचन कहकर प्रभु इस भांति अन्तर्ध्यान हो गये जैसे बादलों में बिजली लय हो जाती है आकाश में देवताओं ने जय जयकार ध्वनि की। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी संग्राम के जीवों को साथ लेकर निज धाम को पधारे। यह कथा कृपा के धाम महादेवजी ने आदर सहित श्रीरामजी को हृदय में धारण करके पार्वती जी से कही।

दो०—गिरजा सन्त समागम, सम लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ, गावहिं वेद पुरान॥ ५२ ॥

हे पार्वती जी ! सन्त समागम के समान अन्य कुछ लाभ नहीं है और वह भी बिना भगवान की कृपा से नहीं होता, ऐसा वेद कहते हैं।

सुनि दुर्लभ हरि भक्तिवर, पावहिं बिनहि प्रयास।
जो यह कथा निरंतर, सुनहिंमानि विश्वास॥ ५३ ॥

वह श्रेष्ठ भगवद्भक्ति जो मुनियों को भी दुर्लभ है मनुष्य बिना ही परिश्रम किये पा जाता है, जो इस कथा को प्रेम से विश्वास पूर्वक सुनता है।

एहि विधि सकल सुनि हृदय राखि रघुबीर।
तासु चरण सिर नाय करि गयउ गरुड़मति धीर॥ ५४ ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण कथा सुनकर, श्रीरघुनाथजी को हृदय में धारण करके और भुशुण्डिजी के चरणों में सिर नवाकर गरुड़ जी बैकुण्ठ गए।

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानस से सकल कलिकलुष विध्वँस ने अष्टमः सोपान समाप्त ॥

यह आठवाँ सोपान समाप्त हुआ।

